

# भारतीय ज्ञानपीठ काशी

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में

तन्सुपुत्र सेठ शान्तिप्रसाद जी द्वारा

संस्थापित

## ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में प्राकृत सस्कृत अपभ्रंश हिन्दी ऋजुड तामिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक दार्शनिक पारमार्थिक साहित्यिक आर ऐतिहासिक आदि विविध विषयक जैन साहित्य का अनुसन्धान, उसका मूल आर यथासम्भन्न अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन होगा । • जन भडारों की मूर्चियों शिलालेख सग्रह, विशिष्ट विद्वानों के आचरणग्रन्थ आर लोकरहितकारी जैन साहित्य भा इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होंगे ।



ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक—( प्राकृत विभाग )

प्रो० डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०, मैरिस कॉलेज, नागपुर ।

प्रो० डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०, राजाराम कॉलेज, कोरहापुर ।

### प्राकृत ग्रन्थाङ्क १

प्रकाशक—

अयोध्याप्रसाद गोपलीय,

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,

दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी ।

मुद्रक—१० पृथ्वीनाथ भागवत भागवत भूषण प्रेस गायधाट्ट काशी ।

स्थापना—  
भारतानु कृष्णा १  
वीर नि० २४७० }

समीक्षक सुरक्षित

विषय म० २०००  
१२ फरवरी १९४४ }



स्व० मूर्तिदेवी, मातेवरी सेठ शातिप्रसाद जैन



JNANA-PITHA MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

PRAKRIT GRANTHA No 1

Bhagwant Bhoodabali Bhadaraya Paneedo

# MAHABANDHO

[ MAHADHAVAL SIDDHANTA SHASTRA ]

Padhamo Payadi bandhahiyaro

Vol 1

PRAKRITI BANDHADHIKARA

WITH

HINDI TRANSLATION



EDITOR

- Pt SUMERU CHANDRA DIWAKAR, SHASTRI,  
NYAYATIRTHA, B A, LL B, SEONI C P

Published by

BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI.

First Edition 1000 Copies }

JYESHTHA VIR SAMVAT 2473  
VIKRAMA SAMVAT 2001  
MAY 1947

{ Price Rs 12/-



# BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI

FOUNDED BY  
SETH SHANTI PRASAD JAIN  
IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER  
MOORTI DEVI

## JNANA PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAM

IN THIS GRANTHAM A CRITICALLY EDITED JAIN AGA MICO PHILOSOPHY  
PAURANIC LITERARY HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS  
PRAKRIT SANSKRIT APABHRANSHA HINDI KANNADA & TAMIL ETC  
AVAILABLE IN ANCIENT LANGUAGES WILL BE PUBLISHED  
IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THE TRANSLA  
TION IN MODERN LANGUAGES

AND

ALSO CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS INSCRIPTIONS  
STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR  
JAIN LITERATURE WILL BE PUBLISHED

GENERAL EDITORS OF THE PRAKRIT SECTION

PROF DR HIRALAL JAIN M A, D LITT  
MORRIS COLLEGE NAGPUR

PROF DR A N UPADHYE M A, D LITT  
RAJARAM COLLEGE KOLHAPUR

### PRAKRIT GRANTHA No 1

PUBLISHER

AYODHYA PRASAD GOYALIYA,

SECY BHARATIYA JNANA PITHA,

DURGAKUND ROAD, BENARES CITY

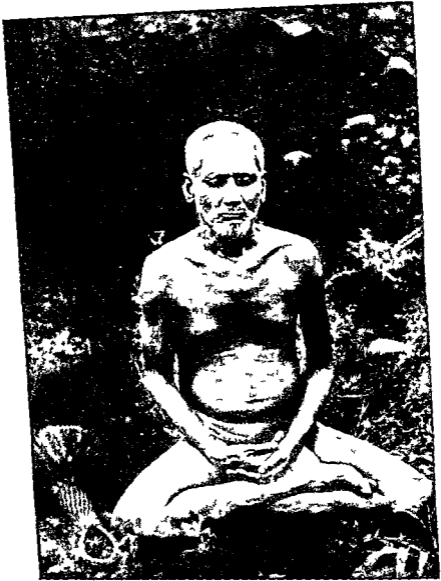
Printed by—BHARATIYA JNANA PITHA PRESS BENARES

Founded in  
Falgun Krishna 9  
Vir Sam. 2470

All Rights Reserved

Vikram Samvat 2000  
18th Feb 1944





शाबाम्य दासि सगर महाराज

स्वधर्मो राज

चारित्र्यचक्रवर्ती पूज्य श्री १०८ आचार्य  
शान्तिसागरजी महाराजके /  
कर कमलोमें

—सुमेरुचन्द्र दिवाकर

## सूची

प्रस्तावकीय	7-8
ग्रन्थमाला सम्पादनका प्राम्नायिक किञ्चित् हिन्दी	9-10
"                  "                  अंग्रेजी	11-12
श्रीधरम-दिवानरगी	13-19
प्रथयत           "	१-१०
प्रस्तावना       "	११-४०
महायधपर प्रकाश	११-१३
महायधल नाम प्रचारका कारण	१४
महायधके अवतरणका इतिहास	१५-२२
मूत्ररलिना समय	२२-२५
प्रन्थयी प्रामाणिकता	२५-२७
मङ्गलचरण	२७-३०
श्रेष्ठमङ्गल अनादिमङ्गल	३०-३१
मङ्गल पत्रके रचयिता	३१-३२
प्रतिलिपिके नियम	३२-३३
महायधका प्रभाव	३३-३४
महायधके परिशीलनकी उपयोगिता	३४-३७
प्रगति परिचय	३७-४०
फर्मरध मीमासा	४१-७६
निगमपृची	७७
संस्कृतपृची	७८
मूलग्रन्थ	१-३४८
गाथापूर्वी	३४९
शब्द सूचा	३४९-५०

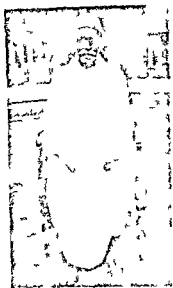




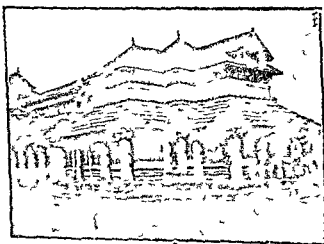
स्वामिन् श्री भद्राचार्य  
चारुनीति पण्डिताचार्यधर  
मुद्रविद्या



स्वामिन् श्री भद्राचार्य  
चारुनीति पण्डिताचार्यधर  
श्रवणबेलगोड



श्रीमान् नगराज श्रेष्ठी,  
मुद्रविद्या



त्रिनाथ चूनामणि बर्यानाथ  
चंद्रनाथ बसन्दि  
मुद्रविद्या

एन श्रीमान् रघुचंद्रजी  
बल्लभ मगहर

श्रीमान् मजुन्धर हेगड  
मो र एम् एल सी  
धनस्यल



## प्रकाशकीय

प्राचीन जैन ग्रन्थों की शोध-संशोध, सम्पादन-प्रकाशन तथा आधुनिक लोकोपयोगी धार्मिक साहित्यिक ऐतिहासिक सुसचिपूर्ण भव्य साहित्य के निर्माण और प्रकाशन की भावनाओं से प्रेरित होकर सेठ शान्तिप्रसादजी और उनकी सहधर्मचारिणी श्रीमती रमारानीजी ने फाल्गुन कृष्ण ६ वि० सं० २००० शुक्रवार, १८ फरवरी १९४४ को बनारस में **भारतीय ज्ञानपीठ** की स्थापना की ।

उनकी धर्मनिष्ठ स्नेहमयी स्वर्गीय माता मूर्तिदेवी की अभिलाषा जैन सिद्धान्त ग्रन्थों—विशेष कर जयधवल, महाधवल के उद्धार की थी । अतः उनकी अभिलाषा की पूर्ति स्वरूप उनकी पवित्र स्मृति में ज्ञानपीठ में एक **मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला** प्रकाशित की जा रही है ।

ज्ञानपीठ की स्थापना को ३-४ मास ही हुए थे कि श्री प० सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर ने स्वसम्पादित प्रस्तुत ग्रन्थराज प्रथमखंड को ज्ञानपीठ से प्रकाशित करने की अभिलाषा प्रकट की । माताजी की अभिलाषा पूर्तिस्वरूप जयधवल का प्रकाशन जैनसंघ के तत्त्वावधान में प्रारम्भ हो चुका था । अतः महाधवल को ज्ञानपीठ से प्रकाशित करना तुरन्त निश्चय कर लिया गया और वीरशासन जयन्ती की शुभ वेला में प्रेम में दे दिया । परम सन्तोष की बात है कि ३ वर्ष पश्चात् श्रुतपंचमी के पुण्य दिवस पर उत्सुक और भक्तिविभोर जनता को उसके पूजन का अवसर मिल रहा है । हमारी अभिलाषा इन्हीं शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित करने की थी, पर प्रेस आदि की कठिनाइयों के कारण ऐसा नहीं हो सका ।

दिवाकरजी ने अनेक विघ्न बाधाओं को पार करके जिस साहस और अदम्य उत्साह से यह अलभ्य ग्रंथ प्राप्त किया, उतनी ही लगन और परिश्रम से इसका सम्पादन किया है । ग्रंथराज की उपलब्धि, अनुवाद और सम्पादनादि सब कुछ आत्मकल्याण की पवित्र भावना में किया है और इसी भाव ने ज्ञानपीठ को प्रकाशन के लिये भेंट कर दिया है । जिनवाणी के उद्धार को दिवाकरजी की यह निम्पूह भावना और लगन अनुकरणीय और अभिनन्दनीय है ।



हम उन धर्म प्रेमी महात्मा का विशेषतः मूढविद्वी के पू० भट्टारकजी का स्मरण करके आत्म विभोर हो उठते हैं, जिन्होंने घोरसकट काल में, जब कि शास्त्रों को जला-जला कर स्नान के लिये गरम पानी किया जाता था, मन्दिर विध्वंस किये जाने थे, प्राणों में लगाकर धर्म गयन्त की रक्षा की और उपयुक्त समय आने पर उनके उत्तराधिकारियों ने भगवत मूलबलि की यह वरोहर समाज के कल्याणार्थ भौंप दी।

समाज उन सभी वन्दुआ का आभारी है जिन्होंने इस ग्रन्थराज की गोपनीय मण्डल से उपलब्धि और प्रतिलिपि कराने में एक क्षण के लिये भी सहयोग दिया है, अथवा प्रयत्न किया है।

वे महानुभाव भी कम आदर के पात्र नहीं हैं जिन्होंने ग्रन्थ की प्राप्ति में विघ्न नहीं डाला, क्याचि बने उनाय दुःख बाय तनिक से विघ्न से छिन्न भिन्न होते देखे गये हैं।

प० परमानन्द जी माहियाचाय और प० कुन्दनलाल जी शास्त्री के हम विशेषतः आभारी हैं जिन्होंने उक्त ग्रन्थ के सम्पूर्ण आद्य अनुवादमें दिवाकरजी को नीव की ईंट की तरह सहयोग देकर इस ग्रन्थप्रासाद की जड़ जमाई।

ज्ञानपीठ के प्राकृत विभाग के सम्पादक रयातिप्राप्त डॉ० हीरालालजी ने इस ग्रन्थ का प्राम्ताविन लिखा है और सस्कृत विभाग के सम्पादक न्यायाचार्य प० महेन्द्रकुमार जी की दया से म सुद्रण और प्रकाशन हुआ है। समस्त प्रूफ उन्हें देने हैं। दोना ही विद्वान ज्ञानपीठ के विनिष्ट ग्रन्थ है, उन्हें धन्यवाद देने का हम अधिकार नहीं है।

हम उन सभी वन्दुआ के आभारी हैं जिनकी कृपा या भावनाओं से यह ग्रन्थ-राज प्रकाश में आया और हम भी घर बैठे दाना और स्वाध्याय का पुण्य प्राप्त हुआ। नार्गव प्रेम के माहिक प० पृथ्वीनाथजी भागव भी धन्यवाद के पात्र हैं।

अलमियागर )  
५ मई १९४८ )

अयोध्याप्रसाद गोयलीय  
मन्त्री

११० ) शान्ति  
००० ) धर्म  
१-०० ) शान्ति

ग्रन्थ की लागत—

१००) कवर डिजाइन लागत की छपाई कागज  
५००) व्यवस्था प्रकाशनाग धर्म  
५१००) विन्नीसव, विनापन नट पुढाररवन धर्म

१ ) लगभग

## प्रास्ताविकं किञ्चित्

जन मैने पट्टलडागमका सम्पादन प्रारम्भ किया था तब मेरे मार्गमें अनेक विघ्न बाधाएँ उपस्थित थीं। तो भी जब उक्त ग्रन्थका प्रथम भाग सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ और लोगोंने उसका आनन्दसे स्वागत किया, तब मुझे यह आशा हो गई कि कठिनाइयोंके होते हुए भी यथा-समय तीनों सिद्धांत ग्रन्थ प्रकाशमें लाये जा सकेंगे। फिर भी मुझे यह भरोसा नहीं था कि मेरी आशा इतने शीघ्र सफल हो सकेगी और साहित्यिक प्रवृत्तियोंमें सत्सार-युद्धके कारण अधिकाधिक बाधाओंके उपस्थित होते हुए भी, जयधवलका प्रथम भाग सन् १९४४ में तथा महापत्रका प्रथम भाग सन् १९४७ में ही प्रकाशित हो सकेगा। जैनसमाज और उसके विद्वानोंके इन सफल प्रयत्नोंमें भविष्य जाशापूर्ण प्रतीत होना, है।

मैं पट्टलडागमके प्रथम भागकी प्रस्तावनामें वनला चुका हूँ कि धवल और जयधवल सिद्धांतोंकी प्रतिलिपियों सन् १९४४ में ही मूढनित्रीके शास्त्रमठारमें बाहर आ गई थीं और उसके पश्चात् कुछ वर्षोंमें उनकी प्रतियाँ उत्तर भारतमें उपलब्ध हो गईं। किंतु महाधवल नामसे प्रसिद्ध सिद्धांत ग्रन्थ फिर भी मूढनित्री सिद्धांत मंदिरमें ही सुरक्षित था। जन मैने सन् १९३८-३९ में इन सिद्धांत ग्रन्थोंके अन्वर्गन निषेधोंको जाननेका प्रयत्न प्रारम्भ किया तब मुझे यह जानकर बड़ा निश्चय हुआ कि जो कुछ थोड़ा बहुत वृत्तान्त महाधवलकी प्रतिके निषेधमें प्राप्त हो सका था उसके आधारपर उस प्रतिमें केवल वीरसेनाचार्यद्वारा सत्कर्म चूलिकाकी एक पत्रिका मात्र है और महापत्रका वहाँ कुछ पता नहीं चलना तब मैंने इस विषयपर अपनी आज्ञा और चिंताको प्रकट करते हुए कुछ लेख प्रकाशित किये और अधिकारियोंसे इस निषेधकी प्रेरणा भी की कि वे मूढनित्रीकी ताड़पत्रीय प्रतिका साजधानीसे समीक्षण कराकर महापत्रका पता लगायें। मुझे यह कहते हर्ष होता है कि मेरी वह प्रार्थना शीघ्र सफल हुई। मूढनित्रीके भट्टारक जी महाराजने, प० लोकरनाथ शास्त्री व प० नागराज शास्त्रीसे ताड़पत्रीय प्रतिका जाँच कराई और मुझे सूचित किया कि उक्त पत्रिका ताड़पत्र २७ पर समाप्त हो गई है, एवं आगेके पत्रोंपर महापत्रकी रचना है। देविये जैनसिद्धांत भास्कर (भाग ७, जून १९४०, पृ० ८६-९८) में प्रकाशित मेरा लेख 'श्री महाधवलमें क्या?' एवं पट्टलडागम भाग ३, १९४१ की भूमिका पृ० ६-१४ में समाप्त 'महापत्रकी सोज'।

इस अन्वेषणमें उत्पन्न हुई रूचि बढ़ती गई और शीघ्र ही, विशेषतः प० सुमेरचंद्र जी दिवाकरके सत्प्रयत्नसे, दिसम्बर १९४२ तक महापत्रकी प्रतिलिपि भी तैयार हो गई व उन्होंने प्रस्तुत प्रथम भागका सम्पादन व अनुवाद कर डाला। उनके इस स्तुत्य कार्यके लिये मैं उन्हें बहुत धन्यवाद देता हूँ। पंडितजीने अपनी प्रस्तावनामें जो सामग्री उपस्थित की है उसके साथ पट्टलडागमके प्रकाशित ७ भागोंमें मेरे द्वारा लिखी गई भूमिकाओंको पढ़ लेनेकी मैं पाठकोंसे प्रेरणा करता हूँ। इससे इन सिद्धांतोंके इतिहास व विषय आदिका बहुत कुछ परिचय प्राप्त हो

सकेगा। पंडितजीकी भूमिकाके पृ० ३० पर गणेश्वर मंत्रके जीवह्राणके आदिम अनिन्द मंगल होनेके सम्बन्धका वक्तव्य मुझे निराला निरागर प्रनीत होता है, क्योंकि वह प्राचीन प्रतियोगिके उपलब्ध पाठ एवं आचार्य बीरसेनकी टीकाकी युक्तियाके सर्वथा निरुद्ध है। इस सम्बन्धमें पट्टवहागम भाग २ की भूमिकाके पृ० ३३ आदि पर मेरा गणेश्वर मंत्रके आदि कृता दीर्घक टेन्व देवें।

महाधन्य मित्रात नामसे प्रसिद्ध शास्त्र अर्थार्थत पट्टवहागमना ही महावध नामक छठवाँ खंड है। जोमा कि मैं उसके प्रथम भागकी भूमिकामें वक्तव्य चुना हूँ। वहाँ मैं इस ग्रंथके कताओं व समय आदि सम्बन्धका भी विचार कर चुका हूँ। तन्में अभी तक कोई ऐसी नवीन सामग्री प्रकाशम नहीं आई जिसके कारण मुझे अपने उस मनम परिवर्तन करनेकी आवश्यकता प्रनीत हो।

यद्यपि महानथ पट्टवहागमका ही एक अंश है और उन्हीं मूलान्ति आचार्यकी रचना है जिन्होंने पूर्व पांच खंडोंके बहुभागकी रचना की है, यहाँ तक कि उसका मंगलाचरण भी पृथक् न होकर चतुर्थ खंड वेदनाके आदिम उपलब्ध मंगलाचरणसे ही सम्बद्ध है। तथापि यह रचना एक स्वतंत्र ग्रंथके रूपमें उपलब्ध होनी है। इसके मुख्यत दो कारण हैं—एक तो यह ग्रंथ पूर्व पांचों भागोंको मिलाकर भी उनसे बहुत अधिक विशाल है, और दूसरे उस पर धरलापर बीरसेनाचार्यकी टीका नहीं है, क्योंकि उन्होंने इतनी सुविस्तृत रचनापर टीका लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं समझी। इस गणना विषय बहुत ही शालीय है जिसमें केवल जनदर्शनके उन्हीं मर्मोंकी रुचि हो सकती है जिन्हें कर्मसिद्धांत सम्बन्धी सुक्ष्मम व्युत्थाओंकी जिज्ञासा हो।

जानपीठ मूर्तिदेवी जेन ग्रंथमालाके प्राकृत विभागके सम्पादक और नियामक के नाते मैं इस अवसर पर श्रीमान् साहु शान्तिप्रसादजी जोका अभिनन्दन करता हूँ और उन्हें धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने भारतीय ज्ञानपीठ जैसी संस्था स्थापित की व भारतीय सस्कृतिकी छुपी हुई निधियों का सत्सरो परिचय करानेके हतु अपनी भातृश्रीकां स्मृतिम यह मूर्ति देवी जेन ग्रंथमाला प्रारम्भ कराई। मुझे आशा और विश्वास है कि उनकी धर्मपत्नी तथा जानपीठ की सञ्चालक समितिकी अग्र्या श्रीमती ग्गारानीजीकी रुचि तथा सत्याके सचालक न्यायाचार्य प० महेंद्रपुरमारजी शास्त्रीके परिश्रम, अभियोग और उत्साहसे सस्थाका कार्य उत्तरोत्तर गतिशील होगा। मेरी मव विद्वानोंसे प्रार्थना है कि वे संस्थाके उद्देश्यकी पूर्ति में सहयोग प्रदान करें।

मारिस काञ्ज,  
नागपुर  
१५-५-१९३५

हीरालाल जेन,  
ग्रंथमाला सम्पादक।

(१) इदं पुण जीवह्राण शिवदमंगल। यता इमेति चादितण्ड तानसमासाण इदि एदम्स मुत्तस्तादीय शिद्धं एणम अरिहताण इच्छादि देवदाणमाककारदसगादा। -ब० टी प० ४१।

शिवदका अर्थ स्वरचित है जिसे दिवाकरदान रूप अपनी भूमिका पृ २९ में स्वीकार किया है। यथा— अथात् इसके आदिम स्वरचिताने द्वारा रचित देवता नमस्कार शिवद मंगल है।

## FOREWORD

When I started editing the SATKHANDAGAMA, there were several difficulties in my way. Still, when the first volume was published in 1939 and was received with general applause, I became hopeful that, inspite of all the hindrances then existing, all the three Siddhanta works would be brought to light in due course. But I did not then expect that my hope will materialize so soon as to lead to the publication of JAYADHAVALA Vol I in 1944 and of MAHABANDHA Vol I in 1947, inspite of the additional difficulties in the way of such literary efforts, created by the World War. These successful efforts of the Jaina Community and its scholars augur well for the future.

I had already described in my introduction to Vol I of Satkhandagama, how copies of DHAVALA and JAYADHAVALA Siddhanta had emerged from the Moodbidri temple as early as 1915 and how the same had become available in North India during the subsequent years. But the so-called MAHADHAVALA Siddhanta was still confined to the private archives of the Moodbidri temple. When I examined critically the contents of these Siddhanta works in 1938-39, I was startled to find that the scanty information available about the manuscript of Mahadhavala only showed the existence of a gloss (Panchika) on the supplementary portion (Chulika) of Virasena's commentary Dhavala, and there was no trace of the Mahabandha. I, therefore, published a few articles on the subject expressing my anxiety in the matter and also urged upon the proper authorities the necessity of a thorough examination of the palmleaf manuscript in search of Mahabandha. I am glad to say that my appeal met with a ready response. The Bhattarakaji got the palmleaf manuscript examined by pandit Lokanath Shastri and his colleagues, and reported to me that the gloss ended on leaf 27 and the rest of the MS did contain the MAHABANDHA (See my article on "*Sbri Mahadhavala men kya ?*" in Jaina Siddhanta Bhaskara Vol VII, June 1940, pp 86-98, and "*Mahabandha ki Uboji*" in Satkhandagama Vol III, 1941, Introduction, pp 6-14)

The interest aroused by this discovery was kept up, and a transcript of the Mahabandha was completed by the end of 1942, mainly through the efforts of Pandit Sumerchandra Diwakara, the editor of this volume, to whom my best thanks are due for the laudable task he has done in obtaining, editing and translating the text, as well as in writing the introduction which the readers would be well advised to supplement by the information presented in my introductions to the seven volumes of Satkhandagama so far published in order to get a clear idea of the

सकेगा। पंडितजीकी भूमिकाके पृ० ३० पर जमोकार मंत्रके जीमट्टाणने थाप्ति अर्थात् सगल होनेके सम्बन्धका वक्तव्य मुझे निम्नलिखित निराधार प्रतीत होता है, क्योंकि यह प्राचीन प्रतिबंधके उपलब्ध पाठ एवं आचार्य वीरसेनकी टीकाकी युक्तियोंके सर्वथा विरुद्ध है। इस सम्बन्धमें पदसंहागम भाग २ की भूमिकाके पृ० ३३ आदि पर मेरा 'जमोकार मंत्रके आदि कर्ता क्षीरक लेख देखें।

महाबन्ध मिहल नामसे प्रसिद्ध शास्त्र यथार्थतः पदसंहागमका ही महाबन्ध नामक छटकों पर है। जैसा कि मैं उसका प्रथम भागकी भूमिकामें कलना चुना हूँ। वहाँ मैं इस ग्रन्थके घनाओं व समय आदिके सम्बन्धका भी विचार कर चुका हूँ। तस्में अभी तक कोई एमी नवान सामग्री प्रकाशित नहीं आई जिसके कारण मुझे अपने उम भवन परिचय करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो।

यद्यपि महाबन्ध पदसंहागमका ही एक अंश है और उन्हीं भूतवन्धि आचार्यकी रचना है जिनने पूर्ण पाव खटोंके बहुभागकी रचना की है, यहाँ तक कि उसका मंगलारण भी प्रथम न लेकर चतुर्थ खट वेदनाके आदिम उपलब्ध मंगलारणसे ही सम्बद्ध है। तथापि यह रचना एक स्वतंत्र ग्रन्थके रूपमें उपलब्ध होनी है। इसके मुख्यतः दो कारण हैं—एक तो यह ग्रन्थ पूर्ण पावों भागोंको मिलाकर भी उनसे बहुत अधिक विशाल है, ओर दूसरे उस पर घनाकार वीरसेनाचार्यकी टीका नहीं है, क्योंकि उन्होंने इतनी सुविस्तृत रचनापर टीका लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं समझी। इस ग्रन्थका विषय बहुत ही शास्त्रीय है जिसमें केवल जैनशास्त्रके उन्हीं मर्मज्ञोंकी रचि हो सकती है जिन्हें कर्मसिद्धान्त सम्बन्धी सूक्ष्मतम व्यवस्थाओंकी जिनामा हो।

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमालाके प्राकृत विभागके सम्पादक और नियामक के नाते मैं इस अवसर पर श्रीमान् साहु शान्तिप्रसादजी जेनका अभिमान करता हूँ और उन्हें धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने भारतीय ज्ञानपीठ जैसी संस्था स्थापित की व भारतीय संस्कृतिकी ज़ुमी हुई लिपियों का ससारकी परिचय करानेके हेतु अपनी मानुश्रीकी स्मृतिमें यह मूर्ति देवी जैन ग्रन्थमाला प्रारम्भ कराई। मुझे आशा और विश्वास है कि उनकी धमपत्री तथा ज्ञानपीठ की सञ्चालक समितिकी अग्रगण्य श्रीमती रमाराजीकी रचि तथा संस्थाके सञ्चालक न्यायाचार्य प० महेन्द्रकुमारजी शास्त्रीके परिश्रम, अभियोग और उत्साहसे संस्थाका कार्य उत्तरोत्तर गतिशील होगा। मेरी सब विद्वानोंसे प्रार्थना है कि वे संस्थाके उद्देश्यकी पूर्तिमें सहयोग प्रदान करें।

मारिस कानून,  
नागपुर  
१५-४-२७

हीरालाल जैन,  
जयमाला सम्पादक।

- (१) इदं पुण जीमट्टाण निवद्धमगल। यथा 'इमेसि चाइसण्ड जीमट्टाणसाण इदि एदस्स सुउस्तादीए निवद्ध गमा अरिइताण' इत्थादि देनदाणमाइकारइसणाण। -प० टी० पृ० ४१।  
निवद्धका अर्थ खरचित है, जिसे दिवाकरजीन घन्य अपनी भूमिकाके पृ० २९ में स्वाकार किया है। यथा— अथान् सुउके आदिमें सुपरचयिताने द्वारा रचित देवता नमस्कार निवद्ध मंगल है।

## FOREWORD

When I started editing the SATKHANDAGAMA, there were several difficulties in my way. Still, when the first volume was published in 1939 and was received with general applause, I became hopeful that, inspite of all the hindrances then existing, all the three Siddhanta works would be brought to light in due course. But I did not then expect that my hope will materialize so soon as to lead to the publication of JAYADHAVALA Vol I in 1944 and of MAHABANDHA Vol I in 1947, inspite of the additional difficulties in the way of such literary efforts, created by the World War. These successful efforts of the Jaina Community and its scholars augur well for the future.

I had already described in my introduction to Vol I of Satkhandagama, how copies of DHAVALA and JAYADHAVALA Siddhanta had emerged from the Moodbidri temple as early as 1915 and how the same had become available in North India during the subsequent years. But the so-called MAHADHAVALA Siddhanta was still confined to the private archives of the Moodbidri temple. When I examined critically the contents of these Siddhanta works in 1938-39, I was startled to find that the scanty information available about the manuscript of Mahadhavala only showed the existence of a gloss (Panchika) on the supplementary portion (Chulika) of Virasena's commentary Dhavala, and there was no trace of the Mahabandha. I, therefore, published a few articles on the subject expressing my anxiety in the matter and also urged upon the proper authorities the necessity of a thorough examination of the palmleaf manuscript in search of Mahabandha. I am glad to say that my appeal met with a ready response. The Bhattarakaji got the palmleaf manuscript examined by pandit Lokanath Shastri and his colleagues, and reported to me that the gloss ended on leaf 27 and the rest of the MS did contain the MAHABANDHA (See my article on "*Sbri Mahadhavala men kya?*" in Jaina Siddhanta Bhaskara Vol VII, June 1940, pp 86-98, and "*Mahabandha ki Khoja*" in Satkhandagama Vol III, 1941, Introduction, pp 6-14.)

The interest aroused by this discovery was kept up, and a transcript of the Mahabandha was completed by the end of 1942 mainly through the efforts of Pandit Sumerchandra Diwakara, the editor of this volume, to whom my best thanks are due for the laudable task he has done in obtaining, editing and translating the text, as well as in writing the introduction which the readers would be well advised to supplement by the information presented in my introductions to the seven volumes of Satkhandagama so far published in order to get a clear idea of the

history and subject matter of these works. The remarks of Pandit Sumerchandrajī on page 30 of his introduction regarding the Pancha Namokara Mantra as '*abaddha mangala*' in Jivatthana appear to me to be entirely baseless as they are against the reading available in the old MSS and the arguments set forth by Virasenacharya which I have discussed in my introduction to Vol II p 33 ff under the heading '*Namokara Mantra ke Adikarta*'

The MAHABANDHA, popularly known as Jayadhavala Siddhanta forms the sixth section (khanda) of the Satkhandagama, as I had already shown in my introduction to Vol I of that work where I had also discussed all the evidence available on the point of authorship and age of these works. No new material has since been brought to light and therefore my views on the subject remain unaltered.

Though Mahabandha is an integral part of the Satkhandagama and is composed by the same author Bhutabali who did not even provide it with a separate benediction (Mangala) but made it share the one given at the beginning of the fourth Khanda Vedana, yet it has come down to us in a separate manuscript for two reasons. Firstly, the composition is much larger in volume than even all the first five sections put together, and secondly, it contains no commentary by Virasena, the author of Dhavala who thought it unnecessary to comment upon a work which was so exhaustively self sufficient. The subject matter of the work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina philosophy who desire to probe the minutest details of the Karma Siddhanta.

As the General Editor of the Series, I take this opportunity to congratulate and offer my best thanks to Mr. Shantiprasad Jain for establishing the BHARATIYA JNANA PITHA at Benares and starting this series of publications in memory of his mother Moortidevi with the noble object of making known to the world the hidden treasures of ancient Indian culture. I hope and trust that with the keen interest of Mrs. Shantiprasad Shrimati Rama Rani, the President of the Managing Committee, and the industry, zeal and enthusiasm of Nyayacharya Pandit Mahendrakumar Sharma, the acting Director of the institution the work started would continue to advance steadily towards the goal. I appeal to all scholars to co-operate with the institution in achieving its laudable object.

Morris College,  
Nagpur  
15th March, 1947

H L Jain  
M A, LL B, D Litt,  
General Editor

## PREFACE

We have great pleasure in placing before the literary world the first volume of *Mahabandha* alias *Mahadhavala*, which was hitherto hidden in the Shastra Bhandar of Moodbidree (South Kanara). *Mahabandha and its importance* It is one of the three most reputed and revered Jain canonical works, whereof Jayadhavala and Dhavala have seen the light of the day and have reached the hands of scholars. Ordinarily this Mahabandha is supposed to be as remarkable as the said two Shastras but as a matter of fact, this is worthy of greater attention, since it is the biggest Prakrit Sutra work consisting of forty thousand slokas, composed in the beginning of the Christian era.

This Mahabandha is the sixth part of the great *Shatkhandagama Sutra*. The commentary on the five parts is called *Dhavala*, composed by Acharya Virasen in the 9th century A D during the reign of Jain monarch Amoghavarsha having 72000 slokas. The original sutras consist of 6000 slokas, out of which only 177 sutras had been written by *Pushpalarta* Acharya and the remaining portion was composed by Sri *Bhutabali* Acharya. Thus the entire composition of Bhutabali comes to about 46000 slokas.

The other sacred work *Jayadhavala* is a commentary written in the 9th century A D by Virasen and Bhagwata Jinasen Acharya in 60000 slokas on one of the most sacred scriptures, named *Kashaya Pahuda* of *Gwadbara* Acharya. This Kashaya Pahuda consists of only hundred and eighty *gathas*, which also belong to the early part of the Christian era. Naturally therefore Dhavala and Jayadhavala commentaries cannot rank with Mahabandha from antiquarian stand point.

This work deals with the Bandha category, which is one of the sevenfold Tattvas in Jainism, in the Jain Sauraseni Prakrit. The language is simple and lucid. The entire work is in prose, with the exception of about one and a half dozen verses. About three thousand slokas of the work are missing, since they have been eaten by worms and so they cannot be replaced by any amount of human effort.

The entire work has no historical reference, even the name of the author Acharya Bhutabali does not appear in such a voluminous composition, probably reflecting author's detachment for name, which according to poet Milton 'is the last infirmity of noble mind.'



In the panegyric the name of the work appears as Mahabandha which is a mine of meritorious karmas' ( सत् पुण्याकर महाबधदपुस्तक ) This book has been referred to in the Dhavala and Jayadhavala on several occasions and its authorship is ascribed to Bhutabali. The prashasti of palm leaf manuscript mentions, that it was written through the munificence of *Raja Shartsena's* pious and benevolent queen *Mallikadevi* for the purpose of presentation to an erudite *Muniraj Magharadi* who was the disciple of *Meghachandra Suri* in commemoration of the successful completion of her Panchami Vrita. This throws light upon the fact that in ancient India the ladies of high family had refined taste and were attached to literature. It is through the generosity of *Mallikadevi*, that we have at least one copy amid us written in the Kannad script. It is really a matter of profound regret that such important work has not been preserved in any other Bhandara.

The Dhavala sheds light upon the descent of this work and the historicity of Monks *Bhutabali*, *Pushpadanta* and their spiritual preceptor *Dharasena Acharya*. He was a great soul and an enlightened scholar well versed in some portions of the Twelve Angas, which had been composed by the head of Jain hierarchy, *Gautama Granadhar*, who had received direct Teaching from the Omniscient *Tirthankara Bhagwan Mahavira*. *Dharasena* flourished after *Lohacharya* who died 683 years after *Mahavira's* Nirvana i. e. in 137 A. D. What is the exact date of *Dharasena* is not definitely known but it is surmised that he must have lived a couple of years after *Lohacharya*. It is just possible that he might have seen the demise of *Lohacharya*, who possessed the knowledge of entire *Acharanga*. It appears therefore, that *Dharasena* should belong to the later half of the second century after Christ.

It transpires that *Dharasena Acharya* was proficient in the occult science of *Ashtanga Nimitta Shastra* as also in *Maha Karma Prakriti Prabhruta*. On one occasion his mind was diverted towards the sudden disappearance of canonical Teachings of *Mahavira Bhagwana* and this fact grieved him a great deal. He made up his mind to preserve the Teaching which was fresh in his memory. He imparted instructions to *Bhutabali* and *Pushpadanta* who were sent to him by the religious head of the monks of the south on his requisition for ending disciples specially remarkable for their memory and retentive faculty. After the termination of studies, the disciples left the place in accordance with the wishes of their master. *Pushpadanta* went to *Vanavas Desa* (modera Wandewash), composed 177 sutras and sent them to *Bhutabali* with his high souled disciple

*Jinapalita* to *Dramila Desa* After going through the sutras *Bhutabali* could see into the mind of *Pushpadanta* *Jinapalita* communicated to him that his master is not expected to survive long, thereby suggesting him that he should speed up into the matter of compiling the teaching imparted to them by the preceptor, *Dharasena Acharya*

*Bhutabali* devoted himself to writing with single mind and was successful in completing the whole of *Shukhandagama Sutra* Fortunately *Pushpadanta* was alive then, therefore he sent the entire composition to his colleague *Pushpadanta* with the selfsame saint *Jinapalita* *Pushpadanta* was extremely delighted to see his heartfelt wishes fulfilled and he performed the worship of the scripture with due eclat and grandeur accompanied by the huge assemblage of Jains

The date of the author is not mentioned, but it appears that it must be assigned to the later part of the 2nd century  
*Date of the author* A D

The subject matter of this book, as already mentioned, is *Bandha*, which forms an essential part of the doctrine of *Karma* Almost all the believers in transmigration attach importance to the philosophy of *Karmas* The adage, 'as you sow, so you reap,' is significant enough to show the universality and popularity of this doctrine, but the treatment of this subject is unique in Jain philosophy, in as much as it is scientific, rational and elaborate No other system has explained this matter, as has been done by Jain thinkers and sages  
*The Subject matter*

With a view to appreciate this doctrine it is necessary to comprehend the nature of the world Our analysis brings out, that there are sentient and non-sentient beings in this universe The soul is possessed of consciousness, while other objects, devoid of this faculty, are matter, space, time, etc The special characteristics of matter are taste, smell, touch and colour All that is perceived by us is material Like the soul matter is also indestructible They are eternal, therefore they are not created by any agency, whether super-natural or super-human The whole panorama of nature is the outcome of the combination or the chemical action of atoms due to the property of smoothness and aridity The variegated forms and appearances are evolved out of material atoms But this has driven many a thinker to the conclusion that some Intelligent and Supreme Being is at the helm of affairs He creates, destroys and recreates The entire world dances attendance to His sweet wishes He is Omnipotent, Omniscient and Enjoyer of transcendental bliss

The Jain philosophers do not agree with the idea of a Supreme Being guiding the destinies of all things since it does not stand to critical examination and logical interpretation. Impartial study and mature thought lead us to the conclusion, that this world full of barbarities and inequalities cannot be the handiwork of a good happy Omnipotent and Omniscient God. The observations of the great scientist Huxley deserve special attention in this respect —

"In my opinion it is not the quantity, but the quality, of persons among whom, the attribute of divinity are distributed, which is the serious matter. If the divine might is associated with no higher ethical attributes than those, which obtained among ordinary men, if the divine intelligence is supposed to be so imperfect that it cannot foresee the consequences of its own contrivances, if the supernal powers can become furiously angry with the creatures of their omnipotence and in their senseless wrath destroy the innocent along with the guilty or if they can show themselves to be as easily placated by presents and gross flattery as any oriental or accidental despot, if in short, they are only stronger than mortal men and no better, then surely it is time for us to look somewhat closely into their credentials and to accept none but conclusive evidence of their existence"—Science & Hebrew Tradition, p 258

This world cannot be the creation of a benevolent and good God for it presents a poor picture of the abundance of misery and calamity as the lot of the majority of its creatures. Arnold in his *Light of Asia* argues —

"How can it be, that Brahma,  
Would make a world and keep it miserable,  
Since, if all powerful, he leaves it so  
He is no good and if not powerful  
He is not God

Due to these failings the Jains believe in a God, who is Omniscient, who is passionless and who enjoys the bliss of perfection, and who does not bother about the creation or destruction of the world. The manifold conditions of sentient beings are due to fruition of Karmas acquired by the Jiva in the past.

Some think that the soul is pure and perfect therefore it is wrong to suppose it as the reaper of the harvest of its merits or demerits. *But Jiva of karm* : This view goes against our experience and reason. The mundane soul is impure since it is contaminated with matter assuming the form of good or bad karmas. We see that the Jiva

has been imprisoned in this body, which is a store-house of the filthiest of objects. The pure, perfect and powerful soul would never have liked to reside in such an impure tabernacle even for a moment. We, therefore infer, that the jiva is under forced-servility of some thing, which is instrumental to such an awkward position of the soul. The main source of this downfall is the matter, having assumed the form of a Karma.

This karma is material, since its effects, auspicious or otherwise, are visible either on the physical body or they are exhibited by means of association or separation of material objects.

This soul, although immaterial, is recipient of good or evil effects of the karmas, which are material. This phenomenon should not bewilder any one, for we see that the intelligent being is subject to intoxication caused by drinking wine, which is non sentient. It is to be noted, that the very liquor does not cause any intoxication to the bottle, which contains it. Such is the nature of things.

The mundane soul has got vibrations through mind, body or speech. The molecules, which assume the form of mind, body or speech, engender vibrations in the Jiva, whereby an infinite number of subtle atoms is attracted and assimilated by the Jiva. This assimilated group of atoms is termed as Karma. Its effect is visible in the multifarious conditions of the mundane soul. As a red-hot iron-ball, when dipped into water, assimilates its particles, or as a magnet draws iron filings towards itself due to magnetic force, in the like manner the soul, propelled by its psychic experiences of infatuation, anger, pride, deceit and avarice, attracts karmic molecules and becomes polluted by the karmas. The psychic experience is the instrumental cause of this transformation of matter into a karma, as the clouds are instrumental in the change of sun's rays into a rainbow.

When karmas come in contact with the soul fusion occurs, whereby a new condition springs up, which is endowed with marvellous potentialities and is more powerful than infinite atom bombs. One can easily imagine the power of karmas, which have covered infinite knowledge, infinite power, infinite bliss of the soul and have made a beggar of this very Jiva, who is no less than a Paramatman by its intrinsic nature. Psychic experiences of anger etc, cause the fusion of karmas and these karmas again produce feelings of attachment, aversion or anger etc, thus the chain of karmic bondage continues *ad infinitum*.

This karma soul association is without a beginning. There has been no period, when the fusion of karmas took place in a pure soul. It is beyond comprehension, that a perfect, pure, blissful omniscient and powerful soul will ever enter into the folly of embracing the karmas and thus dig its own grave by inviting innumerable and indescribable sufferings.

When the husk of a paddy is removed from it, the rice loses its power of sprouting, likewise when the husk of karmic molecules is removed from the mundane soul, the resulting perfect Jiva cannot be imprisoned by the re-germination of karmas. The nature of a soul, entangled in the cob web of transmigration, can be understood easily, when we divert our attention to the impure gold found in a mine. The association of filth with golden ore is without beginning but when the foreign matter is burnt by fire and various chemicals the resulting pure gold glitters, in the like manner the fire of right belief, right knowledge and right conduct destroys the karmic bondage in no time. If the fire of self-absorption is intense the work of destruction can be achieved within a span of 48 minutes. This destruction does not mean complete annihilation of the atoms, but it denotes the dissociation of karmic molecules from the soul.

While explaining the nature of karmas the Jain saints have cited the instance of meals transforming into blood, flesh, bone, muscle, marrow etc. in accordance with the digestive power. Similarly the karmas assume innumerable forms in conformity with the psychic experiences of the Jiva. These karmic molecules are superfine. They are not visible even with the aid of physical instruments. Even after the destruction of this physical gross body the karmas are not destroyed. The karmic body and the electric body (Tanjas Sharira) always control and regulate the activities of the Jiva. Had they left the Jiva for a moment, no power in the world could have recaptured the soul in the clutches of karmas and debarred the Divine Being from enjoying transcendental bliss of liberation.

The bondage of Jiva and Karma has been classified into 'Prakriti', 'Sthiti', 'Anubhaga' and 'Pradeha' bandha. The first is the prakriti bandha deals with the nature of the karmic bondage. e.g. the nature of opium is intoxication. Similarly the Gyanavarniya' karma obstructs the knowledge the Darshanavarniya obstructs darshana (form of consciousness which precedes knowledge), 'Vedaniya' enables the soul to have sensations of pleasure or pain through senses, 'Mohaniya', the ring leader of the karmas, causes delusion and perverted vision of the self and nonself, 'Ayuh' determines the length

life in a particular body, 'Nama' is responsible for physical form, complexion, constitution etc, 'Gotra' decides the birth in high or low family and the last one, 'Antaraya', acts as an impediment in the acquisition and enjoyment of things, possession of strength etc. These eightfold karmas are further sub-divided into 148 varieties. The present volume deals with the first Prakriti Bandha from several stand-points. The second one i.e., 'Prakriti Bandha' determines duration of the bondage, the third, 'Anubhaga Bandha' deals with the potentiality of various karmas, the fourth, 'Karmadesha Bandha' causes the division of karmic molecules into several varieties in accordance with the vibrations of the soul.

Modern worldly-wise man perhaps may think that this work has no bearing upon life and it is a mere display of intellectual exercises.

An aspirant for liberation will immediately differ from this viewpoint. In Mahabandha he will find wonderful remedy for warding off the feelings of attachment or aversion and thereby uplift the soul to the sphere of equanimous contemplation, which ultimately leads to the final beatitude. One who devotes himself to the study of this work is so deeply engrossed therein, that he forgets for a while the world of attachment and aversion. His Holiness the Digamber Jain Acharya Chhatra Chakravarti Sri Shantisagar Maharaj had once remarked, "This Shashtra must be thoroughly studied by those who are tired of transmigration and who long for liberation. Proper knowledge of Bandha-Tattva is essential before proceeding towards the ultimate goal of purity and perfection."

In the end, we deem it our duty to express our sincere gratefulness to Sri D. Manjaya Hegde, B.A., M.L.C., Dharmasthala, His Holiness Bhattarak Sriman Charukirti Panditacharya Swami, Moodbidree and the trustees of the Jain Siddhanta Temple, Moodbidree (South Kanara) for the kind permission to take a copy from the original text reserved in the Siddhanta Mandir.

We are also thankful to Sri Shanti Prasad Jain, B.Sc., Dalmianagar, founder of the BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI, through whose munificence this volume is coming to the hands of the public.

Seems (C.P.),  
6th of January, 1947 } }

Sumeruchandra Diwaker

“त वत्सु मुत्तव्व, ज पडि उपज्जए कसायग्गो ।  
त वत्सु सल्लियजो, जत्थुवसम्मो कसायाण ॥”

—भगवती आराधना गा० २६०

ॐ

जिनके कारण कषाय अग्नि बढ़ वे सभी पदार्थ हय हैं । जिनमें कषायोंका उपशमन हो वे सभी पदार्थ उपादय हैं ।

ॐ

“वधाण च सहाव, वियाणित्थो अण्णो सहाव च ।  
वधेसु जो विरज्जदि, सो कम्मविमोस्सएण कुण्णई ॥

—समयमार गा २९३

ॐ

आत्मा और बंधका स्वभाव जानकर जो बिरकी बंधसे निरक होता है वह कर्मोंका क्षय करता है ।

# प्राक्कथन



जैन ससारमे धवल, जयधवल, महाधवल ( महावन्ध )—इन सिद्धान्तप्रर्थोका अत्यधिक सम्मान और श्रद्धापूर्वक नाम स्मरण किया जाता है। ये परम पूज्य शास्त्र मूडविद्री, दक्षिण कर्णाटकके सिद्धान्त मन्दिरके शास्त्रभण्डारको समलकृत करते हैं। इन प्रथरत्नोंके प्रभाववश सपूर्ण भारतके जैन वधु मूडविद्रीको विशेष पूज्य तीर्थस्थल सदृश समझ वहाकी वदनाको अपना विशिष्ट सौभाग्य मानते थे, और वहा जाकर इन शास्त्रोंके दर्शनमात्रसे अपनेको कृतार्थ मानते थे। भगवद्भक्त जिस ममत्व, श्रद्धा तथा प्रेमभावसे पानापुरी, सन्मदेशिगर, राजगिरि आदि तीर्थस्थलों की वदना करते हैं, प्राय उसी प्रकारकी समुज्ज्वल भावनाओं सहित श्रुतभक्त श्रावक तथा श्राविकाएँ उत्तर भारतसे जाकर दक्षिण भारतके परिचम कोणमे मगलूर बन्दरके पार्श्ववर्ती मूडविद्रीकी वन्दना करते थे। जिन व्यक्तियोंको सिद्धान्त प्रर्थोके कारण पूज्य मानी गई मूडविद्रीको जानेका सौभाग्य नहीं मिला, वे उक्त स्थलकी परोक्षवन्दना करते हुए उस सुअवसरकी वाट जोहा करते थे, जज वे वहा पहुच कर अपने चक्षुओंको सफल कर सकेंगे।

कहते हैं—ये सिद्धान्तशास्त्र पहले जैनद्री—श्रमणवेलगोलोके महनीय प्रथागारको अलकृत करते थे। परचात् ये प्रथ मूडविद्री पहुचे। इन प्रर्थोकी प्रतिलिपि भारतनर्प भरमे अन्यत्र कहीं भी नहीं थी। इन शास्त्रोंका प्रमेय क्या है, यह किसीको भी पता नहीं था। बहुत लोग तो यह सोचते थे कि इन शास्त्रोंमें आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार सदृश चमत्कारप्रद एव भौतिक आनन्दवर्धक सामग्री निर्माणका वर्णन किया गया होगा। हवाई जहाज, रेडियो, टेलीफोन, ग्रामोफोन, सोना घनाना आदि सज कुछ इन शास्त्रोंमें होंगे। इस काल्पनिक महत्ताके कारण साधारण व्यक्ति भी श्रुतदेवताकी वदनाको सोल्लण्ट सन्नद्ध रहते थे।

ये प्रथ अपनी महत्ता, अपूर्वता तथा विशेष पूज्यताके कारण बडे आदरके साथ निधि अथवा रत्नराशिके समान सावधानी पूर्वक सुरक्षित रखे जाते थे। जिस प्रकार विशेष भेंट लेकर भक्त गुरुके समीप जाता है, उसी प्रकार वन्दक व्यक्ति भी यथाशक्ति उचित द्रव्य-अर्पण करके प्रथराजकी वन्दना करता था। शास्त्रभण्डार खुलानेके लिए द्रव्यार्पण आनश्यक था। सिद्धान्त मंदिर मूडविद्रीके व्यवस्थापक लोग ही शास्त्रोंपर अपना स्वत्व समझते थे, उनकी ही कृपाके फल स्वरूप दर्शन हुआ करते थे। शास्त्रोंकी एकमात्र प्रति पुरानी ( हडेगलड ) कनडी लिपिमे थी, अत उस लिपिसे सुपरिचित तथा प्राकृत भाषाका परिज्ञाता हुए निना ग्रन्थका यथार्थ रस लेने तथा देने-वाला कोई भी समर्थ व्यक्ति ज्ञात न था। ग्रन्थको उठाकर दर्शन करा देना और चोरोंसे या वाधकोंसे शास्त्रोंको बचाना इतना ही कार्य व्यवस्थापक करते थे। इसका फल यह हुआ, कि अत्यन्त जीर्ण तथा शिथिल ताड़पत्र पर लिखे ग्रन्थोंकी पुन प्रतिलिपि कराकर सुरक्षाकी ओर ध्यान न गया, इससे महाधवल-महावन्धके लगभग तीन, चार हजार श्लोक नष्ट हो गए, किन्तु इसका पता किसीको भी नहीं हुआ।



जैनमुलभूषण स्व० सेठ भाणिकचंद जी जे० पी० बर्बईसे सन् १८८३ मे वदनाथ मूडवित्री पहुँच। वे एक विचारक श्रीमान् थे। शास्त्रात् दर्शन करने समय उनकी भावना हुई, कि प्रयत्नो किसी विद्वान्से पढवाकर सुनना चाहिए, किन्तु योग्य अभ्यासीके अभावमें उस समय उनकी कामना पूर्ण न हो पाई। उनके चित्तमे यह बात उत्कीर्णसी हो गई, कि किसी भी तरह इन शास्त्रों का उद्धार करके जगतके समक्ष यह निधि अनुरय आना चाहिये। तीर्थयात्रासे लौटते हुए उक्त सेठजीने अपने हृदयकी सारी बातें अपने अत्यन्त स्नेही सेठ हीराचन्द्र नेमचंदजी सोलापुर वालोंको सुनाई। सेठ हीराचंदजीके अतः कारणमे दक्षिणयात्राकी वलनती इच्छा हुई, अतः आगामी वर्ष वे मूडवित्रीके लिए रवाना हो गए। ब्रह्मसूरि शास्त्री नामक प्रकाण्ड जैन विद्वान् जैनग्रन्थोंमे रहते थे। वे इन शास्त्रोंको वाचकर समझा सकते थे। अतः सेठ हीराचन्द्रजीने उक्त शास्त्रीजीको जैनग्रन्थोंसे अपने साथ रख लिया था। जन प्रथोमा मंगलाचरण पढकर उनका अर्थ सुनाया गया, तत्र श्रोतुमडलीको इतना आनन्द मिला, जिसका वाणीके द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता।

प्रयाससे लौटने पर सेठ हीराचन्द्रजीके चित्तमे प्रथोकी प्रतिलिपि करानेकी इच्छा हुई, किन्तु लौकिक कार्योंमे सलग्नताके कारण बहुत समय व्यतीत हो गया और मनकी बात कृतिका रूप धारण न कर सकी। इस बीचमे सेठ नेमीचंदजी सोनी अजमेर प० गोपालदासजी बरैयाको साथ लेकर तीर्थयात्रार्थ निकले और मूडवित्री पहुँचे। उनमे प्रभाव तथा सत्प्रयत्नसे स्थानीय व्यवस्थापक पंचमडलीने प० ब्रह्मसूरि शास्त्रीके द्वारा देवनागरी लिपिमे प्रतिलिपि करानेकी शोचति प्रदान की। अत्यन्त मन्गलितसे कार्य प्रारम्भ किया गया और थोड़ी नकल मान हो पाई कि अंतरायने विघ्न उत्पन्न कर दिया।

सेठ हीराचन्द्रजीके प्रयत्नसे प्रतिलिपि निमित्त लगभग चौदह हजार रूपयोंकी समान द्वारा सहायताकी व्यवस्था हुई, अतः ब्रह्मसूरि शास्त्रीके साथ गजपति उपाध्याय महाशय मिरज निरासीके द्वारा पूर्वोक्त स्वर्गित फाय पुनः प्राप्त हुआ। कुछ काल व्यतीत होने पर दुर्भाग्यसे ब्रह्मसूरि शास्त्रीका स्वर्गवास हो गया। अतः प० गजपतिजी ही कार्य करते रहे। धवला और जयधमला टीकाओंकी नकल लगभग १६ वर्षोंमे पूर्ण हो पाई। इस बीचमे श्री देवराज सेठ, शाठभा उपाध्याय और ब्रह्मराज इन्द्रने कनड़ी भाषामे एक प्रतिलिपि कर ली। इधर गजपति उपाध्याय मूडवित्रीके सिद्धान्तमन्दिरमे निराजमान करनेके लिए देवनागरी लिपिमे प्रतिलिपि करते थे, उधर मुम रूपसे अपनी विदुषी धर्मपत्नी लक्ष्मीमाईने सहयोगसे कनड़ीमे भी एक प्रतिलिपि तैयार कर ली, जिसका किसीको रहस्य अज्ञात न था। यह प्रति उपाध्यायजीने विशेष पुरस्कार लेकर स्वर्गीय लाला जम्भूप्रसादजी रईस सहारनपुरको प्रदान की। उनमे प० विजयचन्द्रय्या और प० सीताराम शास्त्रीने द्वारा उक्त कनड़ी प्रतिलिपिसे देवनागरीमे जो प्रतिलिपि लिखवाई उसमे सात वर्षोंका समय व्यतीत हुआ। प० विजयचन्द्रय्यासे कनड़ी प्रति बचनकर सीताराम शास्त्री नकल करते थे। शीघ्र कार्य निमित्त सीतारामजी साधारण कामन पर पहले लिख लेते थे, पीछे लाला जम्भूप्रसादजीने भण्डारके लिए नकल तैयार करते थे। सीताराम शास्त्रीने अपने पासके साधारण कामन पर लिखी गई नकल परसे अथ प्रतिलिपि की। उमके आधार पर अन्य प्रतिया लिखाने आरा, सागर, सिनवी, दिल्ली, बर्बई, बारजा, इन्दौर, व्यासर, अजमेर, शालरापाटन

आदि स्थानोंमें पहुँचाई गई। इससे जयधवल और धवल शास्त्रोंके दर्शन तथा स्वाध्यायका सौभाग्य अनेक व्यक्तियोंको प्राप्त होने लगा।

मूडविद्वी वालोंको अन्वकारमें रखकर जिस ढंगसे पूर्वोक्त दो सिद्धान्त शास्त्र मूडविद्वी-से बाहर गए और उनका प्रचार किया गया, उससे मूडविद्वीके पंचोंके हृदयको बड़ा आघात पहुँचा। मूडविद्वीकी विभूतिके अन्वयत्र चले जानेसे मूडविद्वीके प्रति आर्कण कम हो जायगा, यह बात भी उनके चिन्तमें अवश्य रही होगी, इस कारण अब उनने महाधवल-महाधन्वकी प्रतिलिपिके विषयमें पूर्ण सतर्कतासे कार्य लिया। दूधका जला छाछको भी फूँक कर पीता है, इस कष्टावतके अनुसार उनने महाधन्वको शास्त्र भंडारमें इतना अधिक सुरक्षित कर दिया, कि भेंट देनेवाले व्यक्ति भी महाधन्वके स्थानमें अनेक बार अन्य शास्त्रका दर्शन कर अपने मनको काल्पनिक सतोप प्रदान करते थे कि हमने भी महाधवल जी आदिकी वदना कर ली। अब महाधन्वका यथार्थ दर्शन जन कठिन हो गया तब प्रतिलिपिकी उपलब्धिकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

सेठ हीराचदजी के सत्प्रयत्नसे महाधन्वकी देवनागरी प्रतिलिपिका कार्य ५० लोकनाथजी शास्त्री मूडविद्वीके ग्रन्थागारके लिए करते जाते थे। यह कार्य सन् १९१८ से १९२२ पर्यन्त चला। इसी बीचमें ५० नेमिराजजीने इसकी कनडी प्रतिलिपि भी बना ली। तीनों सिद्धान्त ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करानेमें लगभग बीस हजार रुपया खर्च हुए और छत्तीस वर्षका लम्बा समय लगा।

तीनों ग्रन्थोंकी देवनागरी तथा कनडी प्रतिलिपिके हो जानेसे अब सुरक्षण सम्बन्धी चिन्ता दूर हो गई, केवल एक ही जटिल समस्या श्रुतभक्त समाजके समक्ष सुलझाने को थी, कि महाधन्वको बचन मुक्त करके किस प्रकार उस ज्ञाननिधिके द्वारा जगत्का कल्याण किया जाय? इस क्षेत्रमें महान् प्रयत्नशील सेठ माणिकचदजी बबई तथा सेठ हीराचदजी सोलापुर सफल मनोरथ होनेके पूर्व ही स्वर्गीय निधि बन गए।

दिगम्बर जैन महासभाने इस विषयमें एक प्रस्ताव पास करके प्रयत्न किया, किंतु वह अरुण्यरोदन रहा। महासभाका एक वार्षिक उत्सव सन् १९३६ में इन्दौरमें रावराजा दानवीर श्रीमन्त सर सेठ हुन्मचदजीकी जुगलीके अवसर पर हुआ। वहाँ महाधन्वके विषयमें हमने प्रस्ताव पेश करनेका प्रयत्न किया, तो महासभाके अनेक अनुभवी व्यक्तियोंने इस बातका विरोध किया, कि यह अनावश्यक है, वह ग्रन्थ तो मूडविद्वीकी समाज देनेको त्रिस्तुल तैयार नहीं है। विशेष श्रम करनेपर सौभाग्यसे पुनः प्रस्ताव पास हुआ और उसमें प्राण प्रतिष्ठानिमित्त एक उपसमितिका निर्माण हुआ। उसके सयोजक जिनवाणीभूषण धर्मवीर स्व० सेठ रावजी सरदाराम जी दोशी बनाए गए। लेखक भी उसका अन्यतम सदस्य था। सेठ रावजी भाईने दो बार मूडविद्वीका लम्बा प्रवास करके एव हजारों रुपया भेंट करनेका अभिवचन देकर भी सफलता निमित्त प्रयास किया, किंतु दुर्भाग्यवश मनोरथ पूर्ण न हो पाया। कुछ ऐसी बातें उत्पन्न हो गईं, जिनने मधुर सबधोंमें भी शैथिल्य उत्पन्न कर दिया। महाधन्व उपसमितिके समक्ष यहाँ तक विचार आने लगा, कि जिनवाणी माताकी रक्षा निमित्त व्यक्तिगत अनुनय विनयका मार्ग छोड़कर अब न्यायालयका आश्रय लेना चाहिए। किन्हीं व्यक्तियोंके विचित्र ग्रन्थ-भोहकी पूर्ति निमित्त निम्नकी अनुपमनिधिकी अब अधिक समय तक बचनमें नहीं रखा जा सकता।

याचालयने द्वार सटलानेके विचार पर हमारी आत्माने सहनति नहीं दी। सहमा हृदयमें यह भाव उदित हुए, कि अदालतने द्वारपर मूडविद्वीवार्लोको घसीट कर फट दना योग्य नहीं है कारण इनके ही पूर्वजोंने प्रयत्न और पुरुषार्थने प्रसात्से प्रयाज अथवा विद्यमान है, और अन भी वे यथासति उनकी सेवा कर हा रहे हैं। उनकी श्रुत-भक्ति तथा सेवाके प्रति कृतज्ञतायश हमारा मस्तक नम्र हो जाता है। यदि हम पुन उनसे सनेह अनुरोध करेगे, और अपनी नात समझावेंगे, तो वे लोग अवश्य हमारी हृदयकी ध्वनिसे ध्याते सुनेगे। न मालूम क्यों, अन्य दार दार यह कहता था, कि प्रेम-पूर्ण प्रयत्नके परमे ही सफलता है ?

कुछ समयने परचात् पुरुषार्थी धर्मवीर सेठ रावजी भाईका स्वर्गवास हो गया। इससे आत्मा बहुत व्यथित हुई। हमन सोचा-भगवन् ! अन यद् महाबधकी प्राप्तिनी कठिन तथा जटिल समस्या बनतक और कैसे सुलभती है।

सुदैवसे प्रथराजकी प्रतिलिपि प्राप्तिसे मार्गकी याथार्थता अभाव होना तथा अनुकूल परिस्थितियोंका निर्माण अब आरम्भ हो जाता है। इस सवधकी चर्चा रुचिपर होगी, ऐसी आशा है।

सन् १९३९ की बात है। श्रमणपेलगोलाम भगवान् बाहुवलिन्यामीकी गुणनमोहिनी, विद्वान्तिशाधिनी दिव्य भूर्तिके महाभियेकनी पुण्यपेला आइ। किन्तु मैसूर प्रान्तमें स्व-सेठ एम० एल० वर्धमानैय्या सदृश कायकुशल, प्रभावशाली, उदार तथा समर्थ नेताके अभाव होनेसे आदरणीय भट्टारक श्री चारुनीति पढिताचार्य (पूर्वमें जो प्र० नर्मिसागर जी वर्णिके रूपमें विख्यात थे) महाराज न श्रमणपेलगोला तथा उनसे सहयोगी महानुभाव, अन्तरायोंकी अपरिमित राशि देव सचिन्त थे, और गोष्मदेश्वर स्वामी से पुन पुन प्रार्थना करते थे-‘दयाधिदेव, आपके चरणोंके प्रसादसे यह मंगलनाय सम्बन्ध प्रार सपत्र हो, कोई भी बिचन नहीं आने पाये।’

उस समय जैन गण्टके सपादक तथा अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन राजनैतिक स्वतंत्रक समितिने मन्त्रीके रूपमें हमने यथाशक्ति महाभियेक सफलता निमित्त पत्र द्वारा आदोलन किया, निन्कारियों का तीव्र प्रतिवात् किया तथा मैसूर राज्यके दीवान सा० आदि उच्च अधि कारियोंसे पत्र व्यवहार द्वारा अनुरोध किया। उस समय हमारे लेखों आदिका बनड़ी अनुवाद मैसूर राज्यके आस्थान महाविद्वान् प० शानिरान जी शास्त्रीके बनड़ी पत्र विनेनाभ्युदय में छपता था, इन कारण कर्गटक प्रान्तीय जैन रघुओंमें हमारा आन्तरिक स्नेह सम्बन्ध सहज ही स्थापित हो गया। यही स्नेह आगे सफलतामें प्रमुख हेतु बना।

महाभियेक-महोत्सवना पुण्य अन्तर आया। लाखों वदक विवरवदनीय विभूतिकी वदना द्वारा जीवन सफल करनेने लिए भारतवर्षके कोने कोनेसे आण। इस महाभियेकके अपूर्व समारोहको कौन भूल सकता है। वडे सौभाग्यसे हम भी अपने पिताजी आदिसे साथ वहा पहुंचे। भट्टारकनी से मिलने गए, तब उनके समीप उस प्रान्तके प्रमुख जैन वधु बैठे हुए थे। वहा स्वामी जीने (भट्टारक महाराजका वडा प्रभाव तथा सम्मान है। मैसूर महाराज भी उनकी वड़ी प्रतिष्ठा करते हैं, उनको वहा स्वामी जी कहते हैं।) हमार प्रति प्रगाढ प्रेम प्रगट किया। उनने वडे वडे गणों द्वारा लोगोंको हमारा परिचय दते हुए इस महाभियेककी सपन्न करनेना विशेष श्रेय हमें

प्रदान किया। हम चकित हो गए। महाराजसे कहा—“हमने क्या कार्य किया, जिसका आप इतना उल्लेख कर रहे हैं। हमारा इतना पुण्य नहीं है। गोम्मटेश्वर स्वामीके चरणोंके प्रति भक्तिमग्न कुछ सेवा वन गई, उसे अधिक मूल्यवान् धताना आपकी ही महत्ता है।” स्वामी जी ने अपनी कर्णाटकी ध्वनि ( tone ) में कहा, “क्या आपकी स्तुति करके हमें कुछ प्राप्त करना है, जो हम यहा अतिशयोक्ति पूर्ण वात कहते।” हमें चुप हो जाना पडा।

चलते समय स्वामीजी ने हृत्पत्रसे मंगल आशीर्वाद दिया और ‘फलेन फलमालभेत’— ( इन फलों के द्वारा तुम्हें महाफल मिले ) कहते हुए कुछ पक्व फल हमें दिए। वह पर्वका दिन था। हमारे हाथोंमें फलोंको देकर एक शास्त्रीजीने व्यग्रमें कहा—क्या अग्रजोंकी शिक्षाने आपकी प्रवृत्ति बदल तो नहीं दी? हमने भट्टारक जीमें फल प्राप्तिकी वात सुनाई, तो वे बोल उठे— “आप रघु मिले, और लोग तो भट्टारक जीको फल चढाते हैं, भेंट देते हैं और भट्टारक जी आपको देते हैं।” हँसते हुए हम अपने स्थान पर आ गए।

महाभिषेक उडे तैम्र और अपूर्व आनन्दपूर्वक सपन्न हुआ। अभिषेकके फलशोंकी चोलीसे प्राप्त रत्न मैसूर स्टेटके अधिकारियोंके पास जमा हो गई। किन्तु बहुतसे धर्मबन्धु अपने धनको अपने ही अधिकारमें रखनेकी वात सोचते थे। अर्थव्यवस्था निमित्त सर सेठ हुजूमचद्र जीके स्थानपर एक घँठक हुई। उममें कर्णाटक प्रान्तके प्रभावशाली व्यक्ति श्री टी० मजैय्या हेगडे वी० ए० धर्मस्थल तथा उस प्रान्तके विशेष श्रीमत् श्री रघुचन्द्र वल्लाल मेगलोर भी शामिल हुए थे। वह मीटिंग उक्त दोनों महानुभावोंके साथ हमारे स्निग्ध सम्बन्धोंके स्थापन तथा सर्वधर्मोंके कारण पडी। यहा यह लिख देना उचित होगा कि ‘महानन्ध’के व्यवस्थापकोंमें उन लोगोंका प्रमुख स्थान था, इसलिए उनके साथका परिचय तथा मैत्री सम्बन्ध भावी सफलताके मार्गके लिए अनुकूलताको सूचित करते थे।

महाभिषेकमहोत्सव पूर्ण होनेके पश्चात् मूडवित्री कार्गल आदिकी वन्दना निमित्त हम मैगलोर पहुचे। वहा श्री वल्लाल महाशयसे अकस्मात् भेंट हो गई। प्रसंगमग्न हमने उनसे कहा— “पहले तो वल्लाल वशने दक्षिण भारतमें राज्य किया था। आपको भी उस वशकी प्रतिष्ठाके अनुरूप अपूर्व कार्य करना चाहिए। देखिये, आपके यहा मूडवित्रीके शास्त्रभंडारमें ससारकी अपूर्व विभूति महानन्ध शास्त्र है। इसका उद्धार कार्य करनेसे विन्ध आपका आभार मानेगा।” इसके अनन्तर कुछ और धार्मिक बातें हुई। शायद वे उन्हें पसन्द आईं। उनने हमसे कहा— “हम आपका मूडवित्रीमें भाषण कराना चाहते हैं, क्या आप वोलेंगे?” हमने विनोदपूर्वक कहा— “जब भी आप भाषणके लिए कहेंगे, तब ही हम बोलनेको तैयार हैं, किन्तु इसके बदलेमें आपको महानन्ध शास्त्र देना होगा।” वे हसने लगे।

हम मूडवित्री पहुचे। वहा जैन नरेशोंके औदार्य तथा भक्तिवश निर्माण कराए गए त्रिलोकचूडामणि चैत्यालय ( चद्रनाथवसति ) की भव्यता तथा विशालताको देख बडा आनन्द आया। उस मन्दिरमें अफ्रिकाके कारीगरोंने आकर प्राचीन समयमें शिल्पका कार्य किया था। हमें बताया गया कि पहले जैनियोंकी वहा बहुत समृद्धिपूर्ण स्थिति थी। बडे बडे जहाजोंके वे अधिपति थे। उनसे वे विदेश जाकर रत्नोंका व्यापार करते थे और श्रेष्ठ वस्तु जिनशासनके उपयोगमें

लाने थे। इस प्रकार वहाकी अमूल्य अपूर्व मूर्तिया घनाई गई थी। पुरातन जैन वैभवाकी पचा सुनसुन कर इत्य हर्षित हो रहा था, उस समय बयोद्व श्री नागराज श्रेष्ठीसे भेंट हुई। उनसे बडा स्नेह व्यक्त किया। हमने अत्यन्त विनीत भावसे कहा—“बडी दया हो, यदि इस वारके महाभिषेककी स्मृतिमे आपलो महाग्रन्थकी प्रतिलिपि करनेकी अनुज्ञा दे दें। आपके पूर्वजोंका ही पुण्य था, जो दस खराशिसे भी अधिक मूल्यवान् ग्रन्थ रत्ननी अथ तक रक्षा हुई।” हमारी बात सुनकर उनसे कहा—“प्रयत्न करो, आपको ग्रन्थ मिल जायगा।” हमने कहा, “आपके आशीर्वाद और कृपा द्वारा ही यह कठिन कार्य सम्भव हो सकता है।” उनसे हमें उत्साहित करते हुए कहा—“अगर आप मजैव्या तथा रघुचन्द्र वल्लालको यहा ला सकें, तो सरलतासे काम बन जायगा। उन लोगोंका यहाही समाजपर विशेष प्रभाव है। हेगडे जीका प्रभाव तो असाधारण है।” अतः दूसरे दिन सवेरे हमने अपने छोटे भाई चिरजीव सुशीलकुमार दिवाकर वी० काम० को तथा स्व० प्र० फतेहचन्द जी परवारभूषण नागपुरवालोंको साथ लेकर धर्मस्थल जा श्री मजैव्या हेगडेसे मूढनित्री चन्नेना अनुरोध किया। वडे आग्रह करने पर उनसे हमारा निवेदन स्वीकार किया। धर्मस्थलमे हेगडे जीके वैभवा, प्रभाव तथा पुण्यको देखकर आनन्द हुआ।

धर्मस्थलसे वापिस होते समय हम वेणुकी बाहुजलि स्वामीकी विशाल तथा उच्च कलापूर्ण मूर्तिके दर्शनार्थ ठहरे, तो वहा सौभाग्यसे सर मेठ हुकमचन्द्र जीसे भेंट हो गई। हमने उन्हें मिहान्नशास्त्र सम्बन्धी चर्चा सुना सध्याके समय मूढनित्री पट्टचनेका अनुरोध किया और अपने स्थानपर वापिस आए। पश्चात् हम वल्लाल महाशयसे मिलने मैंगलोर पहुचे। उनसे पूछा कैसे आए ? तब हमने विनोद पूर्वक कहा—“उम दिन आपने कहा था कि मूढनित्रीमे हम आपका व्याख्यान कराना चाहते हैं। आप अब तब नहीं आए। हमें अपने दश वापिस जल्दी जाना है, इससे आपसे लेने आए हैं, कि आज सध्याको हमारा व्याख्यान सुन लें।” वे मुस्करा पडे। अनन्तर हमने सन कमा उनको सुनाकर शीघ्र चलनेकी प्रेरणा की। वे सहर्ष तैयार हो गए। उनकी मोटरमे हम मूढनित्रीके लिए रवाना हुए। मार्गमे हमने सब विषय उनके समक्ष स्पष्ट किया, तो उन्हें अपनी स्वीकृति प्रदान करनेमे विलम्ब न लगा।

मूढनित्री वापिस आनेपर हमें श्री हेगडेजी और सर सेठ हुकमचन्द्रजी मिल गए। रात्रिको पूर्वोक्त त्रिलोकचूडामणि चैत्यालय—चन्द्रनाथसन्निधि प्राणमे सर सेठ हुकमचन्द्रजीकी अध्यक्षतामें एक सभा बुलाई गई। अनेक प्रतिष्ठित महातुभावा पधार थे। मूढनित्री मठके अधिपति भट्टारकनी चाकरीति-गण्डिताचाय स्वामी भी उस समाम आए थे। हमने महाग्रन्थ-सम्बन्धी चर्चा प्रारम्भ की, उस समय ज्ञात हुआ कि मूढनित्री सिद्धांत शास्त्रमदिरने दूस्टी तथा पच महातुभावोंके चिन्तने इस बातकी गहरी टेस लगी, कि एत जैनपरमे यह वृत्तत प्रभावित किया गया था, कि महाग्रन्थ शास्त्र न देनेमे मूढनित्रीवालोंका व्यक्तित्व स्तम्भ वारण है। वे शास्त्र विक्रय करके (traffic in literature) लाभ उठाना चाहते हैं। दस सत्रधमे धर्मनिर्धारण किया गया कि चिन लोगोंके पूर्वजोंने त्रिलोकचूडामणि चैत्यालय जैसा विशाल जिनमदिर बनवाया, धर्मसेवाने उच्चल काय निस्वार्थ भावसे सपन किए, उनके विषयमे मिथ्या प्रचार करना ठीक नहीं है।

इससे पश्चात् हमने अपने भाषणमे मूढनित्रीके प्राचीन पुरुषों एत वर्तमान धर्मपरायण समाजके प्रति आत्मीय अनुराग तथा आदरका भाव व्यक्त करते हुए कहा—“जब लोग धार्मिक

अत्याचार करते थे, उम सकटके युगमें जिनने शास्त्रोंको छुपाकर श्रुतकी रक्षा की, उनके प्रति हम हादिक श्रद्धाजलि समर्पित करते हैं। किन्तु जगत्में बड़ा परिवर्तन हो गया है। लोग ज्ञानामृतके पिपासु हैं। भूतबलि स्वामीने जगत्के कल्याण निमित्त महान् कष्ट उठाकर इतना बड़ा और अत्यंत गभीर शास्त्र बनाया। उसके प्रकाशमें आनेपर जगत्में प्रथकर्ताकी कीर्ति व्याप्त होगी, सुमुखगण अपना हित सपन्न करेंगे। पूज्य पुरुषोंकी निर्मल कीर्तिका सरक्षण करना हमारा कर्तव्य है। सोमदेवसूरिने बताया है—‘यशोवधः प्राणिवघात् गरीयान्’—प्राणिवघातकी अपेक्षा यशका घात करना गुह्यतर दोष है, कारण यशोवध द्वारा कल्पान्तस्थायी यशशरीरका नाश होता है। भूतबलि स्वामीके साहित्यको छुपानेसे उनके प्राणघातसे भी बढकर दोष प्राप्त होता है। भूतबलि स्वामीने त्रिष्वकल्याणके लिए यह रचना की थी। इस अमूल्य कृतिका क्या उनने कुछ मूल्य रखा था ? हमारी भक्तिका अर्थ है श्रुतका सरक्षण तथा सुप्रचार। उमें बधनमें रत्न दीमकादि द्वारा नष्ट होते देखना कभी भी श्रुतभक्ति नहीं कही जा सकती। इतनेमें किसीने कहा हमारे यहाँ लोग गरीब हैं, उनकी सहायतार्थ द्रव्य आवश्यक है। इसे सुनते ही हमने कहा—“इन वाक्योंको सुनकर मुझे बहुत दु ख हुआ कि हमारे दक्षिणके कोई कोई बन्धु अपनेको गरीब समझ रहे हैं। जिनके पास भगवान् गोम्मटेश्वर जैसी अनुपम प्रभावशाली मूर्ति है वे क्या गरीब हैं ? जिनके पास बहुमूल्य तथा अपूर्व जिनत्रिम्व विद्यमान हैं वे क्या गरीब हैं ? जिनके पास धवल महाधवल सदृश श्रेष्ठ प्रथराज हैं, वे भी क्या गरीब हैं ? यदि इसे ही गरीबी कहा जाता है, तो हम ऐसी गरीबीका अभिनयन करते हैं, अभिवदन करते हैं। लीजिए भौतिक ससारकी सृष्टिको, और हमें यह गरीबी दे दीजिए।” हमने यह भी कहा, “बताइये, इन ग्रन्थोंका आपने क्या मूल्य रखा है ? रुपयोंका मूल्य तो जाने दीजिए, हम तो जीवन-निधि तक अर्पणकर इस आगम निधिको लेने आए हैं। बताइये, इससे अधिक और क्या मूल्य आपको चाहिए ? हम जानते हैं, महाबन्ध सदृश श्रुतकी रक्षा निमित्त हमारे सदृश सैकड़ों व्यक्तियोंका जीवन नगण्य है। लोग राष्ट्रप्रेमके कारण जीवन-उत्सर्ग करते हैं, तो सकल सत्तापहारी श्रुत रक्षार्थ जीवन अर्पण करनेमें क्या भीति है ? कहिए, प्रथके लिए आप और क्या मूल्य चाहते हैं ?” इस पर श्री मजैय्या हेगडेने द्रवित होकर कहा ‘You have given us more than we wanted—जो कुछ हम चाहते थे, उससे अधिक मूल्य आपने दे दिया। श्री हेगडेजीकी अनुकूलता होने पर भट्टारक महाराज, श्री बल्लाल आदि सबने स्वीकृति प्रदान कर दी। हमने सोचा, यह महान् कार्य है। जो स्थिर नहीं रहता। परिणामोंमें परिवर्तनका पदार्पण होते विलम्ब नहीं लगता, अत लिखित स्वीकृति सर्व आशकाओंको दूर कर देगी। हमने सत्र समाजसे विनय की—“आज आप लोगोंने महाधवलजीकी विना मूल्य प्रतिलिपि प्रदान करनेकी पवित्र स्वीकृति दी है। समाचार पत्रोंमें प्रामाणिकता पूर्वक समाचार प्रकाशित करनेके लिए आप लोगोंकी लिखित स्वीकृति महत्त्वपूर्ण होगी, और लोगोंको तनिक भी सदेह नहीं रहेगा।” सत्रका हृदय पवित्र था। स्वीकृति अत धरणसे दी गई थी, अत सहर्ष प्रमुख पुरुषोंने शीघ्र हस्ताक्षर करके स्वीकृतिपत्रक हमें दिया, उसे पा हमने अपनेको कृतार्थ समझा।

मूडबिंदीके पक्षोंकी महान् उदारताको घोषित करनेवाला समाचार जब जैन समाजने सुना, तत्र चारों ओर सघने हर्ष मनाया और मूडबिंदीकी समाजके कार्यकी प्रशंसा की। किन्तु

एक समाचार पत्रम कुछ ऐसे समाचार निकल गए, जिससे पुरातन विरोधाग्नि पुन प्रतीत हो उठी। इससे दक्षिणके एक प्रमुख पुरुषने हम लिखा—“अब आप प्रतिलिपि ले लेना, देखें, कौन दूना है?” इसमे हमारी आत्मा कांप उठी। यह ज्ञातकर बड़ा डर हुआ, कि व्यक्तगत विशेष मानकी रक्षार्थ हमारे विद्यवधु ऐसे महत्त्वपूर्ण निषयको पुन विरोध और विवादकी भँवरम फैसा रहे हैं। इसने अनन्तर ज्ञात हुआ कि न्यायदयताको आह्वान निमित्त कानूनी कार्यवाही भी प्रारम्भ होने लगी। उस समय श्रुतमच्छ व० श्री जीवराज गौतमचदजी टोशी और क्षुरलक श्री समतभद्रजीने प्रभाज तथा सत्प्रयत्नसे विरोध शात किया गया। यह चर्चा हमने इससे की, कि लोग यह दरु लं, कि बना बनाया धर्मका कार्य किम प्रकार अकारण अवाह्यनीय सफ्टोंसे घिर जाना है। सोमद्वय सूरिणी उक्ति बड़ी अनुभवपूर्ण है। वे अपने नीतिगक्यामृत मे लिखते हैं—

‘धर्मानुष्ठाने भरति, अग्राथितमपि प्रातिलोम्य लोकस्य’ । १-३५ ।

‘धर्मकार्यम लोग जिना प्रार्थना किए गए स्वयमेव प्रतिकूलता धारण करते हैं। ऐसी प्रवृत्ति पापा अनुष्ठानके विषयमे नहीं होती।’

और भी निषत्तियोंका वर्णन करके हम लेखको बढ़ाना उचित नहीं समझते, सहस्रेणमे इतना ही कहना है, कि बड़े बड़े विन आए, किन्तु श्रुतदयतामे प्रसादसे वे शरद्वदतुने मेघों के सदृश अल्पस्थायी रहे।

चर्चा घीत गया, फिर भी प्रतिलिपिका कार्य प्रारम्भ नहीं हो रहा था। एक बार श्री मनैय्या हेगडेने अपने धर्मस्थलमे सर्व धर्म-सम्मेलनमे बुलाया। वहाँ पहुँचनेसे प्रतिलिपिका काय शीघ्र प्रारम्भ करनेमे विन नहीं आता, किन्तु कारण विशेषसे पहुचाना न हो सका। कुछ समयमे अनन्तर दिसम्बर सन् ४१ मे गोम्मटेश्वर महामन्त्रनाभिपेक पण्ड सम्बन्धी कमेटीकी बैठकमे सम्मिलित होनेसे हम बेंगलोर जाना पडा। उत्तर भारतसे केवल सर सेठ हुकमचदजी, सर सेठ भागचदनी पहुचे थे। मीरिंगके परचात् हम प्रथप्राप्तिरी आशासे श्री मनैय्या हेगडे, श्रीरघुचद वल्लाल, श्री चिनराज हेगडे, शास्त्री श्री शक्तिराज जी आस्थान महाविद्वान् मैसूरके साथ मूडवित्रीके लिए रवाना हुए। मन लोग आवश्यक कार्यवश अपने अपने घर चले गए। अब हम अकेले मूडवित्री पहुचे। दो तीन दिन प्रयत्न करने पर भी प्रतिलिपिका कार्य प्रारम्भ न हो सका। आग नवतफ प्रताक्षा करनी पड़ेगी, यह भी पता नहीं चलता था। इससे चित्तमे निविध सबलप विरक्त्य उत्पन्न होते थे।

ये तीन दिनकी प्रबल प्रतीक्षाके परचान् व्ययस्थापक वधु श्री धमपालनी श्रेष्ठिकी विशेष छपा हुई। उनमे भण्डार खोलकर महानय शास्त्रकी प्रति हमारे समक्ष विराजमान कर दी। जितने द्रव्य तथा चिनराणीकी पूजाके अनन्तर हमने स्वय प्रतिलिपि करनेका परम सौभाग्य प्राप्त किया। यह ३० दिसम्बर १९४१ का दिन जैन साहित्यके इतिहासमे चिरस्मरणीय रहेगा।

अनन्तर प्रतिलिपिका कार्य प० लोमनाथ जी शास्त्रीके तत्त्वानयानमे सपन्न होता रहा। ३० दिसम्बर सन् १९४० तक काय पूर्ण हो गया। पहले मूडवित्रीके भण्डारके लिये यही काफी ४ वषम तैयार की गई थी। यह कार्य शीघ्र सपन्न करनेका श्रेय उक्त शास्त्रीजीके सहयोगी विद्वान्

प० नागराज जी तथा देवकुमारजीको भी है। भट्टारक महाराज तथा व्यवस्थापकोंकी भी विशेष कृपा रही, जो उन लोगोंने इस कार्यमें कोई भी बाधा नहीं उत्पन्न होने दी। इस सम्बन्ध में श्री मजैय्या हेगडेके हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं, कि उनने सर्वदा इस कार्यमें सर्व प्रकारका सहयोग प्रदान किया है। कुछ विद्वानोंने उत्तर भारतसे श्री हेगडेजीको प्रतिलिपि न देनेका अप्रार्थित बहुमूल्य परामर्श दिया, किन्तु विद्वान हेगडे महाशयके उत्तरसे उन लोगोंको चुप होना पडा। जब हम आपत्तियोंसे आकुलित होकर हेगडे जी को लिखते थे, तो उनके उत्तरसे निराशा दूर हो जाती थी। उनने हमें लिखा था, “आप भय न करें, ग्रंथ-प्रकाशनके विषयमें कोई भी बाधा न आयगी। प्रतिलिपिका कार्य आपकी इच्छानुसार होता रहे, इसपर मैं विशेष ध्यान रखूंगा।” उनने अपने वचनका पूर्णतया रक्षण किया। कुछ भी भेट लिये बिना प्रतिलिपिकी अनुज्ञा प्रदान करनेकी उदारता तथा कृपाके उपलक्ष्यमें हम सिद्धान्त मंदिरके ट्रस्टियों तथा मूडवित्रीके पंचोंको हार्दिक धन्यवाद देते हैं। भट्टारक महाराजके भी हम अत्यधिक कृतज्ञ हैं। मूडवित्रीके महानुभावोंके हार्दिक प्रेम, कृपा तथा उदार भावकी स्मृति चिरकाल पर्यन्त अतःकरणमें अंकित रहेगी।

मूडवित्रीमें प्रतिलिपि कराने में जो द्रव्य-व्यय हुआ, वह सेठ गुलाबचंद जी हीराचन्द जी सोलापुरके पाससे प्राप्त हुआ था। इसके लिए उन्हें धन्यवाद है। व० श्री जीनराज जीने इस श्रुत-रक्षा या सेवाके कार्यमें जो सत्परामर्श तथा सर्व प्रकारका सहयोग दिया, उसके लिए हम अत्यन्त अनुगृहीत हैं।

दानवीर साहू श्रीशान्तिप्रसादजी जैनकी वदान्यतासे स्थापित भारतीयज्ञानपीठ काशीने इस टीकाके प्रकाशनकी उदारता की, इसके लिए हम साहू शान्तिप्रसादजीके अत्यन्त अनुगृहीत हैं। प० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यने प्रकाशन निमित्त जो श्रम किया, उसके लिए उन्हें विशेष धन्यवाद है।

इस शास्त्रका शब्दानुवाद प्रथम बार प० कुन्दनलाल जी परिवार न्यायतीर्थ तथा प० परमानन्दजी साहित्याचार्य सौरई निवासीके सहयोगसे लगभग सवामाहमें पूर्ण हुआ था। इसके पश्चात् प० कुन्दनलाल जीके अस्वस्थ हो जानेके कारण उनका बहुमूल्य सहयोग न मिल सका। प० परमानन्दजीका लगभग दो एक सप्ताह और सहयोग बडी कठिनातासे मिला, और आगे वे सहयोग न दे पाए, कारण श्रीमत्पादकाशके अनन्तर सिपनीका महिलाश्रम सुल गया, पाठशाला और आश्रमकी पढाईके पश्चात् कार्य करनेयोग्य न समय मिलता था और न शक्ति ही बचती थी, कि ऐसा गुरुतर कार्य किया जावे। दोनों विद्वानोंके सहयोग न मिलनेसे कार्यमें सहमा बडी अडचन आ गई। उन विद्वानोंके कृपापूर्ण अमूल्य सहयोगके लिए हम अत्यन्त आभारी हैं।

आद्य अनुवादकी प्रति देखकर अनेक अनुभवी विद्वानोंने सलाह दी, कि पुन टीका लिखी जानी चाहिए। हमने भी जब विशेष शास्त्रोंका अभ्यास किया और रचनाका सूक्ष्मताया निरीक्षण किया, तब नवीन रूपसे टीका निर्माण करना ही उचित जचा। महानन्धकी टीकाको मुख्य कार्य समझ हम उसमें सलग्न हो गए। लगभग तीन वर्षमें यह कार्य बन पाया। बना था नहीं यह हम नहीं कह सकते। हमारा भाव यह है कि इसमें पूर्वोंक समय लगा। इस अनुवादमें विशेषार्थ, टिप्पणी, शुद्ध पाठ योजना आदि भी कार्य हुए। इस अपेक्षासे यह टीका पूर्णतया नवीन समझना चाहिए।



सन् १९४५ के प्रीम्भावकाशमें न्यायालकार सिद्धान्त महोदधि गुरुनर प० वशीधर जी शास्त्री महरोनी वालोंने सिवनी पधारकर अनुवादको ध्यान पूर्वक द्रग्। उनके सशोधन के उपलम्भमें हम हृदय से कृतज्ञ हैं। यह उनकी ही कृपा है, जो यह महान् कार्य हम जैसे व्यक्ति-से सपन्न हो गया।

प० हीरालाल जी शास्त्री सादरमलने अनेक बहुमूल्य परामर्श तथा सुझाव प्रदान किए थे। प० फूलचन्द जी शास्त्रीने सिवनी पधार कर अनेक महत्त्वास्पद बातें सुझाई थी। इसके लिए हम दोनों विद्वानोंने अनुगृहीत हैं। अन्य सहायकोंके भी हम आभारी हैं।

हमें स्वप्नमें इस बातका भान न था, कि महानघ की प्रति मृडविद्रीसे प्राप्त करनेका परम सौभाग्य हमें मिलेगा, और उसकी टीका करनेका भी अमूल्य अवसर आयगा। जैन धर्मके प्रसादसे और चारित्र्य चमकती प्रात स्मरणीय पूज्य आचार्य १०८ श्री शान्तिसागर महाराजके पवित्र आशीर्वादसे यह सगल्भय कार्य सपन्न हुआ। प्रमाद अथवा अज्ञानदश टीकामें जो भूल हुई हों, उन्हें विशेषज्ञ विद्वान् क्षमा करेंगे और सशोधनार्थ हमें सूचित करनेकी कृपा करेंगे, ऐसी आशा है। ऐसे महान् कार्यम भूलें होना असम्भव नहीं है। 'को न विमुह्यति गारत्र समुद्रे।'

पौष कृ० ११, वीरसवत् २४७३

१८ दिसम्बर, १९४६ सिवनी

(सी० पी०)

}

—सुमेरचन्द्र दिवाकर

## प्रस्तावना

### १—महाबन्धपर प्रकाश

जिनेन्द्र देवकी निर्दोष वाणीरूप होनेके कारण सपूर्ण आगम ग्रन्थ समान आदर तथा श्रद्धाके पात्र हैं, फिर भी जैन मसारमे धवल, जयधवल, महाधवल नामक शास्त्रोंके प्रति उत्कट अनुराग एव तीव्र भक्तिक भाव विद्यमान है। इस विशेष आदरका कारण यह है, कि तीर्थंकर भगवान् महावीर प्रभुकी दिव्य ध्वनिको ग्रहण कर गणधरदेवने ग्रन्थ-रचना की। वह मौखिक परंपराके रूपमें, विशेष ज्ञानी मुनीन्द्रोंकी चमत्कारिणी स्मृतिके रूपमें, हीयमान होती हुई भी, विद्यमान थी। महावीर निर्माणके ६८३ वर्ष व्यतीत होने पर अज्ञों और पूर्वोंके एक देशका भी ज्ञान छुप्त होनेकी चिकट स्थिति आ गई। उस समय अप्रायणीयपूर्वके चयनलन्घि अधिकारके घतुर्थ प्राभृत 'वम्मपयडि'के चौबीस अनुयोग द्वारोंसे पट्टण्डागमके चार तण्ड बनाए गए, जिन्हें वेदना, वर्गणा, सुदानध तथा महाबध कहते हैं। वक्क अनुयोग द्वारके अन्यतम भेद बधविधानसे जीवद्वानका बहुभाग और तीसरा बधसामित्तविचय निकले। इस प्रकार पट्टण्डागमका द्वादशागसे सम्बन्ध है। इसी प्रकार ज्ञानप्रसाद नामक पचम पूर्वके दशम वस्तु अधिकारके अन्तर्गत तीसरे पेज्जदोसपाहुडसे कपाय प्राभृतकी रचना की गई। इन ग्रन्थोंका द्वादशागनाणीसे अविच्छिन्न सम्बन्ध होनेके कारण द्वादशागनाणीके समान श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक आदर किया जाता है। पट्टण्डागमके महाबन्धको छोड़कर पाच तण्डोंपर जो वीरसेनाचार्य रचित टीका है उसे धवला टीका कहते हैं। महाबन्धपर कोई टीका उपलब्ध नहीं है।<sup>१</sup> कपाय प्राभृतमे गुणधर आचार्य रचित १८० गाथाए हैं।<sup>२</sup> इसकी ७२ हजार श्लोकके प्रमाण टीका वीरसेनाचार्य तथा उनके शिष्य भगवज्जिनसेन स्वामीने बनाई, उसका नाम जयधवला टीका है।

पट्टण्डागममे जीवद्वानके प्रारम्भिक सत्पररूपणा अधिकारके केवल १७७ सूत्रोंकी रचना पुण्डन्त आचार्यने की है, शेष समस्त रचना भूतबलि स्वामीकृत है। जीवद्वान, सुदानध, बधसामित्त, वेदना और वर्गणा इन ५ तण्डोंकी श्लोक संख्या छह हजार प्रमाण है। छठवें तण्ड महाबन्धमे चालीस हजार श्लोक हैं। साधारणतया सपूर्ण धवला, जयधवला टीकाको द्वादशागसे साक्षान् मन्थनित साक्षा जाता है, किन्तु यथार्थमे धवला और जयधवला टीकाओंका निर्माण जन नवमी शताब्दीके लगभग हुआ है, तब ईसवी सदीके प्रारंभमे की गई रचनाओंके समान इनका स्थान नहीं रहता।

(१) वपदेवो आठ हजार पाच श्लोक प्रमाण महाबन्धकी टीका रची थी।

“अलिखत प्राकृतमापारुणां चम्पकपुरातनव्यापाम्।

अष्टसदसप्रथा व्याख्या पञ्चाधिका महाबधे ॥ १०६ ॥” -इन्द्र० शुता०।

(२) “गाहासदे असीदे अत्थे पण्यरुथा विहत्तम्मि।

वाच्छामि सुत्तगाहा वयि गाहा जम्मि अत्थम्मि ॥” -जयध० १।१५१।



गया है। इस अगके पूर्णगत भेदका उपभेद अत्रायणीपूर्ण है। उसमे सुनय, दुर्नय, पचास्तिकाय, पडद्रव्य, सप्ततत्त्व, 'नवपदार्थों आदिका वर्णन किया गया है। द्वादशाग वाणीमे दिव्यध्वनिना अधिकसे अधिक सार सगृहीत रहता है। सर्वज्ञ भगवान्ने विश्वके समस्त तत्त्वोंका प्रतिपादन किया था, इस कारण द्वादशाग वाणीमे भी सभी विषयोंका विशद प्रतिपादन किया गया है। जन रत्नत्रय धर्मकी त्रिशुद्ध माधना होती थी, तन पवित्र आत्माओंमे चमत्कारी ज्ञानकी ज्योति जगती थी। अत्र राग-द्वेष मोहके कारण आत्माकी मलिनता बढ जानेसे महान् ज्ञानोंकी उपलब्धिकी बात तो दूर है, बह चर्चा भी चकित कर देती है।

द्वादशाग वाणीके अत्यन्त विस्तृत विवेचनके होते हुए भी समस्त पदार्थका प्रतिपादन उसके द्वारा नहीं हो सका। कारण—

“पणवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाण ।

पणवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिवद्धो ॥” —गो० जी० ३३३ ।

‘पदार्थोंका बहुभाग वाणीके परे है। अनिर्वचनीय पदार्थोंका अनतवा भाग वाणीके गोचर है। इसका भी अनतवा भाग श्रुतरूपमे निरुद्ध किया गया है।

यह द्वादशाग ही यथार्थ वेद हैं, कारण यह किसी प्रकारके दोषसे दूषित नहीं है। हिंसाका वर्णन करनेवाला यथार्थ वेद नहीं है। उसे तो कृतात् ( यम ) की वाणी कहना चाहिए। महर्षि जिनसेनका कथन है—

“श्रुतं सुविहित वेदो द्वादशाङ्गमकलमपम् ।

हिंसोपदेशि यद्वाक्य न वेदोऽसौ कृतान्तवाक् ॥” —महापु० ३१२२ ।

गौतम स्वामीने द्वादशाग ग्रन्थका सुधर्माचार्यको व्याख्यान किया। धवलढीकामे सुधर्माचार्यके स्थानमे लोहाचार्यका नाम प्रहण किया गया है। कुछ कालके अनंतर गौतमस्वामी<sup>२</sup> केवली हुए। उनने बारह वर्ष पर्यन्त विहार करके निर्माण प्राप्त किया। उसी दिन सुधर्माचार्यने जम्बूस्वामी आदि अनेक आचार्योंको द्वादशागका व्याख्यान किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार महानीर भगवान्के निर्माणके बाद गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी ये तीन सकल श्रुतके धारक हुए, पश्चात् केवलज्ञान-लक्ष्मीके अधिपति बने। परिपाटी क्रमसे ये तीन सकल श्रुतके धारक कहे गए हैं और अपरिपाटी<sup>३</sup> क्रमसे सकलश्रुतके ज्ञाता सरयात हजार

(१) “अप्रत्य द्वादशाङ्गेषु प्रधानमृतस्य वस्तुन अयन शान अत्रायण तत्प्रयोजन अत्रायणीयम् । तत्र सप्त-  
शतसुनयदुर्णयपचास्तिकायपडद्रव्य सप्ततत्त्व नवपदायादीन् वणयति ।” —गो० जी० जी० गा० ३६५ ।

(२) “तेण गोदमेण दुवेहमवि सुदणाण लोहज्जस्स सचारिद ।” —ध० टी० ११६५ ।

तदो तेण गां भमगोत्तेण इदभूदिणा सु.मा ( म्मा ) इरियस्य गथा वक्कणादि ।” —ज० ध० १८४ ।

(३) ‘परिभाटिमस्सिदूण एदे तिप्पि वि सधलमुदधारया भणिया ।

अरिवादीप पुण सधलमुदधारया सत्तेज्जतदस्सा ॥” —ध० टी० ११६५ ।

हुए। जयधरलाले बताया है कि सुधर्माचार्यने अनेक आचार्योंको द्वादशांगका व्याख्यान किया। इसे ही धवलालीकामे स्पष्ट करते हुए कहा है कि अपरिपाटीकी अपेक्षा सख्यात हजार श्रुतकेवली हुए। जम्बू स्वामीने विष्णु आदि अनेक आचार्योंका द्वादशांगका व्याख्यान किया।

सुधर्माचार्यने बारह वर्ष विहार किया और जम्बूस्वामीने ३८ वर्ष विहार किया, पश्चात् जम्बूस्वामीने मोक्ष प्राप्त किया। जम्बूस्वामीके बारेमें जयधरलालार लिखते हैं—अन्तिम केवली कौन हुए? 'एसो एरयोमपिणीए अतिमकेवली।' य इस अवसर्पिणी कालके अन्तिम केवली हुए। इस कथनसे यही अर्थ निमाला जाता है कि जम्बूस्वामीके निर्माणके पश्चात् अन्य महापुरुष निर्माणमें नहीं गए। यह कथन विशेष विचारणीय है। तिलोयपण्णत्तिमें लिखा है कि जम्बूस्वामीके निर्माण जानेके पश्चात् अनुबद्ध कवली नहीं हुए।

“तम्मि कदकम्भणासे जवूसामित्ति केवली जादो।

तम्मि सिद्धि पत्ते केवल्लिणो णत्थि अणुबद्धा ॥” —४।१४७७।

गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी ये तीन अनुबद्ध-क्रमवद्ध परिपाटीक्रम युक्त (In Succession) केवली हुए। अननुबद्ध-अक्रमपूर्वक<sup>२</sup> वैरल्य उपार्जन करनेवाले अन्य भी हुए हैं, जिनमें अन्तिम केवली श्री-परमुनिने कुण्डलगिरिसे मुक्ति प्राप्त की।<sup>३</sup>

“कुण्डलगिरिम्मि चरिमो केवल्लणाणीसु सिरिधरो सिद्धो।

चारणरिसीसु चरिमो सुपासचदाभिघाणो य ॥” —ति० प० ४।१४७९।

तीन केवल्लियोंमें ६० वर्ष व्यतीत हुए और पाच श्रुतकेवल्लियोंमें १०० का समय पूर्ण हुआ। इन पाच श्रुतकेवल्लियोंकी गणना भी परिपाटीक्रम-अनुबद्धरूपसे की गई, जो इस बातकी

(१) 'तद्विसे चय मुहम्महाइरियो जवूसामियादीणमणेयाणमाइरियाण वक्खाणिदहुवाल्लमो पाइच्चउ-कक्कवण्ण करणी जादो।' —ज० घ० १।८४।

तद्विसे चय जवूसामिमहारथा विट्ठु ( विष्णु ) आइरियादीणमणेयाण वक्खाणिदहुवाल्लमो कावली जादो ॥” —ध० टी० १।६५।

(२) जयधरलालारने परिपाटीक्रमका पर्यायनाची 'अनुबद्धताण ( १, ८५ ) विचकी धतान या परपर अनुबद्ध इ एसा कहा है।

(३) जैन जैन साहित्य और इतिहासके पृ० १४, १५ पर श्री नाथूरामजी प्रेमी लिखते हैं—भगवान् महावीरके बाद तीन ही केवल्ल्यानी हुए हैं, जिनमें जम्बूस्वामी अन्तिम थे। एसी दशामें यह समझमें नहीं जाता, कि यहाँ श्रीधरका क्या अन्तिम केवली पतलाय, और ये कौन थे तथा कब हुए हैं। शायद ये अतकृत केवली हों। इस शकका निवारण पुनोक्त वचनसे हो जाता है, कारण श्रीधर मुनि अननुबद्ध अन्तिम केवली हुए हैं किन्तु निवाणस्थल कुण्डलगिरि है। इनको अन्तकृत केवली माननेमें काह धागमका आधार नहीं है। सामान्यतया नदी, नदिमित्र, अपराजित गोवर्धन तथा मद्रवाहु ये पाच श्रुतकेवली कहे गए हैं, किन्तु धवलालीकासे ज्ञात होता है कि अपरिपाटी क्रमकी अपेक्षा ये द्वादशांगके पाटी सख्यात हजार थे। जयधरलाले भी इस अधिक सख्याकी पुष्टि होती है। यही मुक्ति केवल्लियोंके विषयमें लगेगी। शास्त्रमें अनुबद्ध केवली तथा श्रुतकेवलीकी मुख्यतासे प्रतिपादन किया गया है।

सूचित करती है, कि यहा अपरिपाटी क्रमकी अपेक्षा नहीं ली गई है। जयधवलामे नदि श्रुत-केजलीके स्थानमे विष्णु नामका ग्रहण किया है। इसके अनन्तर एकादश अग तथा दशपूजाके पारगत विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, वृत्तिपेण, विजय, बुद्धिल, गगदेव तथा सुधर्म ये ११ महापुरुष हुए। धवला टीकामे सिद्धार्थका नाम सिद्धार्थदेव और सुधर्मका नाम धर्मसेन आया है। ये महामुनि शेष चार पूर्वोंके एक देशके धारी थे। इनका काल १८३ वर्ष प्रमाण रहा। धर्मसेन मुनिके स्वर्गगामी होनेके पश्चात् भारतवर्षमे दशपूर्वोंके ज्ञाताओंका विच्छेद हो गया।

इनके अनन्तर नक्षत्र, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन और वन ये पांच आचार्य परि-पाटीक्रमसे एकादशागके पाठी हुए। ये चौदह पूर्वोंके एक दशके भी धारक थे। इनका काल पिण्ड रूपसे २२० वर्ष प्रमाण है।

इसके पश्चात् परपरा क्रमसे सुभद्र, यशोभद्र, यशोराहु तथा लोहार्य—ये चार आचार्य सपूर्णा आचारागके ज्ञाता हुए। वे शेष एकादश अग तथा चौदह पूर्वोंके एक देशके भी ज्ञाता थे। इनके कालका प्रमाण ११८ वर्ष है।

इसके अनन्तर सपूर्ण अग तथा पूर्वोंके एकदेशका ज्ञान आचार्यपरपरासे आता हुआ धरसेन आचार्यको प्राप्त हुआ। जयधवला टीकामे लिखा है—‘इसके पश्चात् अगपूर्वोंका एकदेश ज्ञान आचार्यपरपरासे आता हुआ गुणधर आचार्यको प्राप्त हुआ। इससे यह प्रमाणित होता है, कि द्वादशागका एक देश ज्ञान धरसेन तथा गुणधर आचार्यको प्राप्त हुआ था।

महावीर भगवान्के निर्वाणके पश्चात् गौतम स्वामीसे लेकर आचारागके ज्ञाता लोहाचार्य पर्यन्त ६८३ वर्ष काल व्यतीत होता है ( ६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३ )। इसके अनन्तर धरसेन आचार्य हुए। कितने वर्ष पश्चात् हुए, यह स्पष्ट नहीं होता है। लोहार्य और धरसेनके मध्यवर्ती आचार्योंका धवला, जयधवला, तिलोयपण्णत्तिमे वर्णन नहीं किया गया है। नन्दि आम्नाय-की पट्टापट्टावलीसे इस प्रकरण पर विशेष चिन्तनीय सामग्री उपलब्ध होती है। इस पट्टावलीकी विशेषता यह है, कि इसमे वीर-निर्वाणके परचातुर्वर्ती प्रत्येक आचार्यका काल पृथक् पृथक् गिनाया है। गौतमादि केजलीत्रयका काल ६२ वर्ष कहा है। विष्णु आदि पंच श्रुतकेवलीका समय यहा भी सौ वर्ष गिनाया है। विशाखाचार्य आदि ग्यारह दशपूर्वधारी आचार्योंका समय १८३ बताया है। धर्मसेन आचार्यका काल चतुर्दशके स्थानपर यदि सोलह हो जाता है, तो दो वर्षका अन्तर नहीं रहता है। संभव है पाठ भेद इस भिन्नताका कारण हो। एकादशागी नक्षत्रादि पंच आचार्योंका समय १२३ वर्ष बताया है, जबकि तिलोयपण्णत्ति आदि शास्त्रोंमे इनका समय २२० वर्ष बताया है। सुभद्र, यशोभद्र, भद्रवाहु तथा लोहाचार्य—इन चार आचार्योंको पट्टावलीमे दस, नव तथा अष्टाग विद्याके ज्ञाता कहा है। यहा यशोराहुके स्थानमे भद्रवाहु नाम आया है। इनका समय ९७ वर्ष बताया गया है।

(१) “तदा सन्वेसिमगपुव्वाणमेगदेसो आहरियपरपराए आगच्छमाणो धरसेणाहरिय सपत्तो।

—व० टी० १।६७।

(२) ‘तदो अगपुव्वाणमेगदेसो जेव आहरियपरपराए आगतण गुणहराहरिय सपत्तो।’

—जय० घ० १।८७।

“वाम सत्ताणरदिय दसग नव अंग गह्वररा ॥ १२ ॥

सुमद् च जसोभद् भद्वाद् कमेण च ।

लोहाचजमुणीस च कहिय च जिणागमे ॥ १३ ॥”

गाथा न० १२में इनका समूह रूपसे काल ९७ बनानेके अनन्तर गाथा न० १४ के पूर्वार्धमें उभना स्पष्टीकरण करते हुए पट्टावलीमें लिखा है—छह अट्टारह वामे तेरीस वाण ( पणास ) वास मुनिनाह । जन गाथा न० १० में इत प्राचार्यों का ९७ वर्ष समूह रूपसे काल बताया जा चुका है, वन वाण पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है । वहा पचासनी सख्या होगी । सुभद्रादि आचार्य चतुष्टयने तिलोपपण्णत्तिम आचारागना ज्ञाता लिखा है । धवल जयधननामें भी इसका समर्थन है । धवल १, पृ० ६६ में लिखा है—‘तदो सुभदो जसभदो जसगाद् लोहजो चि एदे चत्तारि पि आइरिया आयारागघरा, सेमगपुव्वाणमेगदमधारया ।’

पट्टावलीके अनुसार नक्षत्राचार्यसे लेकर लोहाचार्य पर्यन्त १०३+९७=२०० वर्ष प्रमाण काल होता है । इस प्रकार लोहाचार्य पर्यन्त कालमें ११८ वर्षका अन्तर पड़ता है । पट्टावलीमें लिखा है—

“पचमये पणमठे अनिमज्जिणसमयजादेसु ।

उपपणा पच जणा इयगघारी मुण्येयव्वा ॥ १५ ॥

अदिरलि माघनदि य धरसेण पुप्फयत्त भूदवली ।

अडवीस इगवीस जगणीस तीस वीस वाम पुणो ॥ १६ ॥

इगसप-अठार वासे इयगघारी य मुणिवरा जादा ।

छसय तिससिय वासे णिव्वाणा अगदिति कहिय निपे ॥ १७ ॥”

इससे ज्ञात होता है कि वीरचिनके निर्वाणके ५६५ वर्ष प्रमाण काल व्यतीत होने पर एक जगके ज्ञाता अहंद्बलि, माघनदि, धरसेन, पुम्बदन्त तथा भूतवलि—ये पाच आचार्य ११८ वर्षमें हुए । इस प्रकार ५६५+११८ = ६८३ वर्ष पर्यन्त अग ज्ञान रहा । भूतवलि पुष्पदत्तके पदच्छण्डागम साहिबरी टोना धवला एव कसाय पाहुहवी जयधवला टीवाम धरसेन आचार्यको परिपूर्ण एक अगना ज्ञाता नहीं बताया है । धरग टीकाम तो यह लिखा है कि ‘तदो सन्वेसिमग पु-राणमेगदसो आइरियपरपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरिय सपत्तो’ ( पृ० ६७ ) —‘इसके अनन्तर सपूर्ण अग और पूर्वोका एकदेश ज्ञान आचार्यपरम्परामे आता हुआ धरसेनाचार्यको प्राप्त हुआ ।’ आचार्य धरसेनके शिष्य भूतवलि पुष्पदन्त रचित शारदरी टीकाम उनके सम्बन्धकी चपल घ सामग्री विशेष महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ती है । इसमें भी यात यह है कि तिलोपपण्णत्ति जैसा प्राचीनशास्त्र भी धवला टीकाका समर्थन करता है । सुभद्र, यशोभद्र, यशोवाहु तथा लोहाचार्यके पञ्चान् आचारागना ज्ञान लुप्त हो गया । कहा भी है—

“तिसु अदीदेसु तदा आचारघरा ण होंति भरहम्मि ।

गोदभभुण्णिपहुदीण वासाण छस्सदाणि तेसीदी ॥” -ति० प० ४११४९२ ।

लोहार्यको अन्तिम आचाराग तथा शेष अग तथा पूर्वोक्ति एकदेशका ज्ञाता लिखा हैं और मध्यवर्ती आचार्यपरपराका उल्लेख बिना किए धरसेन आचार्यको सर्व अग-पूर्वोक्ति एक देशका ज्ञाता बताया है। इसलिए धरसेन स्वामीका समय क्या माना जाय, यह कठिनाई उपस्थित होती है। इस कठिनाईके निवारणार्थ निम्नलिखित बात पर विचार करना आवश्यक है।

धवला टीकासे ज्ञात होता है कि धरसेन स्वामी गुजरातकी गिरिनगर नामके नगरकी चन्द्रगुफामें विराजमान थे।<sup>१</sup> वे अष्टागनिमित्त विद्याके पारंगामी थे। उन्हें इस बातका भय उत्पन्न हुआ कि श्रुतका विच्छेद हो जायगा, अतः प्रख्यातसल आचार्यवर्यने दक्षिणापथके निवासी तथा महिमानागरीमें एकत्रित आचार्योंके पास लेख भेजा। धरसेन स्वामीको श्रुतके विच्छेदका भय उत्पन्न होनेमें क्या कारण था, यह बात चितनीय है। सप्तभयवर्जित, शान्त, निश्चिन्त जीवनवाले महामुनिके चिन्तमें शारत्र लोप हो जायगा, सहसा इस भयकी उत्पत्तिका विशेष कारण होना चाहिए। हमें यह प्रतीत होता है, कि इनने अपने जीवनमें ही आचारागके पारदर्शी ज्ञाता लोहार्यको देखा और उनके स्वर्गारोहणके पश्चात् उस आचाराग विद्याका लोप ज्ञातकर उनकी धर्मपूर्ण आत्मामें गहरा आघात पहुँचा, जिसने अतःकरणमें इतनी प्रेरणा की कि उनने महिमानगरीमें आगत श्रमणसमुदायके समीप विशेष पत्र भेजा। पश्चात् योग्य सत्यात्र शिष्योंके प्राप्त होने पर उनको अपना विशेष श्रुतसम्बन्धी ज्ञान प्रदान किया।

यह ज्ञान उत्पन्न होती है, कि अर्हद्वलि, माघनदि आचार्य अथवा श्रुतावतारमें वर्णित विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त तथा अर्हदुदत्त आचार्योंका तिलोपपण्णत्ति अथवा धवला, जयधवलामें क्यों नहीं प्रतिपादन किया? इसका समाधान यह है, कि प्रथकार अगज्ञाताओंका वर्णन करना चाहते थे। अगज्ञानका लोप हो जानेके बादका वर्णन करना उनके लिए अप्रकृत वस्तु थी। अतः उस मन्त्रधमे उनने कुछ प्रकाश नहीं डाला।

लोहार्यका स्वर्गवास धीरजिनके निर्माणके ६८३ वर्ष व्यतीत होनेपर हुआ था। उस समय धरसेनाचार्य भी सभ्यत घृद्ध थे, अतः उनने श्रुतरक्षार्थ शीघ्रतापूर्वक शिष्योंका अन्वेषण कराया तथा उनको अपने विशिष्ट विषयका पारगत चिद्धान् वनाया। पश्चात् वर्षाकाल अत्यन्त सन्निकट होनेके कारण उनको प्रथ-उपदेश समाप्तिके दिन ही अन्यत्र वर्षाकाल व्यतीत करनेकी आज्ञा दी। इन्द्रनन्दि आचार्यने लिखा है<sup>२</sup> कि गुरुद्वने अपना अल्प जीवन सोचकर शिष्योंको दूसरे दिन जानेको कहा। उनने यह सोचा था, कि हमारी मृत्युसे इनको क्लेश पहुँचेगा, अतः समीपमें न रहना ही श्रेयस्कर है। विबुध श्रीधरने<sup>३</sup> भी इन्द्रनन्दिका समर्थन किया है। धरसेनाचार्यने श्रुतरक्षण निमित्त प्रवचन प्रेमवश जो कार्य किया उममें कोई बहुत वर्ष नहीं बीते होंगे। श्रुतविच्छेदके भयसे कार्य शीघ्र संपन्न किया गया। इस दृष्टिसे धरसेन स्वामीका समय

(१) "तेण वि सोरद्धविषय गिरिनगरपट्टण चन्द्रगुहा ठिपण अट्टगमहाणिमिचपारएण गथकोच्छेदो होहदि ति जादभयेण पवयण-वच्छेलेण दकिरणयाहाइरियाण महिमाए मिलियाण लेशो पेसिदो। -ध०टी० १।६७।

(२) "सासन्नमूर्ति शाल्वा मा भूत् सक्लेशमेतयोरस्मिन्।

इत्तं गुरुणा सचित्त्य द्वितीयदिवसे ततस्तौ ॥" -इ० श्रु०।

(३) "आत्मनो निवृत्तरणं ज्ञात्वा धरसेनस्तयोमा क्लेशो भवत्तु इति मत्वा तन्मुनिविषजनं करिष्यति।"



६८३-५०७ = १५६ ईसवी सन्ने समीप पड़ता है, इनके शिष्य भूतबलि पुण्ड्रवन्त भी समय इससे पृथक् रूपसे जोड़नेपर ईसाकी दूसरी सदी रूपराल अनुमानित करना होगा।

यहां कोई यह तर्क कर सकता है, कि धरसेन स्वामी अष्टागवित्याने प्रमाण्ड आचार्य थे। उनमें निमित्त ज्ञानसे अपने मरणको समीप सोचा, इससे उनमें चित्तमें श्रुतरक्षणकी भावना उत्पन्न हो गई। इस सम्बन्धमें यह बात चिन्तनीय है, कि मरण समीप है, इससे श्रुतविच्छेदकी भीति उत्पन्न होनेका औचित्य ज्ञात नहीं होता। वे ज्ञानवान् महान् आचार्य थे। उनका श्रुतरक्षाका भाव पहलेसे भी जागृत रहना चाहिए था। श्रुतव्यवच्छेदकी घटनाको देखनेसे उनके चित्तमें श्रुतरक्षानी प्रेरणा उत्पन्न होना अधिक उपयुक्त जघता है।

जयघवल टीकासे ज्ञात होता है कि गुणधर आचार्य भी अगों तथा पूर्वाके एक देशके ज्ञाता थे। उनके चित्तमें भी श्रुतविच्छेदकी भीति उत्पन्न हुई। उनका हृदय प्रवचनके वात्सल्यके अधीन हो चुका था, इसलिए उनमें सोलह हजार पद प्रमाण 'पेज्जन्दोमपाहुड' का १८० गाथाओं में व्यवहार किया। गुणधर आचार्यको भी श्रुतविच्छेदकी भीतिमें निमित्त आचारागके जतिम ज्ञाता लोहार्यका स्वर्गगमन रहा होगा। गुणधर आचार्यके समक्ष तो मृत्युकी चिन्ताकी समस्या न थी। जब उनका श्रुतरचनामें मृत्युकी भीति कारण नहीं है, तब इसी प्रकारकी प्रक्रिया धरसेन स्वामीने विषयमें विचारना कोई दोषपूर्ण नहीं प्रतीत होता।

### ४—भूतबलिका समय

प्राकृत पट्टावलीमें यदि प्रामाणिक माना जाय, तो जहां तक धरसेनाचार्यका सम्बन्ध है उनका समय धीर निर्माणके ६१४ वर्ष बाद आता है और भूतबलि आचार्यका काल ६६३ वर्ष धीर निर्माणके अनन्तर प्राप्त होता है। भूतबलि स्वामीका समय १३६ ईसवी सन् निकलता है। अतएव धवल टीका द्वारा प्राप्त संकेतके आधारसे एव पट्टावलीके प्रकाशमें भी ईसाकी दूसरी सदीका समय अनुमानित होता है।

ब्रह्मनिन्दितके आराधना-कथाकोपसे ज्ञात होता है, कि महिमानगरीमें स्थित मुनिसधके पास धरसेन आचार्यन अपना पत्र भेजा था। उस दक्षिण सधके प्रधान आचार्य महासेन थे। अपने दो सुयोग्य शिष्य धरसेन आचार्यके पास भेजे थे। एक नाम था सुबुद्धि और दूसरेका नाम नरवाहन था। सुबुद्धि पहले भेषिवर थे और नरवाहन थे एक नरश। सुबुद्धि मुनिने पुण्ड्रवन्त और नरवाहनने भूतबलि नाम धरसेनाचार्यके द्वारा प्राप्त हुआ था।

धरसेनाचार्यके विषयमें इतना ही ज्ञात है कि वे अष्टागनिमित्त 'ज्ञानी महान् आचार्य थे। मर्य अगों तथा पूर्वाके एकदेशके ज्ञाता एव प्रवचन-वात्सल्यभावसे भूपित महामुनि थे। उनके पत्रने अनुसार दक्षिणापथमें दो मुनिराज इनके समीप भेजे गए थे। वे धारण और ग्रन्थ शक्तिमें अतीव निपुण थे। वे अत्यन्त विनयवान् शील-अलङ्कृत, देशकुल जातिसे निशुद्ध, संपूर्ण कथाओंमें निष्णात थे। वे आभ्रदृशमें बहने वाली वेगानदीके तटसे धरसेन स्वामीके समीप पहुँचनेके लिए रवाना हुए। इधर धरसेनाचार्यने राजिके पिछले भागमें एक स्वप्न देखा कि दो सुन्दर धन्यवर्ण वाले बैलाने आकर उनकी तीन प्रदक्षिणा की और नम्रनापूर्वक उनके चरणोंमें पड़ गए।

(१) भूतबलि-विषय श्रीवर पृ० ३१६। (२) ध० टी० १ ६७-६९।

इस स्वप्नको देखकर स्वप्नशास्त्रके अनुसार अत्यन्त शुभसूचक स्वप्न समझ आचार्य सतुष्ट हुए और उनने 'जयउ सुय देवदा'—शुतदेवताकी जय हो, ये शब्द उच्चारण किए। पवित्र चरित्र पुरुषोंके स्वप्न भी मिला नहीं होते। उसी दिन दो मुनि आचार्यश्री के पादपद्मोंके समीप अत्यन्त विनयपूर्वक पहुँचे। उनने आचार्य श्री से अपने आनेका कारण निवेदन किया। "अणोण कजेणम्हा दोणि जणा तुम्ह पादमूलधुनगया।" आचार्य महाराजने कहा 'सुष्टु, भई'—ठीक है, कल्याण हो।

इसके अनंतर आचार्य महाराजने सोचा 'जहा छंदाईण विजादाण ससार-भयवद्धण'—स्वच्छद वृत्ति वालोंको विद्या प्रदान करना ससार-भयका सर्वर्षक है, अतः पुनः परीक्षा लेना उचित समझा। उनने दो विद्याएँ उन्हें साधनार्थ दीं। एकमे अल्प अक्षर थे, और दूसरीमें अधिक अक्षर थे। विद्या साधनके विषयमें आचार्यश्रीने कहा था—दो उपनासपूर्वक इनकी साधना करो। अशुद्ध मंत्रकी साधना करनेके कारण अल्पाक्षरयुक्त मंत्र साधकके अशुद्ध कानों देवी आई, तो अधिक अक्षरवाले साधकके सामने लम्बे दातवाली देवी आई। देवताओंका सुन्दर स्वरूप होता है। यह विद्वत आकृति झुटिको बताती है। इससे उनको मंत्रकी अशुद्धता ज्ञात हुई। उनने मन्त्रशास्त्रके अनुसार मंत्रोंको शुद्धकर साधना प्रारम्भ की, तो देवताओंने अपने दिव्यरूपमें दर्शन दिए। तत्पश्चात् इन मुनियोंने सब वृत्तान्त जब गुरुदेवको सुनाया, तो उनने सतोप व्यक्त किया। और 'सोमतिहिणक्खत्तवारं गथो पारद्धो'—'शुभ तियि, शुभ नक्खत्त तथा शुभ दिनमे ग्रन्थका पढाना प्रारम्भ किया।'

आपाठ सुदी एकादशीके पूर्वाह्न कालमें ग्रन्थ समाप्त हुआ। घरसेन स्वामीने शुत-लपदेशका अपना पवित्र कार्य पूर्ण किया। इस महत्त्वपूर्ण घटनासे आनन्दित हो देवताओंने एक मुनिराजकी पुर्मोंके द्वारा महान् पूजा की और मधुर वाद्य ध्वनि की। इसे देखकर घरसेनाचार्यने उनका नाम 'भूतत्रलि' रखा। दूसरे मुनिराजकी पूजा देवोंने की और उनके दातोंकी पक्ति सुव्यवस्थित कर दी अतः उनका नाम गुरुदेवने पुष्पदन्त रखा। इसके अनन्तर गुरुकी आज्ञानुसार उनको वर्षाकाल निमित्त प्रस्थान करना पड़ा। उनने अकलेखरमें चातुर्मास व्यतीत किया। इसके पश्चात् पुष्पदन्त आचार्य वनवास देशको गए और भूतत्रलि स्वामी द्रमिल देश पहुँचे। पुष्पदन्तने वनवास देशमें जिनपालितको दीक्षा प्रदान की और वीसदिसूत्र-वीस प्ररूपणाके अन्तर्गत सत्प्ररूपणाके १७७ सूत्र जिनपालितके द्वारा भूतत्रलि स्वामीके समीप भिजनाए।

जिनपालितकी विशेष योग्यताका अनुमान इससे होता है, कि पुष्पदन्त आचार्यने अपनी ज्ञान निधि भूतत्रलिके पास उनके द्वारा प्रेषित की थी। धर्मकीर्त्ति शिलालेख न० १ में (पट्टावली लाडवागढ़ या चागाड़ा सप्त) जिनपालितको 'योगिराट्'—योगियोंके अधीश्वर लिखा है।<sup>१</sup>

(१) 'तदो पुष्पयताइरिण विणवालिदस्स दिक्ख दाज्ज वीसदिसुत्ताणि कारिय पदाविय पुणो सो भूदवन्नि-भयवत्तम्भ पास पविदो।'—पृ० टी० १।७१।

(२) Documents produced by Digambaris before the court of Dhvajadand Commission Udaipur p p 29-30

‘तेषा नामानि वन्मीत. शृणु भद्र महान्वय ।

भद्रो भद्रस्वभावश्च धरसेनो यतीश्वरः ॥ ६ ॥

भूतबलि पुष्पदन्तो जिनपालितयोगिराट् ।

समन्तभद्रो धीधर्मा सिद्धिसेनो गणाग्रणीः ॥ ७ ॥”

भूतबलि स्वामीने जिनपालितके पास वीसदि सूत्रोंको द्रवा उसमें अंतिम १७७ वा सूत्र यह है—‘अणादारा चतसु द्वाणेषु विग्नाहगहसमावष्णाण केवलीण वा समुग्वाद्गदाण अजोगिकेनली सिद्धा चेदि ।’ उहें जिनपालितके द्वारा ज्ञात हुआ, कि पुष्पदन्तना जीवन प्रदीप शीघ्र बुझनेवाला है, इससे उनके हृदयमें विचार उत्पन्न हुए कि अब ‘महाकम्मयपडिपाहुड’ का लोप हो जायगा, अतः उनमें ‘द्वयपमाणानुगममादि काऊण गभरचणा कदा’—द्रव्य-प्रमाणानुगमको आदि लन्तर प्रथमचर्चा की। पदसङ्गणाममें भूतबलि स्वामी रचित आदिमूल यह है, ‘द्वयपमाणानुगमेण दुविहो णिदिमो ओघेण आदसेण य ।’—ध० टी० २११ ।

इस सूत्रमें प्रारंभमें वीरसे तत्राय धरलाटीकामें लिखते हैं—

“सपदि चोदसण्ह जीरसमानाणमत्थित्तमग्गदाण सिस्साण तेसिं चेन परिमाण पडिवोहणद्ध भूदबलियाडरिगो सुत्तमाह” (२११)

‘अब चौदह जीरसमासोंके अस्तित्वको जाननेवाले शिष्योंको परिमाणका अवबोध करानेके लिए भूतबलि आचार्य सूत्र कहते हैं ।’

पूर्वोक्त सूत्रको आदि लेकर शेष समस्त पदसङ्गणाम सूत्र भूतबलि स्वामीकी उज्ज्वल कृति है। इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारसे विदित होता है, कि जब यह रचना पूर्ण हो गई, तत्र चतुर्नय सध सहित भूतबलि स्वामीने ज्येष्ठ मुनी पचमीको मयराजकी बड़ी भक्तिपूर्वक पूजा की। उस समयसे श्रुतपचमा पर्यं प्रचलित हो गया जब कि श्रुत-द्वयताकी सर्वत्र अभिव्यक्ति की जाती है। इसके पश्चात् भूतबलि स्वामीने यह रचना जिनपालितके साथ पुष्पदन्त स्वामीके पास भेजी। सौभाग्यवती बात हुई, जो हुदैंवने पुष्पदन्ताचार्यको उस समय तक नहीं उठाया था। आचार्य पुष्पदन्तने रचना दृष्टी। अपना मनोरथ सफल हुआ ज्ञात कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए। उनमें भी चतुर्नयसध सहित सिद्धान्तशास्त्री पूजा की।<sup>३</sup>

(१) भूदबलिमयदा विणवालिदपावे दिट्ठवीरदिसुत्तेण अण्णउओ व्ति अग्गयजिणवालिदेण महाकम्म पडिपाहुडस्स वाच्छेदा होहदि ति समुप्पण बुद्धिणा पुणे दव्वपमाणानुगममादि काऊण गभरचणा कदा ।—ध० टी० १११ ।

(२) ज्येष्ठसितरअग्गम्या चतुर्नयसधसवेत्त । तत्पुस्तकापकरणैव्यघात् नियापूवक पूजाम् ॥ १४३ ॥ भूतपचमासि तेन प्रख्याति तिथिरिय परामाव । अद्यापि येन तस्या श्रुतपूजा कुर्वते जेना ॥ १४४ ॥”

(३) त्रिभुव शीघ्रवृत्त भुतारतारसं शत होता है, कि पुष्पदन्त आचार्यके साथ चतु सधने तीन दिन पयन्त बडे उत्साहपूर्वक पूजा प्रभावना की थी। धार्मिक समाजने व्रतादिका परिपालन भी किया था। पृ० ११९ ।

इस महाशास्त्रके रक्षण कार्यमें जिनपालितकी भी महत्त्वपूर्ण सेवा विदित होती है। हम देखते हैं कि चातुर्मास पूर्ण होनेके पश्चात् पुष्पदन्त अपने साथी भूतबलिको छोड़कर जिनपालित के पास वनरास देशमें पहुँचते हैं। वे विंशतिसूत्रोंकी रचना करके अपना मतव्य भूतबलिके पास प्रेषित करते हैं। भूतबलि जब ग्रथराजका निर्माण पूर्ण कर लेते हैं, तब वे इन्हीं जिनपालितके साथ अपनी अमूल्य जीवन निधि-ज्ञाननिधिको पुष्पादन्ताचार्यके समीप भेजते हैं, ताकि उनका भी इस आगम-रचनाके विषयमें अभिप्राय ज्ञात हो जाय। जिनपालित योगिराज थे तथा पुष्पदन्त जैसे महामुनिके अत्यन्त विश्वासपात्र थे। भूतबलि स्वामीने भी उन्हें योग्य समझ अपने समीप स्थान दिया था और अपनी रचना उनके ही साथ पुष्पदन्त स्वामीके पास भिजवा दी थी। इससे हमें प्रतीत होता है, कि महान् ग्रन्थ रचनाकार्यमें वे भूतबलि स्वामीके समीप अवश्य रहे होंगे। बहुत संभव है, कि भूतबलि स्वामीके तत्त्व प्रतिपादनको लिखनेका कार्य जिनपालित द्वारा संपन्न हुआ हो। कमसे कम इतना तो दृढतापूर्वक कहा जा सकता है, कि इस सिद्धान्तशास्त्रके उद्धार कार्यमें जिनपालित मुनिराजका विशेष स्थान रहा। इसका वर्णन इसलिए नहीं मिलता, कि पहले लोग कार्यको प्रधान मानते थे, नामकी ओर प्रायः कम ध्यान रहता था। इतना बड़ा पदस्रण्डागम महाशास्त्र निर्माण करते हुए भी ग्रन्थमें जब भूतबलि स्वामीका नाम कहीं भी नहीं आया, तब जिनपालितका नाम न आना विशेष आश्चर्यप्रद बात नहीं है।

## ग्रंथकी प्रामाणिकता

महान् ग्रन्थ शास्त्रमें सपूर्ण चर्चा आगमिक तथा अहेतुवाद-आश्रित है। आगमकी निम्नलिखित परिभाषा प्रस्तुत शास्त्रके विषयमें पूर्णतया चरितार्थ होती है—

“पूर्वापरविरोधादेव्यपैतो दोषसन्ततेः ।

द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहृतिरागमः ॥” —ध० टी० पृ० ७८५ ।

—जो पूर्वापरविरोधादि दोषपरम्परासे रहित हो, सर्व पदार्थोंका प्रकाशक हो तथा आप्तकी वाणी हो, उसे आगम कहते हैं।

पदस्रण्डागम सूत्रोंकी, विशेषकर महान् ग्रन्थकी चर्चा बहुत सूक्ष्म है। उसमें कहीं भी पूर्वापर विरोधका दर्शन नहीं होता। नितना सूक्ष्म चिन्तक एवं विचारक महान् ग्रन्थका पारायण करेगा, वह ग्रन्थके विवेचनसे उतना ही अधिक प्रभावित होगा। ग्रंथकी विचित्रता यथार्थमें पूर्वापर-अविरोधितामें है। अपने विषयपर प्रकाश डालनेमें आचार्यने किंचित् भी न्यूनता नहीं प्रदर्शित की है। ग्रथराज आप्तकी कृति है, अतः यह स्वतः प्रमाण है। किसी हेतुवादरूप साधन-सामग्रीकी आवश्यकता नहीं है। आप्तमीमासाकार समन्तभद्र स्वामीका कथन है—

“वक्तव्यनाप्ते यद्वेतोः साध्यं तद्वेतुसाधितम् ।

आप्ते वक्तुरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम् ॥ ७८ ॥”

—यदि यदि अनाप्त है, तो युक्ति द्वारा जो बात सिद्ध की जायगी, वह हेतुसाधित कही जायगी। और यदि वक्ता आप्त है, तो उनके वचनमात्रसे ही बात सिद्ध होगी। इसे आगम-साधित कहते हैं।

भूतत्रलिको आत्त किस कारण माना जाय, इस सम्बन्धमे धवला टीकामे सुन्दर तर्जणा की गई है। शकार कहता है सूत्र की परिभाषा है—

“सुत्त गणहरकहिय तहेव पत्तेयवुद्धकहियं च ।

सुदकेरलिणा कहिय अभिण्णदसपुच्चिकहिय च ॥”

—गणधरका कथन, प्रत्येकवुद्ध मुनिराजकी पाणी, श्रुतनेजलीका कथन, अभिन्नदशपूर्विका कथन सूत्र है।

‘ण च भूदत्रलिभडारओ गणहरो, पत्तेयवुद्धो, सुदकेरली, अभिण्णदसपुच्ची वा येणोऽ सुत्त होज्ज ? जदि एद सुत्त ण होदि तो प्रमाणत्त कुदो णच्चदं ?’  
‘भूतत्रलि भट्टारक गणधर नहीं है। न वे प्रत्येकवुद्ध, श्रुतनेजली अथवा अभिन्नदशपूर्वी हैं, जिससे यह शास्त्र ‘सूत्र’ हो जाय। यदि यह शास्त्र सूत्र नहीं होता है, तो इसमे प्रामाणिकताका किस प्रकार ज्ञान होगा ?

इस शब्दके समाधानमे कहते हैं—“रागदोसमोद्दामावेण पमाणीभूदपुरिमपरपराये आगत्तादो” (ध० टी० पृ० १२८२)। ‘यह मन्व प्रमाण है, कारण राग-द्वेष-मोहरहित प्रामाणिकता प्राप्त पुरुषपरम्परासे यह प्राप्त हुआ है।’

\* इस प्रथमे अप्रामाणिकताका लेश भी नहीं है। इन मन्व-प्रमे वीरसेनाचार्यका कथन महत्त्वपूर्ण है। वे लिखते हैं—‘इस प्रकार प्रमाणीभूत महर्षिरूप प्रणाटिकाके द्वारा प्रमाहित होता हुआ महाकर्म प्रकृति प्राभूतरूप अमृत-जल-प्रवाह धरसेन भट्टारकको प्राप्त हुआ। उनमे भी गिरिनगरना चन्द्रगुफाम भूतत्रलि, पुण्ड्रिकके सपूर्ण महाकर्म प्रकृति प्राभूत सौंपा। तदनतर श्रुत नदाका प्रवाह व्युच्छिन्न हो जाय, इस भयसे भय जीवोंने अनुग्रहके लिए उनमे महाकर्म-पयडि पाहुड’ का उपसहार करके पदरण्ड बनाए। अत त्रिभालगोचर समस्त पदार्थानो ग्रहण करनेवाले प्रत्यक्ष तथा अन्त वेजलज्ञानसे उत्पन्न हुआ है, प्रमाणस्वरूप आचार्य प्रणालिकाके द्वारा आगत है, प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणसे अनाधित है। अत यह शास्त्र प्रमाण है। इसलिए ‘तम्हा मोक्खविराणा भवियलोएण अब्भेसयच्चो’—मोक्षाभिलाषी भव्यात्माओंको इसका अभ्यास करना चाहिए।

पुन शान्तार कहता है—‘सूत्र जिसवादी क्यों नहीं है ?’ उत्तरमे कहते हैं—‘सूत्रमे

(१) ‘एत पमाणीभूदपरिचिन्नालेण आगपूण महाकम्मपरयडिपाहुडानियज उपपारा धरमेणभडारयं सपत्ता। तेष नि गिरिनपरचन्द्रगुहाए भूदकम्मपुण्डताण महाकम्मपरयडिपाहु. नयल सनपिद। तदा भूतत्रलिभट्टारएण सुदणइ पवाहवाच्छदभीएण भवियलानाणुग्गहट्ट मदाकम्मपरयडिपाहुडमुत्तणइ रियउण छण्डाण कयाणि तदा त्रिभालाणरसेस पयत्तनिसय पच्चकत्ताणत-केयणणप्यमवादो पमाणाभूदआहरियणालेणामदत्तादा दिट्ठित्तिसोद्दामावादो पमाणमवा गया तम्हा मोक्खविराणा अब्भेसयया। -ध० टी० सि० ७६२।

(२) जिसवादी सुत्त किण बायदे ? ण, जिसवादकरय-सयन्दोखसुक्क भूदत्रलि वयणविणिग्गाम्भ सुत्तसुत्त जिसवादचरिदादा। -ध० टी० सि० पृ० १०३३।

विसंगतपना नहीं है, कारण यह। विसंगतके कारण सपूर्ण दोषोंसे मुक्त भूतजलके वचनोंसे विनिर्गत है।" पुन शनाकर तर्क करता है—'कदाचित् भूतजलने असम्यक् देशना की हो?' इसके निराकरणमें धीरसेन स्वामी कहते हैं—“ण चासन्न भूदवलिभडारओ परुवेदि, महा-कम्मपयडिपाहुड-अभियधाणेण ओसारिदासेसराग-दोस-मोहत्तादो”—भूतजलि महारक असम्यक् प्ररूपण नहीं करेंगे, कारण उनने महाकर्मप्रकृतिप्राप्तके अवधारण करनेसे रागद्वेष तथा मोहका निराकरण कर दिया है।

वक्ताका जन विशिष्ट व्यक्तित्व स्थापित हो जाता है, तब उनकी वाणीमें भी स्वयं विशेषताका अन्तर्गत हो जाता है। इस चर्चासे यह बात भी ज्ञात हो जाती है, कि महाकर्मप्रकृति प्राप्तके परिशीलनसे राग, द्वेष तथा मोहका विनाश होता है, तब उस महाशास्त्रके उपसंहाररूप इस ग्रन्थराजके द्वारा भी रागद्वेष-मोहकी विशेष मन्दता होती है। कपायादिकी विशेष तीव्र अवस्थामें तो मनोवृत्ति महावक्ताका अवगाहन भी नहीं कर सकेगी। इसके लिए अतः करण वृत्तिकी निर्मलता तथा निश्चिन्तताकी परम आवश्यकता है। गृहस्थ सदृश आकुलतापूर्ण श्रमण भी इस शास्त्ररासास्वाद नहीं कर सकता। श्रमण सदृश मनोवृत्ति तथा पवित्र परिणतियुक्त व्यक्ति इस महाशास्त्रका सम्यक् परिशीलन करनेमें समर्थ होगा। गार्हस्थ्यक आकुलतावाला व्यक्ति इस अमृतनिधिका आनन्द न ले सकेगा। प्रतीत होता है, इस बातको लक्ष्यमें रखकर सर्वसाधारणको इस ज्ञानसिन्धु में अवगाहन करनेका पात्र नहीं कहा।

## मङ्गल-चर्चा

जैन शास्त्रकार अपने शास्त्रके प्रारम्भमें जिनेन्द्र भगवान्के गुणस्मरणरूप मंगल रचना करते हैं। इसका कारण आचार्य विद्यानन्दि यह बताते हैं कि 'अभिमतफल-सिद्धिका उपाय सुबोध है, वह शास्त्रसे प्राप्त होता है और शास्त्रकी उत्पत्ति आप्तसे होती है, अतः शास्त्रके प्रसादसे प्रबोध प्राप्त पुरुषोंका कर्तव्य है कि आत्मको अपनी प्रणामाञ्जलि अर्पित करें, कारण सत्पुरुष अपने पर किण्वण उपायकारको नहीं भूलते।'

मंगलके विषयमें तिलोयपण्णात्तिमें कहा है—

“पढमे मंगलउपणे सिस्सा सत्यस्स पारगा होंति ।

सज्झामे णिविन्ध विज्जा, विज्जाफलं चरिमे ॥ १।२९ ॥”

प्रथके आरम्भमें मंगल पाठसे शिष्य लोग शास्त्रके पारगामी होते हैं। मध्यमें मंगलके करनेसे निश्चिन्त विद्याकी उपलब्धि होती है तथा अन्तमें मंगल करनेसे विद्याका फल प्राप्त होता है। महावक्ता प्रथम पत्र नष्ट हो गया है, अतः प्रथके आदिमें क्या मंगल श्लोक या सूत्र रहे,

(१) “अभिमतफलविद्धेरमुपाय सुबोध

प्रमति स च शास्त्रात्स्य चोत्तरितात्तात् ।

इति मति स पूज्य, तत्प्रसादप्रबुधै-

नं हि इतनुत्तर साधवा विस्मरन्ति ॥’ -श्लो० पा० पृ० २ ।

इसना परिज्ञान नहीं हो सकता। यह भी कल्पना हो सकती है, कि कपायप्राप्तके समान यद्वा भी मगल न किया गया हो। कपायप्राप्तकी टीकामे वीरसेन स्वामी लिखते हैं—“ध्वजारण्य-मन्मिन्पूण गुणहरभडारयस्म पुण एसो अहिप्पाओ, जहा-कीरउ अणत्थ सवत्थ णियमेण अगहतणमोक्कारो, मगलफलस्य पारद्धकिरियाए अणुलभादो। एत्थ पुण णियमो गत्थि, परमागमुज्जोगम्मि णियमेण मगलफलोचलभादो। एदस्म अत्थविसेमस्स जागावणट्ठ गुणहरभडारएण गथस्सादीए ण मगल कय।” ( ११५ )।

“व्यवहार नयकी अपेक्षा गुणघर भट्टारकका यह अभिप्राय है कि परमागमके अतिरिक्त अन्य सरंग नियमसे अर्द्धत नमस्कार करा चाहिये, कारण प्रारब्धव्यक्तियाँ मगलफल-दिग्बन्धनताकी अनुपलब्धि है। यद्वा इस बातका नियम नहीं है। परमागममे उपयोग लगनेपर नियमसे मगलने फलकी प्राप्ति होती है। इस अर्थविशेषका परिज्ञान करानेके लिए गुणघर भट्टारकने प्रथमे आदिमे मगल नहीं किया।

यद् विवेचन आपातत विरोधान्मक दृष्टिगोचर होता है, किन्तु अनेकान्त शैलिके प्रकाशमे इनका समाधान स्वयं हो जाता है।

महाकर्मके मगलके विषयमे धनला टीकाके चतुर्थ वेदना नामक खण्डमे महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। उसमे आचार्य वीरसेन स्वामी लिखते हैं—“निन्द्य और अनिवद्धके भेदसे मगल दो प्रकारका है। तब फिर वेदना खण्डके आदिमे ‘णमो जिणाण’ आदि मगल सूत्र हैं, वे निन्द्य मगल हैं या अनिन्द्य मगल ? वे निवद्धमगलरूप नहीं हैं। कृति आदि चौबीस अनुयोग हैं अवयव जिसके ऐसे महाकर्मप्रकृति प्राप्तके आन्त्रिमे गौतमस्वामी द्वारा प्ररूपित मगलकी भूतवलि भट्टारकने यद्वासे उठाकर वेदना खण्डके प्रारम्भ स्थापित कर दिया, इस कारण इसे निन्द्य मगल माननेमे विरोध आता है। वेदनाखण्ड तो महाकर्मप्रकृति प्राप्त नहीं है। अवयवका अवयवी माननेमे विरोध है। अर्थात् वेदना खण्ड अवयव है उसे महाकर्म प्रकृति प्राप्त रूप अवयवी माननेमे विरोध आता है। भूतवलि तो गौतम हैं नहीं, विष्णु श्रुतके धारी परसेनाचार्यके शिष्य भूतवलिको सकल श्रुतधारी वर्धमान भगवान्के शिष्य गौतम माननेमे विरोध है। निन्द्य मगल माननेमे कारण रूप अन्य प्रकार है नहीं, अतः यह अनिवद्ध मगल है।”

आचार्य अपनी तर्कशैलीसे इसे निवद्धमगल भी सिद्ध करते हैं। महापरिमाणवाले गुणघरदेव रचित वेदना खण्डके उपसहाररूप वेदनाखण्डमे वेदनाका अभाव सर्वथा नहीं है। उनमे प्रमेयकी दृष्टिमे कथञ्चित् एक्य हैं। आचार्य भूतवलि और गौतम भी कथञ्चित् अभिन्नता द्योतित करते हुए कहते हैं—“अथवा भूदवली गोदमो चैर, एगाहिप्पायत्तादो, तदो सिद्ध निवद्धमगलचमपि।” अथवा भूतवलि गौतम है, कारण उनके अभिप्रायमे एकत्व है।

(1) 'निन्द्यानिन्द्यमण्य दुविद मगलं' तत्वेद किं निन्द्यमाहा अनिन्द्यमिदि । ण ताव निन्द्यमगलमिदि २ महाकर्मरदाटपाहुइस्स वदिआदिचट्ठीस-अणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परुविदस्स भूतवलिभडारएण वयणाणस्स आदीए मगलं एत्था आणेदूण दावदस्स निवद्धत्तविरोहादो । ण च वदणाणइ महाकर्मपदिपाहुइ अवयवस्स अवयविकिरिहादो । ण च भूदवली गादमो विण्डुदधारवस्स परसेगाइरियत्तस्स भूदवलिस्स सपलमुदाधारवद्वमाणतेनासिगादमत्तविरोहादा । ण च अणो पयारो निवद्धमगलचसइ हेदुभ्वा वरिय । तद्वा अनिवद्धमगलमिदि ।

यहां निवद्ध, अनिवद्ध मंगलके विषयमें विशेष प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है। अलक्षार चिन्तामणिमें लिखा है—

“स्वक्रान्यमुखे स्वकृत पद्य निवद्धम्, परकृतमनिवद्धम् ।”

इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्वकृत मंगल निवद्ध है और अन्यरचित अनिवद्ध है।

धवला टीकाकी आदर्श प्रतिमें लिखा है—“जो सुत्तसादीए सुत्तकचारेण कयदेव-  
दाणमोक्कारो तं णिवद्धमंगलं ।” —अर्थात् सूत्रके आदिमें सूत्ररचयिताके द्वारा रचित  
देवता-नमस्कार निवद्ध मंगल है। “जो सुत्तसादीए सुत्तकचारेण णिवद्धो देवदाण-  
मोक्कारो तमणिवद्धमंगलं ।” सूत्रके आदिमें सूत्र रचयिताके द्वारा निवद्ध ( अर्थात् रचित नहीं  
किन्तु अन्य रचितको उठाकर लाया गया ) देवता-नमस्कार रूप अनिवद्ध मंगल है। जैसे—‘णमो  
जिणाण’ आदि मंगलसूत्र, गौतमस्वामी रचित महाकम्मपयडिपाहुडसे उठाकर वेदनारण्डके प्रारम्भमें  
मंगल बनाए जानेसे ‘अनिवद्धमंगल’ है। इसी प्रकार अनिवद्धमंगलत्व ‘णमो अरिहंताण’  
आदि णमोकारमन्त्रको प्राप्त होता है। धवलाकी मूल प्रतिके अनुसार जब यह मन्त्र अनिवद्ध  
मंगलात्मक है, तब यह अपने आप स्पष्ट हो जाता है, कि पुण्यदन्ताचार्य इसके रचयिता नहीं है।  
ऐसी स्थितिमें इस अपराजित मन्त्रके विषयमें यह उक्ति अवाधित रहती है—

“अनादिमूलमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः।

मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥”

विद्यानुवादपूर्वमें गणधरदेवने अगुप्तप्रसेना आदि सात सौ अल्पविद्याओं, रोहिणी  
आदि पाच सौ महाविद्याओंका, अष्टाग महानिमित्तोंका एक करोड दस लक्ष पदों द्वारा वर्णन  
किया है। उस महाशास्त्रके आधारपर रचित सक्षिप्त रूपधारी विद्यानुशासन ग्रंथ फलटणमें  
देखा। इस ग्रंथमें मंत्रों आदिका विशेष विशद वर्णन किया गया है। इसमें गणधरवलय मंत्रको  
देखनेपर ज्ञात हुआ, कि महानघ टीकाके प्रारम्भमें छापे गए णमो जिणाण आदि चवालीस  
मंगल मंत्र गणधरवलय मंत्रके अग्ररूप हैं। विद्यानुशासनमें इस मंत्रको बहुत प्रभावशाली कहा  
है। भक्तामरकथा चरमत्र सहित छपी है। उसके यंत्रोंमें णमो जिणाण आदि मंत्रोंका ग्रहण  
किया गया है। यह बात महाबधके मंगलसूत्रोंके तुलनात्मक टिप्पणमें देखनेसे विदित हो जायगी,  
कि किस भक्तामरयंत्रमें महानघका कौनसे मंगलसूत्रके साथ सादृश्य है। ‘णमो जिणाण’  
आदि मंगलसूत्र गौतम गणधर द्वारा निवद्ध हैं। यह वीरसेन स्वामी धवलाटीकामें बताते हैं। वे  
यह भी कहते हैं, कि ये महाकम्मपयडि पाहुडके मंगलरूप हैं, जिनको भूतबलि भङ्गारकने अपने  
शास्त्रमें उठाकर ररे और अपने मंगलसूत्र स्वीकार किए—“महाकम्मपयडिपाहुडस्स कदि-  
आटिचउवीस अणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परुविदस्स भूदवलिभडारएण  
वेयणाखडस्स आदीए मंगलडु ततो आणेदुण ठविदस्स ।” पृ० ७५५-५६ ।

(१) “विद्याना अनुवाद अनुक्रमेण वर्णनं यस्मिन् तद्विद्यानुवाद दशम पूर्वम् ।”

—गो० जी० प्र० टी० ३६६ ।

(२) “नित्यं या गणधरमन्त्रं विशदं संपठत्यनुम् । भास्वस्तस्य पुष्पाना निर्जरा पापकर्मणाम् ॥  
न स्यादुपद्रव फक्षित् व्याधिभूतविषादिभि । तदसदवीक्षण स्वप्ने समाधिश्च भवेन्मृता ॥”



गणधरवचन मंत्रों विद्यातुशास्त्रने 'गणधर्मन्त्र' कहा है। उस मंत्रमें णमो जिणाण आदिकी साधनाविधि बताई है और स्पष्टाया है, कि किस किस मंत्रसे दारा किस किस रोगादि विपत्तियोंका निवारण एव इष्ट साधना की जा सकती है। णमो जिणाण आदि सूत्र गणधरदेव द्वारा प्ररूपित हैं, उनका गणधरमंत्र, भक्तान्तरयत्रमंत्रम उपयोग किया गया है। भक्तान्तरस्तोत्रने रचयिता मानतुगमुनि मात्रिक विद्वान् तथा योगी थे। उनन अपने स्तोत्रके साथ विशेष सामर्थ्यान् गणधर स्वामी द्वारा निरूपण किए गए मंत्रोंको उसी प्रकार अपनाया, जैसे भूतबलि आचार्यने भी उन्हें ग्रहण किया।

वास्तवमें वे मंत्र गणधरोक्त हैं। गणधरवल्लभ मंत्र पाठमें णमो जिणाण आदि सूत्रोंके पूरम लिखा है "ॐ णमो अरिहताण, ॐ णमो सिद्धाण, ॐ णमो आदरियाण, ॐ णमो उज्झायाण, ॐ णमो लोएसच्चसाहूण" ये मंगलमंत्र णमोकारमंत्रसे विशेष भिन्न नहीं हैं। यहा केवल 'अ' गब्द की अधिक योजना हुई है। इन मंत्रोंसे उल्लेखके साथमें किसी मंत्राराधनामें 'णमो अरिहताण, णमो जिणाण, णमो त्रिउच्चगह्वट्टिपत्ताण मंत्रोंका जाप बताया है, तो किसी में पत्रपरमेष्ठी वाचक अथ णमोकार मंत्रके अशोक उपयोग किया है। इस विवेचनका निष्कर्ष यह है, कि जिम प्रकार "णमो जिणाण" आदि मंगलमंत्र भूतबलि द्वारा संगृहीत हैं, ग्रथित नहीं हैं, उसी प्रकार णमोकार मंत्ररूपसे ख्यात अनादि मूलमंत्रनामसे वदित 'णमो अरिहताण' आदि भी पुण्यदन्त आचार्य द्वारा संगृहीत हैं, ग्रथित नहीं हैं। इसी कारण वीरसेन स्वामीन घबलाटीना (१८४१) में इसे अनियद्ध मंगल कहा है, कारण अलकारचिन्तामणि कारणे 'पङ्कतमनिबद्ध' बद्धकर अनियद्धत्वके स्वरूप पर प्रकाश डाला है। आदर्श प्रतिभे पाठमें परिवर्तन घबला टीनाके प्रथम भागमें हो जानसे यथार्थमें 'विनायक प्रवृत्तान् रचयामास वानारम्' वाली बात हो गई। पुण्यदन्त स्वामी मंत्रशास्त्रने महान् ज्ञाता थे। उनने धरसेन गुरु जग परीक्षार्थ दिए गए असुद्धमंत्रों मंत्रशास्त्रने व्याकरणके अनुसार शुद्ध करके उसे सिद्ध किया था। अतः गुरुदेव धरसेन स्वामी द्वारा प्रतिपादित महाकम्मपयडि नामक परमागमको उपसंहार रूप करके ग्रन्थरचनाके महान् कार्य निमित्त उनने णमोकारमंत्रको ही अपना मंगल बनाया कारण यह मंत्र—'मंगलाण च सर्वेसि पढमं होइ मंगल' रूपसे प्रसिद्ध रहा है।

### श्रेष्ठमंगल अनादिमंगल

इस विवेचनसे यह ज्ञात होता है कि समाजमें परंपरासे प्राप्त 'णमोकारमंत्र अनादिमूलमंत्र है' यह प्रसिद्धि निराधार नहीं है। विश्व अनादि है। मोक्षमार्ग अनादि है, उसके उपदेष्टा तीर्थंकरादि परमदेवोंका प्रादुर्भाव भी परंपराकी दृष्टिमें अनादि है। तीर्थंकर वधमान भगवानकी दिव्यध्वनि सुनकर गौतम स्वामीने द्वादशशास्त्री रचना की, उसमें यह अनादिमूलमंत्र आया। उनके पूर्ववर्ती सर्वज्ञ तीर्थंकर प्रभुने जो जो तत्त्व दिव्यध्वनि द्वारा प्रकाशित किये, उन्हें तत्कालीन गणधर अपने द्वादशांग वाणी रूपमें रचे। इस अपेक्षासे अनादि जिनवाणीका अंग होनेमें णमोकारमंत्र अनादिमूलमंत्र है, यह निश्चय रचना उचित तथा कल्याणकारी है। महावधके प्रारम्भमें भूतबलि स्वामीने मंगल रचना की या नहीं, इस शकका निराकरण वीरसेन स्वामीके इस प्रकाशसे

हो जाता है, कि वेदनाखण्डका मंगलाचरण वर्गणा नामक पाचवें और महावध नामक छठवें खण्डका भी मंगलाचरण समझना चाहिए, कारण वर्गणाखण्ड तथा महावधके आदिमें मंगल नहीं किया गया है—

“उवरि उच्चमाणेसु तिसु खंडेसु कस्सेद मगलं ? तिण्ण खडाणं, कुदो ? वग्गणा-  
महावंधानामादीए मगलाकरणादो ।” ( ध० टी० सि० ७५६ ) ।

एक वेदना खण्डका मंगलाचरण अन्य दो खण्डोंका मंगल कैसे हो जायगा ? यह शका ठीक नहीं है, कारण कृतिके आदिमें उक्त इसी मंगलकी रोप तेईस अनुयोग द्वारोंमें प्रवृत्ति है । इस कथनका भाव यह है कि गौतमस्वामीने चौबीस अनुयोग द्वारोंके प्रारम्भिक कृति अनुयोग द्वारके आरम्भमें मंगल रचना की है, शेष तेईस अनुयोग द्वारोंके आरम्भमें रचना नहीं की, अतः जैसे कृति अनुयोग द्वारका मंगल तेईस अनुयोग द्वारका मंगल होगा, वही न्याय यहा भी लगाना चाहिए, इस आधारसे वेदनाखण्डके मंगलसूत्र वर्गणा तथा महावधके मंगल सूत्र भी समझना चाहिए । इससे यह परिज्ञान होता है, कि महावधका मंगल वेदनाखण्डके प्रारम्भमें विद्यमान है ।

### मंगलपद्यके रचयिता

अत्र हमारे समक्ष एक दूसरी कठिनता उपस्थित होती है । वेंकट ‘णमो जिणाणं’ आदि सूत्रोंके पहले ‘सिद्धा दद्धमला’ आदि छह मंगलपद्य पाए जाते हैं । ये भी क्या गणधरदेव कृत हैं जिनको भूतत्रलि स्वामीने श्रपनाया है ? विदित होता है कि मंगलपद्य गणधरदेवकी कृति नहीं है और न भूतत्रलि स्वामीकी ही रचना है । किन्तु वीरसेनाचार्यने ये पद्य बनाए हैं, ऐसी हमारी धारणा है । उसका कारण इस प्रकार है—णमो जिणाण ॥१॥ सूत्रके अन्तमें टीकाकार वीरसेन स्वामीने लिखा है—“एव दब्बट्टियज्जणाणुग्गहणद्ध णमोस्कार गोदमभडारओ महाकम्म-पयडिपाहुडस्स आदिहि काऊण पज्जट्ठियणयाणुग्गहणट्ठ उत्तरसुत्ताणि भणदि णमो ओहिज्जिणाण ॥२॥” ये वाक्य द्वितीय सूत्रकी भूमिकारूप हैं । ‘सिद्धा दद्धमला’ आदि पद्यों पर कोई टीका नहीं की गई है । वीरसेन स्वामी सदृश विस्तृत रचनाकार उन पद्यों पर टीका किए बिना न रहते, यदि वह गणधरदेव या भूतत्रलि आचार्यकी कृति होती ।

मंगल पद्योंका क्रमांक स्वतंत्र है और सूत्रोंका भी क्रमांक पृथक् है ।

‘णमो जिणाण’ इस सूत्रकी टीकामें मंगलके विषयमें विशेष उद्घापोहात्मक चर्चा द्वारा आचार्य वीरसेनने प्रकाश डाला है । यदि मंगलपद्य टीकाकार कृत न होते, तो यह चर्चा मंगल पद्य रचनाकी टीका रूपमें पहले ही वर्णित होती । एक बात यह भी है कि वीरसेन स्वामीकी शैली भी ऐसी मिलती है, कि ये नवीन प्ररूपणा या नवीन खण्डके प्रारम्भमें मंगलपद्य बनाते हैं । इन कारणोंसे यह निश्चय करना पड़ता है कि मंगलपद्य वीरसेन रचित हैं और मंगलसूत्र भगवान् गौतम गणधर रचित हैं ।

(१) “अथ वेयाए आदाए उच्च मगल सेसदोराडण होदि ? ण, कदीए आदीदि उच्चस एदस्येय मगलस्स सेसवेवीस अणियोगादारेसु पउच्चिदवणादो । महाकम्मपयडिपाहुडत्तणेण एदेसिं पि एगउदवणादो ।”

जिस प्रकार गौतम गणधरके मगलसूत्रोंमें भूतबलि स्वामीने अपनी रचनाका मगल बनाया, वदनुसार इस हिन्दी टीकामें भी धीरसेन स्वामीके मगलपद्योंको हमने विघ्न विनाश निमित्त अपने मगलरूपमें ग्रहण किया।

## प्रतिलिपिके विषयमें

महानघकी मूल प्रति ताड़पत्रपर कन्नड़ लिपिमें है। भाषा प्राकृत है। प्राचीन प्रति होनेके कारण उसकी लिपि भी पुरातन कन्नड़ है। महानघप्रथ २१९ ताड़पत्रों में है। इसके आरम्भके २६ ताड़पत्रोंका महानघसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उसमें सत्कर्मपञ्चिका है, जो पट्टसङ्गमके अन्य विषय स्थलोंपर प्रकाश डालती है। महावधका प्रारम्भिक ताड़पत्र अनुपलब्ध है। सम्पूर्णप्रथके १४ पत्र नष्ट हो चुके हैं। इसमें लगभग तीन चार सहस्र श्लोक प्रमाण शक्य तो सदाके लिए हमारे दुर्भाग्यसे चला गया। कहीं कहीं पत्र इतस्तत् श्रुत भी हैं। इसके कारण अनेक महत्त्वपूर्ण स्थलोंका अय्योष नहीं हो सकता, तथा किसी विषयका सहस्रांश रसभग हो जाता है, कारण प्रसंग-परम्पराका अभाव हो गया है। ऐसे अवसरपर ह्ययमें परिताप उत्पन्न होता है, कि हमारी असाधधानीके कारण उस महानिधिका अंश लुप्त होगया, जो जगत्के कल्याण निमित्त धरसेन स्वामीने भूतबलि मुनीन्द्रके द्वारा बड़ी कठिनतासे नष्ट होनेसे बचाया था।<sup>१</sup> आन उस लुप्त अंशकी पूर्तिकी क्या ही दूर, उसकी पक्तियोंकी पूर्ति करना भी असम्भव है, कारण भूतबलि स्वामी सदृश क्षयोपशम किसे प्राप्त है ?

महानघमें प्रकृति वधका वर्णन ताड़पत्र ५० पर्यन्त है। महानघके प्रस्तुत भागमें २२ ताड़पत्रोंका मूल तथा अनुवाक छपा जा रहा है। स्थितिबध पत्र न० १२ पर्यन्त है तथा

- (१) प० टीकामें ( भाग १, ४९ भूमिका ) यह उल्लेख सम्पादक नीचे किया है कि तुम्बुद्राचार्यने छठें खण्डपर छठ हजार श्लोक प्रमाण पञ्चिका लिखी। पूर्वोक्त पञ्चिकाका महावधसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह अन्य टीका हागा।
- (२) आचार्य १०८ श्री शान्तिसागर महाराजों २ वय हुए महानघके मूल सूत्रोंकी प्रतिलिपि करके मेरुके गरीमें हमारे पास पत्र भिजवाया था। उच्चमें हमने ममाचार भजा कि समस्त महाबन्ध सजात्मक हा है। इसमें टीकाका अंश सम्मिलित नहीं है। इतनी ४० हजार प्रमाण प्रतिकी नकल बिना लेनके नहीं बन सकती। ग्रन्थमें तीन चार हजार प्रमाण श्लोक ताड़पत्र जीर्ण होनेसे नष्ट हागए। इतने समाचारने आचार्य महाराजकी प्रशान्त आत्मामें महान पीड़ा पैदा कर दा। उनमें हमसे स्वयं कहा था तुम्हारे पत्रसे चित्तमें बहुत कुछ हुआ और भय हुआ कि कहीं जाने जाकर शोषण भी इत न हो जाय। इससे दाम्पत्यमें इन शाल्कोंकी खुदाई हानर बहुत काल पर्यन्त इन विद्वान्प्रयोगोंके छाप या नाशका भय न रहेगा। अतः तुम्हारे पत्रके कारण ही जिनगणी जीर्णोद्धारक सवका इन अयनिमित्त स्थापना को गइ है। उस समयमें लगभग द्वा लक्ष अथवा एकत्रिंश हा चुके हैं।
- आचार्य महाराज सदृश किसी महान आत्मके अन्त करणमें श्रुतरथाकी भावना यदि पहले उत्पन्न हुए हावै, तो आन तीन चार हजार श्लोकोंका विनाश न हो पाता।

अनुभागबन्धका वर्णन १७० न० के ताडपत्र तक है। प्रदेशबन्ध २१९ वें न० के ताडपत्र तक है। ताडपत्रकी प्रतिभा समय प्राचीन कन्नड़ीको देखकर ५० लोकनाथ जी सूचित करते हैं कि ताडपत्रकी प्रति लगभग सात या आठ सौ वर्ष प्राचीन होगी। वे यह भी सूचित करते हैं, कि महाबन्धकी ताडपत्रराशिमें चार पाँच घुटित पत्र भी अलग हैं, जो किसी किसी प्रकरणके घुटित अक्षके पूरक प्रतीत होते हैं। उनका सम्बन्ध प्रकृतिबन्धसे नहीं है। उन पत्रोंको आगेके खण्डोंकी प्रतिमें रखा है। सम्पूर्णग्रन्थके २१९ पत्रोंमेंसे पञ्चिकाके २७ तथा चिन्त १४ पत्रोंके घटानेसे उपलब्ध ग्रन्थ १७९ ताडपत्र प्रमाण है।

महाबन्धकी प्रतिलिपिकी शुद्धताके लिए पूर्वोक्त विद्वानों द्वारा ताडपत्रकी मातृप्रतिसे अपने पासकी प्रतिभा पुनः मिलान करवाया है। इससे आशा है, कि यह मातृप्रतिके प्रतिकूल न होगी।

## महाबन्धका प्रभाव

समस्त जैनवाङ्मयम बन्धके विषयमें महाबन्ध श्रेष्ठ रचना है। अत्यन्त प्राचीन, पूज्य तथा प्रामाणिक ग्रन्थ होनेके कारण यह महाशास्त्र भूतपति स्वामीके पश्चाद्दत्ता प्रायः सभी महान् शास्त्रकारोंका बन्धके विषयमें मार्गदर्शक रहा है। तत्प्रायः प्रातिकालकारके देखनेसे ज्ञात होता है, कि अकलङ्क स्वामीपर महाबन्धका प्रभाव पडा है। वे महाबन्धको 'आगम' शब्दसे सकीर्तित करके अपना आदर तथा श्रद्धाका भाव व्यक्त करते हुए प्रतीत होते हैं—

“आगमे ह्युक्तं मनसा मनः परिच्छिद्य परेपा संज्ञादीन् जानाति, इति मनसा-  
त्मनेत्यर्थः। तमात्मनाधुष्यात्मन परेपा च चिन्ता-जीवित-मरण-सुख-दुःख-लामा-  
लाभादीन् विजानाति। व्यक्तमनसा जीवानामर्थं जानाति, नाव्यक्तमनसाम्॥”

—त० रा० पृ० ५८।

“मणेण माणस पडिचिदइत्ता परेसि सण्णासदिमदिचिंतादि विजाणदि।  
जीविदमरण लामालाम सुहदुक्ख णगरविणास देहविणास जणपदविणास अदिवुट्टि-  
अणावुट्टि-सुवुट्टि-दुवुट्टि-सुभिन्स दुभिन्स खेमाखेम भयरोग उच्चम इच्चम समम  
णोवत्तमणाण जीवाण णोवत्तमणाण जीवाण जाणदि॥” —महाबन्ध पृ० २४, २५।

गोम्मटसारपर भी महाबन्धका प्रभाव स्पष्टतया दृग्गोचर होता है। उदाहरणार्थ, इस प्रकृतिवधाधिकारके बधसामित्तविचय अध्यायसे तुलना करें, तो पता चलेगा, कि यहाँ वर्णित कर्मप्रकृतियोंके बधको अनवधों आदिका कथन गोम्मटसार कर्मकाण्डकी 'मिच्छत्तहुडसदा' आदि गाथा ९५ से १२० तक पद्यरूपमें निरूद्ध है। महाबन्धमें बधके सादि अनादि ध्रुव अधुषरूप भेदोंका वर्णन ३३-४३ पृष्ठपर किया गया है। वह गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा १२० से १२४ में निरूपित हुआ है।

महाबन्धमें पृ० २१-२४ में 'ओगाहणा जहण्णा' आदि सोलह गाथाएँ हैं, वे तनिक परिवर्तनके साथ गोम्मटसार जीवकाण्डकी ज्ञानमार्गणामे वर्णित हैं।

(१) समस्त महाबन्ध गत्यरूप रचना है। इसमें पूर्वोक्त १६ गाथाओंके विषय अथ पत्ररचनाका अभाव है। स्थितिबन्धाधिनारादिये दो तीन गाथाएँ और पाई जाती हैं।

अन्य आगमपर महानघका प्रभाव प्रकट ज्ञात होगा, जहाँ भी उनमें महावघके प्रमेय सम्बन्धी चर्चा की गई है, कारण बधविषयके प्रतिपादक महावघसे प्राचीन प्रथरानकी अनुपलब्धि है।

## महावन्धके परिशीलनकी उपयोगिता

भौतिक उपयोगितावादी महानघको देखाकर आनन्दामृत पान नहीं कर सकेगा, कारण उसकी दृष्टिमें बाल्य पदार्थोंकी उपलब्धि ही आत्मोपलब्धि है। अनेक व्यक्तियोंकी यह धारणा रही है कि इन सिद्धान्तप्रयोगोंमें अपूर्ण तथा अश्रुतपूर्ण विद्याका भण्डार है, जिसके बलसे लोहा सोना रूपमें परिणत किया जा सकता है, आकाशमें विमान उड़ाये जा सकते हैं आदि विविध वैज्ञानिक चमत्कारोंका आनन्द होनेकी मधुर कल्पनाके कारण लोगोंकी इन शास्त्रों प्रति अत्यधिक ममता रही, किन्तु प्रत्यक्ष परिचयने द्वारा जब यह ज्ञात होता है, कि महावघमें केवल प्रकृति, स्थिति, अनुभाव तथा प्रदेशरूप बन्धवृष्टयका सूक्ष्म एव विस्तृत वर्णन है, तब यह सोचता है, इसमें हमें करना क्या है? अपना काम करो, ऐसी रचनाओंमें अपने बहुमूल्य समयका व्यय क्यों किया जाय? आपातत यह दृष्टि प्रिय तथा आकर्षक मालूम पड़ती है, किन्तु ज्ञानवान् व्यक्तियों यह विचार अविद्याचकारपूर्ण प्रतीत होता है। क्योंकि अर्थभक्त अनर्थकी उत्पादक तथा आत्मनिधिका लोप करनेवाली सामग्रीको सर्वस्व मानता है। वह इन प्रयोगोंमें भौतिक विज्ञानकी सामग्री न पा निराश होता है, किन्तु ज्ञानवान् तथा आत्मनिधिके वैभक्तों समझने वाला अनुभव करता है, कि वास्तविक वैज्ञानिक चमत्कारपूर्ण सामग्रीसे यह महाशास्त्र आपूर्ण है। आत्मा अपने प्रयत्नसे कर्मोंके जालमें फँसता है। जो ज्ञान नामक सामग्री बधनको और घुष्ट करती है, वह तो महान् अग्निदा है। श्रम कला, विद्या, विज्ञान या चमत्कार तो इसमें है कि यह आत्मा कर्मात्मी राशिको घुष्ट करने अपने अनन्त तथा अमर्यादित निभूतियोंसे अलङ्कृत 'आत्मन्' को अभिव्यक्त करे। भगवान् घृषमदवने आसमुद्रान्त निशाल साम्राज्यको छोड़कर 'आत्मन्' की 'प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। अधशास्त्री रूपोंके हानिदाहपर ही दृष्टि रखता है, किन्तु ज्ञानी जीव आत्मके स्वरूपको ढकने वाले आत्मन्को हानि तथा सत्ता और निचराको अपना लाभ समझता है। यही सच्चा सपत्तिशाली है, जिसे आत्मत्वकी उपलब्धि है और यही चमत्कारपूर्ण शक्ति निशिष्ट है, जिसने कर्मराशिको घुष्ट किया है तथा इसमें उद्योग करता रहता है।

नाटक समयसारमें नितनी सुन्दर बात कही गई है—

‘जि जे जगनासी जीव थार जगम रूप, ते ते निज नस करि राखे बल तोरिके ।  
महा अभिमानी ऐसो आसव अगाध जोया, रोषि रण थम ठाड़ो मयो मूल मोरिके ॥  
थायो तिहि धानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुमट सवायो बल फेरिके ।  
आसव पडान्यो रणयम्म तोड़ि डान्यो ताहि निरसि बनारसि नमत कर जोरिके ॥’

(१) निहाय यं धामपरवारिगतसं बहुमिमेमा वसुधानधुं कतीम् ।

सुसुपरिद्विगजुङ्गलदिरात्मवान् प्रसु प्रपञ्च सहिष्णुरन्युत ॥ —बहस्व० ४ ।

सूक्ष्मबुद्धिधारी महाज्ञानियोंके लिए यही तत्त्व महर्षि भूतनलिने चालीस हजार श्लोक प्रमाण महाग्रन्थशास्त्रद्वारा निबद्ध किया है। महाग्रन्थके त्रिमल और त्रिपुल प्रकाशसे साधक अपनी प्रात्माके अतस्तलमें छुपे हुए अज्ञान एव मोहान्धकारको दूर कर जीवनको महाधवल बनाता है। जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवकी आराधनाके द्वारा पूजक जिनेन्द्रका पद प्राप्त करता है, उसी प्रकार महाधवलके सम्यक् परिशीलन तथा स्वाध्यायसे जीवन भी महाधवल हो जाता है। अनुभाग-यधकी प्रशस्तिमें प्रथको 'पुण्याकर' बताया है। यथार्थमें यह पुण्यकी उत्पत्तिका कारण है। पुण्य-या भंडार है। श्रेयोमार्गीकी सिद्धिना निमित्त है।

## प्रशस्ति-परिचय

महाग्रन्थ ग्रन्थमें ऐतिहासिक उल्लेखना दर्शन नहीं होता। प्रकृतिग्रन्थ-अधिकारके प्रारम्भिक अंशके नष्ट हो जानेसे उसके ऐतिहासिक उल्लेखका परिद्वान होना असंभव है। इस अधिकारके अन्तमें प्रशस्तिरूपमें भी कोई उल्लेख नहीं है। स्थितिग्रन्थ, अनुभागग्रन्थ तथा प्रदेशग्रन्थ इन तीन अधिकारोंके अन्तमें ही प्रशस्ति पाई जाती है।

प्रशस्तिमें प्रथकर्तारना नाम तक नहीं आया है। स्थितिग्रन्थके पद्य न० ७ और प्रदेश-ग्रन्थके पद्य न० ५ से, जो समान हैं, विदित होता है, कि सेनप्रधू धनितारत्न मल्लिकार्जुन देवीने अपने पंचमी व्रतके उद्यापनमें ज्ञात तथा यतिपति माधनदि महाराजको इस ग्रन्थकी प्रतिलिपि अर्पण की थी।

मल्लिकार्जुन देवीको शीलनिधान, ललनारत्न, जिनपदकमलधर, सिद्धान्तशास्त्रमें उपयुक्त अत करणशाली तथा अनेकगुणगण अलंकृत बताया है। उनमें पुण्याकर महाग्रन्थ पुस्तक जिन माधनदि मुनीश्वरको भेट की थी, वे गुप्तिग्रन्थभूषित, शतयुद्धित, कामजिजेता, सिद्धातसिन्धुकी वृद्धि करनेको चन्द्रमातुल्य तथा सिद्धान्तशास्त्रके पारगत विद्वान् थे।

वे मेघचंद्र व्रतपतिके चरणकमलके अमर सदश थे।

मल्लिकार्जुन देवी सारे जगत्में अपने गुणोंके कारण विख्यात थी। स्वर्त्म पत्रिकासे ज्ञात होता है कि प्रशस्तिमें आगत 'सेनका' पूरा नाम शातिपेण है। ये राजा थे। रानपत्नी मल्लिकार्जुनदेवी द्वारा व्रतोद्यापनके अवसरपर शास्त्रना दान इस बातको सूचित करता है, कि उस समय महिला नगर्के हृदय में जिनराणी माताके प्रति विशेष भक्ति थी।

- (१) महाग्रन्थमें कहीं कहीं भूतनलि स्वामीने मित्रमर्तोका उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ पृष्ठ ६३ में तेजोलेखाको अनेका वात कहते शक्तिगिदितिग अणतांगु न० ४ एव०। उक्त० वेसागराय० सादरे० एव०। पद्मेश्वराना वर्णन पृ० ६४ में अणतांगु० ४ एव० ( स० )। यहा 'वेसि च' शब्द द्वारा 'सका उल्लेख नहीं हुआ है।

लगात निपात्रविचय है।" कर्मोंके विपात्र आदिने विषयमें अनुचितन करनेसे रागादिकी मन्दता होती है और कपायनिजयका कार्य सरल हो जाता है। समयप्राभृतकारके शर्तमें जीव विचारता है—

“जीवस्स णत्थि वग्गो ण उग्गणा ण व फड्ढया केई ।

णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि ॥ ५२ ॥

जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण वघठाणा वा ।

णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गट्ठाणया केई ॥ ५३ ॥

णो ठिदिवघट्ठाणा जीवस्स ण मक्खिलेमठाणा वा ।

णेत्र निसोहिट्ठाणा णो सजमलद्धिठाणा वा ॥ ५४ ॥

णेत्र य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।

जेण दु एदे सव्व पुग्गलदव्वस्स पग्गिणामा ॥ ५५ ॥”

इस जीवके न तो वग है, न वर्गणा है, न स्पघक हैं, न अध्यससायस्थान है, न अनुभागस्थान है। जीवके न योगस्थान है, न वधस्थान है, न उदयस्थान है, न भागणास्थान है, न स्थितिवधस्थान है, न सकलेशस्थान है, न विशुद्धिस्थान है, न समयमलब्धिस्थान है। जीवके न जीवस्थान है, न गुणस्थान है, कारण ये सब पुद्गलद्रव्यके परिणाम हैं।

यह है परिशुद्ध परमार्थ दृष्टि। सुसुप्तु व्ययहारदृष्टिमें भी दृष्टिगोचर रहता है। यदि परान्त शुद्ध दृष्टिपर आभित हो जाय तो फिर यह मोक्षमार्गके विषयमें अकमप्य बनकर विषयादि-भ्रं प्रवृत्तिकर पान-मकम अधिक निमग्न होता है। जिसने अपूर्ण अस्थायमें भी अपनेको साक्षात् पूर्ण मान लिया है, उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है, इसी प्रकार निश्चयैकान्तका आश्रय हासला हेतु बन जाता है। व्ययहारैकान्त वाला तात्त्रिक दृष्टिमें सर्वथा भुला अपनेको 'दासोऽह'का पाठ पढ़ने वाला समझता है। 'सोऽह'की विमल दृष्टि उसे नहीं प्राप्त होती है। इस कारण समन्तभद्र स्वामी कहते हैं—

“निरपेक्षा नया मिव्या' सापेक्षा वस्तु तेऽयंकृत् ॥” —आ० मी० ।

निवकी साधक व्ययहारदृष्टिमें विचारता है—

“व्ययहारेण दु एदे जीवस्स हवति वण्णमादीया ।

गुणठाणता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥ ५६ ॥” —स० प्रा० ।

ये वण आदि गुणस्थान पर्यन्त भाव व्ययहार नयसे पाये जाते हैं। निरचय नयसी अपेक्षा वे षोड नहीं हैं।

अपज्ञानी पुरुषोंके लिए बधक विषयमें परित्थान करनेके लिए सुत्रकार उमास्वामीने लिखा है—

“प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदशास्तद्विषयः ॥” —त० सू० ८।३ ।

उस बधके प्रवृत्ति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रवेशवध ये चार भेद हैं। विस्तृतरुचि एव

सूक्ष्मबुद्धिधारी महाज्ञानियोंके लिए यही तत्त्व महर्षि भूतवल्लिने चालीस हजार श्लोक प्रमाण महाप्रवचनद्वारा निबद्ध किया है। महाप्रवचके निमल और विपुल प्रकाशसे साथक अपनी प्रात्माके अतस्तलमें छुपे हुए अज्ञान एव मोहान्धकारको दूर कर जीवनको महाप्रवचन बनाता है। जिस प्रकार जिनेन्द्रदेवकी आराधनाके द्वारा पूजक जिनेन्द्रका पद प्राप्त करता है, उसी प्रकार महाप्रवचके सम्यक् परिशीलन तथा स्वाध्यायसे जीवन भी महाप्रवचन हो जाता है। अनुभाग-प्रवचनी प्रशस्तिमें प्रथको 'पुण्याकर' बताया है। यथार्थमें यह पुण्यकी उत्पत्तिका कारण है। पुण्य-प्रवचन भङ्ग है। श्रेयोमार्गकी सिद्धिना निमित्त है।

## प्रशस्ति-परिचय

महाप्रवच प्रथममें ऐतिहासिक उल्लेखका दर्शन नहीं होता। प्रकृतिप्रवच-अधिकारके प्रारम्भिक अंशके नष्ट हो जानेसे उसके 'ऐतिहासिक' उल्लेखका परिज्ञान होना असंभव है। इस अधिकारके अन्तमें प्रशस्तिरूपमें भी कोई उल्लेख नहीं है। स्थितिप्रवच, अनुभागप्रवच तथा प्रदेशप्रवच इन तीन अधिकारोंके अन्तमें ही प्रशस्ति पाई जाती है।

प्रशस्तिमें प्रथकर्ताना नाम तक नहीं आया है। स्थितिप्रवचके पद्य न० ७ और प्रदेश-प्रवचके पद्य न० ५ से, जो समान हैं, निहित होता है, कि सेनप्रभू धनितारत्न मल्लिका देवीने अपने पचमी प्रवचके उद्यापनमें शात तथा यतिपति माधनदि महाराजको इस प्रथकी प्रतिलिपि अर्पण की थी।

मल्लिका देवीको शीलनिधान, ललनारत्न, जिनपदकमलभ्रमर, सिद्धान्तशास्त्रमें उपयुक्त अतः करणशाली तथा अनेकगुणगण अलंकृत बताया है। उनमें पुण्याकर महाप्रवच पुस्तक जिन माधनदि मुनीश्वरको भेट की थी, वे गुप्तिप्रवचभूषित, शरयरहित, कामनिजेता, सिद्धान्तसिन्धुकी वृद्धि करनेको चन्द्रमालुल्य तथा सिद्धान्तशास्त्रके पारगत विद्वान् थे।

वे मेघचन्द्र प्रवचतिके चरणकमलके भ्रमर सन्तुष्ट थे।

मल्लिका देवी सारे जगत्में अपने गुणोंके कारण विख्यात थी। सत्कर्म पत्रिकासे ज्ञात होता है कि प्रशस्तिमें आगत 'सेनका' पूरा नाम शातिपेण है। ये राजा थे। राजपत्नी मल्लिकादेवी द्वारा प्रतोद्यापनके अयसरपर शास्त्रना दान इस बातको सूचित करता है, कि उस समय महिला जगत्के हृदय में जिनमाणी माताके प्रति विशेष भक्ति थी।

- (१) महाप्रवचमें कहीं कहीं भूतवल्लि स्वामीने भिन्नमूर्तोंका उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ पृष्ठ ६३ में तजोलेखाकी अपेक्षा मल्ल प्रवचणामें कहते हैं 'यीगणित्तिग अणताणु व० ४ एय०। उक्क० वेसागराय० सादिरे०। पत्रि केसि च जह० एगख०। पञ्जलेखाका वर्णन पृ० ६४ में करते हुए आचार्य लिखते हैं— यीगणित्ति० अणताणु० ४ एय० (स०)। उक्क० अट्टारस० सादि०। पत्रि केसि च एगख०"। यहाँ 'केसि' च शब्द द्वारा अय पत्रका प्रतिपादन किया है। यह अन्य पद्य किन्तु है, इसका उल्लेख नहीं हुआ है।



यत् सारोदारहार समदमनियमालकृत मार्घनदि-  
वतिनाथ शारदाश्रोज्ज्वलप्रिणदयशो-वल्लरी चक्रनालम् ॥ २ ॥  
जिनमन्त्राभोन विनिर्गत हितनुतराद्धान्तकिंजल्कसुस्वादन-

जयदनतभूपेन्द्रकोटीरसेना ।

तिनिकायभाजिताप्रिद्वयनखिल-जगद्भव्यनीलोत्पलांगा-  
दवताराधीशने केवलमें भुवनदोल् माघनदिब्रतीन्द्रम् ॥ ३ ॥

वरराद्धान्तामृताभोनिधितरलतरगोत्कटक्षालितात्-  
करण श्रीमेघचद्रनतपतिपदपकरहासक्तपट्पद ॥

स ।

चारण सैद्धान्तिकाग्रेसरनेने नेगल्दमाघनदिब्रती द्रम् ॥ ४ ॥

श्री पचमिय नोतुद्यापननेय भाडि वरेसि राद्धान्तमना  
रूपवती सेनभू जितकोप श्रीमाघनदिब्रतपतिगित्त् ॥ ५ ॥

### विशेष विचारणीय

आचार्य घरसेन तथा पुष्यदत्त भूतबलिका समय वीरनिघाणके ६८३ वष पश्चात् सिद्ध हाता है ।  
त्रिलोकधारमें लिखा है—

‘पगच्छस्ययस्स पणमासपुद गमिय वीरणिज्जुद्धा ।

सगरात्ता ता कक्का चतुणनतियमहियसगमास ॥ ८५० ॥

‘सगराज का अथ ससृष्ट गीकाजार माधवचद्र त्रैलोक्यदेवा विजयाकशकराज निभा है । प०  
गडरमलजीने भी अपनी हिदा दीनाम यहा नात लिखा है । यह स महाशयने धमणवेलगाराने  
गिलाख्य सम्बन्धी अपने अश्रेणी प्रथमें भी शिवा है कि वीरनिघाणके ६०५ वष पश्चात् विक्रम  
राज हुए । डा० जैकोजाने लिखा है कि श्वेताम्भराक अनुसार महावीरनिघाणके ४७० वष बाद  
विक्रम हुए किन्तु दिगम्बरोंक अनुसार ६०५ वर्ष बाद हुए । इस सम्बन्धमें विशेष विवेचन  
था प० गान्धिराननी ‘यायतीथ आस्था गान्धिरान् मैधर द्वारा सपादित एव मैसूरराज्य द्वारा  
प्रकाशित वत्सायसूत्रकी भास्करनदा रचित टीकाकी ससृष्ट भूमिका किया गया है । उसमें यह भी  
बताया गया है कि शक बाद कणाक प्रातम प्रत्यक सन्तके साथ प्रयुक्त होता है । वह केवल  
शक सवत्स ही गीतक है ऐसा एगान्त नहीं है । अत इस विचारणके आधारसे भूतबलि  
रामीका समय विक्रम सवत्—६८३—६०५ = ७८ क बाद जाता है । अथात् य प्रथम इस्वी  
प्रथम शताब्दीक पूगाकी कृति सिद्ध हाती है ।

## कर्मवन्धमीमांसा

“ब्रह्म भारवहो पुरिसो बहइ भरं गेहिउण कावडिय ।

एमेउ बहइ जीउो कम्मभर कायकावडिय’ ॥”—गो० जी० २०१ ।

महान्वय शास्त्रका प्रमेय वन्ध तत्त्व है। पट्टरूपहागमके द्वितीय खण्ड ‘ब्रुह्मवन्ध’ (धुल्लकवन्ध) की अपेक्षा षष्ठ खण्डमें वन्धके विषयमें विस्तारपूर्वक प्रतिपादन होनेके कारण प्रतीत होता है उसे मद्दावध कहा गया है। तत्त्वार्थसूत्र वन्धके विषयमें यह व्याख्या करता है—

“सकपायत्वात् जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स वन्धः ।” ८।२

‘जीव कपायसहित होनेसे कर्मरूप परिणत होने योग्य पुद्गलोंको—कार्माण वर्गणाओंको—ग्रहण करता है, उसे वन्ध कहते हैं ।’

यहां वन्धको समझनेके पूर्व कर्मसिद्धान्तपर प्रकाश डालना उचित जचता है कारण, वध विवेचनकी आधारभूमि कर्मतत्त्वकी इदृचगम करना परमावश्यक है। कर्मकी अग्रस्था-विशेष-हीका नाम वन्ध है।

### कर्मविषयक मान्यताए

जैन आगममें कर्मसाहित्यका अतीव महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहां कर्मके विषयमें सर्वांगीण, सुव्यवस्थित, वैज्ञानिक पद्धतसे विवेचन किया गया है। अन्य धर्मों तथा दर्शनोंने भी कर्मको महत्त्व प्रदान किया है। अज्ञ जगन्में भी कर्मसिद्धान्तकी मान्यता पायी जाती है। ‘जैसा करो, तैसा भरो’ यह सूक्ति इसी सिद्धान्तकी ओर निर्देश करती है। अंग्रेजी भाषामें ‘As you sow, so you reap’—‘जैसा बोओ, तैसा काटो’—कहान्त प्रचलित है।

तुलसीदासका कथन है—

“तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान ।

पाप पुण्य दोउ बीज है, चुवै सो लुनै निदान ॥”

वार्शनिक प्रर्थोंके परिशीलनसे ज्ञात होता है, कि कर्म शब्दका अनेक अर्थोंमें प्रयोग हुआ है। मीमांसादर्शन पशुखलि आदि यज्ञ तथा अन्य क्रियाकाण्डको कर्म मानते हैं। वैयाकरण पाणिनीय अपने “कर्तुरीप्पिततम कर्म” (१।४।७९) सूत्र द्वारा कर्ताके लिए अत्यन्त इष्टको कर्म कहते हैं। वैशेषिक दर्शनने अपने सप्तपदार्थोंकी सूचीमें कर्मको भी स्थान प्रदान किया है। वैशेषिक दर्शनकार कणाद कहते हैं,<sup>२</sup>—“जो एक द्रव्य हो—द्रव्यमात्रमें आश्रित हो, जिसमें कोई

(१) जैसे कोई रोसा दानेमाला पुरुष कावड़को ग्रहणकर जाला डाता है, इसी प्रकार यह जीव शरीररूप कावड़में कर्मकारको रखकर डाता है।

(२) ‘एकद्रव्यमगुण सयोगनिभागेध्वनपेजकारणमिति कर्मलक्षणम् ।’ १।७ ।

गुण न रहे तथा जो सयोग और विभागमें कारणान्तरकी अपेक्षा न करे, वह कर्म है। उसके उन्वेषण, अन्वेषण, आकुचन, प्रसारण तथा गमन ये पांच भेद कहे गए हैं। नित्य, नैमित्तिक तथा कान्य क्रियाओंमें भी कर्म कहते हैं। साध्यदर्शनमें सस्कार अर्थमें कर्मको ग्रहण किया है। ईश्वरहस्तात् साध्यकारिकामे लिखा है—“सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर भी पुरुष सस्कारवश— कर्मके वशसे शरीर धारण करके रहता है, जैसे गति प्राप्त चक्र सस्कारके वशसे भ्रमण करता रहता है।”

वाचस्पति मिश्रका कथन है—“केशरूपी जलसे सिंचित बुद्धिरूपी भूमिमें कर्मरूपी बीज अङ्गुरोंको उत्पन्न करते हैं। तत्त्वज्ञानरूपी प्रीत्यकालने द्वारा जिसका संपूर्ण केशरूप जल मूल चुम्ब है, उस शुष्क भूमिमें कर्मबीजोंका अङ्गुर कैसे उत्पन्न होगा ?”

गीतामें कार्यशीलता (activity) को कर्म बताया है। “कहा है—“अकर्मण्य रहनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेयस्कर है।” स्यास और कर्मयोग ये दोनों ही कल्याणकारी हैं, किन्तु कर्मसन्यासकी अपेक्षा कर्मयोग विशेष महत्त्वास्प है।”

महाभारत शांतिपर्वमें लिखा है—

“कर्मणा बध्यते जन्तु, विद्याया तु प्रमुच्यते।” (२४०, ७)

—यह प्राणी कर्मसे बधता है, और विद्याने द्वारा मुक्ति लाभ करता है।

पातञ्जलि योगसूत्रमें कहते हैं—“क्लेशका मूल कर्माशय—कर्मकी वासना है। वह इस जन्ममें वा जन्मान्तरमें अनुभवमें आती है। अनिद्यादिरूप मूलके सद्भावमें जाति आयु तथा भोगरूप कर्माका विपाक होता है। वे आनन्द तथा सताप प्रदान करते हैं, क्योंकि उनका कारण पुण्य तथा अपुण्य है।”

न्यायमञ्जरीमें लिखा है—“जो दय, मनुष्य तथा तिर्यचोंमें शरीरोत्पत्ति देनी जाती

(१) ‘उत्क्षेपणं सताऽवक्षेपणमाकुचनं तथा । प्रसारणं च गमनं कर्मण्येतानि पञ्च च ॥’

—सि० मुचावली ६ ।

(२) “सम्यग्ज्ञानाधिगमाद्दमादीनामकारणप्राप्ती । तिष्ठति सस्कारवशाच्चकर्ममिवद्भूतशरीर ॥”

—सि० ल० कौ० ६७ ।

(३) “क्लेशप्रलिलावसिधाया दि बुद्धिभूमौ कर्मबीजान्यङ्गुरं प्रमुचते । तत्त्वज्ञाननिदाघनिपातसकलक्लेश सन्निदाघामुपरायां कुत कर्मबीजानामङ्गुरप्रसवः । —सि० ल० कौ० पृ० ३१५ ।

(४) याग कर्मसु कौशलम् ।

(५) कर्मयोगो हाकर्मग । —गी० ३।८ ।

(६) ‘सन्यास कर्मयोगश्च नि श्रेयसकरावभौ । तपोस्तु कर्मसन्त्यासात् कर्मयोगा निगम्यते ॥ —गी० ५।२ ।

(७) ‘क्लेशमूढ कर्माग्य दृष्टादृष्टजन्यवेदनाय । सति मूढे तद्दिपाको जात्पापुर्भोगा । ते ह्यदपरि तावन्ता पुण्यापुण्यहेतवत् । —यो० ए० २।१२-१४ ।

(८) “या ह्यप देव मनुष्य-तिर्यग्भूमिषु शरीरसर्गं यश्च प्रतिश्रियं यश्चात्मना सह मनसा ससगः स सव प्रवृत्तेरपि परिणामविभर । प्रवृत्तेऽत्र ससस्य धमपमशब्दवाच्य आत्मसंस्कार कर्मफलप्रमागपर्यन्तरितरस्तु”

० पृ० ७ ।

है, जो प्रत्येक पदार्थके प्रति बुद्धि उत्पन्न होती है, जो आत्माके साथ मनका ससर्ग होता है, वह सब प्रवृत्तिके परिणामका वैभव है। सर्व प्रवृत्ति क्रियात्मक है, अत क्षणिक है फिर भी उससे उत्पन्न होनेवाला धर्म अधर्म पदवाच्य आत्म सत्कार कर्मके फलोपभोग पर्यन्त स्थिर रहता ही है।”

अशोकके शिलालेख न० ८ मे लिखा है—“इस प्रकार देवताओंका प्यारा प्रियदर्शी अपने भले कर्मोंसे उत्पन्न हुए सुखका उपभोग करता है।”

भिक्षु नागसेनने मिलिन्द सत्राट्से जो प्रश्नोत्तर किये थे उससे कर्मोंके विषयमे बौद्ध दृष्टिका अवरोध होता है—

“राजा जेला—भन्ते ! क्या कारण है, कि सभी आदमी एक ही तरहके नहीं होते ? कोई कम आयुवाले, कोई दीर्घ आयुवाले, कोई बहुत रोगी, कोई नीरोग, कोई भरे, कोई बडे सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई बडे प्रभाववाले, कोई गरीब, कोई धनी, कोई नीच कुलवाले, कोई ऊच कुलवाले, कोई मूर्ख, कोई बुद्धिमान् क्यों होते हैं ?

स्थविर बोले—महाराज ! क्या कारण है कि सभी वनस्पतिया एकसी नहीं होती ? कोई रट्टी, कोई नमकीन, कोई तिक्त, कोई कड़वी, कोई कपायली और कोई मधुर क्यों होती हैं ? भन्ते ! मैं समझता हू कि बीजोंकी भिन्नताके कारण ही वनस्पतियोंमे भिन्नता है।

महाराज ! इसी प्रकार सभी मनुष्योंके अपने-अपने कर्म भिन्न भिन्न होनेसे वे सभी एक ही प्रकारके नहीं हैं। महाराज ! बुद्धदेवने भी कहा है—हे मानव ! अपने कर्मोंका सभी जीव उपभोग करते हैं। सभी जीव अपने कर्मोंके स्वामी हैं। अपने कर्मोंके अनुसार नाना योनियोंमे जन्म धारण करते हैं। अपना कर्म ही अपना वधु है, अपना आश्रय है। कर्मसे ही लोग ऊचे नीचे हुए हैं।

भन्ते—“आपने ठीक कहा।”

इस प्रकार दार्शनिक साहित्यके अवगाहनसे और भी सामग्री प्राप्त होगी, जो यह स्थापित करेगी, कि कर्मसिद्धान्तकी किसी न किसी रूपमे वाशकिक जगतमे अवस्थिति अवश्य है।

(१) बुद्ध और बुद्धधर्म पृ० २५६।

(२) “राजा आह—भन्ते नागसेन, केन कारणेन मनुस्सा न सब्बे समका, अञ्जे अणायुका, अञ्जे दीघायुका, अञ्जे उच्चायुका, अञ्जे अण्णायुका, अञ्जे दुव्वण्णा, अञ्जे वण्णयन्ता, अञ्जे अप्पेसन्ता, अञ्जे महेसक्का, अञ्जे अप्पभोगा, अञ्जे महाभगा, अञ्जे नीचकुलीना, अञ्जे महाकुलीना, अञ्जे दुप्पज्जा, अञ्जे पत्तायन्ताति।”

येरो आह, किञ्च पन, महाराज ! कक्का न सब्बे समका, अञ्जे अणिया अञ्जे लण्णा, अञ्जे तिच्चरा, अञ्जे कटुका, अञ्जे क्खयाया, अञ्जे मधुराति।’

मञ्जामि भन्ते ! ज्ञेज्जान नानाकरणेनाति। एणमय खा महाराज कम्मनानाकरणेन मनुस्सा न सब्बे समका। भासित पेत्त महाराज ! भगवता कम्मसस कामाणसत्ता, कम्मदायादा, कम्मयोनी कम्मवधु, कम्मभिरिस्सणा, कम्म सत्ते विमज्जति य दद हानण्णशीततायीति। वल्लोषि भन्ते नागसेनाति।

—Pali Reader P 39 मिलिन्दपट्ट 11 अष्टावक्रिकाय मिलिन्दप्रश्न ८१

जैनवाङ्मयमें कर्मसिद्धान्तपर बड़े-बड़े ग्रन्थ बने हैं। उनसे विदित होता है, कि जैनसिद्धान्तमें कर्मका सुब्यवस्थित, शृंखलाबद्ध तथा विज्ञानदृष्टिपूर्ण ध्यान किया गया है।

### जैनदर्शनमें कर्म

जैनदृष्टिसे कर्मपर विचार करनेके पूर्व यदि हम इस विश्वका विश्लेषण करें, तो हम सचेतन (जीव), तथा अचेतन (अजीव) ये दो तत्त्व उपलब्ध होते हैं। पुद्गल (matter), आकाश, काल तथा गमन और स्थितिके माध्यमरूप धर्म और अधर्म ये पांच द्रव्य अचेतन हैं। ज्ञान-दर्शन गुणसमन्वित जीव द्रव्य है। इस प्रकार छह द्रव्योंमें जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य परित्यक्तात्मक क्रियाशील हैं। धर्म, अधर्म, आवाग तथा धाल ये चार द्रव्य निष्क्रिय हैं। इनमें प्रदेश सचलनरूप क्रिया नहीं पाई जाती। इनमें अगुरुलघु गुणके कारण पङ्गुणीहानि शृद्धिरूप परिणमन अवश्य पाया जाता है। इस परिणमनको अस्वीकार करनेपर द्रव्यका स्वरूप परिणमनहीन दृढस्थ बन जाता।

इसी बातको पञ्चाध्यायीकार दूसरे शब्दोंमें प्रकट करते हैं—

“भावयन्तौ क्रियावन्तौ द्वावेतौ जीवपुद्गलौ ।

तौ च शेषचतुष्क च पडेते भावससृताः ॥

तत्र क्रिया प्रदेशाना परिम्पन्दश्चलात्मकः ।

भावस्तत्परिणामोऽस्ति धारावाहोक्कवस्तुनि ॥” २।२५, २६

—‘जीव तथा पुद्गलमें भावयती तथा क्रियायती शक्ति पाई जाती है। शेष चार द्रव्योंमें तथा धर्मके दो द्रव्योंमें भी भावयती शक्ति उपलब्ध होती है। प्रदेशोंका सचलनरूप परित्यक्तात्मक क्रिया रहते हैं। धारावाही एक वस्तुमें जो परिणमन है, वह भाव है।’

इससे यह स्पष्ट होता है, कि जीव पुद्गलमें ही प्रदर्शना हलन, चलन पाया जाता है। जीव और पुद्गल विशेषण परस्परमें बंधन होता है, कारण जीवमें बंधका कारण वैभाषिक शक्तिका सहाय है। यदि वैभाषिक शक्ति न होती, तो जीव और पुद्गलका सश्लेष नहीं होता।<sup>१</sup>

जिन प्रकार चुन्नक लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है, उसी प्रकार वैभाषिक शक्तिविशिष्ट जीव रागादि भावोंके कारण कार्माणवर्गणा<sup>२</sup> तथा आहार, नैजस, भाषा तथा मनरूप नोकर्मवर्गणाओंको अपनी ओर आकर्षित करता है। पुद्गलद्रव्यके तेईस प्रकारोंमें कार्माण वर्गणा नामका एक भेद है।<sup>३</sup> अनलानत परमाणुओंके प्रचयरूप वर्गणा होती है। रागादिभावोंके कारण जीवका कर्माके साथ सम्बन्ध होता है।

(१) “अयत्तान्ता गलाट्ठान् जीवचदद्दवां पृथक् । अस्ति शक्ति विभागात्त्या मिथो चचाधिकारिणी ॥

(२) देशोदयेण सहिआ जावा जाहरदि कम्मभाकम्म ।

—पञ्चा० २।४२ ।

पट्टिसयय सव्वग तत्तायसग्गिड्ढाक्क जल ॥ —गो० क० ३ ।

(३) ‘परमाणुदि अणतदि वग्गणसग्गणा दु होि एक्का दु । —गो० जी० २४४ ।

## परिभाषा

परमात्मप्रकाशमे कर्मकी इस प्रकार परिभाषा की गई है—

“विसयकसायहिं रगियह, जे अणुया लगंति ।

जीवपएसह मोहियह, ते जिण कम्म भणति ॥ ६२ ॥”

—विषय-कषायोंसे रागी मोही जीवोंके आत्मप्रवेशोंमें जो परमाणु लगते हैं, उनको जिनेन्द्रदेव कर्म कहते हैं ।

प्रवचनसार टीकामें अमृतचन्द्रस्मरि लिखते हैं—“क्रिया सन्वात्मना प्राप्यत्वा-  
त्कर्म, तन्निमित्तप्राप्तपरिणामः पुद्गलोऽपि कर्म ।” (पृ० १६५)

—“आत्माके द्वारा प्राप्य होनेसे क्रियाको कर्म कहते हैं । उसके निमित्तसे परिणमनको प्राप्त पुद्गल भी कर्म कहा जाता है ।” इसका अभिप्राय यह है, कि आत्मामें कपनरूप क्रिया होती है, इस क्रियाके निमित्तसे पुद्गलके विशिष्ट परमाणुओंमें जो परिणमन होता है, उसे कर्म कहते हैं । यह व्याख्या आध्यात्मिक दृष्टिसे की गई है ।

जीवके परिणामोंका निमित्त पाप्म पुद्गलकी अवस्था, जिससे जीव परतन्त्र—सुख दुःखका भोक्ता किया जाता है, कर्म कहलाती है ।

अकलकदेन अपने राजवार्तिक (पृ० २९४) में लिखते हैं—“यथा भाजनविशेषे प्रक्षिप्तानां विविधरसबीजपुष्पफलानां मदिराभावेन परिणामः, तथा पुद्गलानामपि आत्मनि स्थितानां योगरूपायवशात् कर्मभावेन परिणामो वेदितव्यः ।” जैसे पात्रविशेष में ढाले गए अनेक रसजाले बीज, पुष्प तथा फलोंका मदिरारूपमें परिणमन होता है, उसी प्रकार योग तथा कषायके कारण आत्मामें स्थित पुद्गलोंका कर्मरूप परिणाम होता है ।

महर्षि कुंदकुन्द समयसारमें कहते हैं—

“जीवपरिणामहेतु कम्मत्त पुग्गला परिणमति ।

पुग्गलकम्मणिमित्त तहेव जीवो वि परिणमइ ॥ ८० ॥”

—“जीवके परिणामोंका निमित्त पाप्म पुद्गलका कर्मरूप परिणमन होता है । इसी प्रकार यौद्धलिक कर्मके निमित्तसे जीवका भी परिणमन होता है ।” उदाहरणार्थ, भेषके अवलंबनसे सूर्यकी किरणोंका इन्द्रधनुषादि विचित्ररूप परिणमन होता है ।

“ण वि कुञ्जह कम्मगुणे जीवो कम्म तहेव जीवगुणे ।

अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणाम जाण दोण्हपि ॥ ८१ ॥”

—“तात्त्विक दृष्टिसे विचार किया जाय, तो जीव न तो कर्ममें गुण करता है और न कर्म ही जीवमें कोई गुण उत्पन्न करता है । जीव तथा पुद्गलका एक दूसरेके निमित्तसे विशिष्ट परिणमन हुआ करता है ।”

प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभावमें स्थित है । उसके परिणमनमें अन्य द्रव्य उपादान कारण

जैनवाङ्मयमे कर्मसिद्धान्तपर बड़े-बड़े ग्रंथ बने हैं। उनसे विज्ञित होता है, कि जैनसिद्धान्तमे कर्मका मुख्यस्थित, ऋत्नसंग्रह तथा विज्ञानदृष्टिपूर्ण वर्णन किया गया है।

### जैनदर्शनमे कर्म

जैनदृष्टिसे कर्मपर विचार करनेके पूरा यदि हम इस विश्वका विश्लेषण करें, तो हमें सचेतन (जीव), तथा अचेतन (अजीव) ये दो तत्त्व उपलब्ध होते हैं। पुद्गल (matter), आकाश, काल तथा गमन और स्थितिके माध्यमरूप धर्म और अधर्म ये पांच द्रव्य अचेतन हैं। ज्ञान-दर्शन गुणसमाधित जीव द्रव्य है। इस प्रकार छह द्रव्योंमे जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य परिस्पदात्मक क्रियाशील हैं। धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार द्रव्य निष्क्रिय हैं। इनमे प्रदेश सचलनरूप क्रिया नहीं पाई जाती। इनमे अगुरुलघु गुणके कारण पटुगुणीहानि वृद्धिरूप परिणमन अग्रय पाया जाता है। इस परिणमनको अस्वीकार करनेपर द्रव्यका स्वरूप परिणमनहीन कूटस्थ बन जाता।

इसी बातको पञ्चाध्यायीकार दूसरे शब्दोंमे प्रकट करते हैं—

“भावनन्तौ क्रियावन्तौ द्वावेतौ जीवपुद्गलौ ।

तौ च शेषचतुष्क च पठेते भावसंस्कृताः ॥

तत्र क्रिया प्रदेशाना परिस्पन्दश्चलात्मकः ।

भावस्तत्परिणामोऽस्ति धारावाहोक्त्वस्तुनि ॥” २।२५, २६

—‘जीव तथा पुद्गलमे भाववती तथा क्रियावती शक्ति पाई जाती है। शेष चार द्रव्योंमे तथा पूरेके दो द्रव्योंमे भी भाववती शक्ति उपलब्ध होती है। प्रदेशोंका सचलनरूप परिस्पन्दनको क्रिया कहते हैं। धारावाही एक वस्तुमे जो परिणमन है, वह भाव है।’

इससे यह स्पष्ट होता है, कि जीव पुद्गलमे ही प्रदेशोंका हलन, चलन पाया जाता है। जीव और पुद्गल विशेषका परस्परमे बंधन होता है, कारण जीवमे बंधका कारण वैभाविक शक्तिका सद्भाव है। यदि वैभाविक शक्ति न होती, तो जीव और पुद्गलका सरलेप नहीं होता।

जिस प्रकार चुम्बक लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है, उसी प्रकार वैभाविक शक्तिविशिष्ट जीव रागादि भावोंके कारण कार्माणवर्गणा तथा आहार, तैजस, भाषा तथा मनरूप नोक्मैपरिणामोंको अपनी ओर आकर्षित करता है। पुद्गलद्रव्यके तैजस प्रकारोंमे कार्माण वर्गणा नामका एक भेद है।<sup>१</sup> अनन्तानत परमाणुओंके प्रचयरूप वर्गणा होती है। रागादिभावोंके कारण जीवका कर्माके साथ सम्बन्ध होता है।

(१) “अथवा तावत्पुद्गलसूचीवत्तद्वया वृषन् । अस्ति शक्ति निभावात्तया मित्या नञ्कारिणी ॥

(२) “देशोदयेण सद्विभा जीवा आहरदि कम्मगोक्कम्म ।

पदिसमय सत्तम तत्तापससिद्धिभाव जल ॥” -गो० क० ३ ।

(३) परमाणुदि अणुतर्हि वर्गवत्त ना तु शोदि पक्का हु । -गो० जी० २४४ ।

परिणामरूप द्रव्यका कर्ता नहीं है। द्रव्यकर्मका कर्ता कौन है ? पुद्गलका परिणाम स्वयं पुद्गलरूप है। इससे परमार्थदृष्टिसे पुद्गलात्मक द्रव्यकर्मका कर्ता पुद्गलका परिणाम स्वयं है। यह आत्म-परिणाम स्वरूप भावकर्मका कर्ता नहीं है। इससे जीव आत्मस्वरूपसे परिणामन करता है, पुद्गल-रूपसे परिणामन नहीं करता है।

कर्मके द्रव्यकर्म और भावकर्म ये दो भेद कहे गए हैं। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत-चक्रवर्ती कहते हैं—“पुद्गलना पिण्ड द्रव्य कर्म है। उस पिण्डस्थित शक्तिसे उत्पन्न अज्ञानादि भावकर्म हैं।” अध्यात्म शास्त्रकी दृष्टिसे आत्माके प्रदेशोंका सब प होना भावकर्म है। इस उपायके कारण पुद्गलोंकी विशिष्ट अवस्थाकी उत्पत्तिको द्रव्यकर्म कहा है।

### बन्धना स्वरूप

कर्मोंकी अवस्थाविशेषको बन्ध कहते हैं। जीव और कर्मोंके सम्बन्ध होनेपर दोनोंके गुणोंमें विकृतिकी उत्पत्ति होना बन्ध है। उदाहरणार्थ, हल्दी और चूनाके सम्बन्धमें जो विशेष लालिमाकी उत्पत्ति हुई है, यह वर्ण एक जात्यन्तर है। यह न हल्दीमें है और न चूनेमें ही पाया जाता है। इसी प्रकार रागादिविषादि विकारी भाव न शुद्ध आत्मामें उपलब्ध होते हैं और न जीवसे असम्बद्ध पुद्गलमें उनकी प्राप्ति होती है। बन्धकी अवस्थामें जिन दो वस्तुओंका परस्परमें बन्ध-बन्धक भाव उत्पन्न होता है, उन दोनोंके स्वगुणोंमें विकृति उत्पन्न होती है। कहा भी है—

“हरदा ने जरदी तजी, चूना तज्यो सफेद।

दोऊ मिल एकहि भए, रखो न काहू भेद ॥”

पञ्चाध्यायीमें कहा है—

“बन्धः परगुणाकारा क्रिया स्यात् पारिणामिकी।

तस्या सत्यामशुद्धत्व तद्द्वयोः स्वगुणच्युतिः ॥२।१३०॥”

—अन्यके गुणोंके आकाररूप परिणामन होना बन्ध है। इस परिणामनके उत्पन्न होनेपर अशुद्धता आती है। उस समय उन दोनों बन्ध होनेवालोंके स्वगुणोंका विपरिणामन होता है।

जीवके रागादि भाव न शुद्ध जीवके हैं और न शुद्ध पुद्गलके हैं। ‘बन्धोऽयं द्वन्द्वज स्मृत’—यह बन्ध दो से उत्पन्न होता है। एक द्रव्यका बन्ध नहीं होगा।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं—

“बज्ज्वादि कम्म जेण दु चेदणभावेण भाववधो सो।

कम्मादपदेसाण अण्णोण्णपवेसण इदरो ॥”—द्र० स० ३०।

जिस चैतन्य परिणतिसे कर्मोंका बन्ध होता है, उसे भावबन्ध कहते हैं। आत्मा और कर्मके प्रवेशोंका परस्परमें प्रवेश हो जाना द्रव्य बन्ध है।

सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करने पर विदित होता है, कि जिस प्रकार कर्मोंको यह जीव बाधता है—पराधीन करता है, उसी प्रकार कर्म भी इस जीवको पराधीन बनाते हैं। बन्धमें दोनोंकी सततव्रताका परित्याग होता है। दोनों विवश किये जाते हैं।

(१) “योगलक्षणो द्रव्य तस्सची भावकम्म तु ॥ —गो० क० ६।



नह। वन सनता। जीव न पुद्गलका कारण है और न पुद्गल जीवका उपादान हो सकता है। वन उपादान उपान्यभावके स्थानमें निमित्त-नैमित्तिकपना पाया जाता है। इससे जो सिद्धान्त स्थिर होता है, उसने विषयम बुन्दकुन्द स्वामीका कथन है—

“एएण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ।

पुग्गलकम्मकयाण ण दु कत्ता मव्वभावाण ॥ ८२ ॥”

—“इस कारण आत्मा अपने भावका कर्ता है। वह पुद्गलकर्मकृत समस्त भावोंका कर्ता नहीं है।”

इस विषयपर अमृतचन्द्रसूरि इन शब्दोंमें प्रकाश डालते हैं—

“जीवकृत परिणाम निमित्तमात्र प्रपद्य पुनरन्ये ।

स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्गलाः कर्मभावेन ॥” —पु० सि० ८२ ।

—“जीवके रागादि परिणामोंका निमित्त या पुद्गलोंका कर्मरूपमें परिणमन स्वयमेव हो जाता है।”

इसी प्रकार स्वय अपने चैतन्यमय भावोंसे परिणमाशील जीवके रागादिरूप परिणमनमें पौद्गलिक कर्म निमित्त पडा करता है। यदि जीव और पुद्गलमें निमित्त भावके स्थानमें उपादान उपादेयत्व हो जाय, तो जीव द्रव्यका अभाव होगा, अथवा पुद्गल द्रव्य नहीं रहेगा। दोनोंमें भिन्नत्वका अभाव होकर ऐक्य स्थापित होगा।

प्ररचनसारमें लिखा है—

“कम्मत्तण पाओग्गा रुधा जीवस्स परिणइ पप्पा ।

गच्छति कम्मभाच्च ण हि ते जीवेण परिणमिदा ॥” —२।७७ ।

—“जीवकी रागादिरूप परिणतिविशेषको प्राप्तकर कर्मरूप परिणमनके योग्य पुद्गलसमूह कर्मभावको प्राप्त करते हैं। उनका कर्मत्वपरिणमन जीवके द्वारा नहीं किया गया है।”

“ते ते कम्मत्तगदा पोग्गलकाया पुणोवि जीवस्स ।

सजायते देहा देहतरसम्म पप्पा ॥” —२।७८ ।

—“कर्मत्वको प्राप्त पुद्गलकाय जीवने देहान्तररूप सम्म-परिवर्तनको पाकर पुन देहरूपको प्राप्त करते हैं।”

“आदा कम्ममल्लिममो परिणाम लहदि कम्मसजुत्ता ।

तत्तो मल्लमदि कम्म तम्हा कम्म तु परिणामो ॥” —२।७९ ।

—“कर्मने कारण मल्लिनत्वको प्राप्त आत्मा कर्म-सजुत्त परिणामको प्राप्त करता है, इससे कर्म सम्बन्ध होता है। अतः परिणामको भी कर्म कहते हैं।”

इस विषयको स्पष्ट करते हुए अमृतचन्द्रसूरि लिखते हैं—

“परमार्थं दृष्टिये दग्ग जाय, तो जीव आत्मपरिणामरूप भाव कर्मका कर्ता है। पु०

(१) परिणममानरथ चिन्तित्वात्मने स्वयमपि परमभवे ।

भवति हि निमित्तमा न पौद्गलिक कर्म तस्यापि ॥ —३० सि० १३ ।

परिणामरूप द्रव्यका कर्ता नहीं है। द्रव्यकर्मका कर्ता कौन है? पुद्गलका परिणाम स्वयं पुद्गलरूप है। इससे परमार्थदृष्टिसे पुद्गलात्मक द्रव्यकर्मका कर्ता पुद्गलका परिणाम स्वयं है। यह आत्म-परिणाम स्वरूप भावकर्मका कर्ता नहीं है। इससे जीव आत्मस्वरूपसे परिणामन करता है, पुद्गलरूपसे परिणामन नहीं करता है।'

कर्मके द्रव्यकर्म और भावकर्म ये दो भेद कहे गए हैं। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत-चक्रवर्ती कहते हैं—'पुद्गलका पिण्ड द्रव्य कर्म है। उस पिण्डस्थित शक्तिमें उत्पन्न अज्ञानादि भावकर्म हैं।' अध्यात्म शास्त्रकी दृष्टिसे आत्माके प्रदेशोंना सन्नप होना भावकर्म है। इस वपनके कारण पुद्गलोंकी विशिष्ट अवस्थाकी उत्पत्तिको द्रव्यकर्म कहा है।

### वधका स्वरूप

कर्मोंकी अवस्थाविशेषको वन्ध कहते हैं। जीव और कर्मोंके सम्बन्ध होनेपर दोनोंके गुणोंमें विकृतिकी उत्पत्ति होना वध है। उदाहरणार्थ, हल्दी और चूनाके सम्बन्धसे जो विशेष लालिमाकी उत्पत्ति हुई है, वह वध एक जात्यन्तर है। वह न हल्दीमें है और न चूनेमें ही पाया जाता है। इसी प्रकार रागद्वेषादि विकारी भाव न शुद्ध आत्मामें उपलब्ध होते हैं और न जीवसे असम्बद्ध पुद्गलमें उनकी प्राप्ति होती है। वधकी अवस्थामें जिन दो वस्तुओंना परस्परमें वन्ध-वन्धक भाव उत्पन्न होता है, उन दोनोंके स्वगुणोंमें विकृति उत्पन्न होती है। कहा भी है—

“हरदी ने जरदी तजी, चूना तज्यो सफेद।

दोऊ मिल एकहि भए, रख्यो न काहू भेद ॥”

पञ्चाध्यायीमें कहा है—

“वन्धः परगुणाकारा क्रिया स्यात् पारिणामिकी।

तस्या सत्यामशुद्धत्व तद्द्वयोः स्वगुणच्युतिः ॥२।१३०॥”

—'अन्यके गुणोंके आकाररूप परिणामन होना वन्ध है। इस परिणामनके उत्पन्न होनेपर अशुद्धता आती है। उस समय उन दोनों वन्ध होनेवालोंके स्वगुणोंका विपरिणामन होता है।'

जीवके रागादि भाव न शुद्ध जीवके हैं और न शुद्ध पुद्गलके हैं। 'वन्धोऽयं द्वन्द्वज स्मृत'—यह वध दो से उत्पन्न होता है। एक द्रव्यका वन्ध नहीं होगा।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं—

“धज्जदि कम्म जेण दु चेदणमावेण भाववधो सो।

कम्ममादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसण इदरो ॥”—२० स० ३०।

जिस चैतन्य परिणतिसे कर्मोंना वन्ध होता है, उसे भाववध कहते हैं। आत्मा और कर्मके प्रदेशोंना परस्परमें प्रवेश हो जाना द्रव्य वन्ध है।

सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करने पर विदित होता है, कि जिस प्रकार कर्मोंको यह जीव ग्राहता है—पराधीन करता है, उसी प्रकार कर्म भी इस जीवको पराधीन बनाते हैं। वन्धमें दोनोंकी स्वतंत्रताका परित्याग होता है। दोनों विघ्न किये जाते हैं।

(१) “पागलमिण्डो दव्व तस्सची भावकम्म तु ॥”—गी० क० ६।

पङ्क्ति प्रवर आशाधरजी लिखते हैं—

“स बन्धो बध्यन्ते परिणतिविशेषेण निवशी-  
क्रियन्ते कर्माणि प्रकृतिविदुषो येन यदि वा ॥  
स तत्कर्माग्नातो नयति पुरुष यत् स्वरशतां ।  
प्रदेशाना यो वा स मयति मिथः श्लेष उभयोः ॥”

—अन. धर्मा० २।३८ ।

—जिस परिणतिविशेषसे कम अर्थात् कर्मत्व परिणत पुद्गल-द्रव्यकर्मविपाक-अनुभव करने वाले जीवके द्वारा परतत्र बनाए जाते हैं—योगद्वारसे प्रविष्ट होकर पाप पुण्य-पापरूप परिणमन करके भोग्यरूपसे सम्बद्ध किए जाते हैं, वह बध है। अर्थात् आत्माके जिन भावोंमें कर्मत्व परिणत पुद्गल जीवने द्वारा परतत्र किया जाता है, वह बध है। अथवा, जो कर्म जीवने अपने अधीन करता है वह बध है, अथवा जीव और पुद्गलने प्रदेशोंका परस्पर मिल जाना बध है।

बधके विषयमें यह बात तो सर्वसाधारणके दृष्टिपथमें रहती है, कि जीव कर्मोंको बाधता है, किन्तु कर्म भी जीवको बाधते हैं, प्रायः यह बात ध्यानमें नहीं लाई जाती। प० आशाधर जीने यही विषय बताया कि बधमें दोनोंकी स्वन्रतताका परित्याग होता है।

यह बध आत्मा और कर्मकी परस्पर अनुकूलता होनेपर ही होता है। प्रतिकूलोंका बध नहीं होता है। यही बात पञ्चाध्यायीमें कही गई है—

“सानुकूलतया बन्धो न बन्धः प्रतिकूलयोः ॥” —२।१०२ ।

मुनीन्द्र कुत्कुद कहते हैं—

“फासेहि पुग्गलाण बधो जीवस्स रागमादीहिं ।

अण्णोणस्स रागाहो पुग्गलजीवप्पणो भण्णित्थो ॥” —प्र० सा० २।८५ ।

—यथायोग्य स्निग्धरक्षत्वरूप स्पर्शसे पुद्गल-कर्म-वर्गणाओंका परस्परमें पिण्डरूप बध होता है। रागद्वेष मोहरूप परिणामोंमें जीवना बध होता है। जीवके परिणामोंका निमित्त पाकर जीव पुद्गलका बध होना जीव पुद्गलका बध है।

“सपदेसो सो अप्पा तेषु पदेसेसु पुग्गला काया ।

पनिस्सति जहाजोग्ग चिद्धति हि जति वज्झति ॥” —२।८६ ।

यह आत्मा असख्यातप्रदेशी है। उसने प्रदेशोंमें आत्मप्रदेश-परिस्पन्दनरूप योगके अनुसार मन-वचन-वायवर्गणाओंकी सहायतासे पुद्गल-कर्म-वर्गणारूप पिण्ड आकर प्रविष्ट होता है। वे धामाण-वर्गणाएँ रागद्वेष तथा मोहके अनुसार अपनी स्थिति प्रमाण ठहरकर क्षीण हो जाती हैं।

यथार्थ बात यह है, कि रागद्वेष, मोहके कारण आत्मामें एक उत्तेजनाविशेष उत्पन्न होती है, उससे वह कर्मोंमें आकर्षित कर बाधता है, जैसे गरम लोहपिण्ड जलराशिको आत्मसात् किया करता है। समयसारमें सक्षेपमें बधवत्त्वको इस प्रकार समझाया है—

## रागादिसे बन्ध होता है

समयसारमे सक्षेपमे बन्धतत्त्वको इस प्रकार समझाया है—

“रत्तो बधदि कम्म, मुचदि कम्मेहि रागरहिदप्पा ।

एसो बंधममासो जीणण जाण णिच्छयदो ॥”—२।८७ ।

रामपरिणाम विशिष्ट जीव कर्मोंका बन्ध करता है । रागरहित आत्मा कर्मोंसे मुक्त होता है । जीवोंके बधका सक्षेपमे यही तात्पर्यक वर्णन है ।

रागद्वेषसे बन्ध होता है, रागादिके अभाव होनेपर क्रियाओंके होते हुए भी बन्ध नहीं होता, इसे सोदाहरण कुन्दकुन्द स्वामी इन शब्दोंमें स्पष्ट करते हैं—

“जह णाम कोवि पुरिसो णेहमत्तो दु रेणुवहुलम्मि ।

ठाणम्मि ठाइदूण य करेहि सत्थेहिं वायाम ॥ २३७ ॥

छिददि भिददि य तहा तालीतलकयलिवसपिडीओ ।

सच्चित्ताच्चित्ताण करेइ दब्बाणमुवघाय ॥ २३८ ॥

उवघाय कुव्वतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।

णिच्छयदो चित्तिज्जहु कि पच्चयगो दु रयवधो ॥ २३९ ॥

जो सो दु णेहभावो तम्मि णरे तेण तस्स रयवधो ।

णिच्छयदो विण्णेय ण कायचेट्ठाहिं सेसाहि ॥ २४० ॥

एव मिच्छादिट्ठी वट्टतो बहुविहासु चिट्ठासु ।

रायाई उवओगे कुव्वतो लिप्पइ रयेण ॥ २४१ ॥”

—आचार्य महाराजके कथनका भाव यह है, कोई व्यक्ति अपने शरीरमें तेल लगाता है तथा धूलिपूर्ण स्थलमें जाकर शस्त्र-संचालनरूप व्यायाम करता है तथा ताड़ केला घास आदिके वृक्षोंका छेदन-भेदन करता है । इन क्रियाओंके करते हुए जो धूलि उड़कर उसके शरीरपर चिपकती है, उसका कारण व्यायाम क्रिया नहीं है । उसका वास्तविक कारण है शरीरमें तेलका लगाना ।

इसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव अनेक चेष्टाओंको करता है । अपने उपभोग परिणामोंमें रागादि धारण करता है, इससे वह कर्मरूपी धूलिके द्वारा लिप्त होता है ।

यहा यह शब्दा उत्पन्न होती हैं, कि शरीरमें रज-लेपका कारण तेलके स्थानमें व्यायाम क्रियाको क्यों न माना जाय ? इसका समाधान स्वामी कुन्दकुन्द अधिक स्पष्टतापूर्वक करते हुए लिखते हैं—

“जह पुण सो चेय णरो णेहे सव्वत्थि अणणिय सते ।

रेणुवहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहिं वायाम ॥ २४२ ॥

छिददि भिददि य तहा तालीतलकयलिवसपिडीओ ।

सच्चित्ताच्चित्ताण करेइ दब्बाणमुवघाय ॥ २४३ ॥

उवघार्य कुव्वतस्त तस्म णाणाविहेहि करणेहि ।  
 णिच्छयदो चित्तिज्जहु कि पच्चयगो ण रयन्वो ॥ २४४ ॥  
 जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण रयवधो ।  
 णिच्छयदो विण्णेय ण कायचेट्ठाहि सेसाहि ॥ २४५ ॥  
 एव सम्मादिट्ठी वट्ठतो बहुविहेसु जोगेसु ।  
 अकरतो उअओगे रागाइ ण लिप्पइ रयेण ॥ २४६ ॥”

इसका भाव यह, कि वही पूर्वोक्त पुरुष अपने शरीरके तैल को पोंडकर उसी प्रकार धूलि पूर्ण प्रदेशमें शस्त्रद्वारा व्यायाम तथा वृक्ष छेदनादि कार्य करता है। अत्र तेलका अभाव होने से उसके शरीर पर धूलि नहीं जमती है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव अनेक प्रकारके योगोंमें विद्यमान रहता है, किन्तु उसके उपयोगमें रागादिका अभाव रहता है, इस कारण वह कर्म-रजसे लिप्त नहीं होता।

शरीर पर धूलि जमनेका कारण व्यायाम नहीं है, कारण शस्त्रसंचालनका अन्वय व्यतिरेक धूलि जमने के साथ नहीं देखा जाता। शस्त्र संचालन दोनों अवस्थाओंमें होते हुए भी धूलि लेप तब होता है, जब शरीर तैललिप्त रहता है। शरीरपर तैलने अभावमें धूलिका लेप भी नहीं पाया जाता, इससे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि धूलिने जमनेमें कारण तैलका लेप है। इसी प्रकार रागादिके होने पर कर्माका लेप होता है। आसक्तिजनक रागादिके अभाव वश कर्मोंका भी लेप नहीं होता। आशाघरजीने इसीलिए कहा है—

“भूरेत्तादिसद्धकूपायवशगो यो विश्रद्धश्वाज्ञया  
 हेप वैपयिक सुख निजगुपादेय त्विति श्रद्धत् ।  
 चौरो भारयितु धृतस्तलवरेणोत्तमनिन्दादिमान् ।  
 शर्माक्ष भजते रुन्त्यपि पर नोत्तप्यते सोऽप्यधैः ॥” —सा० ध० १।१३ ।

अप्रत्याख्यानारणादि कपायके अधीन रहने वाला अविरत सम्यग्दृष्टि सर्वज्ञदेवके यचनानुसार विषय सुखको त्याग्य और आत्मीक आनन्दको ग्राह्य श्रद्धान करता हुआ भी, जैसे शेट्टेपालके द्वारा मारनेके लिए पकड़ा गया चोर आत्मनिन्दा-गर्हा आदि में प्रवृत्ति करता है, उसी प्रकार यह कपायोद्रेकवशा इन्द्रियजय सुखका अनुभव करनेमें प्रवृत्त होता है, और प्राणियों की पीड़ा भी दृष्टा है किन्तु यह पापोंसे पीडित नहीं होता। अनासक्त भावसे विषय सेवन करनेके कारण यह धधनरी व्यथा नहीं उठता।

### कर्मवध पर परमार्थदृष्टि

जीव परमार्थदृष्टिसे अपने भागोंका क्या है फिर उसे कर्मका कर्ता क्यों कहते हैं ? इसके सनाधानाथ समयसारकार कहते हैं—

“जीरसि ह्दुभूद वधस्त दु पस्मिदूण परिणाम ।  
 जीवेण कद कम्म मण्णदि उअरामत्तेण ॥

जोधेहि कदे जुद्धे राएण कदं ति जप्पदे लोगो ।

तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण ॥”—समयसार १०५।६ ।

‘जीयके निमित्तको पाकर कर्मबन्धरूप परिणमन देखकर उपचारवश कहने हैं कि जीवने कर्मबन्ध किया । उदाहरणार्थ, यद्यपि योद्धा लोग ही युद्ध करते हैं, किन्तु लोग कहते हैं राजा युद्ध करता है, इसी प्रकार व्यवहारनयसे कहते हैं कि जीवने ज्ञानावरणादिका बन्ध किया है ।’

अमृतचन्द्र स्वामीकी इसी प्रसंग पर बड़ी सुन्दर उक्ति है—

“जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यगिशङ्कयैव ।

एतर्हि तीप्ररयमोहनिवर्हणाय सकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्म कर्तुं ॥” ३।१८ ।

‘यदि जीव पुद्गलकर्मका कर्ता नहीं है, तो उसका कर्ता कौन है ? ऐसी आशङ्का होने पर शीघ्र मोह निवारणार्थ कहते हैं, उसे सुन लो कि पौद्गलिक कर्मोंका कर्ता पुद्गल ही है ।’

आत्मा परभावोंका कर्ता नहीं होगा, वह अपने निज भावका कर्ता है, यह बात समझाते हुए कहते हैं—

आत्मभावान् करोत्यात्मा परभावान् परः सदा ।

आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ॥” —स० सार पृ० १४४ ।

‘आत्मा सदा अपने भावोंका कर्ता है, पर अर्थात् पुद्गल सदा पौद्गलिक भावोंका कर्ता है । आत्माके भाव आत्मरूप ही हैं, इसी प्रकार पुद्गलके भाव भी पुद्गलरूप हैं ।’

उपरोक्त सत्यको हृदयगम करनेवाले ज्ञानी जीवके विषयमें कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

“परमप्पाणमकुब्बं अप्पाण पि य पर अकुब्बंतो ।

सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारओ होदि ॥” —स० सार ९३ ।

‘ज्ञानी जीव परको आत्मरूप न मानता है और न आत्माको पर ही करता है, वह कर्मोंका अकर्ता होता है ।’

यद्वा यह गभीर बात समझाते हैं, कि जब आत्मा अपने भाव के सिवाय परमार्थसे परभावोंका कर्ता नहीं है, तब जीवमें कर्मोंका कर्तृत्व एव शोक्त्व नहीं रहेगा ।

नाटक समयसारमें कहा है—

“जो लों ज्ञानको उदोत तोलों नहिं बध होत बरतै मिथ्यात्त तन नानाबध होहि है ।  
ऐसो भेद सुनके लग्यो तू विषय भोगनद्धं जोगनिद्ध उद्यमकी रीति तै विछोहि है ॥  
सुनो भैया सत तू कहे मैं समकित्तवंत यह तो एकत परमेश्वरका द्रोही है ।  
निपैसु विमुक्त होहि अनुभन दशा आरोहि भोक्ष सुख ढोहि तोहि ऐसी मति सोही है ॥३९॥”

निस आत्माके हृदयमें सम्यक्ज्ञानकी निर्मल ज्योति प्रदीप्त होती है, उस आत्माका जीवन सहज पवित्रताके रससे शोभित होता है । वह विषय सुरोंमें आसक्त होता है, ऐसा जिन्हें भ्रम है, उनके समाधान निमित्त कविवर बनारसीदासजी कहते हैं—

“कामादिप्रभयश्चिः कर्मबन्धानुरूपतः ।

तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्धयशुद्धितः ॥ ९९ ॥”

“काम, क्रोध, मोहादिका उत्पत्तिरूप जो भावससार है, यह अपने अपने कर्मके अनुसार होता है। यह कर्म अपने कारण रागादिकांसे उत्पन्न होता है। वे जीव शुद्धता, अशुद्धता से समन्वित होते हैं।”

इसपर तार्किक पद्धतिसे विचार करते हुए आचार्य विद्यानदी अष्टमदशोमे लिखते हैं<sup>१</sup> कि अज्ञान, मोह, अहंकाररूप यह भाव-ससार है। यह एक स्वभाववाले ईश्वरकी कृति नहीं है, कारण उसके कार्यमें सुगन्धु-गन्धादिमें विचित्रता दृष्टिगोचर होती है। जिस वस्तुके कार्यमें विचित्रता पाई जाती है, उसका कारण एक स्वभाव विशिष्ट नहीं होता है। जैसे अनेक धातु अक्षुरादिरूप विचित्र कार्य अनेक शालिनीनादिकसे उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सुगन्धु व विशिष्ट विचित्र कार्यरूप जगत् एक स्वभाववाले ईश्वरकृत नहीं हो सकता।

जब कारण एक प्रकारका है, तब उससे निष्पन्न कार्यमें विविधता नहीं पाई जाती। एक धान्य-बीजसे एक ही अक्षुरकी वृद्धि होती है। इस प्राकृतिक नियमके अनुसार एक स्वभाव बाह्य ईश्वर क्षेत्र, काल तथा स्वभावकी अपेक्षा भिन्न शरीर, इन्द्रिय तथा जगत् आदिका कर्ता नहीं सिद्ध होता है।<sup>२</sup>

### अनादि कर्मबन्धका अन्त क्यों है ?

जब कर्मबन्ध और रागादिभावका चक्र अनादि कालसे चलता है, तब उसका भी अन्त नहीं होना चाहिए।

यह शक्य ठीक नहीं है। अनादिकी अनन्तताके साथ कोई व्याप्ति नहीं है। अनादि होते हुए भी सातवावी उपलब्धि होती है। वृक्ष-बीजकी सततिको परंपराकी अपेक्षा अनादि कहते हैं। बीजको यदि दग्ध कर दिया जाय, तो फिर वृक्ष-परंपराका अभाव हो जायगा। फल बीजके नष्ट हो जाने पर भवाक्षुरकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। तत्त्वार्थसारमें कहा है—

“दग्धे बीजे यथाऽत्यन्त प्रादुर्भवति नाहङ्कुरः ।

कर्मबीजे तथा दग्धे न प्ररोहति भगवङ्कुरः ॥”-८।७।

अकलङ्क स्वामीका कथन है कि<sup>३</sup> आत्मामे आनेवाला कमल प्रतिपक्षरूप है, अतः यह आत्मगुणोंके विकास होनेपर क्षयशील है।

जैसे प्रकाशके आने ही सदा अधकारान्तर प्रदेशसे अधकार दूर होता है अथवा सदा शीत भूमिमें गर्मीके प्रत्यक्ष होनेपर शीतका अपकर्ष होता है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शनादिके प्रकर्षसे

(१) अष्टसं पृ० २६८-७३ ।

(२) इस सम्प्रथमें विशद चर्चा तत्वायश्लोकवार्तिक प्रमेयक मतभातण्ड, आत्मपरीक्षा आदि जैन ग्रंथोंमें की गई है।

(३) ‘प्रत्यक्ष एवात्मनामागन्तुको मल्य परिशयी, स्वनिर्दोषनिमित्तविकथनवशात् ।’-अष्टवती ।

मिथ्यात्वादि विकारोंका अपकर्ष होता है। रागादि विकारोंके अपकर्षमें हीनाधिकता देखकर तार्किक समन्तभद्र कहते हैं कि 'ऐसी भी आत्मा हो सकती है जिसमें रागादिका पूर्णतया क्षय हो चुका हो। उसे ही परमात्मा कहते हैं।

### अनादि-सादि बन्धके विषयमें अनेकान्त

शकाकार कहता है—आपका यह कथन कि 'कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मग्रन्थानुरूपतः' 'विचित्र कामादिककी उत्पत्ति कर्मबन्धके अनुसार होती है', निर्दोष नहीं है। हम पूछते हैं, जीव और कर्मोंका सम्बन्ध कबसे है ?

द्रव्यदृष्टि अथवा सततकी अपेक्षा यह बन्ध अनादि है। पर्यायकी अपेक्षा यह सादि कहा जाता है। पचाध्यायीकारका कथन है —

“यथानादिः स जीवात्मा यथानादिश्च पुद्गलः ।

द्वयोर्बन्धोऽप्यनादिः स्यात् सम्बन्धो जीवकर्मणोः ॥”—२।३५।

जिस प्रकार जीवात्मा अनादि है उसी प्रकार पुद्गल भी अनादि है। जीव आर कर्मोंका सम्बन्धरूप बंध भी अनादि है।

‘द्वयोर्नादिसम्बन्धः कनकोपलसन्निभः ।

अन्यथा दोष एव स्यादितरेतरसश्रयः ॥”—२।३६

जीव और कर्मोंका अनादि सम्बन्ध है जैसे सुवर्ण पापाणमें सुवर्ण किट्टकालिमादि विशिष्ट पाया जाता है, उसी प्रकार ससारी जीव भी अशुद्ध रूपमें उपलब्ध होता है। ऐसा न माननेपर अन्योन्याश्रयदोष आता है।

“तद्यथा यदि निष्कर्मा जीवः प्रागेव तादृश ।

बन्धाभावेऽयं शुद्धेऽपि बन्धश्चेन्निर्वृतिः कथम् ॥”

यदि जीव पूर्वमें कर्मरहित माना जाय, तो उसके बन्धका अभाव होगा। शुद्धात्माके भी बंध माननेपर मुक्ति कैसे होगी ?

यहाँ आचार्यका भाव यह है कि पूर्व अशुद्धताके बिना बन्ध नहीं होगा। पूर्वमें शुद्ध जीवके भी कर्मबंध मान लेनेपर निर्वाणका लाभ अभाव हो जायगा। जब शुद्ध जीव कर्म बाधने लगेगा तब ससारका चक्र पुन पुन चलनेसे मुक्तिका अभाव हो जायगा।

यदि पुद्गलको अनादिसे शुद्ध माना जाय, तो क्या बाधा है ? पचाध्यायीकार कहते हैं—

“अथ चेत्पुद्गलः शुद्धः सर्वतः प्रागनादितः ।

हेतोर्विना यथा ज्ञान तथा क्रोधादिरात्मनः ॥

एव बन्धस्य नित्यत्व हेतोः सद्भावतोऽथवा ।

द्रव्याभावो गुणाभावे क्रोधादीनामदर्शनात् ॥”—२।३८, ३९।

(१) 'दोषावरणयाहानिनि'शेषाऽस्त्यतिशायनात्

क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्या बहिरतमलक्षय ॥ '—आ० मो० ४।



—यदि पुद्गलको अनादिसे शुद्ध मान लिया जाय तो जैसे विना कारणके स्वभावतः जीव ज्ञानमे पाया जाता है वही प्रकार क्रोधादि भी जीवने स्वभाव या गुण हो जायेंगे। क्रोधादिके सदा सद्भाववश वधमे नित्यता आ जायगी। अथवा यदि क्रोधादि गुणोंका अभाव माना जायगा तो स्वभाववान् या गुणी जीवका भी लोप हो जायगा। क्रोधादिका अदर्शन पाया जाता है।

यहाँ अभिप्राय यह है, कि कामादिक कर्मबन्धसे उत्पन्न नहीं हुए, कारण पुद्गल सदा शुद्ध रहता है, ऐसी स्थितिमे क्रोधादिक जीवके स्वभाव हो जायेंगे। सयमी पुरुषोंमे क्रोधादि विकारोंका अदर्शन पाया जाता है। क्रोधरूप स्वभावका अभाव होनेपर स्वभाववान् आत्माका भी लोप हो जायगा। अतः पुद्गलको अनादि शुद्ध मानकर क्रोधादिको जीवना स्वभाव मानना अनुचित है। क्रोधादि भावोंको कर्मकृत मानना ही श्रेयस्कर है। आचार्य कहते हैं—

“पूर्वकर्मादियाद्भावो भावात्प्रत्यग्रसत्त्वयः ।

तस्य पाकात्पुनर्भावो भावाद् बन्धः पुनस्ततः ॥

एव सन्तानतोऽनादिः सम्बन्धो जीवकर्मणोः ।

समारः स च दुर्मोच्यो विना सम्यग्दर्शादिना ॥” पचाध्यायी ४२।४३

—पूर्वकर्मादियसे रागादि भाव होते हैं। उन भावोंसे आगामी कर्मका सचय होता है। इस कर्म-विपाकसे पुनः रागादिभाव होते हैं। उन भावोंसे पुनः वध होता है। इस प्रकार जीव कर्मना मन्वन्ध सदान्ती अपक्षा अनादि है। सम्यग्दर्शनादिके विना यह समार दुर्मोच्य है।

आत्मा और कर्मका सादि सम्बन्ध स्वीकार करनेपर दोषोंका उद्घाटन ऊपर किया जा चुका है। यह भी कहा जा चुका है कि वर्तमान आत्मा परतत्र है। वह कर्मोंके अधीन है। यह कर्मबन्धन सात्त्विकीकरण करनेमे भयकर आपत्तियाँ आती हैं, ऐसी स्थितिमे एक ही मार्ग निरूपद वचता है कि कर्म और आत्माना अनात्ति सम्बन्ध माना जाय। इसके सिवाय कोई और मध्यम मार्ग नहीं है। आत्मशक्तिके विरहित होनेपर कर्माना घन शिथिल होने लगता है और शक्तिके पूर्ण प्रवृद्ध होनेपर कर्माना नाश हो जाता है।

### कर्मों के आस्रवका कारण योग है

इस जीवके कर्मबन्धनका कारण रागादिभावोंको कहा है कर्मोंके आस्रवनेमे कारण है आत्मप्रदर्शना परित्यक्त होना। मनोरंजना, उचनवर्गणा अथवा कायवर्गणाके अवलंबनसे आत्मप्रदर्शना संपन्नता पाया जाता है। मन वचन कायका त्रिवारूप योगके द्वारा नहीं। कर्माका आस्रव—आगमन होता है। योगोंके त्रयात्मक भेदोंपर प्रकाश डालते हुए आचार्य वीरसेन धयलाटीना (१, २७९) में लिखते हैं—क. पुन मनोयोग इति चेद्भावमनसः समुत्पत्त्यर्थं प्रयत्नो मनोयोगः । तथा वचसः सधुः प्रयत्नो वाग्योगः । कायक्रियासमुत्पत्त्यर्थं प्रयत्नः काययोगः ॥—‘मनोयोगे’ इति ? भावमनकी उत्पत्तिके दि प्रयत्न हो

योगके द्वारा कर्मोंका आस्रव होता है, इसके पश्चात् आत्मा और कर्मोंका एक क्षेत्राव-  
गाह सम्बन्धरूप बन जाता है ।' उस समयकी अवस्थाको पञ्चाध्यायीकार इस प्रकार समझते हैं—

“जीवः कर्मनिवद्धो हि जीववद्ध हि कर्म तत् ॥” —२।१०४

—जीव कर्मसे निवद्ध हो जाता है और कर्म जीवसे बद्ध हो जाता है । दोनोंका परस्परमें  
सम्बन्ध होता है । इस सम्बन्ध तथा परस्पर बधनबद्धताका भाव यह है कि कर्म अपना  
फलोपभोग किए बिना आत्मासे प्रत्यक् नहीं होते ।

### आस्रवके उत्तर क्षणमे बंध होता है

आस्रव और बधके पौर्वापर्यके विषयमे विचार करते हुए पंडितप्रवर आशाधरजी  
अपने अनगारधर्माश्रितमे लिखते हैं—

“प्रथमक्षणमे कर्मस्कन्धानामागमनमास्रवः, आगमनानन्तर द्वितीयक्षणादौ  
जीवप्रदेशोऽप्रस्थानबन्ध इति भेदः ।” —पृ० ११२ ।

प्रथम क्षणमे कर्मस्कन्धोंका आगमन—आस्रव होता है । आगमनके पश्चात् द्वितीय  
क्षणादिकमे कर्मवर्गणाश्रितोंकी आत्मप्रदेशोंमे अस्तित्व होती है उसे बध कहते हैं । यह उनमे  
अन्तर है ।' और भी ज्ञातव्य बात यह है—

“आस्रवे योगो मुख्यो बन्धे च कपायादिः । यथा राजसभायाःमनु-  
ब्राह्मनिग्राहयोः प्रवेशने राजादिष्टपुरुषो मुख्यः, तयोरनुग्रहनिग्रहकरणे राजादेशः” (११२)

“आस्रवमे योगकी मुख्यता है तथा बधमे कपायादिककी प्रधानता है । जैसे राजसभामे  
अनुग्रह करने योग्य तथा निग्रह करने योग्य पुरुषोंके प्रवेश करानेमे राज्य-कर्मचारी मुख्य हैं,  
किन्तु प्रवेश होनेके पश्चात् उन व्यक्तियोंको सत्कृत करना या दंडित करना इसमे राजाज्ञा मुख्य  
है ।” इस प्रकार योगकी मुख्यतामे कर्मोंके आगमनका द्वार खोल दिया जाता है । आगत  
कर्मोंका आत्माके साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध होना कपायादिकी मुख्यतासे होता है ।

योगकी प्रधानतासे आकर्षित किए गए तथा कपायादिकी प्रधानतासे आत्मासे  
सम्बन्धित कर्म किस भाँति जगत्की अनन्त विचित्रताओंको उत्पन्न करनेमे समर्थ होता है ? कोई  
एकेन्द्रिय है, कोई दो इन्द्रिय है आदि ८४ लाख योनियोंमे जीव कर्मवश अनन्त रूप धारण  
करता फिरता है । यह परिवर्तन किस प्रकार संपन्न होता है, इस विषयको कुन्दकुन्दस्वामी इन  
शब्दों द्वारा स्पष्ट करते हैं—

“जह पुरिसेणाहारो गहिओ परिणमइ सो अणवविह ।

मंसवसारुहिरादीभावे उयरगिसजुत्तो ॥ १७९ ॥”

तह णाणिस दु पुच्च बद्धा पच्चया बहुवियप्प ।

बज्जते कम्म ते णयपरिहीणा उ ते जीवा ॥ १८० ॥”—समयसार ।

(१) 'आत्मकमणारयोऽनुप्रवेशात्मको बध ।'—स० सि० ।

—यदि पुद्गलको अनादिसे शुद्ध मान लिया जाय तो जैसे बिना कारणके स्वभावतः जीव ज्ञानमें पाया जाता है वही प्रकार क्रोधादि भी जीवके स्वभाव या गुण हो जायेंगे। क्रोधादिके सदा सद्भाववश बधम नित्यता आ जायगी। अथवा यदि क्रोधादि गुणोंका अभाव माना जायगा तो स्वभावज्ञान या गुणी जीवका भी लोप हो जायगा। क्रोधादिका अदर्शन पाया जाता है।

यहाँ अभिप्राय यह है, कि कामादिक कर्मबधसे उत्पन्न नहीं हुए, कारण पुद्गल सदा शुद्ध रहता है, एसी स्थितिमें क्रोधादिक जीवके स्वभाव हो जायेंगे। समयी पुरुषोंमें क्रोधादिक विकारोंका अदर्शन पाया जाता है। क्रोधरूप स्वभावका अभाव होनेपर स्वभावज्ञान आत्माका भी लोप हो जायगा। अतः पुद्गलको अनादि शुद्ध मानकर क्रोधादिकी जीवका स्वभाव मानना अनुचित है। क्रोधादि भावोंको कर्मकृत मानना ही श्रेयस्कर है। आचार्य कहते हैं—

“पूर्वकर्मोदयाद्भावो भावात्प्रत्यग्रमचयः।

तस्य पारुत्पुनर्भावी भावाद् धन्धः पुनस्तत ॥

एवं सन्तानतोऽनादिः सम्बन्धो जीवरूपणोः।

ससारः स च दुर्मोच्यो विना सम्भ्यरहगादिना ॥” पचाध्यायी ४२४३

—पूर्वकर्मोदयसे रागादि भाव होते हैं। उन भावोंसे आगामी कर्मका संचय होता है। उस कर्म-विपाकसे पुनः रागादिभाव होते हैं। वा भावोंमें पुनः बध होता है। इस प्रकार जीव कर्मका सम्बन्ध सतानन्ती अपक्षा अनादि है। सम्बन्धदर्शनादिके बिना यह ससार दुर्मोच्य है।

आत्मा और कर्मका सान्निध्य सम्बन्ध स्वीकार करनेपर दोषोंका उद्घाटन ऊपर किया जा चुका है। यह भी कहा जा चुका है कि वर्तमान आत्मा परतत्र है। यह कर्मोंमें अधीन है। यह कर्मबधन सान्निध्य स्वीकार करनेमें भयकर आपत्तियाँ आती हैं, ऐसी स्थितिमें एक ही मार्ग निरापद पचता है कि कर्म और आत्माका अनादि सम्बन्ध माना जाय। इसके सिवाय कोई और मध्यम मार्ग नहीं है। आत्मशक्तिसे विरसित होनेपर कर्माना बधन शिथिल होने लगता है और शक्तिसे पूर्ण प्रवृद्ध होनेपर कर्माना नाश हो जाता है।

### कर्मों के आस्त्रवका कारण योग है

इस जीवके कर्मबधनका कारण रागादिभावोंको कहा है कर्मादि आगमनका कारण है आत्म-अदेशोंका परित्यजन होना। मनोवर्गणा, वचनवर्गणा अथवा वाचवर्गणाके अचलान्तमें आत्मप्रदेशोंमें सङ्गपना पाया जाता है। मन वचन वाक्यका त्रियारूप योगने द्वारा नहीं। कर्मोंका आस्त्रव—आगमन होता है। योगके त्रयात्मक भेदोंपर प्रकाश डालते हुए आचार्य वीरसेन धवलादीका (१, २७९) में लिखते हैं—“क. पुनः मनोयोग इति चेद्भावमनसः समुत्पत्त्यर्थं प्रयत्नो मनोयोगः। तथा वचसः समुत्पत्त्यर्थं प्रयत्नो वागयोगः। कायक्रियासमुत्पत्त्यर्थं प्रयत्नः काययोगः।” —“मनोयोगका क्या स्वरूप है? भावमनकी उत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न होता है, उसे मनोयोग कहते हैं। इसी प्रकार वचनकी उत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न होता है उसे वचनयोग कहते हैं और वाक्यकी क्रियाकी उत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न होता है, उसे वाययोग कहते हैं।”

—अज्ञानके कारण मृगगण मृगतृष्णामे जलकी भ्रान्तिवश पानी पीनेके लिए दौड़ते हैं। अज्ञानके कारण लोग रस्सीमे सर्पकी भ्रान्ति धारण कर भागते हैं। जैसे पवनके वेगसे समुद्रमे लहरें उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार अज्ञानवश विविध विकल्पोंको करते हुए स्वयं शुद्धज्ञानमय होते हुए भी अपनेको कर्ता मानकर ये प्राणी दुःखी होते हैं।

समाधान—यहाँ मिथ्यात्व भाव निशिष्ट ज्ञानको अज्ञान मानकर उस अज्ञानकी प्रभावनाकी विन्यासवश उन्नीत कथन किया गया है। यथार्थमे देखा जाय, तो बन्धका कारण दूसरा है। राग-द्वेषादि विकारों सहित अज्ञान बन्धका कारण है। जोका भी ज्ञान यदि वीतरागता सपन्न हो तो कर्मराशिको विनष्ट करनेमें समर्थ हो जाता है। परमात्मप्रकाश टीकामे लिखा है—

“वीरा वैरगपरा थोव पि हु सिक्खिउण सिज्झति ।

ण हु सिज्झति विरागेण विणा पढिदेसु वि सव्वसत्थेसु ॥”—(पृ० २२७)

—वैराग्यसपन्न वीर पुरुष अल्प ज्ञानके द्वारा भी सिद्ध हो जाते हैं। सपूर्ण शास्त्रोंके पढ़ने पर भी वैराग्यके बिना सिद्ध पदकी प्राप्ति नहीं होती।

समन्तभद्र अपने युक्तिवाद द्वारा इस समस्याको सुलझाते हुए कहते हैं—

“अज्ञानान्मोहिनो बन्धो न ज्ञानादीतमोहतः ।

ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा ॥”—आ० भी० १८ ।

—‘मोहविशिष्ट व्यक्तिके अज्ञानसे बन्ध होता है। मोहरहित व्यक्तिके ज्ञानसे बन्ध नहीं होता है। मोहरहित अल्प ज्ञानसे मोक्ष होता है। मोहीके ज्ञानसे बन्ध होता है।’

यहाँ बन्धका अन्वयव्यतिरेक ज्ञानकी न्यूनाधिकताके साथ नहीं है। इससे ज्ञानको बन्ध या मुक्ति का कारण नहीं माना जा सकता। मोह सहित ज्ञान बन्धका कारण है और मोहरहित ज्ञान मुक्ति का कारण है। अतः यह बात प्रमाणित होती है कि बन्धका कारण मोहयुक्त अज्ञान है और मुक्ति का कारण मोहका अभाव युक्त ज्ञान है क्योंकि इसके साथ ही अन्वयव्यतिरेक सुघटित होता है।

यह यह आज्ञाका सहज उत्तर होती है कि इस कथनका सूत्रकार उमास्वामीके इस सूत्रके साथ विरुद्धता है—“मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकपाययोगा बन्धहेतवः” (८, १)—वृत्त्यका अनुरोध, असयम, असावधानता, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मन, वचन, कायकी चंचलताके द्वारा बन्ध होता है।

इस विषयका समाधान करते हुए विद्यानन्दिस्वामी कहते हैं (अष्टसह० पृ० २६७) कि मोह विशिष्ट अज्ञानमे सक्षेपसे मिथ्यादर्शन आदिका समग्र किया गया है। इष्ट अनिष्ट फल प्रदान करनेमे समर्थ कर्म बन्धनका हेतु कपार्यकार्यसमवायी अज्ञानके अविनाभायी मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कपाय तथा योगको कहा गया है। मोह और अज्ञानमे मिथ्यात्व आदिका समावेश हो जाता है। दोनों आचार्योंके कथन में तात्पर्यभेद नहीं है, केवल प्रतिपादन-शैलीकी भिन्नता है।

जैसे पुरुषके द्वारा खाया गया भोजन जठराग्निके निमित्तयश मास, चर्बी, रविर आदि पर्यायोंसे प्राप्त होता है वसी प्रकार ज्ञानवान् जीवके पूर्वजन्म द्रव्यासय बहुत भेदयुक्त कर्मोंको बाधते हैं। वे जीन परमार्थ दृष्टिसे रहित हैं।

आ० पूज्यपाद<sup>१</sup> तथा अकलंक स्वामीने सर्वार्थसिद्धि ( ८१२ ) और राजवार्तिक (११०) में भी यही लिखा है।

जिस प्रकार भोग्यवस्तु प्रत्येक आमाशयमें पहुँचकर भिन्न भिन्न रूपमें परिणत होती है उसी प्रकार योग्यके द्वारा आकर्षित किए गए कर्माका आत्माके साथ सरलपे होने पर अनन्त प्रकार परिणमन होता है। इस परिणमनकी विविधतामें कारण रागादि परणतिकी हीनाधिकता है।

### क्या बन्धका कारण अज्ञान है ?

आत्माके बन्धन-बद्ध होनेका कारण कोई लोग अज्ञान या अविद्याको बताते हैं।<sup>१</sup> अज्ञानसे ही बन्ध होता है और ज्ञानसे मुक्ति लाभ होता है, इस विचारकी मीमांसा करते हुए स्वामी समन्तभद्र कहते हैं—

“अज्ञानाच्चेद् ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्याद्य केवली ।

ज्ञानस्तोकाद्रिमोक्षश्चेदज्ञानाद् बहुतोऽन्यथा ॥’-आ० मी० १६ ॥

—‘अज्ञानके द्वारा नियमसे बन्ध होता है, ऐसा सिद्धान्त अगीकार करने पर कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञ केवली न हो सकेगा, कारण ज्ञय अनन्त हैं। अनन्त ज्ञेयोंका बोध न होगा, अतः जिनका ज्ञान न हो सकेगा, वे बन्धको उत्पन्न करेंगे। इससे सर्वज्ञका सद्धान न होगा। कदाचित् यह कहा जाय कि समीचीन अल्पज्ञानसे मोक्ष प्राप्त हो जायगा, तो, अवशिष्ट महान् अज्ञानके कारण बन्ध भी होगा। इस प्रकार किसी को भी मुक्तिका लाभ नहीं होगा।

शकाकार कहता है—आपके सिद्धान्तमें भी तो अज्ञानको बन्ध तथा दुःखका कारण बताया गया है, फिर ‘अज्ञानसे बन्ध होता है’ इस पक्षके विरोध करनेमें क्या कारण है। दक्षिण अभूतचन्द्रसुनि क्या कहते हैं ?

“अज्ञानान्मृगतण्डिनां जलधिया धारन्ति पातु मृगाः

अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति ध्रुवगाध्यासेन रजौ जना ।

अज्ञानाच्च त्रिकलम्बकवरणाद्वातोत्तरद्वाब्धिरत्

शुद्धज्ञानमया अपि न्ययममी वर्त्रमभ्याकुला ॥”

(१) बटारान्यद्वारप्रहणवचीनम इमथ्यमकपायागयानुरूपरिधायतुमनविशेषप्रतिपत्त्ययम्

(२) ‘ज्ञानेन चानवगो निरययादिष्पत बन्ध ॥ —सर्वान्यकारिका ।

द्वारा क्रम मानते हो, तो यह क्रमचरित्र सहकारियों ही रहेगा। दूसरी बात यह है कि नित्य वस्तुमें देशक्रम कालक्रम नहीं पाया जाता।

नित्य पदार्थमें युगपद् अर्थक्रियाकारित्व माननेपर एक ही समयमें समस्त कार्योंकी उत्पत्ति हो जायगी और द्वितीय क्षणमें क्रियाके अभावमें अवस्तुत्व हो जायगा। अतः नित्यैकान्त पक्षमें अर्थक्रियाका अभाव होनेसे कर्मबन्धकी व्यवस्था भी नहीं बनती। ऐसी स्थितिमें साख्या-दिकोंकी कर्ममान्यता उनकी मनोनीत तत्त्वस्थितिके प्रतिकूल सिद्ध होती है।

### अद्वैत मान्यतामें वाधा

अद्वैत पक्ष माननेपर कर्मव्यवस्था नहीं बनती।<sup>१</sup> लौकिक-वैदिक कर्म, कुशल-अकुशल कर्म, पुण्य-पाप कर्म आदिको स्वीकार करनेपर अद्वैत मान्यतापर वञ्चपात होता है। अविद्याके कारण कर्मद्वैत मानना भी युक्तिसंगत नहीं है, कारण ऐसी स्थितिमें विद्या अविद्याका द्वैत उपस्थित होगा। स्वामी समन्तभद्रका (आत्ममी० २६, २७) कथन है कि द्वैतके बिना अद्वैत नहीं बनता, जैसे हेतुके अभावमें अहेतु नहीं पाया जाता है। प्रतिपेक्षके बिना सद्भावान् पदार्थका प्रतिपेक्ष नहीं किया जा सकता। उनकी एक सुन्दर युक्ति है। यदि युक्तिसे अद्वैततत्त्व मानते हो, तो साधन और साध्यका द्वैत उपस्थित होता है। कदाचित् अपने वचनमात्रसे अद्वैतको प्रमाणित करते हो, तो इस पद्धतिसे द्वैत पक्ष भी क्यों नहीं सिद्ध किया जा सकता? अतः प्रमाण एव युक्तिविरुद्ध अद्वैत मान्यतामें कर्मसिद्धान्त सिद्ध नहीं होता।

अनेकान्त शासनमें ही समीचीन रूपसे कर्म-ग्रन्थ व्यवस्था सिद्ध होती है। एकान्तवादी अपने सिद्धान्तके आधार पर कर्म-व्यवस्थाको प्रमाणित नहीं कर सकते।

### कर्मसिद्धान्तका अतिरेक

कर्मसिद्धान्तका अतिरेक भी इष्ट साधक नहीं है। इसके अतिरेकग्रह मनुष्य अकर्मण्यताका आश्रय ले, अपने विकासके मार्गको अवरोध करता है। कर्मको हो सब कुछ समझने वाला कहता है—“यद्यत्र लिखित भाले तस्थितस्यापि जायते” जो भालेमें लिखा है वह उद्यम न करने पर भी प्राप्त हुए बिना न रहेगा। पौरुष करनेमें शक्ति लगाना व्यर्थ है ‘विधिरेव शरणम्’ भाग्य ही का भरोसा है, इस प्रकार देवकालके चक्रमें फँसे हुए व्यक्ति प्रलय करते हैं। स्वामी समन्तभद्र कहते हैं—“देव से ही यदि प्रयोजन सिद्ध होता है, तो यह यथाओ, जीवके प्रयत्नके द्वारा, देवकी उत्पत्ति क्यों होती है। आज जो हमारा पुरुषार्थ है, भावी जीवनके लिये वह देव बन जाता है, पूरकृत कर्मको छोड़कर देव और क्या है?”

यदि देवके द्वारा देवकी उत्पत्ति मानते हो और उसमें बुद्धिपूर्वक क्रिये गये मानव प्रयत्नों-का तनिक भी हस्तक्षेप नहीं मानते तो मोक्षकी प्राप्ति संभव न होगी, क्योंकि पूर्ण कर्मबन्धके अनुसार ही आगामी कर्मका बन्ध होगा, इस प्रकारकी परंपरा चलनेसे मोक्षका अयसर नहीं मिलेगा और पौरुष अकार्यकारी ठहरेगा।

(१) “कर्मद्वैतं फलद्वैतं लौकिकद्वैतं च ना भवेत्। विद्याऽनविद्याद्वयं न स्याद्बन्धमोक्षद्वयं तथा ॥

—शा० मी० ६५।

(२) “देवादेर्गर्भसिद्धिर्भेदेव पौरुषतः कथम्। देवतभेदनिर्मोक्षं पौरुषं निष्फलं भवेत् ॥”—शा० मी० ८८।

## एकान्तदर्शनोमे कर्म सिद्धान्तकी असभवपना

स्वामी समन्तभद्रका कथन है कि यह कर्मबन्धकी व्यवस्था स्याद्वाद शासनमे ही निर्णय रीतिसे बनती है। एकान्त दर्शनोमे कर्मबन्ध फलानुभवन आदि बातें असभव हैं। वे कहते हैं—  
“हे जिनेन्द्र! अनित्यैकान्त आदि सिद्धान्तावादियोंके यहा पुण्य कर्म, पाप कर्म, परलोक सिद्ध नहीं होते। एकान्तप्रह्लाविष्ट लोग अनेकान्तपक्षके विरोधी तो हैं ही, साथ ही वे स्वपक्षके भी घातक हैं।”

नित्यैकान्त अथवा अनित्यैकान्त पक्षमे क्रम तथा अक्रमपूर्वक अर्थक्रिया नहीं बनती। अर्थक्रियाकारित्वपनेके अभावमे पुण्य पाप बन्धादिकी व्यवस्था भी नहीं हो सकती।

बौद्धदर्शनमे कर्मकी मान्यता है। यह स्पष्टिर नागसेन और सम्राट् मिलिन्दने पूर्व प्रतिपादित प्रश्नोत्तरसे ज्ञात होता है। किन्तु बौद्धदर्शनकी सर्व क्षणिकवाद तत्त्वके साथ उस कथानुक्तका सामंजस्य नहीं होता। क्षणिक पक्षमे प्रत्येक पदार्थ क्षणरिधितिशील है। अतः उसमे कर्मोका बन्धन और फलोपभोग आदिनी बातें सिद्धान्त निरुद्ध पड़ती हैं। हिंसादि पापोंका फल अक्षुशल कर्मका संपादन तथा फलानुभवन नहीं करेगा, कारण उसका हिंसादि कार्य क्षणमे क्षय हो गया, अतः फलोपभोग अन्य व्यक्ति होगा। क्षणिक पक्षमे वस्तु तथा लोक व्यवस्था नहीं बनती, इसे आत्मीमासाकार इस प्रकार समझाते हैं—<sup>२</sup>“हिंसाका सफल्य करनेवाला द्वितीय क्षणमे नष्ट हो चुका, अतः सफल्यरिहीन व्यक्तिने हिंसा की, ऐसा कहना होगा। हिंसक व्यक्तिका भाव उत्तर क्षणमे विनाश हो गया, इससे हिंसककायके फलस्वरूप पीड़ा प्राप्त करनेवाला और बन्धनमे फँसनेवाला ऐसा व्यक्ति होगा जिसने न तो हिंसका सफल्य किया है और न हिंसा ही की है। इसी न्यायके अनुसार बन्धनरुद्ध व्यक्ति तो नष्ट हो गया, मुक्ति प्राप्तकर्ता दूसरा ही होगा।” इस प्रकारकी विचित्र स्थिति और अव्यवस्था क्षणिकैकान्त पक्षमे उत्पन्न होती है।

क्षण क्षणमे पदार्थोका सर्वथा नाश स्वीकार करने पर किसी भी प्रकारकी नैतिक जिम्मेदारी नहीं होगी। किए गए कर्मोका नाश और अकृत कर्मोका फलोपभोग होगा, ऐसे सिद्धान्तमे कर्मबन्ध व्यवस्था नहीं बन सकती।

## नित्यैकान्तमे दोष

एकान्त नित्य पशु अवीकार करने पर क्रियाशीलताका अभाव होगा। अतः देशान्तर गमन नहीं होगा। शारीरिक होनेसे कालजन्म नहीं बनेगा। भकलकालकलाव्यापी वस्तुको विशेष व्याजम स्थित मानने पर नित्यत्वना विरोध होगा। कदाचित् सहकारी कारणही अपेक्षा वस्तुमे क्रम मानते तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सहकारी कारण उस पदार्थमे कुछ विशेष पता उत्पन्न करते हैं या नहीं? यदि उसमे विशेषताकी उत्पत्ति मानते हो तो नित्यत्वका एकान्त नहीं रहता है। यदि नित्य वस्तुमे विशेषता उत्पन्न किए बिना भी सहकारी कारणोंके

(१) बुधलाकुल कर्म परलोकमे न करचित् ।

एकान्तप्रश्नोत्तरु नाप स्वस्वैरिति ॥ —भा० मी० ८ ।

(२) ‘नित्यत्वमिदं धातुं न दिनसपमिदं चिन्मत् ।

बन्धत तद्दयापेत चित्तं बद्धं न मुच्यते ॥ —भा० मी० ५१ ।

संमतभद्र स्वामी इस सबधमे अत्यत महत्त्वपूर्ण मार्ग दर्शन करते हैं--'अबुद्धि' पूर्वक इष्ट अनिष्ट कार्य अपने दैवकी प्रधानतासे होता है। बुद्धिपूर्वक इष्ट अनिष्ट फल प्राप्तिमे पौरुषकी प्रधानता है।

सोते हुए व्यक्तिका सर्पसे स्पर्श होते हुए भी मृत्यु न होनेमे दैव की प्रधानता है। लेकिन सर्प देरकर बुद्धि पूर्वक आत्मरक्षा करनेमे पुरुषार्थकी विशेषता कारण है।

भोगी प्राणी दैव और पुरुषार्थके महोदधिको मथकर अमृतके स्थान पर विष निकाळ कर सोचता है, और तदनुसार नि सकोच हो प्रवृत्ति भी करता है, मोक्ष मार्गके लिये यह दैवकी ओर निहारा करता है और विषय भोगके लिये कमर कसरत पुरुषार्थी बनता है। सुसुलु प्राणी विषयादिकोंके निषयमे पुरुषार्थको अधिक महत्त्व नहीं देता। यह अपने पौरुषका श्रयोग कर्म जालके काटनेमे करता है। इसमे संदेह नहीं कि उसे अपने प्रयत्नमे वास्तविक सफलता तत्र मिलती है जत्र विधि विपरीत वृत्ति वाला नहीं रहता है। सुसुक्ष्मके प्रयत्नसे विरुद्ध भी कर्म क्षीण शक्ति युक्त बनता जाता है। इस प्रकार आत्म विकासका मार्ग अधिक सरल और उज्वल होता जाता है। जैन शासनमे यह बताया है कि रत्नत्रय रूप सच्चे पुरुषार्थके द्वारा यह जीव अनादि कालसे आगत पुरातन कर्म-पुजको अतर्मुहूर्तके भीतर ही विनष्ट करनेमे समर्थ होता है।

### कर्मों का विभाजन

इस कर्मके शब्दकी अपेक्षा असल्यात भेद हैं। अनतानत प्रदेशात्मक स्क धोंके परिणमनकी अपेक्षा कर्मके अनत भेद होते हैं। ज्ञानावरणादिके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा भी अनत भेद कहे जाते हैं।<sup>१</sup> इस कर्मकी वध, उत्कर्षण, सक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निघत्ति, निकाचना रूप दस करणात्मक अवस्थाएँ पाई जाती हैं<sup>२</sup>। वधकी परिभाषा की जा चुकी है। उत्कर्षण करणमे कर्मके अनुभाग तथा स्थितिनी वृद्धि होती है। अपकर्षणमे इसके विपरीत बात होती है। सक्रमण करणमे एक कमप्रकृतिका अन्य प्रकृति रूप परिणमन किया जाता है। कर्मोंको उदय कालके पूर्व उदयावलीमे लाना उदीरणा करण है। कर्मोंका सत्तामे रहना सत्त्व है। फलदान उदय कहलाता है। उदयावलीमे न आकर कर्मोंकी उपशान्त अवस्था उपशम है। कर्मोंकी ऐसी अवस्था, जिसमे उत्कर्षण, अपकर्षण करणके सिवाय उदीरणा तथा सक्रमण न हो सके, निघत्ति है। ऐसी कर्म-स्थिति, जिसमे उदीरणा, सक्रमण, उत्कर्षण तथा अपकर्षण न हो सके, निकाचना कही जाती है।

कर्मोंकी इन दस अवस्थाओं पर ध्यान देनेसे यह बात स्पष्ट होजाती है कि यह जीव अपने परिणामोंके अनुसार कर्मोंको हीनशक्ति और महान शक्तियुक्त बना सकता है। यह उदीरणाके

(१) "अबुद्धिपूर्वकैशायामिष्टानिष्ट स्वदैवत । बुद्धिपूर्वकैशायामिष्टानिष्ट स्वपौरुषात् ॥

(२) अन० धर्मा० पृ० ३०० ।

(३) 'बहुक्कट्ठकरण संक्रमणोक्कट्टुदीरणा उच्च ।

उदयुपशमगिघत्ती गिजाचना होदि पडिपयती ॥'—गो० क० ४१७

(४) गो० क० ४३८-४० ।



दैवैकातकी दुर्बलतासे लाम बढाते हुए पुरुषार्थवादी कहता है, बिना पौरुषके कोई कार्य नहीं बनता। मोमद्वय सूरिके शब्दोंमें यह कहता है—

“येषा चाहुवल नास्ति, येषा नास्ति मनोऽलम् ।

तेषा चद्रुल देव ! किं कुर्यादम्बरस्थितम् ॥”-यशस्तिलक ३।५४ ।

जिनकी भुजाओंमें बल नहीं है और न जिनके पास मनोऽल ही है ऐसे व्यक्तिप्राका आकाश में स्थित चन्द्रबल—चमकालीन नक्षत्र आदिकी रचना क्या करेगी ?”

केवल भाग्यको ही भगवान् मानने वाले पुरुषोंको कृपि आदि कार्य करना कोई अर्थ नहीं रखता है—

### पुरुषार्थका एकान्त भी वाधित है

पुरुषार्थके अनन्य भक्तसे स्वामी समतुल्य पृच्छने है<sup>१</sup> यदि, पुरुषार्थसे ही तुम कार्य सिद्धि मानते हो तो यह बताओ दैवसे तुम्हारा पुरुषार्थ कैसे उत्पन्न होता है ? कदाचित् यह मानो कि हम सब कुछ पुरुषार्थके द्वारा ही सम्पन्न करते हैं तब सम्पूर्ण प्राणियोंका पुरुषार्थ जयभी समन्वित होना चाहिये ।

### समन्वयका मार्ग

इस दैव और पुरुषार्थके द्वन्द्वमें अनेकान्त समन्वय शैली द्वारा मैत्री स्थापित करता है<sup>२</sup> सोमदेव सूरि कहते हैं “इस लोकमें फल प्राप्ति दैव—पूर्वोपार्जित कर्म तथा मानुषकर्म—पुरुषार्थ इन दोनोंमें अधीन है। ऐसा न मानने वालोंमें आचार्य पूछने हैं कि क्या कारण है, समान चेष्टा करने वालोंके फलोमें-सिद्धिमें भिन्नता प्राप्त होती है ?” आचार्य कहते हैं —

“परस्परपकारेण जीवितौपधयोरिव ।

दैवपौरुषयोर्वृत्ति फलजन्मनि मन्यताम् ॥”-यशस्तिलक ३, ६३ ।

जैसे औपधि जीवनके लिये हितप्रद है और आयुर्कर्म औपधिके प्रभाषके लिये आवश्यक है, अर्थात् जैसे फलोत्पत्तिमें आयुर्कर्म और औपधिसेवन परस्परमें एक दूसरेको लाभ पहुंचाते हैं उसी प्रकार दैव और पौरुषकी वृत्ति समझना चाहिये ।

वे<sup>३</sup> कहते हैं, दैव चक्षु आदि इंद्रियोंके अगोचर अनीन्द्रिय आत्मासे संबधित है और प्राणियोंका सम्पूर्ण क्रियायें पुरुषार्थ पर निर्भर हैं, इसलिये उद्यमकी ओर ध्यान रहना चाहिये ।

(१) “पौरुषादेन सिद्धिश्चेत् पौरुष दंत कथम् । पौरुषा-चेदमात्रेण स्वात् सर्वप्राणिषु पौरुषम् ॥

(२) ‘दैव च मानुष कर्म लोकात्प्राप्त्य फलात्तिसु । कुता यथा विचित्राणि फलानि समवेक्षिषु ॥

(३) तथापि पौरुषायत्तार सत्वानां सकला क्रियाः । अतस्तन्वित्यममयन का चित्तातीन्द्रियात्मनि ॥

समतमद्र स्वामी इस सचधमे अत्यत महत्त्वपूर्ण मार्ग दर्शन करते हैं—अबुद्धि<sup>१</sup> पूर्वक इष्ट अनिष्ट कार्य अपने दैवकी प्रधानतासे होता है। बुद्धिपूर्वक इष्ट अनिष्ट फल प्राप्तिमें पौरुषकी प्रधानता है।

सोते हुए व्यक्तिका सर्पसे स्पर्श होते हुए भी मृत्यु न होनेमें दैव की प्रधानता है। लेकिन सर्प देखकर बुद्धि पूर्वक आत्मरक्षा करनेमें पुरुषार्थकी विगोपता कारण है।

भोगी प्राणी दैव और पुरुषार्थके महोदधिको मथकर अमृतके स्थान पर विष निकाल कर सोचता है, और तदनुसार नि सकोच हो प्रवृत्ति भी करता है, मोक्ष मार्गके लिये वह दैवकी ओर निहारता करता है और विषय भोगके लिये कमर फसकर पुरुषार्थी बनता है। सुमुख प्राणी विषयादिकोंके विषयमें पुरुषार्थको अधिक महत्त्व नहीं देता। वह अपने पौरुषका भ्रयोग कर्म जालके काटनेमें करता है। इसमें सदेह नहीं कि उसे अपने प्रयत्नमें वास्तविक सफलता तब मिलती है जब विधि विपरीत वृत्ति वाला नहीं रहता है। सुमुखके प्रयत्नसे विरुद्ध भी कर्म क्षीण शक्ति युक्त बनता जाता है। इस प्रकार आत्म विकासका मार्ग अधिक सरल और उज्वल होता जाता है। जैन शासनमें यह बताया है कि रत्नत्रय रूप सच्चे पुरुषार्थके द्वारा यह जीव अनादि कालसे आगत पुरातन कर्म-पुजको अतर्मुहूर्तके भीतर ही विनष्ट करनेमें समर्थ होता है।

### कर्मोंका विभाजन

इस कर्मके शब्दकी अपेक्षा असख्यात भेद हैं। अनतानत प्रवेशात्मक स्कंधोंके परिणमनकी अपेक्षा कर्मके अनत भेद होते हैं। ज्ञानावरणादिके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा भी अनत भेद कहे जाते हैं।<sup>२</sup> इस कर्मकी वध, उत्कर्षण, सक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति, निनाचना रूप दस करणात्मक अवस्थाएँ पाई जाती हैं<sup>३</sup>। वधकी परिभाषा की जा चुकी है। उत्कर्षण करणमें कर्मके अनुभाग तथा स्थितिकी वृद्धि होती है। अपकर्षणमें इसके विपरीत बात होती है। सक्रमण करणमें एक कर्मप्रकृतिका अन्य प्रकृति रूप परिणमन किया जाता है। कर्मोंको उदय कालके पूर्व उदयावलीमें लाना उदीरणा करण है। कर्मोंका सत्तामें रहना सत्त्व है। फलदान उदय कहलाता है। उदयावलीमें न आकर कर्मोंकी उपशान्त अवस्था उपशम है। कर्मोंकी ऐसी अवस्था, जिसमें उत्कर्षण, अपकर्षण करणके सिवाय उदीरणा तथा सक्रमण न हो सके, निधत्ति है। ऐसी कर्म-स्थिति, जिसमें उदीरणा, सक्रमण, उत्कर्षण तथा अपकर्षण न हो सके, निनाचना कही जाती है।

कर्मोंकी इन दस अवस्थाओं पर ध्यान देनेसे यह बात स्पष्ट होजाती है कि यह जीव अपने परिणामोंके अनुसार कर्मोंको हीनशक्ति और महान शक्तियुक्त बना सकता है। यह उदीरणाके

(१) "अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्ट स्वदैवत । बुद्धिपूर्वव्यपज्ञायामिष्टानिष्ट स्वपौष्यात् ॥

—भा० मी० ९१

(२) अन० धर्मा० पृ० ३०० ।

(३) 'बुधुक्कट्टणकरण सकममोत्तुदीरणा सत्त ।

उदयुणवामणियची णिणाचना होदि पडिययी ॥' —गो० क० ४१७

(४) गो० क० ४३८-४० ।

द्वारा उदयकालके पूर्व भी कर्मोंको उदय अवस्थामे ला निर्माण कर सकता है। कभी कम शक्तिहीन बनकर निर्भराको प्राप्त होते हैं। कहनेका सार यह है कि जीव अपने परिणामके अनुसार कर्मोंको भिन्न रूपमें परिणत कर सकता है। कर्मका फल भोगना ही पड़ेगा—“नामुक्त क्षीयते कर्म” यह बात जैन सिद्धांतमें सर्वथा रूपमें सम्भव नहीं है। जैन आत्मामे रत्नत्रयकी व्योति प्रदीप्त होती है तब अनतानत कामाणवर्णाणै विना फल दिये हुए निर्भराको प्राप्त हो जाती हैं। केरली भगवानको असाता प्रकृति कुछ भी त्रिना फल दिये हुए साता रूपमें परिणत होकर निर्मल जाती है। इसलिये वीतराग शासनम केरलीके असाता निमित्तक मुधा रूपा आदिकी पीढ़ाका अभाव माना गया है।

### वधके प्रकार

कर्मवधके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश ये चार भेद धताये गये हैं। महानघके इस प्रथम खंडमें प्रकृतिवधका विविध अनुयोग द्वारों से वर्णन किया गया है। प्रकृति गन्दक अर्थ है स्वभाव, जैसे गुड़की प्रकृति मधुरता है। ज्ञानावरण कर्मका स्वभाव ज्ञानका आवरण करना है। दर्शनावरणकी प्रकृति दर्शन गुणको ढाँचना है। वेदनीयता स्वभाव सुखदुःखका अनुभवन करना है। मोहनीयता स्वभाव है आत्मारे दर्शन और चारित्र गुणोंको विकृत करना। यह आत्मारे सुख गुणको भी नष्ट करता है। मनुष्यादिके भवधारणका कारण आयु कर्म है। नर नारकादि नामसे जीव सकोतित होता है, इसका कारण नामकी रचनाविशेष है। उच्च या नीच शरीरम जीवको रचना गोरकी प्रकृति है। तब भोगादिमें बाधा डालना अतराय कर्मकी प्रकृति है। इन आठ कर्मोंने नामके अनुसार अपनी प्रकृति बही गई है। इन कर्मोंका स्वभाव समझानेके लिए जैन आचार्यानि निम्नलिखित उदाहरण उपस्थित किए हैं। ज्ञानावरणका उदाहरण परदा है। दर्शनावरणका द्वारपाल है, कारण उसके द्वारा इष्ट दर्शनका आवरण होता है। मधुलिप्त असिधाराके समान वेदनीय कर्म है। यह मधुरताक साथ जीम कटनेका सताप पैदा करती है। मोहनीय मदिराके समान जीवको आत्म-सृष्टि नहीं होने देता है। आयु कर्म काष्ठके खाड़ा-वधन विशेष द्वारा व्यक्तिसे केंद्री बनानेके समान है। नाम कर्म भिन्न भिन्न शरीर आदिकी रचना चित्रकारके समान किया करता है। गोरकर्म, जीवको उच्च नीच शरीरधारी बनाता है। जैसे कुम्भकार छोटे बड़े बतन बनाता है। भदारी जिस प्रकार स्वामी द्वारा स्वीकृत द्रव्यको देनेमें बाधा पैदा करता है, उसी प्रकार विघ्न करना अतरायका स्वभाव है। इन आठ कर्मोंके १४८ भेद कहे गए हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अतराय कर्म जीवके क्रमशः ज्ञान, दर्शन, सम्पत्त्व तथा अनत वीयरूप अनुचीवी गुणोंको घातनेके कारण घातिया कहे जाते हैं। आयु, नाम, गोर तथा वेदनीयको अरातिया कर्म कहा है। ये जीवके अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अगुरुत्वयुत्व तथा अव्याबाधरत नामक प्रतिजीवी गुणोंको घातते हैं।

स्थितिवध उसे कहते हैं, जिसके कारण प्रत्येक कर्मके बधनकी कालमर्यादा निश्चित होती है। कर्मोंके रस प्रदानकी सामर्थ्य को अनुभागत्व कहा है। कर्मवर्णाओंके परमा-गुणोंकी परिगणनाको प्रदेशवध कहते हैं। कहा भी है—

“स्वभाव प्रकृतिः प्रोक्ता, स्थितिः कालावधारणम् ।  
अनुभागो विपाकस्तु प्रदेशोऽणविकल्पनम् ॥”

योगके कारण प्रकृति और प्रदश बध होते हैं। कपायके कारण कर्मोंमें स्थिति और अनुभागका बध होता है।

### कर्मकृत विचित्र परिणमनपर वैज्ञानिक दृष्टि

गधक, शोरा, तेजाव आदिके मिलनेपर रासायनिक प्रक्रिया प्रारभ होती है, तथा भिन्न प्रकारके तत्त्वविशेषकी उपलब्धि होती है इसी प्रकार कर्मोंका जीवके साथ सम्मेलन होनेपर रासायनिक क्रिया (Chemical action) प्रारभ होती है। और उससे अनत प्रकारकी विचित्रताएँ जीवके भावानुसार व्यक्त हुआ करती है। जीवके परिणामोंमें वह बीज विद्यमान है जो प्रफुटित तथा विकसित होकर अनतविध विचित्रताओंको विशाल बट वृक्षके समान दिखाता है। कोई जीव मरकर कुत्ता होता है तो श्वान पर्यायमें उत्पन्न होनेके पूर्व व्यक्तिकी मनोवृत्तिमें श्वान वृत्तिके बीज सार रूपमें संगृहीत होंगे, जिनके प्रभावसे गृहीत कार्मणवर्गणा श्वान सम्बन्धी सामग्री (Environment) को प्राप्त करा देंगी या उस रूप परिणत होंगी। आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है इसलिये उसे बाधनेवाली कार्मण वर्गणाओंका पुञ्ज भी बहुत सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म पुञ्जमें अनत प्रकारके परिणमन प्रदर्शनकी सामर्थ्य है। अणु बममें (Atom bomb) आकारकी अपेक्षा अत्यन्त लघुताका दर्शन होता है, किन्तु शक्तिकी अपेक्षा यह सहस्रों विशाल बमोंसे अधिक कार्य करता है। भौतिक विज्ञान प्रयत्न करे तो राईके दानेसे भी छोटा बम बन सकता है जो ससार भरको हिला दे। आत्माके साथ मिली हुई कार्मण वर्गणाओंमें अनतानत प्रदेश कहे गये हैं जो अमव्य जीवोंसे अनत गुणित है फिर भी सूक्ष्म होनेके कारण वे इन्द्रियोंके अगोचर हैं। उनमें विद्यमान कर्मशक्ति (Karmic energy) अद्भुत ग्वेल दिखाती है। किसी जीवको निगोद अपर्याप्त पर्यायवाला जीव बना एक श्वासमें अठारह धार शरीर निर्माण और ध्वस द्वारा जीवन मरणको प्रदर्शित करती है। यह आत्माकी अनत ज्ञानशक्तिको ढाककर अक्षरके अनतवें भाग बना देती है। उम कर्म शक्तिके कारण गाय बल ऊँट आदिका आकार प्रकार प्राप्त होता है। ऐना पौनसा कान है जो उस शक्तिकी परिधिके बाहर हो। ज्ञानावरणके रूपमें उसके द्वारा बुद्धिकी हीनाधिकताका विचित्र दृश्य निर्मित होता है लेकिन जिस प्रकार नाटकका अभिनय करनेवाला सूत्रधार होता है जिसके सबेतेके अनुसार कार्य होता है, इसी प्रकार सूत्रधारक जीवके भाव हैं। उन भावोंकी हीनता, उद्यता, यमता, सरलता, समलता, विमलता आदि पर जिन बाह्य क्रियाओंका प्रभाव पड़ता है उनसे भिन्न भिन्न प्रकारके कर्म बघते हैं उनका वर्णन जैन महर्षियोंने किया है जिनके अध्ययनसे मानव इस बातकी कल्पना कर सकता है कि उसका अतीत कैसा था जिससे उसे वर्तमान सामग्री मिली और वर्तमान विकृत अथवा विमल जीवनके अनुमार यह अपने किम प्रकारके भविष्यका निर्माण कर सकता है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति अत्यन्त मन्द ज्ञानी है। इसका क्या कारण है? शरीरशास्त्री तो शारीरिक कारणोंके द्वारा मस्तिष्कके परमाणुओंको दुर्बलताको दोषी ठहरायेगा; किन्तु कर्मसिद्धान्तका ज्ञाता कहेगा कि इस जीवने पूर्वम जन्म कि इसके वर्तमान जीवनका निर्माण हो रहा था ज्ञानके ढाकने वाली साधन सामग्रीको संगृहीत किया था। इसी प्रकार अन्य प्रकारके बाह्य और आभ्यन्तर कार्योंके विषयमें कर्म सिद्धान्तवाला समर्थन करेगा।

### कर्मोंके आगमनके कारणोंका स्पष्टीकरण

ज्ञानावरण कर्ममें विशेष कारण निम्नलिखित बातें बताई गई हैं जैसे—निर्मल ज्ञानके



योगके कारण प्रकृति और प्रदेश बध होते हैं। कषायके कारण कर्मोंमें स्थिति और अनुभागेका बध होता है।

### कर्मकृत विचित्र परिणमनपर वैज्ञानिक दृष्टि

गंधक, शोरा, तेजाव आदिके मिलनेपर रासायनिक प्रक्रिया प्रारंभ होती है, तथा भेज प्रकारके तत्त्वविशेषकी उपलब्धि होती है इसी प्रकार कर्मोंका जीवके साथ सम्मेलन होनेपर रासायनिक क्रिया (Chemical action) प्रारंभ होती है। और उससे अनंत प्रकारकी विचित्रताएँ जीवके भावानुसार व्यक्त हुआ करती है। जीवके परिणामोंमें वह बीज विद्यमान है जो प्रकृति तथा विकसित होकर अनंतविध विचित्रताओंको विशाल घट वृक्षके समान दिखाता है। कोई जीव मरकर कुत्ता होता है तो श्वान पर्यायमें उत्पन्न होनेके पूर्व व्यक्तिकी मनोवृत्तिमें पान वृत्तिके बीज सार रूपमें सगृहीत होंगे, जिनके प्रभावसे गृहीत कार्माणवर्गणा श्वान सम्बन्धी सामग्री (Environment) को प्राप्त करा देंगी या उस रूप परिणत होंगी। आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म इसलिये उसे बाधनेवाली कार्माण वर्गणाओंका पुञ्ज भी बहुत सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म पुञ्जमें अनंत प्रकारके परिणमन प्रदर्शनकी सामर्थ्य है। अणु बम (Atom bomb) आकारकी अपेक्षा अत्यन्त लघुताका दर्शन होता है, किंतु शक्तिकी अपेक्षा वह सहस्रों विशाल बमोंसे अधिक कार्य करता है। भौतिक विज्ञान प्रयत्न करे तो राईके दानेसे भी छोटा बम बन सकता है जो सप्ताहको हिला दे। आत्माके साथ मिली हुई कार्माण वर्गणाओंमें अनंतानंत प्रदेश कहे गये हैं जो अभ्यन्त जीवोंसे अनंत गुणित है फिर भी सूक्ष्म होनेके कारण वे इन्द्रियोंके अगोचर हैं। इनमें विद्यमान कर्मशक्ति (Karmic energy) अद्भुत खेल दिखाती है। किसी जीवको निर्गोद पर्याप्तक पर्यायनाला जीव बना एक श्वासमें अठारह बार शरीर निर्माण और ध्वंस द्वारा जीवन चक्र प्रदर्शित करती है। वह आत्माकी अनंत ज्ञानशक्तिकी ढाँककर अक्षरके अनंतवें भाग बनाती है। उस कर्म शक्तिके कारण गाय बल ऊँट आदिका आकार प्रकार प्राप्त होता है। ऐसा जैसा काम है जो उस शक्तिकी परिधिके बाहर हो। ज्ञानावरणके रूपमें उसके द्वारा बुद्धिकी अनाधिकताका विचित्र दृश्य निर्मित होता है लेकिन जिस प्रकार नाटकका अभिनय करानेवाला प्रचार होता है जिसके सकेतके अनुसार कार्य होता है, इसी प्रकार सूत्रधारक जीवके भाव हैं। इन भावोंकी हीनता, उच्चता, यकृता, सरलता, समलता, विमलता आदि पर जिन बाह्य क्रियाओंका भाव पड़ता है उनसे भिन्न भिन्न प्रकारके कर्म बधते हैं उनका वर्णन जैन महर्षियोंने किया है जिनके अध्ययनसे मानव इस बातकी कल्पना कर सकता है कि उसका अतीत कैसा था जिससे उसे वर्तमान सामग्री मिली और वर्तमान विकृत अथवा विमल जीवनके अनुसार वह अपने किस प्रकारके भविष्यका निर्माण कर सकता है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति अत्यन्त मन्द ज्ञानी है। इसका क्या कारण है? शरीरशास्त्री तो शारीरिक कारणोंके द्वारा मस्तिष्कके परमाणुओंको दुर्बलताकी ओर धकेल देगा, किंतु कर्मसिद्धान्तका ज्ञाता कहेगा कि इस जीवने पूर्वमें जब कि इसके वर्तमान जीवनका निर्माण हो रहा था ज्ञानके ढाँकने वाली साधन सामग्रीको सगृहीत किया था। इसी प्रकार अन्य प्रकारके बाह्य और आभ्यन्तर कार्योंके विषयमें कर्म सिद्धांतवाला समर्थन करेगा।

### कर्मोंके आगमनके कारणोंका स्पष्टीकरण

ज्ञानावरण कर्ममें विशेष कारण निम्नलिखित बातें बताई गई हैं जैसे—निर्मल ज्ञानके

प्रनाशित होनेपर मनमें दूषित भाव रखना, ज्ञानको छिपाना योग्य व्यक्तिको दुर्भावयज्ञ ज्ञान प्रदान न करना, दूसरेकी ज्ञान-साधनामें बाधा डालना, वाणी अथवा प्रवृत्तिमें द्वारा ज्ञानदानके ज्ञानका निषेध करना, पवित्र ज्ञानमें लालन लगाना, निरादरपूर्वक ज्ञानका ग्रहण करना, ज्ञानका अभिमान तथा ज्ञानियोंका अपमान, अन्याय पक्ष समर्थनमें शक्ति लगाना, अनेकात विद्याको दूषित करनेवाला कथन करना आदि। इस प्रकारके कार्योंसे जो जीवके मलिनभाव होते हैं उनके द्वारा इस प्रकारका मलिन कर्मपुण्य गृहीत होता है, जो ज्ञानके प्रकाशको ढाँकता है। उपरोक्त बातें दर्शनके विषयमें करनेसे दर्शनावरण कर्म आता है। उसके अन्य भी कारण हैं जैसे अधिक सोना, दिनमें सोना, आँखोंको फोड़ देना, निर्मल दृष्टिमें दोष लगाना, मिथ्या मार्ग वालोंकी प्रशंसा करना आदि।

जिस असाता वेदनीयके कारण जीव कष्टमय जीवन विताता है उसके कारण ये हैं—  
 १. पर अथवा दोनोंको पीडा पहुँचाना, शोकाकुल रहना, हृदयमें दुःखी बने रहना, रुदन करना, प्राणघात करना, अनुकंपा उत्पन्नक फूट फूट कर रोना, अन्यकी निन्दा और चुगली करना, जीवों पर दया न करना, अर्थको सताप देना, दमन करना, विधासघात, कुटिल स्वभाव, हिंसापूर्ण आनीषिका, साधु-तर्कोंकी निन्दा करना, उन्हें सदाचारके मार्गसे डिगाना, जाल, पिंजरा आदि जीवनघातक पदार्थोंका निर्माण करना, अहिंसात्मक वृत्तिका विनाश करना आदि। जीवको आतृ प्रद अथवा प्राप्त करानेवाले साता वेदनीयके कारण ये हैं—जीवमात्रपर दया करना, सन्त जनोंपर स्नेह रखना, उन्हें दान देना, प्रेमपूर्वक समय पालन करना, विवशतामें शांत भावसे कष्टोंको सहन करना, क्रोधात्मिका त्याग करना, जिनेन्द्र भगवानकी पूजा, सत्पुरुषोंकी सेवा-परिचर्या आदि।

मोहनीय कर्मके कारण मदनोन्मत्त हो यह जीव न आत्मदर्शन कर पाता, और न सच्चे फल्याणके मार्ग में लगता है। दशन मोहनीयके कारण देव, गुरु, शास्त्र तथा तत्त्वोंके विषयमें यह सम्यक्-श्रद्धासे वचित रहता है और वैज्ञानिक दृष्टिके श्रेष्ठ और पवित्र प्रकाशको नहीं प्राप्त करता। इसने कारण ये हैं—जिनेन्द्रद्वय चीतराग वाणी तथा दिगम्बर मुनिराजके प्रति काल्पनिक दोष लगा ससारकी दृष्टिमें मलिन भाव उत्पन्न करना, धर्म तथा धर्मके फल रूप श्रेष्ठ आत्माओंमें पाप प्रवृत्तियोंके पोषणकी सामग्रीमें वता भ्रम उत्पन्न करना, मिथ्या मार्गका प्रचार करना आदि। पारित्र मोहनीयके कारण यह जीव अपने निज स्वरूपमें स्थित न रहकर क्रोधादि विकृत अवस्थाको प्राप्त करता है। क्रोधादिके तीव्र वेगवशा मलिन प्रचण्ड भावोंका धारण करना, तपस्वियोंकी निन्दा तथा धमका ध्वंस करना, समयी पुरुषोंके चित्तमें अचलता उत्पन्न करनेका उपाय करनेसे, कपार्योंका वध होता है। अत्यन्त हास्य, बहुप्रलाप, दूसरेके उपहाससे हास्यका पात्र बनता है। विचित्र रूपसे प्रीति करनेसे, औचित्यकी सीमाका उल्लंघन करनेसे रति वेदनीयका आगमन होता है। दूसरेके प्रति विद्वेष उत्पन्न करना, पापप्रवृत्तिवालोंका ससर्ग करना, निन्द्य प्रवृत्तियोंके प्रेरणा प्रदान करना आदि अरति प्रकृतिके कारण हैं। दूसरेको दुःखी करना और दूसरेको दुःखी दुःख हर्षित होना शोक प्रकृतिका कारण है। भय प्रकृतिके द्वारा यह जीव भयभीत रहता है, इसका कारण भयने परिणाम रखना, दूसरोंको डराना, सताना तथा निर्दयतापूर्ण प्रवृत्ति करना है। ग्लानि पूर्ण अवस्थाना कारण जुगुप्सा प्रकृति है। पवित्र पुरुषोंके योग्य आचरणकी निन्दा करना, उनसे घृणा करना आदिसे यह बँधती है। स्त्रीत्व विशिष्ट स्त्रीवेदका कारण महान क्रोधी स्वभाव रखना, तीन मान, ईर्ष्या, मिथ्याचरन, भौश्रम, परस्त्रीसेवनके

प्रति विशेष आसक्ति रखना, स्त्री सम्बन्धी भावोंके प्रति तीव्र अनुराग भाव है। पुरुषत्व सम्पन्न पुरुषपदेके कारण क्रोधकी न्यूनता, कुटिल भावोंका अभाव, लोभ तथा मानका त्याग, अल्प राग, स्वस्त्रीसतोप, ईर्ष्या, परिणामकी मदता, आभूषण आदिके प्रति उपेक्षाके भाव आदि है। जिसके उदयसे नपुंसक वेद मिलता है, उसके कारण प्रचुर प्रमाणमे क्रोध, मान, माया, लोभसे दूषित परिणामोंका सद्भाव, परस्त्रीसेधन, अत्यंत हीन आचरण, तीव्र राग आदि हैं।

नरक आयुके कारण बहुत आरभ और अधिक परिग्रह हिंसाके परिणाम, मिथ्यात्व-पूर्ण आचरण, तीव्र मान तथा लोभ, दूसरेको सताप पहुचाना, सदाचार तथा शीलहीनता, काम, भोगसद्यधी अभिलाषामे वृद्धि, बध बधन करनेके भाव, मिथ्याभाषण, पापनिमित्तक आहार, सन्मार्गमे दूषण लगाना, कृष्ण लेश्या युक्त रौद्र ध्यान सहित मरण करना है।

पशु पर्यायके कारण कुटिल तथा छलपूर्ण मनोवृत्ति तथा प्रवृत्ति, अधर्म प्रचार, विसवाद उत्पन्न करना, जाति कुल तथा शीलमे कलक लगाना, नकली नाप तौलका सामान रखना, नकली सोना मोती घी दूध अगर कपूर कुकुम आदिके द्वारा लोगोंको ठगना, सद्गुणोंका लोप करना, आर्त्तध्यान युक्त मरण करना आदि है।

मनुष्यायुके कारण अल्पारभ तथा अल्पपरिग्रह, मृदुल परिणाम, महान् पुरुषोंका सम्मान, सतोप वृत्ति, दानमे प्रवृत्ति, सकलेशका अभाव, वाणीका सयम, भोगोंके प्रति उदासीनता, पापपूर्ण कार्योंसे निवृत्ति, अतिथि-सविभागशीलता आदि है। प्रेमपूर्वक पूर्ण तथा अल्प सयमका धारण करना, सकट आने पर शांत भाव धारण करना, तत्त्वज्ञान शून्य तपश्चर्या, दयापूर्ण अंत करण आदि से देवायुकी प्राप्ति होती है।

विकृत अंग उपाग होना, शरीर सद्यधी दोषोंका सद्भाव, अपयश आदिका कारण अशुभ नाम कर्म है। वह मन बचन कायकी कुटिलता, मिथ्याप्रचार, मिथ्यात्व, परनिन्दा, मिथ्या कठोर तथा निरकुश भाषण, महा आरभ और परिग्रह, आभूषणोंमे आसक्ति, मिथ्यासाक्षी, नकली पदार्थोंका देना, वनमे श्राग लगाना, पापपूर्ण आजीविका करना, तीव्र क्रोध मान माया लोभके परिणाम, मंदिरके धूप गंध माल्य आदिका अपहरण करना, अभिमान करना, अन्यके घातक यत्र आदि धनाना, दूसरेके द्रव्यका अपहरण करनेसे सम्पादित होता है। इस अशुभ नाम कर्मके कारण आज जगतमे शारीरिक विकृतियोंकी बहुलता दिखती है। शुभ नाम कर्मका कारण पूर्वोक्त प्रवृत्तियोंसे विपरीतपना है।

लोकनिन्दित कुलोंमे जन्म धारण करनेका कारण नीच गोत्र है। वह जाति, कुल, रूप, बल, ऐश्वर्य आदिका मद, दूसरोंका तिरस्कार अथवा अपवाद, सत्पुरुषोंकी निंदा, यशका अपहरण करना, पूज्य पुरुषोंका तिरस्कार करना, अपनेको बडा बताना, दूसरोंकी हसी उडाना आदि से प्राप्त होता है। श्रेष्ठ कुलोंमे उत्पन्न होकर लोक प्रतिष्ठा लाभका कारण उच्च गोत्र कर्म है। यह मान रहितपना, सत्पुरुषोंका आदर करना, जाति कुल आदिका उत्कर्ष होते हुए उसका अभिमान नहीं करना, अन्यका तिरस्कार, निंदा, उपहास न करना, अनुपमगुणभूषित होते हुए भी निरभिमानिता, भस्मसे ढँकी हुई अग्निके समान अपनी महिमाका स्वयं प्रकाशित न करना, धर्मके साधनोंका सम्मान करना आदिसे प्राप्त होता है।

प्रत्येक कार्यमे चिन्त उपस्थित करनेवाला अतराय कर्म है। वह प्राणिवध, ज्ञानका निषेध करना, धर्म कार्योंमे चिन्त उत्पन्न करना, देवताको अपित नैवेद्यका प्रमादपूर्वक ग्रहण



प्रनाशित होनेपर मनमें दूषित भाव रखना, ज्ञानको छिपाना योग्य व्यक्तियों दुर्भावयश ज्ञान प्राप्त न करना, दूसरेकी ज्ञान-साधनामें बाधा डालना, चाणी अथवा प्रवृत्तिने द्वारा ज्ञानदानके ज्ञानका निषेध करना, पवित्र ज्ञानमें लालन लगाना, निरादरपूर्वक ज्ञानका ग्रहण करना, ज्ञानका अभिमान तथा ज्ञानियोंका अपमान, अन्याय पक्ष समर्थनमें शक्ति लगाना, अनेकाने विद्यारो दूषित करनेवाला कथन करना आदि। इस प्रकारके कार्योंसे जो जीवके मलिनभाव होते हैं उनके द्वारा इस प्रकारका मलिन कर्मपुञ्ज गृहीत होता है, जो ज्ञानमें प्रकाशको ढाँकता है। उपरोक्त बातें दर्शनके विषयमें करनेसे दर्शनावरण कर्म आता है। उसके अर्थ भी कारण है जैसे अधिक सोना, दिनमें सोना, आँखोंको फोड़ देना, निर्मल दृष्टिमें दोष लगाना, मिथ्या मार्ग वालोंकी प्रशंसा करना आदि।

जिस असाता वेदनीयके कारण जीव कष्टमय जीवन विताता है उसके कारण ये हैं—  
स्व, पर अथवा दोनोंको पीडा पहुँचाना, शोकाबुल रहना, हृदयमें दुःखी घने रहना, रुदन करना, प्राणघात करना, अनुकंपा उत्पादक फूट फूट कर रोना, अन्यकी निन्दा और चुगली करना, जीवों पर दया न करना, अन्यको सताप देना, दमन करना, विश्वासघात, कुटिल स्वभाव, हिंसापूर्ण आजीविना, साधुजनोंकी निन्दा करना, उन्हें सदाचारके मार्गसे छिडाना, जाल, पिंजरा आदि जीवघातक पदार्थोंका निर्माण करना, अहिंसात्मक वृत्तिका विनाश करना आदि। जीवको आनंद प्रद अवस्था प्राप्त करानेवाले साता वेदनीयके कारण ये हैं—जीवमात्रपर दया करना, सन्त जनोंपर स्नेह रखना, उन्हें दान देना, प्रेमपूर्वक समय पालन करना, विरशतामें शांत भावसे कष्टोंको सहन करना, क्रोधादिका त्याग करना, जिनेद्र भगवानकी पूजा, सत्पुरुषोंकी सेवा-परिचर्या आदि।

मोहनीय कर्मके कारण मदोमत्त हो यह जीव न आत्मदर्शन कर पाता, और न सच्चे कल्याणके मार्ग में लगता है। दर्शन मोहनीयके कारण देव, गुरु, शास्त्र तथा तत्त्वोंके विषयमें यह सम्यक् श्रद्धासे वचित रहता है और वैज्ञानिक दृष्टिमें श्रेष्ठ और पवित्र प्रकाशको नहीं प्राप्त करता। उसके कारण ये हैं—जिनेद्रदय वीतराग चाणी तथा दिगम्बर मुनिराजके प्रति कल्पनिक दोष लगा सत्सारी दृष्टिमें मलिन भाव उत्पन्न करना, धर्म तथा धर्मके फल रूप श्रेष्ठ आत्माश्रीम पाप प्रवृत्तियोंके पोषणकी सामग्रीको घटा भ्रम उत्पन्न करना, मिथ्या मार्गका प्रचार करना आदि। पारित्र मोहनीयके कारण यह जीव अपने निज स्वरूपमें स्थित न रहकर क्रोधादि विवृत्त अवस्थाको प्राप्त करता है। क्रोधादिके तीव्र वेगवश मलिन प्रचण्ड भावोंका धारण करना, तपस्त्रियोंकी निन्दा तथा धर्मका धूस करना, समयी पुरुषोंके चित्तमें चंचलता उत्पन्न करनेका उपाय करनेसे, कपार्योंका बंध होता है। अत्यन्त हास्य, बहुप्रलाप, दूसरेके उपहाससे हास्यका पात्र बनता है। रिचित्र रूपसे प्रीडा करनेसे, औचित्यकी सीमाका उल्लंघन करनेमें रति वेदनीयका आगमन होता है। दूसरेके प्रति चिद्रेष उत्पन्न करना, पापप्रवृत्तियाँका ससर्ग करना, निंद्य प्रवृत्तिको प्रेरणा प्रदान करना आदि अरति प्रकृतिके कारण हैं। दूसरेको दुःखी करना और दूसरेको दुःखी देस हर्षित होना शोक प्रकृतिका कारण है। भय प्रकृतिके द्वारा यह जीव भयभीत रहता है, उसका कारण भयके परिणाम रखना, दूसरोंको डराना, सताना तथा निर्दयतापूर्ण प्रवृत्ति करना है। ग्लानि पूर्ण अवस्थाका कारण जुगुप्सा प्रकृति है। पवित्र पुरुषोंके योग्य आचरणकी निन्दा करना, उनसे घृणा करना आदितो यह बँधती है। स्त्रीत्व विशिष्ट स्त्रीवेदका कारण महान क्रोधी स्वभाव रखना, तीव्र मान, ईर्ष्या, मिथ्यावचन, तीव्रराग, परस्त्रीसेवनके

“चेतनायाः फल बन्धस्तत्फले वाथ कर्मणि ।

रागाभानान्न जन्धोऽस्य तस्मात्सा ज्ञानचेतना ॥ २।०७६ ॥”

—कर्म तथा कर्मफल चेतनाका फल जन्ध कहा है । उस सम्यक्स्त्रीके रागाका अभाव होनेसे बन्ध नहीं है । अतः उसके ज्ञानचेतना है । कुदकुट स्वामीकी यह गाथा इस विषयमें बहुत उपयोगी है—

“राव्वे रलु कम्मफल थावरजाया तसादि कज्जजुद ।

पाणिज्जमदिक्कता पाण पिदति ते जीया ॥”—प० का० ३९ ।

—“सम्पूर्ण स्थावर जीवोंके कर्मफल चेतना है । जन्म जीवोंमें कर्मफलके सिवाय कर्मचेतना भी पाई जाती है । प्राणी इस व्यपदेशको अतिक्रान्त जीवन्मुक्त ज्ञानचेतनाका अनुभवन करते हैं । यहा जीवन्मुक्त शब्दका अर्थ अत्रित सम्यक्स्त्री नहीं, किन्तु केरली भगवान है, कारण टीकाकार अमृतचन्द्रमूरिते लिखा है कि सपूर्ण मोह कलकके नाशक, ज्ञानावरण दर्शनावरणके धर्म करने वाले, धीर्यतरायके क्षयसे अनन्तरीयको प्राप्त करनेवाले अत्यन्त कृतकृत्य केरली भगवान ज्ञानचेतनाको ही अनुभव करते हैं ।

पचास्तिकाय टीकाके ये शब्द अधिक विचारपूर्ण हैं तथा प्रकृत विषय पर अच्छा प्रकाश डालने हैं । “तत्र स्थावराः कर्मफल चेतयन्ते । व्रसाः कार्यं चेतयन्ते । केरलज्ञानिनो ज्ञान चेतयन्ते” (पचास्तिकाय टीका पृ० १२) स्थावर जीव कर्मफल चेतनाका अनुभवन करते हैं । उस जीव कर्मचेतनाका अनुभव करते हैं । केवल ज्ञानी ज्ञानचेतनाका अनुभवन करते हैं ।

अनगार धर्मामृतकी संस्कृत टीका (पृ० १०७) में पंडितप्रवर आशाधर जी लिखते हैं—“जीवन्मुक्तास्तु मुख्यभावेन ज्ञानम् । गौणतया त्वन्यदपि । मा चोभयपि जीवन्मुक्तेर्गौणी बुद्धिपूर्वककृतृत्व-भोक्तृत्वयोरुच्छेदात्” —जीवन्मुक्तोंके मुख्यतासे ज्ञान चेतना है । गौणरूपसे उनके अन्य भी चेतनाएँ हैं । वे कर्म और कर्मफल चेतनाएँ जीवन्मुक्तमें मुख्य नहीं, किन्तु गौणरूप हैं, कारण उनमें बुद्धिपूर्वक कृतृत्व और भोक्तृत्वका अभाव हो चुका है ।

इस विवेचनसे यह निश्चित हो जाता है, कि केरली भगवानसे नीचेने गुणस्थानवर्ती सम्यक्स्त्री जीवोंमें कर्म और कर्मफल चेतनाएँ भी पाई जाती हैं । अत्रित सम्यक्स्त्रीके विचित्र कार्यानि बंधरहित घताना और उतें सत्रा सजग ज्ञानचेतनाका ही स्वामी कहना बड़ी आश्चर्यप्रद बात है । क्षयिक सम्यक्स्त्री श्रेणिक महाराजने आत्मघात करके प्राण परित्याग किए । परम धार्मिक भीताके प्रतीक पर्यायके जीवने तपश्चर्याम निम्गन महामुनि रामचन्द्रको धर्ममें डिगानेका मोहन प्रयत्न किया, ताकि रामचन्द्रजीका सीताने स्वर्गम ही उत्पाद हो जाय । ये क्रियाएँ शुद्धचेतनाके प्रकाशको नहीं घतती हैं । इनपर कर्म, कर्मफल चेतनाओंका प्रभाव स्पष्टतया दृष्टि गोर होता है । चारित्रमोहोत्पन्न ये क्रियाएँ हुआ करती हैं । ‘सदन्-निवासी, तदपि उदासी तातें आसन्न छटाछटीसी—यह सम्यक्स्त्री गृहस्थका चित्रण सपूर्ण आत्मविके निरोधको

१ “अत्र कर्मफल मुख्यभावेन स्थावरास्तथा । सकार्यं चेतयन्तस्ते प्राणित्वा ज्ञानमेव च ॥”

क्या सम्पत्तीके ज्ञानचेतना ही होती है, जिसमें अर्पण माना जाय ?

सम्पत्तीके प्रधाभापना समर्थन शक्यकर अय प्रकारके परता हुआ कहता है। सम्पत्तीके ज्ञानचेतना होती है, इसमें उमने वधका श्रमाव आगमायिहृद्द है।

मिथ्यात्वीके ज्ञानचेतनाका अभाव सज्जो इष्ट है। सम्पत्तीके ज्ञानचेतना ही होती है, ऐसी बात नहीं है। चेतनाके स्वरूप पर विशेष प्रकाश डालने से प्रस्तुत विषय स्पष्ट हो जायगा, ऐसी आशा है। अमृतचन्द्रक्षरि अपनी समयसारकी टीकामें (पृ० ४८५) लिखते हैं—  
—“ज्ञानसे अय मैं ‘यद्’ हू, उस प्रकारका चिन्तन अज्ञानचेतना है। यह कर्मचेतना कर्मफल चेतनाके भेदसे दो प्रकारका है। ज्ञानसे पृथक् म ‘यद्’ करता हू, यह चिन्तन कर्मचेतना है। ज्ञानसे अय मैं यद् अनुभव करता हूँ, उस प्रकारका चिन्तन कर्मफलचेतना है। दोनों चेतनाएँ समान रसगाली हैं तथा ससारकी कारण हैं। ससारका बीज अष्टविध कर्माके बीजरूप होता है। अतः मुमुक्षुको उचित है कि यह अज्ञानचेतनाको दूर करनेके लिए सम्पूर्ण कर्माके त्यागकी भावना तथा सम्पूर्ण कर्मफल त्यागकी भावनाको नृत्य कराकर आत्मस्वरूपगाली भगवती ज्ञानचेतनाको ही नित्य नृत्य करावे।”

इस विषयको अधिक स्पष्ट करते हुए जयसेनाचार्य लिखते हैं—“मेरा ज्ञान है, मेरे द्वारा किया गया है, इस प्रकार अज्ञानभापसे मन बचन कायनी किया करना कर्मचेतना है। आत्म स्थभापसे रहित अज्ञानभाव द्वारा इष्ट अनिष्ट विफलरूपसे, हृष, विषाद, सुख दुःख का अनु भवन करना है, यद् कर्मफल चेतना है। (पृ० ४९०) कुदकुद स्वामी प्रवचनसारम कहते हैं—

“परिणमदि चेदण्ण आदा पुण चेदणा तिधामिमदा ।

सा पुण णाणे कम्मै फलम्मि वा कम्मणो भण्णिदा ॥ २।३१ ॥”

—‘चेतनाकी ज्ञानरूप परिणति ज्ञानचेतना है, कर्मरूप परिणति कर्मचेतना तथा फलरूप परिणति कर्मफल चेतना है।’

इससे यह प्रगत होता है कि ज्ञानचेतनामें ज्ञातृत्व भाव है, कर्मचेतनामें कर्तृत्व परिणति है और कर्मफल चेतनामें भोक्तृत्व भाव है।

सम्पत्तीके कर्म तथा कर्मफल चेतनाका सद्भाव

सम्पत्तीके ज्ञान चेतना ही पाई जाती है, इस भ्रमका निवारण करते हुए पचा ध्यायीकार कहते हैं—

“अस्ति तस्यापि सदृष्टे’ कस्यचिद् कर्मचेतना ।

अपि कर्मफले सा स्यादर्थतो ज्ञानचेतना ॥ २।३५ ॥”

—‘किसी सम्पत्तीके कर्म तथा कर्मचेतना भी पाई जाती है। किन्तु परमाधसे सम्पत्तीके ज्ञानचेतना पाई जाती है।’

यहां पूणज्ञान विशिष्ट सम्पत्तीको लक्ष्यमें रखकर उससे ज्ञानचेतनाका परमार्थ रूपसे सद्भाव प्रतिपादित किया है। अपूण ज्ञानीकी अपेक्षा कर्मचेतना तथा कर्मफल चेतना भी कही है। इस दृष्टिका स्पष्टीकरण निम्नलिखित पद्यसे होता है—

“चेतनायाः फल वन्धस्तत्फले त्रय कर्मणि ।

रागाभावान्न ग्रन्थोऽस्य तस्मात्सा ज्ञानचेतना ॥ २।०७६ ॥”

“कर्म तथा कर्मफल चेतनाका फल त्रय कहा है । उस सम्यक्त्वकी रोगका अभाव होनेसे बंध नहीं है । अतः उसके ज्ञानचेतना है ।” कुदकुट स्वामीकी यह गाथा इस विषयमें बहुत उपयोगी है—

“राग्वे रालु कम्मफल थावरकाया तसादि कज्जजुद ।

पाणित्तमदिककता णाण त्रिदति ते जीवा ॥”-प० का० ३९ ।

—“सम्पूर्ण स्थावर जीवोंके कर्मफल चेतना है । त्रस जीवोंमें कर्मफलके सिवाय कर्मचेतना भी पाई जाती है । प्राणी इस व्यपदेशको अतिक्रान्त-जीवन्मुक्त ज्ञानचेतनाका अनुभवन करते हैं । यहा जीवन्मुक्त शब्दका अर्थ अत्रित सम्यक्त्वकी नहीं, किन्तु केवली भगवान है, कारण टीकाकार अमृतचन्द्रसूरिने लिखा है कि सपूर्ण मांह कलरुके नाशक, ज्ञानारण दर्शनावरणके ध्वंस करने-वाले, वीर्यांतरायके क्षयसे अनन्तरीर्यको प्राप्त करनेवाले अत्यन्त कृतकृत्य केवली भगवान ज्ञान-चेतनाको ही अनुभव करते हैं ।

पचास्तिकाय टीकाके ये शब्द अधिक विचारपूर्ण हैं तथा प्रकृत विषय पर अच्छा प्रकाश डालने हैं । “तत्र स्थावराः कर्मफल चेतयन्ते । त्रसाः कार्यं चेतयन्ते । केवलज्ञानिनो ज्ञान चेतयन्ते” ( पचास्तिकाय टीका पृ० १० ) स्थावर जीव कर्मफल चेतनाका अनुभवन करते हैं । त्रम जीव कर्मचेतनाका अनुभव करते हैं । केवल ज्ञानि ज्ञानचेतनाका अनुभवन करते हैं ।

‘अनगर धर्माश्रितकी संस्कृत टीका ( पृ० १०७ ) में पंडितप्रवर आशाधर जी लिखते हैं—“जीवन्मुक्तास्तु मुख्यभावेन ज्ञानम् । गौणतया त्वन्यदपि । सा चोभयपि जीवन्मुक्तगौणी बुद्धिपूर्वकरुत्व-भोक्तृत्वयोरुच्छेदात्” —जीवन्मुक्तोंके मुख्यतासे ज्ञान-चेतना है । गौणरूपसे उनके अन्य भी चेतनाएँ हैं । वे कर्म और कर्मफल चेतनाएँ जीवन्मुक्तमें मुख्य नहीं, किन्तु गौणरूप हैं, कारण उनमें बुद्धिपूर्वक कर्तृत्व औ भोक्तृत्वका अभाव हो चुका है ।

इस विवेचनमें यह विदित हो जाता है, कि केवली भगवानसे नीचेके गुणस्थानवर्ता सम्यक्त्वो जीवोंमें कर्म और कर्मफल चेतनाएँ भी पाई जाती हैं । अत्रित सम्यक्त्वकी विचित्र कार्याको वन्धरहित प्रताना और उसे सदा सजग ज्ञानचेतनाका ही स्वामी कहना बड़ी आश्चर्यप्रद बात है । क्षाधिक सम्यक्त्वकी श्रेणिक महाराजने आत्मघात करके प्राण परित्याग किए । परम धार्मिक भीतारके प्रतीक पर्यायके जीवने तपश्चर्याम निमग्न महामुनि रामचन्द्रको धर्मसे डिगानेका मोहनश प्रयत्न किया, ताकि रामचन्द्रजीका सीताने स्वर्गम ही उत्पाद हो जाय । ये क्रियाएँ शुद्धचेतनाके प्रकाशको नहीं बधताती हैं । इनमें कर्म, कर्मफल चेतनाओंका प्रभाव स्पष्टतया दृष्टि-गोचर होता है । चारित्रमोहोदयवश ये क्रियाएँ हुआ करती हैं । ‘सदन्-निग्रासी, तटाप उदासी तातें आसन्न छटाछटीसी—यह सम्यक्त्वकी गृहस्वरा चित्रण सपूर्ण आत्मनके निरोधको

१ “सर्वे कर्मफल मुख्यभावेन स्थावरास्त्रया । सकार्यं चेतयन्तस्ते प्राणित्वा ज्ञानमेव च ॥”

क्या सम्यक्त्वकी ज्ञानचेतना ही होती है, जिससे अवध माना जाय ?

सम्यक्त्वकी प्रज्ञाभावका समर्थन शकाकार अथ प्रसारमे करता हुआ कहता है। सम्यक्त्वकी ज्ञानचेतना होती है, इसमे उमने वधका अभाव प्रागमाविरुद्ध है।

मिथ्यात्वकी ज्ञानचेतनाका अभाव सनको इष्ट है। सम्यक्त्वकी ज्ञानचेतना ही होती है, इसी बात नहीं है। चेतनाके स्वरूप पर विशेष प्रकाश डालने मे प्रस्तुत विषय स्पष्ट हो जाना, ऐसी प्राशा है। अमृतचन्द्रहरि अपनी समयसारकी टीकामे (पृ० ४८९) लिखते हैं —  
—“ज्ञानसे अथर्व में ‘यद्’ हू, इस प्रकारका चिन्तन अज्ञानचेतना है। यह कमचेतना कर्मफल चेतनाके भेदसे दो प्रकारका है। ज्ञानसे पृथक् में ‘यद्’ करता हू, यह चिन्तन कमचेतना है। ज्ञानसे अथर्व में यद् अनुभव करता हूँ, इस प्रकारका चिन्तन कमफलचेतना है। दोनों चेतनाएँ समान रसवाली हैं तथा समारकी कारण हैं। ससारका बीज अष्टविध कर्मके बीजरूप होता है। अतः मुमुक्षुको उचित है कि यह अज्ञानचेतनाको दूर करनेके लिए सम्पूर्ण कर्मके त्यागकी भावना तथा सम्पूर्ण कर्मफल त्यागकी भावनाको नृत्य कराकर आत्मस्वरूपवाली भगवता ज्ञानचेतनाको ही नित्य नृत्य करावे।”

इस विषयको अधिक स्पष्ट करत हुए जयमेनाचार्य लिखते हैं—“मेरा कम है, मेरे द्वारा किया गया है, इस प्रकार अज्ञानभावसे मन वचन कायनी किया करना कर्मचेतना है। आत्म स्वभावसे रहित अज्ञानभाव द्वारा इष्ट अनिष्ट विकल्परूपसे, हर्ष, विषाद, सुख दुःख का जो अनुभव करना है, वह कर्मफल चेतना है। (पृ० ४९०) कुटकुट स्वामी प्रवचनसारमे कहते हैं—

“परिणमदि चेदणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा ।

सा पुण णाणे कम्मै फलम्मि ता कम्मणो भणिदा ॥ २।३१ ॥”

—‘चेतनाकी क्षात्रप परिणति ज्ञानचेतना है, कर्मरूप परिणति कमचेतना तथा फलरूप परिणति कर्मफल चेतना है।’

इससे यह प्रगत होता है कि ज्ञानचेतनाम ज्ञानरूप भाव है कर्मचेतनाम कर्तृत्व परिणति है और कर्मफल चेतनामे भोक्त्व भाव है।

सम्यक्त्वकी कर्म तथा कर्मफल चेतनाका सद्भाव

सम्यक्त्वकी ज्ञान चेतना ही पाई जाती है, इस भ्रमका निवारण करते हुए पचा षष्ठीकार कहते हैं—

“अस्ति तस्पापि सद्दृष्टे कस्यचित् कर्मचेतना ।

अपि कर्मफले सा स्यादर्थतो ज्ञानचेतना ॥ २।२।७५ ॥”

—‘जिसी सम्यक्त्वकी कम तथा कमचेतना भी पाई जाती है। किन्तु परमाथसे सम्यक्त्वकी ज्ञानचेतना पाई जाती है।’

यहां पूरा ज्ञान विशिष्ट सम्यक्त्वकी लक्ष्यम रखकर उसके ज्ञानचेतनाका परमार्थ रूपसे सद्भाव प्रतिपादित किया है। अपूर्ण ज्ञानीकी अपेक्षा कमचेतना तथा कर्मफल चेतना भी कही है। इस दृष्टिमा सद्गीकरण निम्नलिखित पत्रसे होता है—

## ग्रन्थ-विषयसूची

विषय	पृ०	विषय	पृ०
अनुवादकर्ताका मंगलाचरण	१-४	आदेश	१४३-१७५
मूलप्रथका मंगल वेदना सण्डके	१-१५	परिमाणानुगम	१७६-१८५
आधारसे		ओष	१७६
प्रकृतिसमुत्कीर्तनप्ररूपण ( आभिनि- १६-२०	१६-२०	आदेश	१७७-१८५
बोधिक ज्ञानानरण, श्रुतज्ञानावरण और		क्षेत्रानुगम	१८६-१९०
अज्ञानावरणप्ररूपणा )		ओष	१८६-१८७
मूलग्रन्थ	२१-३४८	आदेश	१८७-१९०
प्रकृति समुत्कीर्तन	२१-२९	स्पर्शानुगम	१९१-२३५
अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा	२१-२४	ओष	१९१-१९४
मन पययज्ञानवरणप्ररूपणा	२४-२६	आदेश	१९४-२३५
केवलज्ञानवरणप्ररूपणा	२७-२९	कालानुगम नानाजीवोंकी अपेक्षा	२३६-२४९
दशानानरणादिकर्मप्ररूपणा	२८-२९	ओष	२३६-३७
सर्वनोसर्वत्र घप्ररूपणा	२९-३०	आदेश	२३७-४९
उत्कृष्ट अनुकृष्टग्रन्थप्ररूपणा	३०	अंतरानुगम	२५०-२५८
सधादिब-घप्ररूपणा	३०-३१	ओष	२५०
घ-घस्यामित्वत्रिचय	३२-४४	आदेश	२५१-५८
ओषप्ररूपणा	३२-४१	भाषानुगम	२५९-२७८
आदेशप्ररूपणा	४१-४४	ओष	२५९-६२
कालप्ररूपणा आदेशसे	४५-६८	आदेश	२६२-७८
अंतरानुगम	६९-९४	अल्पग्रहत्व	२७९-३४८
आन	६९-७०	जीव अल्पग्रहत्व	२७९-३३३
आदेश	७१-९४	स्वस्थान	२७९-३१४
सन्निकर्षप्ररूपणा	९५-१३२	ओष	२७९-८२
स्वस्थानसन्निकर्ष	९५-११५	आदेश	२८२-३१४
ओष	९५-११२	परस्थान	३१५-३३३
आदेश	११२-११५	ओष	३१५-१६
परस्थान सन्निकर्ष	११६-१३२	आदेश	३१६-३३३
ओष	११६-१०	नाल अल्पग्रहत्व	३३४-३४८
आदेश	१३१-१३२	स्वस्थानअल्पग्रहत्व	३३४-४२
भगविचय	१३३-१४०	ओष	३३४-३८
ओष	१३३-१३४	आदेश	३३८-४२
आदेश	१३४-१४०	परस्थान	३४३-३४४
भागभाग	१४१-१७५	ओष	३४३-३४४
ओष	१४१-१४३	आदेश	३४४-४८

नहीं बताता है। मिथ्यात्व, अनतानुग्रही तथा असयम निमित्तक आस्रयके निरोधका शापक है। अतः परमात्मके प्रकाशसे ज्ञात होता है कि सम्यक्त्वोपे जघन्य अवस्थाम ज्ञानचेतनाके सिवाय कम और कर्मफल चेतनाएँ भी पाई जाती हैं, उनके कारण यह किन्हीं प्रकृतियोंका बंध नहीं करता है और किन्हीं कर्म प्रकृतियोंका बंध भी करता है। इस प्रकारका स्याद्वाद है।

महान्धके इस पयडिबवाहियार प्रकृतिवधाधिकार नामक खण्डमें प्रकृतिसमुत्कीर्तन, सर्वान्ध, नो सर्वान्ध, उत्कृष्टान्ध, अनुत्कृष्टान्ध, जघन्यान्ध, अजघन्यान्ध, सादिवन्ध, अनादिवन्ध, ध्रुवान्ध, अध्रुवान्ध, बधस्वामित्वविषय, पधकाल, यध-अन्तर, यधसन्निकर्ष, भगविक्रय, भागा भाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, फाल, अन्तर, भाव तथा अल्पबहुत्व इन चौबीस अनुयोगद्वारोंसे प्रकृतिबधपर प्रकाश डाला गया है।

इस कर्मबधनके कारण अनत ज्ञान-आनन्दशक्ति आदिका अधिपति यह आत्मा दीनतापूर्ण जीवन पिता कष्ट उठाता है। इस आत्माका यथार्थ ब्रह्मण आत्मीय दोषोंके निर्मूल करनेमें है। समाधिकी प्रचण्ड अग्नि द्वारा इस दोष पुष्टका अधिलम्ब क्षय होता है। मयर और निर्जरा रूप परिणतिसे उस स्वरूपकी उपलब्धि हो जाती है, जिसको परम निर्वाण कहते हैं। इस पदका प्रधान कारण भेदज्ञानकी प्राप्ति है। मेरा आत्मा एक है, ज्ञानदशनमय है, शेष सब अनात्म भाव है। इस विधाके प्रभावसे सिद्धत्वकी अभिव्यक्ति होती है। बधकी विपत्तिसे बचनेके लिए योगीन्द्रदेव कहते हैं—

“अणु जि तित्यु म जाहि जिय, अणु जि गुरुउ म सेवि ।

अणु जि दउ म चित्ति तुहु, अप्पा विमलु मुएवि ॥” अध्यात्मप्रकाश ९६ ।

“आत्मन् ! तू दूसरे तीर्थोंकी मत जा, अन्य गुरुकी शरणमें मत पहुँच, अन्य देवकी चितवन मत कर। अपनी निर्मल आत्माका चिंतन कर ।”

जब आत्मा यह समझ लेता है, कि मैं कर्मके बधनमें बद्ध हो गया हूँ किंतु मैं इससे भिन्न स्वरूप वाला हूँ, तब उसे मुक्तिका प्रकाश प्राप्त हो जाता है। तत्त्वकी यात तो इतनी है—

“भेदविज्ञानत, सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।

तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥”

१ अध्यात्म शास्त्रीक निश्चित अध्यासी भिन्नान्ध यापाचाय प० गणेशप्रसादजी वर्णने एक पत्रमें हमें लिखा था— ‘ज्ञानचेतना सम्यक्दृष्टिसे होती है परन्तु इसका पूर्ण विकास ता त्रयादशम गुणरपानमें होता है। सम्यक्दृष्टिसे कमचेतना और कर्मफलचेतना यद्यपि मिथ्या दशनके सहकारसे जैसी थी, वैसी नहीं है परन्तु गौणरूपसे है इसमें कौनसी बाधा है। क्योंकि क्षीणबाधामके अभाव यह कमका कता भी है और माछा भी है।

२ अथात् जगतमें जा जात सिद्ध हुए हैं वे भेदविज्ञान-आत्मबोधके प्रसादसे ही सिद्ध हुए हैं जो आवृत्त सत्कारमें बद्ध हैं वे इस आत्मज्ञानके अभावसे ही बधे हैं ।

महाबंधस्स

पयडिबंधो

पढमो अत्थाहियारो



## सङ्केत विचरण

अण्डस०	अण्डसहस्री	ध० गी० पो०	धरणा गीका रणानुगम
आतप०	आतपरीभा	ध० टा० मा०	धरला टीका भागभाग
आतमी०	आतमासा		नुगम
इन्द्र श्रुता०	इन्द्रनिद्रत श्रुतावतार	ध० टी० भावा०	ध० टी० भावानुगम
इण्डोप०	इण्डापदस	ध० ग० वे० व० टी० वेदना	} धरला टीका वेदनाखण्ड
गो० क० गो० कम० }	गोम्मन्सार कमकाण्ड	प्रा० सिद्धम०	
गा० क० टी०	गोम्मन्सार कमकाण्ड टीका	५० क० य०	प्राप्त सिद्धमर्ति
गा० जी० गो० जा० }	गोम्मन्सार जावकाण्ड	भक्तामर	भक्तामरकथावत्
गो० जी० जा० प्र०	गोम्मन्सार जीवकाण्ड	महापु०	भक्तामर स्तान
गो० ची० म० प्र० गी०	जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका गोम्मन्सार जीवकाण्ड म २ प्रवाधिनी टीका	पटख० अ० पटख० अन्तरा पटख० का० पटख० रे० पटख० द०	महापुराण
जयध०	जयवसला		} पटखण्डागम अन्तरानुगम
त० रा०	तत्त्वाथ शन्वातिक	पटख० पा०	
र० श्लो०	तत्त्वाथश्लोकावर्तिक	स प्रा०	पटखण्डागम कालानुगम
त० सू०	तत्त्वाथ सूत्र	स० सि०	पटखण्डागम क्षेत्रानुगम
दि० प०	तित्राय पण्क्ति	गा	पटखण्डागम स्वसनानुगम
ध० टी०	धरला टीका	प०	समय प्राभृत
ध० टी० अ० ध० टी० अंतरा० }	धरला गीका अंतरानुगम	पु०	ससाथ सिद्धि
ध० टी० अल्पवहु०	धरला टीका अल्पवहुत्वा नुगम	पृ०	गाथा
ध० गी० का० ध० टी० काल० }	धरला गीका कालानुगम	५०	पत्र
ध० टी० क्ष० ध० गी० ने० }	धरला गीका क्षेत्रानुगम	५०	पुस्तक
		५०	पृथ
		५०	भाग
		५०	श्लोक

सिरि भगवंतभूदवल्लिभडारयपणीदो

## महाबंधो

[ पढमो पयडिवंधाहियारो ]

[ अनुवादकर्ता का मङ्गल ]

महाधवल नामसे प्रसिद्ध इस महानन्व महाशास्त्रकी टीकानिर्माणका कठिन कार्य निर्वाप तथा निरन्तराय सम्पन्न हो, इस कामनासे वेदनारण्डकी धवलाटीका के प्रारम्भ में धीरसेनाचार्यकृत मगलगाथाओ द्वारा पञ्च परमेष्ठीका पुण्य-स्मरण किया जाता है—

सिद्धा दद्धमला विमुद्धबुद्धीय लद्धसन्वत्या ।

तिहुवण-सिर-सेहरया पमियतु भडारया सन्वे ॥ १ ॥

अर्थ—जि होने ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकारके कर्ममलको दग्ध कर दिया है, जिन्होंने विशुद्ध बुद्धि-केजलज्ञानद्वारा समस्त पदार्थोंकी उपलब्धि की है—उनका पूर्ण बोध प्राप्त किया है, जो त्रिभुवनके मस्तकपर मुकुटके समान विराजमान हैं, वे सम्पूर्ण सिद्ध भट्टारक प्रसन्न होंगे ।

भावार्थ—आत्माका सहज स्वभाव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त धीर्य है। मोहनीय ज्ञानावरणादि कर्माका मल आत्मामें अनादिसे लगा हुआ है, जिससे यह ससारी आत्मा जगत्में परिभ्रमण किया करती है। सिद्ध भगवान्ने उस कर्ममलका ध्वंस कर दिया है। विशुद्धज्ञानके कारण समस्त पदार्थोंका बोध होता है। जिस प्रकार दर्पणके तलसे मल दूर होनेपर बाह्य वस्तुएँ स्वयमेव दर्पणकी निर्मलताके कारण उसमें प्रतिबिम्बित होती हैं, उसी प्रकार कर्ममलरहित आत्मामें स्वतः सर्व पदार्थ फलरुते हैं।

निर्मल तथा पूर्णोद्युक्त होनेसे तथा कर्ममलरहित होनेके कारण सिद्ध परमात्मा जगत्में श्रेष्ठ हैं। उनके द्वारा विश्व शोभित होता है। वे लोकके अग्रभागमें विद्यमान ईश्वरप्रभार पृथ्वीके ऊपर अस्थित हैं और ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो त्रिभुवनके मस्तकपर मुकुट ही हो। यहाँ लोककी पुरुपाकृतिको दृष्टिमें रखकर सिद्धोंको मुकुट कहा गया है।

सिद्ध भगवान्ने राग द्वेष, मोहादि विभावोंका त्याग कर स्वभावकी उपलब्धि की है। वे धीवराग ही चुके हैं। किसीकी स्तुतिसे वे प्रसन्न नहीं होते और न निन्दासे खिन्न ही होते हैं। वे राग-द्वेषकी दुविधाके चक्करसे परे पहुँच चुके हैं। ऐसी व्यवस्था होते हुए मङ्गलगाथा में सिद्ध परमात्मासे प्रसन्नताकी प्रार्थनाका क्या रहस्य है ? यह विशेष विचारणीय है। यदि भगवान् यथार्थमें प्रसन्न हो गए तो उनकी धीतरागता कहाँ रही और यदि वे प्रसन्न न हुए, तो प्रसन्नताकी प्रार्थना अप्रयोजनीक ठहरती है ?

यथार्थ बात यह है कि प्रसन्न-निर्मलभावपूर्वक प्रभुकी आराधना करनेवाला भक्त स्वरूपसे प्रभुमें प्रसन्नताका आरोप करता है।

## मङ्गलाचरणम्

वारह म्रगगिज्झा वियलिय-मल-मूढ-दसणुत्तिलया ।  
विविह-पर-चरण भूमा पसियउ सुय-देवया सुइर ॥ १ ॥

❀

पसियउ महु धरसेणो पर-वाइ-गओह-दाण-वर-सीहो ।  
सिद्धतामिय-सायर-तरग-सघाय-घोय-मणो ॥ २ ॥

❀

❀

पणमह कय-भूय-ब्रलि भूयवलि केस-वास-परिभूय-ब्रलि ।  
विणिहय-ब्रम्मह-पसर वड्ढाविय विमल-णाण-ब्रम्मह-पसर ॥ ३ ॥

❀

❀

❀

भूतबलिप्रणीत त बन्धतत्वप्रकाशकम् ।  
महाघवलविख्यात महाबध नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

❀

❀

❀

❀

सिद्धाना कीर्तनादन्ते य सिद्धान्त-प्रसिद्ध-वाक् ।  
मोऽनाद्यन तसन्तान सिद्धान्तो भोजवताच्चिरम् ॥ ५ ॥

करते हैं। मोहके कारण ससारमे भव्य जीव बहुत कष्ट पा रहे थे। आचार्य महाराजने स्तत्रयसे अपनी आत्माको सुसज्जित करके अपनी पुण्य अभय वाणी तथा जीवनदात्री लेखनीके द्वारा जो वीतरागताकी धारा बहाई, उससे भव्यात्माओंके अन्तःकरणमें जो मोहका आतङ्क था, वह दूर हुआ और उन्होंने अपने निज रूपकी उपलब्धि की। भव्यात्माओंको जब भी मोहका आतङ्क व्यथा पहुँचाता है, तब ही वे आचार्य महाराजके चरणोंका आश्रय ले अभय अवस्थाको प्राप्त होते हैं।

अण्णाणयधयारे अणोरपारे भर्मत-भविष्याण ।

उज्जोओ जेहि कओ पसियंतु सया उवज्जायां ॥ ४ ॥

अर्थ—जिसके ओर छोड़कर पता नहीं है, ऐसे अज्ञान अन्धकारमें भटकनेवाले भव्यजीवोंको जिन्होंने प्रकाश प्रदान किया है वे उपाध्याय प्रसन्न होंगे।

भावार्थ—यहाँ अज्ञानको अन्धकारकी उपमा दी गई है। जिस प्रकार अन्धकारके कारण पशुपमान् व्यक्ति अन्धेकी भाँति प्रकाशरहित स्थलमे आचरण करता है, उसी प्रकार सम्यक्-ज्ञानज्योतिके अभावमें यह जीव परद्रव्यको स्व मान कर तथा आत्मतत्त्वको अनात्म पदार्थ मान कर अन्धेके समान प्रवृत्ति करता है। इस मिथ्याज्ञानरूप अन्धकारके आदि-अन्तका पता नहीं चलता है। वह अपार है। उसमें भव्य जीव भटक रहे हैं और परको अपना मानकर दुःखी हो रहे हैं। यह मिथ्याज्ञानका ही प्रभाव है कि जीव कल्याणके मार्गको न पाकर चौरासी लाख योनियोंमे परिभ्रमण करता फिरता है। जैसे अन्धकारमें भटकनेवाले जीवोंको प्रकाशका दर्शन होते ही हित-मार्ग सूझने लगता है उसी प्रकार उपाध्याय परमेष्ठिके प्रसादसे सम्यक्ज्ञानका प्रकाश प्राप्त होता है, जिससे यह मोहान्ध प्राणी पञ्च परावर्तन रूप ससारका पर्यटन छोड़कर शिवपुरकी ओर उन्मुख हो जाता है।

उपाध्यायके समीप सविनय आकर भव्यात्माएँ आगमका अभ्यास करती हैं, और सम्यक्-ज्ञानका लाभ करती हैं, इस कारण अज्ञान अन्धकार निवारण करनेवाले उपाध्याय परमेष्ठिके प्रसन्नताकी प्रार्थना की गई है।

दुह-तिव्व-तिसा-विणदिय-तिहुवण-भविष्याण सुदुराएण ।

परिठविषया धम्म-पवा सुअ-जल-वाणप्पयाणेण ॥ ५ ॥

अर्थ—दुःखरूप तीव्र व्याससे पीड़ित तीनलोकके भव्योंके प्रति प्रशस्त रागप्रशंसा जिन्होंने भुवज्ञानरूपी जल पिलानेके लिए धर्मरूप प्रपा-प्याऊ स्थापित की है वे उपाध्याय सदा प्रसन्न होंगे।

भावार्थ—इस जगत्के प्राणियोंको विषयोंकी लालसासे जनित सन्ताप सदा दुःखी करता है। महान् पुण्यशाली देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि भी विषयवृष्णाके तापसे नहीं बच सके हैं। उनकी वृष्णागिनी तो और अधिक प्रबलित रहती है। इस वृष्णाकी शान्तिके लिए यह जीव विषयोंका सेवन करता है, किन्तु इससे वेदना तनिक भी न्यून न होकर उत्तरोत्तर वृद्धिगम हुआ करती है। जिस प्रकार पिपासाकुल व्यक्तियोंकी वृष्णावृत्ति निमित्त उदार पुरुष प्याऊकी व्यवस्था

(१) "अण्णाणयोरतिमिरे दुरततीरग्घि हिडमाणण । भनियणुज्जेयसरा उरहाया वरमदि देतु ॥" -ति० प० गा० ४। (२) "मिनयेनोपेत्य यस्माद् व्रतशीलभावनाधिष्ठानादागम धृतात्परमधीयते स उगप्पाय ।" -त्त० रा० पृ० ३४६।

आचार्य विद्यानन्दी आप्तपरीक्षामें लिखते हैं—वीतरागमें क्रोधके समान स-तोषलक्षण प्रसादकी भी सम्भावना नहीं है। अतः प्रसन्न अन्तःकरणद्वारा प्रभुकी आराधना करना वीतरागकी प्रसन्नता मानी जाती है। इसी अपेक्षा से भगवान्को प्रसन्न कहते हैं जैसे प्रसन्न अन्तःकरणपूर्वक रसायनका सेवन करके नीरोग व्यक्ति कहता है कि रसायनके प्रसादसे मैं नीरोग हुआ हूँ, उसी प्रकार प्रसन्न चित्तवृत्तिपूर्वक वीतराग प्रभुकी आराधनासे इष्टसिद्धि प्राप्त करके उपचारसे कहता है कि परमात्माके प्रसादसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है।

इसी दृष्टिसे वीतराग सिद्ध परमात्मासे प्रसन्नताकी प्रार्थना की गई है।

तिहुवण भणणप्परिय-पच्चकत्तवोह किरण परिवेढो ।

उड्डो वि अणत्थणो अरहत दिवापरो जयऊ ॥ २ ॥

अर्थ—ये अरहन्त भगवान्रूपी सूर्य जयन्त हो, जो तीन लोक रूपी भवनमें फैली हुई ज्ञानकिरणोंसे व्याप्त हैं, तथा जो उदित होते हुए भी अस्तनो प्राप्त नहीं होते हैं।

भावार्थ—यहाँ अरहन्त भगवान्की सूर्यके साथ तुलना की है। सूर्य स्वपरप्रकाशक है। अरहन्त भगवान्का केवलज्ञान भी स्वपरप्रकाशक है। लोकप्रसिद्ध सूर्यकी अपेक्षा अरहन्त-सूर्यमें विशेषता है। लौकिक सूर्य जब कि मध्यलोकके धोंड़ेसे प्रदेशको आलोकित करता है, तब अरहन्त सूर्य सकल विश्वको प्रकाशित करता है। सूर्यका उदय और अस्त होता है, किन्तु केवलज्ञान-सूर्यका उदय तो होता है, पर अस्त नहीं। जन कैवल्यका प्रकाश आत्मामें कल्पित हो चुका, तब उस सर्वज्ञ आत्माकी ज्ञानव्योतिको कर्मपटल पुन कैसे ढाँक सकेंगे? अतः केवल ज्ञानसूर्य उदययुक्त होते हुए भी अस्त रहित है। वह अनन्तकाल पर्यन्त प्रकाशित रहता है। अरहन्तसूर्यकी किरणें ज्ञानात्मक हैं, लौकिक सूर्यकी किरणें पौद्गलिक हैं।

ति-रयण-रग्ग विहाएणुत्तारिय-मोह-सेण सिर णिउहो ।

आहरिय-नाउ पसियउ परिवालिय भविय जिय-सोओ ॥ ३ ॥

अर्थ—जिन्होंने रत्नत्रयरपी खड्गके प्रहारसे मोहरूपी सेनाके शिर-समूहका नाश कर दिया है तथा मध्य जीव लोकका परिपालन किया है वे आचार्य महाराज प्रसन्न हों।

भावार्थ—यहाँ आचार्य महाराज की राजसे तुलनाकी गई है। जैसे कोई प्रतापी राजा अपनी प्रचण्ड तलवारके प्रहारसे शत्रुसैन्यका नाश करता है, उसी प्रकार आचार्य परमेष्ठी सम्भ्रमदीन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूपी अजेय खड्गसे मोहरूपी सेनाके मस्तकोंका नाश करते हैं। जिस प्रकार गाँव अत्याचारीका अन्त करके धर्मपरायण प्रजाका रक्षण करता है उसी प्रकार आचार्य महाराज मोहका ध्वंस करके भव्यात्माआर्जाका रक्षण

(१) 'प्रसादः पुनः परमेष्ठिनस्वदिनेयानां प्रसन्नमनोविषयत्वमेव वीतरागाणां तुष्टिलक्षणप्रसादा सम्भवात् कापारम्भनात् । तदाराधकजनैस्तु प्रसन्नेन मनसापासयमानो भगवान् प्रसन्न इत्यभिधीयते रसायनत् । यथैव हि प्रसन्नेन मनसा रसायनमासेषु त परमाप्तुनन्त सन्तो रसायनप्रसादादिदमत्मा कमारोग्यादिषु सम्स्वतमिति प्रतिपाद्यते तथा प्रसन्नेन मनसा भगवतः परमेष्ठिनमुपास्य तदुपासनं कल श्रेयोभागोधिगमलक्ष्य प्रतिपन्नमानास्तद्विनयजना भगवत्परमेष्ठिः प्रसादादमत्मा श्रेयोभागोधिगमः सम्भन् इति समुपगन्त्यन्ते । —आप्तप० पृ० २, ३ । (२) नास्तु कदाचिदुपयासि न राहुगम्याः राष्ट्रीकरोषि घड्या सुगण-जगति ॥ नाम्नीधरोदरनिच्छमसाप्रमायः स्यात्तिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके ॥ —महाभार० श्लो० १७ ।

गमन करनेकी विशेषताको आकाश-गमन ऋद्धि कहते हैं। यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति रहनेके कारण देव विद्याधरोंका निराकरण हो जाता है।

गमो आसीविसाण' ॥ २० ॥

अर्थ—आशीविष ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

उम्र विषयुक्त आहार भी जिनके मुग्धमें जाकर निर्विष हो जाता है वा जिनके मुखसे निकले हुए वचनोंके श्रवणसे महाविषयुक्त व्यक्ति निर्विष हो जाता है, वे 'आस्याविष' ऋद्धिधारी हैं। महान् तपोत्रलसे विभूषित यतिजन जिसको कहें 'तू मर जा' वह तत्क्षण ही महाविषयुक्त हो मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, वह 'आस्यविष' ऋद्धि है। इस प्रकार 'आस्य अविष', तथा 'आस्य विष' दोनों प्रकारके अर्थ कहे गए हैं।

गमो दिट्ठिविसाण' ॥ २१ ॥

अर्थ—दृष्टिविष ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके देखने मात्रसे अत्यन्त तीव्र विषसे दूषित भी प्राणी विपरहित हो जाता है वे 'दृष्टिविष' ऋद्धिधारी हैं। उम्र तपस्वी मुनिजन क्रुद्ध हो जिसे देख लें, वह उसी समय उम्र विषयुक्त हो मर जाता है। इसे भी दृष्टिविष ऋद्धि कहते हैं। यहाँ भी 'जिन' शब्द की अनुवृत्ति है, अन्यथा दृष्टिविष सर्पोंको भी प्रणामका प्रसङ्ग आता। यद्यपि साधुजन घोष अथवा रोपसे मुक्त हैं, फिर भी तपस्याके कारण उनमें उपर्युक्त विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसका उपयोग बीतराग ऋषिगण नहीं करते हैं।

गमो उग्गतवाण' ॥ २२ ॥

अर्थ—उम्र तपनाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह दिन वा पक्ष मासादिके अनशन योगोंमें किसी भी उपवासको प्रारम्भ करके मरणपर्यन्त भी उस योगसे विचलित नहीं होना उग्रतप ऋद्धि है।

गमो दीतितवाण ॥ २३ ॥

अर्थ—दीप्त तपवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—महान् उपवास करनेपर भी जिनकी मन वचन कायकी शक्ति घटती हुई हो पाई जाती है जो दुर्गन्धरहित मुखवाले, कमल उत्पलादिकी सुगन्धके समान श्वासवाले तथा शरीरको महाकान्ति से सपन्न है, वे दीप्ततपस्वी जिन हैं।

(१) "ॐ ह्रीं अर्हं गमो आसीविसाण"—भ० क० य० २३। (२) "अनियमानस्यार्यस्य अक्षमाराः, आसीर्विष येन ते आशीर्विषाः। तत्रोवलेण एवविहसत्तिसुत्तयणा होदूण जे जीनाण गिग्गाहाणुग्गाहं ण कुण्ठति। ते आसीविषा चि घेतन्ना। कुदो ? जिगाणुउत्तीदो। ण च गिग्गाहाणुग्गाहे दि उदरिदिदरोसतोवाण जिणत्तमत्थि निरोधादो।"—घ० टी०। (३) "ॐ ह्रीं अर्हं गमो दिट्ठिविसाण"—भ० क० य० २४। (४) "दृष्टिरिति चक्षुर्मुनसोर्महण। जिगाणमिदि अणुनट्ठे अग्गाहा दिट्ठिविसाण सप्पाण पि गमोकारण्यग्गादो।"—घ० टी०। (५) "ॐ ह्रीं अर्हं गमो उग्गतवाण"—भ० क० य० २५। (६) "ॐ ह्रीं अर्हं गमो दित्तवाण"—भ० क० य० २६।

किया गया है कारण देवों में समय का अभाव है ।

णमो विज्जाहराण' ॥ १६ ॥

अर्थ—विद्याधारी तिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—<sup>३</sup>विद्या तीन प्रकार की होती हैं । मातृ पक्षसे प्राप्त जातिविद्या है । पितृपक्षसे प्राप्त पुत्रविद्या है । पृथु अष्टम आदि उपवास करनेसे सिद्ध की गई तपविद्या है । यहाँ देव तथा विद्याधरोंका ग्रहण नहीं किया गया है, कारण वे तिन नहीं हैं ।

णमो चारणाण' ॥ १७ ॥

अर्थ—चारण ऋद्धिधारी तिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जल, जह्वा, तन्तु, पुष्प, पत्र, अग्नि शिरादिके आलम्बनसे गमन करना चारण' ऋद्धि है । कुँआ वायकी आदिमें जलकायिक जीवोंकी विराधना नहीं करते हुए भूमिके समान चरणाके उठाने धरनेकी प्रवीणताको 'जलचारण' कहते हैं । भूमिसे चार आगुल ऊँचे आकाशमें जह्वाके उठाने धरनेकी कुशलतासे सैयकों योजन गमन करनेकी प्रवीणता 'जह्वाचारण' है । इसी प्रकार इस ऋद्धिके अन्य भेद हैं ।

णमो पण्डसमणाण' ॥ १८ ॥

अर्थ—<sup>४</sup>प्रज्ञाश्रमण जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—असाधारण प्रज्ञा शक्तिधारी प्रज्ञाश्रमण कहलाते हैं । अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वार्थ चिन्तनके प्रभावसे चौदह पूर्वके विषयमें पूछे जाने पर जो द्वादशाङ्ग चतुर्दश पूर्वको बिना पढ़े हुए भी उत्कृष्ट श्रुतावरण और वीर्यांतरायके क्षयोपक्षमसे उत्पन्न असाधारण प्रज्ञाशक्तिके लाभसे निघडक हो निरूपण करते हैं वे प्रज्ञाश्रमणधारी हैं ।

तिलोयपण्णत्ति ( पृ० २७७ ) में प्रज्ञाने चार भेद कहे हैं—औत्पत्तिकी पारिणामिकी, चैतन्यिकी तथा कर्मजा । भवान्तरमें कृत ध्रुतके विनयसे उत्पन्न होनेवाली औत्पत्तिकी, निज निज जाति विशेषमें उपन हुई पारिणामिकी, द्वादशाङ्गध्रुतकी विनयसे उत्पन्न चैतन्यिकी एवं उपदेशके बिना तपविशेषके लाभसे उत्पन्न कर्मजा कहलाती है ।

यहाँ जिन शब्दको अनुवृत्ति रहनेसे असयतोंका निराकरण हो जाता है ।

णमो जागासगामीण' ॥ १९ ॥

अर्थ—आकाशगामी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—पत्यङ्कासन वा कायोत्सर्ग आसनसे ही पैरोंको बिना उठाए धरे आकाशमें

( १ ) ' ॐ ही अहं णमो विज्जाहराण - म० क० य० १९ । ( २ ) ' तस्य सगमादुपक्खादा रुद्धनिजाओ आदिनिजाओ णम । विदुपक्खद्वाओ उरुनिजाओ । उट्टमादिउपवासनिहाणेदि खादिदाओ तपविजाओ । एवमेदाजा विनिहाओ होति । - ध० टी० । ( ३ ) ' ॐ ही अहं णमो चारणाण' - म० क० य० २० । ( ४ ) ' ॐ ही अहं णमो पण्डसमणाण - म० क० य० २१ । ( ५ ) ' औत्पत्तिकी चैतन्यिकी कर्मजा पारिणामिकी चैति चतुर्विधा प्रज्ञा । प्रज्ञा एव श्रवण वेदा त प्रज्ञाधन्याः । असजदान न पण्डसमणाण गहण निणसदाणुत्तदा । - ध० टी० । ( ६ ) ' ॐ ही अहं णमो जागासगामीण' - म० क० य० २० ।

वैर, कलह, वध, बधन आदिके प्रशमन करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है, वे अघोर ब्रह्मचारी हैं<sup>१</sup>।

अकलक स्वामी राजवार्तिक (पृ० १४४) में अघोरके स्थानमें घोर पाठ मानकर यह अर्थ करते हैं—जो चिरकालसे अरुण ब्रह्मचर्यके धारक हैं और चारित्रमोहके उत्कृष्ट क्षयोपशमसे जिनके दुःस्वप्नों वा विनाश हो चुका है वे घोर ब्रह्मचारी हैं ।

तिलोयपण्णत्तिकार (पृ० २८२) कहते हैं—जिस ऋद्धिसे मुनिके क्षेत्रमें चोरादिककी बाधा, दुष्काल तथा महायुद्ध आदि नहीं होते हैं, वह अघोर ब्रह्मचारित्व है । अथवा चारित्रनिरोधक ग्राहनीय कर्म का उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेसे जो ऋद्धि दुःस्वप्नोंको दूर करती है वह अघोर ब्रह्मचारित्व है । अथवा जिस ऋद्धिके होनेसे महर्षिजन सप्त गुणोंके साथ अघोर अर्थात् अविनाशी ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, वह अघोर ब्रह्मचारित्व है ।

णमो आमोसहिपत्ताणं<sup>२</sup> ॥ ३० ॥

अर्थ—आमर्ष औपधि प्राप्त जिनोको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिनके हस्त, चरणादिका स्पर्श ही औपधि रूप बन जाता है, उनको आमर्ष औपधिप्राप्त कहते हैं ।

णमो खेलोसहिपत्ताणं<sup>३</sup> ॥ ३१ ॥

अर्थ—खेलौपधि प्राप्त जिनोको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिनका निष्ठीघन (थूक) औपधिरूप अर्थात् रोगनिवारक होता है वे मुनिराज खेलौपधि प्राप्त हैं ।

णमो जल्लोसहिपत्ताणं<sup>४</sup> ॥ ३२ ॥

अर्थ—जल्लौपधि ऋद्धिप्राप्त जिनोको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—पसीनेसे मिले हुए धूलिसमूहरूप मलको जल्ल कहते हैं । जिन मुनियोंका जल्ल औपधिरूप होता है, वे जल्लौपधि प्राप्त जिन कहलाते हैं ।

णमो सव्वोसहिपत्ताणं<sup>५</sup> ॥ ३३ ॥

अर्थ—सर्वौपधि ऋद्धिप्राप्त जिनोको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिनके अंग, प्रत्यग, नख, दन्त, केशादि अवयव तथा उनका स्पर्श करनेवाले पत्रनादि जीवोंके लिए औपधिरूप परिणत हो जाते हैं, वे सर्वौपधिप्राप्त जिन हैं ।

(१) "ब्रह्म चारित्रं पञ्चमत्तसमितित्रिगुण्यत्मात्मकं शान्तिपुष्टिहेतुनात् । अघोरा अन्ताः गुणाः यस्मिन् तदघोरगुणं अघोरगुणं ब्रह्म चरन्तीति अघोरगुणत्रयचारिणः । जेत तवोमाहप्येण मारिदुग्भिन्मखवैरं कलहवधवधनरोगादिपसमणसत्ती समुप्यण्णा ते अघोरगुणब्रह्मचारिणो त्ति उच्चं होदि । एत्थ अकारो ऋण्णं गुणिज्ज दे ? संधिणिहेसादो ।"—ध० टी० । (२) "ॐ ह्रीं अर्हं णमो तिलोसहिपत्ताणं"—भ० क० य० ३४ । (३) "ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं"—भ० क० य० ३५ । (४) "ॐ ह्रीं अर्हं णमो खल्लोसहिपत्ताणं"—भ० क० य० ३३-३७ ।



णमो तत्तवाण<sup>१</sup> ॥ २४ ॥

अर्थ—तप्त तपवाले जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—तप्त लोहेकी कढ़ाई में पतित जलकणके समान शीघ्र ही जिनका अल्प आहार शुष्क हो जाता है उसका मूल रुधिरादि रूपमें परिणमन नहीं होता वे तप्ततपस्वी हैं ।

णमो महातवाण<sup>२</sup> ॥ २५ ॥

अर्थ—महातपधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—सिंहनिष्क्रीडितादि महान् उपवासादि के अनुष्ठानमें परायण महातपस्वी हैं ।

णमो घोरतवाण<sup>३</sup> ॥ २६ ॥

अर्थ—घोर तपधारी जिनाको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—वात, पित्त कफकी विषमतामें उत्पन्न उर, रौंसी, खास, नेत्रपीड़ा, कुष्ठ प्रमेहादि रोगासे पीड़ित शरीरयुक्त होते हुए भी जो अनशन, कायक्लेशादि तपोंसे अविचलित रहते हैं तथा भयकर श्मशान, पर्वत-शिखर, गुहा, दूरी, शून्य ग्राम आदिमें, जहाँ अत्यन्त दुष्ट यक्ष राक्षस पिशाच वेताल भयकर रूपका प्रदर्शन कर रहे हैं एव जहाँ शृगालके कठोर शब्द, सिंह व्याघ्र सर्प आदिके भोषण शब्द, हो रहे हैं ऐसे भयङ्कर प्रदेशों में सहर्ष रहते हैं वे घोर तपस्वी हैं ।

णमो घोरपरक्रमाण<sup>४</sup> ॥ २७ ॥

अर्थ—घोर पराक्रमवाले जिनाको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—पूर्वांक तपस्वी जब ग्रहण किए गए तपकी साधनामें वृद्धि करते हैं, तब वे घोर पराक्रमी कहलाते हैं ।

तिलोत्पण्णत्ति ( पृ० २८१ ) में कहा है—जिस ऋद्धिके प्रभावसे मुनिजन अपनी अनुपम सामर्थ्यसे कंठक, शिला, अग्नि, पर्वत, धूम्र और उल्का आदिके पात करनेमें तथा सागरके समस्त जल का शोषण करनेमें समर्थ होते हैं वह घोर पराक्रम ऋद्धि है ।

णमो घोरगुणाण<sup>५</sup> ॥ २८ ॥

अर्थ—घोर गुणवाले जिनोंको नमस्कार हो ।

णमोऽघोरब्रह्मचारीण<sup>६</sup> ॥ २९ ॥

अर्थ—अघोर ब्रह्मचर्यधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—घोरसेनाचार्य कहते हैं—जिनमें तपोमाहात्म्यसे मारी आदि रोग, दुर्भिक्ष,

( १ ) 'ॐ ही अहं णमो तत्तवाण' -म० क० य० २७ । ( २ ) 'ॐ ही अहं णमो महातवाण' -म० क० य० २८ । ( ३ ) 'ॐ ही अहं णमो घोरतवाण' -म० क० य० २९ । ( ४ ) 'वाश रवहा गुणा जेषि ते घोरगुणा । कथ चौरासीदिल्लक्खणुणाण घोरत्ते' १ धारकज्जहारिसत्तिवगमादो । तेषि घोरगुणाण णमो इदि ल्लुच होदि । -घ०टी० । ( ५ ) 'ॐ ही अहं णमो घोरपरक्रमाण' -म० क० य० ३१ । ( ६ ) 'ॐ ही अहं णमो घोरगुणाण' -म० क० य० ३० । ( ७ ) 'ॐ ही अहं णमो घोरगुणमचारीण' -म० क० य० ३२ ।

विशेषार्थ—रूक्ष भोजन भी जिनके कर पात्रमे पहुँचते ही घृतके समान शक्तिदायक हो जाता है अथवा जिनका सभाषण जीवोंको घृत-सेवनके समान तृप्ति पहुँचाता है, वे घृतसखी हैं ।

णमो मधुसखीण<sup>१</sup> ॥ ४० ॥

अर्थ—मधुसखी जिनोको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिनके हस्त-पुटमें रखा हुआ नीरस आहार भी मधुर रसपूर्ण तथा शक्ति सपन्न हो जाता है, अथवा जिनके वचन दुरी श्रोताओंको मधुके समान सतोप देते हैं, वे मधुसखी हैं । यहाँ मधु शब्दका तात्पर्य मधुररसवाले गुड, लोड, शर्करा आदिसे है, कारण उन सधमें मधुरता पाई जाती है ।<sup>२</sup>

णमो अमृतसखीण<sup>३</sup> ॥ ४१ ॥

अर्थ—अमृतसखी जिनोको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिनके हस्तपुटमें पहुँचकर कोई भी भोज्य वस्तु अमृतरूप हो जाती है, अथवा जिनकी वाणी जीवोंको अमृततुल्य कल्याण देती है, वे अमृतसखी हैं ।

णमो अक्षीणमहानस<sup>४</sup> ॥ ४२ ॥

अर्थ—अक्षीण महानस ऋद्धिघारी जिनोको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—लामान्तरायके क्षयोपग्रमके उत्कर्षको प्राप्त मुनीश्वरोंको जिस पात्रसे आहार दिया जाता है, उससे यदि चक्रवर्तीका कटक भी भोजन करे, तो उस दिन अन्नको कमी न पड़े यह अक्षीण महानस ऋद्धि है । तिलोपपण्णत्ति (पृ० २८५) में कहा है—लामान्तरायके क्षयोपग्रमसे सयुक्त मुनिराजके भोजनानन्तर भोजनशालाके अवशिष्ट अन्नमेसे जिस किसी भी प्रिय वस्तुका उस दिन चक्रवर्तीके कटकको भोजन करानेपर भी लेशमात्र क्षीण न होना अक्षीण महानस ऋद्धि है ।

णमो सच्चसिद्धायदणानं ॥ ४३ ॥

अर्थ—सपूर्ण सिद्धायतनोंको नमस्कार हो ।

णमो वट्टमाणुद्धिरिस्मि<sup>५</sup> ॥ ४४ ॥

अर्थ—वर्धमान बुद्धि ऋद्धिघारी ऋषिको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—वट्टमाणके स्थान पर यदि 'वट्टमाण' पाठ माना जाय, तो उसका अर्थ 'वर्धमान' बुद्धि ऋद्धिघारी होगा ।

(१) "ॐ ह्रीं अहं णमो मधुसखाण" - भ० क० य० ४३ । (२) "मधुयणेण गुडरंतसकरादीण मरुण मधुरसाह पडि एदासि साहम्मउलमादो ।" घ० टी० । (३) "ॐ ह्रीं अहं णमो अमियसवाण" - भ० क० य० ४४ । (४) "ॐ ह्रीं अहं णमो अक्षीणमहाणसाण" - भ० क० य० ४५ । (५) "ॐ ह्रीं अहं णमो वट्टमाणान" - भ० क० य० ४६ । "ॐ ह्रीं अहं णमो सच्चसाहण मरुणि मरात्तियददमाणुद्धिरिस्मिण" - भ० क० य० ४८ । समग्न भगवत् सूत्रोंमें पटी विभक्ति का बहुवचन प्रयुक्त हुआ है, अतः संभावना होती है कि—'वट्टमाणुद्धिरिस्मिणके स्थानमें 'वट्टमाण-बुद्धिरिस्मिण' पाठ होना चाहिए ।

णमो विद्वोमहिपत्ताण' ॥ ३४ ॥

अर्थ—जिनका मल औषधिरूप परिणत हो गया है, उन जिनों को नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—जिनका मूत्र पुरीपादि मल रोगनिवारक होता है, वे विद्वोषधिप्राप्त हैं ।  
महान् तपश्चर्याके प्रभावसे यह सामर्थ्य प्राप्त होती है ।

णमो मणवलीण' ॥ ३५ ॥

अर्थ—मनउलधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—नोइन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमके प्रकर्षसे  
अन्तर्बुद्धतमें ही सपूर्ण श्रुतके अर्थ चिन्तनमें प्रवीण मनोवली हैं ।

णमो वचनवलीण' ॥ ३६ ॥

अर्थ—वचनवली जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—मन, रसना तथा श्रुतज्ञानावरण एव वीर्यान्तरायके क्षयोपशमके अतिशयसे  
जो अन्तर्बुद्धतमें सपूर्ण श्रुतके उच्चारण करनेमें समर्थ हैं तथा निरन्तर उच्चारण करनेपर  
भी जो श्रमरहित एवं कठके स्वरमें हीनतारहित हैं वे ऋषि वचनवली हैं ।

णमो कायवलीण' ॥ ३७ ॥

अर्थ—कायवली जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न असाधारण शरीरबल होनेसे मासिक,  
चातुर्मासिक, वार्षिक आदि प्रतिमायोग धारण करते हुए भी जिन्हें खेद नहीं होता वे सुनिबर  
कायवली हैं ।

तिलोपपण्णत्ति(पृ० २८३) में कहा है जिस ऋद्धिके बलसे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम  
होनेपर सुनिराज मास या चातुर्मास आदि कायोत्सर्ग करते हुए भी श्रमरहित होते हैं तथा शीघ्र  
ही पीनो लोकोको कनिष्ठ अगुली पर उठाकर अन्यत्र धरनेमें समर्थ होते हैं, वह कायबल  
नामकी ऋद्धि है ।

णमो क्षीरसनीण' ॥ ३८ ॥

अर्थ—क्षीरसनी ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो ।

विशेषार्थ—नौरस भोजन भी जिनके हस्त पुटमें रखे जानेपर क्षीरगुणरूप परिणमन  
करता है वा जिनके वचन क्षोण व्यक्तियोंको दुग्धसे समान वृत्ति प्रदान करते हैं वे क्षीरसनी  
हैं । तत्सार्धराजवार्तिक( पृ० १४४ ) में 'क्षीरसनी' पाठ ग्रहण किया है ।

णमो सपिसनीण ॥ ३९ ॥

अर्थ—पृतसनी जिनोंको नमस्कार हो ।

(१) 'ॐ हां अर्हं णमो विदासहिपत्ताण -म० क० य० ३६ । (२) 'ॐ हां अर्हं णमो मणवलीण' -  
म० क० य० ३८ । (३) 'ॐ हां अर्हं णमो वचनवलीण -म० क० य० ३९ । (४) 'ॐ हां अर्हं  
णमो कायवलीण' -म० क० य० ४० । (५) 'ॐ हां अर्हं णमो क्षीरसनीण' -म० क० य० ४२ ।

ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान तथा केवलज्ञान रूप ज्ञानकी पाँच अवस्थाओं को आवृत करते हैं। मिथ्यात्वके उदयसे आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञानको मत्तज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभगज्ञान कहते हैं। इन तीन ज्ञानोंको कुज्ञान भी कहते हैं।

१इन्द्रिय तथा मनकी सहायतासे अभिमुख, तथा प्रतिनियत पदार्थको जानने वाला आभिनिबोधिक या मतिज्ञान कहलाता है। २मतिज्ञानद्वारा गृहीत अर्थसे जो अर्थान्तरका बोध होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। ३द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी अपेक्षा जिस प्रत्यक्षज्ञानके विषयकी अवधि या सीमा हो, उसे अवधिज्ञान या सीमाज्ञान कहते हैं। परकीय मनमें स्थित पदार्थको जो ज्ञान जानता है, उसे मन पर्यय ज्ञान कहते हैं। त्रिकालगोचर सर्वद्रव्यों तथा उनकी समस्त पर्यायोंको ग्रहण करनेवाला केवलज्ञान है।

### [ आभिनिबोधिकज्ञानावरणप्ररूपणा ]

जो आभिनिबोधिक ज्ञानावरण कर्म है, वह चार, चौबीस, अट्ठाईस तथा वत्तीस प्रकारका है। अवग्रह, ईहा, अवाय तथा धारणाका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण, ईहावरण, अवायावरण तथा धारणावरण कर्म है। विषय और विषयीके सन्निपातके अनन्तर पदार्थका आद्य ग्रहण अवग्रह है। इसका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण कर्म है। अवग्रहके द्वारा गृहीत अर्थके विषय में विशेष जाननेकी इच्छाके बाद भवितव्यता प्रत्ययरूप ज्ञानको ईहा कहते हैं। उसका आवारक कर्म ईहावरण कर्म है। इसके अनन्तर भाषा, वेप आदिका विशेष ज्ञान होनेसे जो सशयादिका निराकरण करके निर्णयरूप ज्ञान होता है, वह अवाय है। उसका आवारक अवायावरण कर्म है। अवाय ज्ञानके विषयभूत पदार्थके कालान्तरमें स्मरणका कारण वारणा ज्ञान है। उसका आवारक धारणावरण कर्म है।

अवग्रहावरण कर्मके अर्थावग्रहावरण तथा व्यजनावग्रहावरण कर्म ये दो भेद हैं। अव्यक्त पदार्थका ग्रहण करना व्यजनावग्रह है। यह इन्द्रियोंसे सम्पन्न अर्थका होता है। इसके विपरीत स्वरूपवाला अर्थावग्रह है। व्यजनावग्रहका आवारक व्यजनावग्रहावरण कर्म है तथा अर्थावग्रहका आवारक अर्थावग्रहावरण कर्म है। व्यजनावग्रह चक्षु तथा मनको छोड़कर शेष स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा श्रोत्र इन्द्रियसे होता है। अत एव इसके स्पर्शनेन्द्रियव्यजनावग्रहावरण कर्म, रसनेन्द्रियव्यजनावग्रहावरण कर्म, घ्राणेन्द्रियव्यजनावग्रहावरण कर्म तथा श्रोत्रेन्द्रियव्यजनावग्रहावरण कर्म ये चार भेद होते हैं।

अर्थावग्रह व्यक्त वस्तुका ग्रहण होनेके कारण पाँच इन्द्रिय तथा मनके द्वारा होता है। इस कारण उसके आवारक स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियावरण कर्म और नो इन्द्रियावरण कर्म हैं। ईहा, अवाय तथा धारणा ज्ञान भी पाँच इन्द्रिय तथा मनसे होनेके कारण अर्थावग्रहके समान प्रत्येक छह छह भेदवाला है। इस कारण व्यजनावग्रहके चार भेदोंमें अर्थावग्रहादिके चौबीस भेदोंको मिलाकर २८ भेद होते हैं। अत एव मतिज्ञानावरण कर्मके भी २८ भेद हो जाते हैं। इसके बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव, नि सूत, अनिसूत-इन बारह प्रकारके पदार्थोंको विषय करनेके कारण प्रत्येकके द्वादश भेद हो जाते हैं। इस प्रकार  $28 \times 12 = 336$  भेद मतिज्ञानके हैं। अत एव मतिज्ञानावरण कर्मके भी ३३६ भेद होते हैं।

(१) "तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्"—स० सू० १।१४। (०) "अत्यादो अत्यतरमुत्तम त मणति सुदण्ण। आभिणिवाहियपुब्ब गियमेणिह सहज पट्टम ॥"—गो० जी० ३।१४। (३) "अवहीयदि त्ति ओही सीमाणोत्ति वणिय समये। मग्गुणपच्चविहिय जमोहिणाणे त्ति ण वेत्ति ॥"—गो० जी० ३६९।

## [ प्रकृति समुत्कीर्तननिरूपणा ]

[ इन महाबंध अथवा महाबंधल शास्त्रका प्रारम्भिक तादृश्य न० २३ नष्ट हो गया है उसकी उसी रूप में पूर्ति होना असंभव है। आगेके वर्णनक्रमके साथ सम्बन्ध मिलानेकी दृष्टिसे मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा अवधिज्ञानावरण का संक्षेपमें वर्णन करते हैं, कारण प्रथमें ज्ञानावरण पर आरम्भ प्रशंसा डाला गया है। ]

जो त्रिकालवर्ती द्रव्य, गुण, पर्यायोंको नाना भेदों सहित प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे जाता है, उसे ज्ञान कहते हैं।<sup>१</sup> उस ज्ञानका आवरण करनेवाला ज्ञानावरण कर्म है। यह ज्ञान जीवका स्वभाव है। इसके द्वारा जीव स्व तथा अपूर्व अर्थका व्यवसाय-निरवय करता है। वस्तु सामान्य तथा विशेष धर्मासे समन्वित है। वस्तुके विशेष अंशका ग्रहण करनेवाला ज्ञान है। सामान्य अंशका ग्रहण करनेवाला दर्शन कहलाता है। ज्ञान तथा दर्शन जीवके पृथक् पृथक् गुण हैं।<sup>२</sup> चित् प्रकाशकी बहिर्मुख वृत्तिको ज्ञान कहते हैं और चित् प्रकाशकी अंतर्मुख वृत्तिको दर्शन कहते हैं। इस दर्शनका आवरण करनेवाला कर्म दर्शनावरण है। जो इन्द्रियोंद्वारा अपने अपने विषयका अनुकूल अथवा प्रतिकूल रूपसे अनुभव करावे, वह वेदनीय कर्म है। जो जीवको मोहित करे, वह मोहनीय कर्म है। भव धारण करने में कारण आयु कर्म है। इस जीवकी नर नारकादि विविध पर्यायोंमें कारण नाम कर्म है। कुल परम्परासे प्राप्त जीवके उच्च अथवा नीच आचरणका कारण गोत्रकर्म है। इस जीवके दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्य (शक्ति) में जो अन्तराय बाधा डालता है, वह अन्तराय कर्म है। इन आठ कर्मोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोह तथा अन्तरायकी घातिया कर्म कहते हैं, कारण ये जीवके अनत ज्ञान, अनत दर्शन, अनत सुख तथा अनतवीर्य नामक गुणोंका घात करते हैं। ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य जीवके अनुजीवी गुण हैं। सिद्धोंके<sup>३</sup> अयानाथ सुखका घात आठों ही कर्म करते हैं। प्रत्येक कर्मका कार्य जीवके विशेष गुणके घात करनेका है, किन्तु उन सबका सामान्य धर्म जीवके सुख गुणमें ही विनाश करनेका पाया जाता है।

वेदनीय, आयु, नाम तथा गोत्र ये प्रतिजीवी गुणोंका नाश करते हैं। अनुजीवी गुणोंका घात न करनेके कारण इनको अघातिया कर्म कहते हैं। ये क्रमशः अव्यायाय, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व तथा अगुरुलघुत्व गुणोंका नाश करते हैं। चार घातियाका नाश करनेवाले अरहत भगवान्में गुण चतुष्टयकी अभिव्यक्ति होती है। तथा सिद्धोंमें कर्माष्टकने ध्वंस करनेसे आठ गुण व्यक्त होते हैं।<sup>४</sup> कर्मनिध्वंसका अर्थ पुद्गलका अत्यंत क्षय नहीं है, कारण सत्त्वा अत्यन्त विनाश नहीं हो सकता। पुद्गलकी कर्मत्वपर्यायका नष्ट हो जाना अर्थात् आत्माके साथ उसका सम्बन्ध न रहना ही कर्मक्षय है।

ज्ञानावरण कर्मकी पांच प्रकृतियाँ हैं—आभिनयोधिकज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। ये आवरणपंचक आभिनयोधिक

(१) "जागद् निरालसिषद् दव्वगुणे पञ्च य बहमेदे । पचकरा च परोक्ख अणेण गाणे चि ण वेत्ति ॥" - गो० जी० गा० २९८ । (२) अ तद्विमुग्धोक्षिप्रकाशयोर्दर्शनज्ञानव्यपदेशानाजोरेकत्व निराघात् । - घ०टी०भा० १ पृ० १४५ । (३) "कमाष्टक निपक्षि स्यात् सुपस्यैकगुणस्य च । अस्ति विशिष्ट कर्मैव तद्विषयं तत् पृथक् ॥" - पञ्चाध्यायी २।११५ । (४) "मणेरालदे वावृत्ति क्षय । सवोत्पन्नविनायानुपपत्ते । तादृगात्मनोऽपि कर्मणो निवृत्तौ परिगृह्णि ।" - आटसह० पृ० ५३ ।

ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान तथा केवलज्ञान रूप ज्ञानकी पाँच अवस्थाओं को आवृत करते हैं। मिथ्यात्वके उदयसे आभिनिनोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अपधिज्ञानको मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभगज्ञान कहते हैं। इन तीन ज्ञानोंको कुज्ञान भी कहते हैं।

<sup>१</sup>इन्द्रिय तथा मनकी सहायतासे अभिमुख तथा प्रतिनियत पदार्थको जानने वाला आभिनिनोधिक या मतिज्ञान कहलाता है। <sup>२</sup>मतिज्ञानद्वारा गृहीत अर्थसे जो अर्थान्तरका बोध होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। <sup>३</sup>द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी अपेक्षा जिस प्रत्यक्षज्ञानके विषयकी अवधि या सीमा हो, उसे अवधिज्ञान या सीमाज्ञान कहते हैं। परकीय मनमे स्थित पदार्थको जो ज्ञान जानता है, उसे मन पर्यय ज्ञान कहते हैं। त्रिकालगोचर सर्वद्रव्यों तथा उनको समस्त पदार्थोंको ग्रहण करनेवाला केवलज्ञान है।

### [ आभिनिनोधिकज्ञानावरणप्ररूपणा ]

जो आभिनिनोधिक ज्ञानावरण कर्म है, वह चार, चौबीस, अट्ठाईस तथा वत्तीस प्रकारका है। अवग्रह, ईहा, अनाय तथा धारणाका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण, ईहावरण, अवायावरण तथा धारणावरण कर्म है। विषय और विषयीके सन्निपातके अनंतर पदार्थका आद्य ग्रहण अवग्रह है। इसका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण कर्म है। अवग्रहके द्वारा गृहीत अर्थके विषयमें विशेष जाननेकी इच्छाके बाद भवितव्यता प्रत्ययरूप ज्ञानको ईहा कहते हैं। उसका आवारक कर्म ईहावरण कर्म है। इसके अनंतर भाषा, वेप आदिका विशेष ज्ञान होनेसे जो संशयादिका निराकरण करके निर्णयरूप ज्ञान होता है, यह अवाय है। उसका आवारक अवायावरण कर्म है। अनाय ज्ञानके विषयभूत पदार्थके कालान्तरमे स्मरणका कारण धारणा ज्ञान है। उसका आवारक धारणावरण कर्म है।

अवग्रहावरण कर्मके अर्थावग्रहावरण तथा व्यजनावग्रहावरण कर्म ये दो भेद हैं। अव्यक्त पदार्थका ग्रहण करना व्यजनावग्रह है। यह इन्द्रियोंसे सम्यक् अर्थका होता है। इसके विपरीत स्वरूपवाला अर्थावग्रह है। व्यजनावग्रहका आवारक व्यजनावग्रहावरण कर्म है तथा अर्थावग्रहका आवारक अर्थावग्रहावरण कर्म है। व्यजनावग्रह चक्षु तथा मनको छोड़कर शेष स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा श्रोत्र इन्द्रियसे होता है। अत एव इसके स्पर्शनेन्द्रियव्यजनावग्रहावरण कर्म, रसनेन्द्रियव्यजनावग्रहावरण कर्म, घ्राणेन्द्रियव्यजनावग्रहावरण कर्म तथा श्रोत्रेन्द्रियव्यजनावग्रहावरण कर्म ये चार भेद होते हैं।

अर्थावग्रह व्यक्त वस्तुका ग्रहण होनेके कारण पाँच इन्द्रिय तथा मनके द्वारा होता है। इस कारण उसके आवारक स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियावरण कर्म और नो इन्द्रियावरण कर्म है। ईहा, अवाय तथा धारणा ज्ञान भी पाँच इन्द्रिय तथा मनसे होनेके कारण अर्थावग्रहके समान प्रत्येक छह छह भेदवाला है। इस कारण व्यजनावग्रहके चार भेदोंमें अर्थावग्रहादिके चौबीस भेदोंको मिलातेसे २८ भेद होते हैं। अत एव मतिज्ञानावरण कर्मके भी २८ भेद हो जाते हैं। इसके बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, उक्त, अनुक्त, भुव, अभुव, निम्न, अनिम्न-इन चारह प्रकारके पदार्थोंकी विषय करनेके कारण प्रत्येकके द्वादश भेद हो जाते हैं। इस प्रकार २८ × १२ = ३३६ भेद मतिज्ञानके हैं। अत एव मतिज्ञानावरण कर्मके भी ३३६ भेद होते हैं।

( १ ) "तत्रिन्द्रियाणिन्द्रियनिमित्तम्"—त० सू० १।१४। ( २ ) "अत्यादो अत्यतरमुत्तमं व माति उरगाण। आनिगिवाहियुज्ज निपमेगिह उद्वं पदुम ॥"—मो० जी० ३१४। ( ३ ) "धरात्तदि वि ओदी सीमात्तणेत्ति यणियं समये। मचगुणयययिहियं जनीहिणाणे ति णं वेति ॥"—मो० जी० ३६९।

### [ श्रुतज्ञानाचरणप्ररूपणा ]

मतिज्ञानके द्वारा जाने गए पदार्थसे पदार्थांतरका ग्रहण करना श्रुतज्ञान है। वह 'नित्य शब्द निमित्तक है अथवा अन्य निमित्तक है' ऐसी शकाका निराकरणके लिए उस श्रुतज्ञानको मति पूर्वक कहा है। यद्यपि श्रुतज्ञानपूर्वक भी श्रुतज्ञान होता है, फिर भी श्रुतज्ञानके मतिपूर्वकत्वमें बाधा नहीं आती है। श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है, इसका तात्पर्य इतना है कि प्रत्येक श्रुतज्ञानके प्रारंभमें मतिज्ञान निमित्त हुआ करता है। पश्चात् मतिपूर्वकत्वका कोई नियम नहीं है।

उस श्रुतज्ञानके शब्दजन्य तथा लिङ्गजन्य ये दो भेद कहे गये हैं। अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक रूपमें भी उसके दो भेद कहे जाते हैं। श्रुतज्ञानको अक्षरात्मक या शब्दात्मक मानना उपचरित कथन है। श्रुतज्ञानका कारण प्रवचन है, इससे प्रवचनको भी श्रुतज्ञान कह दिया है। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके असंख्यात भेद हैं। अपुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके सख्यात भेद हैं। पुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञानका प्रमाण इससे कुछ अधिक है। ३३ व्यंजन, २७ स्वर तथा ४ अयोगवाह मिलकर कुल चौंसठ मूलवर्ण होते हैं। इन चौंसठ वर्णोंके संयोगसे १८४४६७४४० ७३७०९५५१६१५ इन बीस अक्ष प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर होते हैं। उपरोक्त अक्षरोंमें १६३४८-३०७८८८ इन एकादश अक्ष प्रमाण अक्षरात्मक मध्यम पदका भाग देनेपर छवित्वरूपमें प्राप्त सख्याप्रमाण अगप्रविष्ट पद होते हैं, जो द्वादशाग-आचारागादिके नामसे रचात हैं।

भाग देनेसे शेष बचे हुए अक्षरोंको अगनाह्य कहते हैं। अगनाह्यके सामायिक, चतुर्विंशतिन्तव, वदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिवर्ग, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महानल्प्य पुडरीक, महापुडरीक तथा निपिद्धिका ये चौदह प्रकार हैं<sup>२</sup>। बुद्धिके अतिशय तथा श्रद्धिविशिष्ट गणधरदेवके द्वारा अनुस्मृत जो द्वादशागरूप जिनवाणीकी प्रथरचना है, वह अगप्रविष्ट है। उन गणधरदेवके शिष्य प्रशिष्योंके द्वारा आरातीय आचार्योंके पाससे श्रुतज्ञानके तत्त्वको ग्रहण करके कालद्वीपसे अल्पमेधा, अल्पनल तथा अल्प आयुयुक्त प्राणियोंके अनुग्रहके लिए उपनिन्द संक्षिप्ररूपसे अगोके अर्थरूप वचनविन्यासको अगवाह्य कहते हैं। इस दृष्टिसे आचार्यपरंपरासे प्राप्त तथा जिनवाणीके तत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले अन्य ग्रन्थान्तर अगवाह्य श्रुतमें समाविष्ट होते हैं।

अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानका सनसे छोटा रूप पर्यायज्ञान कहलाता है। उससे कम ज्ञान किसी भी जीवके नहीं पाया जा सकता है। उस ज्ञानको नित्य प्रकाशमान तथा निरावरण कहा है। सूक्ष्म निगोदिया लब्धपर्याप्तक जीव अपने योग्य समभवनीय ६०१२ भवोंमें परिभ्रमण कर अतके अपर्याप्तक शरीरको तीन मोड़ाओंसहित जब ग्रहण करता है, तब उसके प्रथम मोड़ाके समयमें सर्व जघन्य ज्ञान होता है।

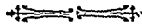
(१) 'श्रुतज्ञानस्य कारण हि प्रवचन श्रुतमिन्नुपचयते। सुरस्य श्रुतज्ञानस्य भेदप्रतिपादन कथनुपपन्नम् । तज्ज्ञानस्य भेदप्रभेदरूपन्यापरदेः । द्विभेदप्रवचनजनि हि ज्ञान द्विभेदम् । अङ्गब्राह्मणप्रवचनजानतस्य ज्ञान स्यान्ननाशत्वात् अङ्गप्रविष्टजनिज्ञानस्याङ्गप्रविष्टन्यात् ।' -त० श्लो० पृ० २३६ । 'तत्र अगवाहिरस्य चार्दस अत्यादियारा, अगप्रविष्ट-अत्पाधिमारो चारसनिहो ।' -ध० टी० भाग १ पृ० ९६ । (२) 'तत्रान् प्रविष्टमङ्गनाह्ये चैति द्विविधमङ्गप्रविष्टमाचारादिद्वादशभेदम्, बुद्धपतिशयर्थियुत गणधरानुस्मृतप्रथरचनम् । आरातीयाचार्यइत्याचार्यप्रकाश नरूपमङ्गनाह्यम् । तद्गणधरशिष्यै प्रशिष्यैरारातीयैरधिगतधुतार्थतत्त्वे काल दोषादल्पमेधासुर्बलाना प्राणिनामनुग्रहार्थं सुपनिन्द संक्षिप्तान्नायवचनविन्यास तदङ्गवाह्यम् ।' -च० रा० पृ० ५४ । (३) "सुहृमणिगोदअप-जत्तयस्य जादसस फम्मसमर्थाह । इवदि हु सव्वगहण्णि णिच्चुग्धाई णिरान्ण रणे ॥ ३१६ ॥ सुहृमणिगोदअप-जत्तगेणु सगसमनेणु भमिऊण । चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवकदिशेव हेवे ॥ ६२० ॥ -गो० जी० ।

‘इस पर्यायज्ञानसे आगे पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, सघात, सघात-समास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, प्राभृत प्राभृत, प्राभृत प्राभृत समास, वस्तु, वस्तु-समास, पूर्व, पूर्व-समास भेद होते हैं।

श्रुतज्ञान का विषयभूत अर्थ मनका विषय होता है। श्रुतज्ञानमें मानसिक व्यापार होता है। ऐसी स्थितिमें जिनके मन नहीं है, उन असङ्गी पचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके श्रुतज्ञानका अभाव समझा जाना चाहिए था, किन्तु परमागममें कमसे कम छद्मस्थोंके मति तथा श्रुत ये दो ज्ञान नियमत कहे गए हैं। श्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेसे एकेन्द्रियादिके मन न होते हुए भी श्रुतज्ञानका सद्भाव आगममें वर्णित है। इसका कारण यह है कि असङ्गी जीवोंमें जो कुछ ऐसी क्रियाएँ पाई जाती हैं, जिनसे उनके मनके सद्भावको कल्पना होने लगती है उनका कारण मन नहीं है किन्तु श्लोककार्तिककार विद्यानन्दी स्वामीके शब्दोंमें मतिसामान्यके समान स्मृतिसामान्य, धारणासामान्य तथा उनके निमित्तरूप अवायसामान्य, ईहासामान्य,<sup>३</sup> अवग्रहसामान्य पाए जाते हैं जो कि अनादिभवाभ्यासके कारण उत्पन्न होते हैं। उनके क्षयोपशमनिमित्त भावमन नहीं है, कारण वह अनिनियत सद्गी प्राणियोंके होता है। इसका भाव यह है, कि पिपीलिका आदिमें योग्य आहारका ग्रहण, अनुसंधान, अयोग्यका परिहार आदि वाते पाई जाती हैं, उसका कारण मन न होकर स्मृतिसामान्य, धारणासामान्य, ईहासामान्य, अत्रायसामान्य आदि हैं।<sup>३</sup>

यहाँ श्रुतज्ञान की प्ररूपणा की गई है। इससे श्रुतज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा कैसे हो जायगी? इसके समाधानमें वीरसेनाचार्य<sup>४</sup> लिखते हैं—यह दोष नहीं है, आवरण किए जानेवाले ज्ञानके स्वरूपकी प्ररूपणाका ज्ञानावरणके स्वरूप परिज्ञानके साथ अविनाभाव है। इस अविनाभावके कारण श्रुतज्ञानके स्वरूपनिरूपणद्वारा श्रुतज्ञानावरणका परिज्ञान कराया गया है।

इस प्रकार श्रुतज्ञानावरणको प्ररूपणा हुई।



(१) “पञ्चमस्तरपदसपाद पट्टिचित्प्राणियोग च। दुग्दारपाहुड च य पाहुडय यत्तु पुच्य च ॥ तेषि च समासेहि य वीसविह वा हु होदि सुदणाय। आनरणस पि भेदा तत्तियमेचा हयनि चि ॥”-गो०ज्ञी० ३१६, १७। (२) “श्रुतज्ञानविषयोऽर्थं श्रुतम्। स विषयोऽनिन्द्रियस्य। अथवा धृतज्ञानं श्रुतम्। तदनिन्द्रियस्यार्थं प्रयोजनमिति यावत्”-स०सि०पृ० १०५। (३) “न चामनस्काना स्मरणसामान्याभागेऽनादिमत्सूत्र निपयानुभवोद्भवाया सामा यधारणायान्द्रतो सद्भावात् आहारसंज्ञासिद्धे प्रवृत्तिनिरोधोपलब्धे तदा नाममतिवदाहारादिसंज्ञातद्देशेऽत्र स्मृतिसामान्य धारणासामान्य च तन्निमित्तमवायसामान्यमीहास सामान्य च सर्वप्राणिसाधारणमनादिभग्न्याससम्भूतमभ्युपगन्तव्यम्, न पुन क्षयोपशमनिमित्तं यवमन, तस्य प्रतिनियतप्राणिविषयतयात्र भूयमानत्वात् ॥”-स०रत्नो०पृ० ३२९, ३३०। (४) “सुदणाय ह्येव यत्तु पा मयिस्त्वमागा कथं सुदणायानुपशम कम्मस्त पररूपणा होव्व २ ण एस दोसो, आवरणेऽन्वयान्तराद्य तदावरणसरूपावगमनिगमात्रितादो ॥”-घ० टी० प० १२५५।



## [ अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा ]

जो अवधिज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकार का है। उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा है। एक भवप्रत्यय अवधिज्ञान, दूसरा गुणप्रत्यय अवधिज्ञान। अवधिज्ञान सीमाज्ञान भी कहा जाता है, कारण यह द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी मर्यादा से रूपी पदार्थको विषय करता है। भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भव निमित्त है। उस भवमें नियमसे क्षयोपशम होता ही है। जैसे पक्षियोंकी पर्यायमें उत्पन्न होनेवाले जीवके गगन गमन विषयक क्षयोपशम पाया जाता है इसी प्रकार देव तथा नारकियोंकी पर्यायमें जानेवाले सम्पूर्ण जीवधारियोंके नियमसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है। तीर्थंकर भगवान्के भी जन्मसे जो अवधिज्ञान होता है, उसे भवप्रत्यय कहा है।<sup>२</sup>

सम्यग्दर्शनादि निमित्तोंके सन्निधान होते हुए शान्त तथा क्षीण कर्मवालोंके जो अवधिज्ञान होता है, उसे क्षयोपशमनिमित्तक या गुणप्रत्यय अवधि कहते हैं। यह जीवके विशेष प्रयत्नपर अवलम्बित रहता है भवमात्र इसमें कारण नहीं है। गुण या क्षयोपशम निमित्तक होनेसे इसे क्षयोपशमनिमित्तक कहते हैं।

अवधिज्ञान के देशावधि परमावधि तथा सर्वावधि रूपसे तीन भेद और किये जाते हैं। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि के जघन्य भेदरूप होता है। गुणप्रत्यय तीनों भेद रूप होता है। गुणप्रत्यय देशावधिका जघन्य असयमा मनुष्य, तिर्यञ्चोंके पाया जा सकता है। इसके आगेके विन्तुप सयमी मनुष्यके ही पाए जाते हैं। परमावधि सर्वावधि चरमशरीरी मुनिराजके ही पाया जाता है। सर्वावधि जघन्य, मध्यम, उल्लूट आदि भेदोंसे रहित है।

<sup>२</sup>सम्यक्त्वरहित अर्वाधज्ञानको विभगावधि कहते हैं। अवधिज्ञानत्रकी अपेक्षा दोनोंमें विशेष अंतर नहीं है। सम्यक्त्व, मिथ्यात्वके सहचारवश उनमें नाममात्रका भेद है।

पालकी श्रुति अवधिज्ञानके समय, आवली, क्षण, लघु, सुहृत्, दिवस, पक्ष, ऋतु, अयन, सवत्सर, युग (पञ्चवर्ष), पून (सत्तरकोटि द्युपन्नश्च सहस्र षोडश वर्ष), पर्व (चौरासी लाख पूर्व प्रमाण), पल्योपम, सागरोपम आदि विधान जानना चाहिए।

महाभन्धके गुटित पत्रमें जो प्रथम पक्ति है उसमें लिखा है 'अयन, सवत्सर, पल्योपम, सागरोपम आदि होते हैं।' धवला टीकाके प्रकरणसे तुलना करने पर ज्ञात होता है कि यहाँ अवधिज्ञानसम्बन्धा कालका निरूपण चल रहा है।



(१) "यथाकासे सति पजिणो गतिर्नवति तथा ज्ञानावरणक्षयोपगमेऽन्तरङ्गे हेतौ सत्यधेभाव, भग्न बाह्या हेतु । कथ पुनर्नवो हेतु ? इति चेत्, प्रतनियमाद्यभावात् । यथा तिरश्चा मनुष्याणा चाहिंसान्निव्रतनियम हेतुकोऽवधिर्न तथा देवताना नारकाणा चाहिंसादिव्रतनियमाभिसिपरिस्थिति । कुतो भव प्रतीत्य कर्मोदयस्य तथा भागात् । तस्मात् तत्र भव एव बाह्यसाधनमुच्यते ।" -सं० २।० पृ० ५४, ५५ । "यमोक्तसम्यग्दर्शनादिनिमित्त सन्निधाने सति शान्तक्षीणकर्मणा तस्य उपलब्धिर्भवति ।" -सं० २।० पृ० ५६ । (२) 'देसादिस्वयं य अवर परतिरिये होदि सज्जर्माह वर । परमोही सव्योही चरमशरीरस्य निरदस्व । पडिवादी देसोही अर्पाडिवादी हवति तेसाओ । मिच्छुच अदिरमण ण य पडिबज्जति चरिमदुगे ॥ दव्व सेत्त कालं भाग पडिह निजाणत्त ओही । अवरारुक्खोत्ति य यिक्कपरहिदो दु सव्वाही ॥' -गो० जी० ३७३-७५ । (३) "दोण नि ओहिणाणत्त पडि मेदाभावादो । ण न्च सम्मत्त मिच्छुत्तसहचारेण कदणाममेदादो मेदो अत्थि अरप्पणत्तो । कालदो ताण समयावलिदल्लण-लव-सुत्तुच दिवस-पक्क मात्त उदु अयण-सवच्छर सुग पुत्तव-पडिदोपम-सागरोपमादो विधजो गादव्वा अयति ।" -पं० टी० पं० १२५८ ।

[ अत्र सप्तविंशतितम ताडपत्र उटितम् ]

- १ अयणं सत्रच्छर-पलिदोवम-सागरोवमादयो भवति ।  
 ओगाहणा जहण्णा णियमादो सुहुमणियोदजोन्सम् ।  
 यदेहो तदेही जहण्हय सेत्तदो ओधी ॥ १ ॥
- अगुलमानलियाए भागममखेज्जदो वि सरोज्जा ।  
 अगुलमानलियतो आगलिय अगुलपुधत्तं ॥ २ ॥  
 आगलियपुधत्त पुण हत्थोत्था (हत्थ तह) गाउद मुट्ठत्तो ।  
 जोजण भिण्णामुहुत्त दिनसंतो पण्णुगीसं तु ॥ ३ ॥  
 भंरदं च अद्धमाम साधियमासं [ च ] जजुदीव हि ।  
 वास च मणुसलोगे वासपुधत्त च रुज्जु(ज)गम्हि ॥ ४ ॥  
 सरोज्जदिमे काल दीनसमुदा हवति सरोज्जा ।  
 कालं हि अमखेज्जो दीनसमुदा हवति असरोज्जा ॥ ५ ॥

५

१०

१ अयन सवत्सर पत्योपम सागरोपम आदि होते हैं ।

अवधिज्ञानके क्षेत्रकी प्ररूपणा करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तक निगोदिया जीवकी जघन्य अवगाहना है । जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र उसके शरीरप्रमाण है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक निगोदिया जीवके अपनी भवपरपराके अन्तिम मवके तीसरे समयमे सर्वजघन्य शरीरकी अवगाहना होती है । विग्रहगतिये तीसरे समयमें निगोदियाकी शरीराकृति वर्तुलाकार होनेसे सबसे कम क्षेत्रफल रहता है । उतना जघन्या अधिना क्षेत्र है ।

अव क्षेत्र तथा कालकी अपेक्षा अवधिज्ञानसम्बन्धी १९ काण्डकोंका निरूपण करते हैं ।

प्रथम काण्डमें अगुलका अवस्थातर्वां भाग जघन्य क्षेत्र है । आवलीका असख्यातर्वां भाग जघन्य काल है । अगुलका सत्यातर्वां भाग उत्कृष्ट क्षेत्र है, आवलीका सत्यातर्वां भाग उत्कृष्ट काल है । दूसरे काण्डमें घनाङ्गुलप्रमाण क्षेत्र है, कुछ कम आवलीप्रमाण काल है ।

विशेषार्थ—यहाँ दूसरे तीसरे आदि काण्डकोंमें उत्कृष्टकी अपेक्षा वर्णन किया गया है ।

तीसरे काण्डमें अगुलपृथक्त्व क्षेत्र है, आगलीपृथक्त्वप्रमाण काल है ॥ २ ॥

चतुर्थ काण्डमें आवलीपृथक्त्व काल है, हस्तप्रमाण क्षेत्र है । पञ्चम काण्डमें अतर्मुहूर्त काल है, एक कोश क्षेत्र है । छठवेंमें भिन्न मुहूर्त ( एक समय कम मुहूर्त ) काल है । एक योचन क्षेत्र है । सप्तममे कुछ कम एक दिन काल है, २५ योजन क्षेत्र है ॥ ३ ॥

अष्टममे अर्धमास काल है, भरतवर्ष क्षेत्र है । नवममें साधिक मास काल है, जम्बूद्वीप क्षेत्र है । दशममें वर्षप्रमाण काल है मनुष्य लोचनप्रमाण क्षेत्र है । ग्यारहवेंमें वर्षपृथक्त्व काल है, रुचक द्वीप क्षेत्र है ॥ ४ ॥

बारहवेंमें सत्यात वर्ष काल है, सत्यात द्वीप समुद्र क्षेत्र है । तेरहवेंमें असत्यात वर्ष काल है, असत्यात द्वीप समुद्रप्रमाण क्षेत्र है ॥ ५ ॥

( १ ) गो० जी० गा० ४०३ । ( २ ) "आवलयपुधत्त पुण हत्थ तह "—गो० जी० गा० ४० ।

( ३ ) "भरहम्मि अदमास साधियमास च वजुदीवम्मि "—गो० जी० गा० ४०५ । ( ४ ) "संते जयमे वासे दासजुदा वासम्मि असंनेजे "—गो० जी० गा० ४०६ ।

### [ अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा ]

जो अवधिज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकार का है। उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा है। एक भवप्रत्यय अवधिज्ञान, दूसरा गुणप्रत्यय अवधिज्ञान। अवधिज्ञान सीमाज्ञान भी कहा जाता है, कारण यह द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी मर्यादा से रूपी पदार्थको विषय करता है। भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भव निमित्त है। उस भवमें नियमसे क्षयोपशम होता ही है। जैसे पक्षियोंका पर्यायमें उत्पन्न होनेवाले जीवके गगन गमन विषयक क्षयोपशम पाया जाता है इसी प्रकार देव तथा नारकियोंकी पर्यायमें जानेवाले सम्पूर्ण जीवधारियोंको नियमसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है। तीर्थंकर भगवान्के भी जन्मसे जो अवधिज्ञान होता है, उसे भवप्रत्यय कहा है।<sup>१</sup>

सम्यग्दर्शादि निमित्तोंके सन्निधान होते हुए शान्त तथा क्षीण कर्मवालोंके जो अवधिज्ञान होता है, उसे क्षयोपशमनिमित्तक या गुणप्रत्यय अवधि कहते हैं। यह जीवके विशेष प्रदत्तपर अवलम्बित रहता है भवमात्र इसमें कारण नहीं है। गुण या क्षयोपशम निमित्तक होनेसे इसे क्षयोपशमनिमित्तक कहते हैं।

अवधिज्ञान के देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधि रूपसे तीन भेद और किये जाते हैं। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि के जघन्य भेदरूप होता है। गुणप्रत्यय तीनों भेद रूप होता है। गुणप्रत्यय देशावधिका जघन्य असयमी मनुष्य, तिर्यञ्चोंके पाया जा सकता है। इसके आगेके विकल्प सयमी मनुष्यके ही पाए जाते हैं। परमावधि सर्वावधि चरमशरीरी मुनिराजके ही पाया जाता है। सर्वावधि जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आदि भेदासे रहित है।

<sup>२</sup>सम्यक्स्वरहित अवधिज्ञानको विभगावधि कहते हैं। अवधिज्ञानत्वकी अपेक्षा दोनोंमें विशेष अंतर नहीं है। सम्यक्त्व, मिथ्यात्वके सहचारवश उनमें नाममात्रका भेद है।

कालकी अपेक्षा अवधिज्ञानके समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त्त, दिवस, पक्ष ऋतु, अयन, सबत्सर, युग (पंचवष), पूर्व (सत्तरकोटि क्षणनन्दा सहस्र कोटि वर्ष), पर्व (चौरासी लाख पूर्व प्रमाण) पल्लोपम, सागरोपम आदि विधान जानना चाहिए।

महाबन्धके श्रुतित परमे जो प्रथम पक्ति है उसमें लिखा है 'अयन, संवत्सर, पल्लोपम, सागरोपम आदि होते हैं।' ध्वला टीकाके प्रकरणसे तुलना करने पर ज्ञात होता है कि यहाँ अत्रधिज्ञानसम्बन्धी कालका निरूपण चल रहा है।



(१) "यथाकाशे सति पक्षिणो गतिरिति तथा ज्ञानावरणपयोपशमेऽन्तरङ्गे हेतौ सत्यन्धेभावः, भवसु बाह्या हतु । नच पुनन्धो हेतु इति चेत्, तन्नियमाद्यभावात् । यथा तिरश्चां मनुष्याणां चार्हिसादिप्रतनियम हेतुकोऽपरिधर्न तथा देवानां नारकाणां चार्हिसादिवतनियमाभिस्तिरस्ति । कुता भव प्रतात्य कर्मोदयस्य तथा भावात् । तस्मात् तत्र भव एव बाह्यसाधनमुच्यते । -त०रा० पृ० ५४, ५५ ।" यथोक्तसम्यग्दर्शनादिनिमित्त सन्निधाने सति शान्तधीःकर्मणां तस्य उपलब्धिभवति । -त० रा० पृ० ५६ । (२) देसादिभ्य य अवर अप्यदिमादी हवति सेसाभा । मिच्छत अपिरमण ण य पडिववति चरिमदुगे ॥ दव्य खेत्त काल भाव पडिह विजापदे ओही । अवरादुक्कसोत्ति य नियपरहिदा हु सज्जोही ॥ -गो० जी० ३७३-७५ । (३) "दोषं नि ओहिणापच पडि भेदाभावात् । ण च सम्मत्त मिच्छसहचारेण वदणामभेदादो भदो अत्थि, अत्थपसंगादो । काल्हा ताव समभापल्लयराण-लव-मुहृत्त दिवस-पकल-मास-उदु अयण सवच्छर जग पुण्य पल्लिदोषम-सागरोपमादभो विधमो णादव्वा भवति ।" -ध० टी० प० १२५८ ।

'आणदपाणदवासी तथ आरणअरणच्चुदा देवा ।  
 पस्सति पचमसिदि छट्ठी भेवेज्जया देवा ॥ १२ ॥  
 सच्च पि लोगणालि पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा ।  
 सखेते (सक्खेत्ते) य सक्कम्मे रूवगदमणंतभागो य ॥ १३ ॥  
 तेजासरीरलभो उक्कम्सेण दु तिरिक्खज्जोणीणं ।  
 गाउदजहण्णमोधी गिरयेसु य जोजणुक्कस्स ॥ १४ ॥  
 उक्कस्समणुस्सेसु य मणुस्स तेरच्छिण जहण्होधी ।  
 उक्कस्स लोगमेच पडिवादी तेण पर अप्पडिवादी ॥ १५ ॥  
 परमोधि अससेज्जा लोगामेत्ताणि समय कालो दु ।

ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठवासियोंका तीसरे नरकपर्यन्त, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार वाले चौथे नरकपर्यन्त जानते हैं ॥ ११ ॥

आनत, प्रानत, आरण, अच्युत स्वर्गवासी पाँचवें नरकतक, नवप्रैवेयकवासी छठवाँ पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं ॥ १० ॥

नव अनुदिश तथा पच अनुत्तर विमानवासी देव सर्व असनालीको देखते हैं ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—सौधर्मादिकके देव अपने विमानकी धजाके दण्डके शिरपरपर्यन्त ऊपर जानते हैं। नव अनुदिश तथा पच अनुत्तर विमानवासी देव अपने विमानके शिरपरपर्यन्त ऊपर देखते हैं। नीचे बाह्य तनुवात बलयपर्यन्त सम्पूर्ण असनालीको देखते हैं। अनुदिश विमानवाले कुछ अधिक तेरह राजू प्रमाण तथा अनुत्तर विमानवाले कुछ कम २१ योजनरहित चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रको देखते हैं। गाथाके उत्तरार्धमें अवधिके विषयभूत द्रव्यको जाननेका क्रम कहते हैं—अपने अपने अवधिज्ञानावरण कर्मके द्रव्यमें एक बार ध्रुवहारका भाग देनेपर अपने क्षेत्रके प्रदेशमें से एक एक प्रदेश कम करते जाना चाहिए और यह कार्य तब तक करते जाना चाहिए, जब तक कि क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण घटते घटते समाप्त न हो जाय। इस प्रकार करनेके अनन्तर जो अनन्तभाग प्रमाण द्रव्य अवशिष्ट रहेगा वहाँ वहाँ उतना उतना ही द्रव्यका प्रमाण समझना चाहिए।

३ तिर्यङ्गगतिमें अवधिका उत्कृष्ट द्रव्य तैजस शरीरके द्रव्यप्रमाण है, क्षेत्र भी इतना ही है। अर्थात् तैजस शरीर द्रव्यके परमाणुप्रमाण आकाश प्रदेशोंसे जितने द्वीप, समुद्र व्याप्त किए जाय, उतना है। यह असरयात द्वीप समुद्रप्रमाण होता है ॥ १४ ॥

नरकगतिमें अवधिका जघन्य क्षेत्र एक कीस, उत्कृष्ट क्षेत्र एक योजन है।

उत्कृष्ट देशावधि मनुष्योंमें ही होता है। जघन्य देशावधि मनुष्य, तिर्यङ्चोंमें होता है। उत्कृष्ट देशावधिका क्षेत्र लोकप्रमाण है। यह प्रतिपाती होता है अर्थात् इसके धारकका भिष्यात्वादिकमें पवन सम्भव रहता है। परमावधि तथा सर्वावधि अप्रतिपाती होते हैं ॥ १५ ॥

४ परमावधिका क्षेत्र असत्यात लोकप्रमाण है जो अत्रिकायिक जीवोंकी सरयाप्रमाण है।

(१) गो० जी० गा० ४३०। (२) 'सक्खेत्ते य सक्कम्मे'—गो० जी० गा० ४३१।

(३) "तिरिआसुत्तृष्टदेशावधिदृश्यते तैजसशरीरप्रमाण द्रव्यम् । किमच तत् ? असख्येयसमु-  
 द्भागप्रदेशपरिच्छिन्नाभिरसंख्येयाभिल्लेज शरीरद्रव्यनर्गाभाभिनिवतित तावदसख्येयसफ धाननन्तप्रदेशान्  
 जानातीत्यर्थ ।"—स० २० पृ० ५७ । (४) "परमावधिदृश्यते काल प्रदेशाधिकलोककाकागप्रदेशावधृत-  
 प्रमाणा अविभागिता समयास्ते चार्थस्याता यन्तरा ।"—स० २० पृ० ५७ ।

तेजाकम्म सरीर तेजादव्व च भासदव्व च ( भासमणदव्व ) ।

घोद्धन्त्रमसखेज्जा दीगममुहा य वासा य ॥ ६ ॥

कालो (काले) चटुण्ह बुड्ढी कालो भजिदव्व खेत्तबुड्ढीए ।

उड्ढीय दव्वपज्जय भजिदव्व खेत्तकालो य ॥ ७ ॥

परमोधिमसखेज्जा लोगामेत्ताणि समय-कालो दु ।

रूवगट लभदि दव्व खेत्तोवममगणि-जीवेहि ॥ ८ ॥

पँशुनीस ज्ञोयणाण ओधी वँतरकुमारग्गणा ।

सरेज्जज्ञोयणाण जोदिसियाण जहण्होधी ॥ ९ ॥

अंसुराणमसखेज्जा जोजणकोडी सेसजोदिसताण ।

ससादीदसहस्सा उक्कस्सेणोधिविमयो दु ॥ १० ॥

सँकीसाणे पढम ठो चटु (निदिय) सणक्कुमार-माहिँदे ।

तच्चटु (तदिय तु) चम्हलतय सुक्कमहस्सारया चउत्थी ॥ ११ ॥ ✓

विशेष, आगामी पञ्च काण्डकोका द्रव्यकी अपेक्षा कथन है ।

चौदहवेंमें देशावधिके मध्यम विकल्परूप विस्त्रसोपचयसहित तेजस शरीररूप द्रव्य विषय है । षट्दहवेंमें विस्त्रसोपचयसहित कामाण शरीर स्कन्ध विषय है । सोलहवेंमें विस्त्र सोपचयरहित केवल तेजोवर्गणा विषय है । सत्रहवेंमें विस्त्रसोपचयरहित केवल भाषावर्गणा विषय है । अठारहवेंमें विस्त्रसोपचयरहित केवल मनोवर्गणा विषय है ।

तेरहवें, चौदहवें आदि काण्डकोमि असख्यातगुणित क्षेत्र तथा असख्यातगुणित काल है । अर्थात् चारहवें काण्डको काल तथा क्षेत्रसे असख्यातगुणित काल तथा क्षेत्र तेरहवें काण्डकम है । इसी प्रकार आगे जानना चाहिए ॥ ६ ॥

निशेषार्थ-ठनीसवें काण्डकमे एक समय कम पत्यप्रमाण काल है, सम्पूर्ण लोकाकाश क्षेत्र है ।

कालकी वृद्धि होनेपर द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावरूप चारों वृद्धियाँ होती हैं । क्षेत्रकी वृद्धि होनेपर कालकी वृद्धि मन्वीय है अर्थात् हो भी न भी हो । द्रव्य और भाव (पर्याय) की वृद्धि होनेपर क्षेत्र, काल की वृद्धि भजनीय है ॥ ७ ॥

परमावधिका काल एक समय अधिन लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण है, क्षेत्र असख्यात लोका-प्रमाण है, जो अग्निनाथिक जीवोंकी सख्याप्रमाण है । एक प्रदेशाधिक लोकाकाशप्रमाण इसका द्रव्य है ॥ ८ ॥

व्य-तरों तथा भवनवासी देवामे जघन्य क्षेत्र पचीस योजन प्रमाण है, ज्योतिषी देवोंका जघन्य क्षेत्र सख्यात योजन है । असुरकुमारोंका उत्कृष्ट क्षेत्र सख्यात फोटि योजन है । शेष नव भवनवासी तथा व्यन्तरों-ज्योतिषियोंका उत्कृष्ट क्षेत्र असख्यात हजार योजन है ॥९-१०॥

सौपरमद्विकका क्षेत्र प्रथम नरकपर्यन्त है । सात्तुमार माहेद्रका दूसरे नरकपर्यन्त है ।

(१) काले चउण्ण उट्ठा - गो० जी० गा० ४११ । (२) यह गाथा १६ वें नवरपर भा पाद आता है । वगनत्रमकी दृष्टिसे यह १६ वें नम्बरपर निशेष उपयुक्त प्रतीत होती है । (३) गो० जी० गा० ४२५ । (४) गो० जी० गा० ४३६ । (५) सफ़ासाणा पदम निदियं तु सणक्कुमार माहिँदा । तदिय तु चम्हलतय - गा० जी० गा० ४२९ । (६) त० रा० पृ० ५७ । (७) त० रा० पृ० ५७ ।

रविणामं देह ( देस ) विणास जणपदविणासं अट्टियुट्ठि अणावुट्ठि सुभिकर दुब्भिसरं खेमाखेम भयरोग उच्चम इच्चमं सभम वच-  
ण, णो अरत्तमाणाण जीवाणं जाणदि । जहण्णेण गाउदपुधत्त । उक्कस्सेण  
स अच्चमंतरादो, णो वहिद्धा । जहण्णेण दो तिणिण भग्गाहणाणि, उक्कस्सेण  
णाणि गदिरागदि पदुप्पादेदि ।

जुमति मन.पर्ययज्ञान 'वत्तमाणाण'-व्यक्तमनवाले ( सशय, विपर्यय, अनव्यवसाय-  
क ) अन्य जीवोंके एव अपने अथवा 'वत्तमाणाण'<sup>३</sup>-'वर्तमान' जीवोंके, वर्तमान  
त्रिकालसम्बन्धी पदार्थको जानता है । अनीत अथवा अनागत मनोगत पदार्थ  
जुमति नहीं जानता है । यह वर्तमान अथवा व्यक्तमनवाले जीवोंके जीवन, मरण  
जाम, सुख, दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि  
दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, भय, रोग, उद्भ्रम, इद्भ्रम तथा सभ्रमक  
है । यह श्रुजुमति जघन्यसे कोसपृथक्त्व, उत्कृष्टसे योजनपृथक्त्वके भीतर जानता है  
नहीं जानता है । कालकी अपेक्षा जघन्यसे दो तीन भव, उत्कृष्टसे सात आठ भव ग्रहण  
धी गति-आगतिका प्रतिपादन करता है ।

(१) "चतुर्गोपुरान्वित नगरम् । अगवगकलिगमगघादओ देसा णाम । देसस्स एगदेसो जणपओ णा  
सुरसेणकासिगाधारभावति आदओ । सस्यसम्भादिका वृष्टि सुवृष्टि । सालीवीहीअरगोधूमादिधाणा  
महत्त सुहिव्व णाम । अरादीणामभावो खेम णाम । परत्तकागमादओ भय णाम ।"-ध० टी० प० १२९६  
(२) उद्धृतमिदम्-"भागमे ह्युक्त मनसा मन परिच्छिद्य परेषा सहादीन् जानातीति ।"-त० राज  
० ५८ । "मणेण माणस पडिदिदइत्ता परेसि सण्णा-सदि-भदि-चित्ता-जीविद-मरण लाहालाह सुहदुक्क  
परविणास देसविणास जणवयविणास, रोडविणासं, कव्वडविणास, मडवविणास, पट्टणविणास दोणमु  
णासण अहवुट्ठि अणावुट्ठि सुवुट्ठि-दुवुट्ठि सुभिकरं दुभिकरं खेमाखेम भयरोगकालसञ्चये अत्थे वि  
दि ।"-ध० टी० प० १२५८ । "मणेण मदिणाणेण । कथ मदिणाणस मणववपसो ? क  
णणीवयारादो । मणम्मि भव लिग माणस । अथवा मणो चैव माणसो, पडिदिदइत्ता चेतूण पच  
णपत्रवणाणेण जाणदि । मदिणाणेण परेसिं मण चेतूण चैव मणपत्रवणाणेण मणम्मि हिदमत्थ जाणदि ।  
णिद होदि । एतो गियमो ण विउल्लमहस्स, अचित्तिदाण पि अट्टाण विस्संकरणादो ।"-ध० टी०  
(३) "व्यक्तमनसा जीवानामर्थं जानाति, नाव्यक्तमनसाम् । व्यक्त स्फुटीकृतोऽर्थश्चिन्तया सुनिर्वर्ति-  
रेस्ते जीवा व्यक्तमनसस्तरि चिन्तित श्रुजुमतिर्जानाति नेतरै ।"-त० रा० पृ० ५८ । (४) "वट्टम  
गभवग्गाहणेण विणा दोणि, तेण सह तीणि भग्गाहणाणि जाणदि ति ।"-ध० टी० । धव  
दोम में धीरसेन स्वामी उपरोक्त दोनों षडियों का समन्वय करते हुए लिखते हैं-"व्यक्त निष्-  
षयाविपर्ययानध्ययसायरहित मन वेया ते व्यक्तमनस तेया व्यक्तमनसा जीवाना परेषामात्मन  
सम्प्रधि वस्तवन्तर जानति, नाव्यक्तमनसा जीवाना सम्प्रधि वस्तवन्तरम्, तत्र तस्य सामर्थ्याभावात् । अथ  
परतमानाना जीवाना वर्तमानमनोगत त्रिकालसम्प्रधिचनमर्थं जानाति, नातीतानागतमनोविषयमिति  
-ध० टी० प० १२६० ।

रूपगद लभदि दव्व ऐचोवममगणिजीवेहिं ॥ १६ ॥

एव ओधिणाणापरणीयस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि ।

§ २. ज त मणपज्जणणापरणीय कम्मं वधतो (कम्म) त एयविध । तस्स दुग्धि-  
परूवणा—उज्जुमदिणाण चेय त्रिपुलमदिणाण चेय । य त उज्जुमदिणाण तं तिविध—उज्जुग  
५ मणोगद जाणदि । उज्जुग वचिगद जाणदि । उज्जुग कायगद जाणदि । मणेण माणस  
पडिविदहत्ता परेसि सण्णासदि मदिचिंतादि विजाणदि, जीविदमरणं लाभालाभ

परमावधिका काल समयाधिक लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण है । इसका द्रव्य प्रदेशाधिक लोकाकाश  
प्रमाण है । इसका असत्यात् चर्य प्रमाण होता है ॥ १६ ॥

विशेष—अवधि ज्ञानके जितने भेद कहे गए हैं, उतने ही अवधिज्ञानावरण कर्म के भेद हैं ।  
अवधिज्ञानना अवधिज्ञानावरण कर्मके साथ अविनाभाव सम्बन्ध है । अत श्रुतज्ञानके समान  
यहाँ भी अवधि ज्ञानके वर्णनद्वारा अवधिज्ञानावरणीय कर्मका वर्णन हुआ समझना चाहिए ।

इस प्रकार अवधिज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा हुई ।

### [ मनःपर्ययज्ञानावरणप्ररूपणा ]

§ २ यह जो मन पर्ययज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है । उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा  
है । एक ऋजुमतिज्ञान है, दूसरा विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है । जो ऋजुमतिज्ञान है, वह तीन  
प्रकारका है । वह सरल मगोगत पदार्थको जानता है । सरल वचनगत पदार्थको जानता है ।  
सरल कायगत पदार्थको जानता है । यह ऋजुमति ज्ञान मनसे—मतिज्ञानसे अन्य जीवके मनको  
अथवा मन स्थित पदार्थको ग्रहण करके मन पर्ययज्ञानके द्वारा अन्यकी सञ्ज्ञा (प्रत्यभिज्ञान)  
सृति, मति, चिन्तादिकी जानता है ।

विशेषार्थ—मनसे अर्थान् मतिज्ञानसे मनको अर्थान् मानसिक पदार्थको पर्यय—ग्रहण  
करना मन पर्यय ज्ञान है । मतिज्ञानको मन व्यपदेश हुआ । यहाँ मतिज्ञानरूप कार्यमे कारणरूप  
मनका उपचारसे व्यपदेश किया गया है । मतिज्ञान मनःपर्ययमे अवलम्बनमात्र है, कारण  
रूप नहीं है । जैसे आकाशमे स्थित चन्द्रदर्शनके लिए वृक्षकी शाखादिकी सीध का  
अवलम्बनमात्र लिया जाता है, चन्द्रदर्शनमे कारण नेत्रकी प्राप्ति है । इसी प्रकार मनोगतादि  
मात्रोंका परिज्ञान करनेमें मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम कारण है । मन अथवा  
मतिज्ञान अवलम्बनमात्र है । विपुलमति मन पर्ययज्ञान मनके द्वारा अचिन्तित अथवा  
अचिन्तित पदार्थको भा ग्रहण करता है ।

( १ ) "परूवणा णाम कि उच्च होदि ? आघादेवेहि सुणेसु जीवसमावेसु पञ्चचीसु पाणेसु सण्णासु  
गदीसु इदिएसु फापेसु बीगेसु वेदेसु कसापेसु णाणेसु सज्जेसु दसणेसु टेस्सासु भविएसु अमविएसु सम्मत्तेसु  
सण्णिससण्णासु आहारि-अगाहारीसु उरगगेसु च पञ्चपञ्चतविससणेहि रिसेसिउण जा जीव-परिकया सा  
परूवणा णाम ।"—च०टी०भा०२ पृ०४१२ । (२) "यथाऽग्ने च द्रमस पश्यति अग्रमपेधाकारणमात्र भवति  
न च चणुपदिचित्रितक चन्द्रशानस्य । तथाऽन्यदीपमनोऽप्यपेधाकारणमात्र भवति । परकीयमनसि व्यपरिथत  
मर्थं जानाति मनःपयः । ततो नास्य वदान्त प्रभव इति न मतिज्ञानप्रसङ्ग ।"—त० रा० पृ० ४८ ।

सुहृदुक्त्त णंगरविणास देह ( देस ) विणास जणपदविणास अदिबुद्धि अणावुत्ति  
सुउत्ति दुउत्ति सुभिससं दुम्भिससं सेमासेमं भयरोगं उच्चमं इच्चमं संभम व  
माणण जीवाण, णो अत्तमाणाण जीवाण जाणदि । जहण्णेण गाउदपुधत्त । उक्त्तसे  
जोजणपुधत्तस्स अच्चंतरादो, णो वहिद्धा । जहण्णेण दो तिण्णि भयग्गहणाणि, उक्त्तसे  
सत्तद्भयग्गहणाणि गदिरागदि पदुप्पादेदि ।

यह ऋजुमति मन पर्ययज्ञान 'वत्तमाणाण'-व्यक्तमनवाले ( सशय, विपर्यय, अनध्यवसा  
रहित मनयुक्त ) अन्य जीवोंके एव अपने अथवा 'वत्तमाणाण'<sup>१३</sup>-'वर्तमान' जीवोंके, वर्तमान  
मनसित्त त्रिकालसम्बन्धी पदार्थको जानता है । अतीत अथवा अनागत मनोगत पदा  
को यह ऋजुमति नहीं जानता है । यह वर्तमान अथवा व्यक्तमनवाले जीवोंके जीवन, म  
लाम, अलाम, सुख, दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, अतिबुद्धि, अनावृत्ति  
सुबुद्धि, दुर्बुद्धि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, मय, रोग, इद्भ्रम, इद्भ्रम तथा सभ्रम  
जानता है । यह ऋजुमति जघन्यसे फोसपृथक्त्व, उत्कृष्टसे योजनपृथक्त्वके भीतर जानता  
घाहर नहीं जानता है । कालकी अपेक्षा जघन्यसे दो तीन 'भव, उत्कृष्टसे सात आठ भव म  
सम्बन्धी गति-आगतिका प्रतिपादन करता है ।

- ( १ ) "चतुर्गोपुरान्वित नगरम् । अगवगकलिगमगघादओ देसा णाम । देसस्स एगदेसो जणउओ ।  
बहा रुरेणक्खाविगावारआवति आदओ । सस्यसग्गादिक्का वृष्टि सुउत्ति । सालीवीहीजरगोधूमादिघा  
सुलहत्त सुहिवत्त णाम । अरादीणामभावो खेम णाम । परच्चक्रागमादओ भय णाम ।"-ध० टी० प० १२५  
( २ ) उद्धृतमिदम्-"आगमे ह्युक्त मनसा मन परिच्छिद्य परेषा सञ्जादीन् जानातीति ।"-स० रा  
पृ० ५८ । "मणेण माणन पडिबिदइत्ता परेसि सण्णा-चदि मदि चित्ता-जीविद-भरण ह्याल्लाह सुहृ  
णपरविणास देसविणास जणवयविणास, रोडविणासं, कब्बडविणास, मडवविणास, पट्टणविणास दो  
विणासण अद्बुद्धि अणावुत्ति सुउत्ति-दुउत्ति सुभिससं दुम्भिससं सेमासेमं भयरोगकात्सजुत्ते अत्ते णि  
णदि ।"-ध० टी० प० १२५८ । "मणेण मदिणाणेण । कघ मदिणाणस्स मणवक्खो  
कारणोपपादादो । मणम्मि मन लिग माणस । अथवा मणो वेत्त माणसो, पडिबिदइत्ता घेत्तूण  
मणवज्जणाणेण जाणदि । 'मदिणाणेण परेसिं मण घेत्तूण चेव मणपजवणाणेण मणम्मि ह्दिदमत्थ जाणवि  
मणदि होदि । एसो णियमो ण विउल्लमहस्स, अचित्तिदण पि सट्ठाण विसइकरणदो ।"-ध० टी०  
( ३ ) "व्यक्तमनसा जीवानामर्थं जानाति, नाव्यक्तमनसाम् । व्यक्तं स्फुटीकृतोऽर्थंश्चिन्तया मुनिर्व  
येस्ते जोग व्यक्तमनसस्तेरर्थं चिन्तितं ऋजुमतिर्जानाति नेतरै ।"-स० रा० पृ० ५८ । ( ४ ) "व  
णमग्गहणेण विणा दोणि, तेण सह तीणि भयग्गहणाणि जाणदि चि ।"-ध० टी० ।  
टी० में बीरसेन स्वामी उपरोक्त दोनों वृत्तियों का समन्वय करते हुए लिखते हैं-"व्यक्त नि  
ययविपर्ययानभ्यरसापरहित मन येषां ते व्यक्तमनस, तेषां व्यक्तमनसा जीवानां परेषामान  
सम्बन्धि वस्तुन्तर जानाति, नाव्यक्तमनसा जीवानां सम्बन्धि वस्तुन्तरम्, तत्र तस्य सामर्थ्याभावात् ।  
वर्तमानानां जीवानां वर्तमानमनोगत त्रिकालसम्बन्धिचिन्तनमर्थं जानाति, नातीतानागतमनोविपर्ययि  
-ध० टी० प० १२६० ।



रूपगर्दं लभदि द्रव्यं खेत्तोवममगणिजीवेहिं ॥ १६ ॥

एव ओधिणाणापरणीयस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि ।

§ २ ज त मणपज्जवणाणापरणीय कम्म बधतो (कम्म) त एयविध । तस्म दुनिह परूवणा—उज्जुमदिणाण चेव विपुलमदिणाण चेव । य त उज्जुमदिणाण त तिनिध—उज्जुग मणोगद जाणदि । उज्जुग वचिगद जाणदि । उज्जुग कायगर्दं जाणदि । मणेण माणस पडिनिदडत्ता पेगसि सण्णासदि मदिचिंतादि विजाणदि, जीनिदमरण लाभालाभ

परमावधिना काल समयधिक लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण है । इसका द्रव्य प्रदेशाधिक लोकाकाश प्रमाण है । इसका असत्यात धर्म प्रमाण होता है ॥ १६ ॥

विशेष—अवधि ज्ञानके जितने भेद कहे गए हैं, उतने ही अवधिज्ञानावरण कर्म के भेद हैं । अवधिज्ञानना अवधिज्ञानावरण कर्मके साथ अविनाभाव सम्बन्ध है । अतः श्रुतज्ञानके समान यहाँ भी अवधि ज्ञानके वर्णनद्वारा अवधिज्ञानावरणीय कर्मका वर्णन हुआ समझना चाहिए ।

इस प्रकार अवधिज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा हुई ।

### [ मनःपर्ययज्ञानावरणप्ररूपणा ]

§ २ यह जो मन पर्ययज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है । उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा है । एक ऋजुमतिज्ञान है, दूसरा विपुलमति मन पर्ययज्ञान है । जो ऋजुमतिज्ञान है, वह तीन प्रकारका है । वह सरल मनोगत पदार्थको जानता है । सरल वचनगत पदार्थको जानता है । सरल कायगत पदार्थको जानता है । यह ऋजुमति ज्ञान मनसे—मतिज्ञानसे अन्य जीवके मनको अथवा मन स्थित पदार्थको ग्रहण करके मन पर्ययज्ञानके द्वारा अन्यकी सब्द्धा (प्रत्यभिज्ञान) सृति, मति, चिन्तादिकी जानता है ।

निशेपार्थ—मानसे अर्थात् मतिज्ञानसे मनको अर्थात् मानसिक पदार्थको पर्यय—ग्रहण करना मनःपर्यय ज्ञान है । मतिज्ञानको मन व्यपदेश हुआ । यहाँ मतिज्ञानरूप कार्यमे कारणरूप मनका उपचारसे व्यपदेश किया गया है । मतिज्ञान मनःपर्ययमे अवलम्बनामात्र है, कारण रूप नहीं है । जैसे आकाशमे स्थित चन्द्रदर्शनके लिए वृक्षकी शाखादिकी सीध का अपलम्बनमात्र लिया जाता है, चन्द्रदर्शनमे कारण नेत्रकी शक्ति है । इसी प्रकार मनोगतादि भावोंका परिज्ञान करनेमें मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम कारण है । मन अथवा मतिज्ञान अवलम्बनमात्र है । विपुलमति मन पर्ययज्ञान मनके द्वारा अचिन्तित अथवा अर्थचिन्तित पदार्थको भी ग्रहण करता है ।

(१) 'परूवणा णाम किं उच्च होदि ? ओपादेवेहि गुणेसु जीवसमासेसु पञ्चसीसु पाणेसु सण्णासु गर्दसु इदिणसु काणसु जोगेसु वेदेषु क्खणसु णाणसु सज्जेसु दसणेसु लेखासु भविणसु अभविणसु सम्भवेसु सभिससणीसु आहारि-अणहारिसु उज्जोगेसु च पक्खपज्जवणियसणेहि विसेसिऊण वा जीव-शक्तिवा मा परूवणा णाम । -ध०टी०भा०२ पृ०४१२ । (२) "यथाऽग्ने च त्रमस पत्येति अन्नमपेक्षाकारणमात्र भवति, न च चतुरादिवचिनर्तकं चन्द्रज्ञानस्य । तथाऽयदीयमनाप्यपेक्षाकारणमात्र भाति । परधीयमनसि व्यसिथित मये खनाति मन रयस" । तथा नारत वसतत्त प्रमत्त इति न मतिज्ञानप्रवृत्तः ।' -त० रा० पृ० ४८ ।

§ ४. य तं केवलणाणावरणीयं कम्म तं एयविधं । तम्म परूवणा कादव्वा भवदि । सय भगवं उप्पण्णणाणदरिसी संदेवासुरमणुसस्स लोगस्स अगदि-गट्ठिं चयणोपवाद वधं मोक्ख इद्दि जुदि अणुभाग तक्क कलं मणो-माणुसिक-भुत्तं कद पडिसेविदं आदिकम्म अरहकम्म सब्बलोगे सब्बजीवाणं सब्बभावे सम सम्म जाणदि ।

एव केवलणाणावरणिगस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि ।

### [ केवलज्ञानावरण-प्ररूपणा ]

§ ४ जो केवलज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है। उसकी प्ररूपणा की जाती है। जिनेन्द्र भगवान्को केवलज्ञान तथा केवलदर्शनही उपलब्धि हो चुकी है। ये स्वयं स्वर्गवासी देव, असुर<sup>३</sup> अर्थात् भवनरासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव, तिर्यश्च तथा मनुष्यलोककी गति, भागति, चयन, उपपाद, बन्ध, मोक्ष, श्रद्धि, युति (जीवादि द्रव्योंका मिलना) अनुभाग, तर्क, पत्रछेदनादि कला, मनजनित ज्ञान, मानसिक विषय, राज्यादि एव महाप्रतादिका पालन करना, श्रुति, कृत, प्रतिसेवित (त्रिकालमे पञ्चेन्द्रियोंके द्वारा सेवित), आदि कर्म, अनादिकर्म-अरह कर्मको, सर्वलोककमे, सर्वजीवोंके सर्वभावोंको युगपत् सम्यक् प्रकारसे जानते हैं।

विशेषार्थ—केवली भगवान् त्रिकालावच्छिन्न लोक-अलोकसम्बन्धी सम्पूर्ण गुण पर्यायोंसे समन्वित अनन्त द्रव्योंको जानते हैं। "ऐसा कोई ज्ञेय नहीं हो सकता है, जो केवली भगवान्के ज्ञानका विषय न हो। ज्ञानका धर्म ज्ञेयको जानना है और ज्ञेयका धर्म है ज्ञानका विषय होना। इनमे विषयविषयिभावर सम्बन्ध है। जन मति और श्रुतज्ञानके द्वारा भी यह जीव वर्तमानके सिवाय भूत तथा भविष्यत कालकी बातोंका परिज्ञान करता है, तब केवली भगवान्के द्वारा अतीत, अनागत, वर्तमान सभी पदार्थोंका ग्रहण करना युक्तियुक्त ही है। प्रतिबन्धक ज्ञानावरण कर्मके क्षय होने पर आत्मा सकल पदार्थोंका साक्षात्कार कर लेता है। जैसे प्रदीपका प्रकाशन करना स्वभाव है, उसी प्रकार ज्ञानका भी स्वभाव स्व तथा परका प्रकाशन करना है। यदि क्रम-पूर्वक केवली भगवान् अनन्तानन्त पदार्थोंको जानते तो सम्पूर्ण पदार्थोंका साक्षात्कार न हो पाता। अनन्तकाल व्यतीत होने पर भी पदार्थोंकी अनन्त गणना अनन्त ही रहती। आत्माको असाधारण निर्मलता होनेके कारण एक समयमें ही सकल पदार्थोंका ग्रहण होता है। जब ज्ञान एक समयमें सम्पूर्ण जगत्का या विश्वके तत्त्वोंका बोध कर चुकता है, तब आगे वह कार्यहीन

( १ ) "असुराश्च भवनवादिन देवानुवचन देशमर्षकमिति ज्यातिषा व्यन्तराणा तिरश्चा ग्रहण क्तव्यम् ।"—घ० टी० । ( २ ) "जीवादिदव्याण मेलण जुदी । पचच्चेद्यादि कला णाम । मणोअण्णिदणाण वा मणो उच्ये । रत्तमहव्यादिपरिपालण सुची णाम । पचदि इदिएदि तिसुवि कालेसु ज केविद त पडिसेविद णाम । आद्यकर्म आदिकम्म णाम, अत्यवजगपञ्जायमावेण सब्बेसि दव्याणमादि जाणदि चि मणिद होदि । रह अन्तरम् । अरह अनन्तरम् । अरह कर्म अरहस्सम त जानाति । सुद्धदव्याद्वियणयविसरण सब्बेसि दव्याणमगादिच जाणदि चि मणिद होदि ।"—घ० टी० प० १२७२ । ( ३ ) असुर व्यंतरोंके मेरुतिरोपस ज्ञापक होते हुए भी यहाँ सुरासे भिन्न असुर इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। इस कारण तिर्यच भी असुर शब्दके द्वारा दर्शित हुए हैं।—घ०टी० । ( ४ ) "संद्रव्यन्यायेषु केवलस्य ।"—त० सू० १।२९ ।

( ५ ) "न एउ श्लवमारस्य कश्चिद्गोचरोऽस्ति यत् क्रमेत्, तत्त्वभावान्तरप्रतिपेषात् ।

जो श्रेय कथमश स्यादसति प्रतिबधने । दाहोऽग्निर्दाहको न स्यादसति प्रतिबधने ॥"

—अष्टसह० पृ० ४९।५० ।

३. य त विउलमदिणाण त छट्ठिह-उज्जुग मणोगद जाणदि, उज्जुग वचिगद जाणदि, उज्जुग कायगद जाणदि, अणुज्जुग मणोगद जाणदि, एव वचिगद कायगद च । एव याव वत्तमाणाण पि जीराण जाणदि । जहण्णेण जोजणपुघत्त, उक्कस्सेण माणुसुत्तरसेलस्स अब्भतरादो, णो वहिद्धा । जहण्णेण सत्तट्ठमग्गहणाणि, उक्कस्सेण

५. अमखेज्जाणि भग्गहणाणि गदिरागादि पदुप्पादेदि ।

एव मग्गपज्जणणाणारणस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि ।

विशेषार्थ-यदि वर्तमान भवको ग्रहण करते हैं तो तीन भव होते हैं । यदि वर्तमानको छोड़ दिया जाय, तो दो भव होते हैं । इस कारण दो भव या तीन भव सम्य-धी कथनमें विरोध का सङ्काव नहीं रहता है । सात आठ भवकी गति-आगतिके विषय में भी यही समाधान है । वर्तमान भवकी सम्मिलित करनेपर आठ भव, उसको छोड़ने पर सात भव होते हैं ।

३ जो विपुलमति मन-पर्ययज्ञान है वह छह प्रकारका है । वह सरल मनोगत पदार्थको जानता है सरल चचनगत पदार्थको जानता है, सरल कायगत पदार्थको जानता है, कुटिल मनोगत पदार्थको जानता है, कुटिल चचनगत पदार्थको जानता है, कुटिल कायगत पदार्थको जानता है । यह वर्तमान जीव तथा अवर्तमान जीवोंके अथवा व्यक्तमनवाले तथा अव्यक्त मनवाले जीवोंके सुरादिको जानता है ।

इसका क्षेत्र जघन्यसे योजन पृथक्त्व, है । यह उत्कृष्टसे मानुपोत्तर पर्वतके अभ्यन्तर जानता है । बाहर नहीं जानता है ।

विशेषार्थ-मन पर्ययज्ञानका क्षेत्र ४-५ लाख योजन वर्तुलाकार न होकर खिण्डभ्भात्मक है, चौकोर रूप है । अत एव मानुपोत्तर पर्वतके बाहरके कोणमें स्थित विषयोंको भी विपुलमति ज्ञानवाला जानता है ।

फालकी अपेक्षा यह जघन्यमें सात आठ भव, उत्कृष्टसे असत्यात भवोंकी गति आगतिक प्ररूपण करता है ।

विशेष-शङ्का-इस मन पर्ययज्ञानावरण प्ररूपणामें मन पर्ययज्ञानका निरूपण क्यों किया गया ? ज्ञानमें कर्मत्वका सम-य कैसे होगा ?

समाधान-मनःपर्ययज्ञानावरणके द्वारा मन पर्ययज्ञान आयुत होता है । यहाँ आवरण किए जानेवाले ज्ञानमें आवरण अर्थात् मन पर्ययज्ञानावरणीय कर्मका उपचार किया गया है ।

इस प्रकार मन पर्ययज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा की गई ।

( १ ) "चित्तिमचित्तिम वा अद्वित्तिमणेयमेयगय । ओहिं वा विउलमदी ल्हिज्जण विजाणय पच्छा ॥ -गो० जी० गा० ४४८ । ( २ ) "णरलोपत्ति य वयण निक्कम्मणियामम ण वट्ठत्त । तग्गा वण्णपरदर भग्गजालेत्तमुदिद्ध ॥ -गो० जी० गा० ४५५ । ( ३ ) "दुगतिग्गभा हु धारर सत्तट्ठमग्गा इपति उक्कस्सा । अण्णवभग्ग हु अणरमसंखेज्ज विउलउक्कस्स ॥ -गो० जी० गा० ४५९ ।

तथा कादञ्चो । गोदस्स कम्मस्स दुवे पगदीओ । अंतराइगस्स कम्मस्स पंच पगदीओ ।  
एव पगदिसमुक्तित्ण समत्ता ।

§ ७. जो सो सच्चन्धो णोसच्चन्धो णाम तस्स इमो दुविहो णिदसो-ओघेण  
आदेसेण य । ओघे णाणतराइगस्स पच पगदीओ किं मच्चन्धो णोसच्चन्धो ?  
[ सच्चन्धो । ] दमणातरणीयस्स कम्मस्स किं सच्चन्धो णोसच्चन्धो ? सच्चाओ पगदीओ  
वधमाणस्स सच्चन्धो । तदूणवधमाणस्स णोसच्चन्धो । एवं मोहणीय-णामाण ।

गतिके सिवाय नामकर्मकी ये प्रकृतियों भी भेदयुक्त हैं । एवेन्द्रिय, दो इन्द्रिय,  
त्री-त्रीय, चौइन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय जाति । औदारिक, वैकियिक, आहारक, तैजस, कामाण  
शरीर । औदारिकादि रूप पञ्च वन्धन तथा पञ्च सघात । समचतुरस्र, न्यप्रोधपरिमण्डल,  
कुञ्ज, स्वाति, वामन, हुण्डक-सस्थान । औदारिक-शरीराङ्गोपाङ्ग, वैकियिक-शरीराङ्गो-  
पाङ्ग, आहारक-शरीराङ्गोपाङ्ग । वघ्नगृपभनाराच, वघ्ननाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलित,  
असम्प्राप्तासृपाटिका-सहनन । शुक्ल, कृष्ण, नील, पीत, लाल वर्ण । सुगन्ध, दुर्गन्ध । खट्टा, मीठा,  
चिरपिरा, कट्टु, कपायला रस । ठंडा, गरम, स्निग्ध, रुक्ष, हलका, भारी, नरम, फठोररूप-  
स्पर्श । नरक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देवगति-प्रायोग्यानुपूर्वी । प्रशरत-अप्रशरत विहायोगति । ये ६५  
उत्तर प्रकृतियों हैं, जो पिण्डरूप से १४ कही गई हैं । ६५ उत्तरभेदवाली पिण्ड प्रकृतियोंमें  
२८ भेदरहित अपिण्ड प्रकृतियों को जोइनेपर नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियों होती हैं ।

उद्यगोत्र नीचगोत्रके भेदसे गोत्रनर्म दो प्रकारका है ।

दान-लाभ-भोग-उपभोग तथा धीर्यान्तराय ये अन्तरायकी पाँच प्रकृतियों हैं । सच  
प्रकृतियों १४८ होती हैं ।

विशेष-इन कर्म प्रकृतियों के विशेष भेद किए जाँय, तो अनन्त भेद हो जाते हैं ।

इस प्रकार प्रकृति-समुत्कीर्तेन समाप्त हुआ

### [ सर्ववन्धनोसर्ववन्ध-प्ररूपणा ]

§ ७ जो सर्ववन्ध तथा नोसर्ववन्ध है, उसका ओध अर्थात् सामान्य और आदेश अर्थात्  
विशेषसे दो प्रकार निर्देश होता है ।

ओघसे ५ ज्ञानावरण तथा ५ अन्तरायकी प्रकृतियोंका क्या सर्ववन्ध है या नोसर्व वन्ध ?  
[ इनका सर्ववन्ध होता है । ]

निशेपार्थ-ज्ञानावरण अथवा अन्तरायके पञ्च भेदोंमें से अन्यतमका वन्ध होनेपर शेष  
चार भेदोंका नियमसे वन्ध होता है । सर्व भेदोंका वन्ध होनेके कारण इनका सर्ववन्ध  
कहा गया है ।

प्रज्ञ-दर्शनावरण कर्मका क्या सर्ववन्ध है या नोसर्ववन्ध है ?

उत्तर-सम्पूर्ण प्रकृतियोंके वन्ध करने वालेके सर्ववन्ध होता है । सर्व प्रकृतियोंमेंसे  
न्यून प्रकृतियोंके वन्ध करनेवालेके नोसर्ववन्ध है ।

मोहनीय तथा नाम कर्ममें दर्शनावरणके समान जानना चाहिए अर्थात् सर्व प्रकृतियोंके  
वन्ध करने वालेके सर्ववन्ध और कुछ न्यून प्रकृतियोंके वन्ध करनेवालेके नोसर्ववन्ध होता है ।

§ ५. दसणारणीयस्स कम्मस्स ण पगदीओ । वेयणीयस्स कम्मस्स दूधे पगदीओ । मोहणीयस्स कम्मस्स अट्टाणीसपगदीओ । आयुगस्स कम्मस्स चत्तारि पगदीओ । णामस्स कम्मस्स चादालीस बध-पगदीओ ।

§ ६ य त गदिणाम कम्म त चट्ठनिर्धं-णिरयगदि याप देवगदि त्ति । यथा पगदिभगो

हो जायगा' यह आशङ्का भी युक्त नहीं है, कारण फल द्रव्यने निमित्तसे तथा अगुरुलघुगुणके कारण समस्त वस्तुओंमें क्षण क्षणमें परिणमन परिवर्तन होता है। जो फल भविष्यत् था, वह आज वर्तमान बनकर आगे अतीतका रूप धारण करता है। इस प्रकार परिवर्तनका चक्र सदा चलनेके कारण ज्ञेयके परिणमनके अनुसार ज्ञानमें भी परिणमन होता है। जगत्के जितने पदार्थ हैं, उतनी ही केवलज्ञानकी शक्ति या मर्मादा नहीं है। केवलज्ञान अनन्त है। यदि लोभ अनन्तगुणित भो होता, तो केवलज्ञानसिन्धुमें वह सिन्दुतुल्य समा जाता। इस केवलज्ञानकी प्राप्ति मुर्यतासे ज्ञानावरणके क्षयसे होती है, किन्तु ज्ञानावरणके साथ दर्शनावरण तथा अन्तरायका भी क्षय होता है। इन तीन घातिया कर्मोंके पूर्व मोहका क्षय होता है। मोहक्षय हुए बिना केवल्यकी उपलब्धि नहीं होती है। उज्वल तथा डकड़ ज्ञानोंकी प्राप्तिके लिए मोहजरका निवारण होना आवश्यक है। अनन्त केवलज्ञानके द्वारा अनन्त जीव तथा अनन्त आकाशादिका ग्रहण होनेपर भी वे पदार्थ सात नहीं होते हैं। अनन्त ज्ञान अनन्त पदार्थ या पदार्थोंको अनन्त रूपसे बतता है, इस कारण ज्ञेय और ज्ञानकी अनन्तता अघाथित रहती है।

इस प्रकार केवलज्ञानावरण कर्मको प्ररूपणा हुई ।

### [ दर्शनावरणादिकर्म-प्ररूपणा ]

§ ५ दर्शनावरण कर्मकी चर प्रकृतियाँ हैं—चक्षु-अचक्षु-अवधि केवल-दर्शनावरण, निद्रा, निद्रा निद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला तथा स्त्यानगृद्धि ।

वेदनीय कर्मकी साता तथा असाता—ये दो प्रकृतियाँ हैं ।

मोहनीय कर्मकी अट्टाईस प्रकृतियाँ हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अमत्या स्त्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याग्यापाररण क्रोध, मान, माया, लोभ सञ्चलन क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यक्त्व मिथ्यात्व, मिथ्यात्व, हास्य, रति, अरति, शोक, मय, लुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुमकवेद ।

नरक, मनुष्य, तिर्यञ्च, देवायु ये आयु कर्मकी चार प्रकृतियाँ हैं ।

नाम कर्मकी बयालीस प्रकृतियाँ हैं—गति, जाति, शरीर, बन्धन, सघात, सस्थान, अज्ञोपाज्ञ, संहनन, वर्ण, रण्य, रस, स्पर्श, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, विहायोगति, त्रम-स्थावर, चादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय, यश कीर्ति-अयश-कीर्ति निर्माण और तोर्यङ्कर ।

§ ६ इस नामकर्ममें जो गति नामका कर्म है, उसके चार भेद हैं—नरकगति, देवगति, मनुष्य गति, तिर्यञ्चगति । इस प्रकार तिस प्रकृतिके जितने भेद हैं, उतने भेद समझ लेना चाहिए ।

१३. सादिय-बंधो णाम तत्थ इम अट्ठपदं एक्का वा छा वा पगदीओ वोच्छि  
णाओ सत्तिओ भूयो वज्झदि त्ति । एसो सादियबंधो णाम ।

§ १४ एव मूलपगदि-अट्ठपदमंगा काढव्वा । एदेण अट्ठपदेण दुविहो णिहेसो-  
ओघेण आदेसेण य । ओघेण पंचणाणावरण-णरटसणावरण-मिच्छत्त-सौलसकसाय-  
भय-दुगुच्छा-तेजा-कम्मइय-वण्ण०४-अगुरु०-उप०-णिमिण० पंचतराइयार्णं कि सादि० ५  
४ ? सादियबंधो वा० ४ । सादासाद सत्तणोकमाय-चदुआयु-चदुगदि-पचजादि-तिण्णि-  
सरीर-उत्सठाण-तिण्णि अगोवंग-उरसधडण-चत्तारि आणुपुच्चि परघादुस्सास-आदायुज्जोवं  
दोविहायगदि-तसादि-दमयुगल तित्थयरणीचुचागोदाण कि सादि० ४ ? सादिय-  
अद्धुबंधो ।

§ १५ एव अचक्खु० । भवसिद्धिं० धुवरहिदं । एव याव अणाहारग त्ति णेद्वं । ?

§ १३ सादि बन्धका यह अर्थपद है कि एक कर्म अर्थात् आयु कर्मका, छह कर्मोंका  
अर्थात् वेदनीयको छोड़कर शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र तथा अन्तराय  
रूप छह कर्मों का बन्ध व्युच्छिन्न होनेके पश्चात् पुन बन्ध होना सादिवन्ध है ।

विशेषार्थ-आयुका निरन्तर बन्ध नहीं होता है । आयुका बंध होकर रुक जाता है,  
पुन बन्ध होता है अत एव इसका सादिवन्ध कहा है । सदा बन्ध न होनेके कारण अध्रुव  
भी है । उपरान्त कपाय गुणस्थानमे जत्र कोई जीव पहुँचता है, तब ज्ञानावरण, दर्शनावरण,  
मोहनीय, नाम, गोत्र तथा अन्तरायका बन्ध रुक जाता है, वहाँ केवल साता वेदनीयका ही  
बंध होता है । जब वह जीव गिरकर सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमे आता है, तब ज्ञानावर-  
णादिका बन्ध पुन प्रारम्भ हो जाता है । इस कारण ज्ञानावरणादिना सादिवन्ध कहा गया है ।

§ १४ इस प्रकार मूल कर्मप्रकृतिके अर्थपदभग ( प्रयोजनभूत पदोंके भङ्ग ) करना चाहिए ।  
इस अर्थपदसे इम बातको लक्ष्यमें रखते हुए अर्थात् ओघ तथा आवेग द्वारा दो प्रकार  
निर्देश करते हैं ।

ओघका अर्थ सामान्य तथा आवेशवा अर्थ विशेष है । ओघसे ५  
ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा तेजस, कामाण, वर्ण, ४  
अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके क्या सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव ये चारों  
बन्ध होते हैं ? सादि, अनादि ध्रुव अध्रुव बन्ध होते हैं ।

साता असाता भय जुगुप्सा विना उनीकपाय, ४ आयु, ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, इमस्थान,  
३ आहोपाह्न, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, २ विहाययोगति, त्रसादि  
दस युगल तीर्थङ्कर, नीचगोन, उच्चगोन इनके क्या सादि आदि चार बन्ध होते हैं ? सादि  
तथा अध्रुव बन्ध है ।

§ १५ ऐसा अचक्खु दर्शनमें जानना चाहिए । भव्यसिद्धिर्विमें ध्रुव भग नहीं है ।  
अनाहारवपर्यन्त ऐसा जानना चाहिए ।

(१) 'सादी अबंधवचे सेदि अणाहृदगे अणादी हु । अमवसिद्धिहि ध्रुवो भवसिद्धे अद्दुवो बंधो ॥'

(२) 'पादितिमि-उक्कसायाम तेजगुण दुग णिमिण-वण्णचओ । सरोत्ताल्लुवाण चदुघा सेसाणय च दुघा ॥'

—गो० कर्म० गा० १०३-१२४ ।

वेयणीय आयु-मोदाण किं मन्वन्धो णोसन्वन्धो ? णोसन्वन्धो ।

§ ८ एव यान अणाहारगत्ति, णवरि अणुदिसादि यान सन्वृत्ति दंमणावरणीयमोहणीयाण णोसन्वन्धो । एदेण चीजेण णेद्व्व ।

§ ९, एव उक्कस्स-वधो अणुक्कस्स-वधोपि णेद्व्व ।

§ १०. यो सो जहण्णवधो अजहण्णवधो णाम तस्स इमो दुविहो णिदेसो । ओषेण आदसेण य । णाणतराइगस्स पचविहस्स किं जहण्णवधो, अजहण्णवधो ? अजहण्णवधो । दसणावरणीय-मोहणीय णामाण वि किं जहण्णवधो, अजहण्णवधो ? जहण्णवधो वा अजहण्णवधो वा । वेदणीय-आयु-मोदाण किं जहण्णवधो अजहण्णवधो ? जहण्णवधो ।

§ ११ एव यान अणाहारगत्ति णेद्व्व ।

§ १२ यो सो सादिय-वधो अणादिय वधो ष, तस्स इमो दुविहो णिदेसो । ओषेण आदसेण य ।

वेदनीय, गोत्र तथा आयुर्कर्म कया सर्वबन्ध है, अथवा नोसर्वबन्ध है ? नोसर्वबन्ध है ।

विशेषार्थ—साता, असाता वेदनीय, उष, नोच गोत्र इन युगल्लोमसे किसी एकका बन्ध होगा तथा अथवा अन्ध होगा । इसी प्रकार आयुचतुष्टयमेंसे अथतमका बन्ध होगा, शेषका अबन्ध होगा । इसलिए वेदनोय, गात्र तथा आयुका नोसर्वबन्ध कहा है ।

§ ८ आदेशसे यह क्रम अनाहारक पर्यन्त जानना चाहिए । विशेषता यह है कि अनुदिशसे सर्वाथसिद्धिपर्यन्त देवोम दशनावरण तथा मोहनीयका नोसर्वबन्ध होता है । इस कथन को आगे भी अथ मार्गणाओंमें सर्व नोसर्वबन्धका बीजभूत समझना चाहिए ।

### [ उत्कृष्टबन्ध अनुत्कृष्टबन्ध प्ररूपणा ]

§ ९ इसी प्रकार उत्कृष्टबन्ध तथा अनुत्कृष्टबन्धमें भी जानना चाहिए ।

विशेष—सर्वबन्ध नोसर्वबन्धमें ओष तथा आदेशसे जैसा वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए ।

### [ जघन्यबन्ध-अजघन्यबन्ध प्ररूपणा ]

§ १० जो जघन्यबन्ध तथा अजघन्यबन्ध है, उसका ओष तथा आदेशसे दो प्रकारसे निर्देश करते हैं । ५ ज्ञानावरण, ५ अतरायना कया जघन्यबन्ध है या अजघन्यबन्ध है ? अजघन्यबन्ध है । श्रानावरण, मोहनीय तथा नामकर्मका कया जघन्यबन्ध है या अजघन्यबन्ध ? जघन्यबन्ध है तथा अजघन्यबन्ध है । वेदनीय, आयु तथा गोत्रका कया जघन्यबन्ध है या अजघन्यबन्ध ? जघन्यबन्ध है ।

§ ११ अनाहारक मार्गणापर्यन्त इमी प्रकार जानना चाहिए ।

### [ सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्ध प्ररूपणा ]

§ १२ जो सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवबन्ध है उसका ओष तथा आदेशसे दो प्रकारका निर्देश है ।

(१) 'सादि अनादी ध्रुव अध्रुवो य वधो दु कम्मलककस्स ।

तद्विधो सादिय उषो लणादि ध्रुव वेत्तगो जाऊ ॥'-गो० कर्म० गा० १२२ ।

१३. सादिय-बंधो णाम तत्थ इमं अट्ठपदं एका वा छा वा पगदीओ वोच्छि

णाओ मतिओ भूयो वज्झदि ति । एसो सादियबंधो णाम ।

§ १४ एव मूलपगदि-अट्ठपदमंगा कादव्वा । एदेण अट्ठपदेण दुनिहो णिहेसो-  
ओघेण आदेसेण य । ओघेण पचणाणापरण-णपदसणापरण-मिच्छत्त-सोलसकसाय-  
भय दुगुंछ्छा-तेजा-कम्मइय-वण्ण०४-अगुरु०-उप०-णिमिण० पचंतराडयाणं कि मादि० ५  
४ ? सादियबंधो वा० ४ । सादासाद सत्तणोरुमाय-चदुआयु चदुगदि-पंचजादि-तिणिण-  
सरीर-छत्सठाण-तिणिण अगोवग-छत्सषडण-चत्तारि आणुपुच्चि-परवादुस्सास-आदायुज्जोत्र  
दोविहायगदि-त्सादि-दसयुगल तित्थयण णीचुचागोदाणं किं सादि० ४ ? सादिय-  
अद्घुवबंधो ।

§ १५ एवं अचक्खु० । भवसिद्धिं० धुररहिद । एव याव अणाहागं ति णेद्रव्व । १०

§ १३ सादि बन्धका यह अर्थपर है कि एक कर्म अर्थात् आयु कर्मका, छद् कर्मका  
अर्थात् वेदनीयको छोड़कर शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र तथा अन्तराय  
रूप छद् कर्मों का बन्ध व्युत्पन्न होनेके पश्चात् पुन बन्ध होना सादिबन्ध है ।

विशेषार्थ-आयुका निरन्तर बन्ध नहीं होता है । आयुका बन्ध होकर रुक जाता है,  
पुन बन्ध होता है अत एव इसका सादिबन्ध कहा है । सदा बन्ध न होनेके कारण अधुव  
भी है । उपशान्त कपाय गुणस्थानमे जब कोई जीव पहुँचता है, तब ज्ञानावरण, दर्शनावरण,  
मोहनीय नाम, गोत्र तथा अन्तरायका बन्ध रुक जाता है, यहाँ केवल साता वेदनीयका ही  
बन्ध होता है । जब वह जीव गिरकर सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमे आता है, तब ज्ञानावर-  
णादिका बन्ध पुन प्रारम्भ हो जाता है । इस कारण ज्ञानावरणादिका सादिबन्ध कहा गया है ।

§ १४ इस प्रकार मूल कर्मप्रकृतिके अर्थपदभग ( प्रयोजनभूत पदोंके भङ्ग ) करना चाहिए ।  
इस अर्थपदसे इस वातको लक्ष्यमें रखते हुए अर्थात् ओघ तथा आदेश द्वारा दो प्रश्न  
निर्दिष्ट करते हैं ।

ओघका अर्थ सामान्य तथा आदेशका अर्थ विशेष है । ओघसे ५  
ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा तेजस, कर्मान बर्ग, ४  
अगुरुलघु उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके क्या सादि, अनादि, ध्रुव, अद्घुवरे चारों  
बन्ध होते हैं ? सादि, अनादि ध्रुव अधुव बन्ध होते हैं ।

साता असाता भय जुगुप्सा विना ७नोकपाय, ४आयु, ४ गति, ५ जाति, ३ अज्ञान-अज्ञान,  
३ आहोषाह, ६ सहनन, ४ आयुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, २ विनाश-वसादि  
दस युगल तीर्थङ्कर, नीचगोत्र, उच्चगोत्र इनके क्या सादि आदि चार बन्ध हैं ? सादि  
तथा अधुव बन्ध है ।

§ १५ ऐसा अचक्षु दर्शनमें जानना चाहिए । भवसिद्धिके लक्ष्यमें ही है ।  
अनाहारकपर्यन्त ऐसा जानना चाहिए ।

(१) 'सादी अचक्षुवधे वेदि अगारुग्गे अणादी हु । अमनसिद्धिं अद्घुवरे चारों बन्ध हैं ।

(२) 'सादितिमि-उक्त्वापामर तेजगुरु-दुग णिमिण-वणचभो । सत्तणोरुमाय-चदुआयु चदुगदि-पंचजादि-तिणिण-  
सरीर-छत्सठाण-तिणिण अगोवग-छत्सषडण-चत्तारि आणुपुच्चि-परवादुस्सास-आदायुज्जोत्र दोविहायगदि-त्सादि-दसयुगल तित्थयण णीचुचागोदाणं किं सादि० ४ ? सादिय-  
अद्घुवबंधो ।

शेष

रूपादिक



§ १६. यो सो वधसामित्वविचयो णाम तस्त इमो [ दुविहो ] णिदेसो ओघेण आदेसेण य । ओघेण चोद्दस-जीवसमासा णाट्त्वा भवति । त यथा मिच्छादिद्वि यान अजोगिकेणलित्ति । एदेसिं चोद्दस-जीवसमासाण पगदिनघयोच्छेदो कादच्चो भवदि ।

[ वन्धस्यामित्वविचय-प्ररूपणा ]

§ १६ जो वन्धस्यामित्वविचय द्वै-लसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निदेश करते हैं । ओघसे-मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगकेवली पर्यंत चौदह 'जीवसमास-गुणस्थान होते हैं । इन चौदह जीवसमासो-गुणस्थानोंमें प्रकृतिनघकी व्युत्पत्ति कहना चाहिए ।

गुणस्थान	रध व्युत्पत्तिमास प्रकृतियाँ	निरण
मिथ्या	१६	मियात्य, हुण्डसस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्तासुपाटिकावहनन, एकेन्द्रिय, स्थानर, आताप, सूक्ष्मत्रय, विकलेन्द्रिय, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु ।
सासादन	२५	४ अनतानुबन्धी, स्थाननिक, दुभगत्रिन, सस्थान ४, सहनन ४, दुगमन, स्त्रीवेद, नीचगोन, तियन्नगति, तियन्नानुपूर्वी, उचोत, तियन्नायु ।
मिथ	०	×
अनिरत	१०	अप्रत्याख्यानावरण ४, वन्नृपमसहनन, औदारिकशरीर, औदारिक आगोपाग, मनुष्यद्विक तथा मनुष्यायु ।
देशनिरत	४	प्रत्याख्यानावरण ४ ।
प्रमत्त सयत	६	अरियर, अशुभ अयाता, अयज्ञकीर्ति, अरति, शोक ।
अप्रमत्तसयत	१	देगायु ।
अपूर्वकरण	३६	निद्रा प्रचला ये प्रथम भागमें । उठवेंमें तीर्थकर, निमाण, प्रगल विहायोगति, पचेन्द्रिय, तैनस, कामाण, आहारद्विक, समचतुरस्र स्थान, सुरद्विक वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आगोपाग, वण ४, अगुरुल्लु, उपपात, परपात, उठ्वाव, त्रस, बादर, पयास, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुखर, आदेय । चरमें हाथ रति भय जगुण्वा ।
अनिनुत्तिकरण	५	प्रथम भागमें पुरुषवेद दूसरेमें स० शोध, ३ रेमें स० मान, ४ श्रेमें स० माया, ५वेंमें स० लोम ।
सुखसाध्यगण	१६	५ शानावरण, ४ दशानारण ५ अन्तराय, यज्ञ कीर्ति, उन्नगोत्र
उपचातकपाय	०	×
धीगमाह	०	×
सयोगकेवली	१	सावावेदनीय ।
अयागकेवली	०	×
	१२०	गो० क० गा० ९४-१०२ ।

( १ ) "एत्तो इमेसिं चोद्दसद् जीवसमासाण मग्गणद्वयाए तथ इमाणि चोद्दस चेन द्वायाणि णायवाणि भवन्ति । जीवा समस्यन्ते एत्थिति जीवसमासा । तेया चतुदशानां जीवसमासाना चतुदशगुणस्थाना-नामित्थ ।"—ध० टी० भा० १ पृ० ९१, १३१ ।

§ २९. मणुसायुगम्भ को बंधको को अवधको ? मिच्छादिदृष्टि-सामणसम्मादिदृ-  
ष्टि-असज्जद० बंधा । एदे बंधा अनसेसा अनंधा ।

§ ३०. देवा० मिच्छादि० सासण० असज्जदम० मज्जदासंजद-पमत्तसंजद-अप्प-  
मत्तसंजद० । अप्पमत्तमज्जदद्वाए सखेज्जदिभाग गंतूण उधो वोच्छिज्जदि । एदे उग  
अनसेसा अनंधा ।

§ ३१. देवगदि० पंचिदि० वेगुव्वि० तेजाकम्म० समचदु० वेउव्वियं अंगोउग-वण्ण० ४  
देवाणु० अगुरु० ४ पमत्थनिहायगदि० थीग ( थिर ) सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज०  
णिमिण को बंधको को अनंधको ? मिच्छादिदृष्टि याव अपुच्चकरण० उनसमा सवा  
उधा० । अपुच्चकरणद्वाए सखेज्ज भागं गंतूण उधो वोच्छिज्जदि । एदे उधा अनसेमा  
अनंधा ।

§ ३२. आहारमरीर-आहारमरीरगोउगण को उधको को अवधको ? अप्पमत्त-  
अपुव्वकरणद्वाए सखेज्जभाग गंतूण उधो वोच्छिज्जदि । एदे उधा अनसेमा अनंधा ।

§ ३३. तित्थयरस्म को उधको, को अनंधो ? असज्जदमम्मादृष्टि याव उपुच्चकरण०  
बंधा० । अपुच्चकरणद्वाए सखेज्जभाग गंतूण० । एदे उंधा अनसेमा अनंधा ।

§ ३४. कदिहि कारणेहि जीना तित्थयरणाभागेदकम्म बंधदि ? तत्थ डमेणाहि १५  
सोलसकारणेहि जीना तित्थयरणाभागेदं कम्म बंधदि । दसणानिसुज्जदाए,

§ २९ मनुष्य आयुका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टि, सासादन तथा  
असयतसम्यक्त्वी बन्धक हैं । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ।

§ ३० देवायुका कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टि, सासादन, असयतसम्यक्त्वी, सय-  
तासयत, प्रमत्तसयत, अप्रमत्तसयत बन्धक हैं । अप्रमत्तसयतके समयके सत्यातर्वे भाग धीतने-  
पर बन्धकी व्युत्तिष्ठति होती है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ।

§ ३१ देवगति, पचेन्द्रिय वैक्रियिकशरीर, तेजस, कार्माण समचतुरस्रमस्थान, वैक्रियिक आगो-  
पाग, वर्ण ४, देवानुपूर्वो, अगुरुलु ४, प्रगस्तनिहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्सर, आदेय,  
निर्माणका कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे छेकर अपूर्वकरण गुणस्थानके उपशमक  
क्षपकपर्यंत बन्धक हैं । अपूर्वकरणके सत्यातर्वे भाग धीतनेपर बन्धकी व्युत्तिष्ठति होती है ।  
ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ।

§ ३२ आहारक शरीर, आहारक आहोपाह्नका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ?  
अप्रमत्त, अपूर्वकरणके सत्यातर्वे भाग धीतनेपर बन्धकी व्युत्तिष्ठति होती है । ये बन्धक  
हैं, शेष अबन्धक हैं ।

§ ३३ तीर्थङ्करप्रवृत्तिना कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? असयत सम्यग्दृष्टिसे अपूर्व-  
करणपर्यंत बन्धक हैं । अपूर्वकरणके सत्यातर्वे भाग धीतनेपर बन्धकी व्युत्तिष्ठति होती है ।  
ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं ।

§ ३४ शङ्का-नितने कारणोंसे जीव तीर्थङ्कर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है ?

समाधान-इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थङ्कर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है ।

इसघडण गिरयगदिपाओग्गाणुपुञ्जि-आदान यावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधारणाण को बधगो, को अनधो ? मिच्छादिट्ठी बंधा अनसेसा अनधा ।

§ २३. अपचक्राणानरण० ४-मणुसगदि-ओरालियसरीर-ओरालियअगोवगवजरिसि हमघडण-मणुसगदिपाओग्गाणुपुञ्जिण को बधको, अवधो ? मिच्छादिट्ठिपहुडि ५ याव जसजद० बधा । एदे बधा अनसेसा अनधा ।

§ २४ पचक्राणानरणीय० ४ को बधको, को अनधो ? मिच्छादिट्ठि याव सज दासजदा बधा । एदे नधा अनसेसा अनधा ।

§ २५ पुदिसवेद कोध० मज० को बधको को अनधो ? मिच्छादिट्ठि याव अणियट्ठिउचममा सधा बधा । अणियट्ठिनादरद्दाए = सखेज्जभाग गतूण वोच्छिज्जदि ।  
१० एदे नधा जवसेसा अवधा ।

§ २६ एव माणमायसजलणाण । गजरि सेसे सेसे सखेजाभाग गतूण बधा । एदे बधा अनसेसा अनधा ।

§ २७ एव लोभसजलणस्स । गजरि अणियट्ठिअद्धाए चरिमसमय गतूण बधो (०) । एदे व० अवसेसा अव० ।

१५ § २८. हस्सरदिभयदुगुच्छाण को बधगो ? मिच्छादिट्ठि याव अपुञ्चकरण-उवसमा समा (समा) बधा । अपुञ्चकरणद्धाए चरिमसमय गतूण बधो वोच्छिज्जदि । एदे नधा अनसेसा अनधा ।

सहनन, नरन्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्यावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त तथा साधारणका बौन बधक, कौन अनन्धक है ? मिथ्यादृष्टि बधक है । शेष अनन्धक हैं ।

§ २३ अपत्याप्यानावरण ४, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, यज्ञवृष भाराच संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का बौन बधक है ? कौन अनन्धक है ? मिथ्या दृष्टिसे लेकर असयत सम्यन्तवीपर्यन्त बन्धक है । शेष अनन्धक हैं ।

§ २४ प्रत्याप्यानावरण ४ का बौन बन्धक अनन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासयत पर्यन्त बधक है । ये बधक हैं, शेष अनन्धक हैं ।

§ २५ पुरुषवेद, संजलन क्रोधका कौन बन्धक, अनन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनि वृत्तिकरणमें लपसमक क्षपक पर्यन्त बन्धक हैं अनिवृत्तिवादर्से कालके सग्यात भाग धीतने पर व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक हैं, शेष अनन्धक हैं ।

§ २६ मान-भाया-सजलनमे भी यही धात जाननी चाहिए । विशेष यह है कि शेष शेषके सख्यात भाग धीतनेपर्यन्त बन्ध होता है । ये बधक हैं । शेष अबधक हैं ।

§ २७ इसी प्रकार सज्जटन लोभमे है । विशेष-अनिवृत्तिकरणके कालके चरम समयपर्यन्त बध होता है । ये बधक हैं, शेष अनन्धक हैं ।

§ २८ हास्य रति, भय, जुगुप्साका बौन बन्धक है ? मिथ्यात्वसे लेकर अपूर्वकरणके उपश मच तथा क्षपकपर्यन्त बन्धक हैं । अपूर्वकरणसे चरम समयके धीतने पर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बधक हैं, शेष अनन्धक हैं ।

तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध नहीं करते हैं। ऐसी स्थितिमें उत्पन्न होने वाली शङ्काके निराकरणके लिए भूतबली स्वामीने कहा है कि इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थङ्कर नामगोत्रका बन्ध करते हैं।

तीर्थङ्करके बन्धका प्रारम्भ मनुष्यगतिमें ही होता है, इस बातका परिज्ञान करानेके लिए सूत्रमें 'तत्थ' शब्दका ग्रहण किया है।

शङ्का—तीर्थङ्करके बन्धका प्रारम्भ अथ गतियोंमें क्यों नहीं होता है ?

समाधान—तीर्थङ्करप्रकृतिमें सहजारी कारण केवलज्ञानसे उपलक्षित जीवद्रव्य है।

उसके बिना बन्धका प्रारम्भ नहीं होता। मनुष्यगतिमें केवलज्ञानसे उपलक्षित जीव पाया जाता है। इससे मनुष्यगतिमें ही बन्धका प्रारम्भ कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यगतिमें केवलज्ञान उत्पन्न होकर तीर्थङ्करप्रकृति पूर्ण विकसित हो अपना कार्य कर सकती है अन्य गतिमें यह बात नहीं है। अतः तीर्थङ्करप्रकृतिका अङ्कुरारोपण मनुष्यगतिमें ही होता है।

पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा इस प्रकृतिके बन्धके कारण सोलह षट्हे गए हैं। द्रव्यार्थिक नयका प्रबलम्बन करनेसे एक कारण भी इसके बन्धका हेतु है, दो भी कारण होते हैं, अतः सोलह ही होते हैं या नहीं इस सशयके निवारणके लिए सोलह कारणोंकी गणना सूत्रमें की है।

इन भावनाओंके स्वरूपपर वीरसेनाचार्यने धवलाटीकामें अच्छी तरह विशद विवेचन किया है। उसका मर्म इस प्रकार है—

दर्शनविशुद्धता—यह भावना सोलह कारण भावनाओंमें प्रथम सगृहीत की गई है। इसका भाव तीन मूढता तथा अष्टमलरहित निर्मल सम्यग्दर्शन का लाभ हाना है।

शङ्का—यदि इस एक ही भावनासे तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध होता है, तो सभी सम्यक्त्वकी जीव उसका बन्ध क्यों नहीं करते ?

समाधान—शुद्ध नयसे मात्र तीन मूढता तथा अष्टमलोंसे व्यतिरिक्तपना ही दर्शनविशुद्धता नहीं है, इसके साथ ही साथ साधु प्रासुक परित्यागता, साधु समाधि सधारणता, साधुवैयावृत्त्य युक्तता, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावनता, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगयुक्तता आदिका भी समावेश होना आवश्यक है। इस प्रकार अन्य भावनाओंका भी समग्र करनेवाली दर्शनविशुद्धता तीर्थङ्करका बन्ध करती है।

विनयसम्पन्नता भी तीर्थङ्करकर्मकी बाँधती है। विनयके ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रिकी अपेक्षा तीन भेद हैं। ज्ञानविनयमें अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, बहुश्रुतभक्ति और प्रवचनभक्ति सगृहीत है। दर्शनविनयका अर्थ है प्रवचनोपदिष्ट सम्पूर्ण तत्त्वोंका श्रद्धान तथा त्रिमूढता और अष्टमलका त्याग करना। इसमें अरहन्तसिद्धभक्ति, क्षणलवप्रतिबोधनता, लक्ष्मि-सवेगसम्पन्नता तथा प्रवचनप्रभावनताका सद्भाव पाया जाता है। चरित्र विनयमें शीलमतेपु-निरतिचारिता, आवश्यकपेु अपरिहीनता, यथाशक्ति तप, साधु प्रासुक परित्यागता, साधु-समाधि-सन्धारणता, साधुवैयावृत्त्य योगयुक्तता, प्रवचनवत्सलता सगृहीत है। इस प्रकार अनेक भावनाओंसे समन्वित एक विनयसम्पन्नता रूप भावना तीर्थङ्कर नामकर्मका बन्ध करती है। यह दर्शन तथा ज्ञानकी विनय देव तथा नारकियोंमें कैसे सम्भव हो सकती है ? इससे इसे मनुष्योंमें ही कहा है।

(१) 'अण्गदीप्तु कि ण पारभो होदिति धुणे ण होदि, केवल्लाणोवलक्किणयजीवदवसहकारि कारणस तित्थपर-णामकम्मबधपारंभस तेण विणा उद्धरत्तिविरोहादो।'—ध० टी० प० ५३९।

त्रिणयसपण्णदाए, सीलउदेसु गिरदिचारदाए, जात्रामएसु अपरिहीणदाए, खणलउ  
 पडिमज्झ( बुज्झ )णदाए, लद्धिसवेगसपण्णदाए, यथा छामे ( यामे ) तथा  
 तवे, सामाण समाधिमधारणदाए, मामाण वेज्जाउचजोगयुत्तदाए, सामाण पासु  
 गपरिच्चागदाए, अरहतभत्तीए, बहुसुदभत्तीए, पयणभत्तीए, पयणउच्छदाए,  
 ५ पयणपमात्रणदाए, अभिन्सण णाणोपयुत्तदाए । एदंहि सोलसेहि कारणेहि जीवो  
 तित्थयरणामागोद कम्म वधदि ।

दर्शनविशुद्धता, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेषु-निरतिचारता, आनन्दयत्नेषु अपरिहीनता, क्षण-  
 लउ प्रतिबोधनता, लद्धिसवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधुसमाधिसन्धारणता, वैवाहृत्ययोग  
 युक्तता, साधु-प्राप्तुरुपरित्यागता, अरहन्त्वभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता,  
 प्रवचनप्रभावनता, धर्मोक्षणज्ञानोपयोगयुक्तता, इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थङ्कर नाम  
 गौत्र कर्मका बन्ध करता है ।

त्रिगोपार्य-यहाँ यह शङ्का उत्पन्न होती है, कि जब अथ कर्मोंके बन्धके कारण नहीं बताए  
 गए, तब तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धने कारणोंका सूत्रकारने क्यों पृथक् रूपसे उल्लेख किया है ?

इसके समाधानमें धीरसेनाचार्य धधलाटोकामे लिखते हैं कि तीर्थङ्करके बन्धके कारण  
 ज्ञान न होनेसे उनका पृथक् उल्लेख करना उचित है । उसके बन्धका कारण मिथ्यात्व नहीं  
 है, कारण मिथ्याची जीवके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बंध नहीं होता । सम्यग्दृष्टिके ही तीर्थङ्कर  
 प्रकृतिका बन्ध होता है । असयम भी बंधका कारण नहीं है, क्योंकि सयमी जीव भी उसके  
 बंधक होते हैं । कपाय भी बंधका कारण नहीं है, कारण कपायके होते हुए भी इसके बन्धका  
 विच्छेद देया जाता है अथवा बंधका आरम्भ भी नहीं होता है । कदाचित् मन्द कपायको  
 बन्धका कारण कह तो यह भी नहीं बनता है, कारण तीव्र कपाययुक्त नारकियोंमें भी तीर्थङ्कर  
 प्रकृतिका बंध देया जाता है । तीव्र कपाय भी उसका कारण नहीं है, क्योंकि मन्द कपाय  
 वाले सर्वाभिहित्तिके देवा और अपूर्णकारणगुणस्थानवालोंमें भी उसका बंध होता है । बंधका  
 कारण कदाचित् सम्यक्त्वको कहे, तो यह भी ठीक नहीं है । सम्यग्दर्शन होते हुए भी  
 बंधना कहीं कहीं अभाव देया जाता है । यदि दर्शनकी निर्मलताको कारण कहे तो दर्शन  
 मोहके क्षय करनेवाले सभी व्यक्तियोंके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बंध होना चाहिए था, किन्तु ऐसा भी  
 नहीं है । अतः दर्शनकी शुद्धता भी कारण नहीं है । कार्यकारणभावका नियम तो तब  
 बनता है, जब कारणके होनेपर नियमसे कार्य बन जाय । सब क्षायिक सम्यक्त्वकी जीव तो

( १ ) धनला गीकामे जा षोडशकारणके नाम गिनाए हैं उनमें क्रममें षोडश अन्तर है । यहाँ  
 जाठनें नवर पर 'साधुसमाधिसन्धारणता के स्थानमें साधुप्राप्तुरुपरित्यागता पाठ है । ९वें नवर पर वैवाहृत्य  
 योगयुत्तक के स्थानमें 'समाधिसन्धारणता पाठ है । न० १० में 'साधु प्राप्तुरुपरित्यागता के स्थानमें  
 वैवाहृत्ययोगयुत्तता पाठ है । शेष पाठ समान है । तत्रापश्चम इस प्रकार पाठभेद है-न० ४ में  
 धर्मोक्षणज्ञानोपयोग, न० ५ में शवेग ६ में शक्ति त्याग, न० १० में अहङ्कृति, न० १४ में आवश्यकता  
 परिणानि न० १६ में प्रवचनवत्सलता पाठ है । तत्रापश्चम तथा भूतवलित्वासी द्वारा कथित  
 मात्रनाशके नामोंमें भी कहीं कहीं अन्तर है । तत्रापश्चम 'शवेग', साधुसमाधि, शक्ति त्याग,  
 मागप्रभारत पाठ है, उधर स्थानमें क्रमशः 'लद्धिसवेगसपन्नता' साधु-समाधि सन्धारणता', 'प्राप्तुरु  
 परित्यागता', 'प्रवचन प्रभावण' पाठ है । आचार्यमतिना महावचमें पाठ नहीं है । एक नवान  
 भान्ना क्षण-प्रतिबोधनता सम्मिलित की गई है ।

ज्ञान लक्ष्य प्रतिबोधनता—'क्षणलक्ष्य' शब्द कालविशेषका द्योतक है। उसी कालविशेषमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, व्रत तथा शीलरूप गुणोंका उज्वल करना अर्थात् बलवत्ता प्रचालन करना अथवा व्रतादिकी प्रदीप्ति अर्थात् वृद्धि करना प्रतिबोध है। उसका भाव प्रतिबोधनता है। क्षणलक्ष्यकी प्रतिबोधनताको क्षणलक्ष्यप्रतिबोधनता कहते हैं। यह अनेकी भावना भी तीर्थङ्करनामकर्मका वध करती है। यहाँ भी पूर्वकी भाँति शेष कारणोंका अतर्भाव रहता है।

लक्ष्यसव्येगसपन्नता—सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रमें जीवके समागमका नाम लक्ष्य है। लक्ष्यके लिए जो सव्येग है—वह लक्ष्यसव्येग है। उसकी सपन्नताको लक्ष्यसव्येगसपन्नता कहते हैं। शेष कारणोंके अभावमें इसका सद्भाव नहीं बनता है, कारण उनके अभावका और लक्ष्यसव्येगसपन्नताके सद्भावका विरोध है।

यथाशक्ति तप-बल-वीर्यको प्राकृतमें 'धाम' कहते हैं। अनशनादि बाह्य, विनयादि अतरग द्वादश प्रकारके तप हैं। शक्तिके अनुसार तप करनेसे तीर्थङ्करकर्मका वध होता है। यह भाजना ज्ञान, दर्शनके बलसे संपन्न धीर पुरुषके होती है तथा दर्शनत्रिशुद्धतादिके अभावमें यह नहीं पाई जा सकती है। इससे अकेली इस भावनाको तीर्थङ्करनामकर्मका कारण कहा है।

साधुप्रासुर-परित्यागता—जो अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनन्तवीर्य, विरति, क्षायिक सम्यक्त्वकी साधना करता है उसे साधु कहते हैं। प्रासुरका एक अर्थ है 'वह वस्तु, जिससे जीव निकल गए हों', दूसरा अर्थ है निरवयु निर्वाण वस्तु। साधुओंको ज्ञान, दर्शन, चरित्रका परित्याग अर्थात् दान प्रासुरपरित्यागता है। ज्ञानदर्शनचरित्रका परित्यागरूप दान गृहस्थोंमें सभव नहीं हो सकता, कारण वहाँ चरित्रका अभाव है। रत्नत्रयका उपदेश भी गृहस्थोंमें नहीं बन सकता है। कारण उनमें दृष्टिनादादि ऊपरके सूत्रोंके उपदेशका अधिकार नहीं है। अतः यह साधु प्रासुरपरित्यागतारूप कारण महर्षियोंके होता है।

(१) "आवलि अष्टसमया सत्तेजावलिस्मूहस्तथासो। सत्तुस्तासा शोचो सत्तयोचो लवो भगियो ॥" —गो० जी०। एक विशेष बात यह है कि महाप्रथमी प्रतिमें 'क्षणलक्ष्यपडिमज्जणदा' पाठ है, उसकी संस्कृत टीका क्षणलक्ष्यप्रतिमाध्ययन होगी। इसके सम्बन्धमें सिद्धांतशास्त्रोंके विद्विष्ट विद्वान् प० वशीधरजी न्यायालङ्कार इंदौर कहते हैं कि जगत्में समनशरणकी निभृति सर्वोत्कृष्ट है, उसकी प्राप्तिमें कारणरूप सोलह भावनाओंमें ध्यानक तथा मुनिधर्मसम्पन्नी नियायार्थका समावेश पाया जाता है। समनशरणमें विप्रमान साक्षात् अरहन्त देवकी पूजाका भाव अरहन्तभक्तिद्वारा निष्पन्न होता है, किन्तु मूर्तिद्वारा देवपूजाका भाव क्षणलक्ष्यप्रतिमाध्ययन भावनाके द्वारा समर्थित होता है। क्षणलक्ष्य-काल विशेष पथन्त प्रतिमाका अध्ययन—स्वरूप दर्शन, चिन्तन करना क्षणलक्ष्यप्रतिमाध्ययन है। हमने क्षणलक्ष्यप्रतिबोधनताका अर्थ वीरसेनाचायकी व्याख्यानुसार लिया है, तथा इसी पाठका यत्र तत्र प्रयोग किया है।

(२) "सणत्ता णाम कालविषेसा। सम्महसणणाणयदसीलगुणाणमुज्जालण कल्लवपन्नलण सधुक्खण या पडिजुज्जण णाम। तस्स भानो पडिजुज्जणदा। सणल्लणाण पडिजुज्जणदा सणल्लयपडिजुज्जणदा ॥" —ध० टी० प० ५५४। (३) 'सव्येग परमोत्साहो धम धर्मपले चित्त'—पञ्चा०।

(४) यहाँ यदि 'साहूण' पाठ लिया जाय, तो वह 'साधूनाम्' साधुआका द्योतक होता है, यदि 'सामाण' पाठ लिया जाय, तो संस्कृतरूप 'श्रमणानाम्'—श्रमणोंका होगा, श्रमण भी साधु, मुनिका पर्याय-वाची है। जन भूतपत्ति आचार्य एक बार परराज्यागममें 'साहूण' पाठ देते हैं और उसीपर वीरसेनाचार्यकी टीका है, तत्र उक्त आचार्यके द्वारा उक्त आगमके पठ अथ महाधर्ममें पुन आगत सोलह कारण भावना वाले सूत्रमें 'साहूण' पाठका प्रयोग विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है। वैसे साधु और श्रमण परस्पर पर्यायवाची हैं अतः 'सामाण' पाठ भी अयुक्त नहीं है।

शुद्धा-निस प्रकार यहाँ देव-नारकियोंके दर्शन और ज्ञान विनयका अभाव कहा है उसी प्रकार चरित्र विनयका अभाव क्यों नहीं कहा है ?

समाधान-ज्ञानदर्शन विनयका निरोधी चारित्र भी नहीं हो सक्ता । अर्थात् ज्ञानदर्शन विनयके अभावसे चारित्र विनयका भी अभाव होगा । यह बात प्रकट करनेको चारित्र विनयका पृथक् उल्लेख नहीं किया है ।

शीलव्रतेषु निरतिचारतासे भी तीर्थङ्कर नामकर्मका बन्ध होता है । हिंसा, शठ, चोरी, पुरील परिग्रहसे विरति होना व्रत है । व्रतका रक्षण करनेवाला शील कहलाता है । मद्यपान, मासभक्षण, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदका अपरित्याग अतिचार कहलाता है । इनका अभाव करना शीलव्रतेषु निरतिचारता है । इससे तीर्थङ्कर कर्मका बन्ध होता है ।

शुद्धा-यहाँ शेष पन्द्रह कारण किस प्रकार सम्भव होंगे ?

समाधान-सम्यग्दर्शन, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसवेगसम्पन्नता, साधुसमाधिसधारणता, वैद्याहृत्ययोगयुक्तता, साधु प्राप्तिपरित्यागता, अरहन्त बहुश्रुत प्रवचनभक्ति, प्रवचनप्रभावनताके विना शीलव्रतेषु-अनतिचारता सम्भव नहीं है । अमर्यात गुणश्रेणियुक्त कर्मनिर्जरासे जो हेतु है उसे व्रत कहते हैं । सम्यक्त्वके विना केवल हिंसा, असत्य, चौर्य, अन्नह्न तथा परिग्रहके त्यागमात्रसे ही वह गुणश्रेणी निर्जरा नहीं हो सक्ती, कारण दोनोंके द्वारा होनेवाले कार्यका एकके द्वारा सम्पन्न होनेका विरोध है । पद् द्रव्य नवपदार्थके समूह रूप लोकोके विषय करनेवाली अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तताके विना शीलव्रतोंमें कारणभूत सम्यक्त्वकी अनुपपत्ति है । इस प्रकार उसमें सम्यग्दर्शनके समान सम्यक्ज्ञानका भी सद्भाव पाया जाता है । यथाशक्ति तप, आवश्यकपरिहीनता तथा प्रवचनरत्सल्लवरूप चारित्रविनयके विना यह शीलव्रतेषु-निरतिचारिता नहीं बन सकती है । इस प्रकार व्यापक अर्थयुक्त यह भाषना तीर्थङ्करनामकर्मके बन्धका कारण है ।

आवश्यतेषु अपरिहीनता-समता, स्तुति वन्दना, प्रतिक्मण प्रत्याख्यान तथा व्युत्सर्गके भेदसे आवश्यक छह प्रकार कहा गया है । शत्रु मित्र, गणिय पापाण, सुवर्ण मृत्तिकामें राग द्वेषका अभाव समता है । अतीत अनागत तथा वर्तमान कालसम्बन्धी पंचपरमेष्ठियोंका भेद न करके 'णमो अरहताण णमो सिद्धाण' इत्यादि द्रव्यस्तुतिना कारण नमस्कार स्तुति कहलाता है । दूषभादि चौबीस तीर्थङ्कर, भरतादि क्षेत्राके केवली, आचार्य, चैत्यालयात्मिका पृथक् पृथक् रूपसे नमस्कार करना अथवा गुणोंका अनुस्मरण करना वन्दना है । पंच महाव्रतों तथा ८४ लाख उत्तरगुणमि लगे हुए बलङ्कोका प्रक्षालन करना प्रतिक्मण है । महाव्रतोंके विनाशके कारण अथवा उनमें मलिनता लगानेवाले दोषाका जिस प्रकार अभाव होगा, उस प्रकार मैं करूँगा इस प्रकार निस्से आलोचना करके ८४ लाख व्रतोंकी शुद्धिका प्रतिग्रह करना प्रत्याख्यान है । शरीर, आहारादिकसे मन वचन नी प्रवृत्तिको अलग करके ध्येयमें रोकनेकी व्युत्सर्ग कहते हैं । इन छह आवश्यकोंकी अपरिहीनता-अक्षण्यताको आवश्यकतापरिहीनता कहते हैं । इससे द्वारा तीर्थङ्करत्वमेंका बन्ध होता है ।

यहाँ शेष कारणोंका अभाव नहीं होता है । दर्शनविशुद्धि विनयसम्पन्नता, व्रतशीलनिरति चारता, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधु समाधि सधारण, वैद्याहृत्ययोगयुक्तता, प्राप्तिपरित्यागता, अरहन्त-बहुश्रुत प्रवचनभक्ति, प्रवचनप्रभावनता, प्रवचनरत्सल्लता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तताके विना छह आवश्यकोंकी निरतिचारता नहीं बन सकती है । अत अमर्यातेषु अपरिहीनता तीर्थङ्करनामकर्मका चतुर्थ कारण है ।

वदणिज्जा णमसणिज्जा धम्मतित्थयरा जिणा केनली (केनलिणो) भवति ।

§ ३६. एव ओघभगो पचिदियत्तस० २ भवसि० ।

§ ३७. आदेसेण णिरएसु पचणाणारण-छद्दसणाणरण-सादासाद णारसकमाय-स-  
त्तणोकसायार्ण मणुमगइ-पंचिदिय-ओरालियतेजाकम्मइय-समचदुरससठाण-ओरालिय०  
अंगोअंग-वण्ण० ४ मणुसगदिपा-ओग्गाणुपुच्चि-अगुरुगलहुग० ४ पसत्थ-अिहायगदि-त्तस० ४ ५  
थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति-णिमिण उचागोद पचंत-  
राडयार्ण को वधको ? सच्चे वधा, अनधा णत्थि । त्थीणगिद्धिआदि-पणुनीस ओघं ।  
मिच्छत्त-णउसकवेद-हुं-डसंठाण असपत्तसेनट्टाण को वधको० ? मिच्छादिट्ठी वधा ।  
एदे वधा अवसेसा अनधा । मणुसायु ओघं । तित्थयरं को वधको० ? असजदसम्मा-  
दिट्ठी । एदे वधा अवसेसा अनधा । एव पढम-विदिय-तट्टियासु । चउत्थि-पचमि-छट्ठीसु १०  
एवं चेन, णपरि तित्थयरं णत्थि । सत्तमाए छट्ठिभगो, णपरि मणुमायु णत्थि ।  
मणुसगदि-मणुसगदिपाओग्गाणुपुच्चि-उचागोदाणं को वंधको ? सम्मामिच्छाडडि-  
असजदमम्माडट्ठी । एदे उधा । अवसेसा अरंधा । तिरिक्खायु० को व० ?  
मिच्छाडट्ठी वधा । एदे उधा अवसेसा अनधा ।

तथा नमस्करणीय धर्म तीर्थके वर्ता जिन केवली होते हैं ।

§ ३६ इस प्रकार पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्तक तथा भव्यसिद्धिकोमि  
ओघवत् भग जानना चाहिए ।

§ ३७ आदेशसे, नारिकेलीमे-५ हानावरण, ६ दर्शनावरण, साता असाता वेदनीय, अनन्तानु-  
बन्धी ४ को छोड़कर शेष १२ कपाय, ( स्त्रीवेद, नपुसकवेद विना ) ७ नोकपाय, मनुष्य गति,  
पच्चेन्द्रिय जाति, औदारिक वैजस कामाण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक अज्ञोपाङ्ग,  
वर्ण ४, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छवास, प्रशस्तविहायोगति,  
प्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुखर, आदेय, यश कीर्ति, अयश-  
कीर्ति, निर्माण, उद्योग तया ५ अन्तरायका कौन वन्धक है ? सर्व वन्धक हैं । अवन्धक नहीं हैं ।  
स्त्यानगृद्धि आदि २५ प्रकृतियोंको ओघवत् जानना चाहिए, अर्थात् सासादन गुणस्थान पर्यन्त  
वन्धक हैं । मिथ्यात्व नपुसकवेद, हुण्डक संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका सहननका कौन वन्धक है ?  
मिथ्यादृष्टि वन्धक है । ये वन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं । मनुष्यायुके वन्धकका ओघवत् जानना  
चाहिये, अर्थात् अविरत गुणस्थान पर्यन्त वन्धक हैं । तीर्थङ्करप्रकृतिका कौन वन्धक है ? असयत  
सम्यग्दृष्टि वन्धक है । ये वन्धक हैं, शेष अवन्धक हैं । प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पृथ्वी पर्यन्त  
ऐसा ही जानना चाहिए । चौथी, पाँचवी तथा छठवीं पृथ्वियोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।  
विशेष, यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृति नहीं है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्ध तीसरी पृथ्वी पर्यन्त होता है ।  
सातवीं पृथ्वीमे-छठवीं पृथ्वी के समान भग है । विशेष, यहाँ मनुष्यायु नहीं है । मनुष्यगति,  
मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी तथा उच्छगोत्रका कौन वन्धक है ? सम्यग्मिथ्यात्वी तथा असयत-  
सम्यग्दृष्टि जीव वन्धक हैं । ये वन्धक हैं । शेष अवन्धक हैं । तीर्थङ्करायुका कौन वन्धक  
है ? मिथ्यादृष्टि वन्धक है । ये वन्धक हैं । शेष अवन्धक हैं ।

(१) "विदियगुणे अगधीगति दुमगतिसठाण सहदिचउत्तक ।

दुग्गमणित्थी-शीच तिरियदुग्गुजोव तिरियाऊ ॥" - गो० क० गा० ९६ ।



§ ३५ जसस इण कम्मस्य उदयेण सदेवासुरमाणुससस लोमासस अचणिज्जा पृजणिज्जा

यहाँ भी शेष कारणों का अभाव नहीं है। अरहतादिकी भक्ति, नयपर्यायिका मन्ना, शीलव्रतामें निरतिचारिताके प्रभावमें ज्ञान, चारित्रिका परित्याग अर्थात् दान असम्भव है, कारण इसमें विरोध आता है। अतः केवल इस भावनासे भी तीर्थङ्कर धर्मका बंध होता है।

साधुसमाधिसधारणता—ज्ञान, दर्शन, चारित्र्यमें सम्यक् प्रकारसे अवस्थान होना समाधि है। भले प्रकार धारण करनेको सधारण कहते हैं। साधुओंकी समाधिकी भले प्रकार धारण करना साधुसमाधिसधारण है। किसी कारणसे प्राप्त होनेवाली समाधिकी देवदेव सम्यक्त्वकी प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावना, विनयसंयतता, शीलव्रतातिचारवर्जित अरहतादिमें भक्तिरसा जो धारण करता है, वह समाधिमधारण है। यहाँ भी शेष कारणोंका अभाव नहीं है, क्योंकि इसका सङ्गाव उन कारणोंके अभावमें नहीं बन सकता है।

वैयावृत्ययोगयुक्तता—जिस कारणसे जीव सम्यक्त्व, ज्ञान, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचनवत्सलतादिके द्वारा वैयावृत्यमें लगता है उसे वैयावृत्ययोगयुक्तता कहते हैं। इस प्रकार अकेली इस भावनासे भी तीर्थङ्करप्रकृतिका बंध होता है। यहाँ शेष कारणोंका यथासम्भव अन्तर्भाव जानना चाहिए।

अरहन्त भक्ति—घातिया कर्मोंके नाश करनेवाले, केवलज्ञानके द्वारा सम्पूर्ण पदार्थोंके देखने वाले अरहन्त हैं। उनकी भक्तिसे तीर्थङ्करनामकर्मका बंध होता है। यह भावना दर्शनविशुद्धतादिके अभावमें नहीं पाई जाती है, कारण इसमें विरोध आया।

बहुश्रुतभक्ति—द्वादशाङ्गके पारगाभीको बहुश्रुत कहते हैं। उनमें भक्तिका अर्थ है, उनके द्वारा व्याख्यान किए गए आगमका अनुगमन करना अथवा अनुष्ठानका प्रयत्न करना बहुश्रुत भक्ति है। दर्शनविशुद्धतादिके बिना यह सम्भव नहीं है।

प्रवचनभक्ति—सिद्धान्त अर्थात् चारह अङ्गोंको प्रवचन कहते हैं। 'प्रकृतस्य वचन प्रवचनम्' श्रेष्ठ आत्माने वचनोंको प्रवचन कहा है। उनके प्रति भक्तिकी प्रवचनभक्ति कहते हैं। इसमें भी शेष कारणोंका अन्तर्भाव रहता है।

प्रवचनवत्सलता—महाव्रती, देशसयमी तथा असयत सम्यग्दृष्टिमें प्रेम रखना प्रवचनवत्सलता है। इससे ही तीर्थङ्करनामकर्मका बंध कैसे होता है—यह शङ्का नहीं करनी चाहिए, कारण महाव्रतादि आगमिक विषयोंमें गाढानुरागका दर्शनविशुद्धतादिके अविनाभाव है।

प्रवचनप्रभावना—प्रवचन अर्थात् आगमकी प्रभावना करनेका भाव प्रवचनप्रभावना है। लच्छुट प्रवचनप्रभावनाका दर्शनविशुद्धताके साथ अतिभाव है।

अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता—अभीक्ष्ण अर्थात् 'बहुवार'भावश्रुत अथवा द्रव्यश्रुतमें उपयोगकी लगाना अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता है। इससे तीर्थङ्करनामकर्मका बंध होता है। दर्शनविशुद्धतादिके बिना इसकी अनुपपत्ति है।

इस सोलह कारणोंसे तीर्थङ्करनामकर्मका बंध होता है। अथवा सम्मदर्शनके होने पर शेष कारणोंमेंसे एक दो आदिके संयोगसे भी बन्ध होता है।

§ ३५ इस धर्मके उदयसे सुर असुर तथा मनुष्यलोकके द्वारा अर्चनीय, पूजनीय, वन्दनीय

( १ ) महावधम आगत पोडककारण मन्त्रभाक पाठ पर विद्वद्र ५ चणधरणा शास्त्री इन्दौर यह सुधान है कि—दर्शनविशुद्धता तथा अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता नामक भावनाएँ असयत देशसयत सभक्तके पाए जाती हैं। विनयसंयतता, शीलव्रतेषु निरतिचारिता जावदपकेषु अपरिहीनता, ये तीन भावना सुदयतसे सुनियानकी लक्ष्यम रखकर यही गद है तथा क्षणत्वपडिमवहाणदा आदि विशेषकर यदर्थोंके लक्ष्य करने यही गद है।

बंदणिज्जा णमसणिज्जा धम्मतिथ्यरा जिणा केवली ( केवलियो ) भवति ।

§ ३६. एवं ओषभंगो पचिदियतम० २ भवसि० ।

§ ३७. आदेसेण गिरएसु पंचणाणारण-छद्दसणावरण-सादासाद धारसकसाय-स-  
त्तणोकसायाण मणुमगइ-पचिदिय-ओरालियतेजाकम्मइय-समचदुरससठाण-ओरालिय०  
अंगोवग-वण्ण० ४ मणुसगदिपाओग्माणुपुच्चि-अगुरुगलहुग० ४ पसत्थविहायगदि-तस० ४ ५  
धिराधिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगिति-जसगिति-णिमिण उच्चागोद पचत-  
राइयाण को बंधको ? सव्वे वधा, अग्धा णत्थि । त्थीणगिद्धिआदि-पणुवीसं ओघं ।  
मिच्छत्त-णउसकवेद-हुंइसंठाण असंपत्तसेउट्टाण को बंधको० ? मिच्छादिट्ठी वधा ।  
एदे वधा अउसेसा अग्धा । मणुमायु ओघ । तित्थयर को बंधको० ? असंजदसम्मा-  
दिही । एदे वधा अवसेसा अवधा । एव पढम-गिदिय-तदियासु । चउत्थि-पंचमि-छट्ठीसु १०  
एव चैर, णवरि तित्थयर णत्थि । सत्तमाए छट्ठिभगो, णवरि मणुसायु णत्थि ।  
मणुसगदि-मणुसगदिपाओग्माणुपुच्चि-उच्चागोदाणं को बंधको ? सम्मामिच्छाइट्ठि-  
असजदसम्माइट्ठी । एदे वंधा । अवसेसा अवंधा । तिरिक्खायु० को वं० ?  
मिच्छाइट्ठी वंधा । एदे वधा अवसेसा अग्धा ।

तथा नमस्करणीय धर्म तीर्थके कर्ता जिन केवली होते हैं ।

§ ३६ इस प्रकार पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, व्रस, व्रसपर्याप्तक तथा भव्यसिद्धिकोमै ओषवत् भग जानना चाहिए ।

§ ३७ आदेशसे, नारकियोमै-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता असाता वेदनीय, अनन्तानु-  
बन्धी ४ को छोड़कर शेष १२ कपाय, ( स्त्रीवेद, नपुसकवेद विना ) ७ नोकपाय, मनुष्य गति,  
पचेन्द्रिय जाति, औदारिक तैजस कार्माण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, औदारिक अज्ञोपाङ्ग,  
वर्ण ४, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहाययोगति,  
व्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कीर्ति, अयश-  
कीर्ति, निर्माण, उच्चोत्र तथा ५ अन्तरायका कौन बन्धक है ? सर्वे बन्धक हैं । अबन्धक नहीं हैं ।  
स्थानगृह्ण आदि २५ प्रकृतियोंकी ओषवत् जानना चाहिए, अर्थात् सासादन गुणस्थान पर्यन्त  
बन्धक हैं । मिथ्यात्व नपुसकवेद, तुण्डक सस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका सहननका कौन बन्धक है ?  
मिथ्यादृष्टि बन्धक है । ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं । मनुष्यायुके बन्धकका ओषवत् जानना  
चाहिये, अर्थात् अविस्त गुणस्थान पर्यन्त बन्धक हैं । तीर्थङ्करप्रकृतिका कौन बन्धक है ? असयत  
सम्यग्दृष्टि बन्धक है । ये बन्धक हैं । शेष अबन्धक हैं । प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पृथ्वी पर्यन्त  
पेसा ही जानना चाहिए । चौथी, पाँचवी तथा छठवीं पृथ्वीयोंमै इसी प्रकार जानना चाहिए ।  
विशेष, यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृति नहीं है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका व ध तीसरी पृथ्वी पर्यन्त होता है ।  
सातवीं पृथ्वीमै-छठवीं पृथ्वी के समान भग है । विशेष, यहाँ मनुष्यायु नहीं है । मनुष्यगति,  
मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी तथा उच्चोत्रका कौन बन्धक है ? सम्यग्मिथ्यात्वी तथा असयत  
सम्यग्दृष्टि जीव बन्धक हैं । ये बन्धक हैं । शेष अबन्धक हैं । तीर्थङ्कायुका कौन बन्धक  
है ? मिथ्यादृष्टि बन्धक है । ये बन्धक हैं । शेष अबन्धक हैं ।

(१) "मिदियुणे अगमीणति दुग्गतिसठाण सहदिचउत्तरक ।

दुग्गमणित्थीणीच तिरियदुग्गज्जोव तिरियाऊ ॥" - गो० क० गा० ९६ ।

§ ३८ तिरिक्सेसु पचणाणावरण छहसणावरण सादासाद अट्टरुमा० मत्तणोरु० देवगदि० पचिदिय० वेउच्चिय-तेजा-क्रम्म० समचदु० वेगुच्चि० अगोरग-वण्ण०४ देवगदिपाओग्गाणुपुच्चि-अगुरुगलहुग०४ पसत्थविहायगदि-त्तम०४-विराविर-सुभासुभु भग-सुत्तस-जादेज्ज-जमगित्ति-अजमगित्ति णिमिण-उचागोट पचतराडगाण को पथको ?

५ मिच्छादिट्ठि याव सजदामजदा त्ति सच्चे वधा, अवधा णत्थि । धीणगिद्धित्थिं अणत्ताणुनवि०४-इत्थिवेद०- तिरिक्खायु मणुसायु तिरिक्खगदि-मणुसगदि-ओरालिय० चदुसंठा० ओरालिय० अगोरग पचसघडण-दोआणुपुच्चि-उज्जोअ अप्पसत्थविहायगद दूसग-दुस्सर-अणादेज्ज-धीचागोदाण को वधको ? मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठो । एद वधा, अवसेसा अवधा । मिच्छत्तदट्ठो ओघो । अपचक्खाणावरण ४ को वधको ?

१० मिच्छादिट्ठि याव असजदसम्माटिट्ठि त्ति । एद वधा, अवसेसा अवधा । देवायु० को वधको ? मिच्छादि० सामणसम्मा० अमजठ० सजदोसजदा त्ति वधा । एद वधा अवसेसा अवधा ।

विशेषार्थ—मातवीं पृथगीवाला मरकर नियमसे तिर्यञ्च होता है । इस कारण वहाँ मनुष्यायुका बन्ध नहीं बताया है\* । मरण मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही होता है । तिर्यञ्चायुका वध मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही होता है । मनुष्यद्विज तथा उच्चगोत्रका बन्ध मिथ तथा ध्विखत सम्यक्त्व गुणस्थानमें ही होता है, नीचे नहीं होता है ।

§ ३८ तिर्यञ्चार्थ—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण साता प्रसाता प्रत्याख्यानावरण तथा सज्वलन रूप ८ कपाय, खीवेद नपुसकवेद विना सात नोकपाय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैकियिक, वैजस, कामाण शरीर, समचतुरस्रसत्त्वान, वैकियिक अङ्गोपाङ्ग, वर्ण ४, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वा, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति तस ४ (तस, वादर, मयोत्त, प्रत्येक) स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यज्ञ नीति, अयशःनीति निमाण उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका कौन बधक है ? मिथ्यादृष्टि से लेकर देशसयमी पर्यन्त सर्व बधक है । अत्र बधक नहीं है ।

स्थानपृद्धिबन्धक, अनतानुबन्धी ४, खीवेद, तिर्यञ्चायु मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, ४ सत्त्वान, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, ५ सहन दो आनुपूर्वा ( तिर्यञ्च मनुष्या अनुपूर्वा ), उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भंग, दुस्सर, अनादेय तथा नीचगोत्रका कौन बधक है ? मिथ्यादृष्टि तथा मासादन सम्यग्दृष्टि बधक है । ये बधक हैं । शेष अबधक हैं । मिथ्यात्व दण्डकमें श्लोचवत् जानना चाहिए ।

विशेष—मिथ्यात्व दण्डक सत्त्वानादि सोलह प्रकृतियों मिथ्यात्व दण्डकमें सम्मिलित हैं । उनके बधक मिथ्यादृष्टि होते हैं । वे बधक हैं । शेष अबधक हैं ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ का कौन बधक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर असयत सम्यग्दृष्टि पर्यन्त बधक हैं । ये बधक हैं । शेष अबधक हैं । देवायुका कौन बधक है ? मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यक्त्वी अमयत सम्यक्त्वी तथा देश सयमी बधक हैं । ये बधक हैं । शेष अबधक हैं ।

§ ३९. एवं पंचिदिय-तिरिक्त्स०३। पचिदिय-तिरिक्त्स-अपज्जत्त-पच गाणावरण  
णर दसणावरण सादासाद मिच्छत्त-मोलसकमाय-णणोक्कमाय-तिरिक्त्समणुसायु-तिरिक्त्स-  
मणुसगइ-पचिदिय-ओरालि० तेता (तेजा) कम्म० छस्तठाण ओरालिय-सरीर-  
अगोवम० छस्मंघडण-उण्ण०४-दो-आणुपुवि-अगुरुगलहुग०४-आदाउज्जोव-दो-निहायगदि-  
त्तादिदसयुगलं णिमिणं णीत्तुआगोद-पचंतराइयाण को वधको ? सव्वे ५  
बंधा, अंधा णत्थि ।

§ ४०. एव सव्व-अपज्जत्ताण सव्व-एडटियाण सव्व-निगलिटियाणं च ।

[ अत्र अष्टाविंशतितम पत्र घुटितम् । ]

§ ३९ पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिमतोमे तिर्यञ्चोके  
समान भग जानना चाहिए ।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-लब्ध-पर्याप्तकोमे—५ ज्ञानावरण ९ दर्शनावरण, सात्ता, असात्ता,  
मिथ्यात्व, १६ कपाय, ९ नोकपाय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति,  
औदारिक-तैजस-कामोण शरीर, ६ सस्थान, औदारिक शरीराङ्गोपाङ्ग, ६ सहनन, वर्ण ४,  
मनुष्य तिर्यञ्चानुपूर्वा, अगुरुलघु ४ (अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास), आताप, उद्योत,  
दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल ( त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर,  
आदेय, यश कीर्ति ) निर्माण, नीचगोत्र, उच्चगोत्र, तथा ५ अन्तरायका वीन बन्धक हैं ?  
सर्व बन्धक हैं । अधक नहीं हैं ।

§ ४० सपूर्ण लब्ध-पर्याप्तको, सपूर्ण एकेन्द्रियों सर्व चिन्तेन्द्रियोमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।

[ ताडपत्र न० २८ नष्ट हो जानेसे इस प्रकारका आगामी विषय नष्ट होगया है । प्रथमे  
प्रकरणसे ज्ञात होता है, कि आचार्य महाराजने देवगति, मनुष्य गति, आदि मार्गणाओंकी  
अपेक्षा 'बध सामिच विचय' ग्रन्थणाका धर्षण दिया होगा । सम्बन्ध मिलानेकी दृष्टिमे श्री  
गोमटसार कर्मकांडके आश्रयसे कुछ प्रकाश डाला जाता है ]

मनुष्यगति—यहा मिथ्यात्वादि चौदह गुणस्थान हैं । बन्ध योग्य १२० प्रकृतियों हैं । यहाँका  
वर्णन ओघात् जानना चाहिए । विशेष यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थानसे वीर्यङ्कर, आहारकद्विक  
का बध न होनेसे शेष ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । सासादन गुणस्थानमे मिथ्यात्वादि १६  
प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे बध १०१ का होता है । मिश्र गुणस्थानमे ६९ का बन्ध होता है । यहाँ  
सासादन गुणस्थानमें बन्ध व्युच्छिन्न होनेवाली अनन्तानुब धी ४, स्थानगृद्धिप्रिक आदि २५  
प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होगा । इसके सिवाय मनुष्यगति द्विक, मनुष्यायु, उन्नष्टपभनराच सहनन  
औदारिक शरीर, औदारिकशरीराङ्गोपाङ्ग इन छह प्रकृतियोंकी भी सामादन गुणस्थानमें  
बन्धव्युच्छिन्ति होती है । साधारणतया इनकी अविरतमे बन्धव्युच्छिन्ति होती थी । मिश्र  
गुणस्थान मे आयु का बन्ध न होनेसे देवायु का अधक हो गया । इस प्रकार ३२ प्रकृतियोंके  
घटनेसे मिश्र गुणस्थानमे ६९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । अविरत सम्यक्स्वीके देवायु तथा  
वीर्यङ्करका बध प्रारभ हो जानेसे ७१ का बन्ध होता है । अप्रत्याख्यानावरण ४ का देवविरतमे  
बध न होनेसे यहाँ ६७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । प्रमत्तगुणस्थान मे ६३ प्रकृतियोंका बन्ध है,  
कारण, यहाँ प्रत्याख्यानावरण ४ का बध नहीं है । अप्रमत्तसयतमे अस्थिर, असात्ता, अशुभ,  
अरति, शोक, अयश कीर्ति इन छहका बन्ध नहीं होगा, किन्तु यहाँ आहारकद्विकका बन्ध  
होनेसे ५९ का बन्ध होता है । अपूर्वकरणमे ५८ का बन्ध है, कारण, यहाँ देवायुका बन्ध  
नहीं होता, देवायुकी बन्धव्युच्छिन्ति अप्रमत्त गुणस्थानमे हो जाती है । अनितृत्तिकरणमें



[ कालपरूपणा ]

१४१. जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोज्जमाणि देसणाणि ।  
तित्थयर-जहण्णेण चदुरासीदि-वामसहस्साणि, उक्कस्सेण तिण्णि साग० सादिरेयाणि ।  
पढमाए याव छट्ठित्ति पढमदड-वधकालो जहण्णे० दस वाससहस्साणि सागरोज्ज-

केवलज्ञान में—सयोगी जिनके साताका बन्ध है। अयोगीमें बन्ध नहीं है। केवलदर्शनमें ऐसा ही जानना। आभिनिर्गोचिक-श्रुत-अवधिज्ञानमें-अधिरत सम्यक्-त्रीके समान ७९ का बन्ध है। अवधिदर्शनमें अवधिज्ञानका भंग है। असयममें-आहारकद्विक विना ११८ बन्ध योग्य हैं।  
देशसयममें—ओघवत् भंग है। सामाजिक छेदोपस्थापना सयममें—मन पर्यवज्ञानके समान जानना चाहिए। यहाँ प्रमत्तसयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण पर्यन्त गुणस्थान है। परिहार-विशुद्धिमें-प्रमत्ता-अप्रमत्तकी ओघवत् रचना जाननी चाहिए। सूक्ष्मसाम्परायमें-ओघवत् है। यथारचायते- ११ वें से १४ वें गुणस्थान पर्यन्त ओघवत् है। चक्षु, अचक्षुदर्शनमें क्षीणकषाय पर्यन्त ओघवत् भंग है।

शृणादि लेश्यात्रयमें—आहारकद्विक विना ११८ बन्ध योग्य है। वर्णनआदिके चार गुण-स्थानोंके समान जानना चाहिए। पीतलेश्यामें-नरकायु, नरकद्विक विकलत्रय तथा सूक्ष्मत्रय को छोड़कर १११ बन्ध योग्य हैं। अप्रमत्तपर्यन्त ओघवत् भंग है। पद्मालेरया में-पीतके समान भंग है। यहाँ एकेन्द्रिय, आवाप तथा स्थावर का भी अभाव है। शुक्ल लेश्यामें—पद्मत्रय भंग है। यहाँ उद्योत, तिर्यञ्चद्विक, तिर्यञ्चायुका बन्ध न होनेसे १०४ बन्धयोग्य हैं। सयोगकेवलीपर्यन्त ओघवत् जानना चाहिए। भव्यसिद्धिमें—ओघवत् है। अभव्यसिद्धिकोमें—मिथ्यात्व गुणस्थान है। तीर्थङ्कर आहारकद्विक विना ११० बन्ध योग्य हैं। उपशम सम्यक्त्वमें—बन्ध योग्य ७७ हैं। यहाँ मनुष्यायु, देवायुका बन्ध नहीं होता है। चतुर्थसे ग्यारहवें पर्यन्त ओघवत् भंग है। वेदक सम्यक्त्वमें—ओघवत् है। ४ वें से ७ वें तक गुणस्थान हैं। क्षायिकमें—ओघवत् भंग जानना चाहिए। सङ्गीमें—ओघवत् है। क्षीणरूपायपर्यन्त गुणस्थान हैं। असङ्गीमें—ओघवत् है। आदिके दो गुणस्थान हैं। आहारकोमें—ओघवत् वर्णन है। अनाहारकोमें—१, २, ४, १३ १४, गुणस्थान है। नरक-द्विक, आहारकद्विक, देव-नरकायु-मनुष्य-तिर्यञ्चायुका बन्ध न होनेसे ११० बन्ध योग्य हैं।

काल परूपणा

[ ताडपत्र न० २८ नष्ट हो जानेके कारण इस परूपणाका प्रारम्भिक अंश भी विनष्ट हो गया। प्रश्नको देखते हुए ज्ञात होता है कि यहाँ आदेशकी अपेक्षा नरकगति का वर्णन चल रहा है और ओघ का वर्णन नष्ट हो गया है ]

निशेष—यहा एक जीवकी अपेक्षा वर्णन किया गया है।

१४१ नरकगतिमें जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे देखते हैं तीस सागरोज्जम है। एक जीवकी अपेक्षा तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य वधकाल ८४ हजार वर्ष, तथा उत्कृष्ट साधिक तीन सागर प्रमाण है। प्रथम नरकसे छठवें नरक पर्यन्त प्रथम दृढकका वधकाल जघन्यसे दशहजार वर्ष,

बध योग्य २२ हैं, कारण, अपूर्वकरण, गुणस्थानमें निद्रा, प्रचला, तीर्थर, आहारकद्विप्रधा २१ प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेसे २२ प्रकृति ही बन्धके लिए शेष रहती हैं। सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें १७ का बन्ध होता है, कारण, अनिष्टिकरणमें पुरुषवेद तथा ४ सञ्चल कर्पायोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। उपशान्तरूपायमें केवल एक सातावेत्नीयता ही बन्ध होता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें ५ ज्ञानवरण, ४ दर्शनावरण, ५ अतराय, यश कीर्ति वना वचनोत्रकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। क्षीररूपाय तथा सयोगीजिन पर्यन्त एक सातावेत्नीय का ही बन्ध होता है। अयोगकेरलीके बध नहीं है, कारण वहाँ बन्धके हेतुओं का अभाव ही युक्त है।

सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक, मनुष्यनीमे मनुष्यगतिके समान भग है।

देवगति—यहाँ नरकगतिके समान भग है। यहाँ भवनत्रिक तथा मौषर्मे, ईशान स्वर्ग पर्यन्त बध योग्य १०४ प्रकृतियाँ हैं। भवनत्रिकमें तीर्थङ्कर का अभाव होनेसे १०३ रह जाती हैं। सामान्य बधकी १२० में से मिथ्यात्र, हुण्डकमस्थान, नपु सरुवेद, असम्प्राप्तसृष्टिका सहनन, एकेन्द्रियजाति, स्यावर, आताप, सुक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, विकलत्रय, सुरचतुष्क, आहारकद्विप्र नरकद्विप्र, नरकायु तथा देवायु इन सोलह प्रकृतियोंकी घटानेसे १०४ प्रकृतियाँ शेष रहेंगी। भवनत्रिकके समान कर्पवामिनियामे १०३ का बन्ध है। सानत्कुमारादि सद्गुरु पर्यन्त एकेन्द्रिय, स्यावर तथा आतापकी घटानेसे १०१ प्रकृतियाँ बध योग्य रहती हैं। आननादि प्रवेयक पर्यन्त ९७ व ध योग्य रहती हैं, कारण, यहाँ तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चानुपूर्वी, तिर्यञ्चालु तथा उद्योत इन शतार चतुष्क नामक प्रकृतियोंका अभाव हो जाता है। अनुदिश अनुत्तर विमानवासी देवोंने सभी अचिरत मन्व-दृष्टि होते हैं अत वहाँ बन्ध योग्य ७१ प्रकृतियाँ रहेंगी।

पञ्चन्द्रियेभि मनुष्यगतिके समान भग है। त्रसोभि भी मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए। सत्य मन, सत्य वचन, अनुभय मन, अनुभय वचन योगमे सयोग केरली पर्यन्त गुणस्थान होते हैं। यहाँ मनुष्यगतिके समान रचना जाननी चाहिए। असत्य मन असत्य वचन, उभय मन तथा उभय वचन योगमे क्षीणकपाय पर्यन्त शून्यस्थान होते हैं, अत ओषधत् इनकी रचना जाननी चाहिए। औदारिक काययोगमे मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए। औदारिक मिश्र काययोग में १,२,४ तथा १३ वीं गुणस्थान होता है। इसमें बन्ध योग्य ११४ प्रकृतियाँ हैं, कारण, आहारकद्विप्र, देवायु नरकायुका बध नहीं होता है। मिथ्यात्र तथा सासादनमे तीर्थङ्कर तथा सुरचतुष्क का बध नहीं होता है। वैक्रियिक काययोगमें देवोंके ओषधत् जानना चाहिए। वैक्रियिनमिश्रम इसी प्रकार भग है। त्रिशेप यहाँ मनुष्य तथा तिर्यञ्चालुका बन्ध नहीं होता है। आहारक काययोग में—प्रमत्त सयतके समान ६३ प्रकृतियाँ का बध है। आहारक मिश्रमे—देवायुके बधका अभाव होनेसे ६२ रहती हैं, कारण 'मिस्तुष्ये आउत्स'—मिश्र अवरुधामे आयुका बध नहीं होता, ऐसा सामान्य नियम है। कार्माणकाययोग में—औदारिक मिश्रमे समान है। यहाँ मनुष्यायु तथा तिर्यञ्चालुका भी अन्व बध होनेसे ११२ बध योग्य हैं।

स्त्री वेदमे—आदिके नव गुणस्थान होते हैं, ओषधत् वर्णन है। पुरुष वेदमे भी इसी प्रकार है। नपुसक वेदमे भी ऐसा ही जानना चाहिए। कर्पायोंमें—मिथ्यात्वसे लेकर अनिष्टिकरण पर्यन्त ओषधत् भंग हैं। मन्वदान, श्रुताज्ञान तथा त्रिभगज्ञान में—मिथ्यात्व तथा सासादन गुण स्थान हैं। यहाँ तीर्थङ्कर तथा आहारकद्विप्रका बन्ध न होनेसे ११७ बध योग्य हैं। मन पर्यन्त ज्ञानमें—प्रमत्तगुणस्थानसे क्षीणकपाय पर्यन्त है। यहाँ आहारकद्विप्रका बध होनेसे बध योग्य ६५ हैं। आहारकद्विप्रका उदय मन पर्यन्त ज्ञानीके नहीं होता, बधका विरोध नहीं है।

(१) अथ आहारकद्विप्र एव विरप्यते न च प्रमत्तायुःकरणयास्तद्वधः । -गो०क टी०पृ०११० ।

असुरेज्योगलपरियद् । एव थीणगिद्धितिग अर्णताणु० आदि० (१) अडुकसाय ओगलिय०, णवरि जह० एगसमओ । सादासाद छण्णोकसाय-दोगदि-चदुजादि-पंचसंठार्ण ओरालिय० अगो० छसघडण-दो आणुपु०-आदाउजोत्र० अप्पसत्थवि० थानरादि० ४ थिरादि दो युग० दूमग-दुस्सर-अणादेज-जसगिति-अजसगिति जह० एग-समओ, उक्क० अतोमुहुत्त । पुरिसवेद-देवगदि-वेउच्चि० समच० वेउच्चि० अगो० ५ देवाणुपु० पसत्थवि० सुभग० सुस्सर० आदेज० उच्चागोद० जह० एगस० । उक्क० तिण्णि पलिदो० । चदुआयु० तिरिक्खगदि ओष । पंचिदिय० परवाहुस्सास तस० ४ जह० एगस० । उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि । पंचिदि० तिरिक्ख० ३ ओष । पठमदडओ जह० रुदाभ० । पज्जजोणिणीसु [ जहण्णेण ] अंतो० । उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोटिपुधत्त० । एवं थीणगिद्धितिग अडुकसा० । णवरि जह० एगस० । १०

छुद्रभव ग्रहण, उत्कृष्टसे अनतकाल असह्यता पुद्गल परावर्तन है<sup>१</sup> । स्थानगृद्धित्रिक, अर्णताणु वधी आदि आठ कपाय, तथा औदारिक शरीरमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए<sup>२</sup> । विशेष यह है, कि यहाँ जघन्य एक समय है । साता असतावेदनोय, ६ नोकपाय, २ गति, ४ जाति, ५ साथान, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, दो आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थायरादि ४, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, यश कीर्ति, अयश कीर्तिका जघन्य वधकाल एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है । पुरुषवेद, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वैक्रियिक अगोपाग, देवानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका जघन्य काल एक समय, उत्कृष्ट तीन पल्य है । चार आयु और तिर्यचगतिका ओषके समान जानना चाहिए । पचेन्द्रिय जाति, परघात उच्छवास, त्रस ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य प्रमाण है । पचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यचपर्याप्तक, पचेन्द्रिय योनिमती तिर्यचमें—ओषके समान जानना चाहिये । प्रथम दडकमें जघन्य वधकाल छुद्रभव ग्रहण प्रमाण है । तिर्यच पर्याप्तक तथा योनिमतियोंमें ( जघन्य ) अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट<sup>३</sup> पूर्वकोटि प्रथक्त्वाधिक तीन पल्य प्रमाण है ।

विशेषार्थ—एक देव, नारकी, मनुष्य अथवा विवक्षित पचेन्द्रिय तिर्यचसे विभिन्न अन्य तिर्यच मरकर विवक्षित पचेन्द्रिय तिर्यच हुआ । वहाँ सही स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदोंमें क्रमसे आठ आठ पूर्वकोटि काल व्यतीत करके तथा असही स्त्री, पुरुष, नपुंसकमें पूर्ववत् आठ आठ पूर्वकोटि प्रमाण काल-क्षेप करके पश्चात् उच्यपर्याप्तक पचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ अतर्मुहूर्त रहकर पुन पचेन्द्रिय तिर्यच असही पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर उनमेंके स्त्री, पुरुष, नपुंसकवेदी जीवोंमें पुन आठ आठ पूर्वकोटि प्रमाण काल व्यतीत करके पश्चात् सही पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तक स्त्री और नपुंसकवेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटिया तथा पुरुष वेदियोंमें

( १ ) "तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो हाति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतामुहुत्त उक्कस्सेण अणतफालमसखेज्योगलपरियद्"—पट्ट० का० ४८ । ( २ ) "सावणम्मदिट्ठी केवचिर कालादो हाति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।"—पट्ट० का० ५, ७, ८ । ( ३ ) "पंचिदिय-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपञ्च-पंचिदियतिरिक्खजाणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो हाति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोटिपुधत्तेण-अदियाणि ।"—पट्ट० का० ५७-५९ ।



तिष्णि-सत्त-दम-सत्तारम सागरोरमाणि मादिरेयाणि । उक्कस्सेण अप्पण्णो द्विदी  
 कादब्बो (दब्बा) । साद[द]इणे तिरिक्खगादित्तिग पविट्टु जहं एयसं उक्कं अतो ।  
 थीणगिद्विदण्णओ णिरयोथो । णवरि अप्पण्णो द्विदी भा(भ)णिदब्बा । एव मिच्छत  
 दडओ । पुरिसवेददडओ अप्पण्णो द्विदी देसणा । आयुं ओष । तित्थयरं पट  
 माए जहण्णेण चदुरासीदि-वस्स-सहस्साणि, उक्कं सागरो देसुं । निदियाए जहं  
 सागरोरमं सादिरेयाणि । उक्कं तिष्णि सागरो देसुं । तदियाए जहं तिष्णि  
 सागं सादिरेयाणि । उक्कं तिष्णि सागं सादिरेयाणि । सत्तमाए णेरइ ओथो ।  
 णवरि दसणतिय मिच्छत्तं अणताणुअधिं ४ तिरिक्खगादित्तिगं च जहं अतो ।  
 मणुसं मणुसाणुपुअिं उचागो जहं अतो । तित्थयरं णरियं ।  
 १० § ४२. तिरिक्खेसु पचणाणं छदमणं मिच्छं अट्टकं भयदुं तेजाकं वण्णं ४  
 अशुरुं उपं णिमिणं पचंतगाइयाणं वधकालो जहं सुद्धाभयगाहणं, उक्कं अणतकालं

एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह सागर से कुछ अधिक है तथा उत्कृष्ट  
 अपने २ नरककी स्थिति प्रमाण जानना चाहिए । अर्थात् क्रमशः एक सागर, तीन सागर,  
 सात सागर, दस सागर, सत्रह सागर तथा बाईस सागर प्रमाण है । सात दडकमें तिर्यग्गति  
 त्रिक अर्थान् तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी और तिर्यग्वायुमें प्रविष्ट जीवका वधकाल जघनसे  
 एक समय, उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त प्रमाण है । त्यानगृद्धि दडकका वधकाल नरक गतिकी श्रेय  
 रचनाने समान है । विशेष यह है कि यहाँ अपनी २ स्थिति कहनी चाहिए ।

विशेष—ओष रचना वाला ताड़पत्रका अश नष्ट हो गया, अतः श्रेय रचना अज्ञात है ।

मिथ्यात्व दडकमें इसी प्रकार जानना चाहिए । पुरुषवेद दडकमें अपनी २ स्थिति प्रमाण  
 त्रिंशु कुछ कम न बाल है ।

त्रायुका वधकाल श्रेयसे समान है । तीर्थंकर प्रकृतिका वधकाल प्रथम पृथ्वीमें जघनसे  
 चौसती हजार वर्ष है उत्कृष्ट देशीन एक सागर है ।

विशेषार्थ—इस वर्णनसे विदित होता है, कि तीर्थंकर प्रकृतिका वधकाल नरकमें कमसे कम  
 ८४ हजार वर्ष की आयु प्राप्त करेगा । श्रेयिक महाराजके जीवते नरकमें जाकर ८४ हजार  
 वर्ष की आयु प्राप्त की है । यह जघन्य आयु तीर्थंकर प्रकृतिके साथ होती है ।

दूसरी पृथ्वीमें जघन्य साधिक एक सागर, उत्कृष्ट किंचित् ऊन तीन सागर है । तीसरी  
 पृथ्वीमें जघन्य साधिक तीन सागर उत्कृष्ट साधिक तीन सागर है ।

विशेषार्थ—तीसरी पृथ्वीमें यद्यपि सामान्य रूपसे सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति पाई  
 जाती है किन्तु यहाँ साधिक तीन सागर प्रमाण वाला वर्णनसे प्रतीत होता है, कि तीर्थंकर  
 प्रकृतिका वधकाल साधिक तीन सागर प्रमाण होगा ।

मातनी पृथ्वीमें—नारकियोंक श्रेयज्ञानना चाहिए । विशेष यह है कि दर्शनानरण ३,  
 मिथ्यात्व, अनतानुपपी ४, तिर्यग्गतित्रिकका जघन्य वधकाल अतर्मुहूर्त है । मनुष्यगति,  
 मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वधगोत्रना जघन्य काल अतर्मुहूर्त है । यह तीर्थंकर प्रकृति नहीं है ।

§ ४२ तिर्यग्गतिमें—५ ज्ञानानरण ६ दर्शनानरण, मिथ्यात्व, ८ कषाय, भय, अनुगुप्ता, तैजस  
 कामो लक्षरी, धर्म ८, अशुरुत्वा, वधघान, निर्माण और ५ अतरायोका जघन्यसे वधकाल



तिणिपल्लिदो० पुच्चकोडिपुघ०] सादावे० चदुआयु ओघ । अमाद०-छण्णोक०-  
 तिणिगदि-चदु जादि-ओरालिय०-पचसठा०-ओरालिय-अगोवंग-छसघ०-तिणिआणु०-  
 आदाउज्जो०अप्पसत्थ०-यावरादि०४-थिरादिदोयुग०दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-जसगिच्छि-अजस  
 गिच्छि-णीचागो० जहण्णेण एगसमओ । उक्क० अतो० । पुरिस० देवग० ४ समच०  
 पसत्थ० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज० उचागो० जह० एगस० । उक्क० तिणि पल्लिदो० ५  
 सादिरे०। मणुसिणीसु देसू० । पंचिदिय० परघादु० तस० ४ तिरिक्खोघं । आहार० २  
 जह० एग० । उक्क० अतो० । तित्थ० जह० एग० । उक्क० पुच्चकोडिदेसणा ।

§ ४४. देवेषु-पचना० छदसणा०वारसक०भयदुगुं० ओरालिय०तेजाक०वण्ण०४  
 अगु० ४ वादर-पज्जत्त-यत्तेय० णिमि० पचत० जह० दसवस्ससहस्सा० । उक्क० तेतीस  
 सा० । थीणगिच्छित्तिग० मिच्छ० अणताणुंघि० ४ जह० एगस० [णर] मिच्छ० १०

पर्याप्त मनुष्यनीमें जघन्य वधकाल अतर्मुहूर्त प्रमाण है । ( उल्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिक तीन पल्य है ) । सातावेदनीय, चार आयुका बंधकाल भोगवत् जानना चाहिए । असातावेदनीय, ६ नोऋपाय, तीन गति, चार जाति, औदारिक शरीर, पाच सस्थान, औदारिक अगोपाग, छह सहनन, तीन आनुपूर्वी, आवाप, उद्योत अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग दुस्सर अनादेय, यश कीर्ति, अयश कीर्ति तथा नीचगोत्रका जघन्य वधकाल एक समय, उल्कृष्ट अतर्मुहूर्त है । पुरुषवेद, देवगति ४, समचतुरस्र सरपान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उचागोत्रका जघन्य एक समय, उल्कृष्ट साधिक तीन पल्य प्रमाण है । विशेष यह है कि मनुष्यनीमे देशोन तीन पल्य है । पचेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का बंधकाल तिर्यञ्चों के भोगवत् है । आहारकद्विकका जघन्य एक समय, उल्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । तीर्थकरका जघन्य एक समय, उल्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है ।

§ ४४ देवगतिमे-५ क्षानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कामाण शरीर, वर्ष ४, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण तथा पञ्च अतरायोंका जघन्य दस हजार वर्ष, उल्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण है ।

विशेषार्थ-देवोंकी जघन्य उल्कृष्ट आयुकी अपेक्षा यह वर्णन हुआ है ।

स्थानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनवानुषधी ४ का जघन्य वधकाल एक समय है । (इतना विशेष है कि) मिथ्यात्वका जघन्य वधकाल अतर्मुहूर्त है किन्तु सनका उल्कृष्ट वधकाल ३१ सागर प्रमाण है ।

१ 'असंजदसम्मादिद्धी केवचिरं कालादो होदि ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण तिणि पल्लिदोवमाणि सादिरेयाणि तिणि पल्लिदोवमाणि देसणाणि ।' -पट् २१० का० ७९-८१ ।

"मणुस-मणुसपत्तएणु सादिरेयाणि तिणि पल्लिदोवमाणि अण्णत्थ देसणाणि ।" -व०टी० का० पृ० ३७७ ।

पूर्वकोटि आयु के निभाग में मनुष्यायुको बाधनेवाले मनुष्यने अतर्मुहूर्तमें सम्यक्त्व प्राप्त किया तथा सम्यक्त्व छहित भोग भूमिमें तीन पल्य त्रिताए और भरकर देव हुआ । इस प्रकार साधिक तीन पल्य है । कुछ कम तीन पल्य प्रमाणकाल मनुष्यनिया में है । कोई मिथ्यात्वी मनुष्य भोगभूमिमें तीन पल्यकी स्थिति वाला मनुष्य हुआ । ९ माह गममें त्रिताए, पश्चात् ४९ दिनमें सम्यक्त्व लाभ किया और सम्यक्त्वपुक्त शेष तीन पल्य पूर्ण कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार ९ माह ४९ दिन कम तीन पल्य प्रमाण काल हुआ-घ० टी० का० पृ० ३७८ ।

साददहओ तिरिकसोष । णरि तिरिकसगदितिग ओरालियं च पनिट्टं । पुनिसेहेदंहेओ  
 तिरिकसोष । णरि जोणिवीसु देवणा । चट्टु आयु० ओष । पंचिदियदंडओ तिरिकसत्तं  
 पंचिदिय-तिरिकस-अपज्जत्त पचनाणा० णवदसणा० मिच्छत्त-सोलसन्माय-भरदुगु० आण  
 लिय० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमिणं पचत० जह० खुद्धा० । उक्क० अओ० ।  
 ५ दो आयु ओष । सेसाणं जह० एगस० । उक्क० अतो० । एव सत्त पपज्जत्त  
 तमाण थावरण च ।

§ ४३. मणुस० ३-पचना० णवदस० सोलसक० भयदुगु० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु०  
 उप० णिमिण पच०-(पचत०) जह० एगस० । [ उक्कस्सेण ] तिणि पन्निओ  
 पुव्वकोटिपुष० । एव मिच्छ० । णवरि जह० खुद्धा० । पज्जत्तमणुसिणि अतो० [ उक्कस्सेण ]

सात पूर्वकोटिया भ्रमण करके पश्चात् देवकुह, वा उत्तरकुहमे तिर्यचोमे पूर्ववदायुके वर  
 पुरुष या स्त्री तिर्यच कुष्ठा तथा तीन पत्योपम फाळ व्यतीत करके मरा और देव हुआ । इस  
 प्रकार पूर्वकोटि पृथक्त्र वर्ष अधिक तीन पत्य फहे हैं । ( ध० टी० का० पू० ३६७ ३६० )  
 इसीप्रकार स्वानुच्छिन्निक तथा आठरूपायका भी जानना चाहिए । विशेष यह है कि  
 यहाँ जघन्य एव समय है । साता दहकमें तिर्यचोके ओषवत् जानना चाहिए । विशेष तिर्यचदि  
 तिर्यचायु, तिर्यचानुपूर्वा तथा औदारिक शरीरमे जानना चाहिए । पुरुषवेद दंडक का तिर्यचोके  
 ओषवत् है । इतना विशेष है कि योनिमती तिर्यचामे कुछ कम जानना चाहिये । चार आयुका  
 षड काल ओषवत् जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय दहकमें तिर्यचकि ओषवत् है ।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यच लभ्यपर्याप्त होम—१ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, मय  
 जुगुप्सा औदारिक-तेजस-कार्माण शरीर वर्ष ४ अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पञ्च अंतरायों  
 का षडकाल जघयसे छुद्रभवमहण, उत्कृष्ट अतमुहूर्त है ।  
 मनुष्य तिर्यचायुका षडकाल ओषवत् है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतमुहूर्त है ।

इसप्रकार सपूर्ण ध्वपर्याप्त वसों तथा थावारो में जानना चाहिए ।  
 § ४३ मनुष्य सामाय, मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनियोमे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६  
 कषाय, मय, जुगुप्सा, तेजस, कार्माण, वर्ष ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायों  
 का जघन्य षडकाल एक समय, ( उत्कृष्ट ) पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिप तीन पत्य प्रमाण है । इसी  
 प्रकार मिथ्यात्वका भी षडकाल है । विशेष इतना है कि जहा जघन्य छुद्रभवमहण प्रमाण है ।

(१) यदा नारह भगोमे से ११ भगोमे पूर कोटिपृथक्त्वर्ष अथात् आठ आठ पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण  
 परिभ्रमण का काल और अतके बारहव भगोमे सातपूर्व कोटि वर्ष प्रमाण परिभ्रमण करनेका काल मिलकर  
 १५ पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण होता है । इस का च जो पूर्वकोटिपृथक्त्व शब्द से महण किया है ।  
 (२) 'पंचिदियतिरिकसअपज्जत्ता वेत्थिर कालादो होति ? एगजीर पडुव्व जहण्णेग खुदाभन्नगदण,  
 उक्कस्सेण अतामुहुरेच । —पटर० का० १५, ६० ।  
 (३) 'मणुसगदीए मणुस मणुसपज्जत्त-मणुसिणिसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होदि ? एगजीर पडु  
 व्व जहण्णेग अतामुहुरेच उक्कस्सेण तिणि पन्निओवमाणि पुनकोटिपुषत्तंअदियाणि । —पट्ट २० का० ६८ ७० ।  
 यहाँ यह विशेष है कि मनुष्य मिथ्यात्वो के ४० पूर्व कोटि अधिक तीन पत्य है पचास मिथ्यात्वो  
 मनुष्य के ०३ पूर्वकोटिओं अधिक हैं । मनुष्यनी मिथ्यात्वो के सात पूर्वकोटि अधिक हैं । यथा- मणुस  
 मिच्छादिट्ठिसव्वेय सत्तेत्तालपुनकोटीआ अदिया होति पञ्चत्तमिच्छादिट्ठीण तेवोत्तपुनकोटीयो, मणुसिणि  
 मिच्छादिट्ठीसु सत्त पुव्वकोटीओ अदियाओ । —ध० टी० का० पू० ३७३ ।

तिष्णिपल्लिदो० पुत्रकोडिपुध०] सादावे० चहुआयु ओघ । असाद०—छण्णोक०—  
 तिष्णिगदि-चदु जादि-ओरालिय०-पचसठा०—ओरालिय-अंगोवंग-उसव०—तिष्णिआणु०—  
 आदाउज्जो०अप्पसत्य०-धात्रादि०४-थिरादिदोयुग०दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-जसगित्ति-अजस  
 गित्ति-णीचागो० जहण्णेण एगसमओ । उक्क० अतो० । पुरिस० देवग० ४ समच०  
 पसत्य० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज० उचागो० जह० एगस० । उक्क० तिष्णि पल्लिदो० ५  
 सादिरे० । मणुसिणीसु देसु० । पचिदिय० परघादु० तस० ४ तिरिक्खोघं । आहार० २  
 जह० एग० । उक्क० अतो० । तित्य० जह० एग० । उक्क० पुच्चकोडिदेवणा ।

§ ४४. देवेसु—पंचणा० छदंसणा० वारसक० भयदुगु० ओरालिय० तेजाक० वण्ण० ४  
 अणु० ४ वादर-पज्जत्त-पत्तेय० णिमि० पचत्त० जह० दसवस्ससहस्मा० । उक्क० तेतीस  
 सा० । धीणगिद्धित्तिग० मिच्छ० अणताणुंघि० ४ जह० एगस० [ णवरि ] मिच्छ० १०

पर्याप्त मनुष्यनीमें जघन्य बंधकाल अतर्मुहूर्त प्रमाण है । ( उक्कृत पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिक तीन पल्य है ) । सातावेदनीय, चार आयुका बंधकाल ओघवत् जानना चाहिए । असातावेदनीय, ६ नोकपाय, तीन गति, चार जाति, औदारिक शरीर, पाच सस्थान, औदारिक अंगोपाग, छह सहनन, तीन आनुपूर्वी, आताप, उद्योत अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग दुस्सर अनादेय, यश कीर्ति, अयश कीर्ति तथा नीचगोत्रका जघन्य बंधकाल एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है । पुरुषवेद, देवगति ४, समचतुरस्र सरान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य प्रमाण है १। विशेष यह है कि मनुष्यनीमें देशोन तीन पल्य है । पचेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का बंधकाल तिर्यञ्चो के ओघवत् है । आहारकट्टिकका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । तीर्थकरका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है ।

§ ४४ देवगतिमे—५ क्षान्तावरण, ६ दर्शानवरण, १० कपाय, भय जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कामाण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण तथा पञ्च अतरायोंका जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण है ।

विशेषार्थ—देवोंकी जघन्य उत्कृष्ट आयुकी अपेक्षा यह वर्णन हुआ है ।

स्थानगुद्धित्तिक, मिथ्यात्व, अनतानुवधी ४ का जघन्य बंधकाल एक समय है । (इतना विशेष है कि) मिथ्यात्वका जघन्य बंधकाल अतर्मुहूर्त है किन्तु सप्तका उत्कृष्ट बंधकाल ३१ सागर प्रमाण है ।

१ 'अर्चवदसमादिद्वी केचरिं कालादो होदि ? एगजाव पडुव जहण्णेण अतोमुहूच, उक्कस्सेण तिष्णि पल्लिदोवमाणि सादिरेयाणि तिष्णि पल्लिदोवमाणि देवणाणि ।'—पट्ट २० का० ७९-८१ ।

"मनुस-मनुसपज्जएसु सादिरेयाणि तिष्णि पल्लिदोवमाणि अण्णत्य देवणाणि ।"—२०टी० का० पृ० ३७७ ।

पूर्वकोटि आयु के त्रिभाग में मनुष्यायुको बाधनेवाले मनुष्यने अतर्मुहूर्तमें सम्यक्त्व प्राप्त किया तथा सम्यक्त्व सहित भोग भूमिमें तीन पल्य त्रिताए और मरकर देव हुआ । इस प्रकार साधिक तीन पल्य है । कुछ कम तीन पल्य प्रमाणकाल मनुष्यनियों में है । कोइ मिथ्यात्वी मनुष्य भोगभूमिमें तीन पल्यनी स्थिति वाला मनुष्य हुआ । ९ माह गभमें त्रिताए, पश्चात् ४९ दिनमें सम्यक्त्व लाभ किया और सम्यक्त्वयुक्त शेष तीन पल्य पूरा कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार ९ माह ४९ दिन कम तीन पल्य प्रमाण काल हुआ ।—४० टी० का० पृ० ३७८ ।

साददडओ तिरिक्सोघं । णवरि तिरिक्सगदितिग ओरालिय च पनिहं । पुसिसेवेदडके  
तिरिक्सोघ । णवरि जोणिणीसु देसणा । चदु आयु० ओघ । पचिदियदडओ तिरिक्सोघ ।  
पचिदिय तिरिक्स-अपजत्त पचणाणा० णवदसणा० मिच्छत्त सोलसरुमाय मयदुगु० आण-  
लिय० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमिण पचत० जह० खुद्धा० । उक्क० अता०  
५ दो आयु ओघ । सेसाण जह० एगस० । उक्क० अतो० । एव सत्त थपज्जसाण  
तमाण यावराण च ।

§ ४३ मणुस०३-पचणा० णवदस० सोलमक० मयदुगु० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु०  
उप० णिमिण पच०-(पचत०) जह० एगस० । [ उक्कस्सेण ] तिणि पल्लो  
पुव्वकोडिपुध० । एव मिच्छ० । णवरि जह० खुद्धा० । पज्जत्तमणुसिणि अतो० [ उक्कस्सेण

सात पूर्वकोटिया भ्रमण करके पश्चात् देवकुरु, वा उत्तरकुरुमे तिर्यंचाम पूर्वान्नायुके वर  
पुरप या स्त्री तिर्यंच हुआ तथा तीन पल्लोपम काल व्यतीत करके मरा और देव हुआ । इस  
प्रकार पूर्वकोटि पृथक्कर वर्ष अधिक तीन पल्य कहे हैं । ( घ० टी० का० पू० ३६७, ३६७ )  
इसीप्रकार स्यान्नृद्धिजिक तथा आठरुपायका भी जानना चाहिए । विशेष यह है कि  
यहाँ जघन्य एव समय है । साता दडकमे तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष तिर्यंचादि,  
तिर्यंचायु, तिर्यंचानुपूर्वा तथा औदारिक शरीरमे जानना चाहिए । पुरुषवेद दडक का तिर्यंचोंके  
ओघवत् है । इतना विशेष है कि योनिमती तिर्यंचोंम कुछ कम जानना चाहिये । चार आयुका  
बध काल ओघवत् जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय दडकमें तिर्यंचोंके ओघवत् है ।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच लक्ष्यपर्याप्त मीमे— हानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, मय  
जुगुप्सा औदारिक-तैजस-कामाण शरीर वर्ण ४ अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पञ्च अंतरायों  
का बधकाल जघ यसे क्षुद्रभवग्रहण, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है २ ।  
मनुष्य तिर्यंचायुका बधकाल ओघवत् है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

§ ४३ मनुष्य सामाय, मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनियामे-५ हानावरण, ९ दर्शनावरण, १६  
कपाय, मय, जुगुप्सा, तैजस कामाण वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अंतरायों  
का जघन्य बधकाल एक समय, ( उत्कृष्ट ) पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिक तीन पल्य प्रमाण है । इसी  
प्रकार मिथ्यात्वका भी बधकाल है । विशेष इतना है कि जहा जघन्य क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है ।<sup>३</sup>

(१) यहाँ नारद भवाने से ११ मनोंमें पू० कोटिपृथक्त्ववर्ष अर्थात् आठ आठ पूर्ण कोटिवर्ष प्रमाण  
परिभ्रमण का काल और अतके नारदवें मनमें सातपूर कोटि वर्ष प्रमाण परिभ्रमण करनेका काल मिलकर  
९५ पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण होता है । इस काल को पूर्वकोटिपृथक्त्व शब्द से ग्रहण किया है ।  
(२) पचिदियतिरिक्सापजत्ता वेचिदं कालादो होति २ एगजीव पडुच जहण्णेण खुदामन्यग्रहण  
उक्कस्सेण अतामुत्त । —घट्टर० का० १५, ६७ ।  
(३) 'मणुसगदीप मणुस मणुसपजत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिद्वी देवचिर कालादो होदि २ एगजीव पडु  
च जहण्णेण अतोमुत्त उक्कस्सेण तिणि पल्लोवमाणि पुत्रकोटिपुधत्तेणम्महियाणि । —घट्ट र० का० ६८ ७० ।  
यहाँ यह विशेष है कि मनुष्य मिथ्यात्वों के ५७ पूर्व कोटि अधिक तीन पल्य है पर्याप्त मिथ्यात्वों  
मनुष्य के २४ पूर्णकोटियों अधिक हैं । मनुष्यनी मिथ्यात्वों के सात पूरकोटि अधिक हैं । यथा- मणुस  
मिच्छादिद्विष देव सरेतालपुत्रकोटीआ अहिया होति पञ्चमिच्छादिद्विष तेवीसपुत्रकोटीयो मणुसिणि  
मिच्छादिद्विष सच पुत्रकोटीयो अहियाआ । —घ० टी० का० पू० ३७३ ।

§ ४५, एइदिएसु-पंचणा०णउदंसणा०मिच्छ०सोलसक०भयदुगुं०ओरालिय०तेजाक०  
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं पचतरा० जह० सुद्धा० । उक्क० अणंतकालम० वादरे०  
अगुल० असं० सुहुमे असंखेजा लोगा । वादरे इदिय-पज्जत्ता० जह० अतोमु० । उक्कस्सेण  
संखेजवस्ससहस्सा० । सुहुम-एइदि० पज्जत्त जहण्णु० अतोमु० । तिरिक्खमगदितिय जह०  
एस० । उक्क० असंखेजा लोगा । एवं सुहुमवादरे अगुलस्स असरो० । पज्जत्ते सखे- ५  
ज्जाणि वस्मसहस्साणि । सुहुम-पज्ज० जह० एगम० उक्क० अतोमु० । सेसाण सादादीण  
जह० एस० । उक्क० अतोमु० । दो आयु० ओष । एव सव्व-एइदियाण णेदच्च ।

§ ४६, विगलदियाणं-पंचणा०णउदंसणा०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालिय-  
तेजाकम्मइयशरीर-वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमिण पचतराइयाण जहण्णेण सुद्धाम०  
पज्जत्ते अतोमु०, उक्कस्सेण सखेजाणि वस्ससहस्साणि । दो आयु ओषं । सेसाणं १०  
सा[दा] दीण जह० एस० । उक्क० अतोमु० ।

§ ४५ एकेन्द्रियोंमें—५ हानावरण ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-  
तजस-कार्माण शरीर, वर्ष ४, अगुरुलघु उपघात, निर्माण, पाच अन्तरायका बन्धकाल क्षुद्रभव  
प्रमाण लघु यसे है तथा उत्कृष्ट अन्तकाल प्रमाण जानना चाहिए । वादर एकेन्द्रियमें जघन्यसे  
अगुलके असत्यातमे भाग प्रमाण है । सूक्ष्ममें असत्यात लोक प्रमाण है ।

विशेष—यहाँ 'अगुल का असत्यातवा भाग' क्षेत्रकी मर्यादा का द्योतक शब्द, काल  
के लिए प्रयुक्त हुआ है । इसका तत्पर्य यह है कि आकाशके उक्त क्षेत्रमें जितने प्रदेश आवें  
उतनी सन्या प्रमाण समयरूप काल को ग्रहण करना चाहिए ।

वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकमे जघन्य बन्धकाल अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सत्यात हजार वर्ष प्रमाण  
है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकमे जघन्य तथा उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त प्रमाण है ।

तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी तथा उद्योतका जघन्य से एक समय, उत्कृष्ट असत्यात लोक  
प्रमाण है । इस प्रकार सूक्ष्म वादर एकेन्द्रियोंमें अगुलके असत्यातर्वे भाग प्रमाणकाल है ।  
किन्तु इनके पर्याप्तकोंमें सत्यात हजार वर्ष प्रमाण काल है । सूक्ष्मपर्याप्तकोंमें जघन्य एक समय,  
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त  
प्रमाण बन्धकाल है । मनुष्य तथा तिर्यंचायुका बन्धकाल ओषधत्त जानना चाहिये । इस प्रकार  
सम्पूर्ण एकेन्द्रियोंमें जानना चाहिये ।

§ ४६ त्रिकलेन्द्रियोंमें—५ हानावरण, ९ दर्शनावरण मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा,  
औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ष ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका  
जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव प्रमाण है । किन्तु पर्याप्तकों में अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्यकाल है ।

(१) 'इदियागुनादेण एगनीय पडुच्च जहण्णेण खुद्धामग्गहर्ण, उक्कस्सेण अणतकारमसवेज्जपोगल  
परिपट्टि'—पट्ट० का० १०७-१०९ । (२) "वादरदियपज्जत्ता केवचिर कालादो होति? एगनीय  
पडुच्च जहण्णेण अतामुदुच्च, उक्कस्सेण सखेजाणि वासवहस्साणि ।"—पट्ट० का० ११३-११५ । (३) "सुहुमें-  
दियज्जत्ता एगनीय पडुच्च जहण्णेण अतोमुदुच्च, उक्कस्सेण अतोमुदुच्च"—पट्ट० का० १२०-१२४ ।

अतो० । उक्क० एककत्तीस सा० । सादासाद० छण्णोक० तिरिक्ख० एहदि० पचस०  
 पचसघ० तिरिक्खगदिपाओ० आदाउओव-अप्पसत्थवि० यिरादिदोयुग० दूमगदुस्सर०-  
 अणादेज्ज-जम० अजस० णीचा० जह० एग० । उक्क० अतो० । पुरिस० मणुस०  
 पचिदि० समच० ओरालिय० अगो० वज्जरिमह० मणुसाणु० पमत्थवि० तस० सुभग०  
 ५ मुस्सर० आदेज्ज० उच्चागो० जह० एगस० । उक्क० तेत्तीस सा० । दो आयु ओघो  
 (ओघ) । तित्थय० जह० वेसाग० सादि० । उक्क० तेत्तीस सा० । एव सच्चदेवाणमप्प  
 प्पणो-ट्टिदिकालो षोदच्चो याव सच्चद्वा त्ति । णवरि भवणरासि-वाण-वेत्तर-जोदिसियाण  
 तित्थपर णत्थि । सणक्कुमारारदि पचिदियसयुत कादच्च । एव एइदिय धानरि(र)णत्थि ।  
 आणदादित्तिरिक्खायु-तिरिक्खगदि० ३ णत्थि । मणुसगदि धुण कादच्च ।

**विशेष—**कोई मिथ्यात्वी द्रव्यलिङ्गी मरकर ३१ सागरकी आयुवाले प्रियेयक वामी देवों में उत्पन्न हुआ । वहा उसने जीवन भर मिथ्यात्वादिवा बध किया । इस अपेक्षा ३१ सागर प्रमाण बधकाल कहा है ।

साता असाता वेदनीय, ६ नोवपाय, तिर्यचगति, एकेन्द्रिय पञ्च सस्थान, पञ्च सहनन, तिर्यचगत्यानुपूर्वी आताप, उद्योत अपरास्त विहायोगति, स्थिरादि दो युगल, दुर्भंग दुस्सर, अनादेय, यश कीर्ति, अयश क्रीति, नीचगोत्रका जपन्य एक समय उत्कृष्ट अतमुहूर्त है । पुरुषवेद, मनुष्य गति, पचेन्द्रिय जाति समचतुरस्र सस्थान, औदारिक अगोपाग, वज्जवृषभ सहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परास्त विहायोगति त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्र का जपन्य एक समय है, उत्कृष्ट ३३ सागर है ।

**विशेषार्थ—**यह उत्कृष्ट बधकालका कथन सर्वार्थसिद्धिके देवों की अपेक्षा है ।

दो आयुका बधकाल औघवत् जानना चाहिए । तीर्थंकर प्रकृति का जपन्य बधकाल साधिक दो सागर है, उत्कृष्ट ३३ सागर है ।

**विशेषार्थ—**देवगति की अपेक्षा तीर्थंकर प्रकृति का बध बलपवासी देवोमे होता है । सौषर्भद्विक्रमे आयु साधिक द्विसागरोपम है और सर्वार्थसिद्धिके ३३ सागरोपम है । इस अपेक्षा यहाँ वर्णन किया गया है ।

इस प्रकार सब देवोंमें अपनी अपनी स्थिति प्रमाण बन्ध का काल सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जानना चाहिए । इतना विशेष है कि भवनवामी, व्यतर तथा व्योत्तिपी देवोमे तीर्थंकर प्रकृति नहीं है । सनत्कुमारारदि देवोमे पचेन्द्रियका संयोग करना चाहिए । वहाँ पचेन्द्रिय तथा स्थावर नहीं हैं ।

**विशेष—**सौषर्भद्विक्रमे आगे केवल पचेन्द्रिय जातिका बध होता है, एकेन्द्रिय, स्थावर प्रकृतिका बध नहीं होता है ।

आनवादि स्वर्गोंमें—तिर्यचायु तिर्यचगति, तिर्यच्चातुपूर्वी तथा उद्योत का बध नहीं है । यहाँ मनुष्यगति का ध्रुव रूपसे भग करना चाहिए । (कारण, यहाँ मनुष्यगतिका ही बन्धहोता है) ।

**विशेष—**शतारचतुष्टय नामसे ख्यात तिर्यचायु, तिर्यचगति, तिर्यचातुपूर्वी तथा उद्योतका बध शतार सहस्रारसे ऊपर नहीं होता है ।

(१) "देवगदीप देवेसु मिच्छदिद्री केनचिर फालादो होदि ? एगवीव पदुच जहण्णेण अतोमुहुच, उक्कत्थेण एवचचाय सावरोपमाणि ।" -पट् २० का० ८७-८९ ।

(२) 'वप्पिन्धीसु ण तित्थ' -गो० क० गा० ११२ । पट् ० टी० भा० १ पृ० ९१, १३१ ।

पणवण्ण पलिदोयम देसुण । चटुआयु ओघ । देवगदि० ४ जह० एग० । उघ० तिणिण-  
पलिदोय० देसु० । ओरालिय० परघादुस्सास० वादर-पज्जत्त-पत्तेय० जह० एग० ।  
उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादिरे० । तित्थय० जह० एग० । उक्क० पुब्बकोडिदेसु० ।

§ ५६, पुरिमवे०—पंचणा० णमदस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगु० तेजाकम्म०  
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचतरा० जह० अतो० । उक्क० सागरोवमसदपुघ० । पुरि- ५  
सवेद ओघ । मणुसगदिपचग जह० एगम० । उक्क० तेत्तीस सा० । देवगदि० ४ जह०  
एगस० । उक्क० तिणिण पलिदोयम० सादिरे० । पंचिदिय-परघादुस्सा० तस० ४ जह०  
एगस० । उक्क० तेमट्टिसागरोवमसदं (द०) । समचटु० पसत्थपि० सुभग-सुस्सर० आदेज्ज०  
उच्चागो० जह० एग० । उक्क० वेडापट्टिसाग० सादि० तिणिण पलिदो० देसु० । सादादि  
जह० [एग० उक्क० अतो०] । आयुगचटुमस (क्क) इत्थिभगो । तित्थयर ओघ । १०

सहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक  
समय, उत्कृष्ट देशोन ५५ पल्योपम प्रमाण है ।

विशेषार्थ—एक जीव ५५ पल्य स्थितिवाली देवी रूपसे उत्पन्न हुआ । उसने छह पर्याप्ति  
पूर्वा की, अन्तर्मुहूर्त निश्राम किया, पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमें विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त  
किया । पश्चात् जीवन पूर्ण करके मरण किया । अतः उसके तीन अन्तर्मुहूर्त कम ५५ पल्योपम  
प्रमाण काल सम्यक्त्वयुक्त स्त्रीवेदका है, उसमें पुरुपवेदादिका बन्ध बननेके कारण उनका  
बन्धकाल देशोन ५५ पल्योपम कहा है ।

चार आयुका ओघवत् जानना चाहिए । देवगति चतुष्पन्का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट  
कुछ कम तीन पत्योपम है । औदारिक शरीर, परघात, उच्छ्वास, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येकका  
जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ५५ पल्योपम है । तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य एक समय,  
उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है ।

§ ५६ पुरुपवेदमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, वैजस,  
कार्माण शरीर, वर्षा ४, अगुरुत्त्वु उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त  
उत्कृष्टसे सागरोपम शतपृथक्त्व है । पुरुपवेदका बन्धकाल ओघवत् है ।

विशेष—इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि स्त्री और नपुंसकवेदी जीवोंमें बहुत  
बार भ्रमण करता हुआ कोई एक जीव पुरुपवेदी हुआ, सागरोपम शत पृथक्त्व काल पर्यंत  
भ्रमण करके अविवक्षित वेदको प्राप्त हो गया । ( घ० टी० का० पृ० ४४१ )

मनुष्यगतिपचक अर्थात् मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर,  
औदारिक आगोपागका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ३३ सागर प्रमाण है । देवगति ४ का जघन्य  
एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्योपम है । पचेन्द्रिय, परघात, उच्छ्वास, त्रस, धादर,  
पर्याप्त, प्रत्येक का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ६३०० सागरोपम है । समचतुरस्रस्थान,  
प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक दो

(१) "इत्थिवेदेसु असज्जसम्मदिट्ठी केवचिर कालादो हांति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त  
उक्कत्वेण पणवण्णपलिदोयमाणि देसुगाणि । घासणसम्मदिट्ठी ओघ । एगजीव पडुच्च जहण्णेण  
पगसमओ ।" -पट् २० का० ५, ७, २३०, २३४ ।



जहणु० अतो० । णवरि तित्थय० जह० एग० उक्क० अतो० । सेसाण सादादीण जह० एग० उक्क० अतोसु० ।

§ ५४. कम्मइयका०—देवगदि० ४ तित्थय० जह० एगस०, उक्क० वेसम० । सेसाण सन्नपगदीण जह० एग० उक्क० तिण्णिसमया ।

५ § ५५. इत्थिवेद०—पचणा० णधदम० मिच्छत्त० (त्त०) सोलसक० भयदुगु० तेनाक० (तेजाक०) वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचतरा० जह० एग०, उक्क० पल्लिवेम सदपुवत्त० । णवरि मिच्छ० जह० अतो० । सादासादा० छण्णक० (छण्णोको०) दोगदि चट्टादि-आहारदुगं पचसठाण पचसय० दो-आणुपुव्वि० आदा-उज्जोव-अप्पसत्थवि० थावर० ४ थिरादिदोयुग० दूमग-दुस्सर-अणादेज्ज० जस० अज्जम० णीचागो० जह० १० एग०, उक्क० अतो० । पुरिम० मणुसगदि० पच्चिदि० समचदु० ओरालिय० अगोण वज्जरिम० मणुसाणु पमत्थ० तस-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० उचागो० जह० एग० । उक्क०

विशेष यह है, कि तीर्थङ्कर प्रकृति का जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। शेष सातादि प्रकृतियों का जघन्य बन्धकाल एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

§ ५४ कार्माण काययोग मे—देवगति ४, तीर्थङ्करका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट दो समय बन्धकाल है। शेष सर्व प्रकृतियों का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन समय है।

निशेषार्थ—सासादन या असयतसन्त्यक्त्वी कार्माणकाययोगियों का सूक्ष्म एकेन्द्रियाम उत्पन्न होने का अभाव है। वृद्धि और हानिके क्रमसे विद्यमान लोकात्मे भी इनकी उत्पत्ति नहीं होती। इससे उत्कृष्ट दो समय कहा है। तीन समय प्रमाण बन्धकाल इस प्रकार है—एक सूक्ष्म एकेन्द्रियजोव अधस्तन सूक्ष्म वायुकायिकों में तीन विग्रहवाले मारणातिक समुदातको प्राप्त हुआ। पुन अन्तर्मुहूर्तसे छिनायुष्क होकर उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर तीन विग्रहों में तीन समय तक कार्माणकाययोगी रहकर तथा चौथे समयमें औदारिकभिन्न काययोगी हो गया। तीन विग्रह करने की दिशा इस प्रकार है। ब्रह्मलोकवर्ती प्रदेश पर वाम दिशा सम्बन्धी लोकके पर्यन्त भागसे तिरछे दक्षिण की ओर तीन राजू प्रमाण जा, पुन १०३ राजू नोचे की ओर इषुगतिसे जाकर, पश्चात् सामने की ओर चार राजू प्रमाण जाकर कोणयुष्क दिशामे स्थित लोरुके अन्तर्वर्ती सूक्ष्मवायुकायिकों में उत्पन्न होने वाले के ३ विग्रह होते हैं। (घ० टी० का० ४३४-४३५)

§ ५५ स्त्रीवेदमे—५ ज्ञानानरण, ९ दर्शनावरण मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, वैजस, कार्माण शरीर, वर्णा ४, अगुरुत्तु उपपात, निर्माण ५ अंतरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पत्न्योपम शतप्रयत्न है। विशेष यह है कि मिथ्यात्वका बन्धकाल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है। साता असाता वेदनीय, ६ नोकपाय, दो गति, ४ जाति आहारकद्वि, पच सस्थान, ५ सहनन, दो आनुपूर्वी, आताप, जगोव, अप्रशस्त विहायोगति, रथावर ४, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुस्वर, अना देय, यश कीर्ति, अयश नीति, नीचगोनका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र सस्थान, औदारिक अंगोपाग, वज्रवृषभ

(१) "आशारमित्तकाययोगीसु पमत्तत्रदा केवचि कालो होति २ एगवीण पडुच जहणो अतामुदुच उक्कस्सेग अतामुदुच"—पट्ट २० काल० २१३-१६।

§ ६०. क्रोधादि० ४-पंचणा० चदुदंस० चदुसज० पचंत० जहण्यु० अतो० ।  
सैमाण जह० एगस० । उक्क० अतो० । णरि माणे तिणि संज० । मायाए दोणि  
सज० । लोभे०-पचणा० चदुदंस० लोभसज० पचतरा० जहण्यु०-अतो० । सेसाण  
जहण्येण एगम० । उक्क० अतो० ।

§ ६१. अरुसाई०-सादावे० ओघ । एव यथासाद । एव चेव केरलणाण-केवलदं- ५  
सणाण । णरि जह० अतोमु० ।

§ ६२. मदि०-मुद०-पंचणा० णरदं० मिच्छत्तं सोलमरु० भयदु० तेजाक० वण्ण०  
४ अगु० उप० णिमि० पचत० तिणि भगो ओघं । तिरिकसगदि-तिग ओघं । मणुमग०  
मणुसाशुपु० जह० एगस० । उक्क० एकतीसं० सादिरे० । देवगदि-वेउन्विपस०  
समचदु० पेउन्नि० अगो० देवगदिपाओ० पमत्थ० सुमग० सुस्सर० आदेज्ज० उच्चा० १०  
जह० एग० । उक्क० तिणि पलिदो० देसु० । पंचिदि० ओगलि० अंगो० परवाहु०

विशेष-उपशम श्रेणी की अपेक्षा यह काल कहा गया है । क्षपककी अपेक्षा जघन्य  
और उत्कृष्ट दोनों अतर्मुहूर्त प्रमाण हैं ।

§ ६०. क्रोधादि चतुष्कमे-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सञ्चलन, ५ अतरायका जघन्य  
और उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त प्रमाण है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है । विशेष यह है  
कि मानस्पायमे तीन सञ्चलन, माया कपायमे दो सञ्चलनका प्रथम है । लोभ कपायमे-५  
ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण सञ्चलन लोभ, ५ अतराय का जघन्य और उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त प्रमाण  
है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

§ ६१. श्रकपायियों-सातावेदनोयका ओघयत्त वंचकाल है । इसी प्रकार यथाख्यात समय,  
वेषलज्ञान, वेषलदर्शनमें भी जानना चाहिए । इतना विशेष है कि जघन्य वंचकाल  
अतर्मुहूर्त है ।

§ ६२. मत्त्वज्ञान, श्रुताज्ञानमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय,  
जुगुप्सा, तैजस, कामाण, वण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अतरायके तीन<sup>२</sup> भग  
ओघयत्त जानना चाहिए ।

विशेषार्थ-अभव्यसिद्धिक जीवकी अपेक्षा अनादि अपर्यवसित काल है । भव्यसिद्धिकके  
मिथ्यात्वका अनादि अपर्यवसित काल है । तीसरा भग सादि सान्तका है । इसी तीसरे भगमें जघन्य  
अतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन प्रमाण काल है । (ध०टी० काल० ३२४-३२५)

तिचर्पगति-त्रिकका ओघके समान है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी का जघन्य एक समय  
उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर प्रमाण वधकाल है । देवगति, वैश्वियिक शरीर, समचतुरस्र सस्यान,  
वैश्वियिक अगोपाग, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, प्ररास्त विहायोगति, सुभग, सुस्सर, आदेश और  
स्रगोत्र का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन तीन पत्य प्रमाण है । पचेन्द्रिय जाति, धौदारिक

( १ ) "चउण्ड उरसमा केरधिर कालादो होंति ? एगजीव पडुच्च जहण्येण एगसमय, उक्कस्सेण  
अतोमुहुत्तं, चदुण्ड उरगा एगजीव पडुच्च जहण्येण अतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ।"-पट् २०  
फाल० २२-२८ ।

( २ ) "एगजीव पडुच्च अणादिओ सज्जवसिदो, सादिओ सज्जवसिदो । जो सो सादिओ सज्जवसिदो  
तस्स इमो गिदेसो जहण्येण अतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्वयोग्गलपरियट्टं देय्ण ।"-पट् २० फाल० ३१०-३१३ ।

§ ५७ णउसक०-पचना० णवदसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगु० ओरालिय०  
 तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचतरा० जह० एगस०, मिच्छत्त सुदाम० ।  
 उक्क० अणतकाल-अससे० । पुरिस० मणुम० समचदु० वजरिसहस० मणुमाणु० पसत्थ०  
 सुभगसुस्मर-आदेज्ज० जह० एगस० । उक्क० तेचीस सा० देख्ठे० । तिरिक्खगदितिग  
 ओघ । देवगदि० ४ जह० एगस० उक्क० पुव्वकोडिदेसु० । पचिदिय० ओरालिय  
 अगो० परवादुस्मास-त्तस० ४ जह० एगस० । उक्क० तेचीस सा० सादिरे० । सादादीण  
 जह० एग० । उक्क० अतो० । तित्थय० जह० एग० । उक्क० तिण्णि सागरो० सादिरे० ।  
 § ५८ अगद०-पचना० चदुदस० चदुसज० पु० जम० उचागो० पचत० जह०  
 एग० । उक्क० अतो० । सादावे० ओघ ।  
 § ५९, सुहुमसप०-पचना० चदुदस० सादा० जस० उचा० पचत० जह०  
 एग० । उक्क० अतो० ।

छासठ सागरोपममे कुछ कम तीन पत्य न्यून जानना चाहिए । सातादिकका जघन्यसे [ एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त प्रमाण है ] आयुचतुष्कका स्त्रीवेदके समान भग है । तीर्थकर का ओघवत् है ।

§ ५७ नपुसक वेदमे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, रक्षकघाय, भय जुगुप्सा, औदा रिक-त्तैतस कार्माण शरीर, वर्षचतुष्क अगुरुलघु, उपघात निर्माण तथा पाँच अन्तरायोंक जघन्य एक समय है, किन्तु मिथ्यात्वका का क्षुद्रभय प्रमाण है । इनका उत्कृष्ट अन-तकाल असरघात पुद्गल परावर्तन है । पुरुषवेद, मनुष्यगति समचतुरस्र सरयान, वज्रतृपमसहनन मनुष्यानुपूर्वी प्रशस्तविहायोगति सुभग, सुस्वर आदेयका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ततीस सागर प्रमाण है ।

त्रिशोपार्थ-मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंको सत्तावाला कोई जीव मरणकर सप्तम पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ । छह पर्याप्तियाको पूर्णकर तथा विश्राम ले विशुद्ध होकर, सम्यक्को प्राप्त किया, एवं आयुके अतमुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यात्वको प्राप्तकर आगामी भवकी आयुका बन्ध किया । अतमुहूर्त विश्राम करके मरण किया । उसके छह अन्तमुहूर्त कम ३३ सागरप्रमाण बन्धकाल होगा । ( ध० टी० बाल० ४४३ )

तिर्यग्गतित्रिकका ओघके समान भग है । देवगति ४ का जघन्य बधकाल एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि है । पचेन्द्रिय, औदारिक आगोपाग, परघात, उत्कृष्टास, त्रस ४ का जघन्य एक समय उत्कृष्ट साधिक तैतीस सागर है । साता आदिक प्रकृतियोंका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अतमुहूर्त है । तीर्थकर प्रकृतिका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन सागर है ।

§ ५८ अपगत वेदमे-५ ज्ञानावरण, पच निद्राका अभाव होनेसे शेष चार दर्शनावरण, ४ संजलन, पुरुषवेद, यश-कीर्ति, लघुगौर ५ अतरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतमुहूर्त है । साता वेदनीयका ओघवत् है ।

§ ५९ सूक्ष्म सापराय समय में-५ ज्ञानावरण ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यश कीर्ति, लघुगौर, ५ अतरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतमुहूर्त बधकाल है ।

(१) "शुभसपनेदेसु मिच्छादिद्वी केररि कालादो हँति ? एगनीय पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुच उक्कत्तेण अणतकालमसंसेव्रयोगापरियट्ठ ।" -पट् २० धा० २२० ४२ ।

अरदि० सो० जाहारदुगं थिरादितिण्णि० युग० जह० एग० उक्क० अतो०। अप्पचक्खाणा  
वर० ४ तित्थयर जह० अतो० । उक्क० तेत्तीस सा० सादि० । अप्पचक्खाणा०  
(पचक्खाणा०) ४ जह० अतो० । उक्क० वादालीस सा० सादि० । अथमा तेत्तीम सा०  
सादिरे० परिज्जदि । दो-आयु ओघ । मणुसगट्टि-पचग जह० अतो० । उक्क० तेत्तीम  
सा० । देवगदि० ४ जह० एग० । [ उक्क० ] तिण्णि-पल्लिदो० सादि० । ५

§६६. एव ओधिद० । एव चेव मम्मादिद्धि० । णररि साद ओघं ।

§६७. मणपञ्ज०—पचणा० छद्दसण० च्छुसज० पुरिस० भयदुगु० देवगदि० पंचिदि०  
वेउ० तेजाक० समचदु० वेउञ्चि० अगोसंग० [ वण्ण० ] ४ देवगदि-पाओ० अगु० ४ पमत्थयि०  
तस० ४ सुमग-सुस्सर-अदेज० णिमिण तित्थयर उच्चा० पचत० जह० एग० । उक्क०  
पुव्वकोट्टिदेवणा । मादासा० च्छुणोक्क० आहारदुग० थिरादि-तिण्णि-युग० जह० एग० । १०  
उक्क० अंतो० । देवायु ओघ ।

§६८. एव सज्जदामामाडय-उडे० । णररि सज्जे साद ओघं । परिहार-सज्जदासज्जदाणं

अतमुं हूर्त, उत्कृष्ट साधिक ६६ सागर प्रमाण है । साता, असाता वेदनीय, हास्य-रति, अरति-शोक,  
आहारकद्विक और स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतमुं हूर्त है । अपत्या  
रयानावरण ४, तीर्थकरका जघन्य अतमुं हूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । प्रत्याग्यानावरण ४  
का जघन्य अतमुं हूर्त, उत्कृष्ट साधिक ४२ सागर प्रमाण है । अथवा, वृद्ध अधिक तेत्तीस  
सागर जानना चाहिए । दो आयुका ओघके समान है । मनुष्यगति पचक का जघन्य अतमुं हूर्त,  
उत्कृष्ट ३३ सागर है । देवगति ४ का जघन्य एक समय, [ उत्कृष्ट ] साधिक तीन पर्य है ।

§६९ अवधिदर्शनमे-इसी प्रकार जानना चाहिए । सम्यग्दृष्टिर्थांमि-इसी प्रकार जानना  
चाहिए । विशेष यह है कि साता वेदनीयका ओघके समान भग जानना चाहिए ।

§७० मन पर्ययज्ञानमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण ४ सज्जलत, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति,  
पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक-तैजस-कामांश शरीर, समचतुरस्रस्थान, वैक्रियिक अगोपाग,  
[ वर्ण ४ ] देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलयु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर  
आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उचगोत्र और ५ अतरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ६६ कम  
पूर्वकोटि है ।

विशेषार्थ-एक कोटि पूर्वकी आयुवाले किसी मनुष्यने गर्भकालसे लेकर आठवर्ष अतमुं हूर्त  
प्रमाण काल व्यतीत करके सकल मयमी वन मन पर्यय ज्ञानको उत्पन्न किया । जीवन भर  
मनपर्ययसंयुक्त रहा किन्तु मरणके अतमुं हूर्त रहने पर नीचेके गुणस्थानमें आकर मरण किया,  
अथवा आयुके अतमुं हूर्त होए रहनेपर श्रेणीका आरोहण कर मोक्षदिका क्षय करके निर्माण प्राप्त  
किया । इस प्रकार देशोन् पूर्वकोटि प्रमाणकाल है ।

साता-असाता वेदनीय, ४ नोकपाय, आहारकद्विक, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक  
समय, उत्कृष्ट अतमुं हूर्त वयकाल है । देवायुका ओघके समान है ।

§७१ इस प्रकार सामायिक, छेदोपस्थापना सयतमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि  
सयम मार्गणमें साता वेदनीयका ओघवत् जानना चाहिए ।

परिहारविमुक्तिसयतों तथा सयतामयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, ध्व  
प्रदृष्टियोंका जघन्य अतमुं हूर्त है, किन्तु असयतोंमें ध्रुव प्रदृष्टियोंका वयकाल मयस्थानके समान

सा० (दुस्मा०) तस० ४ जह० एग० । उक्क० तेचीसं सा० सादिरे० । जोरालियस० जह० एग० । उक्क० अणतकालमसखे० । आयु ओघ । सेसं जह० एग० । उ० अतो० ।

§ ६३. एव मिच्छादिद्वि० । अन्वयसिद्धि० एव चेव । णवरि धुवियाण अणादि ओ जपन्नवसिदो ।

§ ६४ विभगे०—पचणा० णवदस० मिच्छत्त सोलसक० भयदुगु० तिरिक्खगदि० पचिदि० औरालिय-तेजाक० औरालिय० अगो० वण्ण० ४ तिरिक्खगदि पाओ० अगु० ४, तस० ४ णिमिण णीचा० पचत० जह० एग०, मिच्छत्त० अतो० । उक्क० तेचीस सा० देसु० । मणुसग० मणुसाणु० जह० एग० । उक्क० एकतीस देसु० । आयु ओघ । सेसाण जह० एगम० । उक्क० अतो० ।

§ ६५ आमि० सुद०ओधिणा०—पचणा० छदस० चदुसज० पुगिसि० भयदुगु० पचिदि० तेजाक० ममचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्तपि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० उचा० पचत० जह० अतो०, उक्क० छावद्वि० सागरोव० सादिरे० । साटासा० हस्सरदि०

अंगोपाग, परधान, उच्छ्वास तथा त्रस ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । औदारिक शरीर का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल, अमर्यात पुद्गलपरानर्तन है । आयुका शोधवत् है । शेषका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अतमुहूर्त है ।

§ ६३ इसी प्रकार मिथ्यादृष्टिमें भी जानना चाहिए । अभव्यसिद्धिमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है, कि अभव्योंमें ध्रुव प्रकृतियोंका वधकाल अनादि अपर्यवसित अर्थात् अनन्त काल है ।

§ ६४ विभगावधि मे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाल, भय, जुगुप्सा, तिर्यग्गति, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस, कामीण शरीर, औदारिक अंगोपाग, वर्ण ४, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, जीवगोत्र और ५ अतरायोंका जघय एक समय, किंतु मिथ्यात्वों का जघन्य अतमुहूर्त तथा उत्कृष्ट देशोन ३३ सागर है ।

विशेषार्थ—एक मिथ्यात्वी सातवीं पृथ्वीमे वपत्र होकर अतमुहूर्तमे पर्याप्तियोंको पूर्ण कर विभगाज्ञानी हुआ । आयुके ३३ सागर पूर्ण कर मरण करके निकला, तब उमका विभग ज्ञान नष्ट हो गया, कारण अपर्याप्त कालमे विभग ज्ञानका विरोध है । इस प्रकार उत्कृष्ट वधकाल देशोन ३३ सागर प्रमाण है । ( घ० टी० काल० पृ० ४५० )

मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका जघय एक समय, उत्कृष्ट देशोन इन्तीस सागर है ।

विशेषार्थ—एक द्रव्यलिगी साधु मरण कर श्रेयैकमे उत्पन्न हुआ । ३३ सागरको प्राप्त करे । यहाँ अतमुहूर्तमें पयाप्त हो विभगावधिको प्राप्त करके शेष ३३ सागर प्रमाण काल व्यतीत करके मरा । उसके अतमुहूर्त कम ३३ सागर प्रमाण मनुष्यद्विकका वधकाल होगा । आयुका शोधके समान वधकाल है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतमुहूर्त होता है ।

§ ६५ आमिनिबोधिक, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, ४ सञ्जलन पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कामीण शरीर, समचतुरस्रसदान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रशत विद्यायोगति, त्रस ४ सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अतरायका जघय

तिरिक्त्वादि-पंचिदि० ओरालि० ओरालि० [अगो०] तिरिक्त्वाणु० तम० ४  
णीचा० जह० एग० । उक्क० तेचीमं-सत्तारस-सत्तमागरो० सादिरे० । णपरि तिरिक्त्वा-  
गदि-तिग णील० काउ० साद० भगो । किण्ण० णील० तित्थयर जहण्णु०  
अतो० । काउ० जह० अतो० । उक्क० तिण्णि साग० सादिरे० ।

§७१. तेउ०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलमक० पुरिस० भयदु० मणुमगदि० ५  
पंचिदि० तेजाक० समचदु० ओरालि० अगो० वज्जरिस० वण्ण० ४ मणुमाणु०  
अगु० ४ पसत्थ० तस० ४ सुभग-सुस्सरादेज्ज० णिमि० तित्थय० उच्चा० पचतरा०  
जह० अतो० । षीणगिद्धिदिग० अणत्ताणु० ४ एय० । उक्क० वेसागरोव० सादिरे० ।  
णपरि केमिंच जह० एगस० । तिण्णि आयु० देवगदि० ४ जहण्णु० अंतो० । ओरालिय०  
जह० दसउस्स-महस्साणि देस० । अथवा पल्लिदोवम सादि० । उक्क० वेसागरोव० १०

सात तथा १७ सागर प्रमाण क्रमशः पुरुषवेदादिका बन्ध किया, पश्चात् मरण किया । अतः  
सात तथा सत्रह सागरमें मिथ्यात्व दशाके तीन अन्तर्मुहूर्त कम होते हैं । सातवीं पृथ्वीमे ६ अन्त-  
र्मुहूर्त कम होते हैं । कारण वहाँसे मिथ्यात्वके दिना निर्गमन नहीं होता है । मरणके एक  
अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ । दूसरे अन्तर्मुहूर्तमें आयुबन्ध किया,  
तीसरेमें विश्राम किया, वादमे निर्गमन किया । इस प्रकार पूर्वके तीन और पश्चात्के तीन इस  
प्रकार ६ अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्रमाण बन्धकाल है । (ध० टी० काल० ३५९, ३६२)

चार आयुका जघन्य तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । तिर्यचगति, पचेन्द्रिय जाति,  
औदारिक शरीर, औदारिक [अगोपाग] तिर्यचानुपूर्वी, त्रस ४ तथा नीच गोत्रका जघन्य एक  
समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है, १७ सागर तथा ७ सागर है । विशेष यह है कि तिर्यच  
गतित्रिक नील तथा कापोत लेश्यामे साता वेदनीयकी भौति काल समझना चाहिये । कृष्ण  
नील लेश्यामे तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । कापोत लेश्यामे जघन्य  
अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक तीन सागर है ।

§७१ तेजोलेश्यामे-५ ज्ञानानरण, ९ दर्शनानरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा,  
मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, तैजस, कामाण, समन्वतुरस्त्रस्थान, औदारिक अगोपाग, वज्रतृपम  
नाराचसहनन, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४ सुभग, सुस्वर,  
आदेश्य, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । स्वानुगुद्धित्रिक,  
अनन्तानुगन्धी ४ का जघन्य एक समय, तथा पूर्वोक्त ज्ञानानरणादि सनका उत्कृष्ट बन्धकाल  
साधिक दो सागर है । विशेष यह है कि किन्हीं आचार्योंके मतसे उपरोक्त जघन्य  
रूपसे अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल वाली ज्ञानानरणादि प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय प्रमाण है ।

विशेषार्थ-एक मिथ्यात्वी कापोत लेश्याके कालश्रयसे तेजोलेश्यावाला हो गया । उसमे  
अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रहकर मरा । सौधर्म कल्पमें पल्योपमके असख्यातर्वे भागसे अधिक दो सागर  
प्रमाण जीवित रहकर च्युत हुआ । उसकी तेजोलेश्या नष्ट हो गयी। इस प्रकार पूर्वके अन्तर्मुहूर्त-  
से अधिक सौधर्म कल्पकी स्थिति प्रमाण कापोतलेश्या रही । इस दृष्टिको लक्ष्यमें रखर  
मिथ्यात्वादिका उत्कृष्ट बन्धकाल कहा गया है । (ध० टी० काल० पृ० ४६३)

तीन आयु देवगति ४ का जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । औदारिक शरीरका  
जघन्य, बन्धकाल छल क्रम १० हजार वर्ष अथवा साधिक पल्य है । उत्कृष्ट साधिक दो सागर

एव चैव । णपरि ध्रुविमाण जह० अतो०, असजदे ध्रुविमाण मदिभंगो । पुरिस० पचिदि० सम-  
चदु० औरालिय० अगो० परषादुस्मा० पमत्थनि० तम० ४ सुभग-सुस्मर-आदे० उच्चा०  
जह० एग० । उक्क० तेचीम सादिरे० । तिरिक्खगदि तिग मणुसग० वज्जरिम० मणुमाणु०  
देवगदि० ४ आपु० तित्थपर च ओष । सेसाण जह० एग० । उक्क० अतो० ।

५ §६९, चस्सुदस० तम पञ्चतमगो । णपरि सादा० जह० । उक्क० अतो० । अ-  
चस्सुद० [ ओष ] भगो ।

§७० ऋण्ण० णील० काउ०-पचणा० णपदस० मिच्छत्त० सोलसक० भवदु० तेनाक०  
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिण पचत० जह० अतो०, उव० तेचीस सत्तरम-सत्तमा०  
सादिरे० । सादासा० छण्णोक० दोगदि० चदुजादि० वेउव्वि० पचसठा० वेउव्वि०  
१६ अगो० पचसघ० दो आणु० आटाउज्जो० अपमत्थ० वापरादि० ४ विरादि-दोष्णि  
युग० दूमग-दुस्मर-अणादेज्ज० जह० एग० । उक्क० अतो० । पुरिस० मणुम० समचदु०  
वज्जरिम० मणुमाणु० पसन्थनि० सुभग० सुम्म० आदेज्ज० उच्चा० जह० एग० ।  
उव० तेचीस सत्तर [ स ] सत्त-साग० देसु० । चदुजापु० जहणु० अतो० ।

है । पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्था औदारिक अगोपाग, परघात वृद्ध्यास, प्रशस्त विहायोगति प्रस ४, सुभग, सुस्मर, आदेय और वृद्धगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । तिर्यङ्गगति त्रिक, मनुष्यगति, वज्रवृषभसहनन, मनुष्यानुपूर्वी, देवगति ४ आयु तथा तीर्थवरका ओषके समान काल है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतमुं हृत है । §६९ चक्षुदर्शनमे-त्र न पर्याप्तकोंका भग जानना चाहिए । विशेष यह है कि सातवेदनीयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतमुं हृत प्रमाण बंधकाल है । अचक्षुदर्शनमे-[ ओषवत् है । ]

§७० टाण नील नापोत्त लेख्यामे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगप्सा, तेजस-कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु, लघघात, निर्माण तथा ५ अंतरायोंका जघन्य बंधकाल अतमुं हृत, उत्कृष्ट ३३ सागर है, १७ सागर है, सात सागर प्रमाण है ।

त्रिशोपार्थ-नीललेदधाधारी फोई जीव कृष्णलेख्यायुक्त हो उत्कृष्ट अतमुं हृत प्रमाण विश्राम कर मरण करके सातवीं पृथ्वीमें ३३ सागरप्रमाण कृष्णलेख्यासहित रहा । मरण कर अतमुं हृत कान्पर्यन्त भावनात्रय वही लेख्या रही । इस कारण दो अन्तमुं हृतोंसे अधिक ३३ सागरोपम कृष्णलेख्याका उत्कृष्ट काल रहा । मिथ्यात्वादिका बंधकाल भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इसी प्रकार पाँचवीं पृथ्वीमें छत्पत्तिवी अपेक्षा नीललेदग्म साधिक १७ सागर तथा तीसरे नरककी अपेक्षा कापोत्त लेख्यामे साधिक सात सागर प्रमाण बंधकाल कथा है । (घ०टी०काल० ४५७ ०५८)

साता-असाता वेदनीय ६ नोरुपाय, दो गति ४ जाति, वैत्रियिन् शरार, ५ सस्थान, वैत्रियिक् अगोपाग, ५ सहनन दो आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अग्रशस्त विहायोगति, स्थावरादिच-  
तु ६, विररादि दो युगल, दुर्भग, दुस्वर अनादेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतमुं हृत काज है । पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्मर आदेय और वृद्धगोत्रका बंधकाल जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे देशोन ३३ सागर १७ सागर तथा ७ सागर है ।

त्रिशोपार्थ-मोद २८ मोहनीयकी सत्ता युक्त मिथ्यात्वी जीन तीसरी, पाँचवी तथा सातवीं पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ । यहाँ पर्याप्त पूज करके दूसरे अतमुं हृतमें विश्राम लिया । तथा तीसरे नरकको द्वार की अपेक्षा अन्तमुं हृतमें वेदक सम्यक्त्व धारण किया और तीसरी तथा पाँचवीं पृथ्वीमें

तिरिक्त्तागदि-पंचिदि० ओरालि० ओरालि० [ अंगो० ] तिरिक्त्ताणु० तम० ४  
णीचा० जह० एग० । उक्क० तेचीस-सत्तारस-सत्तसागरो० सादिरे० । पपरि तिरिक्त्ता-  
गदि तिगं णील० काउ० साद० भंगो । किण्ण० णील० तित्थयर जहण्णु०  
अतो० । काउ० जह० अतो० । उक्क० तिण्णि साग० सादिरे० ।

§७१. तेउ०-पचणा० णवदस० मिच्छ० सोलमक० पुरिस० भयदु० मणुसाणु० ५  
पंचिदि० तेजाक० समचदु० ओरालि० अंगो० वज्जरिस० वण्ण० ४ मणुसाणु०  
अगु० ४ पसत्थ० तस० ४ सुभग-सुस्सरादेज्ज० णिमि० तित्थय० उच्चा० पचंतरा०  
जह० ग्रतो० । श्रीणागिद्धितिगं० अणंताणु० ४ एय० । उक्क० वेसागरोव० सादिरे० ।  
पपरि केस्सिच जह० एगस० । तिण्णि आयु० देवगदि० ४ जहण्णु० अतो० । ओरालिय०  
जह० दसन्नस-सहस्साणि देसू० अथवा पल्लिदोवम सादि० । उक्क० वेसागरो० १०

सात तथा १७ सागर प्रमाण वमश पुरुषवेदादिका बन्ध किया, पञ्चान् मरण किया। अत  
सात तथा सत्रह सागरमें मिथ्यात्व दशाके तीन अन्तर्मुहूर्त कम होते हैं। सातवीं पृथ्वीमे ६ अन्त-  
र्मुहूर्त कम होते हैं। कारण वहाँसे मिथ्यात्वके विना निर्गमन नहीं होता है। मरणके एक  
अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ। दूसरे अन्तर्मुहूर्तमें आयुबन्ध किया,  
वीसरेमें विश्राम किया, चादमे निर्गमन किया। इस प्रकार पूर्वके तीन और पञ्चात्के तीन इस  
प्रकार ६ अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्रमाण बन्धकाल है। (ध० टी० काल० ३५९, ३६२)

चार आयुका जघय तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। तिर्यचगति, पचेन्द्रिय जाति,  
औदारिक शरीर, औदारिक [ अगोपाग ] तिर्यचानुपूर्वी, त्रस ४ तथा नीच गोत्रका जघन्य एक  
समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर हैं, १७ सागर तथा ७ सागर हैं। विशेष यह है कि तिर्यच  
गतित्रिकका नील तथा कापोत लेख्यामे साता वेदनीयकी भाँति काल समझना चाहिये। कृष्ण  
नील लेख्यामे तीर्थवर प्रकृतिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। कापोत लेख्यामे जघन्य  
अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक तीन सागर है।

§७१ तेजोलेख्यामे-५ ज्ञानारण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा,  
मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, तैजस, कामाण, समचतुरक्षसस्थान, औदारिक अगोपाग, वज्रवृषभ  
नाराचसहनन, घर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४ सुभग, सुस्वर,  
आदेय, निर्माण, तीर्थवर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। स्थानगृद्धित्रिक,  
अनन्तानुन्द्यो ४ का जघन्य एक समय, तथा पूर्वोक्त ज्ञानारणादि सत्रका उत्कृष्ट बन्धकाल  
साधिक दो सागर है। विशेष यह है कि किन्हीं आचार्योंके मतसे उपरोक्त जघन्य  
रूपसे अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल वाली ज्ञानारणादि प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय प्रमाण है।

विशेषार्थ-एक मिथ्यास्त्री कापोत लेख्यामे कालभयसे तेजोलेख्यावाला हो गया। उसमें  
अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रहकर मरा। सौधर्म कल्पमें पत्योपमके असख्यातर्वे भागसे अधिक दो सागर  
प्रमाण जीवित रहकर न्युत हुआ। उसकी तेजोलेख्या नष्ट हो गयी। इस प्रकार पूर्वके अन्तर्मुहूर्त-  
से अधिक सौधर्म कल्पकी स्थिति प्रमाण कापोतलेख्या रही। इस दृष्टिको लक्ष्यमें रखकर  
मिथ्यात्वादिका उत्कृष्ट बन्धकाल कहा गया है। (ध० टी० काल० पृ० ४६३)

तीन आयु देवगति ४ का जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। औदारिक शरीरका  
जघन्य, बन्धकाल कुछ कम १० हजार वर्ष अथवा साधिक पत्य है। उत्कृष्ट साधिक दो सागर



सादिरे० । सेमाण जह० एग०, उक्क० अतो० ।

§७२ पम्माए-पचणा० णदसण० (णा०) मिच्छत्त सोलसक० पुरिम० भयदुगु० मणुसग० पचिदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिमह० वण्ण० ४ मणुसाणु० अगुरु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० उच्चागो० तित्थयर पचतरा० जह० अतो० । वीणागिद्धि० अणताणु० ४ एगस० ( स० ) । उक्क० अट्टारस० सादि० । णरि केसिच एगस० । ओरालि० ओरालि० अगो० जहण्णे० वेसाग० सादिरे० । उक्क० पट्टारस० सादिरे० नेम तेउमगो० । णरि एहदि० आदान धार णत्थि ।

§७३ सुक्काए-पचणा० उदसण० (णा०) नारसक० पुरिसने० भयदु० तेजाकम्म० समचदु० वण्ण० ४ अगु० पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमिण तित्थयर० उच्चा० १० पचतरा० जह० एग० । धुविगाण अतो०, उक्क० तेचीस० सादिरे० । वीणागिद्धिणिं अणताणु० ४ जह० एग०, मिच्छत्त० अतो० । उक्क० एकत्तीस० सादि० । दो आयु० सादा

है । शेषका जघन्य एक समय उत्सृष्ट अतमुहूर्त है ।

§७२ पद्मलेइया मे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, तैजस कार्माण शरीर, समचतुरस्रसस्थान वज्रपुष्पमसहनन, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुल्लु ४ प्रशस्त विहायोगति, तस ४, सुभग सुस्वर आदेय, निर्माण, उच्चगोन, तीर्थंकर और ५ अतरायों का जघन्य बंधकाल अतमुहूर्त है । स्थानगृद्धिप्रिक अनता नुबंधी ४ का जघन्य एक समय तथा पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि सप्तका उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है । विशेष, उपरोक्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियों का जघन्य काल किन्हीं आचार्यों के मतमें अत मुहूर्तकी जगह एक समय प्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—उभयमान तेजोलेइयावाला कोई एक मिथ्यात्वी जीव अपने कालके क्षीण होने पर पद्मलेइयावाला हो गय । उसमें अतमुहूर्त रहकर मरा और शतार सहस्रारसर्गवासी देवोंम जाकर पल्योपमने असख्यातवें भागसे अधिक १८ सागर जीवित रहकर श्युत हुआ, तत्र पद्मलेइया नष्ट हो गयी । उसकी अपेक्षा इस लेइयामे ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट बंधकाल कहा है ।

औदारिक शरीर औदारिक अगोपाग का जघन्य साधिक दो सागर उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है । शेष प्रकृतियोंका बंधकाल तेजोलेइयाके समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि पद्मलेइयामे पचेन्द्रिय, आताप और म्यावरका बंध नहीं है ।

§७३ शुक्ललेइयामे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण १२ कषाय पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस कार्माण शरीर समचतुरस्रसस्थान, वर्ण ४, अगुरुल्लु प्रशस्तविहायोगति, तस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोन तथा ५ अतरायोंका जघन्य बंधकाल एक समय है । ध्रुव प्रकृतियों का जघन्य अतमुहूर्त है । इनका उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है ।

**विशेषार्थ**—एक मनुष्य शुक्ललेइयासहित अतमुहूर्त रहकर मरा और सौर्यसिद्धिमें ३३ सागर पर्यंत शुक्ललेइयायुक्त रहा । पञ्चात् मरण किया । इस प्रकार शुक्ललेइयाका उत्कृष्ट काल अतमुहूर्त अधिक तेतीस सागर प्रमाण रहा ( ५० टी० काल ३४० ४०३ ) स्थानगृद्धिप्रिक तथा अनतानुबंधी ४ का जघन्य एक समय, मिथ्यात्वका जघन्य बंधकाल अतमुहूर्त प्रमाण है, तथा इतना उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर है ।

दीण च ओषं । मणुसग० ओरालिय० ओरालिय० अंगो० मणुसाणु० जह० अट्टारस० सादिरे०, उक्क० तेत्तीसं० । वजरिसभ० जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं० । सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतोमुहुत्त ।

§७४. भनसिद्धिया ओष । णररि अणादिओ अपज्जवसिदो णत्थि ।

§७५. सडगं—आभिणि भगो । णररि धुचिगाणं जह० अतो०, उक्क० तेत्तीस० सादिरे० । मणुसगदि-पंचग जह० चदुरासीदि-वस्स सहस्साणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । सादावे० दो आयु० देवगदि० ४ ओषं ।

§७६. वेदगसं—धुत्रिगाणं जह० अंतो०, उक्क० छावट्टिसाग० । मणुसगदिपचगं जह० अतो०, उक्क० तेत्तीस सा० । देवगदि० ४ जह० अतो०, उक्क० तिणिण-पलिदोवमाणि

विशेषार्थ—एक द्रव्यलिङ्गी मित्यादृष्टि साधु मरणके समीपमे अतमुहूर्त पर्यन्त शुक्ल-लेख्या धारण कर मरा और द्रव्यसयमके प्रभावसे उपरिम प्रवेयकमे शुक्ललेख्या युक्त ३१ सागर की आयुनाला अहमिन्द्र हुआ और अपनी स्थिति पूर्ण होने पर उसी क्षण शुक्ललेख्या रहित होकर प्युत हुआ । उसके प्रथम अतर्मुहूर्त अधिक ३१ सागर प्रमाण बंधकाल होगा । ( घ टी काल पृ० ४७२ )

दो आयु तथा साता आदिक प्रकृतियोंका बंधकाल ओषके समान है । मनुष्यगति, औदारिक-शरीर, औदारिक अगोपाग, मनुष्यानुपूर्विका जघन्य बंधकाल साधिक १८ सागर तथा उत्कृष्ट ३३ सागर है ।

विशेषार्थ—यहाँ शतार सहस्रार रगर्गकी अपेक्षा साधिक १८ सागर कहा है और सर्वार्थ-सिद्धिकी अपेक्षा ३३ सागर बंधकाल बताया है ।

ब्रह्मपुत्रम सहननका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ३३ सागर है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य बंधकाल एक समय और उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त प्रमाण है ।

§७४ मव्यसिद्धिको मे—ओषके समान है । विशेष, यहाँ अनादि अनन्त रूप भग नहीं है ।

§७५ क्षायिकसम्यक्त्व मे—आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भग है । विशेष ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बंधकाल अतर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । मनुष्यगति ५ का जघन्य ८४ हजार वर्ष और उत्कृष्ट ३३ सागर है । साता वेदनीय, २ आयु, देवगति ४ का ओषके समान है ।

§७६ वेदकसम्यक्त्वमे ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बंधकाल अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ६६ सागर है ।

विशेष—वेदकसम्यक्त्वको उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर प्रमाण है । इससे ध्रुव प्रकृतियोंका बंधकाल भी उतना ही कहा है ।

मनुष्यगति ५ का जघन्य बंधकाल अतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट ३३ सागर है । देवगति ४ का

(१) "अजदग्मादिष्टी केचिंरं कालादो होति ? एगजीव पडुच्च जहण्येण अतोमुहुत्त, उक्कस्तेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि । राश्यसग्मादिष्टीमु अजदग्मादिष्टीपुट्टि जाव अजोगिकेनलि चि ओप ।"—पद्. स०. छा०. १४, १५, ३१७ ।

देवगणानि । सेम ओधिभगो ।

१७७. उचमम०-पचणा० छदंस० वारसक० पुरिस० भयदुगु० मणुसगदिपचग  
पचिदिय० तेजाकम्म० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थरि० तस० ४ सुभग-सुस्तर-  
आदे० णिमिण तित्थपर उचागो० पंचत० जहण्णुक्क० अती० । सेसाण पगदीण जहण्णे  
५ एगममओ, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।

१७८. सासणे-पचणा० णवदसण० (णा०) सोलसक० भयदु० तिण्णिगदि० पंचिदि०  
चदुसरी० समचदु० दो अगो० वण्ण० ४ तिण्णि-आणुपुच्चि० अगु० ४ पसत्थरि० ।  
तस० ४ सुभग-सुस्तर-आदे० णिमिण णीचुचारो० पचतरा० जह० एग०, उक्क० छाव

जघय अतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुल्ल कम तीन पद्य है । शेष प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान  
बधकाल है ।

१७९ उपशमसम्यक्त्वमे-५ ज्ञानावरण, स्थानगृद्धिप्रिक के विना ६ दर्शनावरण, १२  
कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति ५, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कामीण शरीर, समचतुरस्र  
संस्थान, वर्ण ४, अगुरुल्लु ४, अशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर आदेय, निर्माण, तीर्थ  
पर तथा उच्चगोत्र एव ५ अंतरायोंका जघय और उत्कृष्ट काल अतर्मुहूर्त प्रमाण है । शेष  
प्रकृतियोंका जघय एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ-आसंयतसम्यक्त्वो अथवा देवास्यमोकी अपेक्षा उपशमसम्यक्त्वका जघन्य  
और उत्कृष्ट काल अतर्मुहूर्त है । प्रमत्तसयतसे लेकर उपशातरूपाय वीतरागछद्मत्थ पर्यंत एक  
जीवकी अपेक्षा जघय काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अतर्मुहूर्त प्रमाण है । ( घ टी  
काल ४८२-४८४ )

१७८ सासादनसम्यक्त्वमे-१ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा तीन गति  
( नरकगति रहित ) पचेन्द्रिय जाति, ४ शरीर, समचतुरस्र संस्थान दो अगोपाग, वर्ण ४, तीन  
आनुपूर्वी, अगुरुल्लु ४, अशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, नीच-उच्च  
गोत्र तथा ५ अंतरायोंका जघन्य बधकाल एक समय और उत्कृष्ट ६ आवली प्रमाण है ।

विशेषार्थ-नोई उपशमसम्यक्त्वो उपशमसम्यक्त्वका एक समय शेष रहनेपर सासादन  
गुणस्थानको प्राप्त हुआ, उसकी अपेक्षा सासादनका जघय काल एक समय प्रमाण है । कोई उप  
शमसम्यक्त्वो उपशमसम्यक्त्वना छह आवली प्रमाणकाल शेष रहनेपर सासादनमे आ गया ।  
यहाँ छह आवली प्रमाण काल व्यतीत कर मिथ्यात्वमें पहुँचा । इसप्रकार जघन्य बधकाल एक  
समय और छह आवली कहा है ।

(१) "उत्तमसम्यादिद्वीसु जलजदसम्यादिद्वी सज्जासनादा केवचिर कालादा होति । एकजीव पडुच  
चहण्णे अतामुहुत्त, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त । पमत्तसज्जदप्परुडि जाव उवसंततथायवीदरागछुमत्पावि  
केवचिर कागदो होति । एकजीव पडुच जहण्णे एगसमय । उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।" -पट् ख० काल०  
३१६-२४ ।

(२) "एकजीव पडुच जहण्णे एगसमओ उक्कस्सेण उभावलियाओ । -पट् ख० काल० ७, ८ ।

लियाओ । तिण्णि-आयु० ओघं । सेसाणं जह० एगस०, उक्क० अंतो० ।

§७९. मम्मामि०—सादासा० चट्टुणोक्क० थिरादि-तिण्णि युग० जह० एग०, उक्क० अतो० । सेसाण जहण्णु० अतो० ।

§८०. सण्णि०-धुत्तिगाणं जह० सुद्धाम०, उक्क० सागरोवमसदपुषत्तं । सेसं पंचिदियपज्जत्तमंगो । णवरि सादि ओधिभगो ।

§८१. असण्णीसु-पंचणा० णरदस० मिच्छ० सोलसक्क० भयदु० तेजाकम्म० वण्ण० ४ अगुरु० णिमिण पचतरा० जह० सुद्धाम० । उक्क० अणतकाल, असखे० । चट्टु-आयु० तिरिक्खगदि-तिग ओरालि० ओघं० । सेसाण जह० एग०, उक्क० अतो० ।

तीन आयुका ओषके समान काल है । विशेष—यहाँ नरकायुका वध नहीं होता है ।

शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

§७९ सम्यक्मिथ्यादृष्टिमे—साता, असाता वेदनीय, ४ नोकपाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त बन्धकाल है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अतर्मुहूर्त प्रमाण है ।

विशेषार्थ—कोई मिथ्यात्वी विशुद्ध परिणामयुक्त हो मिश्र गुणस्थानमें सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त रहकर चतुर्थ गुणस्थानमें चला गया, अथवा कोई वेदकसम्यक्त्वी सकलेशवश मिश्र गुणस्थानी हुआ, वहाँ सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत कर पुन सकलेशवश मिथ्यात्वी हुआ । इसी प्रकार कोई मिथ्यात्वी विशुद्ध परिणाम-युक्त हो उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त-प्रमाण मिश्र गुणस्थानी रहा, बादमें मिथ्यात्वी हो गया अथवा कोई वेदकसम्यक्त्वी सकलेशवश मिश्र गुणस्थानमें उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त प्रमाण काल व्यतीत करके पुन अविरतसम्यक्त्वी हो गया । इनकी अपेक्षा मिश्र गुणस्थानका जघन्य, उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§८० सही में—' ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है, उत्कृष्ट शत-पृथक्त्व सागर है । शेष प्रकृतियोंका पचेन्द्रिय पर्याप्तके समान भङ्ग है । विशेष यह है कि साता वेदनीय में अधिज्ञानके समान भङ्ग जानना चाहिये ।

§८१ असहीमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-धर्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, निर्माण, तथा २ अन्तरायोंका जघन्य क्षुद्रभवग्रहण, उत्कृष्ट अनन्तकाल असरयात पुद्गलपरावर्तन है<sup>२</sup> । चार आयु, तिर्यचगति त्रिक, औदारिक शरीरका बन्ध काल ओषवत् जानना चाहिये । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

(१) 'एगजीव पडुच्च जहण्णेग अतोमुहुत्त उक्कस्सेग सागरोवमसदपुषत्तं ।'—पद २० फाल० ३३०-३२ । 'तं जया एगो असण्णिसण्णीयु उप्पण्णो सागरोवमसदपुषत्तं तत्थेव भनिय पुणो असण्णित्तं गदो ।'—ध० टी० फाल० पृ० ४८५ ।

(२) 'एगजीव पडुच्च जहण्णेग सुद्धामग्गहण उक्कस्सेग अणतकालमसरोजणो गालपरिवट्ट ।'—पद २० फाल० ३३५ ३६ । 'तं जया—एगा सण्णी मिच्छादिद्वी अरुणा होदूण आवलियाए असत्तेऽटि भागमेव तोग्गदवरियद्वी तत्थ परियट्टूण सण्णित्तं गदो ।'—ध० टी० फाल० २८६ ।

§२२. आहारगे-पचना० णरदंस० मिच्छ० सोलद्र० मरदु० तितल्लण  
ओरालिय० तेजाकम्म० वण्ण० ४ तिरिक्खिगदिपा० अणु० उण० गिणिय०  
पचत० जह० एण० । मिच्छत्तस्म खुद्दाभवग्गहण तिम्मज्जण । यक्क० म्  
[ अमखेज्जदिमागो ] असंखेज्जाओ ओसप्पिणि उस्मप्पिणीओ । विवर० वाः  
५ उक्क० तेत्तीम सागरो० साट्ठिरे० । सेसा ओष० ।  
§२३. अणाहार० कम्मडग-भगी ।

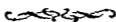
एवं फाल समत् ।



§२२ आहारकोमें-५ ज्ञानावरण ९ दर्शानावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, नय, उल्क  
तिर्यग्गति, औदारिक-तैजस कामाण शरीर, वर्ण ४, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी, अणुत्तु, वण्ण  
निर्माण, नीचगोत्र, ५ अंतरायोंका ष-पकाल जघन्य एक समय है । मिथ्यात्व का तान समन म  
क्षुद्रभवमहण प्रमाण है । इनका उत्कृष्ट फाल अङ्गुलका [ असख्यातवा भाग ] तथा अल्लण  
उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण है । तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य एक समय, उक्कट साविक  
सागर है । शेष प्रकृतियोंका ओषवम् जानना चाहिए ।

§२३ अनाहारकोमें-कामाण काययोगके समान जानना चाहिए ।

इसप्रकार ( एक जीवकी अपेक्षा ) ष-पकालका वर्णन समाप्त हुआ ।



(१) "माहाशानुवाये-पयसीने पदुप जहण्णेय अंतोसुद्धे उक्कस्तेण अणुत्तस अरंखेज्जदिमागो  
मासोअतोनेमाओ ओसप्पिणिउस्मप्पिणी । -पट्. रं० वा० ३३८-३९ ।

(२) "अणाहारिडु 'कामाहयनायतोर्गिर्मतो । -पट्. रं० वा० ३४१ ।

## [ अंतराणुगमपरुवणा ]

§८४. अतराणुगमे दुविहो णिद्वेसो ओषेण आदेसेण य ।

§८५. तत्थ ओषेण-पंचणाणावरण-छदसणावरण-सादासाद-चदुसजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुच्छा पचिदिय-तेजाकम्मडय-समचदुरससठाण-वण्ण०  
 ४ अगुरु० ४ पसत्थविहायगदि-तस० ४ यिरादि-दोण्णि-युगल सुभग-सुस्सर-  
 आदेज्ज-णिमिण-तित्थयर-पंचतराइयाणं बंधतरं केवचिर कालादो होदि ? जहण्णेण  
 एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त । णवरि णिदा पचला जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्त ।  
 थीणगिद्धितिग मिच्छत्त अणताणुरं० ४ जहण्णेण अतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण वेळावड्ढि-  
 सागरोनमाणि देवणाणि । अट्ठकसाय जह० अतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुच्चकोडिदेवणा ।

### [ अन्तरानुगम ]

§८४ अन्तरानुगममें यहा (एक जीवकी अपेक्षा) ओष और आदेशसे दो प्रकारका निवेश करते हैं।  
 §८५ ओषसे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनारण, साता असाता वेदनीय, ४ सज्जलन, पुरुषवेद,  
 हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेंद्रिय जाति, तैजस, कामाण, समचतुस्स सस्थान,  
 वर्णचतुष्क, अगुदलधु ४, प्रशस्त्वविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय,  
 निर्माण, तीर्थ कर और ५ अतरायके बंधका अतर कितने काल पर्यन्त होता है ? जघन्यसे एक  
 समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। विशेष यह है कि-निद्रा और प्रचलाका जघन्य और उत्कृष्ट अतर  
 अन्तर्मुहूर्त है। स्थानगृद्धिन्निक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबधी चारका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट  
 कुछ कम दो छथासठ सागर है।

विशेषार्थ—कोई एक तिर्यंच या मनुष्य चौदह सागर स्थितिवाले लान्तन, कापिष्ठ देवोंमें  
 उत्पन्न हुआ। वहा एक सागरोपम काल विताकर द्वितीय सागरोपमके आरभमें सम्यक्त्वको  
 प्राप्त हुआ तथा तेरह सागर काल सम्यक्त्व सहित व्यतीत कर मरा और मनुष्य हुआ। वहा  
 सयम अथवा सयमासयमका पालनकर इस मनुष्यभन सम्बन्धी आयुसे कम बाईस सागर वाले  
 आरण, अच्युत कल्पमें उत्पन्न हुआ। वहासे मरकर पुन मनुष्य हुआ। सयमको पालन कर  
 उपरिम प्रवेयकमें उत्पन्न हुआ और मनुष्य आयुसे न्यून इकतीस सागरकी आयु प्राप्त की। वहा  
 अन्तर्मुहूर्त कम छथासठ सागर कालके चरम समयमें मिश्र गुणस्थानवाला हुआ। अन्तर्मुहूर्त  
 विश्राम कर पुनः सम्यक्त्वो हुआ। विश्राम ले, चयकर मनुष्य हुआ। सयम या सयमासयमको  
 पालन कर इस मनुष्य भव को आयुसे न्यून बीस सागरकी आयुवाले अानत प्राणत देवों में  
 उत्पन्न होकर पुन यथाक्रमसे मनुष्यायुसे कम बाईस तथा चौबीस सागरके देवोंमें उत्पन्न होकर  
 अन्तर्मुहूर्त कम दो छथासठ सागर कालके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इसप्रकार  
 अन्तर्मुहूर्त कम दो छथासठ सागर अर्थात् एकसौ बत्तीस सागर काल प्रमाण अतर हुआ। यह क्रम  
 अच्युत्यन्न लोगोंको समझानेको कहा है। परमार्थ दृष्टिसे किसी भी तरह छथासठ सागरका काल  
 पूर्ण किया जा सकता है। ( ध०टी०अतरा०पृ०६७ )

प्रत्याख्यानावरण तथा अप्रत्याख्यानावरण रूप आठ कपायका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट



॥८६॥ आदेशेण—पेरइएसु पंचणाणावरण—छटंसणारण—त्रारसकमाय—भय-दुगुच्छा—  
पचिंदिय—ओरालिय—तेजारुम्मइय—ओरालियसरीरअंगोवग—वण्ण०४ अगु० ४ तस० ४  
णिमिण तित्थयर पचतराडयाण णत्थि अंतर । धीणगिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणुनधि०  
४ जह० अंतोमुहुत्त, उक्क० तेत्तीस० देवणा । सादासा० पुरिस० चदुणोक्क० समचदु०  
वज्जरिसभसं० पसत्थणि० थिरादि-दोण्णि-युगल-सुभग-सुस्सर-आदेज्जाण जह० एग ५  
समओ, उक्क० अतोमुहुत्त । इत्थिवेद-णुसयवेद-दोगदि० पंचसठा० पचस० दोआयु०

कर अंतिम मन्त्रे सम्यक्त्व अथवा देशसयमको प्राप्त कर दर्शन मोहनीय ३ और अनन्तानुबधी  
४ अर्थात् ७ प्रकृतियोंका क्षय करके अप्रमत्तसयत होगया । इसप्रकार अप्रमत्तसयतका अनन्तर  
काल उपलब्ध हुआ । पुन प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानमें हज़ारों बार परावर्तन करके अप्रमत्त-  
सयत हुआ । पुन अपूर्वकरण, अनितृत्तिकरण, सूक्ष्मापराय, क्षीणरूपाय, सयोगनेवली  
अयोगकेवली होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इसप्रकार दस अतर्मुहूर्तसे कम अर्धपुद्गलपरि-  
वर्तन काल अप्रमत्तसयतका उत्कृष्ट अंतर है । यही अंतर आहारक द्विकके वधके विषयमें होगा ।  
कारण, आहारकद्विकका वध अप्रमत्तसयतमें होता है । ( ध०टी०अतरा०पृ०१७ )

॥८६॥ आदेशसे—नरकगतिमें—पाच ज्ञानारण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, भय, जुगुप्सा  
पचेंद्रिय जाति, औदारिक तैत्तस कामाण शरीर, औदारिकशरीर अगोपाग, वर्षा चार, अगुरु-  
लघु चार, त्रस चार, निर्माण, तीर्थकर और पाच अतराणोंके वधका अंतर नहीं है । स्थानगृद्धित्रिक,  
मिथ्यात्व, अन तानुबधी चार का जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बुद्ध कम तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ —मोहनीय कर्म की अट्टाईस प्रकृतियों की सत्तावाला कोई मनुष्य या तिर्यच  
नीचे सातवीं पृथ्वीके नारिकियेमें पैदा हुआ । छहों पर्याप्तियोंको पूर्णकर ( १ ) विश्राम ले ( २ )  
विशुद्ध हो ( ३ ) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर अल्प आयुके रहने पर अंतरको प्राप्त हो, मिथ्यात्व  
को पुन प्राप्त हुआ ( ४ ) पुन तिर्यच आयुको बाधकर ( ५ ) विश्राम लेकर ( ६ ) निकला ।  
इसप्रकार छह अतर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्रमाण काल मिथ्यात्वके अंतरका है । यही अंतर  
स्थानगृद्धित्रिक और अन तानुबधी चारका भी होगा । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

एक मिथ्यात्वी मनुष्य या तिर्यच सप्तम नरकमें उत्पन्न हुआ । उसने छह पर्याप्तियोंको पूर्ण  
करके, विश्रामले, उपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न किया । पुन सासादनको प्राप्त कर मिथ्यात्वी बना ।  
आयुके अतमें मिथ्यात्वको बाधकर विशुद्ध हो उपशमसम्यक्त्वी हुआ और उसने कालका एक  
समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । पुन मिथ्यात्वमें अतर्मुहूर्त विश्राम कर  
भरण कर निकला । इसप्र १२ समय अधिक पाच अतर्मुहूर्तसे कम तेतीस सागरोपम सासादन  
का अंतर हुआ । यही यात अन तानुबधी स्थानगृद्धित्रिकमें जानना चाहिये ।

( ध०टी०पु०५, पृ०२३ तथा २६ )

साता-असाता वेदनीय, पुरुषवेद, चार नोकपाय, समचतुरस्र सस्थान, वञ्चवृषभसहनन,  
प्रशस्त निहायोगति, विरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट  
अतर्मुहूर्त है । स्त्रीवेद, नृपुंसकवेद, नो गति, पाच सस्थान, पाच सहनन, दो आयु, अप्रशस्त



इत्थिवेदानं जह० एगम०, उक्क० वेच्छावडि—सागरोवमाणि सादिरेयाणि । णउमक०  
 पंचमंटा० पचमघ० अप्पमन्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० जह० एग०,  
 उक्क० वेच्छावडिसागरो० सादिरे० तिण्णि पलिदोवमाणि देसणाणि । णिरय-मणुम-  
 देवायु० जह० अतो०, उक्क० अणतकालममसेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । तिरिक्खापु०  
 ५ जह० अतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्त । णिरयगदि-देवगदि० वेउन्नि०  
 वेउन्नि० अगो० दोआणुपु० जह० एगस०, उक्क० अणतकालमसंखेज्ज० ।  
 तिरिक्खगदि० तिरिक्खगदिपाओ० उज्जोव० जह० एग०, उक्क० तेरडिसागरोवम-  
 सद० । मणुमगदि-मणुसाणु० उचागो० जह० एग० उक्क० असंखेज्जा लोगा । च्चदु  
 जादि-आदान-यावरादि० ४ जह० एग०, उक्क० पचासीदिमागरोवमसदपुधत्त ।  
 १० ओरालिय० ओरालिय० अगो० च्चज्जरिसह० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो०  
 सादिरे० । [आहार०] आहार० अगो० जह० अतो०, उक्क० अद्धपोग्गल० देसणा ।

कुछ कम एक कोटि पूर्व है ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव मनुष्य उत्पन्न हुआ ।  
 गर्भसे आठ वर्ष पूर्ण होनेपर बृद्धकसम्यक्त्वी हो, सफलसयम की प्राप्ति हुआ । अतर्मुहूर्तके  
 पश्चात् मिथ्यात्वही हो गया । पश्चात् एक कोटि पूर्वने अतमे ब्रह्मायुक्त होकर पुन सकलसयमी  
 हुआ और मरण किया । इसप्रकार सफलसयमकी अपेक्षा देशोन एक कोटि पूर्वकाल कपायाष्टक  
 का अंतर कहलाया ।

जीवेका अंतर जघय एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक एकसौ बत्तीस सागर है । नपुसक  
 वेद, ५ सस्थान, ५ सदनन, अप्रसस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य  
 एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक एकसौ बत्तीस सागर किंचित् न्यून तीन पत्य प्रमाण है । नरक  
 मनुष्य देवायुका जघय अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल असरयात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्य  
 चायुका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट शतसागरप्रथक्त्व है । नरकगति, देवगति, वैत्रियिक  
 शरीर, वैत्रियिक अगोपाग, नरक देवानुपूर्वीका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अनन्तकाल—अस  
 रयात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, लघोतका जघय एक समय, उत्कृष्ट  
 त्रैलोक्यी सागरप्रथक्त्व है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका जघन्य एक समय,  
 उत्कृष्ट अनन्तकाल लोक प्रमाण है । ४जाति, आताप, स्थानरादि ४ का जघय एक समय, उत्कृष्ट  
 पचासी सौ सागरप्रथक्त्व प्रमाण है । औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग वसवृषम सदनन  
 का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक तीन पत्य है । [ आहारक शरीर ] आहारक  
 अगोपाग का जघय अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तन है ।

विशेषार्थ—एक आदि मिथ्यादृष्टिजीवने अघ करण, अपूर्वकरण, अनिष्टिकरण  
 रूप तीन करण करके उपशमसम्यक्त्व तथा अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त होकर अत  
 मंसारवा छेद करके अर्धपुद्गलपरिपत्ता प्राप्त किया । इस अप्रमत्त गुणस्थानमें अतर्मुहूर्त  
 रहकर प्रमत्त हुआ और अंतरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरावर्तन काल व्यतीत

§८६. आदेशेण—पेरइएसु पंचणाणावरण—छटसणावरण—वारसकसाय—भय-दुगुच्छा—  
पचिदिय—ओरालिय—तेजाकम्मइय—ओरालियसरीरअंगोवग—वण्ण०४ अगु० ४ तस० ४  
णिमिण तिथ्यर पंचंतराइयाणं णत्थि अंतर । धीणगिदि० ३ मिच्छ० अणताणुनधि०  
४ जह० अतोमुहुत्त, उक्क० तेत्तीस० देसणा । सादासा० पुरिस० चदुणोको० समचदु०  
वज्जरिसभम० पसत्थवि० थिरादि-दोण्णि-युगल-सुभग-सुस्सर-आदेज्जाणं जह० एग ५  
समओ, उक्क० अतोमुहुत्त । इत्थिवेद—णुंसयवेद—दोगदि० पंचसठा० पचस० दोआयु०

कर अतिम भयमे सम्यक्त्व अथवा देशसयमको प्राप्त कर दर्शन मोहनीय ३ और अनन्तानुवधी  
४ अर्थात् ७ प्रकृतियोंका क्षय करके अप्रमत्तसयत होगया । इसप्रकार अप्रमत्तसयतका अनन्तर  
काल उपलब्ध हुआ । पुन प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानमें हजारों वार परावर्तन करके अप्रमत्त  
सयत हुआ । पुन अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसापराय, क्षीणकपाय, सयोगकेवली  
अयोगकेवली होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इसप्रकार दस अतर्मुहूर्तसे कम अर्धपुद्गलपरि-  
वर्तन काल अप्रमत्तसयतका उत्कृष्ट अंतर है । यही अंतर आहारक द्विकके वधके विषयमें होगा ।  
कारण, आहारकद्विकका वध अप्रमत्तसयतमें होता है । ( ध०टी०अतरा०पृ०१७ )

§८६ आदेशसे—नरकगतिमें—पाच ज्ञानानरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, भय, जुगुप्सा  
पचेंद्रिय जाति, औदारिक वैजस-कार्माण शरीर, औदारिकशरीर अगोपाग, वर्ष चार, अगुरु  
लघु चार, त्रस चार, निर्माण, तीर्थंकर और पाच अतरायोंके वधका अंतर नहीं है । स्थानगृद्धिन्निक,  
मिथ्यात्व, अनन्तानुवधी चार का जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—मोहनीय कर्म की अट्टाईस प्रकृतियों की सत्तावाला कोई मनुष्य या तिर्यच  
नीचे सातवीं पृथ्वीके नारकियोंमें पैदा हुआ । इहाँ पर्याप्तियोंको पूर्णकर ( १ ) विश्राम ले ( २ )  
विशुद्ध हो ( ३ ) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर अल्प आयुके रहने पर अंतरको प्राप्त हो, मिथ्यात्व  
को पुन प्राप्त हुआ ( ४ ) पुन तिर्यच आयुको बाधकर ( ५ ) विश्राम लेकर ( ६ ) निकला ।  
इसप्रकार छह अतर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्रमाण काल मिथ्यात्वके अंतरका है । यही अंतर  
स्थानगृद्धिन्निक और अनन्तानुवधी चारका भी होगा । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

एक मिथ्यात्वी मनुष्य या तिर्यच सप्तम नरकमें उत्पन्न हुआ । उसने छह पर्याप्तियोंको पूर्ण  
करके, विश्रामले, उपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न किया । पुन सासादनको प्राप्त कर मिथ्यात्वी बना ।  
आयुके अतमें मिथ्यात्वको बाधकर विशुद्ध हो उपशमसम्यक्त्वी हुआ और उसने कालका एक  
समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । पुन, मिथ्यात्वमें अतर्मुहूर्त विश्राम कर  
मरण पर निकला । इसप्रकार समय अधिक पाच अतर्मुहूर्तसे कम तेतीस सागरोपम सासादन  
का अंतर हुआ । यही पाच अनन्तानुवधी स्थानगृद्धिन्निके जानना चाहिए ।

( ध०टी०पु०५, पृ०२३ तथा २६ )

साता असाता वेदनीय, पुरुषवेद, चार नोकपाय, समचतुरस्र सस्थान, वज्रशुभसहनन,  
प्रशस्त विज्ञायोगति, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्सर आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट  
अतर्मुहूर्त है । खीवेद, पुंसवेद, दो गति, पाच सस्थान, पाच सहनन, दो आयु, अप्रशस्त



सादासाद-पंचणोक० पंचिदि० समचदु० परघादुस्सास-पसत्थयि० तस० ४ थिरादि-  
 दोणि-युगल-सुभग-सुस्सर-आदेज्जाणं जह० एग०, उक्क० अंतोमुहुच । अपच्चक्सा-  
 पावरण ४-णवुस०तिरिक्सागदि-चदुजादि-ओरालिय० पचसंठा०-ओरालियअगोवंग-  
 छसघडण-तिरिक्साणु०-आदा०-उज्जोव-अप्पसत्थवि०-थावरादि० ४-दूभग-दुस्सर-  
 अणादेज्ज-णीचागोदाण जह० एगसमओ । अपच्चक्साणा० ४ जह० अतो०, उक्क० ५  
 पुव्वकोडिदेखणा । तिण्णि आयु० जह० अतो०, उक्क० पुव्वकोडिदिभाग देखणा ।  
 तिरिक्सायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिसादिरे० । वेउव्वियछक्क० जह० एग०,  
 उक्क० अणतकालमसखेज्जपोग्गलपरियट्ट । मणुसगदि-मणुसाणु० उच्चागोदाण ओघ ।  
 पचिदिय-तिरिक्सा तिग० धुविगाण णत्थि अंतर । थोणगिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणु०

विशेषार्थ-एक मनुष्य या तिर्यंच, अट्टाईस माहनीयकी प्रकृतियोंकी सत्ता बाला तीन  
 पत्यकी आयुवाले सुगी, बन्दर आदिमें उत्पन्न हुआ । दो माह गर्भमें रहकर बाहर निकला ।  
 यहाँ आचार्य परपरागत दक्षिण-प्रतिपत्तिके अनुसार ऐसा उपदेश है कि तिर्यंचोंमें उत्पन्न  
 हुआ जीव दो माह और मुहूर्तपृथक्त्वके ऊपर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उत्तर-प्रतिपत्तिके  
 अनुसार तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ जीव तीन पक्ष तीन दिन और अतर्मुहूर्तके ऊपर सम्यक्त्वको  
 प्राप्त होता है । पश्चात् आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्तकर मरण किया । इस प्रकार आदिके मुहूर्त-  
 पृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे और आयुके अन्तमें उपलब्ध दो अतर्मुहूर्तोंसे न्यून तीन  
 पत्योपम काल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अंतर है । ( ६० टी० अन्तरा० पृ० ३२ )

साता-असाता वेदनीय, १२नोकपाय, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसस्थान, परघात, उच्छ्वास,  
 प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्सर, आदेयका अंतर जघन्य एकसमय,  
 उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है । अप्रत्याख्यानावरण ४, नपुसकवेद, तिर्यंचगति, चार जाति, औदारिकशरीर,  
 ५ स्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति,  
 श्वावरादिचतुष्क, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का अंतर जघन्य एक समय है ।  
 अप्रत्याख्यानावरण ४ का जघन्य अतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम एक कोटिपूर्व है ।

विशेषार्थ-कोई मिथ्यात्वी जीव सद्गी पचेन्द्रिय सम्मूर्द्धन पर्याप्तक एक कोटिपूर्वकी आयुवाले  
 तिर्यंच में उत्पन्न हुआ । यहाँ पर्याप्तियोंको पूर्णकर विश्रामले विशुद्ध हो वेदक सम्यक्त्व तथा  
 सयमासयमको प्राप्त किया । मरणसमय अप्रत्याख्यानावरण ४ का वध होनेसे देशसयमसे च्युत  
 हो गया । इसके एक कोटि पूर्वमें कुछ कम कालपर्यन्त अप्रत्याख्यानावरण ४ का अंतर होगा ।

तीन आयुका जघन्य अतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक कोटि पूर्वके तीन भागोंमें  
 में एक भाग प्रमाण है । तिर्यंचायुका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ अधिक एक कोटिपूर्व है ।  
 वैकिकिकपदकका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनतकाल, असरयात पद्गलपरिवर्तन है ।  
 मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका ओघके समान जानना चाहिए ।

पचेन्द्रिय-तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमितीमें-ध्रुव प्रकृतियों  
 का अंतर नहीं है । स्थानगृद्धिक्क, मिथ्यात्व, अनतानुवर्ध ४ का जघन्य अतर्मुहूर्त तथा

अप्पमत्थवि० उज्जीव दूमग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचुचागोदाण जह० एगस०, उक्क०  
तेत्तीस० देखणा । दो आयु० जह० अतो०, उक्क० छम्मास देखणा । एवं पढमादि  
यान छट्ठित्ति । धुनिगाणं तित्थयर णत्थि अतर । साददड० ओष । णवरि मणुस० मणु  
सगदिपाओग्गाणुपुञ्चि-उचागोद पविडुस्स । सेस णिरयोष । णवरि अप्पणो द्विदी  
भाणिट्ठान्ना । सत्तमाए पुढवीए णिरयोष । णवरि दोगट्ठि-दो आणुपुञ्चि-दोगोद० जह०  
अतो०, उक्क० नेत्तीस० देखणा ।

§८७ तिरिक्खेसु-पचना० छदंसण० अट्टकमाय भय दुगुच्छा-तेजा-कम्म० वण्ण०४  
अगु० उपघाद-णिमिण पचतराइयाण णत्थि अतर । थीणगिदि ३ मिच्छत्त-अणताणु०  
४ जह० अतो०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देखणाणि । एव इत्थिवेदस्स । णवरि जह० एगस०

विहायोगति उद्योत दुर्भंग, दु खर, अनादेय, नीच, एव गोजका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ  
कम तेतीस सागर है । दो आयु का जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम छह माह है ।

विशेषार्थ-नारकियों में मुख्यमान आयु के अधिक से अधिक छह माह और कमसे कम  
अतर्मुहूर्त शेष रहनेपर आगामी बध्यमान मनुष्य तिर्यंच आयुका वध होता है । किसी जीवने  
छह महीने जीवन शेष रहने पर प्रथम अतर्मुहूर्तमें नरकगतिमें परभवकी आयुका वध किया  
और पश्चात् मरणसमयमें पुन वध किया । इसप्रकार उत्कृष्ट अतर होगा ।

इसप्रकार प्रथमसे छठवीं पृथिवी पर्यंत जानना चाहिए । यहा ध्रुव प्रकृतियों तथा  
तीर्थंकर का अतर नहीं है ।

विशेषार्थ-यहा तीर्थंकर प्रकृतिको अतर रहित कहनेसे प्रतीत होता है कि नरकगतिमें कोई  
न कोई तीर्थंकर प्रकृतिका वधक अवश्य पाया जायगा । यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि तीर्थ  
ंकर प्रकृति वाला जीव मिथ्यात्व सहित मरण कर मेघा नामकी तीसरी पृथ्वीसे नीचे नहीं जाता ।

सातादण्डकका ओषधके समान अर्थात् जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है । मनुष्यगति  
मनुष्यगत्यानुपूर्वी और एवगोजमें विशेष जानना चाहिए ।

१ शेष प्रकृतियोंमें नारकियोंके आघके ममान है । विशेष यह है कि यहा प्रत्येक नरक व  
अपनी-अपनी स्थिति-समान अंतर जानना चाहिए । सातवीं पृथ्वीमें सामान्य नरकके समा  
अंतर है । इतना विशेष है कि दो गति, दो आयुपूर्वी, दो गोजका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृ  
ष्टकम तेतीस सागर है ।

§८७ तिर्यंच गतिमें-५ क्षान्तरण ६ दर्शान्तरण, ८ फपाय, भय, जुगुप्सा तेजस, फार्मो  
वर्णचतुष्क, अगुहलुघु उपघात, निर्माण और ५ अतरार्थोंका अतर नहीं है । स्वानर्ग्य  
त्रिक मिथ्यात्व और अनन्तानुबधी ४ का जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछकम तीन पल्य है । इ  
प्रकार स्त्रीवेदका अतर समझना चाहिए । विशेष यह है कि यहा जघन्य एक समय ( और उत्  
कृष्टकम तीन पल्य ) है ।

(१) 'पढमादि जव सत्तमीए पुन्वीए णेरइएसुमिच्छादिट्ठि-अनंजदसम्मादिद्वीणमतर केवविर व  
दो हादि २ एगजीव पडुत्थ बहण्णेण अतोमुत्थ, उक्कस्सेण सागरोवम, तिण्णि सत्त दव, सत्तारस, भा  
तेत्तीस सागरोवमाणि देखणाणि' -पटव० अतरा० २८ ३० ।

आग्ज्जत्ताण तसाणं थावराणं च ।

५२९. मणुस० ३-पंचणा० छदंसणा० चद्रुसज० भयदुगुं० तेजाकम्म० वण्ण० ४ अगुरु०  
उप० णिमिण० तिथ्यर-पचंतराइयाणं जहण्णुक्कस्स अतोमुहुत्त । थीणगिद्धितिग-  
दंडओ इत्थिदंडओ साददंडओ णवुसदंडओ आयुदंडओ पचिदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त-  
भंगो । णवरि मणुसाणु० जह० अतो०, उक्क० पुव्वकोडिसादिरेयं । आहारदुगं ५  
जह० अतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुघत्त ।

५९०. देवेसु-पचणा० छदसणा० वारमक० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाकम्म० वण्ण०  
४ अगुं ४ वादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमिण तिथ्यरं पचंतराइयाणं णत्थि अतरं । थीण-  
गिद्धितिगं मिच्छत्त अणत्ताणुं ४ जह० अतो० । इत्थि० णवुसक० पंचसठा० जह०  
एग०, उक्क० अद्धारस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि । एइदिय-आदाव-थावराण जह० १  
एग०, उक्क० वे साग० सादिरे० । एव सव्वदेवेसु अप्पण्णो द्विदिअतर कादव्वं ।

सभी अपर्याप्तक व्रस-स्थावरोंका इसी प्रकार अंतर समझना चाहिए ।

५८९ मनुष्य-सामान्य, मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यिनी में-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण,  
४ सञ्जलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, सपचात निर्माण, तीर्थंकर और ५  
अतरार्योंका जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर अतर्मुहूर्त है । स्थानगृद्धिन्निक-दंडक, स्त्रीदंडक, सातादंडक,  
नपुसकदंडक, आयुदंडकमे पचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकके समान अंतर है । विशेष मनुष्यानुपूर्विका  
जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक पूर्वकोटि है ।

आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वकोटिप्रथक्त्व है ।

निशेषार्थ-२८ मोहनीयकी प्रकृतियोंकी सत्तावाला अन्य गतियोंसे आकर कोई जीव  
मनुष्य हुआ । गर्भको आदि लेकर ८ वर्षका हुआ । सम्यक्त्व एव अप्रमत्त गुणस्थानको एक  
साथ प्राप्त हुआ । (१) पुन प्रमत्तसयत हो अतरको प्राप्त हुआ और ४८ पूर्वकोटिया परिभ्रमण  
कर अंतिम पूर्वकोटिमे देवायुको धाधता हुआ अप्रमत्तसयत हो गया । (२) इसप्रकार अतर  
प्राप्त हुआ । तत्पश्चात् प्रमत्तसयत होकर (३) मरा और देव हुआ । ऐसे तीन अतर्मुहूर्तसे  
अधिक आठ वर्षोंसे कम ४८ पूर्वकोटियों उत्कृष्ट अतर होता है । (ध० टी० अत० पृ० ५२)

आहारकद्विकके वधक अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती होते हैं । इसकारण यह वर्णन क्रम उसमे भी  
सुघटित होता है ।

५९० देवगतिमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-  
शरीर, तैजस कार्माण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर  
और ५ अंतरार्योंका अंतर नहीं है । स्थानगृद्धिन्निक, मिथ्यात्व, अनन्तानुनधो ४ का जघन्य अत  
र्मुहूर्त है । स्त्रीवेद, नपुसकवेद तथा पाच संस्थानका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक १८  
सागर है । एकेन्द्रिय, आताप और स्थावरका जघन्य एक समय अतर है, उत्कृष्ट कुछ अधिक  
दो सागर है । इसीप्रकार सम्पूर्ण देवों मे अपनी २ स्थितिका अतर लगाना चाहिए ।

४ जह० अतोमुहुत्तं, इत्थिवेदस्स जह० एग०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि देसुणाणि । सादासाद पचणोक० देवगदि० ४ पचिदि० समचदु० परघादुस्सास-पसत्थनि०-तस० ४ थिरादिदोण्णि-युगल-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदाण जह० एगस०, उक्क० अतोमुहुत्त । अपचक्खाणा० ४ जह० अतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसूणा । णवुसपवेद-  
५ तिगदि-चदुजादि-ओरालियसरीर-पचसठाण-ओरालियअंगोवग-छस्मधड० तिण्णि आणुपुत्ति-अप्पसत्थवि० आदाउज्जोव-थावरादि० ४ दूमग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचा गोदाण जह० एगस०, उक्क० पुव्वकोडिदेसूणा । आयु-चत्तारि तिरिक्खोय ।

१२२, पचिदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्त०-पचणा० णवदस० मिच्छ० सोलसक० भय दूगु० ओरालिय-तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उपघाद-णिमिण पचतराइयाण णत्थि अतर ।  
१० सादासाद० सत्तणोक० दोगदि-पचजादि-छसंठा०-ओरालिय० अगो० छसघडण-दोआणुपु० परघादुस्सास-आदा-उज्जोव-दोविहायगदि-तसादिदस-युगल-णीचुचा गोदाण जह० एग०, उक्क० अतोमुहुत्त । दोआयु० जहणुक्खस्स अतोमुहुत्त । एव सच्च-

खीवेदका जघन्य एक समय तथा इन सनका उत्कृष्ट कुछ कम ३ पत्य है ।

त्रिंशोपार्थ-मोहनीय कर्म को २८ प्रकृतियों में सत्ता रखनेवाले तिर्यंच अथवा मनुष्य तीन पल्लोपमको आयुखले पचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक कुम्भुट मर्कट आदिमे उत्पन्न हुए वा दो माह गर्भमे रहकर निकले । सुहूर्तप्रथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदक्सम्यक्त्वको प्राप्त हुए और आयुके अतमे आगामी आयुको बाधकर मिथ्यात्व-सहित भरण किया । पुन इसप्रकार दो अतमुहूर्तोंसे तथा सुहूर्तप्रथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे न्यून तीन पल्लोपम काल तीनों प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अतर होता है । यही अंतर मिथ्यात्व आदिका भी है ।

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकपाय, देवगति ४, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसस्थान, परघात, वच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग सुस्वर, आदेय, और उच्चगोत्रका जघय एक समय और उत्कृष्ट अतमुहूर्त है । अपत्यारयानावरण ४ का जघन्य अतमुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि है ।

नपुसकवेद, देवगतिके विना ३ गति, ४ जाति, औदारिक शरीर, पाच सस्थान, औदारिक अगोभाग, छह सहनन, ३ आनुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, आताप, उद्योत, स्थावरादि ४, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका जघय एक समय, उत्कृष्ट अतमुहूर्त है । चार आयुका तिर्यंचोंके बोध ममान है ।

१२८ पचेन्द्रिय तिर्यंच लक्ष्यपर्याप्तकमे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण मिथ्यात्व, १६ कपाय मय, जुगुप्सा, औदारिक-तैनस-कार्माण शरीर, वण ४, अगुदलपु उपघात, निर्माण और पच अंतरायोंका अतर नहीं है । साता-असाता वेदनीय, ७ नोकपाय, २ गति ( मनुष्य-तिर्यंचगति ) ५ जाति ६ सस्थान, औदारिक अगोभाग, ६ सहनन, दो आनुपूर्वी परघात, वच्छ्वास, आताप उद्योत, दो विहायोगति, प्रसादि-दस-युगल, नीच उच्च गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतमुहूर्त है । दो आयुका जघन्य तथा उत्कृष्ट अतमुहूर्त है ।

वण्ण० ४ देवाणुपु० अगु० ४ पसत्थि० तस० ४ सुभग-सुस्मर-आदेज्ज-णिमिण  
तित्थियर उच्चागोदं पचंतराइयाण णत्थि अतर । सादासाद०-चदुणोक०-धिरादि-  
तिण्णि युगल जह० एगस०, उक्क० अतो० ।

§१०१. कम्मइयकायजोगीसु-पचणा० णदंसणा० मिच्छ० सोलसक० तिण्णि-  
वेद-भयदुगुं० तिण्णि गदि-पचजादि-चदुसरीर-छसठाण-दोअगोपग-छमंघडण-रण्ण० ५  
४ तिण्णि आणुपुच्चि-अगुरु० ४ दोविहायगदि-तसथावरादिचदुयुगल-सुभगादि-  
तिण्णियुगल-णिमिण-तित्थियरं णीच्चुच्चागोद-पचतराइयाण णत्थि अतर । सादासा०  
चदुणोक० आदाउज्जोव-धिरायिर-सुभासुम० जस० अजस० जहण्णु० एगसमजो ।

§१०२. इत्थिवेदेसु-पचणा० छदसणा० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाकम्म० वण्ण० ४  
अगुरु० उपघाद-णिमिण तित्थियरं पचतराइयाणं णत्थि अतरं । धीणगिद्धि० ३ १०  
मिच्छ० अणत्ताणुंधि० ४ जह० अतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देस्सणाणि । सदासा०

विहायोगति, तस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्र और ५ अतरायोंका  
अतर नहीं है । साता-असाता वेदनीय, ४ नोरुपाय, धिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय,  
उत्कृष्ट अतमुं हूत है ।

§१०१ कर्माण कययोगियोंमें-६ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, ३ वेद, भय,  
जुगुप्सा, ३ गति(नरकगति छोड़कर), ५ जाति, ४ शरीर, ६ संधान, २ अगोपाग, ६ सहनन वर्ण ४,  
३ धानुपूर्वा, अगुरुलघु ४, दो विहायोगति, तस स्थापयदि ४ युगल, सुभगादि ३ युगल, निर्माण,  
तीर्थंकर, नोच-उच्च गोत्र और पाँच अतरायोंका अतर नहीं है । साता-असाता वेदनीय, ४  
नोरुपाय, आताप, उच्चोव, स्थिर-अस्थिर, शुभ अशुभ, यश कीर्ति, अयश कीर्तिका जघन्य  
उत्कृष्ट अतर एक समय है ।

[विशेषार्थ-कामाणिकाययोगका उत्कृष्ट काल उत्कृष्टसे तीन समय प्रमाण है । तीन  
समयके बीचमें अतरका काल एक समयसे अधिक अथवा न्यून न होगा । एक समय बधका  
होगा, एक समय अबधका और एक समय पुन बधका । इस कारण जघन्य-उत्कृष्ट अतर  
एक समय प्रमाण कहा है । ]

§१०२ स्त्रीवेदमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्जलन, भय, जुगुप्सा, वैजस, कर्माण,  
वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात निर्माण, तीर्थंकर और ५ अतरायोंका अतर नहीं है । स्त्यानगृद्धि  
त्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबधो ४ का जघन्य अन्तर अतमुं हूत, उत्कृष्ट कुछ कम ५५ पत्य है ।

[विशेषार्थ-मोहनीयकी २८ प्रकृतियों की सत्तावाला कोई एक पुरुषवेदी या नपुंसक-  
वेदी जीव ५५ पत्योपमवाली देवीमें उत्तरज हुआ । छद्मो पर्याप्तियोंको पूर्णकर (१) विश्राम ले (२)  
विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्तकर अतरको प्राप्त हुआ । आयुके अतमे आगामी भवकी  
आयुको बाँधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मरण किया । इस प्रकार कुछ कम ५५ पत्योपम  
छोपेदी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अतर होता है । इसी प्रकार मिथ्यात्वादिका अतर जानना  
चाहिए । ( ५० टी० अतरा० पृ० ९५ ) ]



धारसक० दोआयु० आहारदुग० गत्थि अतर । तिरिम्त्वायु० जह० प्रतो०, उक्क०  
धावीसजससमहम्माणि सादिरेयाणि । मणुसायु० ओध० मणुसगदिदिग ओध ।

१९७ ओरालिय०—पंचणाणा० णवदसणा० मिच्छत्त० सोलमक० भयदुगुं

दो आयु० आहारदुगं० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमिण तित्थयर पचतग  
५ इयाण गत्थि अतर । दो आयु० जह० अतो०, उक्क० सत्तवसससहम्माणि सादिरे  
याणि । सेमाण जह० एग०, उक्क० अतोमुहुत्त ।

१९८. ओरालियमि०—पचणा० णवदसणा० मिच्छत्त० सोलक० भयदुगुं  
देवगदि० ४ ओरालिय-तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० तित्थ० पचत० गत्थि  
अतर । दो आयु० जहण्णु० अतो० । सेमाण जह० एग०, उक्क० अतो० ।

१० १९९ वेउब्बियकायजोगीसु—पचणा० णवदसणा० मिच्छ० सोलमक० भयदुगुं  
ओरालिय० तेजाकम्म० ण्ण० ४ अगुरु० ४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमिण तित्थयं  
पचत० गत्थि अतर । सेमाण जह० एग०, उक्क० अतोमुहुत्त । एव चैव वेउब्बियम  
मिस्स० । णरि दो आयु० गत्थि ।

११ १००. आहार० आहारमिस्स०—पचणा० छटसणा० चदुसज्ज० पुरिस० भयदुगुं  
१५ तेजाकम्म० देवायु० देवगदि० पचिदि० वेउब्बिय० । समचदु० वेउब्बिय० अगोब०

देव-नरकायु और आहारद्विकका अतर नहीं है । तिर्यचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट  
साधिक बाईस हजार वर्ष है । मनुष्यायुका ओधके समान है । मनुष्यगतित्तिकका भी ओध  
के समान है ।

१९७ औदारिक काययोगम—५ ज्ञानावरण ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय,  
जुगुप्सा देव-नरकायु, आहार द्विक, तैजस, कामाण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात,  
निर्माण, तीर्थकर और ५ अतरायोंका अतर नहीं है । दो आयुका जघन्य अतर्मुहूर्त उत्कृष्ट  
साधिक सात हजार वर्ष है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

१९८ औदारिकमिश्र काययोगमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय,  
जुगुप्सा, उपघात चार, औदारिक, तैजस, कामाण, वर्ण ८, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तीर्थकर  
और ५ अतरायोंका अतर नहीं है । दो आयु अर्थात् मनुष्य तिर्यचायुका जघन्य तथा उत्कृष्ट  
अतर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

१९९ वैकियिक काययोग मे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण मिथ्यात्व १६ कषाय, भय,  
जुगुप्सा, औदारिक तैजस, कामाण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर पर्याप्त प्रत्येक, निर्माण,  
तीर्थकर और ५ अतरायोंका अतर नहीं है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त अतर  
है । इसीप्रकार वैकियिकमिश्रकायोग का समझना चाहिए । विशेष, यहाँ मनुष्य तिर्यचायु  
नहीं है ।

११०० आहारक और आहारकमिश्रकाययोगमे—५ ज्ञानावरण ६ दर्शनावरण, ४ सञ्चलन,  
पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस, कामाण शरीर, देवायु, देवगति पचेन्द्रिय जाति, वैकियिक  
शरीर, समचतुरस्र मस्थान, वैकियिक अज्ञोपाग, यणचतुष्क, देवालुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रसक्त

वृष्ण० ४ देवाण्यु० अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्तर-आदेज्ज-णिमिण  
तित्थयर उच्चागोद पचंतराइयाण णत्थि अंतरं । सादासाद०-चदुणोक्क०-धिरादि-  
तिण्णि युगल जह० एगस०, उक्क० अंतो० ।

§१०१. कम्मइयकायजोगीसु-पचणा० णदंसणा० मिच्छ० सोलसरु० तिण्णि-  
वेद-भयदुगु० तिण्णि गदि-पचजादि-चदुसररी-उसठाण-दोअगोवग-छसघडण-वृष्ण० ५  
४ तिण्णि आणुपुव्वि-अगुरु० ४ दोविहायगदि-तसथावरादिचदुयुगल-सुभगादि-  
तिण्णियुगल-णिमिणं-तित्थयर णीचुच्चागोद-पचंतराइयाण णत्थि अतर । सादासा०  
चदुणोक्क० आदाउज्जोव-धिराधिर-सुभासुभ० जस० अजस० जहणु० एगसमओ ।

§१०२. इत्थिवेदेसु-पचणा० छदसणा० चदुसंज० भयदुगु० तैजाकम्म० वृष्ण० ४  
अगुरु० उपघाद-णिमिण तित्थयर पचंतराइयाण णत्थि अतरं । थीणगिद्धि० ३ १०  
मिच्छ० अणतानुधि० ४ जह० अतो०, उक्क० पणवण पलिदो० देसूणाणि । सदासा०

विशेषोक्तं, त्रस ४, सुभग, सुस्तर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्च गोत्र और ५ अंतरायोंका  
अंतर नहीं है । साता-असाता वेदनीय, ४ नोक्कपाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय,  
उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

§१०१ कार्माण काययोगियोंमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, ३ वेद, भय,  
जुगुप्सा, ३ गति(नरकगति छोड़कर), ५ जाति, ४ शरीर, ६ संधान, २ अगोपाग, ६ सहनन, वर्ण ४,  
३ आनुपूर्वी, अगुरुलघु ४, दो विहायोगति, त्रस स्थावरादि ४ युगल, सुभगादि ३ युगल, निर्माण,  
तीर्थंकर, नोच-उच्च गोत्र और पाँच अतरायोंका अंतर नहीं है । साता असाता वेदनीय, ४  
नोक्कपाय, आताप, उचोत्, स्थिर-अस्थिर, शुभ अशुभ, यश कीर्ति, अयश कीर्तिका जघन्य  
उत्कृष्ट अंतर एक समय है ।

[विशेषार्थ-कार्माणकाययोगका उत्कृष्ट काल उत्कृष्टसे तीन समय प्रमाण है । तीन  
समयके बीचमे अंतरका काल एक समयसे अधिक अथवा न्यून न होगा । एक समय बचका  
होगा, एक समय अथवा और एक समय पुन बचका । इस कारण जघन्य-उत्कृष्ट अंतर  
एक समय प्रमाण कहा है ।]

§१०२ स्त्रीवेदमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सञ्चलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण,  
वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात निर्माण, तीर्थंकर और ५ अतरायोंका अंतर नहीं है । स्थानगृद्धि  
त्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुभवो ४ का जघन्य अन्तर अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुल्ल कम ५५ पर्य है ।

[विशेषार्थ-मोहनीयकी २८ प्रकृतियों की सत्तायाळ कोई एक पुरुषवेदी या नपुंसक-  
वेदी जीव ५५ पल्लोपमघाळो देवीमे उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंको पूर्णकर (१) विश्राम ले (२)  
विशुद्ध हो (३) वेदकसन्त्यक्त्यको प्राप्तकर अंतरको प्राप्त हुआ । आयुके अतमे आगामी भवकी  
आयुको बौध्दकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मरण किया । इस प्रकार कुल्ल कम ५५ पल्लोपम  
स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अंतर होता है । इसी प्रकार मिथ्यात्वानिका अंतर जानना  
चाहिए । ( ५० टी० अतरा० ५० ९५ ) ]

पचणोक्तं पचिदि० समचतु० परघादुस्सा० पमत्थयि० तस० ४ धिरादिर्तिण्युगल-  
 सुभग-सुस्वर आदे० उचागो० जह० एग०, उक्क० अतो० । अड्क० जह०  
 अतो०, उक्क० पुञ्जोडिदेखणा । इत्थि० णयुसग० तिरिन्सग० एईदिय०  
 पचसठा० पचसघ० तिरिक्साणु० आदा-उज्जो० अप्पसत्थयि० धावर-दूमग-  
 ५ दुस्मर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क० पणवण पलिदो० देखणाणि । गिरयायु  
 जह० अतो० । उक्क० पुञ्जोडितिभाग देखणा । तिरिक्सायु-मणुसायु जह० अतो० ।  
 उक्क० पलिदोममदपुधत्त । देनायु० जह० अतो० । उक्क० अट्टापण पलिदोव०  
 पुञ्जोडिपुध० । दोगदि० तिण्णि जादि० वेउच्चि० वेउच्चिय० अगो० दोआणुपु०  
 सुद्धम-अपज्जत्त० साधार० जह० एग० [उक्क०] पणवण पलिदो० सादिरेयाणि । मणुसग०

साता असाता वेदनीय, ५ नोकपाय, पचैत्रियजाति, समचतुरस्र सस्यान, परघाव,  
 उच्छ्रास, प्रशस्तविहायोगति, तसचतुष्क, स्थिरादि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय,  
 उचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है । आठ कपायोंका जघन्य अतर्मुहूर्त उत्कृष्ट  
 कुछ कम पूर्वकोटि है ।

[विशेषार्थ—मोहनोयकी २८ प्रकृतिकी सत्तावाला कोई जीव मरण कर भाव स्त्रीवेदी  
 पुरुष हुआ । एक कोटिपूर्वकी आयु प्राप्त की । गर्भसे लेकर आठ वर्ष बीतने पर सम्यक्त्वकी  
 उत्पत्तिसे साथ साथ सकृदसयमकी भी प्राप्त किया । पश्चात् सकृदशरश गिरकर अपत्या  
 ख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरणरूप ८ कपायका वध करके मरण किया । इस प्रकार  
 अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण रूप आठ कपायोंके वधकका अंतर कुछ कम एक  
 कोटिपूर्व कहा है ।]

स्त्रीवेद नपुसकवेद, तिर्यंच गति एकैत्रिय जाति ५ सस्यान, ५ सहनन, तिर्यंचानुपूर्वी,  
 आताप, उघाव, अप्रशस्तविहायोगति, स्यावर, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गीत्रका  
 जघन्य एक समय उत्कृष्ट कुछ कम ५१ पत्य प्रमाण है । नरकायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट  
 कुछ कम कोटिपूर्वका त्रिभाग है । तिर्यंचानु, मनुष्यायु का जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पत्यशत  
 प्रयक्त्व है ।

[विशेषार्थ—कोई २८ मोहकी प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव स्त्रीवेदी था । मरणकर देवोमि  
 उत्पन्न हुआ । वहाँ पर्याप्तियाको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वकी  
 हुआ (४) पश्चात् मिथ्या-री हो गया । तिर्यंच आयु अथवा मनुष्यायु का वधकर मरण किया  
 और पत्यशत प्रयक्त्व कालरमाग परिभ्रमण कर तिर्यंचानु या मनुष्यायुका वध कर सम्यक्त्व  
 सहित हो मरण किया । इस प्रकार असयत सम्यक्त्व स्त्रीवेदी जीवनी अपेक्षा पत्यशत  
 प्रयक्त्व प्रमाण अंतर होता है । (घ० टी० अतरा० पृ० ९६) ]

देवायुका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ५८ पत्योपम पूर्वकोटि प्रयक्त्व है । दो गति, तीन जाति  
 वैश्विक शरीर, वैश्विक अगोपान, दो आनुपूर्वी सुद्धम, अपयोत्तक, साधारणका जघन्य  
 एक समय, [उत्कृष्ट] कुछ अधिक ५५ पत्य है । मनुष्य गति, औदारिक शरीर औदारिक अगो

ओरालिय० ओरालिय० अगो० वज्जरिमभसंध० मणुसाणु० जह० एग०, उक्क०  
तिणिण पलिदो० देखणाणि । आहारदुग जह० अतो०, उक्क० पलिदोमसदपु० ।

११०३. पुरिस०-पंचणा० चदुदंसणा० चदुसज० पंचंत० णत्थि अतरं ।  
धीणगिद्धि० ३ मिच्छ० अणताणु० ४ अडुक० । इत्थिवे० ओर्ध० णिहापयला  
ओर्ध० । सादामा० सत्तणोक्क० पंचिदि० तेजाक्क० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ ५  
पमत्थ० तस० ४ विरादिदोणिणयुगल-सुभग-सुस्सर-जादे० णिमिर्ण तित्थयर  
उचागो० जह० एग०, उक्क० अतो० । णउस० पंचसंठा० पंचसध० अप्पमत्थवि०  
दुमग-दुस्सर० अणादे०णीचा० जह० एगम०, उक्क० वेछावड्ढि-साग० सादि० तिणिण  
पलिदोवमाणि देखणाणि । णिरयायु० इत्थिवेदभगो । दोआयु० जह० अतो०,  
उक्क० सागरोमसदपुधत्त । देवायु० जह० अतो०, उक्क० तेत्तीस साग० सादि० । १।  
णिरपगदि-चदुजादि-णिरवाणुपु०-आदाउज्जो-धात्रादि० ४ जह० एगस० उक्क०  
तेमड्ढिसागरोवमसदं । एणं तिरिक्खगदिदुगं । मणुसगदिपंचग जह० एग०, उक्क०  
तिणिण पलिदो० सादि० । देवगदि० ४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीस साग० सादि० ।  
आहारदुग जह० अतो०, उक्क० सागरोमसदपुधत्त ।

११०४. णउंसं-पचणा० लदमणा० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाक्कम्म० वण्ण० ४ १।

पाग, यय-वृषभसदनन, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय उत्कृष्ट कुल कम तीन पत्य  
है । आहारकद्विकका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पत्यशत पृथक्त्व है ।

११०३ पुष्य वेदमे-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण ४ सञ्जलन, ५ अतराथोका अतर नहीं  
है । स्थानगृद्धिक मिथ्यात्व, अनन्तानुनरी ४, ८ कपाय, स्त्रीवेदका श्लोकके समान जानना  
चाहिए । त्रिदा प्रचलाका भी श्लोकके समा है । साता-असाता वेदनोय, ७ नोकपाय पंचत्रिय  
जाति, वैजस, कामाण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वर्ण ४, अगुग्लयु ४, प्रशस्त विद्यायोगति,  
धन ४ स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुम्बर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच गोत्रका जघन्य एक  
समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है । नपुंसकवेद, ५ सस्थान, ५ सहनन, अप्रशस्तविद्यायोगति, दुर्भंग,  
दुस्सर, अनादेय और नीच गोत्र का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक दो छयासठ सागरमे  
कुल कम तीन पत्य प्रमाण है । नरकायुसा स्त्रीवेदके समान जानना । मनुष्य, तिर्यचआयु-  
का जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर गत पृथक्त्व है । देवायुका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक  
तेतीस सागर है । नरकगति, ४ जाति, नरकानुपूर्वी, आताप उद्योत, स्थावरादि ४ का जघन्य  
एक समय, उत्कृष्ट ६३ सागरोपम शत है । तिर्यचगति तिर्यचगत्यानुपूर्वीमे इसी प्रकार जानना  
चाहिए । मनुष्यगतिप नरका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पत्य है । देवगति ४ का  
जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है । आहारकद्विकका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट  
सागर गत पृथक्त्व है ।

११०४ नपुंसकवेदमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ७ सञ्जलन, भय, जुगुप्सा, वैजस, कामाण,

अगु० उप० णिमिण पचत० णत्थि अतर। वीणागिद्वि० ३ मिच्छ  
 इत्थि० णजुस० तिरिक्खणादि-पचसठा० पचसय० तिग्गिणाणु० उज्जेत० जम्म  
 द्मग० दुस्सराणादे० णीचागो० जह० अतो, एगम०। उज्जेत० त्तल्ल  
 देवणाणि। सादासादा० पचणोक० पचिदि० समचदु० परवाहुमाण-सक  
 ५ तस० ४ विरादिदोणिण्युगल-सुभग-सुस्सर-आदेअ० जह० एगम०, दक्क  
 मुहुत्त। अट्टक० दोआयु० वेउच्चि० छत्तक० मणुमगदितिगं आहारदुम अत  
 तिरिक्खायु० जह० अतो, उक्क० सागरोवमसदपुघत्त। देवायु० जह० अतो,  
 पुच्चकोडितिभाग देवणा। चदुजा० आदाव-थानरादि० ४ जह० एग०, उह्म  
 सादिरेयाणि। ओरालिय० ओरालियअगो० वज्जरिसम० जह० एकम०, प  
 १० पुच्चकोडिदेवणा। तिथय० जहण्णु० अतो०। अवगदवेद०-पचना० चदुदस० पू

यर्णचतुष्प, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अतरायाम अन्तर नहीं है। सत्यान, ५  
 मिथ्यात्व, अन-वानुनघो ४, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यंचगति ५ सत्यान, ५ सहनन विरव  
 चघोव अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्सर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य अतर्मुहूर्त अथवा  
 समय, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है।

[विशेषार्थ-मोहनीय कर्मधी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव मिथ्यात्वकुत्र है  
 सातवें नरकम उत्पन्न हुआ। उहाँ पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विज्ञान  
 (३) सन्यक्त्यको प्राप्त किया। आयुके अन्तमे मिथ्यात्वको पुन प्राप्त करके (४) अयुको  
 (५) निश्राम ले (६) मरा और तिर्यच हुआ। इस प्रकार छह अतर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस व  
 रोपम नपुंसकवेदी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अ तर रहा। (प्र १०७) यही अतर मिथ्यात्व की  
 प्रकृतियोंका होगा।]

साता असाता वेदनीय ५ नोरुपाय, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसस्थान, पत्त  
 उत्कृष्टवास, प्रशस्त विहायोगति, व्रस ४, रियरादि दो युगल सुभग सुस्सर आदेयका जघन्य स  
 समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है। ८ कपाय, २ आयु, तिर्यंच आयुका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर क  
 द्विकया भोषयत् जानना चाहिए। तिर्यंच आयुका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर क  
 पृथक्त्व है। देवायुका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर क  
 आताप, स्थावररादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग है। जाति ४,  
 औदारिक अगोपाग, यज्ञ-नृपमसहननका जघन्य एक अधिक तेतीस सागर है। औदारिक शरीर,  
 तीर्थद्वारका जघन्य उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है।

अपगत वेदम-५ ज्ञानानरण ४ दर्शनानरण, ४ सज्जनन, यश कीर्ति, उच्चगोत्र,  
 (१) 'णउसगवेदेसु मिच्छादिट्ठीगमंतर कचिर कालादो हादि ? एगजीव पडुच महण्णे  
 अतामुहुत्तं उक्कस्येण तत्तीसं सागरोवमाणि देवणाणि। -पट्. २० अतरा० २०७-९।  
 (२) अगदवेदेसु अणियदि उवसम मुहुम-उत्तमाणमतरं केचिर कालादो होदि ? एगजीव पडुच  
 महण्णे अतामुहुत्तं उक्कस्येण अतोमुहुत्तं। पट्. २० अतरा० २१४-२१७।

उच्चागो० पचत० जहण्णु० अतो० । सादावे० णत्थि अतरं ।  
 १०५. कोध०-पचणा० सत्तदसणा० मिच्छ० सोलसक० चदुआयु० आहारदुग०  
 णत्थि अतरं । णिदा-पचला० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं जह० एग०, उक्क०  
 माणे-तिण्णि सजलणाण णत्थि अतर । मायाए दोण्णि संजलणाण णत्थि अतर ।  
 कोधमंगो । लोमे-पचणा० सत्तदसणा० मिच्छ० धारसरू० चदुआयु० आहारदुगं ५  
 णत्थि अंतर । सेमाण जह० एग०, उक्क० अतोमु० । णरि णिदापचला  
 अतो० । अकमाई-साद० णत्थि अतरं । केउलणाण-यथाक्खाद०  
 स० एव चेव ।  
 १०६. मदि० सुद०-पचणा० णवदस० मिच्छ० सोलसक० भयदुगु० तेजाकम्म०  
 ४ अगु० उप० णिमि० पचत० णत्थि अतर । सादासा० छण्णोरू० पचिदि० १०  
 परघादुस्ता० पसत्यनि० तस० ४ थिरादिदोण्णियुगल-सुभग-सुस्सर-आदेज०

योना जघन्य उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है । साता वेदनीय का अतर नहीं है ।

१०५. क्रोधमे-५ ज्ञानावरण, ७ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, ४ आयु, आहा-  
 र और ५ अतरायोंका अतर नहीं है । निद्रा, प्रचला का जघन्य-उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।  
 शेषोपार्थ-निद्रा, प्रचलाका वध अपूर्वकरणके प्रथमभागपर्यंत होता है । इन  
 का वधक जीव उपशमश्रेणीका आरोहण करके, उपशातकपाय पर्यंत चढकर तथा  
 अपूर्वकरणके प्रथमभागमें पुन वध प्रारंभ कर देता है । इस कारण इनका जघन्य  
 अतर अतर्मुहूर्त प्रमाण कहा है ।]

शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

अनमे-३ सञ्जलनका अतर नहीं है । मायामे-दो सञ्जलनका अतर नहीं है । शेष  
 क्रोधके समान भग जानना चाहिए ।

अभरुपायमे-४ ज्ञानावरण, ७ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कपाय, ४ आयु, आहारकद्विक  
 अतरायों का अतर नहीं है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।  
 निद्रा, प्रचलाका जघन्य-उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

कपायमे-सातावेदनीयका अतर नहीं है ।

शेषोपार्थ-सातावेदनीयका अप्रमत्तसे लेकर सयोगीवेचली पर्यंत निरतर वर होता है ।  
 उपशातरुपाय या क्षीणरुपायमें साताका अतर नहीं बताया है ।]

ज्ञान, यथाख्यात मयम, फेवलदर्शनका अवपायकी तरह वर्णन जानना चाहिए ।

०६ मत्तज्ञान, श्रुताज्ञानमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय,  
 जस, कार्माण वर्ण ४, अगुरुल्लु उपघात, निर्माण तथा ५ अतरायोंका अतर नहीं है ।

शेषोपार्थ-ज्ञानावरणादिके अनधक उपशात कपायादि गुणस्थानमे होंगे । इन बुझान-  
 दिके दो गुणस्थान ही पाये जाते हैं । इससे ज्ञानावरणादिका अतर नहीं कहा ।]

सा-असाता वेदनीय, ६ नोकपाय, पंचेन्द्रियजाति, समचतुरस्रस्थान, परघात,



दोष्णियुगल-सुभग-सुस्मर-आदे० णिमिणं तित्थयरं उच्चागोद-पंचत० जह० एग०,  
उक्क० अतो० । अट्टकमायाणं जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेस्सणा । दोआयु०  
द्वंगदि० ४ जह० अतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । मणुसगदिपंचग जह०  
गामपुव्वत्तं, उक्क० पुव्वकोडि० । आहारदुग जह० अतो०, उक्क० छागडिसागरो०  
नादिरेयाणि । एव ओधि [ दं० ] सम्मादिट्ठित्ति ।

4

११०९. मणपञ्जयणा०-पचणा० छरंम० चतुसंज० पुरिस० भयदु० ठेवगदि-  
पंचिदि० चतुसरी० समचदु० दोअगो० वण्ण० ४ देवाणुपु० अगुरु० ४ पसत्थणि०  
तम० ४ सुभग-सुस्मर-आदेज-णिमिण-तित्थयर-उच्चागोद-पंचत० जहण्णु० अतो० ।  
सादामा०-चदुणोक० धिरादित्तिणियु० जह० एग०, उक्क० अतो० । देवायु०  
जह० अतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभाग देस्सणा ।

१०

[विशेषार्थ-ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका वधक जीव उपशमश्रेणीका आरोहण कर  
जब उपशतवपाय गुणस्थानमे पहुँचा, तब इन ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका वध रुक गया । बादमे  
जैसे ही यह जीव नीचे गिरा कि इनका वध पुन प्रारम्भ हो गया । इस दृष्टिसे इन ज्ञानोमि  
वधका अंतर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त प्रमाण कहा गया है ।]

छठ वपायोंका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि है ।

[विशेषार्थ-एक मनुष्यने अधिकत द्वागमें अप्रत्यारयानावरण, प्रत्यारयानावरण  
रूप कपायाष्टका वध किया । आठ वर्षकी उमरके अनंतर सम्यक्त्व तथा महाप्रतको एक साथ  
धारण कर एक पूर्व कोटिसे धोचो आयु प्रमाण महाजनी रह भरणकालमें असयमी वन पुन ८  
वपायोंका वध करके मरण किया । इस प्रकार देशोन पूर्व कोटि अंतर होता है ।]

नो आयु, देवगति ४ धा जघय अतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक ३३ सागर है । मनुष्य  
गतिपचकना जघन्य धर्पपृथक्त्व और उत्कृष्ट पूर्वकोटि है । आहारकद्विकका जघन्य अतर्मुहूर्त  
उत्कृष्ट साधिक ६९ सागर है ।

अवधिद्वारा तथा सम्यक्त्वमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

११०९. मन पर्ययज्ञानमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ७ सज्ज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा,  
देवगति, पंचेन्द्रिय ज्ञानि ४ शरीर, समचतुरस्र सरयान, दो अगोपाग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरु  
रुजु ४, प्रशस्त विद्वानोगति, व्रत रतुका सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और  
५ अंतरायस जघन्य उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

[विशेषार्थ-कोई मन तब ज्ञानी उपशमश्रेणी चक्रर उपशतवपाय गुणस्थानमे पहुँचा तब  
अतर्मुहूर्तपर्यन्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका अन्त हो गया । पश्चात् वह सूक्ष्मरापरायादि  
गुणस्थानोमि जगा, तो पुन उन प्रकृतियोंका वध प्रारम्भ हो गया । इस प्रकार चहा अंतर जघन्य,  
उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त प्रमाण कहा है ।]

साठा-अज्ञानावेत्तीय, ४ नोत्रपाय स्थिरादि ३ युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट  
अतर्मुहूर्त है । देवायुका जघय अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग है ।



§११०. एव सजद० । एव चेन सामाह० छेदो० परिहार० सजदासंजदाण ।  
 णवरि धुनिगाण णत्थि अंतर । सुहुमसंपराडयस्स सव्वपगटीण णत्थि अतरं ।  
 असजदे धुनिगाण णत्थि अतर । धीणागिद्धि० ३ मिच्छ० अणताणु० ४  
 इत्थि० णतुस० तिरिन्सगादि-पचसठा० पचसव० तिरिक्खाणु० अप्पसत्थवि०  
 उज्जो० दूमग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० जह० उक्क० तेत्तीस० साग० देहणा ।  
 णवरि धीणागिद्धि० ३ मिच्छ० अणताणु० ४ जह० अतो० । चदुआयु०  
 वेउव्वियल्ल० मणुमगादितिग च ओवं । एइदिय-दडओ तित्थयर च णयुमकवेदभंगो ।

§१११ चन्नुदम० तसपज्जत्तभगो । अचक्खुदसण ओध ।

§११२. ऋणाए-पचणा० छदसणा० चारसक० भयदुग्गु० तेजाकम्म० वण्ण० ४  
 १० अगु० उप० णिमि० तित्थयर-पचत० दो-आयु० णत्थि अतर । धीणागिद्धि० ३

[निशेपार्थ-कोई एक कीटिपूर्वकी आयुवाला जीव मन-पर्ययज्ञानी हुआ । आयुका  
 निभाग शेष रहनेपर देवायुका प्रथम अतर्मुहूर्तमे बध किया । इसके अनंतर मरणकाल आनेपर  
 पुन आयुका बध किया । इस प्रकार कुछ कम पूर्वकोटिका निभाग देवायुका अंतर होगा ।]

§११० सयममें इस प्रकार है । सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि तथा सयवा  
 सयतोम भी इस प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहा भ्रुव प्रकृतियामें अंतर नहीं है ।

सूक्ष्मतापरायमे-सर्व प्रकृतियोंका अंतर नहीं है । असयतमे-भ्रुव प्रकृतियोंका अंतर  
 नहीं है । स्थानगृद्धिनिर्क, मिथ्यात्व अनन्तानुबधी ४, स्त्रीवै, नपु सक वेद, तिर्यंचागति, ५ सत्यान  
 ५ सहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगनि उद्योत, दुर्भंग, दुस्सर, अनादेय, नीच गोजका  
 जपन्य एक समय, उल्लूक कुछ कम ३३ सागर है ।

[निशेपार्थ-नोहे मनुष्य या तिर्यञ्च मोहनीयको २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मरणकर सातवीं  
 पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंको पूर्णकर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो वेदकसम्यक्त्वी  
 हुआ (३) उस समय मिथ्यात्वादि प्रकृतियोंका बध रुका । इस प्रकारकी अवस्था आयुके अल्प  
 काल अनोप रहने तक रही । परवात् यह जीव मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ (४) इस  
 प्रकार अंतर प्राप्त हुआ । पुन तिर्यञ्च आयुका बधकर (५) विश्राम ले (६) निकला । इस प्रकार  
 छह अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्रमाण मिथ्यात्वादिका बध नहीं होनेसे उतना अन्तर रहा ।  
 (घ० टी० अ तरा० पृ० १३४) ]

विशेष यह है कि स्थानगृद्धि ३, मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबधी ४ का जपन्य अतर्मुहूर्त  
 है । चार आयु वैत्रियिक पट्टक, मनुष्यगतिनिर्कमे ओषणत् जानना चाहिए । ऐकेन्द्रिय दडक  
 तथा तीर्थकरमे नपुसकवेदके समान भंग जानना चाहिए ।

§१११ चक्षुदर्शनमे-प्रस पर्याप्तिकोका भंग जानना चाहिए । अचक्षुदर्शनमे-ओषवत्  
 जानना चाहिए ।

§११२ छृण्णतेइयाम-५ क्षानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा तेजस कार्माण,  
 चैतन्क, अगुरुलघु, वपघात, निर्माण, तीर्थकर, ५ अतराय, २ आयुका अंतर नहीं है ।

मिच्छ० यगतायु० ४ जह० अंतो० । इत्थि० णवुसक० दोगदि० पंचसठा० पंचसंघ०  
 दोत्रायु० उज्जो० अप्पमत्त्य० दूमग-दुस्स० अणाटे० णीच्चुत्तागो० (१) जह० एगस०,  
 उक्क० तेनीम साग० देव० । दोआयुगस्स णिरयभगो । । वेउच्चिय० वेउच्चिय०  
 अगो० जह० एगम०, उक्क० न्नीम सा० (१) । सेसाणं जह० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्त ।  
 एव णील-शाऊणं । णरि मथुमगदिठिगं सादभंगो । वेउच्चि० वेउच्चि०अगो० जह०  
 एग०, उक्क० नत्तारम-सत्तसागरो० ।

१११३. तेउ०-पचणा० छदंसणा० नारसरु० भयदु० ओरालिय० आहारतेजाकम्म०

स्थानवृद्धिप्रिक, मित्यात्व, अनतानुनधी ४ का जघन्य अतर्मुहूर्त, है [ उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है ]

श्रीवेद, मनुसंवेद, ० गति, ५ सख्यान, ५ सहनन, २ आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त-  
 शिदयोगति, दुमंग, दुम्बर, अनादेय, नीचगोत्र, उच्चगोत्र ( ? ) का जघन्य एक समय,  
 उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है ।

[ विशेषार्थ- ] यहाँ उच्चगोत्रका अन्तर देशोन ३३ सागर कहा है, किन्तु यह बात चितनीय है  
 कि जब उच्चगोत्रका यथाकाल कृष्णदेश्यानी अपेक्षा देशोन ३३ सागर कहा है तथा नीचगोत्रका  
 यथाकाल साधिक ३३ सागर कहा है, तब उच्चगोत्रका अन्तर या नीचगोत्रका अन्तरकाल समान  
 रूपसे मापिक ३३ सागर कहा जाना चाहिये या । ]

दो आनुना नरकगतिके समान जानना चाहिये ।

वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अगोपागका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट २२ ( ? ) सागर  
 जानना चाहिये । दोषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

[ विशेषार्थ- ] कृष्णदेश्यायुक्त मनुष्य या तिर्यचने वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपागका  
 यथा काल और मरण कर सातवीं पृथ्वीमे उत्पन्न हो ३३ सागरप्रमाण आयु प्राप्त की । यहाँ  
 अर्धनरयन्त्र कृष्णदेश्याने होते हुए भी वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपागका यथा नरकगतिके  
 कारण नहीं हो सका । आयु पूर्ण होनेपर मरण कर तिर्यच हुआ, जहाँ पुनः एक प्रकृतियोंका  
 यथा काल होता है कि 'सायोम' के स्थानपर 'तेतोस' पाठ ठीक होगा । ]

दो प्रकार नीच तथा चापोत देश्यामें जानना चाहिये । विशेष, मनुष्यगतिक्रिकमें  
 यथादेश्याके समान भग जानना चाहिये । वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपागका जघन्य  
 एक समय, उत्कृष्ट मगद सागर तथा सात सागर अन्तर है ।

[ विशेषार्थ- ] कृष्णदेश्याके समान नीच तथा चापोतदेश्यायुक्त दो जीवोंने वैक्रियिक शरीर  
 एक वैक्रियिक अगोपागका यथा कालके मरण किया और प्रमत्त पंचयें तथा सीमरे नरकमे  
 उक्त कारण दिया । यहाँ मगद सागर तथा सात सागरप्रमाण उक्त दोनी प्रकृतियोंका यथा  
 काल हो सका । यथाकाल मरण कर ये मनुष्य या तिर्यच हुए, जहाँ उन प्रकृतियोंका पुनः यथा हो  
 सका । इन प्रकार मगद तथा सात सागर प्रमाण अन्तर निम्न हुआ । ]

१११३. तेउ०-पचणा० छदंसणा० नारसरु० भयदु० ओरालिय० आहारतेजाकम्म०

आहार० अगो० वण्ण० ४ अगु० ४ वादर-पञ्जत्त-पत्तेय-णिमिण-तित्थपर-पवंत०  
 णत्थि अतर । धीणगिदि० ३ मिच्छ० अणत्ताणु० ४ जह० अतो० । इत्थि० णुम०  
 तिरिक्रमदि० एहदिय० पचसठाण० पचसघ० तिरिक्रमाणु० आदाउज्जो० अप्प  
 सत्थवि० दूमग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० जह० एग०, उक्क० वेसागरो० सादिर० ।  
 ५ सादासाद-पचगोरु० मणुसग० पचिदि० समचदु० ओरालिय० अगो० वज्जत्तिस०  
 मणुसाणु० पसत्थवि० तस० थिरादिदोणियुगल-सुभग-सुस्सर आदे० उचागो० जह०  
 एगस०, उक्क० अतो० । तिरिक्र-मणुसाणु० देवोव । देवाणुग णत्थि अंतर । देवगदि० ४  
 जह० दसवस्ससहस्साणि अथवा पल्लिदोवमसादिरेयाणि । उक्क० वेसागरोवमाणि  
 मादिरेयाणि ।

१० §११४. पम्माए-पचणा० छदसणा० वारमक० भयदुगुं पचिदिय० चदुसरी-  
 ओरालियअगो० आहारम० अंगो० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमिण तित्थपर  
 पचत० णत्थि अतर । सेस तेउमगो । णत्तरि मगद्धिदी भाणिदव्वा । एहदिय-आदाव धार  
 णत्थि [अतर] । देवगदि० ४ जह० वेसाग० मादि०, उक्क० अट्टारससाग० मादिरे० ।

आहारक तैजस कार्माण शरीर, आहारक अंगोपाग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येक,  
 निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अतरायाका अंतर नहीं है । स्थानगृद्धिजिक, मिथ्यात्व, अनतानुबन्धि  
 ४ का जघन्य अतर्हृत् [ और उत्कृष्ट साधिक दो सागर ] है ।

[विशेषार्थ-तेजोलेइयावाले किसी मिथ्यात्वी जीवने सौधमदिकमे उत्पन्न हो साधिक  
 दो सागर प्रमाण स्थिति प्राप्त की । वहाँ छदों पर्याप्ति पूर्णकर विभ्राम ले, विशुद्ध हो, सम्यक्त्वको  
 ग्रहण कर आयुके अंतमे मिथ्यात्वी हो मरण किया । उसकी अपेक्षा यहाँ मिथ्यात्व आदिका  
 उत्कृष्ट अंतर साधिक दो सागरोपम कहा है ।]

श्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यंचगति एकेन्द्रिय जाति, ५ सम्थान, ५ सहनन तिर्यंचानुपूर्वी,  
 आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्सर, अनादेय तथा नीचगोत्र का जघन्य एक  
 समय, उत्कृष्ट साधिक दो सागर है । साता असाता वेदनीय, ५ नोकपाय, मनुष्यगति, पचेन्द्रिय  
 जाति, समवतुगस्र मस्थान, औदारिक अंगोपाग, वज्रशुभम सहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहा  
 योगति, प्रस, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, जघगोत्रका जघन्य एक समय उत्कृष्ट  
 अतर्हृत् है । तिर्यंचानु-मनुष्यायुका देवोंके ओघ समाप्त है । देवायुका अंतर नहीं है । देवगति  
 ४ का जघन्य दस हजार बष अथवा साधिक पत्त्यप्रमाण है । उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागर है ।

§११४ पद्मलेइयामे-५ हानावरण ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति,  
 चार शरीर, ( आहारकको छोड़कर ) औदारिक अंगोपाग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपाग,  
 वर्ण ४ अगुरुलघु ४, तस ४, निर्माण तीर्थंकर तथा ५ अतरायाके बधकोंका अंतर नहीं है ।  
 शेषका तेजोलेइयाके समाप्त भंग जानना चाहिए । विशेष यह है कि अपनी अपनी स्थितिप्रमाण  
 अंतर ग्रहण करना चाहिए । यहाँ एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावरका अंतर नहीं है ।

§११५. सुक्काए—पंचणा० छदसणा० सादासा० चदुसज० सत्तणोक० पंचि-  
दि० तेजाकम्म० समचदु० वज्जरिम० वण्ण० ४ अगुरु० ४ पसत्थयि० तस० ४  
धिरादिदोणियुगल-सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० तित्थयरं उचागोद-पचत्त०  
जह० एगम०, उक्क० अतो०। णवरि णिदा-पचला ओघं। थीणगिद्धि० ३ मिच्छ०  
अणताणु० ४ जह० अंतो०। इत्थि० णवुस० पचसठा० पचसघ० अप्पसत्थ० दूभग-५  
दुस्सर अणादे० णीचागो० जह० एगस०, उक्क० एककूचीस साग० देहणा०।  
अट्टक० देवापु० मणुसग० ओरालिय० ओरालियअगो० मणुसाणु० णत्थि अतरं।  
मणुसाणु० देवोघ। देवगदि० ४ जह० अंतो०, उक्क० तेचीस साग० सादि०। आहार-  
दुग जहणु० अतो०। भवसिद्धिया ओघं।

[विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, आताप तथा स्यावरका वध सौघर्मद्विक पर्यन्त होता है। यहाँ पीत-  
लेस्या पायो जाती है। पद्मलेस्यामे इनका वध नहीं है, अत अतर नहीं कहा है।]

देवगति ४ का जघय साधिक दो सागर तथा उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है।

[विशेषार्थ—पद्मलेस्यावाले देवो की जघन्य स्थिति साधिक दो सागर है और उत्कृष्ट साधिक  
१८ सागर है। इनके देवगतिचतुष्कका वध नहीं होगा। इस अपेक्षा उपरोक्त अंतर कहा है।]

§११५ शुक्ललेश्यामें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असातावेदनीय, ४ सज्वलन, ७  
नोकपाय, पचेन्द्रियजाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र सस्थान वज्रधृपम-संहनन, वर्ण ४,  
अगुरुल्लु ४, प्रशरविहायोगति, व्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग सुस्वर, आदेय, निर्माण,  
नीर्यकर, उद्यगोत्र तथा पच अतरायाँको जघन्य एक समय उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है। विशेष-निद्रा  
प्रचलाका ओषवत् जघन्य, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है। स्त्यानगुद्धिन्निक, मिथ्यात्व, अनन्तानुवधी  
४ का जघन्य अतर्मुहूर्त है। [ उत्कृष्ट कुछ कम इकतीस सागर है। ]

[विशेषार्थ—शुक्ललेश्यावाला द्रव्यलिंगी जीव ३१ सागरोंकी स्थितिवाले अतिम भ्रैवेयकमे  
उत्पन्न हुआ। जहाँ पर्याप्तियोंको पूर्णकर, विधाम ले, विशुद्ध हो, सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ।  
आयुके अतर्मे पुन मिथ्यात्वको प्राप्तकर मरण किया। इस प्रकार देशोन ३१ सागर प्रमाण  
मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अतर हुआ। इस अपेक्षा मिथ्यात्व अनन्तानुवधी आविका अतर  
पतना ही कहा गया है।]

स्त्रीवेद, नपु सकवेद, ५सरथान, ५सहनन, अप्रदात्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच  
गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३१ सागर है। आठ फयाय, देवायु मनुष्यायुगति,  
औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाय, मनुष्यानुपूर्विका अतर नहीं है। मनुष्यायुगता देवोके  
ओष सनान है। देवगति ४ का जघय अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिज ३३ सागर है। आहारक-  
द्विकका जघन्य उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है।

भयसिद्धिकेनि-ओषवत् धानता चाहिए।

§११६. खड्गसम्मादिदि धुविगाण अट्टकसायाणं च ओधिभंगो । मण्णमायु देवोष । देवायु० जह० अतो०, उक्क० पुन्वकोडितिभाग देसणा । मणुसगदिपचग णत्थि अतर । देवगदि० ४ आहारदुगं जह० अतो०, उक्क० तेत्तीस साग० मादि० । सादादीण जोधिभंगो ।

५ §११७. वेदगे धुनिगाणं तित्थयरस्स च णत्थि अंतर । अट्टक० दोआयु० मणुसगदि पचग ओधिभंगो । देवगदि० ४ जह० पलिदोवम० सादि०, उक्क० तेत्तीस साग० । आहारदुगं जह० अतो०, उक्क० उअट्टिसागरो० देसणा, अथवा तेत्तीस सादिरे० । सेसाण जह० एग० उक्क० अतो० ।

१० §११८. उवसम०-पचणा० चदुदस० मादासाद० चदुसज० सत्तणोक० पचिदि० तेनारुम्म० समचदु० वण्ण० ४ अयु० ४ पसत्थवि० तस० ४ विरादिदोणियुग०

§११६ क्षयिकसम्यक्त्वमे-ध्रुव प्रकृति तथा आठ कपायोंका अवधिज्ञानके समान भग जानना चाहिए । मनुष्यायुका देवोंके ओष समान है । देवायुका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटिका त्रिभाग है ।

[विशेषार्थ-कोई क्षयिकसम्यक्त्वो जीव एक कोटिपूर्वकी आयुवाला मनुष्य उत्पन्न हुआ । आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर उसने आगामी देवायुका बध किया और आयुके पूर्ण होनेके पूर्व पुन उसी आयुका बध किया । इस प्रकार कुछ कम एक कोटि पूर्वका त्रिभाग देवायुका अतर रहा ।]

मनुष्यगतिपचकमे अतर नहीं है । देवगति ४, आहारकद्विकका जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है । सातादि प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान भग जानना चाहिए ।

§११७ वेदकसम्यक्त्वमे ध्रुव प्रकृतिया तथा तीर्थकर प्रकृतिका अतर नहीं है । आठ कपाय, (अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, दो आयु मनुष्यगतिपचकका अवधिज्ञानके समान भग जानना चाहिए । देवगति ४ का जघन्य साधिक पत्य है तथा उत्कृष्ट ३३ सागर है ।

[विशेषार्थ-किसी वेदकसम्यक्त्वो मनुष्यने सुरचतुष्कका बध करनेके अनंतर मरण करके सौधर्मद्विक या सर्वार्थसिद्धिमें जन्म धारण किया । वहाँ सौधर्मद्विककी जघन्य आयु साधिक पत्यप्रमाण वेदकसम्यक्त्वो रहा और सुरचतुष्कका बंध नहीं हुआ । मरणके बाद पुन मनुष्य ही इनका बध प्रारंभ कर दिया । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें तेत्तीस सागरप्रमाण वेदक सम्यक्त्वयुक्त रहकर सुरचतुष्कका बध नहीं किया । मरण करके मनुष्य ही सुरचतुष्कका बध पुन प्रारंभ कर दिया । इस प्रकार पूर्वोक्त बधका अतर जानना चाहिए ।]

आहारकद्विकका जघन्य अतर्मुहूर्त उत्कृष्ट कुछ कम ६६ सागर है । अथवा साधिक तेत्तीस सागर है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

§११८ उपशमसम्यक्त्वमे-अज्ञानावरण, उदरानावरण, साता असाता वेदनीय, ४ सज्जलन अनोक्पाय, पचेत्त्रियजाति, वैचस-कामाणि शरीर, समचतुरस्रस्थान, वण ४, अगुरुहधु ४,

सुम० सुस्वर० आदे० णिमि० तित्थय० उच्चागो० पंचत० जह० एग०, उक्क० अतो० । णिहा-पयला० अट्ठक० देवगादि० ४ आहारदुग० जहण्णु० अतो० । मणुस-गादिपचग णत्थि अतरं ।

§११९. सासणे-पंचणा० णउदस० सोलसक० भयदुगु० तिण्णिआयु० पंचिदि० तेनाक० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमिण पंचत० णत्थि अंतर । सेसाण जह० ५ एग०, उक्क० अतो० ।

§१२०. सम्मामि०-दो वेदणीय-चदुणोरु० विरादितिण्णियुग० जह० एग० उक्क० अतो० । सेसाण णत्थि अतर ।

§१२१. सण्णि-पंचिदियपज्जत्तमंगो । असण्णि-धुविगाण णत्थि अतर । चदुआयु० वेउव्वियल्लक्क० मणुसगादितिगं च तिरिक्खोघ । सेसाणं जह० एग० १० स०, उक्क० अतो० ।

§१२२. आहारगे-पंचणा० छदसणा० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिदिय०

भ्रशास्त्रविहायोगति, व्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, स्वर्गोत्तर तथा पच अतरायांका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

[विशेषार्थ-किसी उपशमसम्यक्त्वो जीवने उपशमश्रेणीका आरोहण कर जन उपशात-कपाय गुणस्थान प्राप्त किया, तब ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके बधकी व्युत्पत्ति हो गयी पुन नीचे गिरनेपर उन प्रकृतियोंका बध प्रारंभ हो गया । इस दृष्टिसे यहाँ अतर कहा है ।]

निद्रा-प्रचला, आठ कपाय, देवगति ४, आहारकद्विकका जघन्य उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

[विशेषार्थ-निद्रादिका बधक बोई उपशमसम्यक्त्वो उपशम श्रेणीमे चढा । वह जब अपूर्व करणके अंतिमभाग तथा आगेके गुणस्थानोंमे चढा, तब निद्रादिका बध होना रुक गया । पश्चात् नीचे उतरनेपर पुन बध आरंभ हो गया । इसका अतर अतर्मुहूर्त प्रमाण होगा ।]

मनुष्यगतिपचकका अतर नहीं है ।

§११९ सासादनसम्यक्त्वमें-५ ज्ञानावरण ९ दर्शनावरण १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, नरकको छोड़ तीन आयु, पचेन्द्रिय, तैजस कामाण, वर्ण ४, अगुरुल्लु ४, व्रस ४, निर्माण, ५ अतरायांका अतर नहीं है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

§१२० सम्यक्त्वमिध्यात्वीमे-दो वेदनीय, ४ नोकपाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंमे अतर नहीं है ।

§१२१ सक्षीमें-पचेन्द्रियपर्याप्तकका भग जानना चाहिए । असक्षीमें-ध्रुव प्रकृतियोंका अतर नहीं है । चार आयु, वैक्रियिकपट्क, मनुष्यगतित्रिकका तिर्यचोंके ओष समान जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त है ।

§१२२ आहारकमे-२ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असातावेदनीय, सज्वलन ४,

तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ थिरादि दोण्णियुग०  
 सुभग-मुस्सर आदे० णिमिण तित्थयर पचन० जह० एग०, उक्क० अतो०। पत्तो  
 णिहा पचलाण जहण्णु० थो०। तिण्णि आयु० आहारदुग जह० अतो०, उक्क०  
 अंगुलस्स अससेजो भागो। एव चेव वेउत्त्रियल्लम्फ-मणुसगदिदिग च। पत्तो ब०  
 ५ एगस०। ओरालिय० ओरालिप० अगो० वज्जरिस० जह० एग०, उक्क० तिण्णि  
 पलिदो० सादिरे०। सेसाण ओघ। आणाहार० कम्महगभगो।

एव अंतरं समच।

७ नोरुपाय, पचेत्त्रियजाति, सैजस-वर्माण-शरोर, समचतुरस्समस्यान वर्ण ४, अगुल्लुपु, प्रसत्तविहायागति, तस ४, स्थिरादि दोयुगळ सुभग सुखर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर रूप एव अतरयोका जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है। विशेष, निद्रा प्रचलाका जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है। ३ आयु, आहारउद्दिक्का जघन्य अंतर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट अगुल्लके असत्ताका भाग है। इसी प्रकार वैत्रियिकपटक् मनुष्यगतिप्रिकका जानना चाहिये। विशेष, इसका जघन्य एउसमय प्रमाण है। औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, वज-वृषभसहनका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पत्य है। शेष प्रकृतियोंका ओघवत् है।

अनाहारकोंमें—कामाण फाययोगके समान जानना चाहिये।

इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा अंतर समाप्त हुआ।



(१) "आहाराणुरादेण सासणसम्मादिदि-सम्मामिच्छादिदीणमतर केवन्तिर कालादो होदि। एगजीव पधुच बहण्णो पलिदोयल्लस्स अणुलेज्जदिभागो, अतोमुहुच। उक्कस्सेण अगुल्ल अणुलेज्जदिभागो अणुलेज्जससेज्जाओ आसप्पिणि-उत्तप्पिणीओ। असजदसम्मादिदिप्यहुच्चि जाव अप्पमत्तसज्जदाणमत्तर केवचिर फालादो होदि २ एगजीव पधुच बहण्णो अतोमुहुच, उक्कस्सेण अंगुलस्स अणुलेज्जदिभागो, अणुलेज्जाओ आसप्पिणि-उत्तप्पिणीआ। -पद२० अतरा० ३८४-९०।

## [ सण्णियासपरूपा ]

§१२३. सण्णियासो दुग्घो सत्थाणसण्णियासो, परत्थाणसण्णियासो चेत् ।  
सत्थाणसण्णियासे पग्गद । दुग्घो णिद्देशो ओघेण आदेसेण य ।

§१२४. तत्थ ओघेण—आभिण्णिवोधिक्क—णाणावरणीय वंघतो च्चदुण्ण णाणावरणी-  
याण णियमा वधग्गो । एत्तमेक्कमेक्कस्स वधग्गो । णिद्दाणिद्द वधतो अहदसणावरणीयाण  
णियमा वधग्गो । एव थीणगिद्धित्थिस्स । णिद्द वधतो थीणगिद्धित्थि सिया वधग्गो<sup>५</sup>  
सिया अत्रधग्गो, पंचदसणावरणीयाण णियमा वधग्गो । एव पचल्ला० । चम्मसुदसणा०

## [ सन्निकर्पप्ररूपणा ]

§१२३ सन्निकर्प दो प्रकारका है, एक स्वस्थान सन्निकर्प और दूसरा परस्थान सन्निकर्प है ।  
यहां स्वस्थान सन्निकर्प प्रकृत है । उसका ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारसे निर्देश करते हैं ।

[विशेषार्थ—स्वस्थान सन्निकर्पमे एक साथ बंधनेवाली एकजातीय प्रकृतियोंका ग्रहण किया  
गया है । परस्थान सन्निकर्पमे एक साथ बंधनेवाली सजातीय एव विजातीय प्रकृतियोंका ग्रहण  
किया गया है ।]

§१२४ ओघसे—आभिण्णिवोधिक्क ज्ञानावरणका वध करनेवाला शेष श्रुतादि ज्ञानावरण-  
चतुष्टयको नियमसे बंधता है । इसी प्रकार एक प्रकृतिका वध करनेवाला ज्ञानावरणकी शेष  
प्रकृतियोंका वधक है ।

[विशेषार्थ—ज्ञानावरण की मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय, केवलज्ञानावरणरूप किसी भी  
प्रकृतिका वध होनेपर शेष चार प्रकृतियोंका भी नियमसे वध होगा । ऐसा नहीं है कि  
अवधिज्ञानावरणका तो वध होता रहे और मन पर्ययज्ञानावरणादिका वध न हो । पाँचों  
ज्ञानावरणके भेदोंका सदा एक साथ वध होता रहता है ।]

निद्रानिद्राका वध करने वाला ८ दर्शनावरणका नियमसे वधक है । इसी प्रकार स्थान-  
गृद्धित्तिकमे भी समझना चाहिए । निद्राका वधक स्थानगृद्धित्तिकका वधक है भी और नहीं  
भी है । किन्तु वह दर्शनावरणपचक अर्थात् चक्षु-अचक्षु-अत्रधि-क्खेत्तलदर्शनावरण तथा  
प्रचल्लाका नियमसे वधक है ।

[विशेषार्थ—स्थानगृद्धित्तिकका वध सासादन गुणस्थान तक होता है और निद्राप्रकृतिका  
अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथमभागपर्यन्त वध होता है, अतः निद्राका वध होनेपर स्थानगृद्धि-  
त्तिकका वध होना अनिवार्य नहीं है । हो भी सकता है, नहीं भी होवे ।]



वध० पंचदंशणा० सिया वधगो सिया अनधगो, तिण्णि दसणापरणीयाण णियमा वधगो । एव तिण्णि दसणा० । साद वधतो असादस्स अनधगो । असाद वधतो सादस्स अनधगो ।

§१२५. मिच्छत्त बंधतो सोल्लस कमाय-भयदुग्गुच्छाण णियमा वधगो । इत्थिवेदं ५ सिया वधगो, सिया अनधगो । पुरिसवेद सिया वधगो, सिया अवधगो । णडुसकवेद मिया वधगो मिया अवधगो । तिण्णि वेदाण एकदर वधगो, ण चेव अनधगो । हस्सनिदि सिया वधगो सिया अनधगो । अरदि-सोगाण मिया वधगो सिया अवधगो । दो ७ युगलाण एकदर वधगो ण चेव अवधगो ।

§१२६. अणताणुवधिकोध वधतो मिच्छत्त सिया वधगो सिया अवधगो, १० पण्णारसकसाय-भयदुग्गुच्छाण णियमा वधगो । इत्थिवेद सिया वधगो, पुरिसवेद सिया वधगो, णडुसक० सिया व० । तिण्ण वेदाण एकदर वधगो ण चेव अनधगो ।

निद्राके समान प्रचलाका भी वर्णन जानना चाहिए । चक्षुदर्शनावरणका वधक और निद्रादिक पाच दंतौनावरणका कथंचित् वधक है कथंचित् अवधक है, किन्तु अचक्षु-अवधि केवलदर्शनावरणका नियमसे वधक है । इसी प्रकार अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरणमें जानना चाहिए ।

[विशेषार्थ-चक्षुदर्शनावरणका वध सूक्ष्मसाम्भराय गुणस्थानपर्यंत होता है और एव निद्राओंका अपूर्वकरणपर्यंत होता है, इस कारण चक्षुदर्शनावरणके वधकके निद्रादिका वध विज्ञान रूपमें बड़ा है ।]

साताका वध करनेवाला असाताका अवधक है । असाताका वधक साताका अवधक है ।

[विशेषार्थ-साता और असाता परस्पर प्रतिपक्षी प्रकृतियों हैं । अत एकके वध होतेसमन दूसरीका अवध होगा ।]

§१२५ मिथ्यात्वका वध करनेवाला-सोल्लह कपाय, भय जुगुप्साका नियमसे वधक है । स्त्रीवेद का स्यात् ( कथंचित् ) वधक है, स्यात् अवधक है । पुरुषवेदका स्यात् वधक है स्यात् अवधक है । नपुंसकवेदका स्यात् वधक है स्यात् अवधक है । तीन वेदोंमेंसे अन्यतमका वधक है अवधक नहीं है । हास्य, रतिका स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है । अरति-शोकका स्यात् वधक है स्यात् अवधक है । दोनों युगलोंमेंसे अत्यतरका वधक है, अवधक नहीं है ।

§१२६ अनतानुबंधी कोषका वध करनेवाला मिथ्यात्वका स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है । किन्तु शेष १५ कपाय, भय, जुगुप्साका नियमसे वधक है ।

[विशेषार्थ-अनतानुबंधीका सासादनपर्यंत वध होता है, किन्तु मिथ्यात्वका प्रथम गुण स्थान पर्यंत । अतः अनतानुबंधीके वधकके साथ मिथ्यात्वका वध हो भी और न भी हो ।]

स्त्रीवेदका स्यात् वधक है पुरुषवेदका स्यात् वधक है, नपुंसकवेदका स्यात् वधक है, तीनों वेदोंमें से किसी एकका वधक है, अवधकानहीं है । हास्य-रतिका स्यात् वधक है,

हस्तरदि मिया वधगो । अरदिसोग सिया वधगो । दोण्ण युगलाण एकदर वधगो,  
ण चेव अणधगो । एव तिण्णि कसायाण ।

§१२७ अपचमयाण कोध वधंतो मिच्छत्त० अणताणु० ४ सिया वधगो । सिया  
अणधगो । एकारसकमाय-भयदुगुंलाण णियमा वधगो । इत्थिवे० सिया वधगो ।  
पुरिसवे० सि० वधगो । णवुमकवे० मिया वधगो । तिण्णि वेदाण एकदरं वधगो । ५  
ण चेव अणधगो । हस्तरदी सिया वधगो । अरदिसो० सिया वधगो । दोण्णि युगलाण  
एकदरं वधगो, ण चेव अणधगो । एव तिण्णि कसायाणं ।

§१२८, पचमयाणानरणीय कोव वधंतो मिच्छ० अट्टकसा० सिया वधगो, सिया  
अणधगो । सत्तरुसाय-भयदु० णियमा वधगो । इत्थिवे० सिया वधगो० । पुरिस०  
मि० २० । णवुंस० सिया २० । तिण्णि वेदाणं एकदर वधगो, ण चेव अणधगो । १०  
हस्तरदी सिया वधगो । अरदिसोगाण सिया वधगो । दोण्ण युगलाण एकदर वधगो,  
ण चेव अणधगो । एवं तिण्णि कसायाणं ।

अरति-शोकका स्यात् वधक है । दो युगलोमेंसे किसी एक युगलका वधक है, अवधक नहीं है ।  
इसा प्रकार अनतानुवधी मान, माया तथा लोभके वधकमे जानना चाहिए ।

§१२७ अपत्याख्यानावरण क्रोधका वध करनेवाला मिथ्यात्व, अनतानुवधी ४ का  
स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है ।

[निशेपार्थ-अप्रत्याख्यानावरणका वध चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त होता है और मिथ्यात्व तथा  
अनतानुवधी ४ का क्रमश मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान तक वध होता है, इस कारण अप्रत्या  
ख्यानावरण ४ के वधके साथ मिथ्यात्व तथा अनतानुवधी ४के वधकी अनिवार्यता नहीं है ।]

अनतानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा अप्रत्याख्यानावरण क्रोधको छोड़कर शेष  
व्यारह कषाय भय जुगुप्साका नियमसे वधक है । स्त्रीवेदका स्यात् वधक है । पुरुषवेदका स्यात्  
वधक है । नपु सकवेदका स्यात् वधक है । तीनों वेदोंमेंसे अन्यतरका वधक है, अवधक नहीं है ।  
हास्य, रतिका स्यात् वधक है । अरति, शोकका स्यात् वधक है । दो युगलोमेंसे अन्यतरका  
वधक है, अवधक नहीं है ।

[निशेपार्थ-हास्य-शोक, रति-अरति ये परस्पर विरोधी प्रकृतियाँ हैं । अत जय हास्य-  
रतिवा घष होगा, तत्र शोक अरतिका वध नहीं होगा ।]

अप्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभमें अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान जानना चाहिए ।

§१२८ प्रत्याख्यानावरण क्रोधका वध करनेवाला-मिथ्यात्व, अनतानुवधी तथा अप्रत्याख्याना-  
वरणरूप कषायाष्टका स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है । शेष प्रत्याख्यानावरण ३ तथा संजयल  
४-इस प्रकार ७ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे वधक है । स्त्रीवेदका स्यात् वधक है ।  
पुरुषवेदका स्यात् वधक है । नपु सकवेदका स्यात् वधक है । तीन वेदोंमेंसे किसी एकका वधक है,  
अवधक नहीं है । हास्य-रतिका स्यात् वधक है । अरति शोकका स्यात् वधक है । दो युगलोमेंसे  
अन्यतरका वधक है, अवधक नहीं है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मान, माया तथा लोभका  
भी पर्यन्त जानना चाहिए ।

§१२९ क्रोधसज्ज० बधतो मिच्छ० वारसक० भयदुगु० मिया बधगो । तिष्णि सजलणाण णियमा बधगो । इत्थि० सिया बधगो । पुरिस० सिया व०। णवुम० मिया बधगो । तिष्णि वेदाण एकदर बधगो । अथवा तिष्ण पि अबधगो । हस्सरदी मिया व० । अरदिमोग० मिया व०। दोष्ण युगलाण एकदरं बधगो अथवा दोष्ण पि अरंधगो ।  
 ५ एव तिष्णि सजलणाण । अथरि भाणं बधतो मायालोभाण णियमा बधगो । तेरसक० भयदुगु० सिया बधगो । माय बधतो लोभ णियमा बधगो । चौहसससा० भयदु० सिया व० । लोभसजलण बधतो पण्णारसक० भयदु० सिया बधगो ।

§१३० इत्थिवेद बधतो मिच्छत्त मिया व०। सोलस क० भयदु० णियमा बधगो । हस्सरदी सिया०। अरदिमोग० सिया०। दोष्ण युगलाण एकदर बधगो, ण चेव अरधगो ।  
 १० पुरिसवेद बधतो मिच्छत्त वारसक० भयदु० मिया बधगो । हस्सरदी सिया बधगो ।

§१२९ सज्वलन क्रोधका बध करनेवाला-मिथ्यात्व, १२ कपाय, भय, जुगुप्साका स्यात् बधक है, किन्तु शेष मान माया, लोभरूप सज्वलनका नियमसे बधक है । स्त्रीवेदका स्यात् बधक है । पुरुषवेदका स्यात् बधक है । नपु सकवेदका स्यात् बधक है । तीनों वेदोंमेंसे किसी एकका बधक है, अथवा तीनोंका भी अपबध है ।

[निशेपार्थ-वेदका बध अनिवृत्तिकरणके प्रथमभाग पर्यंत है, किन्तु सज्वलन क्रोधका बध अनिवृत्तिकरणसे श्वेदभाग तक होता है । अतः सज्वलन क्रोधके बधकको वेदत्रयका अबधक भी कहा है ।]

हास्य रतिका स्यात् बधक है । अरति शोकका स्यात् बधक है । दो युगलोभसे तिसा एक युगलका बधक है अथवा दोनों युगलोका ही अपबधक है ।

[निशेपार्थ-अरति शोकका प्रसक्त गुणस्थानपर्यन्त तथा हास्य रतिका अपूर्वकार ण पर्यंत बध है । अतः सज्वलन क्रोधके बधकमें इनके बधका स्यात् सद्भाव है, स्यात् नहीं है ]

सज्वलन मान माया, लोभसे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सज्वलन मानको बंधनेवाला सज्वलन माया और लोभका नियमसे बधक है । तेरह कपाय अर्थात् सज्वलन मान-माया-लोभरहित शेष कपाय, भय तथा जुगुप्साका स्यात् बधक है । सज्वलन मायाको बंधनेवाला-सज्वलन लोभको नियमसे बंधता है । शेष १४ कपाय तथा भय, जुगुप्साका स्यात् बधक है । सज्वलन लोभको बंधनेवाला-१५ कपाय, भय, जुगुप्साका स्यात् बधक है ।

§१३० स्त्रीवेदको बंधनेवाला मिथ्यात्वका स्यात् बधक है, १६ कपाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बधक है । हास्य-रतिका स्यात् बधक है । अरति शोकका स्यात् बधक है । दोनों युगलोभसे एकका बधक है, अपबध नहीं है । पुरुषवेदको बंधनेवाला-मिथ्यात्व सज्वलन ४ को छोड़कर शेष १० कपाय भय, जुगुप्साका स्यात् बधक है ।

[ निशेपार्थ-पुरुषवेदके बधकसे सज्वलन ४ का नियमसे बध होता है । अतः यहाँ सज्वलनचतुष्टयको छोड़कर वारह पापोंका विकल्प रूपसे बध कहा है । ]

अरदिसोग० सिया ३० । दोण्ण युगलाण एकदर वधगो । अयमा दोण्ण पि अंधगो । चदुसज० णियमा ३० । णवुस वधतो मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० णियमा ३धगो । हस्सरदी सिया० । अरदिसोग० सिया ३० । दोण्ण युगलाण एकदर वधगो, ण चेव अंधगो । हस्म ३धतो मिच्छत्त० वारसक० सिया ३० । चदुसज० रदि-भयदुगु० णियमा ३धगो । इत्थि० पुरिस० णवुस० सिया ३धगो । तिण्णि वेदाण ५ एकदर वधगो, ण चेव अंधगो । एव रदिं अरदिं बंधतो मिच्छत्त० वारसक० सिया ३० । चदुसंज० सोग-भयदु० णियमा ३धगो । इत्थि० पुरिस० णवुस० सिया० । तिण्णं वेदाण एकदर वधगो, ण चेव अंधगो । एव सोग भय ३धतो मिच्छत्त-वारसक० सिया ३धगो । चदुसंज० दुगु० णियमा ३धगो । इत्थि० पुरिस० णवुस० सिया० । तिण्ण वेदाणं एकदर वधगो, ण चेव अंधगो । हस्सरदी सिया ३०, अरदिसोग० १०

हास्य-रतिका स्यात् वधक है । अरति शोकका स्यात् वधक है । दोनों युगलोंमेंसे किसी एक युगलका वधक है । अथवा दोनोंका ही अवधक है । चार सज्वलनका नियमसे वधक है ।

नपुसकवेदको वर्धनेवाला-मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्साका नियमसे वधक है । हास्य-रति का स्यात् वधक है । अरति-शोकका स्यात् वधक है । दोनों युगलोंमेंसे अन्यतरका वधक है । अवधक नहीं है ।

[ विशेषार्थ—नपुसकवेद तथा स्त्रीवेदके वधकोंके १६ कपायोंका नियमसे वध कहा है किन्तु पुरुषवेदके वधकोंके सज्वलनको छोड़कर शेष १२ कपायोंका स्यात् वध कहा है । इसका कारण यह है कि नपुसकवेद तथा स्त्रीवेदके वधक क्रमशः मिथ्यात्व, सासादन तक होते हैं, वहाँ १६ कपायोंका वध होता है । पुरुषवेदका वध अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त होता है, इस कारण पुरुषवेदके वधकोंके १२ कपायोंके कथंचित् वधका वर्णन किया गया है, किन्तु सज्वलन ४ का नियमसे वध कहा है । ]

हास्यका वध करनेवाला—मिथ्यात्व तथा १२ कपायका स्यात् वधक है ।

[ विशेषार्थ—हास्यका वध अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त होता है, किन्तु मिथ्यात्व एव १२ कपायोंका उसके नीचे पर्यन्त वध होता है । इस कारण हास्यके वधकके मिथ्यात्वादिका वध विरह्य रूपसे बताया है । ]

चार सज्वलन, रति, भय, जुगुप्साका नियमसे वधक है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेदका स्यात् वधक है । तीनों वेदोंमेंसे एकका वधक है, अवधक नहीं है ।

रति, अरतिका वध करनेवाला—इसी प्रकार मिथ्यात्व, १२ कपायका स्यात् वधक है । ४ सज्वलन, शोक भय जुगुप्साका नियमसे वधक है । स्त्री पुरुष-नपु सकवेदका स्यात् वधक है । तीनों वेदोंमेंसे एक वेदका वधक है । अवधक नहीं है ।

शोक तथा भयका वध करनेवाला—मिथ्यात्व, १२ कपायका स्यात् वधक है । ४ सज्वलन तथा जुगुप्साका नियमसे वधक है । स्त्री पुरुष नपु सकवेदका स्यात् वधक है । तीनों वेदोंमेंसे किसी एकका वधक है, अवधक नहीं है । हास्य, रतिका स्यात् वधक है । अरति, शोकका स्यात्

सिया बंधं । दोष्ण युगलाण एकदर बधगो, ण चेन अनधगो । एव दुग (गु०) ।

§१३१. गिरयायुग बधतो तिग्बिखायुग मणुसायुग देजायुग अनधगो । एव मणुसमणुसम अवधगो ।

§१३२. गिरयगदि बधतो पचिंवेउत्रियं तेजाकं हुडसठाण वेउच्चिं अगो०  
 ५ वण्ण० ४ गिरयाणुपु० अगु० ४ अपमत्थविं तसं ४ अघिरादिछं णिमिणं णियमा  
 बधगो । एव गिरयाणुपु० । तिरिक्खगदि बधतो जोराणिय-तेजाकं वण्ण० ४  
 तिरिक्खणु० अगु० उपं णिमिणाण णियमा बधगो । एइद्रियजादि सियां । एव  
 वेइदियंतेइ० च्छु० पचिदिं सिया बधगो । पचण्ण जादीण एकदर बधगो, ण चे  
 अनधगो । एव छमठाणाण एकदर बधगो । ण चेन अनधगो । ओरालिं जगो०  
 १० परघादुस्सां आदा-उज्जो० सिया २० सिया अनधगो । छसघं मियां । दो निहायं  
 सिया बंधं । दो सर सिया बधगो, सिया अन० । अथवा छण्ण दोष्ण दोष्ण ति

बधक है । दोना युगलोमेस एक युगलका बधक है, अवधक नहीं है ।

जुगुप्साणा बध करनेवालेके-इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§१३१ नरकायुका बध करनेवाला-तिर्यचायु, मनुष्यायु तथा देवायुना अनधक है । इसी प्रकार किसी अन्य आयुका बध करनेवाला शेषका अवधक है । जैसे तिर्यचायुना बधक शेष तीन आयुओका अनधक होगा । कारण एक समयम बध्यमान एक ही आयु होगी ।

§१३२ नरकगतिका बध करनेवाला-पचेन्द्रिय जाति, वैक्त्रियिक तैजस कार्माण शरीर, हुडक सस्थान, वैक्त्रियिक अगोपाग, वर्ण ४, नरकानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, अपशरतनिहायोगति, प्रस ४, अस्थिरादिपट्क, निर्माणका नियमसे बधक है ।

[ विशेषार्थ-नरकगतिमें सहननका अभाव होनेसे उसका बंध नहीं बतया है । ]

नरकानुपूर्वीका बध करनेवालेके-नरकगतिके समान जानना चाहिए । तिर्यचगतिका बध करनेवाला- औदारिक-तैजस कार्माण शरीर वर्ण ४, तिर्यचानुपूर्वी, अगुरुलघु उपधात तथा निर्माणका नियमसे बधक है । एकेन्द्रिय जातिका स्यात् बधक है । इसी प्रकार दो, तीन चार, पचेन्द्रिय जातिका स्यात् बधक है । पचजातियोंमेंसे एकका बधक है, अनधक नहीं है । इसी प्रकार छह सस्थानमेंसे किसी एकका बधक है, अनधक नहीं है । औदारिक अगोपाग, परघात, उच्चवास, आताप उद्योतका स्यात् बधक है, स्यात् अनधक है । ६ सहननों का स्यात् बधक है ।

[ विशेषार्थ-तिर्यचगतिये बधकके ६ सहननका बध अनिवार्य नहीं है, कारण एकेन्द्रिया में सहनन नहीं होता है । अस्थियघनविशेषको सहनन कहते हैं । एकेन्द्रियोंके अस्थियाँ नहीं पायी जाती हैं । उनसे द्वारा गृहोण आहारका रुधिरादिरूप परिणमन नहीं होता है । इस कारण उनसे सहननका अभाव कहा है । ]

दो निहायोगतिका स्यात् बधक है । दो स्वर का स्यात् बधक है स्यात् अनधक है । अथवा ६ सहनन, दो निहायोगति तथा दो स्वरना भी अनधक है ।

[ विशेषार्थ-एकेन्द्रियमें सहननसे समान निहायोगति तथा स्वरका अभाव है । इस कारण ६ २, २ का अनधक भी कहा है । ]

अनधगो । तम० सिया० । थावरं सिया० । दोण्णं पगदीणं एककदर वधगो, ण चेव  
 वधगो । एअं अट्टयुगलाणं । एअं तिरिक्खाणुं । मणुसागदिं वधतो पच्चिदि०ओरालिय०  
 तेजाक०ओरालि० अगो०वण्ण०४ मणुसाणु० अगु०उप०तस०वादर०पत्ते० णिमि० णियमा  
 नगो । छमठा० छसव० पज्जत्ता० अपज्ज० थिरादि०पच०युग० सिया व०, सिया  
 अनधगो । एअसिं एककदरं वधगो, ण चेव अनधगो । परघादुस्सा० तित्थय० सिया ५  
 २०,सिगाअनं० दो निहाय०दो सर०सिया वं०,सिया अनधगो । अयथा दोण्ण दोण्ण पि  
 अन० । एव मणुसाणु० । देवगदिं वधतो पच्चिदि०वेउत्त्रिय०तेजाक० समचदु० वेउच्चि०  
 अगो० वण्ण० ४ देवाणु० अगुरु० ४ पसत्थ० तस० ४ सुमग०सुस्सर०आदे० णिमि०  
 णियमा वधगो । आहारदुग०-तित्थय० सिया० [ २० सिया ] अनं० । विरादि-  
 तिण्णि युग० सिया वधगो, सिया अनधगो । तिण्णि युगलाण एककदरं वधगो, ण चेव १०  
 अन० । एव देवाणु० ।

११३३.एअदिय वधतो तिरिक्खाणु०ओरालिय०तेजाक०हु डसं० वण्ण०४तिरिक्खाणु०  
 अगु० उप० थावर०दुमग०अणादे० णिमि० णियमा वधगो । परघादुस्सा० आदाउज्जो०

जमका स्यात् वधक है । स्यावरका स्यात् वधक है । दोनोंमेंसे किसी एकका वधक है,  
 अनधक नहीं है । वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ सुमग, आदेय, यश कीर्ति और स्थिर इनके  
 आठ युगलोंका इसी प्रकार वर्णन समझना चाहिए अर्थात् प्रत्येक युगलमें से अन्यतरका वधक  
 है अनधक नहीं है । तिर्यैचानुपूर्वाका वध करनेवालेके तिर्यैचगतिके समान भग है । मनुष्य-  
 गतिका वध करनेवाला—पचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस कार्माण शरीर, औदारिक अगोपाग,  
 वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, व्रस, वादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे  
 वधक है । ६ सस्थान, ६ सहनन, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिरादि पचयुगलका स्यात् वधक है स्यात्  
 अनधक है । इनमेंसे किसी एकका वधक है अनधक नहीं है । परघात उच्छ्वास,  
 तीर्थङ्करका स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है । दो विहायोगति, २ स्वरका स्यात् वधक है, स्यात्  
 अनधक है । अथवा दो विहायोगति, २ स्वरका भी अनधक है ।

मनुष्यानुपूर्वमि मनुष्यगति के समान जानना चाहिए ।

देवगतिका वध करनेवाला—पचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस-कार्माण शरीर,  
 समचतुरलसस्थान, वैक्रियिक अगोपाग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति,  
 व्रस ४, सुमग, सुस्वर आदेय तथा निर्माणका नियमसे वधक है । आहारकद्विक, तीर्थंकरका  
 [ स्यात् वधक ] स्यात् अनधक है । स्थिरादि तीन युगलका स्यात् वधक, स्यात् अनधक है ।  
 तीन युगलों से किसी एक युगलका वधक है, अवधक नहीं है । देवानुपूर्वमि देवगतिके  
 समान जानना चाहिए ।

११३३ एकेन्द्रिय जातिकका वध करनेवाला—तिर्यैचगति, औदारिक तैजस कार्माण शरीर, दुढक  
 सस्थान, वर्ण ४, तिर्यैचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्यावर, दुर्भग, अनादेय और निर्माणका  
 नियमसे वधक है । परघात, उच्छ्वास, आवाप, उद्योतका स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है ।

सिया वधगो, सिया जनवगो । वादस्मुद्गम० सिया व० । दोष्ण युगलाणं एकदर  
 उधगो, णचेर अउधगो । एव पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साधारण विरादि-सुभासुम-जत्त-अजम  
 गिचीण सिया एककदर उधगो, ण चेव अउधगो । एव धावर० । वीडदि० वध०  
 तिरिक्खग० ओरालि० तेजावम्म० हुंडम० ओरालि० अगो० अमपत्त० रण्ण० ४  
 तिरिक्खाणुपु० अगु० उप० तत्त० वादरपत्तेय० दूभग-अणाटे० णिमि० णियमा  
 वधगो । परादुस्ता० उज्जोव० अप्पमन्थ० दुस्सर० मिया ३०, सिया अउधगो ।  
 पज्जत्ता-अपज्ज० सिया व०, सिया अ० । दोष्ण युगलाणं एकदर वधगो,  
 ण चेव अउधगो । एव विरादि-तिष्णिणुगलाण एकक० उधगो, ण चेव अउधगो  
 एव तीडदि० चतुरिदि० । पचिदिय-जादिणाम वधतो णिरयगदिं सिया व०, सिया  
 अउधगो । एव तिरिक्ख-मणुम-डेवगदि० । चदुष्ण गदीण एकक० वधगो, ण चे  
 अउधगो । एव दो सरीर० छसठा० दो-अगो० चदुआणु० पज्जत्तापज्जत्त० विरा  
 पचयुगलाण । आहारदुग परघादुस्ता० उज्जो० तित्थय० सिया व०, सिया अ० । तेजाव  
 वण्ण० ४ अगु० उप० तत्त० वादर-पत्तेय णिमिण० णियमा उधगो । छसव० दोविहा  
 दोसर सिया वधगो । छण्ण दोष्ण दोष्ण पि एककदर वधगो, अथवा छण्ण दोष्ण  
 दोष्ण पि अउधगो ।

वार, सूक्ष्मका स्यात् वधक है । दो युगलोंमें से एकका वधक है, अथ वधक नहीं है । इसी प्रकार  
 पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक साधारण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यज्ञ कीति अयज्ञ कीतिमेंसे एक  
 तरका स्यात् वधक है, अथ वधक नहीं है । स्थावरके विषयमें एकेन्द्रियके समान जानना चाहिये ।  
 दो इन्द्रियका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, औदारिक तैजस कार्माण शरीर, हुड्ड  
 संस्थान औदारिक अगोपाह, असप्राप्तासृपाटिका सहनन, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुल्लु  
 उपघात, त्रस वादर, प्रत्येक, दुर्भग अनादेय तथा निर्माणका नियमसे वधक है । परघात,  
 च्छद्वास, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति तथा दुस्वरका स्यात् वधक, स्यात् अवधक है । पर्याप्त-अप  
 र्याप्तना स्यात् वधक, स्यात् अवधक है । दोना युगलोंमें से एकका वधक है, अथ वधक नहीं  
 है । विरादि तीन युगलमेंसे एकतरका वधक है अथ वधक नहीं है ।

त्रोन्द्रिय, चोइन्द्रियका वध करनेवालेके इसी प्रकार जानना चाहिये ।

पचेन्द्रिय जाति (त्मकर्मका वध करनेवाला—नरकगतिका स्यात् वधक है, स्यात्  
 अवधक है । इसी प्रकार तिर्यंच-मनुष्य देवगतिमें जानना चाहिये अर्थात् स्यात् वधक है, स्यात्  
 अवधक है । चारों गतियोंमेंसे एकका वधक है, अवधक नहीं है । दो शरीर ( औदारिक,  
 वैज्जियक ), छद् मस्थान, दो अगोपाह, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्त अपर्याप्त, स्थिरादि पच युगलमें से  
 इसी प्रकार जानना चाहिये । आहारकदिक, परघात, च्छद्वास, उद्योत तथा तिर्यंचर प्रवृत्ति  
 स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है । तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुल्लु, उपघात, त्रस-वादर, प्रत्येक  
 और निर्माणका नियमसे वधक है । ६ सहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरका स्यात् वधक है  
 इन १, २, ३ में से एकतरका वधक है, अथवा ६, २ २ का भी अवधक है ।

५१३४. ओरालियसरीरं प्रथतो तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिण गियमा वधगो ।  
तिरिक्समणुसगदि सिया २० । दोण्ण एककदर वधगो, ण चेअ अत्रधगो । एअ भगो  
पचजादि-छमठाण दो आणु० तसथाअरादि-अअ-युगलाण । ओरालि० अगो० परघादु०  
जादा-उज्जो० तित्थय० मिया प्रधगो, सिया अत्रधगो । छसघ० दोअिहाय० दो सर  
मिया प्रधगो, सिया अत्रधगो । अथअ [छण्ण] दोण्ण दोण्ण पि अत्रधगो । ५

५१३५. वेगुव्वियस० वधतो पचिदि० तेजाक० वेगुव्विअ० अगो० वण्ण० ४  
अगु० ४ तस० ४ णिमिण गियमा वधगो, णिस्यगदि-डेअगदीण सिया प्रधगो० । दोण्ण  
एककदर वधगो, ण चेअ अत्रधगो । एअ समचदु० हु डसठा० दोण्ण आणुपु० दो विहाय०  
थिरालि-छयुगलाण सिया एदेसि एककदर प्रधगो, ण चेअ अत्रधगो । आहारदुग सिया

५१३६ औदारिक शरीरका वध करनेवाला—तेजस, कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात,  
निर्माणका नियमसे वधक है । तिर्यचगति, मनुष्यगतिका स्यात् वधक है । दोनोंमेंसे अन्यतरका  
वधक है, अत्रधक नहीं है ।

[निशेषार्थ—देवगति, नरकगतिका सन्निकर्ष वैक्रियिक शरीरके साथ है, इससे यहाँ उनका  
उल्लेख नहीं किया गया है ।]

पाँच जाति, ६ सस्थान, दो आनुपूर्वी, त्रस-स्थावगदि ९ युगलमें भी तिर्यच मनुष्यगतिके  
समान जानना चाहिए ।

औदारिक अगोपाग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत और तीर्थनरका स्यात् वधक है,  
स्यात् अत्रधक है ।

[निशेषार्थ—औदारिक शरीरको धारण करनेवाले एकेन्द्रियके औदारिक अगोपाग नहीं  
पाया जाता है । इस कारण औदारिक अगोपागका वध यहाँ विरुद्ध रूपमें कहा गया है ।]

छह सदनन, दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् वधक है स्यात् अत्रधक है । अथवा इन  
[६] २, २ का भी अत्रधक है ।

५१३७ वैक्रियिक शरीरका वध करनेवाला—पचेन्द्रिय जाति, तेजस निर्माण शरीर, वैक्रियिक  
अगोपाग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ और निर्माणका नियमसे वधक है ।

[निशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरके साथ वैक्रियिक अगोपागका नियमसे वध होता है । इस  
कारण यहाँ औदारिक शरीर और औदारिक अगोपागके समान विरुद्ध नहीं है ।]

नरकगति, देवगतिका स्यात् वधक है । दोमेंसे एकका वधक है, अत्रधक नहीं है ।  
समचतुरस्र सस्थान, तथा हुडक सस्थानमें इसी प्रकार जानना चाहिए अर्थात् इनमें  
अन्यतरका वधक है, अत्रधक नहीं है ।

[निशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरधारी देवोंमें समचतुरस्र सस्थान होता है और नारकियों  
में हुडक सस्थान पाया जाता है । अन्य सस्थानोंका वैक्रियिक शरीरके साथ तत्परिचय नहीं है ।]

दो अनुपूर्वी, दो विहायोगति स्विरादि छह युगलमेंसे अन्यतरका स्यात् वधक है  
अत्रधक नहीं है ।



दोष्णं छण्ण दोष्ण दोष्ण पि अवधगो । परघादुस्ता० आदाउज्जो० सिया १०  
 सिया अवधगो । एव हुडभगो दूमग-अणादे० । ओरालिय० अगोवग बधतो दो-  
 सिया व० सिया अव० । दोष्ण गदीण एककदर बधगो । ण चेव अवधगो । ए  
 चदुजादि० छस्तठा० छसघ० दो आणु० पज्जत्तापज्जत्त० थिरादिपचयुगलम ।  
 ५ ओरालिय-त्तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० तस-चादरपत्तेय० णिमि० णियमा व० ।  
 परघादुस्ता० उज्जो० तित्थयर सिया बधगो । दो विहा० दो सर सिया बधगो ।  
 दोष्ण दोष्ण एककदर बधगो । अथवा दोष्ण दोष्ण पि अवधगो ।

११४०. वज्जरिसभ बधतो दो-नादि सिया व०, सिया अवधगो । दोष्ण  
 एककदर बधगो । ण चेव अव० । एव छ-सठा० दो आणु० दो विहा० थिरादि-  
 १० लाणं । पचिदि० तिण्णि-सरीर-ओरालि० अगो० वण्ण० ४ अगु० तस० ४ त्त  
 णियमा बधगो । उज्जोव तित्थयर सिया बधगो । एव चदु-सघड० । णवरि तित्थयर  
 असपत्त बधतो दो-नादि सिया बधगो । दोष्ण गदीण एककदर बधगो । ण चेव अव० ।  
 अथवा २, ६, २, २ का भी अवधक है । परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् वधक  
 स्यात् अवधक है ।

दुमग तथा अनादेयके बध करनेवालेमे हु डक सस्थानके समान भग है ।  
 आदारक अगोपागका बध करनेवाला—दो गति ( मनुष्य-तिर्यंचगति ) का स्यात्  
 बंधक है, स्यात् अवधक है । दाम से एकका बधक है । अवधक नहीं है । चार जति,  
 ६ सस्थान, ६ सहनन, २ आनुपूर्वी, पयोत्तक अपयोत्तक, स्थिरादि पचयुगलम इसी प्रकार  
 जानना चाहिए । आदारक-संज्ञक-कामाद्य शरार, वण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस वत्त  
 प्रत्येक तथा निर्माणका नियमसे बंधक है । परघात, उच्छ्वास उद्यात, तार्थकरका स्यात् वधक  
 है । दो विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बधक है । दो दोमे से किसी एकका बधक है । श्वेत  
 दो दोका भी अवधक है ।

१११९ वस्रशृपमसहननका बध करनेवाला—तिर्यंचगति, मनुष्यगतिका स्यात् बंधक है, स्यात्  
 बंधक है । दो गतियामसे अन्यतरका बंधक है । अवधक नहीं है । इस प्रकार छह सस्थान, दो  
 आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमें जानना चाहिए । पचेन्द्रिय जाति, तीन शरीर,  
 औदारिक अगोपाग, वर्ष ४, अगुरुलघु, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बधक है । उद्योत,  
 तीर्थकरका स्यात् बधक है ।  
 आदि तथा अंतके सहननको छोड़कर शेष ४ सहननके बध करनेवालेमे यहाँ यही  
 मम है । विशेष यह है कि यहाँ तीर्थकर प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए ।

[ विशेषार्थ—यहाँ तीर्थकर प्रकृतिका सन्निकर्ष न धतानेसे ज्ञात होता है कि सहनन  
 चतुष्टयके साथमें तीर्थकरका बंध नहीं होता । वस्रशृपमके साथ ही तीर्थकरका बंध हो सकता है ।  
 तीर्थकर प्रकृतिका बध सम्यक्त्वोमे होता है । अत मिथ्यात्व सासादनमें बधनेवाले असप्राप्तास्था  
 टिका सहनन तथा वस्रशृपमको छोड़ शेष ४ सहनन का अमान होगा । ]  
 असप्राप्तास्थाटिकसहननका बध करनेवाला—दो गति ( मनुष्य तिर्यंचगति )

चदुजादि-छ सठा० दो-आणु० पज्जत्तापज्जत्त० थिरादिपंचयुगलाणं । तिण्णि-  
 र-ओरालिअगो० वण्ण० ४ अगु० उप० तस-वादर-पत्तेयं णिमिण णियमा वधगो ।  
 षादुस्सास० उज्जो० सिया वधगो० । दो विहा० दो सरीरं ( सरं ) सिया वं० ।  
 णं दोणं एक्कदरं वधगो । अथवा दोण्ण दोण्ण पि अवंधगो ।

§१४१. परघादं वंधंतो चदुगदि सिया वं० सिया अब० । चदुण्णं गदीण एक्कदर ५  
 वधगो, ण चेव अवधगो । एवं भगो पच-जादि-दो-सरीरं छसंठा० चदु-आणु० तस-  
 थावर-वादि-अणुयुगलाण पज्जत्तापज्जत्तवज्ज । तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उपघादुस्सास-  
 पज्ज० णिमिणं णियमा वधगो । आहारदुग आदा-उज्जो० तित्थयर सिया वं० सिया  
 अब० । दो अंगो० छसंघं दो विहा० दो सर० सिया वं० सिया अं० । दोणं  
 छण्ण दोण्ण दोण्ण एक्कदर वधगो अथवा दोण्ण छण्ण दोण्ण दोण्ण पि अवधगो । एव १०  
 भगो उस्सास पज्ज० थिर-सुभ-णामाण च ।

§१४२. आदाउज्जो०(?) वंधंतो तिरिक्खग० एइंदि० तिण्णि सरी० हुडसठा० वण्ण०  
 ४ तिरिक्खाणु० अगु० ४ थावर-वादर-पज्जत्त-पत्तेय-दुभग-अणादे० णिमि० णियमा वधगो ।  
 थिरादि-तिण्णि युग० सिया वं० । तिण्णि युगलाण एक्कदरं वधगो, ण चेव अवं० ।

वधक है । दो गतियोंमें से अन्यतरका वधक है । अवधक नहीं है । ४ जाति, ६ सस्थान,  
 २ आनुपूर्वी, पर्याप्त-अपर्याप्तक, स्थिरादि पचयुगलोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।  
 औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, औदारिक अगोपाग, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, व्रस, वादर  
 प्रत्येक तथा निर्माणका नियम से वधक है । परघात, उच्छ्वास तथा उद्योत का स्यात् वधक है ।  
 दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् वधक है । दो दो में से अन्यतर का वधक है । अथवा दो  
 दो का भी अवधक है ।

§१४१ परघातका वध करनेवाला—४ गतिका स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है । इन  
 चारोंमें से अन्यतरका वधक है । अवधक नहीं है । ५ जाति, औदारिक वैक्यिक शरीर,  
 ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्त-अपर्याप्तक रहित व्रस-स्थावरादि ९ युगल में भी इसी प्रकार है ।  
 अर्थात् इनमें से एक तर का वधक है, अन्यका वधक नहीं है । तैजस-कार्माण, वर्ण ४,  
 अगुरुलघु, उपघात, उच्छ्वास, पर्याप्त तथा निर्माणका नियमसे वधक है । आहारकद्विक,  
 आताप, उद्योत, तीर्थकरका स्यात् वधक है । स्यात् अवधक है । दो अगोपाग, ६ सहनन,  
 दो विहायोगति तथा २ स्वर का स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है । इन २, ६, २, २ में से  
 किसी एक का वधक है । अथवा २, ६, २, २ का भी अवधक है ।

उच्छ्वास, पर्याप्तक, स्थिर, शुभनामक नामकर्ममें इसी प्रकार भग जानना चाहिए ।  
 §१४२ आताप, उद्योत (?) का वध करनेवाला—तिर्थचगति, एकेन्द्रिय, तीन शरीर, हुडक-  
 सस्थान, वर्ण ४, त्रिचगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, थावर, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, दुर्भग,  
 अनादेय तथा निर्माणका नियमसे वधक है । स्थिरादि तीन युगलका स्यात् वधक है । तीन  
 युगलोंमें से अन्यतरका वधक है । अवधक नहीं है ।

११४३. उज्जोर्न वधतो तिरिकरग० तिण्ण सरीरं वण्ण० ४ तिरिक्खाणु० अणु०  
 ४ वादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमिण णियमा वधगो । पच-जादि-संसंठा० तसधान्न-सिक्कि-  
 सुभासुभ-सुभगद्भग-आदेज्जअणादेज्ज-जस०-अजम० मिया व० । एदसि एक्कदर  
 वधगो । ण चेव अर० । ओरालि० अगो० सिया व० । सिया अर० । एमथ० दो  
 ५ विहाय० दो सरीर ( सर ) सिया व० । छण्णं दोण्ण दोण्ण एक्कदर वधगो । जस  
 छण्णं दोण्ण दोण्ण पि अन्नवधगो ।

११४४. जप्पसत्थ विहायगदि वधतो तिण्णि गदि सिया व०, तिण्णं गदाय एक्क  
 दर वधगो, ण चेव अर० । एव भगो चहुजादि० दो सरी० छ० सठा० दो अणो  
 गिरय तिरिक्ख-मणुसाणु० थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-द्भग-सुस्सर दुस्सर-आदेज्ज-अ-  
 १० देज्ज-जस० अजम० । तेजाक० वण्ण० ४ अणु० ४ तस० ४ णिमि० णियमा वण्णो ।

[ विशेषार्थ—आलापक वधक एकेन्द्रिय जातिका नियमसे वधक कहा गया है, जो  
 आलाप प्रकृतिका उदय सूर्यके विमानसे स्थित वादर पृथ्वीवायिक जीवोंमे ही पाया  
 है । यहाँ आतप के साथ उद्योत का पाठ अधिक प्रतीत होता है, कारण उद्योत का वध  
 श्वक रूप से हुआ है । ]

११४३ उद्योत का वध करनेवाला—तिर्यंचगति, ३ शरीर, वर्ण ४, तिर्यंचातुपूर्वी, अणुत्तु  
 ४, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येक तथा निर्मोक्षणका नियमसे वधक है । ५ जाति, ६ सम्भान, अ  
 स्यात्, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय, यश कीर्ति, अपश कीर्ति  
 का स्यात् वधक है । इनमे से एकतरका वधक है । अवधक नहीं है ।

[ विशेषार्थ—उद्योत प्रकृति एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त पायी जाती है, जो  
 कारण इसके वधकके पच जातिया बड़ी हैं । ]

औदारिक अगोपागना स्यात् वधक है । स्यात् अवधक है । छह सहनन, २ स्थि  
 योगति, २ स्वर का स्यात् वधक है । इन ६, २, २ म से एकतरका वधक है, अथवा ६, २, २  
 का भी अवधक है ।

[ विशेषार्थ—एकेन्द्रियकी अपेक्षा उद्योतके वधक को सहनन, विहायोगति तथा स्वर  
 अवधक भी कहा गया है । ]

११४४ अमसत्त विहायोगतिका वध करनेवाला—नरक-तिर्यंच-मणुत्थानुपूर्वी स्यात् वधक  
 है । तीन गतियोंमे से एकका वधक है अवधक नहीं है ।

[ विशेषार्थ—देवोंमे अमसत्तविहायोगतिका अभाव है । अत यहाँ उसका उल्लेख नहीं है । ]

५ जाति, २ शरीर, ६ सम्भान, २ अगोपाग, नरक तिर्यंच-मणुत्थानुपूर्वी, स्थिर, अस्थिर,  
 शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यश कीर्ति, अपश कीर्ति  
 पूज्यत् है अर्थात् स्यात् वधक है, एस्तरके वधक है, अवधक नहीं है । तेजस-वामोण, वर्ण ४,

( १ ) मणुत्थानु अग्नी धादायो शोदि उच्छदिवधरा । आइच्चे तिरिच्छे उच्छदरा इ  
 उच्छदो ॥ -गो० ५० गा० ३३ ।

इसंघ०-सिया व० । छण्णं एककदर वंधगो । अथवा छण्ण पि अबंधगो । उज्जोप०  
सिया व० सिया अव० । एवं दुस्सर० ।

§१४५. तस वधतो चदुगदि सिया व० । चदुण्ण एककदर वधगो । ण चेव अव० ।  
एवं भगो चदुजादि दो सरी० छसठा० दो अगो० चदु-आणुपु० पज्जत्तापज्ज०  
धिराथिर-सुभामुभ-सुभगदूभग-आदेज्ज-अणादेज्ज-जस० अजस० । आहारदुग परघादु० ५  
उज्जोव तित्थयरं सिया व०, सिया अबंधगो । तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० वादर-  
पत्तेय णिमिपं णियमा वधगो । छसघ० दो विहाय०दो सर सिया वधगो । छण्ण दोण्ण  
दोण्ण पि एककदरं वधगो । अथवा छण्ण दोण्णं दोण्ण पि अव० ।

§१४६. वादरणाम वधतो चदुगदि सिया व०, सिया अ० । चदुण्ण गदीण  
एककदर वधगो । ण चेव अ०वधगो । एव गदिभगो पचजादि-दो सरी० छसठा० चदु- १०  
आणुपु० तसादिणअयुगल ( लाण ) । आहारदु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० तित्थयर  
सिया व० सिया अ० । दोण्ण अगो० छ सघ० दो विहाय० दो सरीर ( सर ) सिया  
वधगो० । दोण्ण छण्ण दोण्ण दोण्ण पि एककदर वधगो । अथवा दोण्ण छण्ण दोण्ण  
दोण्ण पि अ०वधगो । सेस णियमा वधगो । एव पत्तेयसरी० ।

अगुरुलघु ४, तस ८ तथा निर्माणका नियमसे वधक है, ६ सहननका स्यात् वधक है, ६ मे  
से किसी एकका वधक है, अथवा ६ का भी अवधक है ।

[ निशेष—यहा नरकगति की अपेक्षा सहनन का अवधकत्व कहा गया है । ]

उद्योत का स्यात् वधक है । स्यात् अवधक है ।

दुस्सर मे ऐसा ही वणन जानना चाहिए ।

§१४५ उसका वध करनेवाला—चार गतिका स्यात् वधक है, ४ मे से अन्यतरका वधक  
है । अ०वधक नहीं है । ४ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्तक,  
अपर्याप्तक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय, यश कीर्ति, अयश-  
कीर्ति मे इसी प्रकार भग जानना चाहिए । आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, तीर्थकर  
प्रकृतिका स्यात् वधक है, स्यात् अ०वधक है । तैजस-कामिण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात,  
वादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वधक है । ६ सहनन, दो विहायोगति, २ स्वर का  
स्यात् वधक है । इन ६, २, २ मे से एकतरका वधक है । अथवा ६, २, २ का भी अवधक है ।

§१४६ वादर नामकर्मका वध करनेवाला—८ गतिका स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है ।  
चार गतियोंमे से ए०तरका वधक है । अवधक नहीं है । ५ जाति, दो शरीर, ६ सस्थान,  
४ आनुपूर्वी, त्रसादि नवयुगलमे गतिके समान भग जानना चाहिए । आहारकद्विक, परघात,  
उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थकरका स्यात् वधक है । स्यात् अवधक है । दो अगोपाग,  
६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् वधक है । २, ६, २, २ मे से किसी एकका  
वधक है । अथवा २, ६, २, २ का भी अ०वधक है । शेष प्रकृतियोंका भी नियमसे वधक है ।

प्रत्येक शरीरके वध करनेवालेमे—इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§१४७ सुहुम बधतो तिरिक्खगदि- एडंदिजजादि-तिणिण सरिीर हुंडस० वण्ण०  
तिरिक्खाणु० अगु० उप० थावर दूभग-अणादेज्ज-अज्जस णिमिण णियमा बधो  
पज्जचापज्जत्त-पत्तेय० साधारण धिराथिर-सुभासुभ० सिया बधो । एदसिं एकक  
बधो । ण चेव अव० । परघादुस्ता० सिया व० सिया अव० । एव साधारण० ।  
५ पज्जत्त बधतो दो गदि सिया व० । दोण्ण एककदर बधो । ण चेव अव० । तिणि  
सरिीर हुंडसठा० वण्ण० ४ अगु० उप० अथिर-असुभ-दूभग-अणादेज्ज० अज्जस० णिमिण  
णियमा बधो । ओरालि० अगो० असपत्तसेव० सिया व० । पचजादि-दो-आणु०  
तसथावरादि-तिणिण युग० सिया बध० । एदेसिं एककदर बधो ण चेव अव० ।

§१४८. अथिर बधतो चदुगादि-सिया बधो । चउण्ण गदीण एककदर बधो ।  
१० ण चेव अव० । एव पचजादि दो सरिीर० छसठा० घत्तारि आणुपु० तस-थावरादि  
अद्वयुग० । तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिण णियमा बधो । दो अणे

§१४९ सूक्ष्मका बध करनेवाला—तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक-वैजस-कर्म  
शरीर, हुडक सस्थान, वण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुल्लघु, उपघात, स्थावर, दुर्भग, अनादि,  
अयश कीर्ति तथा निर्माणका नियमसे बधक है ।

[ विशेष—सूक्ष्म नामक कर्मका सन्निकर्ष एकेन्द्रिय जीवके साथ ही पाया जाता है  
अत एव यदा एकेन्द्रिय जातिका ही ग्रहण किया गया है । ]  
पर्याप्तक, अपर्याप्तक, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभका स्यात् बधक है ।  
इनमेंसे एकतरका बधक है । अबधक नहीं है । परघात, उच्छ्वासका स्यात् बधक है, स्थिर  
अबधक है ।

साधारणके बध करनेवालेमें—इसी प्रकार जानना चाहिए ।  
पर्याप्तकका बध करनेवाला—दो गति (देव-नरकगति) का स्यात् बधक है । दो अणे  
एकतरका बधक है । अबधक नहीं है ।

[ विशेष—पर्याप्तक प्रकृतिके बधकके साथ देव-नरकगतिके बधका सन्निकर्ष कहा है ।  
यद्यपि चारो गतियोंमें ही पर्याप्तक जीव पाये जाते हैं, किन्तु यदा वर्णन करनेकी अपेक्षा यह  
प्रतीत होता है कि देव तथा नारकी नियमसे पर्याप्तक ही होते हैं । तिर्यंचमनुष्यगतिके ऐसा  
नियम नहीं है । उनमें कोई पर्याप्तक होते हैं तथा कोई अपर्याप्तक भी होते हैं । ]  
तीन शरीर, हुडकसस्थान, वर्ण ४, अगुरुल्लघु, उपघात, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अना-  
देव, अयश कीर्ति तथा निर्माणका नियमसे बधक है । औदारिक अगोपाग, असमाप्तावर्ण-  
टिका सहननरा स्यात् बधक है । ५ जाति, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि तीन युगलका स्यात्  
बधक है । इनमेंसे एकतरका बधक है, अबधक नहीं है ।

§१५० अस्थिरका बध करनेवाला—४ गतिना स्यात् बधक है । चार गतियोंमेंसे एकतरका  
बधक है । अबधक नहीं है । इसी प्रकार ५ जाति, ० शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी,  
त्रस-स्थावरादि ८ युगलों में जानना चाहिए । तेजस कामाण्य, वर्ण ५

छसंघ० दो विहाय० दो सरं सिया बंधगो । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्ण पि एककदर  
बधगो । अथवा दोण्ण छण्ण दोण्णं दोण्णं पि अनंधगो । परघादुस्सा आदाउज्जो० तित्थ-  
यर सिया व०, सिया अव० । एवं असुभ-अज्जसगिति ।

§१४९. थिरं बधतो तिण्णि-गदि सिया बधगो । तिण्णि गदीण एककदर  
बधगो, ण चेव अनंधगो । एवं पच्च-जादि दो सरीर-छसठाण तिण्णि-आणुपु० तसथाव- ५  
रादि-दोण्णि युगल सुभादि-चदुयुगल सिया व० । एदेसिं एककदरं बंधगो । ण चेव  
अबधगो । आहारदुगं आदाउज्जो० तित्थयरं सिया व०, सिया अव० । दो-अगो०  
छसंघ० दो विहाय० दो सरं सिया बंधगो । दोण्णं छण्ण दोण्ण दोण्ण पि एककदर  
बंधगो । अथवा दोण्ण छण्ण दोण्ण दोण्ण पि अनंधगो । तेजाक० वण्ण० ४  
अगु० ४ पज्जत्त-णिमिण णियमा बधगो । एव सुभ-जसगिति । णवरि जसगितीए १०  
सुहुम-साधारण वज्ज ।

§१५०. तित्थयरं बंधतो दो-गदि सिया बधगो । दोण्ण गदीणं एकदरं बधगो ।  
ण चेव जव० । एव दो-सरीरं० दो अगोव० दो आणु० थिरादि-तिण्णि यु० एकदरं  
बधगो । ण चेव अबधगो । पचि० तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि०

निर्माणवा नियमसे बधक है । दो अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बधक  
है । २, ६, २, ० मे से एकतरका बधक है । अथवा २, ६, २, ० का भी अबधक है । परघात,  
उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बधक है, स्यात् अबधक है ।

अशुभ तथा अयस कीर्तिके बध करनेवालेमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§१४९. स्थिरका बध करनेवाला—३ गति ( नरकको छोड़कर ) का स्यात् बधक है । ३ गतिमे  
से एकतरका बधक है । अबधक नहीं है । ५ जाति, औदारिक, वेक्रियिक शरीर, ६ सस्थान,  
३ आनुपूर्वी, त्रस-स्थाररादि दो युगल, शुभादिक चार युगलका स्यात् बधक है । इनमेसे एकतरका  
बधक है । अबधक नहीं है । आहारकट्टिक, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिका  
स्यात् बधक है, स्यात् अबधक है । दो अगोपाग, छह सहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका  
स्यात् बधक है । इन २, ६, २, २ मे से एकतरका बधक है । अथवा २, ६, २, २ का भी  
अबधक है । तेजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, पर्याप्तक तथा निर्माणका नियमसे बधक है ।

शुभ तथा यश कीर्तिके बध करनेवालेमे इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है  
कि यश कीर्तिके बधकके सूत्र तथा साधारण प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए । अर्थात् इनका बध  
इसके नहीं होगा ।

§१५० तीर्थंकर प्रकृतिका बध करनेवाला—मनुष्य, देवगतिका स्यात् बधक है । दो गतियोंमेसे  
किसी एकका बधक है । अबधक नहीं है ।

[ विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिका बध सम्यक्त्विके ही होता है । अत मिथ्यात्वमे बंधने-  
वाली नरकगति तथा सासादनमे बंधनेवाली तीर्थंकरगतिका बध इसके नहीं होगा । ]

दो शरीर, २ अगोपाग, २ आनुपूर्वी, स्थिरादि तीन युगलमेसे एकतरका बधक है ।  
अबधक नहीं है । पचेन्द्रिय जाति, तेजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वर्ण ४,

तस० ४ सुभग-सुस्तर-आदे०णिमिणं गियमा बंधगो । आहारदुगं वज्जिपसंपं०  
मिया बंधगो ।

११५१. उच्चागोद वधतो णीचागोदस्स अबंधगो । णीचा-गोदं वधतो उच्च  
गोदस्स अबंधगो ।

५ ११५२. दाणतराद्दग् वधतो चतुष्ण अतराद्दगाणं गियमा बंधगो । एर-ण्यमण-  
बंधगो ।

११५३. एव ज्योषमगो मणुस० ३ पचिदि० तस तेसिं चेन पज्जत्ता पवन-  
पंचरचि० कायजोगि-ओरालिय० इत्थि-पुरिस-णवुस० कोधादि० ४ वनसु-  
ममसिदि० सण्णि-आहारगित्ति । णवरि मणुम० ३ ओगालिका० इत्थि० तित्थि-  
१० वधतो देवगदि० ४ गियमा बंधगो ।

११५४. आदेसेण षेरइएसु-एइदिय-विगलिदिय-संजुत्त-आहारदुग वेगुव्वियत्त-  
णिरय-देवायुग च अपज्जत्तग च वज्ज सेस षेद्व्व । एव सव्व-षेरइएसु । णत्तं  
चउत्थी यान सत्तमा चि तित्थपर वज्ज । सत्तमाए मणुसायुग णत्थि ।

अगुरुत्तु ४, प्रशस्तविहायोगति, अस ४, सुभग, सुस्तर, आदेय तथा निर्माणका नियमसे वध  
है । आहारकद्विक, वसत्रुपमसहननका स्यात् वधक है ।

११५१ उच्चगोत्रका वध करनेवाला—नीच गोत्रका अवधक है । नीच गोत्रका वध करने  
उच्चगोत्रका अवधक है ।

[ विशेष—दोनों गोत्र परस्पर प्रतिपक्षा हैं । अत एक जीवके एक साथ दोनोंका वध  
नहीं होता है । इस कारण नीचके वधकके उच्च अवध होगा अथवा उच्चके वधक  
नीचका अवध होगा । ]

११५२ दानान्तरायका वध करनेवाला—लाम, भोग, उपभोग तथा धीर्यान्तरायका नियमसे  
वधक है । एकका वध करते समय अन्य चतुष्कका नियमसे वध होता है । अर्थात् दानान्तरायके  
वध होनेपर अन्य लामान्तरायादिका नियमसे वध होता है ।

११५३ मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, पचेन्द्रिय, अस तथा पचेन्द्रियपर्याप्त असपर्याप्त,  
५ मनयोगी, ५ वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, स्त्री वेद, पुरप वेद, नपुंसक वेद,  
क्रोधादि ४ कपाय, चतुर्वर्शन, अचतुर्वर्शन, भव्यसिद्धिक, सही, आहारक पर्यन्त इसी प्रकार  
अर्थात् औषधवत् जानना चाहिए ।

विशेष यह है कि मनुष्यत्रिक, औदारिक काययोग तथा स्त्रीवेदमे तीर्थंकरका वध  
करनेवाला देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैत्रियिक, वैत्रियिक अगोपागका नियमसे वधक है ।

११५४ आदेशसे—नारकियोंम पचेन्द्रिय, त्रिकलेन्द्रिय, आहारकद्विक, वैत्रियिकपट्ट,  
नखायु-दवायु तथा अपर्याप्तनको छोड़कर शेष प्रकृतियोंसे जानना चाहिए । इसी प्रकार सम्पूर्ण  
नारकियोंम जानना चाहिए । विशेष, चौथीसे सातवीं पृथ्वी पर्यन्त तीर्थंकरका वध जेठ देना

११५५. तिग्गिक्खेसु—आहारदुग्ग तित्थयर वज्ज, सेस ओघं । एव पंचिदिय-तिरिक्खत्त० ३ । पंचिदिय-तिरिक्खत्त-अपज्जत्तगेसु वेगुच्चियच्छक्कं च णिरयदेवायुग्ग वज्ज-सेस त चेत्त । एव मणुम-अपज्जत्त-सञ्जएइदि० सञ्चविगलिदिय-पंचिदिय-त्तस-अपज्जत्त-मवपचकायाण । णवरि तेउ० वाउ० मणुसगदिचदुक्क णत्थि ।

११५६. देवेषु णिरयभगो । णवरि एइदिय-त्तिग जाणिट्ठव । एवं भवणवासिय ५ यात्त सोधम्मिसाण त्ति । णवरि भण्णाटि याव जोइमिया त्ति तित्थयर णत्थि । सणत्तुमार याव सहस्सार त्ति णिरयोघं । आणट यात्त णवगेत्तजा त्ति एव चेत्त । णवरि तिरिक्खत्तायुग्गं तिरिक्खत्तग० तिरिक्खत्ताणु० उज्जोचं णत्थि । अणुटिस याव सञ्चट्ठा त्ति मिच्छत्तपगदीओ णत्थि । सेस भाणिट्ठव ।

११५७. ओरालियमिस्से—णिरयगदित्तिग देवायुग्गं आहारदुग्ग णत्थि । सेस १० ओघभगो । वेगुच्चियक्का० देवगदिभगो । एत्त वेगुच्चियमि० । णवरि आयुग्गं

चाहिए । सातरीं पृथ्वीमे मनुष्यायुक्ता वध नहीं है ।

११५५. तिर्यंचगति मे—आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका वध नहीं होता है । शेषका श्लोचवत् वर्णन है । पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंच, पचेन्द्रिय चोनिमती तिर्यंचमे इसी प्रकार जानना चाहिए । पचेन्द्रिय तिर्यंच लघ्यपर्याप्तकोमे—चैक्रियिकपट्क, नरकायु, देवायुको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका ओघवत् सन्निकर्ष जानना चाहिये । मनुष्यलघ्यपर्याप्तक, सर्व एकेन्द्रिय, सर्व त्रिकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय-त्रस-इनके अपर्याप्तक तथा सपूर्ण पच कार्योंमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि तेजकाय, वायुकायमे मनुष्यगतचित्तुष्क नहीं है ।

११५६ दवगतिमे नरकगतिका भग है । त्रिशेप, देवोमे एकेन्द्रिय स्थावर आतापका वध होता है । यह घात भवननासी, व्यतर, ज्योतिपी, सौधर्म, ईशान स्वर्गपर्यन्त है । त्रिशेप भवनत्रिकमें तीर्थंकर नहीं है । सानत्कुमारसे सहस्रार स्वर्गपर्यन्त नरकगतिके श्लोच समान भग हैं । आनतसे प्रैवेयकपर्यन्त इसी प्रकार हैं । त्रिशेप-तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा उद्योतका वध नहीं होता है ।

[ त्रिशेप-आनतादि स्वर्गवासी देवोंका तिर्यंच रूपसे उत्पन्न नहीं होनेके कारण तिर्यंचायु शान्ति शतार चतुष्क का वध नहीं कहा गया है । ]

अनुदिश से सार्थसिद्धि पर्यन्त मिथ्यात्व सम्नधी प्रकृतियों नहीं है, [ कारण वहाँ सभी सम्यक्स्ती ही होते हैं । ] अतः शेष प्रकृतियोंको कहना चाहिए ।

११५७ श्रौंगरिकमिश्रनाययोगमे—नरकगतित्रिक, देवायु, आहारकद्विक नहीं है । शेष ११७ वध योग्य प्रकृतियोंका श्लोचवत् वर्णन जानना चाहिए ।<sup>२</sup>

चैक्रियिक वायुयोगमे—देवगतिने समान जानना चाहिए । चैक्रियिकमिश्रनाययोगमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । त्रिशेप, यहाँ आयुके वधका अभाव है ।

(१) "धम्मे तिथ वधदि वसा मेघाण पुण्णो चेत्त । छट्ठोच्चिय मणुवाऊ ।"—गो० क० गा० १०६ ।

(२) "ओराले वा मिस्से । णदि सुरणिरयायुहारणिरयदुग्ग ।"—गो० क० गा० ११६ ।



णत्थि । आहार० आहारमि० अमजद-पगदीओ आहारदुग णत्थि । कम्मइग्गा० आयुचदुक्कणिरयदुग च [ णत्थि ] सेस ओषभंगो ।

§१५८. अमजदवेदे याओ पगदीओ वज्झति ताओ पगदीओ जाणित्ठण भाणि दव्वाओ । मदि० सुद० विभग० जन्मव० मिच्छादि० असण्णि० तिरिक्खोपो ।  
 ५ आभिणि० सुद० जोधि० ओषभंगो । णवरि मिच्छत्त-सासण-पगदीओ णत्थि । एव ओधिद० सम्मा० राइय० । एव चेव मणपज्जव-सजद० सामाड० छेदी० परिहार० ।  
 णवरि असजदपगदीओ णत्थि । अरुसा० केवलणा० ययासाद० केवलदस० सण्णियासो णत्थि ।

§१५९. सुद्धमप० पचणा० चदुदस० पचंतराइगाणमणमणस्स वधदि सजदा

आहारक-आहारकमिश्रयोगमे—असयत सम्यधी प्रकृतियों तथा आहारकद्विकरे वध का अभाव है । आहारकनाशयोगमे ६३ और आहारकमिश्र काययोगमे ६० वधयोग्य प्रकृतियाँ हैं ।

[ विशेषार्थ—आहारकद्विकना वध अप्रमत्त दशमे होता है और यह योग प्रमत्ततत्त-गुरुस्थानमे होता है । अत आहारकद्विकके वधका यहाँ अभाव कहा गया है । ]

कार्माणनाशयोगमे—आयु ४ तथा नरकगति, नरकगत्यानुपूर्विका [ अभाव है । ] नेकश ओषवन् भग जानना चाहिए ।

§१५८ अपगत वेदमे—जिन प्रकृतियोंका वध होता है, उनको जानकर बणन करना चाहिए ।

[ विशेष—१ सज्वलन, ५ ज्ञानावरण, ५ अतराय, ४ दर्शनावरण, यश कीर्ति, उच्चगोत्र तथा सातावेदनीय इन २१ प्रकृतियों का यहा वध होता है । ]

मत्पज्ञान, श्रुताज्ञान, विभगावधि, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, अस्वीका तिर्यचोंके ओषण है । आभिनिगोधिक, श्रुत तथा अविधिज्ञानमे ओषवत् भग है । विशेष—यहाँ मिथ्यात्व सन्धी १६ और सासाणन सम्यधी २५ प्रकृतियों का अभाव है ।

इसी प्रकार अवधिदर्शन, सम्यक्त्वन, क्षायिक सम्यक्त्वमे जानना चाहिए । मन पर्यवत्ता, सयत, सामाधिक्, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धिमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यहाँ असयमगुरुस्थानगामी प्रकृतियाँ नहीं हैं ।

अवपाय, केवलज्ञान, यत्रारयातसयम, केवल दर्शनमे सन्निरुप नहीं है ।

[ विशेष—इन मार्गणाओंमे एक सातावेदनीयका ही वध होता है । इस कारण यहाँ सन्निरुपका वर्णन नहीं किया गया है । एव प्रकृति में सन्निरुप नहीं हो सकता है । किसी, किसी साथ सन्निरुप कहा जायगा ? अत सन्निरुप नहीं बताया है । ]

§१५९ सूद्धमसापरायमे—१ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ( निद्रापचक रहित ) तथा ५ अतरायों का एकके रहते हुए शेष अन्यथा वध होला है ।

[ विशेष—यद्यपि सूद्धमसापराय गुरुस्थान मे सातावेदनीय, उच्चगोत्र तथा यश कीर्ति का भी वध होता है, किन्तु ये वेदनीय, गोत्र, तथा नामकर्मकी अवेली ही प्रकृतियाँ हैं, इस कारण इन्हे वध नहीं किया गया है । ]

संजदा संजदभंगो । णवरि आहारदुग णत्थि । पच्चक्खाणा० ४ जत्थि । असजदेसु ओघभंगो । णवरि आहारदुगं णत्थि ।

§१६०. एवं तिण्णि लेस्माण । णवरि किण्ण णील० तित्थयर वंधतो देवगदि० ४ णियमा वधगो । काऊए मिया देगगदि मिया मणुसगदि । तेऊए सोधम्मभंगो । णवरि देणायु देवगदि० ४ आहारदुग अत्थि । एवं पम्माए । णवरि एड्ढियत्तिग ५ णत्थि । सुक्खाए णिरयगदित्तिग तिरिक्खगदिसंयुत च णत्थि । सेसं ओघभंगो ।

§१६१. वेदगे० आभिणिभंगो । एव उवसम० । णवरि आयु णत्थि । सासणे मिच्छत्तसयुत तित्थयर आहारदुग च णत्थि । सेसं ओघभंगो । सम्मामि० उवसम-सम्मा० भंगो । णवरि आहारदुग तित्थयर च णत्थि ।

§१६२. अणाहार० कम्मइगभंगो ।

१०

### एव सत्थाणसण्णियासो समतो ।

सयतासयतोमे—सयतोना भग जानना चाहिए । विगेष, यहा आहारकट्टिक नहीं है । इनमे प्रत्याख्यानारण ४ का वध पाया जाता है । असयतो मे—ओघवत् भग है ।<sup>१</sup> विशेष आहारकट्टिक नहीं है ।

§१६० कृष्ण, नील तथा कापोत लेख्या मे—इसी प्रकार जानना चाहिए ।<sup>२</sup> विगेष—कृष्णनील लेख्या मे—तीर्थंकरका वध करनेवाला नियमसे देगगति ४ का वधक है । कापोत लेख्यामे—स्यात् देवगति, स्यात् मनुष्यगतिना वध होता है । तेजोलेख्यामे—सौधर्म स्वर्गके समान भग है । विगेष, दवायु, दवगति ४ तथा आहारकट्टिकका वध है ।<sup>३</sup> पद्मलेख्यामे—इसी प्रकार है । विगेष, यहा ऐन्द्रिय, स्थानर, आतापका वध नहीं है । शुक्ललेख्यामे—नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु तथा तिर्यचगतिका वध नहीं है । गेष प्रकृतियोंका ओघवत् भग है ।

§१६१ वेत्क सम्यक्त्वमे—आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भग है ।<sup>४</sup>

उपशमसम्यक्त्वमे—इसी प्रकार है । विगेष, यहा आयुका वध नहीं होता है ।

सासादन सम्यक्त्वमे—मिथ्यात्व, तीर्थंकर, आहारकट्टिकका वध नहीं है । शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भग है । सम्यक्त्वमिथ्यात्वमे उपशमसम्यक्त्वो का भग जानना चाहिए । विगेष, यहा आहारकट्टिक तथा तीर्थंकरका वध नहीं है ।

§१६२ अनाहारक मे—<sup>५</sup> कार्माण काययोगी के समान भग है ।

इस प्रकार स्वस्थानसन्निकर्ष पूर्ण हुआ ।

(१) “समेव तित्थनधो आहारदुग पमादरहिदेसु ।” —गो० क० गा० ९० ।

(२) “अथदोत्ति छलेस्साओ सुह तियलेस्सा हु देसविरदत्तिये । तत्तो सुक्खा लेस्सा, अजोगिठाण अलेस्स तु ॥” —गो० जी० गा० ५३१ । (३) “मिच्छस्सतिमणय वार णहि तेउपम्मेषु” —गो० क० गा० १२० । ‘सुक्के सदरचउक्क वामतिमवारस च णव अत्थि ।’ —गो० क० गा० १० । (४) “णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुराऊणि णत्थि णियमेण ।” —गो० क० गा० १०० । (५) “कम्मैव अणाहारो ।” —गो० क० गा० १२१ ।

## [ परस्थानसण्णियास-परूचना ]

§१६३ परस्थानसण्णियासे पगद दुविधो [ णिहेसो ] ओघेण आदेसेण य ।

§१६४ तत्थ ओघेण आभिणिबोधिंय णाणावरण वधतो चदुणाणा० चदुदसणा०  
 ५ पचत० णियमा वधगो । पचदस० मिच्छत्त सोलसरु० भयदुग० चदुआधु०  
 आहारदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ आदाउज्जो० णिमिण तित्थयर सिधा वधगो,  
 सिया जजधगो । साद सिया व०, सिया अव० । असाद सिया व०, सिया अव० ।  
 दोण्ण पगदीण एककदर वधगो । ण चेव अज० । इत्थि० सिया व०, पुरिस० सिया  
 व०, णुस० सिया व० । तिण्ण वेदाण एककदर वधगो । अथना तिण्णपि अवधगो ।  
 एव वेदभगो हस्सरदि-अरदि-सोग-दोयुगलाण चदुगदि० पचजादि-दोसरीर-छसठा०

## [ परस्थान सन्निकर्ष ]

§१६३ यहाँ परस्थान सन्निकर्ष प्रकृत है । उसका श्लोच तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश कृत है । यहाँ सजातीय तथा विजातीय एक साथमे बंधनेवाली प्रकृतियोंकी प्ररूपण की गयी है ।

§१६४ श्लोचसे-आभिनिबोधिंय ज्ञानावरणका वध करनेवाला-श्रुतादि ज्ञानावरण ४, दर्शनावरण ४ तथा अतराय ५ का नियमसे उधक है ।

[ विशेष-यश कीति उच्चगोत्रका नियमसे वध न होनेके कारण यहा उसका उल्लेख नहीं किया गया है । ]

निद्रादि पाच दशानावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, आहारदुर्ग, तेजस-कामांग शरीर, चर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् वधक है, स्यात् अजधक है । साताका स्यात् वधक है, स्यात् अजधक है । असाताका स्यात् वधक है । स्यात् अजधक है । दोनोमेसे अयतरका वधक है । अजधक नहीं है ।

[ विशेषार्थ-दोनोका अजधक अयोगनेत्रली गुणस्थानरती होगी, वहा मतिज्ञानावरण नहीं है । अत दोनोने अजधकका अभान कहा है । ]

बीवेदका स्यात् अजधक है । पुरपवेदका स्यात् वधक है । नपुंसक वेदका स्यात् वधक है । तीनोंमेसे एकतरका वधक है । अथना तीनोंना भी अजधक है ।

[ विशेषार्थ-वेदका वध नरमे गुणस्थान पर्यंत होता है और मतिज्ञानावरणका मूलसापराय तक वध होता है । अत मतिज्ञानावरणके वधनके वेदका वध हो तथा न भी हो । इससे तीनोंका अजधक भी यहा कहा है । ]

५, अरति श्लोक से दो युगल, ४ गति, ५ जाति, ० शरीर, ६ सस्थान,

दोअगो० छसंध० चदुआणु० दो विहाय० तस-थावरादि-णवयुगलाण । जस० अजस०  
दोगोद सादभगो । यथा आभिणिनोधिपणा० तथा चदुणाणा० चदुदस० पंचतरा० ।

§१६५. णिहाणिदं वधंतो पचणा० अट्ठदसणा० सोलसक० भयदु० तेजाक०  
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचत० णियमा वधगो । साद सिया व०, असाद सिया  
व० । दोण्ण एककदर वधगो, ण चेत्त अचधगो । एत्त वेदणीयभगो तिण्णि वे० हस्स- ५  
रदि-अरदिसोग० चदुगदि० पंचजादि-दोसररीर-उसठाण-चदुआणु० तसथावरादि-णव-  
युगल दोगोदाण । मिच्छत्त-चदुआयुग परघादुस्सा० आदाउज्जो० सिया व०, सिया  
अव० । दो-अगो० छसंध० दो विहाय० दोसर सिया व० । दोण्णं छण्ण दोण्ण दोण्णं  
पि एककदर वधगो । अथवा दोण्ण छण्ण दोण्ण दोण्ण पि अचधगो । एत्त पचलापचला-  
धीणगिद्धि-अणताणुअधि० ४ । णिद् वधतो पच[णा० चदु०]दसणा० चदुसज० भयदु० १०  
तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचत० णियमा वधगो । धीणगिद्धि० ३  
मिच्छत्त-वारसक० चदुआयु० आहारदुग परघादुस्सास आदा-उज्जो० तित्थयर सिया  
वधगो । साद सिया व०, असाद सिया वधगो । दोण्ण पगदीण एककदरं व० । ण

२ अगोपाग, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रस-स्थानरादि ९ युगल्का वेदके समान  
भग है । अर्थात् इनमेसे एकतरके वधक है अथवा सत्रके भी अचधक है । चश कीर्ति,  
अयश कीर्ति, दो गोत्रका सातावेदनीयके समान भग है अर्थात् अन्यतरका वधक है, अचधक  
नहीं है । श्रुतादि ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायना आभिनिनोधिक ज्ञानावरणके समान  
भग जानना चाहिए ।

§१६५ निद्रा निद्राका वध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ८ दर्शनावरण, १६ कथाय, भय,  
जुगुप्सा, तैजस, कर्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अतरायका नियमसे वधक  
है । साताका स्यान् वधक है । असाताका स्यान् वधक है । दो मेसे अन्यतरका वधक है ।  
अचधक नहीं है । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, औदारिक, वैक्रिचिक  
शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रमे वेदनीयके समान भग  
है अर्थात् एकतर के वधक है । अचधक नहीं है । मिथ्यात्व, ४ आयु, परघात, उच्छ्वास,  
आताप, उग्रोत्त का स्यान् वधक है । स्यात् अचधक है । २ अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायो-  
गति, २ स्वर वत्त स्यात् वधक है । इन २, ६, २, २ मे से अन्यतर का वधक है, अथवा २, ६,  
२, २ का भी अचधक है ।

प्रचला-अचला, स्यान्गृद्धि तथा अणतानुअधी ४ के वधकका निद्रानिद्राके समान भग है ।  
निद्रावध वध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-निर्माण  
शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अतरायका नियमसे वधक है । स्यान्गृद्धिद्विक,  
मिथ्यात्व, १२ कथाय (४ सज्वलनको छोड़कर) ४ आयु, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास आताप,  
उग्रोत्त तथा तीर्थपरका स्यान् वधक है । साता वेदनीयका स्यान् वधक है । असाता वेदनीयका स्यान्  
वधक है । दोनोंमेसे अन्यतरका वधक है । अचधक नहीं है । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक,

चेत्त अनघगो । एव तिण्णि वे० हस्सरदिदोयुग० चटुग० पचजा० दोसरीर छसठाण  
चटुआणु० तमधानरादिणयुगल दोगोदाण च । दोअगो० छसघ० दोविहाय०  
दोसर सिया व० । दोण्ण छण्ण दोण्ण दोण्ण एक्कदर वधगो । अथवा दोण्ण [ छण्ण ]  
दोण्ण दोण्ण पि अनघगो । एव पचला० ।

५ ११६६. साठ बंधतो पंचणा० णवदस० मिच्छत्त सोलसक० भयदु० तिण्णि-आयु०  
आहारदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ आदा-उज्जो० णिमिं तित्थय० पचत्त०  
सिया व० मिया अन० । तिण्णि वे० हस्सादि-दोयुग० तिण्णिगदि-पचनादि-दोसरीर  
छसठा० दो अगो० छमघ० तिण्णि आयु० दो विहाय० तसादिदसयुगल दोगोदाण  
सिया २० सिया अन० । एदेसि एक्कदर वधगो, अथवा एदेसि अनघगो ।

१० ११६७. असाद बंधतो-पचणा० उटसणा० चतुसज० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४  
अगु० उप० णिमि० पचत्त० णियमा वधगो । थीणगिद्धि० ४ (३) मिच्छत्त० वारसक०  
तिण्णि आयु परघादुस्मा० आदाउज्जो० तित्थय० सिया २० सिया अन० । तिण्ण  
वेदाण मिया व० । तिण्ण वेदाण एक्कदर वधगो । ण चैव अब० । हस्सरदि मिया

४ गति, ५ जाति, औदारिक-वैक्रियिक शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, वस-स्थापरादि ९ युगल  
तथा २ गोत्रका इसी प्रकार जानना चाहिए । २ अगोपाण, ६ सहनन, २ त्रिहायोगति, २ स्वरका  
स्यात् बंधक है । इन २, ६, २, २ में से अन्यतरका बंधक है अथवा २, [६], २, २ का भी  
अनघक है । प्रचलाका बंधकरनेशालेके निद्राके समान भग है ।

११६६ साताका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय,  
जुगुप्सा, भ्रकायुको छोड़कर ३ आयु, आहारकद्विक, तैजस, कार्माणशरीर, वर्ण ४, अगुरल्लु ४,  
आताप, उग्रोत्, निर्माण, तीर्थकर तथा ५ अतरायाना स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है ।

[ विशेष-साताका बंधक संयोगी जिन पर्यन्त पाया जाता है, किन्तु ज्ञानावरणदिक्क  
बध सुद्धमसापराय गुणस्थान पर्यन्त होता है अतः साताके बंधकके ज्ञानावरणादि का बंध हो,  
तथा न भी हो । ]

तीन वेद, हास्थानि दो युगल, २ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाण  
६ सहनन, ३ आनुपूर्वी, २ त्रिहायोगति, वसादि वस युगल तथा दो गोत्रका स्यात् बंधक है ।  
स्यात् अवंधक है । इनमेंसे किसी एकका बंधक है अथवा इनका भी अवंधक है ।

११६७ असाताका बंध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण ( स्थानगृद्धिजिक विना ),  
४ मज्जन्त, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरल्लु, उपधात, निर्माण तथा ५ अत-  
रायाना नियमसे बंधक है । स्थानगृद्धिजिक, मिथ्यात्व, १० कपाय, ३ आयु, परघात, उच्छ्वास,  
आताप, उग्रोत्, तीर्थकरका स्यात् बंधक है, स्यात् अवंधक है । तीन वेदोंका स्यात् बंधक है ।  
तथा इनमेंसे किसी एकका बंधक है अवंधक नहीं है ।

[ विशेष-असाता प्रमत्तसयन पर्यन्त बंधता है, तथा वेदका अधिवृत्तिकरणपर्यन्त बंध होता  
असाताके बंधकको वेदोंका अनघक नहीं कहा है, कारण यहाँ पदका बंध सदा होगा । ]

धगो । अरदिसोग सिया वं० । दोण्ण युगलाण एककदर वधगो । ण चेव अंधगो । एव चदुगदि-पचजादि-दोसरीर-छसठा० चदुआणु० तसादिणजुगल दोगोठ च । दो अंगो० छसघ० दो विहाय० दो सरीर ( सर ) सिया वं० सिया अन० । दोण्ण दोण्ण दोण्ण पि एककदर वधगो । अथवा एदेसि चेव अंधगो । एव अरदिसोग-अधिर-असुभ-अज्जसगित्तीण ।

५

§१६८. मिच्छत्त वधतो-पचना० णरदस० सोलसक० भयदुगु० तेजाक० वण्ण० ४ अणु० उप० णिमि० पचत० णियमा वंधगो । सादं मिया वं० आसाद सिया वं० । दोण्ण पगदीण एककदरं वधगो । ण चेव अंधगो । एव तिण्ण वेढाणं हस्सरदि० अरदिसो० दोयुग० चदुगदि० पचजादि-दोसरीर-छसठा० चदुआणु० तसथावरादि-वधयुगल दो-गोदाणं च । चदुआणु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० सिया वधगो । १० दोण्ण अगो० छसघ० दो विहाय० दो सग सिया न०, मिया अंधगो । दोण्ण छण्णं दोण्ण दोण्ण पि एककदर वं०, अथवा दोण्ण छण्ण दोण्ण दोण्णं पि अवधगो ।

हास्य, रतिना स्यात् वधक है । अरति, शोकका स्यात् वधक है । दो युगलोंमेंसे अन्यतर युगलना वधक है अवधक नहीं है । १ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसन्ति ९ युगल तथा २ गोत्रका भी इसी प्रकार वर्णन जानना चाहिए । दो अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति, दो स्वरका स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है । इन २, ६, २, २ मेंसे एकतरका वधक है, अथवा इनका भी अवधक है ।

<sup>१</sup>अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयश कीर्तिका इसी प्रकार जानना चाहिए ।

[ विशेष-असाता के समान अरति शोकादिकी वधव्युच्छित्ति प्रमत्तसयत गुणस्थानमे होती है । इस कारण असाताने वध करनेवालेके समान इनका भी वर्णन कहा है । ]

§१६८ मिश्रत्वका वध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनानरण, भय, जुगुप्सा, तैजस, कामीण शरीर, वर्ण ४, अगुन्लवु, उपघात, निर्माण, ५ अतरायका नियम से वधक है । मातावेदनीयका स्यात् वधक है । असाताना स्यात् वधक है । दोनोंमेंसे अन्यतरका वधक है अवधक नहीं है ।

३ वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, दो शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थाव-रति ९ युगल तथा दो गोत्रका इसी प्रकार जानना चाहिए, अर्थात् इनमेंसे एकतरका वधक है, अवधक नहीं है । चार आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतना स्यात् वधक है । दो अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति तथा २ स्वरका स्यात् वधक है । स्यात् अवधक है । इन २, ६, २, २ मेंसे एकतरका वधक है, अथवा २, ६, २, २ का भी अवधक है ।

[ विशेष-एनेन्द्रियके अगोपाग, सहनन, विहायोगति तथा स्वरका अभाव है । इससे इन मरुतियोका उसकी अपेक्षा अवधक कहा है । ]

११६९. अपचरसाण० कोव प्रधतो-पचणा० छदसणा० एककारमरुमाय-मयदु०  
 तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिण पचत० णियमा वधगो । सेस मिच्छतमगो ।  
 णपरि धीणगिद्वितिग मिच्छत्त अर्णताणुव० ४ चदुआयु० परघादुस्ता० आदा-उज्जो०  
 तित्थय० सिया व० सिया अर० । एव तिण्ण कसायाणं । पच्चकराणार० कोव  
 ५ वधतो-पचणा० छदस० सत्तणोरु० ( चक० ) मयदुगु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप०  
 णिमि० पचत० णियमा वधगो । धीणगिद्वि० ३ मिच्छत्त अट्ठकमा० परघादुस्मा०  
 चदु आयु० आदा उज्जो० तित्थयर सिया व०, सिया अर० । सेस मिच्छतमगो । एव  
 तिण्ण कसायाण । कोवसज० वधतो-पचणा० चदुदस० तिण्ण सज० पचता०  
 णियमा वधगो । पचदस० मिच्छत्त चारमक० भयदु० चदुआयु० आहारदुग तेजाक०  
 १० वण्ण० ४ अगु० ४ आदा-उज्जो० णिमि० तित्थय० सिया व० सिया अर० ।  
 दोवेदणीयाण सिया वधगो । दोण्ण एककर वधगो । ण चेव अरधगो । एव जम०  
 धजस० दोगोदाण । इत्थिवेद मिया व०, पुरिसवेद सिया व० णवुसगवेद सिया व० ।

११६९ अपत्यार्यानावरण क्रोधका वध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ११ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-भ्रमोख, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अतरायोंका नियमसे बधक है । शेष प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके वधके समान भग जानना चाहिए । विशेष, स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनतालुबधी ४, आयु ४, परघात उच्छ्वास, आताप, उद्योत, तीर्थकरका स्यात् बधक है, स्यात् अवधक है । अपत्यार्यानावरण मान, माया, लोभका अपत्यार्यानावरण क्रोधके समान वर्णन जानना चाहिए ।

प्रत्यार्यानावरण क्रोधका वध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ७ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-भ्रमोख, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अतरायोंका नियमसे बधक है । स्त्यानगृद्धिनिष्ठ, मिथ्यात्व, ८ कषाय ( अनतालुबधी ४, अपत्यार्यानावरण ४ ), परघात, उच्छ्वास, ८ आयु, आताप, उद्योत, तीर्थकरका स्यात् बधक है, स्यात् अवधक है । शेष प्रकृतियों के विषयमें मिथ्यात्वके वधके समान वर्णन जानना चाहिए । प्रत्यार्यानावरण मान, माया तथा लोभका वध करनेवालेके प्रत्यार्यानावरण क्रोधके समान जानना चाहिए ।

सञ्जलन क्रोधका वध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ३ सञ्जलन, ५ अतरायोंका नियमसे बधक है । ५ दर्शनावरण ( निद्रापचक ) मिथ्यात्व, १० कषाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, आहारकद्विक, तैजस, भ्रमोख, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थकरका स्यात् बधक है, स्यात् अवधक है । दो वेदनीयका स्यात् बधक है । दो भेसे अयतरका बधक है, अवधक नहीं है । यश कीर्ति, अयश कीर्ति तथा ० गौत्रोका इसीप्रकार जानना चाहिए । अर्थात् इनमेंसे अन्यतरके बधक है । अवधक नहीं है ।

[ विशेष-सञ्जलन क्रोधका अनितृप्तिवरण गुणस्थान पर्यन्त बध पाया जाता है तथा यश कीर्ति, उभयोत्रका सूक्ष्मसापराय गुणस्थान पर्यन्त बध होता है । इस कारण इनका अवधक नहीं कहा है । ]

तिण्णि वेदाणं एकदरं बंधगो । अथवा तिण्णापि अबधगो । एव हस्सरदि-अरदिसोग-  
दोयुगलाण चदुगदि-पंचजादि-दो-सरीर-छसठा० दोअंगो० छसघ० चदुआणु० दो-  
विहाय० तसादिणयुगलाण । एव माणसज० । णवरि दो सज्ज०णियमा बधगो । एवं  
चेव मायासज० । णवरि लोभसज० णियमा बंधगो । लोभसजलण बधतो-पंचणा०  
चदुदस० पचत० णियमा बधगो । मिच्छत्त पण्णारसक० सिया व० । सेस कोध-  
सजलणभगो ।

§१७०. इत्थिवेद बधतो पंचणा० णवदसणा० सोलसक० भयदुगु० पच्चि०  
तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० ४ तस० ४ णिमि० पचत० णियमा बधगो । सादासाद  
सिया बधगो । दोण्णं वेदणीयाणं एकदर बधगो । ण चेव अव० । एव हस्सरदि-  
अरदिसोगाण दोयुग० तिण्णि-ग्दि-दो-सरीर-छसठाणं दोअगो० तिण्णिआणु० दोविहाय० १०  
धिरादिछुगल दोगोदाण । मिच्छत्त तिण्णि आयु० उज्जोव० सिया व०, सिया  
अव० । छसघ० सिया व० । छण एककदर बधगो । अथवा छण्णंपि अनंधगो ।

§१७१. पुरिसवेदं बधतो पचणा० चदुदस० चदुसज० पचत० णियमा बंधगो ।

स्त्रीवेदका स्यात् बधक है । पुरुषवेदका स्यात् बधक है । नपुंसकवेदका स्यात् बधक है । तीन  
मे से एकतरका बधक है । तीन का भी अबधक है ।

[ विशेष-वेदका बध ९ वें गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यन्त होता है तथा सज्वलन क्रोधका बध  
९ वें गुणस्थानके दूसरे भाग पर्यन्त होता है । इस कारण यहाँ वेदोंका अबधक भी कहा है । ]  
हास्य-रति, अरति शोक इन युगलों, ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग,  
६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि नवयुगलका इसी प्रकार है अर्थात् एकतरका  
बधक है तथा अनधक भी है ।

सज्वलन मानका बध करनेवालेके सज्वलन क्रोधके समान भग है । विशेष, सज्वलन  
माया तथा लोभका नियमसे बधक है । सज्वलन मायाका बध करनेवालेके इसी प्रकार भग है ।  
विशेष, सज्वलन लोभका नियमसे बधक है । सज्वलन लोभका बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण,  
४ दर्शनावरण, ५ अतरायका नियमसे बधक है । मिथ्यात्व, १५ कपायोंका स्यात् बधक है । जेप  
प्रकृतियोंका सज्वलन क्रोधके समान भग है ।

§१७० स्त्रीवेदका बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा,  
पचेन्द्रिय, तेजस, कामीणशरीर, वर्ण ४, अगुस्तु ५, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अतरायोंका  
नियमसे बधक है । साता, असाताका स्यात् बधक है । दो मेसे अन्यतरका बधक है । अबधक  
नहीं है । हास्य, रति, अरति, शोक, नरकगतिको छोड़कर शेष ३ गति, २ शरीर, ६ सस्थान,  
२ अगोपाग, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल, २ गोत्रोंमें एकतरका बधक है,  
अनधक नहीं है । मिथ्यात्व, मनुष्य तिर्य च-वेधायु, उद्योतना स्यात् बधक है, स्यात् अबधक  
है । ६ सहननका स्यात् बधक है । इनमेसे अत्यतमका बधक है अथवा ६ का भी अनधक है ।

§१७१ पुरुषवेदका बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन तथा ५ अत-  
रायोंका नियमसे बधक है ।



पचदस० मिच्छत्त चारसक० भयदु० तिण्णि आयु० पचिदिं-आहारदु० तेजाक०  
 वण्ण० ४ अगु० ४ उज्जोय-त्तस० ४ णिमि० तित्थय० मिया बघगो । सिया अबघगो ।  
 साद सिया व० । असाद सिया अबघगो ( बघगो ) । दोण्ण वेदणीयाण एकदरं  
 बघगो । ण चेय अबघगो । एव जस० अजस० दोगोदाण । हस्सरदि ( रदि ) सिया  
 ५ व० । अरदिमो० सिया बघ० । दोण्ण युगलाण एकदर बंधगो । जघवा दोण्ण पि  
 अबघगो । एव तिण्णिगदि-दोसरीर-छसठाण दोअगो० छसघ० तिण्णि आयु० दोविहा०  
 थिरादिपचयु० ।

११७२. णवुस बघतो पचणा० णवदम० मिच्छत्त सोलसक० भयदु० तेजाक०  
 वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचत्त० णियमा बंधगो । साद सिया व० । असादं  
 १० मिया व० । दोण्ण एकदर बघगो । ण चेय अबंधगो । एव हस्सरदि० अरदि  
 सोगाण दोयुग० तिण्णिगदि-पचजादि-दोसरीर-छसठाण तिण्णि आयु० तसधवरादि  
 णजपुमलाण दोगोदाणं । तिण्णिआयु० ( आयु० ) परघादुस्मा० आदाउज्जो० सिया

[ विशेष-पुरुषवेदका वध नवमे गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यन्त होता है और ज्ञाना-  
 वरणादिका इसके आगे तक वध होता है अतः पुरुषवेदके वधकको ज्ञानावरणादि का नियमसे  
 वधक कहा है । ]

५ दर्शनावरण, मिध्यात्व, १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, नरकायु विना ३ आयु, पचेन्द्रिय,  
 आहारकद्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, उद्योत, व्रस ४, निर्माण तथा  
 तीर्थ करका स्यात् वधक है, स्यात् अबधक है । साताका स्यात् वधक है । असाताका स्यात्  
 वधक है । दोनोंमेंसे अन्यतरका वधक है । अनधक नहीं है । यश कीर्ति, अयश कीर्ति तथा  
 दो गोरोंका वेदनीयने समान भग है । हास्य, रतिका स्यात् वधक है । अरति, शोकना स्यात् वधक  
 है । दो युगलोंमेंसे अन्यतरका वधक है, अथवा दोनों युगलोंका भी अबधक है । नरकातिको  
 छोड़ शेष ३ गति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाय, ६ सहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विद्यायोगति,  
 स्थिरादि पच युगलका इसी प्रकार है अर्थात् इनमेंसे एकतरका वधक है अथवा सबका भी  
 अबधक है ।

११७० नपुमकवेदना वध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिध्यात्व, १६ कपाय,  
 भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अतरायोंका  
 नियमसे वधक है ।

[ विशेष-नपुमकवेदका वध मिध्यात्व गुणस्थान में होता है इस कारण यहा  
 मिध्यात्वका भी नियमसे वध कहा है । ]

साताका स्यात् वधक है । असाताका स्यात् वधक है । दोनोंमेंसे अन्यतरका वधक है ।  
 अबधक नहीं है । हास्यरति, अरतिशोक ये दो युगल, देवगतिको छोड़कर ३ गति, ५ जाति,  
 २ शरीर, ६ सस्थान, ३ आनुपूर्वी, व्रस-स्थानरादि ९ युगल, दो गोरोंका इसी प्रकार भग है ।  
 दवायुको छोड़कर शेष ३ आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् वधक है । स्यात्

० सिया अवं० । दोअगो० छसंध० दोगिहाय० दोसर० सिया व० सिया अघ० ।  
दोणं छण्ण दोण्ण दोण्ण पि एक्कदर वधगो । अथना एदेसि अवंधगो ।

§१७३. हस्स वंधतो पचणा० चदुदंसं चदुसज्जं रदिभयदु० पंचतं णियमा  
वंधगो । पचदसं मिच्छत्त-वारसकं तिण्णिआयु० आहारदु० तेजाकं वण्ण० ४ अगु०  
४ आदाउज्जो० तित्थय० सिया व०, सिया अघगो । साद सिया व०, असाद ५  
सिया व० । दोण्ण एक्कदर वधगो । ण चेव अवधगो । एव तिण्णि वेद० जसं अजसं  
दोगोदाण । तिण्णिगादि सिया व०, सिया अवं० । तिण्ण एक्कदरं व० अथना अघगो ।  
एवं गदिभगो पचजादि-दोसररी-छसठा० दोअंगो० छसंध० तिण्णि आणु० दो  
विहा० तसादिणवयुग० । एव रदीए० ।

§१७४. भय वधतो पचणा० चदुदसं चदुसज्जं दुगुं० पचतं णियमा वधगो । १०  
पचदं मिच्छत्त-वारसकं चदुआयु० आहारदुग तेजाकम्मं वण्ण० ४ अगु० ४ आदा-  
उज्जो० णिमि० तित्थय० सिया व० सिया अघ० । साद सिया व० । असादं सिया  
व० । दोण्ण एक्कदर वधगो, ण चेव अंधगो । एव तिण्णिवेद-जस-अजस-दोगोद ।

अवधक है । दो अगोपांग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् वधक है, स्यात् अवधक  
है । २, ६, २, २ मेसे अन्यतरका वधक है अथवा २, ६, २, २ का अवधक है ।

§१७३ हास्यका वध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्जलन, रति, भय,  
जुगुप्सा, ५ अतरायका नियमसे वधक है । ५ दर्शनावरण, मिध्यात्व, १२ कपाय, नरकायुको  
छोड़कर तीन आयु, आहारकद्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अग्ररुल्लुधु ४, आताप, उद्योत तथा  
तीर्थंकरका स्यात् वधक है, स्यात् अवधक है । साता वेदनीयता स्यात् वधक है, असाता  
वेदनीयता स्यात् वधक है, दो मेसे अथतरका वधक है, अवधक नहीं है । ३ वेद, यश कीर्ति,  
अयश कीर्ति और दो गोत्रोम वेदनीयके समान भग है । ३ गति ( नरक जिना ) का स्यात्  
वधक है, स्यात् अवधक है । तीनमेंसे अन्यतमका वधक है अथवा तीनोंका भी अवधक है ।

[ विशेष-अपूर्वकरण के अंतिम भाग तक हास्यका वध होता है किन्तु गतिका वध  
अपूर्वकरण के छठवें भाग पर्यन्त होता है । इस कारण हास्यके वधकको गतित्रयका अवधक भी  
कहा है । ]

५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपांग, ६ सहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, प्रसादि  
९ सुगलका गतिके समान भग है अर्थात् एकतर के वधक हैं अथवा सबके भी अवधक हैं ।

रतिका वध करनेवालेके हास्यके समान भग है ।

§१७४ भयका वध करनेवालेके—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्जलन, जुगुप्सा, ५  
अतरायना नियम से वधक है । ५ दर्शनावरण, मिध्यात्व, १२ कपाय, ५ आयु, आहारकद्विक,  
तेजस-कार्माण, वर्ण ४, अग्ररुल्लुधु ४, आताप, उद्योत, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् वधक  
है, स्यात् अवधक है । साताता स्यात् वधक है, असाताका स्यात् वधक है । दोनों मे से  
अन्यतरका वधक है, अवधक नहीं है । ३ वेद, यश कीर्ति, अयश कीर्ति तथा गोत्रोंका

चदुगदि मिया बधगो । चदुण्ण गदीण एकदर बधगो । अधमा चदुण्णपि अबंधगो । एव गदिभगो पचनादि-दोसरीर-छसठा० दोअगो-छसघ० चदुआणु० दोनिहा० तसादि णवयुगल । एव हुगुच्छाए ।

§१७५. गिरियायु बंधतो पचना० णवदस० असादावे० मिच्छ० सोलसक० ५ णवसक० अरदिसोगभयदु० गिरयगदि- पचिं० वेगुविय० तेजाऊ० हुडसठा० वेगु व्वि० अगो० वण्ण० ४ गिरियाणु० अगु० ४ अप्पसत्थ० तस० ४ अधिरादिछक्क णिमिण णीचागोद पचत० णियमा बधगो ।

§१७६. तिरिक्खायु बंधतो-पचना० णवदस० सोलसक० भयदु० तिरिक्ख गदि-तिणिसरीर-वण्ण० ४ तिरिक्खाणु० अगु० उप० णिमिण-णीचागो० पचत० १० णियमा बधगो । साद सिया व०, असाद सिया व० । दोण्ण एकदर बधगो । णचेव अबधगो । एस भगो तिणिवेट-हस्सादिदोयुगल-पचजा० छसठा० तस-धावरादिणव युगलाण । मिच्छत्त ओरालि० अगो० परघादुस्ता० आदा-उज्जो० सिया व० । छसघ० दोविहाय० दोसर सिया बधगो । एदेसिं एकदर बधगो अथवा अनधगो ।

वेदनीयने समान जानना चाहिए । चार गतिका स्यात् बधक है । चार में से एकतरका बधक है । अथवा चारोंका भी अत्रधक है ।

[ विशेष-गतिका बध अपूर्वकरणके छठवें भाग पर्यन्त होता है तथा भयका अपूर्वकरणके अंतिम भाग तक बध होता है । इस कारण भयके बधकको गति चतुष्टयका भी अबधक कहा है । ]

५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसदि ९ युगलका गतिके समान भग जानना चाहिए । जुगुप्साका बध करनेवालेके भय के समान भग जानना चाहिए ।

§१७५ नरफायुका बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, १६ कपाय, नपुसकवे, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरफगति, पचेन्द्रियजाति, वैकियिक-तैजस-कामाण शरीर, हुडकसस्थान, वैकियिक अगोपाग, वर्ष ४, नरफानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, अप्रशस्त निहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादिपट्क, निर्माण, नीचगोत्र, तथा ५ अतरायों का नियमसे बधक है ।

§१७६ तिर्यचायुका बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यचगति, २ शरीर ( श्रौतारिक-तैजस-कामाण ) वर्ष ४, तिर्यचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और ५ अतरायका नियमसे बधक है । मातावेदनीयका स्यात् बधक है । असाताका स्यात् बधक है । दो में से अन्यतरका बधक है, अबधक नहीं है । तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ५ जाति, ६ सस्थान, त्रस-धावरादि ९ युगल में वेदनीय के समान जानना चाहिए । अर्थात् एकतरका बधक है, अबधक नहीं है । मिथ्यात्व, श्रौतारिक अगोपाग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बधक है । ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बधक है । इनमेंसे एकतरका बधक है, अथवा किसीका भी बधक नहीं है ।

११७७. मणुसायुग वधतो पंचणा० छदसण० वारमक० मय-दुगुआ-मणुमग० पचिदि० तिण्णिमरीर० ओरालि० अगो० वण्ण० ४ मणुमाणु० अगु० उप० तम-वाटर-पत्तैय-णिमिण पचत० णियमा वधगो । वीणगिद्धितिग मिच्छत्त अणंताणु० ४ परघादुस्मा० तित्थय० सिया वधगो, सिया अबधगो । साट मिया व० । अमाद सिया व० । दोण्ण एककदर वंधगो । ण चेय अबधगो । एण तिण्णिवेट० हस्मादि-दो ५ युग० छसठा० छसघ० पज्जत्तापज्जत्त० थिरादि-पंचयुग० दोगोदाण । दोनिहाय० दोसर सिया वधगो । दोण्ण दोण्ण एककदर वधगो । अथवा दोण्ण दोण्णापि अबधगो ।

११७८. देवायुग वधतो पंचणा० छदमणा० सादापि० चदुमज० हस्सरदि-मयदुगु० देवगदि० पचिदि० तिण्णिसरीर-समचदु० वेउग्गि० अंगो० वण्ण० ४ देवाणु० अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ थिरादिछक्क णिमि० उच्चागो० पचत० णियमा १० वधगो । वीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-वारसक० जाहारदु० तित्थय० सिया वधगो । इत्थि० सिया व० । पुरिस० सिया ३० । दोण्ण वेदाण एककदरं वंधगो । णचेय अबधगो ।

११७९. गिरयगदि वधतो गिरयायुमगो । णवरि गिरयायु मिया वधदि ।

११७७ मनुष्यायु का वध करनेवाला—५ ज्ञानानरण, ६ दर्शनानरण, १० कषाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कामीणशरीर, औदारिक अगोपाग, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, व्रस, वादर, प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अन्तरायका नियमसे वधक है । स्नानगृह्णितिक, मिथ्यात्व, अनतानुवधी ४, परघात, उच्छ्वास, तीर्थकरका स्यात् वधक है, स्यात् अबधक है । सातावेदनीयका स्यात् वधक है । असाताका स्यात् वधक है । दोनों में से अन्यतरका वधक है । अनधक नहीं है । ३ वेद, हास्यादि दो युगल, ३ स्थान ६ सदन, पयासक, अपर्याप्तक, स्थिरादि पाच युगल तथा २ गोत्रोंका इसीप्रकार वर्णन है । अर्थात् पञ्चवर्ण वधक है । अनधक नहीं है । दो विहायागति, दो स्वरका स्यात् वधक है । दो दो में से अन्यतर का वधक है । अथवा २, २ का भी अनधक है ।

११७८ देवायुका वध करनेवाला—५ ज्ञानानरण, ६ दर्शनानरण, सप्त शस्त्रज्ञ, क्षम्य, रति, भय, जुगुप्सा, देयगति, पचेन्द्रिय जाति, ३ शरीर ( वैक्रियिक-वैजस्यिक ) मनुष्यसंस्थान, वैक्रियिक अगोपाग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, व्रस ४, स्थिरादिपट्टक, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अतरायका नियमसे वधक है । अर्थात् पञ्चवर्ण, वारह कषाय, आहारकट्टिक, तीर्थ करका स्यात् वधक है । खीवेदक स्यात् वधक है । पुराणवेदक स्यात् वधक है । दो वेदोंमेंसे अन्यतरका वधक है, अबधक नहीं है ।

११७९ नरकगतिका वध करनेवालेके नरकायु के समान भाग स्यात् वधक है । अर्थात् नरकयुके स्यात् वध करता है ।

[ विशेष—नरकायु के वधकके नियमसे नरकगतिका वध होता है किन्तु नरकयुके वधकके नियमसे नरकायुके वधका ऐसा कोई नियम नहीं है । नरकायुका वध होता है किन्तु नरकगतिका वध तो सदा होता रहता है, किन्तु आयुका वध तो सदा नहीं होता है । ]

एव गिरयाणुपुब्बि । तिरिक्खगदि तिरिक्खाधुभगो । गजरि तिरिक्खायु सिया बधदि । एव तिरिक्खाणु० । मणुसगदि मणुसायुभगो । गजरि मणुसायु सिया बधदि । एव मणुसाणुपु० । देवगदि बधतो पंचणा० चदुदस० चदुमज० भयदु० उच्चागो० पवंत० णियमा बधगो । साद सिया व० । असाद सिया व० । दोण्णं वेदणीय एकदर ५ बधगो । ण चेन जग्गो । एव हस्सरदि अरदिसोमाण दोण्ण युगलाण । द्वायु सिपा व०, सिया अबधगो । हेट्टा उवरि देवायुभगो । णाम सत्थाणभगो । एव देवाणु० ।

§ १८० एइदिय बधतो पचणा० णवदस० मिच्छत्त० सोलसक० णसुस० भयदुगु० णीचागो० पचत० णियमा बधगो । सादासादं चदुणोकसाय० तिरिक्खगदिभगो । तिरिक्खायु० सिया व० । णामाणं सत्थाणभगो । एव आदाव-थावराण । विगलिंदप १० सुहुम-अपज्ज० साधारणाण हेट्टा उजरि एइदियभगो । णाम ( माण ) अप्पण्णो

नरकानुपूर्वी का बध करनेवाले के नरकगतिके समान भग जानना चाहिए ।

तिर्यंचगतिका बध करनेवालेके तिर्यंचायु के समान भग जानना चाहिए । विशेष, तिर्यंचायुका स्यात् बधक है । तिर्यंचानुपूर्वी मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

[ विशेष-तिर्यंचायुके बधकके नियमसे तिर्यंचगतिका बध होता है, किन्तु तिर्यंचगतिके बधकके तिर्यंचायुके बधनेका कोई निश्चित नियम नहीं है । ऐसा ही मनुष्यगतिके भी है । ]  
मनुष्यगतिका बध करनेवालेके मनुष्यायुके समान भग है । विशेष, मनुष्यायुका स्यात् बधक है । मनुष्यानुपूर्वी मे भी इसी प्रकार है ।

देवगतिका बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सञ्चलन, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायका नियमसे बधक है । साताका स्यात् बधक है । असाताका स्यात् बधक है । दो वेदनीयमेसे अन्यतरका बधक है । अबधक नहीं है । हास्यरति, अरति शाक इन दो युगलोम से अन्तर युगलका बधक है । अबधक नहीं है । देवायुका स्यात् बधक है । स्यात् अबधक है । अधस्तन उपरितन बधनेवाली प्रकृतियोंमें देवायुका भग जानना चाहिए । नाम कर्मकी प्रकृतियोंमे स्वस्थान सन्निकर्षके समान भग है ।

[ विशेषार्थ-देवायुके बधकके तो दृग्गतिके बध-सन्निकर्षका नियम है, किन्तु देवगतिके बधकके साथ देवायुके बधका ऐसा नियम नहीं है । दूसरी बात यह है कि देवायुका बध अप्रमत्त सयत पयन्त है, जसकि देवगतिना अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त बध होता है । इस कारण देवगतिके बधकके देवायुका अबध भी कहा है । ]

देवानुपूर्वीमे देवगतिके समान भग जानना चाहिए ।

§ १८० एनेन्द्रियका बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यारत, १६ कपाय, नपुरुकन्द, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र, ५ अन्तरायका नियमसे बधक है । साता, असाता, ४ नोकपायम तिर्यंचगतिके समान भग है । तिर्यंचायुका स्यात् बधक है । नाम कर्मकी प्रकृतिके बधके विषयमे स्वस्थान सन्निकर्षके समान भग जानना चाहिए । आताप तथा स्वावरके बधकके इसी प्रकार भग है । विकलेन्द्रिय, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणमे—अधस्तन, उपरितन बधनेवाली

सत्थाणभंगो कादञ्चो । पच्चिदियं बंधतो पंचणा० चदुदंसं चदुसज्जं भयदु० पंचंतं  
णियमा बंधगो । पंचदंसं मिच्छत्त-चारसकं चदुआयुं सिया बधगो । सिया अबं ।  
दोवेदं सत्तणोकं दोगोदाण सिया वं, सिया अबधगो । एदेसिं एककदर बंधगो,  
ण चेव अबधगो । णामाण सत्थाणभंगो ।

§१८१. ओरालिय बधतो पचणा० छटसं चारसकं भयदु० पंचंतं णियमा ५  
बधगो । दोरेदणीय-तिण्णि वे० हस्सरदि-दोयुगं दोगोदाण सिया बधगो सिया अबं ।  
एदेसि एककदर वं । ण चेव अबधगो । थीणगिद्वितियां मिच्छं अणताणुं ४ दो  
आयुं मिया वं । णामाण सत्थाणभंगो । वेगुच्चिय बधतो हेट्ठा उवरि देवगादि-  
भंगो । णवरि तिण्णि वेद दोगोद सिया वं, सिया अबं । एदेसिमेककदर बधगो ।

प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके समान भग है । विशेष, नामकर्मकी प्रकृतियोंके विषयमे स्वस्थान  
सन्निकर्षवत् भग जानना चाहिए ।

पचेन्द्रियका बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्यलन, भय, जुगुप्सा,  
५ अतरायका नियमसे बधक है । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कपाय, ४ आयुका स्यात् बधक  
है । स्यात् अबधक है ।

[ विशेष—पचेन्द्रिय जातिका बध आठवें गुणस्थानतक होता है तथा निद्रादि दर्शनावरण  
५ आदिका उसके नीचेतक होता है । इस कारण यहा स्यात् अबधक कहा है । ]

दो वेदनीय, सात नोकपाय, तथा २ गोत्रका स्यात् बधक है, स्यात् अबधक है । इनमे से  
एकतरका बधक है । अबधक नहीं है । नाम कर्मकी प्रकृतियोंके बधके विषयमे स्वस्थान सन्निकर्ष  
के समान जानना चाहिए ।

§१८१ औदारिक शरीरका बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण ( स्त्यानगृद्धिक  
रहित ) १२ कपाय, भय, जुगुप्सा, ५ अतरायका नियमसे बधक है ।

[ विशेष—औदारिक शरीरका बध असयत गुणस्थान पर्यन्त है । इससे ६ दर्शनावरण,  
१२ कपायादिका नियमसे बध कहा गया है । ]

दो वेदनीय, ३ वेद, हास्य रति, अरति शोकरूपी दो युगल, २ गोत्रका स्यात् बधक है, स्यात्  
अबधक है । इनमे एकतरका बधक है, अबधक नहीं है । स्त्यानगृद्धिक, मिथ्यात्व, अनताणु  
बधी ४, दो आयु ( मनुष्य तिर्यचायु ) का स्यात् बधक है । नाम कर्मकी प्रकृतियोंके बधके विषयमे  
स्वस्थान सन्निकर्षवत् भग जानना चाहिए ।

वैक्रियक शरीरका बध करनेवालेके उपरितन तथा अधस्तन बधनेवाली प्रकृतियोंमे द्वैगतिके  
समान भग है । विशेष, ३ वेद, २ गोत्रका स्यात् बधक है, स्यात् अबधक है । इनमे से एकतर  
का बधक है । अबधक नहीं है ।

[ विशेषार्थ—द्वैगतिये पुरुषवेद, स्त्रीवेद, एव उच्यते गोत्रका ही सद्भाव है, किन्तु यहा वैक्रियिक-  
शरीरके बधकोंके वेदत्रय, तथा गोत्रद्वयका वर्णन किया है, कारण वैक्रियिकशरीर के साथ द्वैगतिये  
या नरकगतिका बध होता है । इसी दृष्टिसे नपुंसकवेद, और नीचगोत्रका बध कहा है । ]

ण चैव अबधगो । गिर्य-देवायु मिया बधगो । णाम ( णामाण ) सत्याणभगो । एव  
वेगुच्चिय-अगो० ।

§१८२, आहारसरीरं बधंतो पचणा० छदस० मादावे० चदुसज० पुरिसव०  
हस्सरदिअरदि [ सीग ] भयदु० उचागो० पचत० णियमा बंधगो० । देवायु मिया  
५ बधगो । णामाण सत्याणभगो । एवं आहारसरीर-अगो० । पचिदिय० जादिभगो ।  
तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ थिरादि पचण्ण [ प ] गदीण ।  
हेट्ठा उवरि० । णामाण अप्पण्णो सत्याणभगो । णवरि समचदु० पसत्यवि० थिरादि  
पचण्ण पगदीणं णियायुग णत्थि ।

§१८३, णग्गोध बधतो पचणा० णरदंस० सोलसक० भयदु० पचतरा० णियमा  
१० बधगो । दोवेदणीय० मत्तणोक० दीगोद सिया व० । एदेसिभेक्कदर बधगो, ण चैव  
अव० । मिच्छत्त तिरिक्कमणुमायुग सिया व० । णाम ( माण ) सत्याणभगो ।  
एसभगो सादियसठा० कुञ्जम० वामणस० चदुसपडणण । हुडसठाण बंधतो  
पचणा० णवदम० मिच्छत्त-भोलसक० भयदुगु० पचत० णियमा बधगो । दोवेद०

नरकायु-देवायुका स्यात् बधक है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थानसन्निकर्षवन् भग है ।  
वैकिकिअ अगोपागमे वैकिकिअ शरीरवत् भग जानना चाहिए ।

§१८० आहारक शरीरका बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता वेदनीय, ४ सज्ज  
लन, पुन्पवेद, दास्य, रति, अरति [शोक] भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र, ५ अतरायका नियमसे बधक  
है । देवायुका स्यात् बधक है । नामकर्मकी प्रकृतियोंके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्षमें वर्णित भग है ।  
आहारकशरीर-अगोपागके बध करनेवालेके आहारक शरीरवत् भग है ।

तेजस-आर्माण शरीर, समचतुरस्रस्थान, वर्ण ४, अगुरुल्लु ४, अस ४, थिरादि ५  
प्रकृतियों के बधकों का अपरितन अधस्तन प्रकृतियों के विषय में पचेन्द्रिय जाति के ममान भग  
है । नामकर्मकी प्रकृतियों का स्वस्थान सन्निकर्षवत् भग जानना चाहिए । विशेष, समचतुरस्र  
सस्थान, प्रशस्तविद्ययोगति, थिरादि ५ प्रकृतियों के बधकोंने नरकायुका बध नहीं है ।

§१८३ यमोधपरिमडलसस्थानना बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कपाय,  
भय, जुगुप्सा, ५ अतरायोंका नियमसे बधक है । २ वेदनीय, ७ नोकपाय, दो गोनका स्यात्  
बधक है । इनमेंसे अयतरका बधक है । अबधक नहीं है । मिध्यात्व, तिर्यचायु, मनुष्यायुका  
स्यात् बधक है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भग है ।

रसतिसस्थान, कुञ्जक सस्थान, बद्धुपभनाराच तथा असप्राप्तात्पाटिका सहजनको छोड़कर  
शेष ४ सहजा के बधकके इसी प्रकार भग जानना चाहिए ।

[ विशेष-सस्थान ४ और सहजन ४ सासादन गुणस्थान पर्यन्त बधते हैं । अत इनका समान  
रूप से घणन किया है । ]

हुडक सस्थानका बध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिध्यात्व, १६ कपाय,  
भय, जुगुप्सा तथा ५ अतरायना नियमसे बधक है । दो वेदनीय, ७ नोकपाय, दो गोनका स्यात्

सत्तणोक० दोगोद० मिया वं० । सिया अर० । एदेसिमेक्कदर वधगो ण चेव  
अवधगो । तिण्णि आयु सिया वधगो । णामाणं सत्थाणभगो । एव द्भग० अणादे० ।  
ओराल्लि० अगो० वज्जरिसह० ओराल्लियसरीरभगो । णामाण सत्थाणभगो ।

§१८८. उज्जोवं वधतो हेट्ठा उवरि तिरिक्खगदिभगो । णामाण सत्थाणभगो ।  
अप्पसत्थविहायगदि वधतो हेट्ठा उवरि णग्गोधभगो । णवरि णिरयायु० सिया व० । ५  
णामाण सत्थाणभगो । एव दुस्तर । जसगित्ति वंधतो पचना० चदुदंस० पचत० णियमा  
बंधगो । पचदसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भय दुगुच्छा तिण्णिआयु० सिया व० ।  
सिया अव० । साद सिया वं०, सिया अर० । असादं सिया व० [ सिया अव० ]  
दोण्ण एककदर वंधगो । ण चेव अवधगो । एव दोगोद० । तिण्णि वेदाण सिया

वधक है, स्यात् अवधक है । इनमेसे एकतरका वधक है । अवधक नहीं है । नरक-मनुष्य  
तिर्यचायुका स्यात् वधक है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षके समान भग है ।

दुर्भग, अनादेयके वध करनेवालोंके हुडक सस्थानवत् भग जानना चाहिए । औदारिक  
अगोपाग, वसवृषभनाराच सहननके वध करनेवालेके औदारिक शरीरके समान भग है ।  
नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भग जानना चाहिए ।

§१८९ उद्योतका वध करनेवालेके—उपरितन अधस्तन प्रकृतियोंका तिर्यचगतिके समान भग  
है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भग जानना चाहिए । अप्रशस्त विहायोगतिके  
वध करनेवालेके उपरितन अधस्तन वधनेवाली प्रकृतियोंका न्यमोधपरिमडलसस्थानके समान भग  
जानना चाहिए । विशेष, नरकायुका स्यात् वधक है । नामकर्मकी प्रकृतियोंके स्वस्थान सन्निक  
र्षवत् भग जानना चाहिए ।

[ विशेषार्थ—अप्रशस्तविहायोगति तथा न्यमोधपरिमडलसस्थानका वध सासादन गुणस्थान  
पर्यन्त होता है । इस कारण न्यमोधसस्थानके समान अप्रशस्तविहायोगतिका वर्णन बताया  
है । इतना विशेष है कि नारकियोंके न्यमोधसस्थान नहीं है, किन्तु वहाँ दुर्गमनका सद्भाव  
पाया जाता है । इस कारण दुर्गमनके वधकके नरकायुका वध कहा है । ]

दुस्तर प्रकृतिका वध करनेवालेके इसी प्रकार भग है । यश कीतिका वध करनेवाला  
५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अतरायका नियम से वधक है ।

[ विशेषार्थ—यद्यपि कपयोंका उदय सूक्ष्मसापरायगुणस्थान पर्यन्त होता है, किन्तु उनका  
वध अनिवृत्तिकरण पर्यन्त होता है । अतः सूक्ष्मसापराय पर्यन्त वधनेवाले यश कीर्तिके वधकके  
कपायोंके वधका नियम नहीं है । इससे यहाँ ज्ञानावरणादिके साथ कपायोंका वर्णन नहीं हुआ है । ]

दर्शनावरण ५ (निद्रापचक), मिश्र्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, नरकको छोड़ तीन आयुका  
स्यात् वधक है । स्यात् अवधक है । साताका स्यात् वधक है । स्यात् अवधक है । असाताका  
स्यात् वधक है [ स्यात् अवधक है ] दोमेसे अन्यतरका वधक है । अवधक नहीं है । दो  
गोत्रसा वेदनीयके समान भग है । तीन वेदका स्यात् वधक है । इनमे से अन्यतमका वधक है ।



वधगो । तिष्णि वेदाण एककदर वधगो । अथवा अग्रधगो । एव चदुणोक० । णामाण  
 सत्थाणभगो । तित्थयर वधतो पचना० चदुदस० चदुसज० पुरिस० भयदु० उच्चागो०  
 पचत० णियमा वधगो । णिहा-पचला-अट्ठकमा० दो आयु सिया व० सिया अब० ।  
 साद सिया २०, असाद सिया वधगो । दोण्ण एककदर वधगो । ण चेन अग्रधगो ।  
 ५ एव चदुणोक० । णामाण सत्थाणभगो ।

११२५. उच्चागोद वधतो पचना० चदुदस० पचत० णियमा वधगो । पचदस०  
 मिच्छ० सोलसक० भयदुगु० दोआयु० पचिदि० तिष्णिशरीर-आहार० अगो० वण्ण०  
 ४ [ अगु० ४ ] तस० ४ णिमिण तित्थयर सिया व० सिया अग्रधगो । दो वेदणी०  
 जस० अजस० सिया वधगो । एदेमि एककदर वधगो । ण चेन अग्रधगो । तिष्णि वेद  
 १० सिया व० सिया अग्र० । तिष्ण वेदाण एककदर वधगो । अथवा अग्रधगो । एस भगो  
 चदुणोक० दोगदि० दोसगीर छसठा० दो अगो० छसघ० दो आणु० दो विहा०  
 धिरादिपचयुगलाण । णीचामोद वधतो धीणगिद्विभगो । देवायु-देवगदिदुग  
 उच्चागोद वज्ज ।

अथवा तीनोंका भी अबधक है । हास्य, रति, अरति, शोकका भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।  
 नाम कर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भग है ।

तीर्थकरका वध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सञ्ज्वलन, पुरुषवेद, भय,  
 जुगुप्सा, उच्चगोत्र, ५ अतरायोंका नियमसे वधक है । निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानवरण तथा  
 प्रत्याख्यानवरण रूप कपायाष्टन, देव-मनुष्यायुका स्यात् वधक है । स्यात् अबधक है । सातावेदनीय  
 का स्यात् वधक है । असाताका स्यात् वधक है । दोमे से अन्यतरका वधक है अबधक नहीं है ।  
 हास्यादि ४ नोनपायोंका वेदनीयके समान भग है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत्  
 भग है ।

§१८५ उच्च गोत्रका वध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अतरायका नियमसे वधक  
 है । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, दो आयु ( मनुष्य देवायु ) पचेन्द्रिय  
 जाति, तीन शरीर (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर) आहारक अगोपाग, वर्ण ४, [अगुरुलुधु ४]  
 अस ४ निर्माण, तीर्थकरका स्यात् वधक, स्यात् अबधक है । वो वेदनीय, यश कीर्ति, अयश कीर्ति  
 का स्यात् वधक है । इनमेसे अन्यतरका वधक है, अबधक नहीं है । तीन वेदका स्यात् वधक है ।  
 स्यात् अबधक है । तीन वेदोंमसे अन्यतमका वधक है अथवा तीनोंका अबधक है । हास्यादि  
 ४ नोनपाय, २ गति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग, ६ सहनन, २ ध्यातुपूर्वी २ विहायोगति,  
 स्थिरादि पाच युगलोंका इसी प्रकार भग है ।

भीचगोत्रका उध करनेवालेके स्थानपृथिवत् भग है । विशेष, यहा देवायु, देवगतिविक  
 तथा उच्चगोत्रको छोड़ दना चाहिए ।

§१८६. एव ओषभगो मणुस० ३ पंचिदिय० तस० २ पंचमण० पचवचि० कायजोगि-ओरालियका० लोभ० चक्सु० अचक्सु० सुक्क० भनसि० सणिण-आहा रात्ति । ओरालियमिस्स० सादं बंधंतो पचणा० णवदस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० दो आयु० देगदि-चदुसरीर-दो अंगो० वण्ण० ४ देवाणु० अगुरु० ४ आदा-उज्जो० णिमिण तित्थय० पचत० सिया बं०, सिया अरं० । सेसाणं वेदादीणं सच्चारणं मिया ५ पं० । एदाणमेक्कदर वधगो । अथवा अवधगो । एव कम्मइय-अणाहारगेसु । णवरि आयुवज्ज । इत्थिवेदभगो आभिणिबोधिणाणा० वधतो चदुणा० चदुदंस० चदुसज० पचत० णियमा वधगो । सेसाण ओषभगो । एव पुरिस० णवुस० कोध-माण-मायाकसायाण । णवरि माणे तिण्णि सजलण । मायाए दो सजलणं । सेसाण ओषो । अवगदवेदे ओषं ।

१०

§१८६ आदेशसे-मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यनी, पचेन्द्रियपर्याप्तक, व्रस, व्रसपर्याप्तक, ५ मनोयोग, ५ वचनयोग, काययोग, औदारिककाययोग, लोभकपाय, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, शुक्लेरया, भव्यसिद्धिक, सक्षी, आहारकपर्यन्त औषधत् जानना चाहिए । औदारिकमिश्रकाय-योगमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, साताका वध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शना-वरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्य तिर्यंचायु, देवगति, औदारिकवैक्रियिक, तैजस-कार्माण शरीर, २ अगोपाग, धर्मा ४, देवानुपूर्वी अगुरुल्लु ४, आताप, उद्योत, निर्माणा, तीर्थकर तथा ५ अतरायका स्यात् वधक है । स्यात् अवधक है ।

[ विशेष-साताका सयोगीजिन पर्यन्त वध है । ज्ञानावरणादिका सूक्ष्ममाप-क वध है । इस कारण साताके वधके ज्ञानावरणादिके वधका विकल्प रूपसे वर्णन किया गया है । ]

वेदादि गेप सर्वं प्रकृतियोंका स्यात् वधक है । इनमेसे एकतरका वधक है । अन्यतरका अवधक है ।

कार्माण काययोग तथा अनाहारकोंमें औदारिकमिश्रकाययोगके समान ज्ञानावरण, विशेष, यहा आयुओंको छोड़ देना चाहिए । स्त्री वेदमें इसी प्रकार जानना चाहिए । आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका वध करनेवाला—४ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण ९ अतराय तथा ५ अतराय का नियमसे वधक है । गेप प्रकृतियोंका औषधके समान भगवान् वधक है ।

पुरुषवेद, नपुसकवेद, क्रोध, मान, माया कपायोंमें इसी प्रकार भगवान् वधक है । मानमें, तीन सज्वलन और मायामे दो सज्वलन हैं । शेषका औषधत् भाग अवधक है ।

अपगत वेदमें-औषधके समान भगवान् जानना चाहिए ।

( १ ) "ओराले वा मिस्से ण हि भुरणिरयायुहारणिरवदुग ॥" -ओ० ४. १५. १५.

( २ ) 'कम्मे उरालमिस्स वा णाउदुगपि णर छिद्री अवदे !' -ओ० ४. १५. १५.

§१८७ आभिणि० सुद० ओधिणा० मणपज्ज० संजद० समाइ० छेदो० परिहार०  
 सुहुमसप० सजदासजद० ओधिद० सम्मादि० खहग० वेदग० उवसम० ओषमंगो ।  
 णवरि मिच्छत्त-अस नदपगदीओ वज्ज । ओरालिय० ओरालियमिस्त० इत्यिरेद किण्ण  
 णीलामु तित्थयर देवगदिसयुत फादञ्च । पम्मसुक्क-त्तेस्साए इत्यिवेद बंधतो ओरालिय  
 ५ सरीरं धुव बधदि । सेसं णिरयाट्ठि यार असण्णित्ति ओघेण अप्पप्यणो सामित्तेण च  
 साधूण भाणिदञ्च ।

एव परत्याणमण्णियासो समत्तो ।

§१८७ आभिनिनोधिक, श्रुत, अवधि, मन पर्ययज्ञान, सयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार  
 रविशुद्धि, सूक्ष्मसापत्तय, सयतासयत, अरधिदर्शन, सम्यक्त्वी, क्षायिक सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व,  
 उपशम सम्यक्त्व मे ओघयत् भग जानना चाहिए । विशेष, यद्वा मिध्यात्व तथा असयत सम्बन्धी  
 प्रकृतियोंको छोड़ देना चाहिए । औदारिक, औदारिकमिश्र, स्त्रीवेद, कृष्ण और नील लेरयाजोंम—  
 तीर्थंकर तथा देवगतिको सयुक्त करना चाहिए ।

[ विशेष—कृष्ण नील लेरयामें तीर्थंकर तथा देवगतिका वध पाया जाता है । इनमें केवल  
 सयतासयामे वधनेवाले आहारकृत्रिक का वध नहीं होता है । ]

पद्म, शुद्ध लेरयाम—स्त्रीवेदका वध करनेवाला औदारिक शरीरका नियमसे वध करता  
 है । नरक गतिसे लेकर असती पर्यन्त ओघसे अपने २ स्वामित्वको जानकर शेष प्रकृतियोंका वध  
 करना चाहिए ।

इस प्रकार परस्थानमन्त्रिर्ष समाप्त हुआ ।

## [ भगविचयाणुगम-परूवणा ]

५१८८. णाणाजीवेहि भगविचयाणुगमो दुग्धिो णिदेसो ओघेण आदेसेण य ।

५१८९. तत्थ ओघेण-पचणा० णवदसणा० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाकम्म०  
 माहारदुग वण्ण० ४ अगुरु० ४ आदाउज्जो० णिमिणं तित्थयरं पचत० अत्थि वधगा  
 वधगा च । साद अत्थि वधगा य अवधगा य । असाद अत्थि वधगा य अवधगा य ।  
 दोण्ण पगदीण अत्थि वधगा य अवधगा य । एव वेदणीयभगो सत्तणोक० चदुग० पच- ५  
 जादि-दोसरर-छसठाणं दोअगो० छसव० चदुआणु० दोविहाय० तसादिदसयुगलं  
 दोगोदाण । दो अगो० छसव० दोविहा० दोसर० अत्थि वधगा य अवधगा य ।  
 अथवा दोण्ण छण्ण दोण्ण दोण्ण पि अत्थि वधगा य अवधगा य । णिरय-मणुस-देवायूण  
 सिया सच्चे अवधगा, मिया अवधगा य वधगे (गो) य, सिया अवधगा य वधगा य ।  
 तिरिम्मायु अत्थि वधगा य अवधगा य । चदुण्ण आयुगाण अत्थि वधगा य अवधगा य । १०  
 एव ओघभगो कायजोगि-ओरालियकायजोगि-भगसिद्धि० आहारगत्ति० । णवरि भग-  
 सिद्धिय-साद अत्थि वधगा य अवधगा य । असाद अत्थि वधगा य अवधगा य । दोण्ण

## [ भगविचयानुगम ]

५१८८ नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगमका ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारका निर्देश है ।

५१८९ ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कामाण, आहारकद्विक, घर्ण ४, अगुरुतद्यु ४, आताप, लघोत, निर्माण, तीर्थकर और ५ अन्तरायके अनेक वधक और अनेक अवधक हैं ।

साताके अनेक वधक और अनेक अवधक हैं । असाता के अनेक वधक और अवधक हैं । दोनों प्रकृतियोंके अनेक वधक और अनेक अवधक हैं । ७ नोकपाय ( भय जुगुप्साको छोडकर ), ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, २ अगोपाग, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि १० युगल, २ गोत्र मे वेदनीयके समान भग है । २ अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके नाना जीवोंकी अपेक्षा अनेक वधक और अनेक अवधक हैं । अथवा २, ६, २, २ के अनेक वधक हैं अनेक अवधक हैं । नरक, मनुष्य, देवायुके किसी अपेक्षा सत्र अवधक हैं, स्यात् अनेक अवधक, एक वधक है । स्यात् अनेक अवधक तथा अनेक वधक है । तिर्यचायुके अनेक वधक और अनेक अवधक हैं । चारों आयुके अनेक वधक और अनेक अवधक हैं । काययोगी, औदारिक काययोगी, भव्यसिद्धिक, आहारकमार्गणा पर्यंत इसी प्रकार ओघके समान भग समझना चाहिए । विशेष, भव्यसिद्धिक मे—साताके अनेक वधक और अनेक अवधक हैं ।

वेदणीयाणं सिया सव्वे वधगा य । सिया वधगा य । अयधगा य । सिया वधगा अय  
गा य । सेसाण साद अत्थि वधगा य अयधगा य । असाद अत्थि वधगा य अयधगा य ।  
दोण्ण वेदणीयाण सव्वे वधगा । अयधगा णत्थि ।

११९०. आदेमण षेरहएमु—पचना० छदसणा० वारसफ० मयदुगु० पचिदि०  
५ ओरालिय० तेनाक० ओरालि० अगो० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि० पचत०  
सव्वे वधगा य । अयधगा णत्थि । थोणागिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणु० ४ उज्जेव  
निन्थयरं अत्थि वधगा य अयधगा य । सादस्स अत्थि वधगा य अयधगा य । असादस्स  
अत्थि वधगा य अयधगा य । दोण्ण वेदणीयाण सव्वे वधगा । अयधगा णत्थि । एव  
वेदणीयमगो सत्तणोक० दोगदि-छसठा० छसघ० दोआणु० दोविहा० विरादि-  
१० युग० दोगोदाण । दो-आयुगाण सिया सव्वे अयधगा । सिया अयधगा य वधगो य ।  
सिया अयधगा य वधगा य । एव सव्व णिरयाण सणक्कुमारादि उवरिमदेवाण ।

११९१ तिरिक्खेसु णिरयमगो । णवरि चदुआयु-दोअगो० छमघ० दोविहा०  
दोसर० आघ । पचिदिय तिरिक्खु० ३ [ एव ] । णवरि चदुण्ह आउगाण सिया

असाता के अनेक वधक और अनेक अयधक हैं । दोनो वेदनीयोंके वधाचित् सय वधक है ।  
वधाचित् अनेक वधक है । स्यात् अनेक अयधक है । स्यात् अनेक वधक और अनेक अयधक है ।  
जेष मे साताके अनेक वधक और अनेक अयधक है । असाताके अनेक वधक और अनेक अयधक  
है । दोनों वेदनीयोंके सय वधक है । अयधक नहीं है ।

११९० आदेशकी अपेक्षा—नरक गतिमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १० कपाय, भग,  
जुगुप्सा, पचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-वामाण शरीर, औदारिक अगोपाग, वर्ण ४, अगुरुलपु ४,  
जस ४, निर्माण और ५ अतरायसे सय वधक है । अयधक नहीं है । स्यान्गृद्धिप्रिय, मिध्यात्व,  
४ अननानुवधी, उद्योत और तीर्थ-नरके अनेक वधक और अनेक अयधक है । साताके अनेक  
वधक और अनेक अयधक है । असाताके अनेक वधक और अनेक अयधक है । दोनों वेदनीयोंके  
सय वधक है । अयधक नहीं है ।

[ विशेष—नरकगतिमें ४ गुणस्यान होनेसे दोनों वेदनीयके अयधक नहीं पाये जाते हैं । ]

७ नोकपाय, ७ गति, ६ सस्थान, ६ सहनन २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ सुगल  
२ शोरो में वेदनीयका भग जानना चाहिए । २ आयु ( मनुष्य तिर्यचायु ) के स्यात् ( वधाचित् )  
सय अयधक है । वधाचित् अनेक अयधक और एव जीवकी अपेक्षा वधक है । स्यात् अनेक  
अयधक और अनेक वधक है । इसावरह सम्पूर्ण नरकोंमें जानना चाहिए । सनक्कुमारादि ऊपरके  
द्वयमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

११९१ तिर्यचोमे—नरकके भग समान समझना चाहिए । विशेष ४ आयु, ७ अगोपाग,  
६ सहनन, ७ विहायोगति, २ स्वरका ओषके समान समझना चाहिए ।

पचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यच और योनिमत् तिर्यचमे भी [ इसी प्रकार समझना  
चाहिए ] विशेषता यह है कि ५ आयुके स्यात् सय अयधक है । स्यात् अनेक अयधक है एक जीव

सन्वे अवधगा । सिया अवधगा य, बधगो य । सिया अवधगा य ।

११९२. पचिदिय-तिरिक्त्-अपज्जत्तेसु-पचना० णत्तंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० ओरालियतेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचत्त० सन्वे बंधगा, अवधगा णत्थि । ओरालिय-अगो० परघादुस्सा० आदाउज्जो० अत्थि बधगा य, अंधगा य । छसघ० दोविहा० दोसर० ओघमगो । सेसं णिरयभगो ।

११९३ एव सन्व-अपज्जत्ताण, सन्व-एडादय-विगलिय पचकायाण च । णवरि एडदिय-पचकायाण आयूण दूण ( ? ) भाणिदव्व ।

११९४. मणुस० ३ ओघ । णवरि सादं अत्थि बधगा य अवधगा य । असादं अत्थि बधगा य अवधगा य । दोणं वेदणीयाण सिया सन्वे बधगा । मिया बंधगा य, अंधगो य । सिया बधगो य अवधगा य । चदुण्ण आयुगारं मिया मन्वे अवंधगा । १० सिया अवधगा य, बधगो य । सिया अरधगा य बधगा य । एव पचिदि० तस० २-तिण्णिमण० तिण्णिचि० संजद-सुक्कलेस्सियाणं । णवरि योगलेस्सामु दोन्वं वेदणी-

वधक है । स्यात् अनेक वधक है ।

११९२ पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकं—५ ज्ञानवार ११९२२. मिच्छ १३ कत्तु भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस कार्माणारीर, वर्ण ४, कत्तु अत्रापके सन वधक है । अवधक नहीं है । औदारिक अनेक उद्योतके अनेक वधक है और अनेक अरधक है । के समान भग समझना चाहिए । शेषका नरकत्तु मान

११९३ इस तरह सम्पूर्ण लब्धपर्याप्तिक, मणुस ३ ओघ, अत्रापके सन वधक है, अर्थान् इनमे मनुष्य और तिर्यच आयुग हो वधक है, अत्रापके सन वधक है, अर्थान् इनमे मनुष्य और तिर्यच आयुग हो वधक है ।

११९४ मनुष्यत्रिक अर्थात् सामान्यमनुष्य, विशेष यह हैं । दोनों वेदनीयोंके स्यात् सर्व वधक हैं । जीव वधक और अनेक जीव अरधक हैं । अवधक है तथा एक जीव वधक है ।

[ विशेष ]—शका-भगविचयमे भग कैसे वन सकते हैं ? १ । स्त्यानगृद्धित्रिक

समाधान—एक जीवके निना जीवोंकी प्रधानता रहनेपर भी एक ही वधक है । स्यात् अनेक वधक है । इसी तरह पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय वधक है, अत्रापके सन वधक है ।

( १ ) "णाणाजीवप्पयाण वधक है, अत्रापके सन वधक है । तीनों वेदोंके स्यात् सर्व वधक हैं और अनेक

याण सव्ये वधगा । अवधगा णत्थि ।

- §१९५. मणुस-अपज्जत्ते-पचणा० णवदस० मिच्छ० सोलमच० भयदु०  
 आरोलियत्तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप णिमि० पचत० सिया वधगो य, सिया  
 वधगा य । अवधगा णत्थि । साद सिया अवधगो । सिया वधगो । सिया अवधगा ।  
 ५ सिया वधगा । सिया अवधगो य, वधगो य । सिया अवधगो य वधगा य । सिया  
 अवधगा य, वधगो य । सिया अवधगा य वधगा य । असाद सिया वधगो । सिया  
 अवधगो । सिया वधगा । मिया अवधगा । सिया वधगो य अवधगो य । सिया  
 वधगो य अवधगा य । सिया वधगा य, अवधगो य । सिया वधगो य अवधगा य ।  
 १० इत्थि० पुरिस० हस्मरदि-दोआयु० मणुसगदि-चदुजादि-पचसठा० आगोलिय-अगो०  
 छसघ० मणुमाणु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० तस० ४ थिराटिछक-दुस्सा  
 उचागोदाणि ( ण ) । असादभगो णवुसकवे० अरदिसोग-तिरिक्खगदि० एइदिय० इइ  
 सठाण-तिरिक्खाणुपु० धानरादि० ४ अधिरादिपच-णीचागोदाण । तिण्णिवेद-इस्मादि  
 दोयुग० दोगदि० पचनादि-छसठा० दोआयुणुव्वि-तसथावरादिणयुगलाण दोगोदाण  
 सिया वधगो । सिया वधगा । अवधगा णत्थि । दोआयु-छस्सघ० दोविहा० दोसत्त०

और शुद्ध देखारालों के भी जानना चाहिए । विशेषता यह है कि योग और लेश्यामें—दोनों  
 वेदनीयके सर्व वधक है, अवधक नहीं है ।

§१९५ मनुष्यलभ्यपर्याप्तकौमि—५ क्षान्तावरण, ९ वर्शनावरण, मिध्यात्व, १६ वपाय, भय,  
 जुगुप्सा, भ्रौदारक, तैजस, कार्माणशरीर, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, और ५ अन्तराय  
 वा स्यात् एक वधक है स्यात् अनेक वधक हैं । अवधक नहीं हैं । साताका स्यात् एक अवधक  
 है । रगात् एक जीव वधक है । स्यात् अनेक अवधक हैं । स्यात् अनेक वधक हैं । स्यात् एक  
 अवधक, एक वधक है । स्यात् एक अवधक, अनेक वधक हैं । स्यात् अनेक अवधक, एक वधक  
 है । स्यात् अनेक अवधक अनेक वधक है । असाताके—स्यात् एक वधक है । स्यात् एक अवधक  
 है । स्यात् अनेक वधक हैं । स्यात् अनेक अवधक है । स्यात् एक वधक, तथा एक अवधक है ।  
 स्यात् एक वधक, अनेक अवधक है । स्यात् अनेक वधक, एक अवधक है । स्यात् एक वधक  
 अनेक अवधक हैं । दोनों वेदनीयों वा स्यात् एक वधक है । स्यात् अनेक वधक हैं । अवधक नहीं  
 है । स्त्रीवेद, पुंस्ववेद, हास्य, रति, दो आयु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अगोपाग,  
 ६ सहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, परभात, उच्छ्वास, आताप, उद्योग, २ विद्यायोगति, ४ व्रस, स्विपरदि  
 पट्टक, दुस्वर, उन्नगोत्र वा साता के समान भग जानना चाहिए । नपुंसकवेद अरति, शोक, तिर्यच  
 गति, एकेंद्रिय, दृढर सस्थान, तिर्यचानुपूर्वी, ४ स्याररादि, अस्विरादि पचक, नीच गोत्र वा  
 असाता के समान भग है । ३ वेद, हास्यादि दो युगल, २ गति, ५ जाति, ६ संस्थान, २ आनुपूर्वी,  
 व्रस-अध्यायदि १पयुगल और ० गोत्रके स्यात् एक वधक है । स्यात् अनेक वधक हैं । अवधक  
 नहीं है । ० आयु, ६ सहनन, ० विद्यायोगति और ० स्वरके प्रत्येक और साधारणसे साताके

सादभगो कादब्बो पत्तगेण साधारणेण वि । एवं मणुस-अप्पज्जत्तभगो वेउब्बियमिस्स०  
 आहारकाय० आहारमिस्स० सासण० सम्मामि० । णवरि अप्पणो धुविगाओ णादब्बाओ  
 भवति । वेउब्बियमिस्स मिच्छत्त असादभगो । तित्थयर सादभगो । आहार०  
 आहारमिस्स तित्थयर सादभगो । सासणे तिरिक्खगदि-सयुता असादभंगो । सेसाणं  
 सादभंगो । सम्मामि० मणुसगदि-सयुता असादभगो । सेसाण सादभगो । ५

§१९६. देवेसु-भरणावासिय चाव ईसाणत्ति णिरयभंगो । णवरि ओरालि०  
 अंगो० आदा-उज्जोत्र अत्थि वंधगा य अचधगा य । छसघड० दो विहाय० दोसर०  
 ओघ-भगो । दोमण० दोवचि० पंचणा० छदस० चदुसंज० भयदु० तेजाफि० वण्ण०  
 ४ अगु० उप० णिमि० पचत० सिया सव्वे वधगा । सिया वंधगा य अबंधगो ।  
 सिया वधगा य, अत्रधगा य । यीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त० चारसक० आहारदु० परघादुस्सा- १०  
 सआदाउज्जोत्र-तित्थयर अत्थि वधगा अवधगा य । साद अत्थि वधगा य अचधगा य ।  
 अमाद अत्थि वधगा य अत्रधगा य । दोण्ण वेदणीयाण सव्वे वधगा । अत्रधगा  
 णत्थि । इत्थि० पुरिस० णवुसं० अत्थि वधगा य अवधगा य । तिण्ण वेदाण सिया  
 सव्वे वधगा । सिया वधगा य अत्रधगो य । सिया वधगा य अवधगा य । एवं  
 समान भग करन्ता चाहिये ।

वैक्रियिकमिश्र, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग, सासादनसम्यक्त्व, तथा सम्यक्त्व-  
 मिध्यात्वगुणस्थानमे लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्य की तरह भग है । विशेष यह अपनी अपनी मार्गशा  
 में समभनीय ध्रुव प्रकृतियोंको जानना चाहिये । वैक्रियिक मिश्रमे—मिध्यात्वका असाताके  
 समान भग होता है । तीर्थकरका साताके समान भग होता है । आहारक, आहारकमिश्र  
 मे—तीर्थकरका साताके समान भग है । सासादनमे—तिर्थचगति मिलाकर असाताके समान  
 भग है । जेपमे साताके समान भग है । सम्यक्त्वमिध्यात्वमें—मनुष्यगति मिलाकर असाता  
 के समान भग जानना चाहिये । जेपमे साताके समान भग है ।

§१९६ देवोमे—भवनवासियोंसे ईशान स्वर्ग पर्यन्त नरकगतिके समान भग है । विशेष यह  
 है कि औदारिक भ्रगोपाग, आतप, उद्योतके अनेक वधक अनेक अवधक हैं । छह सहनन, २  
 विहायोगति, २ स्वरके शोधके समान भग हैं ।

दो मन-दो वचनयोग में—५ धानावरण, ६ दर्शानवरण, ४ सज्यलन, भय, जुगुप्सा, तैजस,  
 बार्माण, ४ वर्ण, अगुरुल्लु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तराय के स्यात् सव वधक हैं । स्यात्  
 अनेक वधक, एक अवधक है । स्यात् अनेक वधक हैं, अनेक अवधक हैं । स्त्यानगृद्धिद्विक  
 मिध्यात्व, १० कपाय, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आनप, उद्योत, तथा तीर्थकर  
 प्रकृतिके अनेक वधक और अनेक अवधक हैं । साताके अनेक वधक, अनेक अवधक हैं ।  
 असाताके अनेक वधक अनेक अवधक हैं । दोनों वेदनीय के सर्व वधक हैं, अवधक नहीं हैं ।  
 स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेदके अनेक वधक, अनेक अवधक हैं । तीनों वेदोंके स्यात् सर्व  
 वधक हैं । स्यात् अनेक वधक हैं और एक अवधक हैं । स्यात् अनेक वधक हैं और अनेक



तिष्णि-वेदाण भगो णिरघगदि-तिरिक्त्सगदि-मणुसगदि-देवगदि-पचजादि-दोसरा-स्रसः  
चद्-आणुपु० तस-थावरादि-णवयुगलं दोगोदाण । सेसाण अत्थि वधगा य अवधगा य ।  
एव आभिणि० सुद० ओधि० मणपज्जव० चक्खुद० अचक्खुद० ओधिद० सत्थि वि ।

- §१९७. ओरालियमिस्स-पधणा० णरदसणा० मिच्छ० सोलसक० भपदु०  
५ तिष्णिमरीर-वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पंचत० सिया सव्वे वधगा । सिया  
वधगा य अवधगो य । सिया वधगा य अवधगा य । साद अत्थि वधगा य वधगा  
य । असाद अत्थि वधगा य अवधगा य । दोण्ण वेदणीयाण सव्वे वधगा । अवधगा  
णत्थि । इत्थि० पुरिस० णवुस० अत्थि वधगा य अवधगा य । तिष्णि-वेदाण सिया  
सव्वे वधगा । सिया वधगा य अवधगो य । सिया वधगा य अवधगा य । एवं वेदाण  
१० भगो [हस्तादि] दोयुगल-तिष्णिगदि-पचजादि ६ सठा० । दोआयु ओघ । देवगदि० ४  
तित्थय० सिया सव्वे अवधगा । सिया अवधगा य वधगो य । सिया अवधगा य  
वधगा य । छसघ० दोविहा० दोसर० ओघमंगो । एण कम्महो । णवरि आयुसं  
णत्थि । इत्थि० पुरिम० णवुस० फोधादि० ४ सामाइ० छेदो० धुवपगदीओ मोचूण  
सेसाण दोण्ण मणभगो ।

अवधक हैं । नरकगति, तिर्यंघगति, मनुष्यगति, देवगति, ५ जाति, २ शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, तस स्थावरादि ९ युगल, २ गोत्रों के तीनों वेदोंके समान भग हैं । शेष प्रकृतियोंके अनेक वधक, अनेक अवधक हैं ।

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, और अवधिदर्शन, तथा सच्ची मागणा तक इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§१९७ औदारिक मिश्रकाययोगमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, ३ शरीर, ४ वर्य, अगुरुलाघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायके स्यात् सध वधक हैं । स्यात् अनेक वधक और एक अवधक हैं । स्यात् अनेक वधक और अनेक अवधक हैं । साताने अनेक वधक और अनेक अवधक हैं । असाताने अनेक वधक और अनेक अवधक हैं । दोनों वेदनीयके सध वधक हैं । अवधक नहीं है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके अनेक वधक और अनेक अवधक हैं । तीनों वेदोंके स्यात् सध वधक हैं । स्यात् अनेक वधक और एक अवधक है । स्यात् अनेक वधक हैं और अनेक अवधक है । हान्य-रति, अरति-शोक ये दो युगल, ३ गति, ५ जाति, ६ मन्थानमे वेदके समान भग है । दो आयु ( मनुष्य तिर्यंचायु ) का ओघके समान भग है । देवगतिचतुष्क और तीर्थंकरके स्यात् सर्व अवधक हैं । स्यात् अनेक अवधक तथा एक वधक है । स्यात् अनेक अवधक है और अनेक वधक है । ६ सहनन, २ विहायोगति, ० स्वर्गमे ओघवत् भग जानना चाहिए । इसी प्रकार कर्मणकाययोग म जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहा आयुका वध नहीं है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, क्रोधादि ४, सामायिक, छेदोपस्थापनासयममं ध्रुव-प्रकृतियोंको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका दो मनोयोगने समान भग जानना चाहिए ।

११९८. अवगदवेदे—पंचणा० चतुदंस० चतुसज० जसगिति उच्चागो० पंचंत० सिया सव्वे अवधगा । सिया अवधगा य वधगो य । सिया अवधगा य वधगो य । (?) साद अत्थि वधगा य अवधगा य । अकसा०—सादं अत्थि वंधगा अवधगा य । एव केवलणा० केवलदस० ।

११९९. मदि-सुद० विभग० असंज० ऋण्ण-णील-काजोत-अब्भव० मिच्छादि० ५ असण्णित्ति तिरिक्खभगो । णवरि किंचि विसेसो जाणिदव्वाओ । परिहार-सजदासज-देसु अप्पणो पगदीओ णिरयभगो ।

१२००. सुहुमस० पचना० चतुदस० साद० जस० उच्चागो० पंचंत० सिया वंधगो । सिया वधगा य । अवंधगा णत्थि । यथाक्खादे—सादं सिया सव्वे वधगा । सिया वंधगा अवधगो य । सिया वधगा य अवंधगा य । तेऊ० सोधम्मभगो । १० पम्म० सणक्कुमारभगो । णवरि किंचि विसेसो णादव्वो । सम्मादि० रइग्ग० अप्पणो पगदीओ ओघेण साधदेव्वाओ ।

१२०१. वेदगस० परिहारभगो । णवरि असंजद-सजदासजद-पगदीओ णादव्वो ।

१२०२. उवसक्खस-पचना० छदंसणा० चारसक० पुरिस० भयदु० पचिदि०

११९८ अपगतवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्जलन, यश कीर्ति, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायोंके स्यात् सर्व अवधक हैं । स्यात् अनेक अवधक और एकजीव वधक है । स्यात् अनेक अवधक है, और एकजीव वधक है (?) साताके नाना जीव वधक हैं और अनेक अवधक है । अकपायियोंमें—साताके अनेक वधक और अनेक अवधक है । केवलज्ञान और केवलदर्शनमें—इसी प्रकार जानना चाहिए ।

११९९ मत्तज्ञान, श्रुताज्ञान, विभगावधि, असयत, कृष्ण, नील, कापोतलेश्या, अभव्यसिद्धिक मिथ्यादृष्टि तथा असङ्गी जीवाम तिर्यचोंके समान भग जानना चाहिए । और इनकी जो कुछ विशेषता है वह भी जाननी चाहिए । परिहारविशुद्धिसयम और सयतासयतोंमें—अपनी अपनी प्रकृतियोंका नरकयत् भग जानना चाहिए ।

१२०० सूक्ष्मसापरायम—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अतरायोंका स्यात् एकजीव वधक है । स्यात् अनेकजीव वधक है । अवधक नहीं है । यथाख्यातमे—सातावेदनीयके स्यात् सर्व वधक हैं । स्यात् अनेक वधक तथा एक अवधक है । स्यात् अनेक वधक हैं और स्यात् अनेक अवधक हैं । तेजोलेश्यामे—सौधर्म स्वर्गके समान भग जानना चाहिए । पद्मलेश्यामे—सनत्कुमारयत् भग जानना चाहिए । इनका किंचित् विशेष भी जान लेना चाहिये ।

[ विशेष—इस लेश्यामे एकेन्द्रिय, आताप, तथा स्थावरका वध नहीं होता । ]

सम्यक्दृष्टि, ज्ञाधिकसम्यक्दृष्टिमें—अपनी अपनी प्रकृतियोंको ओघके समान जानना चाहिये ।

१२०१ वेदकसम्यक्त्वमे—परिहारविशुद्धिके समान भग जानना चाहिये । विशेष यह है कि यहाँ असयत और सयतासयतकी प्रकृतियोंको भी जानना चाहिये ।

१२०२ उपशम सम्यक्त्व मे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा,

तेजाक० समचदु० वज्जरिस० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्त  
आदेज्ज णिमिण तित्थयरं उचागोद-पचतराइयाण अट्टभगो । सादासादादीण परिय  
त्तीण सत्त्वाण पत्तमेण साधारणेण वि अट्टभगो । णवरि वेदणीयाण साधारणेण  
सिया वधगो य । सिया वधगा य । अवधगा णत्थि ।

५ ३२०३, अणाहारगेसु-पचणा० णवदस० मिच्छ० सोलसक० भपदु० ओराणि०  
तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ आदाउज्जो० णिमि० तित्थय० पचत० अत्थि वधगा  
य अवधगा य । साद अत्थि वधगा य अवधगा । असाद अत्थि वधगा य अवधगा  
य । दोण्ण वेदणीयाण अत्थि वधगा य अवधगा य । एव सेमाण पगदीण एदेण  
धीजेण माधेदूण भाणिदब्ब ।

१०

### एव णाणाजीवेहि भगविचय समत्त

पचेन्द्रियजाति, तेजस, कामाण, ममचतुरस्रसस्थान, प्रनयुपभसहनन, वण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तगिहायोगति, अस ४ सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्चगोत्र, और ५ अन्तर्यामि के आठ भग जानना चाहिए । सात प्रसादादिक संपूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियों के अला अलग और सम्मिलित रूप में आठ भग होते हैं । विशेष यह है कि वेदनीयगुणके सामान्यसे स्था एक वधक है । म्यात् अनेक वधक है । अवधक नहीं है ।

[ विशेषार्थ-वेदनायके अवधक अयोग केवली गुणस्थानमें पाये जाते हैं और उपशम सम्यक्त्व ११ वें गुणस्थान पर्यंत पाया जाता है उस कारण उपशमसम्यक्त्वमें सात असात गुणके अवधकों का अभाव कहा है । ]

३२०३ अनाहारकों में—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिश्र्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रौशरिक, तेजस, कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थकर ५ अन्तर्यामि के अनेक वधक है और अनेक अवधक है ।

[ विशेष-मयोग केवली और अयोग केवली गुणस्थानोंमें भी अनाहारक जीव होते हैं उन गुणस्थानों की अपेक्षा ज्ञानावरणादिके अवधक कहे गए हैं । ]

सातवेदनीयके भी अनेक वधक तथा अनेक अवधक है । असातावेदनीयके भी अनेक वधक है तथा अनेक अवधक है । दोनों वेदनीयके भी अनेक वधक तथा अनेक अवधक है । इस बीनसे अर्थात् इस दृष्टिसे जेप प्रकृतियोंके भी भग जानना चाहिये ।

इस प्रकार नानाजीवों की अपेक्षा भगविचय समाप्त हुआ ।

(१) णाणाजीवेहि भगविचयाणुगमेण दुविशो गिहसो ओधेग, आदेसेण य । तथ आधेण पेज दोरी च णियमा अत्थि । सुगममेद । एउ वाउ अणाहारए चि वत्थव । णवरि मणुसअपज्जचएत्तु णाणेगजीव पज्ज दोसे अत्थिउग अट्टभगा । त अहा-सिया पेज्ज । सिया गोपेज्ज । सिया पेज्जणि । सिया गोपेज्जणि । सिया पेज्ज च गोपेज्ज च । सिया पज्ज च णापेज्जणि च । सिया पज्जणि च गोपेज्ज च । सिया पेज्जणि च गोपेज्जणि च । ११-अयध० पू० ३९०-३९१ ।

यहाँ आठ भग इस प्रकार हैं—( १ ) एक वधक ( २ ) एक अवधक ( ३ ) अनेक वधक ( ४ ) अनेक अवधक ( ५ ) एक वधक, एक अवधक ( ६ ) अनेक वधक, अनेक अवधक ( ७ ) एक वधक, अनेक अवधक ( ८ ) अनेक वधक एक अवधक ।



तेजाक० समचदु० वज्जरिस० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुमग-सुस्ता  
आदेज्ज-णिमिण तित्थयर उच्चागोद-पचंतराइयाण अट्टभगो । मादासादादीण परिय  
चीण सव्वाण पचेगेण साधारणेण वि अट्टभगो । णमरि वेदणीयाण साधारणेण  
सिया बघगो य । सिया बघगा य । अवघगा णत्थि ।

५ १२०३. अणाहारगेसु-पचना० णवदस० मिच्छ० मोलसक० भपदु० ओतानि०  
तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ आदाउज्जो० णिमि० तित्थय० पचत० अत्थि बघगा  
य अवघगा य । साद अत्थि बघगा य अवघगा । असाद अत्थि बघगा य अवघगा  
य । दीण वेदणीयाण अत्थि बघगा य अवघगा य । एव सेसाण पगदीण एदेम  
वीजेण माघेदूण भाणिदब्ब ।

१०

एव णाणाजीवेहि भगविचय समत्तं

पचोद्वयजाति, तेजस, कार्माण, समचतुरस्सस्थान, वज्जयुपभसहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४,  
प्रशस्तविहायोगति, तस ४ सुमग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्चगोत्र, और ५ अन्तर्या  
के आठ भग जानना चाहिए । साता असतादिक सपूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियों के अलग अलग  
और सम्मिलित रूप में आठ भग होते हैं । विशेष यह है कि वेदनीयगुणलक्षणे सामान्ये स्थान  
एक वधक है । न्यात् अनेक वधक हैं । अवधक नहीं हैं ।

[ विशेषार्थ-वेदनीयके अवधक अयोग केवली गुणस्थानमें पाये जाते हैं और उपरम  
सम्यक्त्व ११ वें गुणस्थान पर्यंत पाया जाता है इस कारण उपरमसम्यक्त्वमें साता असता  
गुणलक्षणे अवधकों का अभाव कहा है । ]

१२०३ अनाहारकों में—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा,  
औदारिक, तेजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थकर ५  
अन्तर्यायों के अनेक वधक हैं और अनेक अवधक हैं ।

[ विशेष-सयोग केवली और अयोग केवली गुणस्थानोंमें भी अनाहारक जीव होते हैं इन  
गुणस्थानों की अपेक्षा ज्ञानावरणादिके अवधक कहे गए हैं । ]

सातावेदनीयके भी अनेक वधक तथा अनेक अवधक हैं । असातावेदनीयके भी अनेक  
वधक है तथा अनेक अवधक है । दोनों वेदनीयके भी अनेक वधक तथा अनेक अवधक है ।  
इस बीजसे अर्थात् इस दृष्टिसे शेष प्रकृतियोंके भी भग जानना चाहिये ।

इस प्रकार नानाजीवों की अपेक्षा भगविचय समाप्त हुआ ।

(१) 'णाणाजीवेहि भगविचयाणुगमेण दुग्घो गिहेसो ओघेग, लादेशण य । तत्थ आघेण पेज दोली  
च गियमा अरिय । सुगममेद । एउ वाउ अणाहारए चि वसत्थ । णवरि मणुसअपञ्चएसु णाणेगजीव पेज  
दोषे अस्सिकण अट्टभगा । त क्हा-सिया पेज्ज । सिया णोपेज्ज । सिया पञ्जाणि । सिया णापेज्जाणि ।  
सिया पेज्ज च णोपेज्ज च । सिया पञ्ज च णापेज्जाणि च । सिया पञ्जाणि च णोपेज्ज च । सिया  
पेज्जाणि च णोपेज्जाणि च ।'—जयप० पृ० ३९०-३९१ ।

यहाँ आठ भग इस प्रकार हैं—(१) एक वधक (२) एक अवधक (३) अनेक वधक (४)  
अनेक अवधक (५) एक वधक, एक अवधक (६) अनेक वधक, अनेक अवधक (७) एक वधक,  
अनेक अवधक (८) अनेक वधक एक अवधक ।

के० ? अणतभागो । अवधगा सव्वजी० के०डि० ? अणता०भागा । तिण्णि अगो०  
वधगा सव्वजी० के० ? संखेज्जदिभागो । अवधगा सव्वजी० के० ? सखेज्जा भागा ।  
छसंघ० परघाहुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसराण वधगा सव्वजीणाण के०डि० ?  
सखेज्जदिभागो । अवधगा सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा । छसंघ० दोविहा०  
दोसर० साधारणेण वि सादभंगो । तिथयर वधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो । ५  
अवधगा सव्वजी० के० ? अणता भागा ।

§२०६. आदेसेण षोडशेसु पचना० छदसणा० वारसरु० भयदु० पचिदि०—  
तिण्णिसरीर-ओरालि० अगो० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि० पचत० वधगा  
सव्वजीणाण के०डिया भागा ? अणतभागो । (?) अवधगा णत्थि । सादवधगा  
सव्वजीणाण के०डिओ भागो ? अणतभागो । सव्वणेरइगाणं के०डियो भागो ? सखेज्जदि- १०  
भागो । अवधगा सव्वजी० के० ? अणता भागा (?) सव्वणेरइगाणं के०डि० ? सखेज्जा

[ विशेषार्थ-शका-जन औदारिक शरीरके वधक सपूर्ण जीवोंके अनत बहुभाग है, तत्र  
औदारिक अगोपागके वधक सपूर्ण जीवोंके सख्यातर्वे भाग ज्यों है ? समाधान-औदारिक  
शरीरके वधक अधिक है, तथा औदारिक अगोपागके वधक कम है । अगोपागका वध केवल  
त्रसोंके साथ पाया जाता है तथा औदारिकशरीरका वध त्रस-स्थावर दोनोंके साथ पाया जाता है ।]

वैक्रियिक-आहारक शरीरागोपाग के वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं ।  
अवधक सर्व जीवों के कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । तीनों अगोपाग के वधक सर्व  
जीवों के कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात  
बहुभाग हैं । ब्रह्म सहनन परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विद्यायोगति तथा २ स्वर के  
वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग  
हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । सामान्यसे छह सहनन, २ विद्यायोगति, २ स्वरके वधक सर्व जीवोंके  
कितने भाग हैं ? तथा अवधक कितने भाग है ? इनका सातावेदनीयके समान भग जानना चाहिए ।  
अर्थात् वधक सख्यातर्वे भाग हैं और अवधक सख्यात बहुभाग हैं । तीर्थंकर प्रकृति के वधक  
सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत  
बहुभाग हैं ।

§२०६ आदेश से-नरकगति में-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा,  
पचोन्मिय जालि, औदारिक-तेजस-कार्माणशरीर, औदारिक अगोपाग, वण ४, अगुरुलधु ४, त्रस ४,  
निर्माण, ५ अतरापकेवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग है (?) अवधक नहीं हैं ।

[ विशेषार्थ-यहा अनतवे भाग पाठ समीचीन प्रतीत होता है । जन साता, असाता दोनों  
वेदनीय के वधक नारकी सर्व जीवोंके अनतर्वे भाग है, तत्र ज्ञानावरणादि के वधक भी अनतर्वे  
भाग होना चाहिए । सर्व जीवरक्षि के अनत बहुभाग नारकी जीवों की गणना नहीं है । ]

साताके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सपूर्ण नारकियोंके कितने  
भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं (?)

- केरडिओ भागो ? अणतभागो । गिरयमणुसटेचापुगाणं बधगा सव्वजीवाण केरडिओ भागो ? जण० भागो । अणधगा सव्वजी० केरडि० ? अणतभागो । तिरिस्तापुणवगा सव्वजीवाण केरडियो भागो ? सखेज्जदिभागो । अवधगा सव्वजी० केरडि० ? सखेज्जा भागा । चदु-आधु-बधगा सव्वजीवाण केरडियो केरडियो (?) भागो ? सखेज्जदिभागो । अणधगा सव्वजी० केर० ? सखेज्जा भागा । गिरयगदिदेवगदिनवगा सव्वजीवाण केरडिओ भागो ? अणतभागो । अवधगा सव्वजी० केर० ? अणत भागा । तिरिस्तापुणवधगा सव्वजीवाण केरडिया भागा ? सखेज्जा भागा । अवधगा सव्वजी० केरडि० ? सखेज्जदिभागो । मणुसगदिवधगा सव्वजी० केरडिओ भागो ? सखेज्जदिभागो । अणधगा सव्वजी० केरडि० ? सखेज्जा भागा । चदुण्ण १० गदीण बधगा सव्वजी० केरडि० ? अणत भागा । अवधगा सव्वजी० केरडि० ? अणतभागो । एण चदुण्ण आणुपुच्चीण । ओरालिय० बधगा सव्वजी० केरडि० ? अणत भागा । अणधगा सव्वजी० केरडि० ? अणतभागो । वेउच्चिय-आहारसरीराणं बधगा सव्वजी० केरडि० ? अणतभागो । अवधगा सव्वजी० केरडि० ? अणत भागा । तिण्णि सरीराण बधगा सव्वजी० केरडि० ? अणत भागा । अणधगा सव्वजी० केर० ? अणतभागो । ओरालिय अगो० बधगा सव्वजी० केरडि० ? सखेज्जदिभागो । अणधगा सव्वजी० केर० ? सखेज्जा भागा । वेउच्चिय-आहारसरीराणो० बधगा सव्वजी०

नरवायु, मनुष्यायु तथा दवायुके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अनधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । तिर्यचायुके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । चार आयुके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । नरकगति द्विगतिके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । तिर्यचगतिके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । मनुष्यगतिके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । चारों गतिके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । अनधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । इसी प्रकार चारों आयुपूर्विका जानना चाहिए । औदारिक शरीरके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । वैश्विक आहारक शरीरके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । मीन शरीरके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । अणधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । औदारिक अणोपागके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं ।





- भागा । असाद [ वधगा ] सव्वजी० केवडि० ? अणतभागो । सव्वणेरइगाण केवडि० ।  
 सखेज्जा भागा । अवधगा मव्वजी० केवडि० ? अणतभागो । सव्वणेरइगाण केवडि० ।  
 सखेज्जिभागो । दोण्ण वेदणीयाण वधगा केवडि० ? अणतभागो । अवधगा णत्थि ।  
 एव सादमगो इत्थि० पुरिस० हस्स-रदि-मणुसगदि-पचसठा० पचसघ० मणुमाणु० उज्जो०  
 ५ पसत्थि० थिरादिछम्क उचागोद च । असादमगो णवुस० अरदिसोग तिरिस्सगदि  
 हुडसठा० अमपचसेर० तिरिक्खाणु० अप्पसत्थवि० अधिरादिछम्क णीचागोद च ।  
 सत्तणोक० दोगदि० छसठा० छसघ० दोआणु० दोविद्दा० थिरादिछपुगल दोगोदाणं  
 वधगा सव्वजीराण केवडि० ? अणतभागा ( ? ) । अवधगा णत्थि । धीणगिदि०  
 ३ मिच्छत्त० अणताणुवधि० ४ वधगा सव्वजी० केवडि० ? अणतभागो । सव्वणेरइगाण  
 १० केवडि० ? अणतभागा । अवधगा सव्वजी० केवडि० ? अणतभागो । सव्वणेरइगाण

सपूर्ण नारकियों के कितने भाग हैं ? सखात बहुभाग हैं ।

[ विशेष—असाता के वधक सर्व जीवों के अनतवें भाग कहे गए हैं, तब साता के अवधक भी सर्व जीवों के अनतवें भाग होना चाहिए अतः अनतवें भाग पाठ साता के अवधकों में उचित प्रतीत होता है । ]

असाता के [ वधक ] सर्व जीवों के कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । सर्वनारकियों के कितने भाग हैं ? सखात बहुभाग हैं । अवधक सर्व जीवों के कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । सर्वनारकियों के कितने भाग हैं ? सखातवें भाग हैं ।

[ विशेष—असाता के वधक भी सर्व जीवों के अनतवें भाग हैं तथा अवधक भी अनतवें भाग हैं । इसका कारण नारकी जीवोंकी सखात है, यह इतनी है कि वधक भी शृद्ध जीवोंकी के अनतवें भाग होते हैं तथा अवधक भी इतने ही होते हैं । ]

दोनों वेदनीयों के वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । अवधक नहीं हैं । षोषवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, ५ सस्थान, ५ सहनन, मनुष्यानुपूर्वी, उद्योत, प्रगल्भविद्यायोगति, स्थिरादि षट्क तथा उच्चगोत्रमे साताके समान भग जानना चाहिए । नपुसक-वेद, अरति, शोक, तिर्यचगति, दृढकसस्थान, असप्राप्तासुपाटिका सहनन, तिर्यचानुपूर्वी, अप्रशस्त विद्यायोगति, अस्थिरादि षट्क, तथा नीचगोत्रका असाताके समान भग जानना चाहिए । सात नोषपाय, दो गति, ६ सस्थान, ६ सहनन, दो आनुपूर्वी, दो विद्यायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रों के वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं ( ? ) अवधक नहीं हैं ।

[ विशेष—यहां अनतवें भाग पाठ सगत जैवता है । ]

स्थानगृद्धिर्नि, मिष्यात्व, अनतानुभी ४ के वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? असखात बहुभाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? असखातवें भाग हैं ।

केन्द्रि० ? अमसेज्जदिभागो । तिरिक्रयायुबंधगा सव्वजीपाणं केन्द्रिओ भागो ? अणंत-  
भागो । मव्वणेग्गगाण केन्द्रि० ? मसेज्जदिभागो । अवधगा सव्वजी० केन्द्रि० ? अणंत-  
भागो । मव्वणेग्गगाण केन्द्रिओ० ? सखेज्जा भागा । मणुसायु-तिरिथय० रधगा सव्वजी०  
केन्द्रि० ? अणतभागो । मव्वणेग्गगाण के० ? अमसेज्जदिभागो । अवधगा सव्वजी०  
केन्द्रि० ? अणतभागा (?) सव्वणेग्गगाण केन्द्रि० ? असखेज्जा भागा । दोण्ण आयुगाण ५  
वधगा [सव्वजीपाण] केन्द्रि० ? अणतभागो । सव्वणेग्गगाण के० ? सखेज्जा भागा ।  
अवधगा सव्वजी० के० ? अणतभागा (?) सव्वणेग्गगाण केन्द्रि० ? सखेज्जा भागा ।  
एव पढमाए पुढीए । धिट्टियाट्टि याव छट्टिचि णिरयोघो । णवरि आयु मणुसायु-  
भागो । एउ सत्तमाए । णवरि तिरिक्खगदि-तिरिक्खायु० णीचागोटं धीणगिट्ठिगि-  
भागो । मणुमगदि-मणुसायु-उच्चागोटं मणुसायुभागो । दोगदि-दोआणुपुन्वि-दोगोदाण १०  
वधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो । अवधगा णरिथ ।

१२०७. तिरिक्रोमु—पचना० उदमणा० जट्टकसाय भयदु० तेजाक० वण्ण०

तिरिक्खायुके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व नारकियोंके कितने  
भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं ।  
सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । मनुष्यायु, तीर्थंकर प्रकृतिके वधक सर्व  
जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? असख्यातर्वे  
भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । (?) सर्व नारकियोंके  
कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं ।

[ निरोप—यहाँ अनत बहुभागके स्थानमें अनतर्वे भाग पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है । ]

दो आयु ( मनुष्य तिरिक्खायु ) के वधक [ सर्व जीवोंके ] कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग  
हैं । सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग  
हैं ? अनत बहुभाग हैं (?) सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं ।

[ निरोप—यहाँ अवधक सर्व जीवोंकी अपेक्षा अनतर्वे भाग पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है । ]

इस प्रकार पहली पृष्ठीमें जानना चाहिए । दूसरी पृष्ठीमें उठनी पृष्ठी पर्यन्त नारकियोंके  
सामान्यरूप जानना चाहिए । विरोध, आयुके विषयमें मनुष्यायुके समान भाग हैं । अर्थात् वधक  
सर्व जीवोंके अन्तर्वे भाग हैं । सर्व नारकियोंके अमख्यात बहुभाग हैं । अर्थात् वधक  
अनतर्वे भाग हैं । सर्व नारकियोंके अमख्यात बहुभाग हैं । अर्थात् वधक सर्व जीवोंके  
विरोध, तिरिक्खानि, तिरिक्खापूर्वी, नीच गोत्रके विषयमें समानशुद्धिदिक्खानु भाग हैं । अर्थात् वधक  
सर्व जीवोंके अन्तर्वे भाग हैं । सर्व नारकियोंके अमख्यात बहुभाग हैं । अर्थात् वधक  
सर्व जीवोंके अन्तर्वे भाग हैं तथा सर्व नारकियोंके अमख्यातर्वे भाग हैं । अर्थात् सर्व जीवोंके  
उत्तमोत्तम मनुष्यायुके समान भाग हैं । मनुष्य तिरिक्खानि, मनुष्यायुपूर्वी, मनुष्यायुके  
सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अन्तर्वे भाग हैं । अवधक अन्तर्वे भाग हैं ।

१२०८ तिरिक्खानि—५ अन्तर्वे भाग, ६ अन्तर्वे भाग, (समानशुद्धिदिक्खानु), मनुष्यायुपूर्वी

- ४ अणु० उप० णिमि० पचत० बंधगा सव्वजीवाण केवडि० ? अणतभागो । अबधगा णत्थि । थीणगिद्वितीग मिच्छत्त० अट्टक० बधगा सव्वजी० केवडि० ? अणतभागा । सव्वतिरिक्खाण केवडि० ? अणतभागा । अबधगा सव्वजी० केवडि० ? अणतभागा । सव्वतिरिक्खाण के० ? अणतभागो । सादभगा सव्वजीवाण केवडि० ? सखेज्जदि भागो । सव्वतिरिक्खाण केवडि० ? सखेज्जदिभागो । अबधगा सव्वजी० केवडि० ? सखेज्जदिभागो । सव्वतिरिक्खाण केवडिओ भागो ? सखेज्जा भागा । असादभगा सव्वजी० केवडि० ? सखेज्जा भागा । सव्वतिरिक्खाण के० ? सखेज्जा भागा । अबधगा सव्वजी० के० ? सखेज्जदिभागा ( गो ) सव्वतिरिक्खाण के० ? सखेज्जदिभागा ( गो ) दोष्ण वेदणीयाण बधगा सव्वजी० के० ? अणता भागा । अबधगा णत्थि । सादभगो इयि०
- १० पुरिस० हस्सरदि-चदुजादि-पंचसठा० छसघ० परघादुस्ता० अदाउज्जी० तस० ४ धिरा दिपच-उच्चागोद च । असादभगो णसुस० अरदिसोग-एइदिय० हुडसठा० धागरादि० ४ अधिरादिपंच-णीचागोद च । सत्तणोक० पचजादि छसठा० तसधानरात्ति-णयपुराल-दोगोदाण बधगा सव्वजी० केवडि० ? अणता भागा । अबधगा णत्थि । चदुआयु-चदु गदि-दोमरीर-दोअगो० छसघ० चदुआणु० दोविहा० दोसर० ओघ । णवरि गदि-सरीर

४ तथा सज्वलन चार रूप कपायाप्टक, भय, जुगुप्सा, तैजस, कामाण, धर्ष ४, अणुस्त्वु, उपघात, निराण तथा ५ अतरायके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अबधक नहीं हैं । त्त्यानगुद्धि ३, मिध्यात्व, ८ कपाय (अनतासुधी, अग्रन्याख्यानावरण) के बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । अबधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । साता वेदनीयके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अनधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । असादा वेदनीयके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । अबधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । दोनों वेदनीयोंके बधक सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । अबधक नहीं हैं ।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, ४ जाति, ५ सस्थान, ६ सहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उग्रोत, व्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्रका साता वेदनीयके समान भग है । न्युसर्क-वेद, अरति, शोक, णेन्द्रिय जाति, हुडससस्थान, स्थावरदि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असादा वेदनीयके समान भग है । ७ नोकपाय, ५ जाति, ६ सस्थान, व्रस-स्थावरदि ९ युगल, दो गोणके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । अबधक नहीं हैं ।

चार आयु, ४ गति, औत्पारिक, वैश्विक शरीर, दो अणोपाग, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, दो विद्ययोगति, दो स्वरका औघनत् भग है । विशेष गति शरीर तथा आनुपूर्वीके सब बंधक हैं ।

आणुपु० सव्वे वधगा० । अवधगा णत्थि ।

§२०८ पचिंदिय-तिरिक्खेसु-पचणा० छदसणा० अट्टकसाय-भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचत० वंधगा सव्वजीवाण केवडि० ? अणतभागो । अवधगा णत्थि । धीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-अट्टकसायबंधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वपचिंदियतिरिक्खणं केवडि० ? असखेज्जदिभागो (?) अनधगा ५ सव्व० केवडि० ? अणतभागो । सव्वपचिंदियतिरिक्खण केवडि० ? असखेज्जदिभागो । सादानेद० वधगा सव्वजी० केवडि० ? अणतभागो । सव्वपचिंदियतिरिक्खण केवडि० ? संखेज्जदिभागो । अनधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वपचिंदिय-तिरिक्खण केवडि० ? सखेज्जदिभागो (?) असाद वधगा केवडि० ? अणतभागो । सव्वपचिंदियतिरिक्खण केवडि० ? सखेज्जा भागा । अनधगा सव्वजी० केवडि० ? १० अणतभागो । सव्वपचिंदियतिरिक्खण केवडि० ? संखेज्जदिभागो । दोवेदणीय वधगा सव्वजी० केवडि० ? अणतभागो । अवधगा णत्थि । एव सादमगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चदुजादि-पचसठा० परघादुस्सा०-आदाउज्जो० तस० ४, धिरादिपच-उच्चागोद

अवधक नहीं है ।

§२०८ पचेन्द्रिय तिर्यंचोमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, भयद्विक, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अतरायके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतये भाग हैं । अवधक नहीं है । स्थानवृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ८ कषायके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतये भाग हैं । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? असरयातये भाग है (?)

[ विशेष-यहाँ 'असरयात बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है । कारण मिथ्यादृष्टि पचेन्द्रिय तिर्यंचोकी सरया सत्रसे अधिक है । ]

अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतये भाग है । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोके कितने भाग हैं ? असरयातये भाग है । मातावेदनीयके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतये भाग है । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? सरयातये भाग है । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतये भाग है । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? सरयातये भाग है (?)

[ विशेष-यहाँ सरयात बहुभाग पाठ अवधक पचेन्द्रिय तिर्यंचोमे होना चाहिए । कारण असाताके वधकोनी गणना पचेन्द्रिय तिर्यंचोकी अपेक्षा सरयात बहुभाग कही है । ]

असाताके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतये भाग है । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? सरयात बहुभाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतये भाग है । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? सरयातये भाग है । दो वेदनीयके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं । अनतये भाग है । अवधक नहीं है ।

स्त्रीवेद, पुन्यवेद, हाय-रति, ४ जाति, ५ सरयान, परघात, उच्छ्वास, श्रातप,

- च । असादभगो णजुस० अरदिसोग एइदि० हुडसठा० थावरादि ४ अधिरादिपच  
णीचागोद च । सत्तणोक० पचजादि-छसठा० तसथावरादिणयुगल दोगोदाप वघगा  
सव्वजीवा० केवडि० ? अणतभागो । अयधगा णत्थि । तिण्णि आयुवधगा सव्वजीव०  
केवडि० ? अणतभागो । सव्वपंचिदिय-तिरिक्खाण केवडि० ? असखेज्जदिभागो । अवधगा  
५ सव्वजी० केवडि० ? अणतभागो । सव्वपंचिदिय-तिरिक्खाण केवडि० ? असखेजा  
भागा । तिरिक्खायुवधगा मव्वजी० केवडि० ? अणतभागो । सव्वपंचिदयतिरिक्खाण  
केवडि० ? सखेज्जदिभागो । अवधगा सव्वजी० केवडि० ? अणतभागो । सव्वपंचि-  
दिय तिरिक्खाण केवडि० ? सखेजा भागो ( गा ) । चदुण्ण आयुपाण वधगा सव्वजी०  
केवडि० ? अणतभागो । सव्वपंचिदियतिरिक्खाण केवडि० ? सखेज्जदिभागो ।  
१० अवधगा सव्वजी० केवडि० ? अणतभागो । सव्वपंचिदिय-तिरिक्खाण केवडि० ?  
सखेजा भागा । णिस्यगट्ठिदेवगदिवधगा सव्वजी० केवडि० ? अणतभागो । सव्वपंचि-  
दियतिरिक्खाण केवडि० ? असखेज्जदिभागो । अवधगा सव्वजी० केवडि० ?  
अणतभागो । सव्वपंचिदिय-तिरिक्खाण केवडि० ? असखेजा भागा । तिरिक्खगदि०  
असादभगो । मणुसगदि० सादभगो । चदुण्ण गदीण वधगा सव्वजी० केवडि० ?  
१५ अणतभागो । अवधगा णत्थि । ओगलियस० वधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो ।

उद्योत, त्रस ४, रिणदि ५ तथा उद्योत्रका साता वेदनीयके समान भग है । नपुसकवेद,  
अरति, शोक, षण्णेत्रिय जाति, हुडकसस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके  
समान भग है । ७ नोकपाय, ५ जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा २ गोत्रके वधक  
सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनतर्ध भाग है । अवधक नहीं हैं ।

मनुष्य द्य नरकायुके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनतर्ध भाग है । सर्व पचेन्द्रिय  
तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असरयातर्ध भाग है । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ?  
अनतर्ध भाग है । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है । असरयात बहुभाग है । तिर्यंचायुके  
वधक सब जीवोंके कितने भाग है ? अनतर्ध भाग है । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग  
है ? सख्यातर्ध भाग है । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनतर्ध भाग है । सब  
पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? सरयात बहुभाग है । चार आयुके वधक सर्व जीवोंके  
कितने भाग है ? अनतर्ध भाग है । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? सरयातर्ध भाग  
है । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनतर्ध भाग है । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने  
भाग है ? सरयात बहुभाग है । नरकगति, देवगतिके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ?  
अनतर्ध भाग है । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असरयातर्ध भाग है । अवधक  
सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनतर्ध भाग है । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ?  
असख्यात बहुभाग है । तिर्यंचगतिना असाताके समान भग है । मनुष्य गनिका साताके समान  
भग है । चार गतियोंके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनतर्ध भाग है । अवधक नहीं  
है । औदारिक शरीरके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनतर्ध भाग है । सर्व पचेन्द्रिय

सच्चपंचिदिय-तिरिक्त्वाण केन्द्रि० ? असखेज्जा भागा । अचधगा सच्चजी० केवडि० ? अणतभागो । सच्चपंचिदियतिरिक्त्वाण केन्द्रि० ? असखेज्जदिभागो । वेगुव्वियसरीरस्स देवगदिभगो । दोण्ण सरीराण वधगा सच्चजी० केन्द्रि० ? अणतभागा ( गो ) । अचधगा णत्थि । ओरालियसरीरअगोवगस्स सादभगो । वेगुव्वियसरीरअगोवंगस्स देवगदिभगो । दोण्ण अगोवगाण सादभगो । छसघ० दोविहाय० दोसराण पत्तेगेण ५ साधारणेण नि सादभगो ।

१२०९. एव पंचिदिय-तिरिक्त्वाण पञ्जत्त पंचिदियतिरिक्त्वाजोणिणीसु । णारि णिरय-मणुसायुग्धगा सच्चजी० केन्द्रि० ? अणतभागो । सच्चपंचिदिय तिरिक्त्वा-पञ्जत्तजोणिणीण केन्द्रि० ? असखेज्जदिभागो । अचधगा सच्चजी० केव० ? अणतभागो । सच्चपंचिदियतिरिक्त्वाजोणिणीण केव० ? असखेज्जदिभागो । तिरिक्त्वादेवायुण सादभगो । १० चदुण्णवि आयुगाण सादभंगो । णिरयगदि असादभंगो । तिण्ण गदीण सादभगो । चदुण्ण गदीण वधगा सच्चजी० केन्द्रि० ? अणतभागो । अचधगा णत्थि । एव आणुपुव्वीण । चदुज्जादि सादभगो । पंचिदियजादीण अमादभंगो । पचण्ण जादीण

तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग है । अबधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनतध भाग है । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असख्यातवें भाग है । वैक्रियिक शरीरका द्रवगति के समान भग है । औदारिक-वैक्रियिक शरीरोंके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनत बहुभाग है ( ? ) । अबधक नहीं है ।

[**प्रिशेष**-यहां वधक सर्व जीवोंके अनतवें भाग होना उचित जंचता है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच राशि ही जब सपूर्ण जीव राशिके अनत बहुभाग प्रमाण नहीं है, तब शरीरद्रव्यके वधक अनत बहुभाग कैसे होंगे ? अत अनतवें भाग पाठ उचित प्रतीत होता है ।]

औदारिक-शरीर-अगोपागके विषयमे साताके समान भग है । वैक्रियिक अगोपागका भवगतिके समान भग है । औदारिक-वैक्रियिक अगोपागोंका साताके समान भग है । छह सहनन, ० विहायोगति तथा स्वरयुगलका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भग है ।

१२०९ पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योजिमतियोंमे-इसी प्रकार है । प्रिशेष, यहा नरकासु मसुप्यासुके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनतवें भाग है । सपूर्ण पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक-योजिमतियोंके कितने भाग है ? असख्यातवें भाग है । अबधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनतवें भाग है । सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योजिमतियोंके कितने भाग है ? असख्यातवें भाग है ।

तिर्यंच देवायुका साताके समान भग जानना चाहिए । चारों आयुका साताके समान भग जानना चाहिए । नरकगतिका असाताके समान भग है । गेप तीन गतियोंका साताके समान भग है । चारों गतियोंके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनतवें भाग है । अबधक नहीं है । आयुपूर्वका इसी प्रकार भग जानना चाहिए । ४ जातियोंका साताके समान भग है । पंचेन्द्रिय जातिना असाताके समान भग है । पांच जातियोंके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग

वधगा सञ्जनी० केरडि० ? अणतभागो । अवधगा णत्थि । वेगुधिय० वेगुत्थि  
अगोत्रगार्ण मादभगो । दोण्णवि अमादभगो । छमघ० जाटाउज्जो० सादभगो । पया  
दुस्मा० अप्पगत्य० तग० ४ अधिरादिउत्तङ्गणीचागोदं च अमादभगो । ततो  
पस्सराण मादभगो । दोविहाय० दोसर० असादभगो । तसादिणप्युगल दोगोद च  
५ वेदणीयभगो ।

६२१० पचिदिपतिक्कमअपजत्तेनु-पचना० णत्तस० मिच्छ० सोलसङ्क०  
भपट्टु० तिष्णिमरीग-वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचत० वधगा सञ्जनी० केर० ?  
अणतभागो । अवधगा णत्थि । सेमाणं णित्तपोष । णवरि चट्टुजादि-ओरात्ति० ओरात्ति०  
अगो० छसघ० परघादुस्सा० आटाउज्जो० दोविहा० तस० ४ धिरादि-उत्तङ्ग-दुस्सा  
१० उचागोदाण सादभगो । एइदियजादि-हुडसटा० धात्तरादि० ४ अधिरादिपचग पीचा  
गोद च अमादभगो । पचजादि-वधगा सञ्जनी० केर० ? अणतभागो । अपंपगा  
णत्थि । एव तसथात्तरादिणप्युगल दोगोदाण । छमघ० दोविहा० दोसर० [ पत्तेगेज ]  
साधारणेण वि सादभगो । एत्त मशुस-अपजत्त-सञ्जविगलिदिय-पचिदिय उत्त-अपत्त  
सञ्जपुट्टवि आउ० तेउ० वाउ० चादरवणत्तदिपत्तेय० । णत्तरि तेउ० वाउ० मशुसगदि  
१५ चट्टुक्क णत्थि ।

है ? अनतर्वे भाग है । अवधक नहीं है । वैत्रियिक शरीर तथा वैक्रियिक अगोत्रगार्ण सातके  
समान भग है । दोनोंका सामायसे असाताके समान भग है । ६ सहान, आतप, उग्रोत्त  
सातातन् भग है । परघात, उच्छ्वास, अग्रशस्त विहायोगति, अम ४, अस्थिरादि ६ तथा नीच  
गोत्रना असाताके समान भग है । इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका जैसे अग्रशस्तविहायोगति,  
स्थिरादि ४, स्थिरादि ६, उच्छ्वासात्त साताके समान भग है । दो विहायोगति, दो स्वरका  
असाताके समान भग है । असादि ५ युगल, ० गोत्रका वेदनीयसे समान भग है ।

६२१० पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्यातकोम—५ ज्ञानावरण, ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय,  
भय-जुगुप्सा, औदारिकत्तै तस-सामाण शरीर, धर्ण ४, अगुस्लाघु, उपघात, निर्माण, ५ अतरायके  
वधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनतर्वे भाग है । अवधक नहीं है । शेष प्रकृतियोंका  
नारकियोंके ओषवत् जानना चाहिए । विरोध, ४ जाति, औदारिक शरीर, औदारिक-अगोत्रग,  
६ सहान, परघात, उच्छ्वास, आतप, उग्रोत्त, दो विहायोगति, अम ४, स्थिरादि ६, दुस्वर तथा  
उच्छ्वासात्त साताके समान भग है । एकेन्द्रिय जाति, हुडक सरथान, स्थावरदि ४, अस्थिरादि ५  
तथा नीच गोत्रना असाताके समान भग है । ५ जातिके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग है ?  
अनतर्वे भाग है । अवधक नहीं है । अम, स्थावरदि ५ युगल तथा दो गोत्रोमे इसी प्रकार भग  
जानना चाहिए । छह सहान, दो विहायोगति, २ स्वरका [ प्रत्येक तथा ] सामाय रूपसे साताके  
समान भग है ।

मनुष्यलब्धपर्यातक, सर्व त्रिकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय उत्त अपर्यातक, सपूर्ण पृथ्वी, अप, तेज, वायु,  
वातर घनरपति, शरीर प्रत्येकमे-इसी प्रकार अथान् पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्यातकके समान जानना  
चाहिए । त्रिशेष, तेजनाथ, वायुकायमे मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु तथा वयोवत् नहीं है ।





वपगा मन्वजी० केनडि० ? अणतभागो । अग्रगा णत्थि । वेगुव्विय० वेगुव्विय-  
जगोवगाण सादभंगो । दोण्णावि जमादभंगो । छसध० आदाउजो० सादभंगो । पासा  
दुस्मा० अप्पमत्थ० तम० ४ अयिरादिछम्क-णीचागोद च असादभंगो । तप्पदि  
पक्खाण सादभंगो । दोविहाय० दोसर० जसादभंगो । तसादिणवपुगलं दोगोद च  
५ वेदणीयभंगो ।

६२१०. पचिदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु-पचणा० णत्थस० मिच्छ० मोलसक०  
भयदु० तिण्णिसरीर-वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचत० वधगा सव्वनी० व० ?  
अणतभागो । अग्रगा णत्थि । सेसाणं णिरयोध । णत्थि चट्टुजादि-ओरालि० ओरालि०  
अगो० छसध० परसादुस्सा० आदाउजो० दोविहा० तस० ४ थिरादि-छम्क-दुस्सा  
१० उचागोदाण सादभंगो । एडदियजादि-हुडसठा० धाचरादि० ४ अधिरादिपचग णीचा  
गोद च असादभंगो । पचजादि-वधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो । अवधगा  
णत्थि । एव तसथानरादिणयुगल दोगोदाण । छसध० दोविहा० दोसर० [ पत्तेमण ]  
साधारणेण नि सादभंगो । एव मणुस-अपज्जत्त सव्वविगलदिदय-पचिदिय तस-अपज्जत्त  
सव्वपुढवि आउ० तेउ० वाउ० वादरण्णदिपत्तेय० । णत्थि तेउ० वाउ० मणुसमादि  
१५ चट्टुक्क णत्थि ।

हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अग्रक नहीं हैं । वैक्यिक शरीर तथा वैज्यिक अगोपागका सातके  
समान भग हैं । दोनोंका सामान्यसे असाताके समान भग हैं । ६ सहनन, आतप, उद्योतका  
सातानत् भग हैं । परधात, उच्छ्वास, अग्रगस्त विहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादि ६ तथा नाच  
गोत्रका असाताके समान भग हैं । इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका जैसे प्रगस्तविहायोगति,  
स्वाधरादि ४, स्थिरादि ६, उच्चगोत्रका सातके समान भग हैं । दो विहायोगति, दो स्वरका  
प्रसाताके समान भग हैं । त्रसादि ९ युगल, २ गोत्रका वैज्यिकके समान भग हैं ।

§२१० पचेन्द्रिय तिर्यंच लक्ष्यपर्याप्तके—५ ज्ञानानरण, ९ दर्शनावरण, मि  
मय-जुगुप्सा, औदारिक-सैजस-कामीण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपग  
वधक सर्व जीवोंके किन्ने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अद्य  
नारकियोके ओग्रत् जानना चाहिए । त्रिशोप, ४ जाति, औदारिक ५  
६ सहनन, परधात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस ४, १०  
उच्चगोत्रका सातके समान भग हैं । एवेन्द्रिय जाति, हुडक सस्यान, स्वाधरादि  
तथा नीच गोत्रका असाताके समान भग हैं । ५ जातिके वधक सर्व जीवोंके कि  
अनतर्वे भाग हैं । अग्रक नहीं हैं । त्रस, स्वानरादि ९ युगल तथा दो गोत्रमें इसी  
जानना चाहिए । छह सहनन, दो विहायोगति, २ स्वरका [ प्रत्येक तथा ] सामान्य रु  
समान भग हैं ।

मनुष्यलक्ष्यपयातक, सर्व त्रिकेन्द्रिय, पचेन्द्रिय त्रस अपर्याप्त, सपूर्ण पृथ्वी, अप  
वाद वनतपति, और प्रत्येकमें-इसी प्रकार अर्थान् पचेन्द्रिय तिर्यंच लक्ष्यपर्याप्तके  
चाहिए । त्रिशोप, तेनकाय, यायुकायमे मनुष्यगति, मनस्यगत्यात्पार्ष्णी, यत्परायण

सहस्रार ति निदिचपुढविभगो । आणद यान णग्नेज्जात्ति धुनिगाणं वधगा सव्वजी० के० ? अणतभागा ( गो ) । अनधगा णत्थि । धीणगिद्धि ३ मिच्छ० अणताणु० ४ तित्थयर वधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो । सव्वदेवाण के० ? सखेज्जदिभागो । अनधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो । सव्वदेवाण के० ? सखेजा भागो ( गा ) । सादभगो इत्थि० णवुस० हस्सरदि-पचसठा० पंचसघ० अप्पसत्थवि० थिर-सुभग-<sup>५</sup> (सुभ) दूभगदुस्सर-अणादेज्ज-जसगित्ति णीचागोद च । असादभंगो पुरिम० अरदि-सोग० चदु [ समचदु० ] वज्जरिसभ० पसत्थ० अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदे-ज्ज० जज्जस० उच्चागोदाण च । दोण्ण वेदणीयाण वधगा सव्वजी० के० ? अणत-भागो । अनधगा णत्थि । एव सेसं (साण) परियत्तमाणयाण । आयु जोदिसियभगो । अणुदिस यान सव्वट्ठत्ति असाद-भगो । णवरि सव्वट्ठे आयु माणुसिभगो ।

§२१४. एइदिएसु-पचणा० णग्दसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० ओरालिय० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचत्त० वधगा सव्वजी० के० ? अणता भागो ( भागा ) । अवधगा णत्थि । सेस तिरिक्खोच । वादरएइदियपज्जत्ता-

प्रवेयक पर्यन्त—द्रुष प्रकृतियोंके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं ( ? ) । अवधक नहीं हैं ।

[ विशेष—यहाँ अनतर्वे भाग पाठ प्रतीत होता है । ]

स्त्यानगृद्धिक, मिथ्यात्व, अनतानुपधी ४ तथा तीर्थंकरके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व देवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व देवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं ( ? ) ।

[ विशेष—यहाँ 'सख्यात बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है । ]

स्त्रीवेद, नपुसकपेद, हास्य, रति, ५ सस्थान, ५ सहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्थिर, सुभग, (शुभ)दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यश कीर्ति, नीच गोत्रका साताके समान भग है । पुरुषवेद, अरति, शोक, समचतुरस्रसस्थान, वभ्रपुपभसहनन, प्रशस्तविहायोगति, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयश कीर्ति तथा उच्चगोत्रका असाताके समान भग है । दोनों वेदनीयके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अवधक नहीं हैं । इस प्रकार परिवर्तमान शेष प्रकृतियोंमें जानना चाहिए । आयुओंमें ज्योतिषी देवोंका भग है । अनुदिशासे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त असाताके समान भग जानना चाहिए । विशेष, सर्वार्थसिद्धिमें आयुका भग मनुष्यनीके समान हैं ।

§२१४ एकेन्द्रियोमे-१ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय-जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-ध्यामाँण शरीर, वर्षा ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अतरायके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं ( ? ) अवधक नहीं हैं ।

[ विशेष—यहाँ 'अनतर्वे भाग' के स्थानमें 'अनत बहुभाग' पाठ जँचता है । ]

शेष प्रकृतियोंका तिर्यंचोंके ओघवत् धर्षन जानना चाहिए ।

॥ यहाँ 'उम' पाठ उचित प्रतीत होता है । सुभगनी पुन गणना आगे की गयी है ।

मखेज्जा कादव्वा । सादभगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिण्णिगटि-चदुनादि-दोसगो  
 पचसठा० दोअगो० तिण्णिआणु० आटाउज्जो० पसत्य० थावगदि० ४ विरादिछक्क  
 उच्चागोद च । असादभगो णवुस० अरदिसोग० णिरयगदि० पचिदि० वेउच्चि०  
 हुडस० वेउच्चि० अगो० णिरयाणु० परघादुस्ता० अपसत्य० तम० ४ अधिरादि  
 ५ छक्क० णीचागोद च । सत्तणोक० चदुगदि पचजादि तिण्णिमरीर चदुआणु० दोविहा०  
 तमथानरादि-दमपुगल दोगोदाण वेदणीयभगो । चदुआणु० छस्सप० पत्तेण  
 साधारणेण वि सादभगो ।

६२१३. देवेषु णिरयोष । णवरि विसेमो । सादभगो इत्थि० पुरिम० हस्सादि  
 तिरक्खाणु मणुसगदि पचिदियजादि-पचसठा० ओरालियअगो० छसप० मणुमाणु०  
 १० आटाउज्जो० दोविहा० तस-धिरादिछक्क दुस्सर-उच्चागोद च । असादभगो णवुस०  
 अरदिसोग तिरक्खाणु एइदिय हुडमठा० तिरिक्खाणु० थानर-अधिरादिपच-णीचागोद  
 च । वेदणीय भगो सत्तणोक० दोगदि-दोजादि-छसठा० दोआणु० तसथानर धिरादिपच  
 युगलण दोगोदाण च । छसप० दोविहा० दोसर० साधारणेण वि सादभगो । एव  
 भरण-वाण-अंतर-जोदिसियाण । णवरि तित्थयरं णत्थि । जोदिसिय तिरिक्खाणु  
 १५ मणुसायुभगो । सोधम्मीसाण जोदिसियभगो, णवरि तित्थयर अत्थि । सणक्कुमार याव

हास्य, रति, मनुष्य तिर्यं च देवगति, ४ जाति, दो शरीर, ५ सस्थान, दो अगोपाग, नरकानुपूर्विके  
 णिना शेष तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, प्रसस्तविहायोगति, स्थावरदि ४, स्थिरादि ६ तथा  
 उच्चगोत्रका साताके समान भग है । नपुसकवेद, अरति शोक, नरकगति, पचेन्द्रिय जाति,  
 वैकिक शरीर, हुडकसस्थान, वैकिक अगोपाग, नरकानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, अप्रसस्त-  
 विहायोगति, प्रस ४, अस्थिरादिपट्क तथा नीच गोत्रका असाताके समान भग है । ७ नोकपाय,  
 ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ४ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, प्रस-स्थावरदि १० युगल और दो गोत्रका  
 वेदनीयके समान भग है । चार आयु, ६ सहननका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भग है ।

६२१३ देवगतिमें-नरकगतिके औपयत् जानना चाहिये । विशेष-स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य,  
 रति, तियचायु, मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, ५ सस्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, मनुष्यायु  
 पूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, प्रस, स्थिरादि ६, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके  
 समान भग है । नपुसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुडकसस्थान, तिर्यंचायु  
 पूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाताके समान जानना चाहिये । ७ नोकपाय,  
 २ गति, २ जाति, ६ सस्थान, २ आनुपूर्वी, प्रस-स्थावर, स्थिरादि ५ युगल तथा २ गोत्रका  
 वेदनीयके समान भग है । ६ सहनन, २ विहारयोगति, २ स्वरका साधारणसे साताके समान भग  
 है । भवनवासी, व्यतर तथा ज्योतिषी देवमें इसी प्रकार जानना चाहिये । विशेष, यहाँ  
 सौधं कर प्रकृति नहीं है । ज्योतिषी देवाम तियचयुका मनुष्यायुके समान भग है । सौधं  
 और ईशानमे-ज्योतिषियायें समान भग है । विशेष, यहाँ तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होता है ।  
 सानकुमारसे सहस्रार स्वर्गपर्यन्त-दूसरे नरकके समान भग है । आन्त प्राणतसे नव

इन्द्रियाणं केव० ? सखेज्जदिभागो । अवधगा सच्च० केव० ? सखेज्जा भागा । सच्चसुहुमाण केव० ? सखेज्जा भागा । अमाद पडिलोमेण भाणिदव्व । दोवेदणीयाणं वधगा सच्चजी० केव० ? असखेज्जा भागा । अवधगा णत्थि । एव सच्चओ परियत्तीओ ( ? ) वेदणीयमंगो । छण्ण दोण्णं दोण्ण पि पत्तेगेण साधारणेण नि सादभगो । तिरिक्खायु-सादभगो । मणुसायुवधगा सच्चजी० केव० ? अणंतभागो । सच्चसुहुमे- ५ इन्द्रियाणं केव० ? अणतभागो । अवधगा सच्चजी० केव० ? असखेज्जदिभागो । सच्चसुहुमेइन्द्रियाणं केव० ? अणतभागो ( गा ) । दोआयु० तिरिक्खायुभगो ।

§२१५. सुहुमेइन्द्रिय-पञ्चत्तेसु—धुविगाण वंधगा सच्च०केव०? सखेज्जदिभागो । अवधगा णत्थि । सादासाद पत्तेगेण सुहुमोघ । साधारणेण दोवेदणीयाण वधगा सच्च० केव० ? सखेज्जदि (सखेज्जा) भागा । अवधगा णत्थि । एटेण कमेण णेदव्व । सुहुमअपज्जत्ताण- १० धुविगाण वधगा सच्च० केव० ? सखेज्जदिभागो । अवधगा णत्थि । सादवधगा सच्चजी० केव० ? सखेज्जदिभागो । सच्चसुहुमेइन्द्रियअपज्जत्ताण केव० ? सखेज्जदिभागो । अवधगा सच्च० केव० ? सखेज्जदिभागो । सच्चसुहुमेइन्द्रियअपज्जत्ताण केव० ? सखेज्जदिभागो

भाग हैं । सर्व सूक्ष्मएकेन्द्रियजीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सरयात बहुभाग हैं । सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । असाता वेदनीयका प्रतिलोम क्रमसे भग हैं, अर्थात् असाताके वधक सर्व जीवोंके सख्यात बहुभाग हैं । सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके सरयात बहुभाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके सरयातवें भाग हैं । सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके सरयातवें भाग हैं । दो वेदनीयके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असरयात बहुभाग हैं । अवधक नहीं है । इस प्रकार सपूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंमें वेदनीयके समान भग जानना चाहिए । छह सहनन, ० विहायोगति, २ स्वरका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भग है । तिर्यचायुका साताके समान भग है । मनुष्यायुके वधक सव जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवें भाग हैं । सव सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । ( ? )

[ विशेष यहाँ अवधक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंकी सरया 'अनत बहुभाग' प्रतीत होती है । ]  
मनुष्य तिर्यचायुके वधकोंका तिर्यचायुके समान भग हैं ।

§२१५ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंम—द्रुव प्रकृतियोंके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सरयातवें भाग हैं । अवधक नहीं है । साता असाता वेदनीयके प्रथक पृथक् रूपसे सूक्ष्म जीवोंके ओषवत् भग हैं । सामान्य से दो वेदनीयके वधक सवजीवोंके कितने भाग हैं ? सरयात बहुभाग हैं । अवधक नहीं है । शेष प्रकृतियोंमें यही क्रम जानना चाहिए ।

सूक्ष्म-अपर्याप्तकोंम—द्रुव प्रकृतियोंके वधक सवजीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग हैं । अवधक नहीं है । सातावेदनीयके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? सरयातवें भाग हैं । सर्वसूक्ष्म-एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? नेसरयातवें भाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने

पञ्जत्सेसु-धुविगाण [ वधगा ] सञ्जजी० के० ? असखेज्जदिभागो । अवधगा णत्थि । सादवधगा सञ्जजी० के० ? असखेज्जदिभागो । सञ्जनादर-एइदिय पञ्जत्तापञ्जत्ताण के० ? सखेज्जदिभागो । अरधगा सञ्जजी० के० ? असखेज्जदिभागो । सञ्जनादर एइदिय-पञ्जत्तापञ्जत्ताणं के० ? सखेज्जदिभागो ( सखेज्जा भागा ) । एव असाद ५ पडिलीमेण भाणित्थ्व । दोण्ण वेदणीयाण वधगा सञ्जजी० के० ? असखेज्जदिभागो । अवधगा णत्थि । सादभगो इत्थि० पुरिसि० हस्सरदि-तिरिक्खायु-मणुसगणि-चटुजादि पचसठा० ओरालिय० अगो० छसध० मणुमायु० परघादुस्ता० आदाउज्जो० दोविहा० तम० ४ यिसादिछक्क दुस्सर-उचागोद च । असादभंगो णयुस० अरदिसोण तिरिक्खमादि-एइदियजादि हुडसठा०-तिरिक्खायु० थावरादि० ४-अधिरादिपच णीचा १० गोद च । मणुमायु-वधगा सञ्जजी० के० ? अणतभागो । सञ्जनादर-एइदिय पञ्जत्तापञ्जत्ताणं के० ? अणतभागो । अवधगा सञ्जजी० के० ? असखेज्जदि भागो । सञ्जनादर-एइदिय-पञ्जत्तापञ्जाण के० ? अणतभागो । दोआयु० छमघ० दोविहाय० दोसर० साधारणेण सादभगो । सेसाणं परियत्तीण ( ? ) युगलाण वेदणीयभगो । सुहुमे-धुविगाणं वधगा सञ्जजी० के० ? असखेज्जा भागा । १५ अवधगा णत्थि । सादवधगा सञ्जजी० के० ? सखेज्जदिभागो । सञ्जसुहुमे

वादर, एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्तताम—ध्रुव प्रकृतियोंके [ वधक ] सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असत्प्रायतर्वे भाग हैं । अवधक नहीं हैं । साता वेदनीयके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असत्प्रायतर्वे भाग हैं । सर्व वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? सञ्ख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असत्प्रायतर्वे भाग हैं । सर्व वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंके कितने भाग हैं ? सत्प्रायतर्वे बहुभाग हैं । असाताके विपर्यय इसी प्रकार प्रतिलोमक्रमसे जानना चाहिए । दोनों वेदनीयोंके वधक सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असत्प्रायतर्वे भाग हैं । अवधक नहीं हैं । श्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तियचायु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ सस्थान, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परवात, उच्छ्वास, आतप, बयोत, २ निहायोगति, व्रस ४, स्थिरादि ६, दुम्बर, उच्चगोत्रका साताके समान भग जानना चाहिए । नपुसकवेद, अरति, शोक, निर्यचरात, एकेन्द्रियजाति, हुडकसस्थान, तिर्यचायुपूर्वी, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भग है । मनुष्यायुके वधक सब जातोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असञ्ख्यातर्वे भाग हैं । सर्व वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे बहुभाग हैं । दो आयु, छद् संहनन, २ निहायोगति, २ स्वरके साम्यायमे साताके समान भग है ? शेष परित्यक्तमान युगलरूप प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भग जानना चाहिए ।

—सूक्ष्म-एकेन्द्रियामे—ध्रुव प्रकृतियोंके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असञ्ख्यातर्वे बहुभाग हैं । अवधक नहीं हैं । साता वेदनीयके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सत्प्रायतर्वे

भंगो णवुस० अरदिसो० गिरयगदि-पचजादि-वेउञ्चिय० हुडसठा०-वेउञ्चि० अंगो० गिरयाणु० परघादुस्ता० अप्पसत्थपि० तस० ४ अधिरादिछम्क णीचागोद च । गिरयमणुसायुआहारदुग तित्थयर वधगा सच्च० केव० ? अणतभागा ( गो ) । सच्चर्पंचिदियपज्जत्ताण केव० ? असरेज्जदिभागो । अवधगा सच्च० केव० ? अणतभागा । सच्चर्पंचिदियपज्जत्ताण केव० ? असरेज्जा भागा । साधारणेण सच्च-परियत्तीण ५ वेदणीयभगो । णरि चदुआयु-छसघ० सादभगो । अगो० विहाय० सरणामाण सादभंगो । आदाउज्जो० सादभगो ।

§२१७. तस० पंचिदियभगो । तसपज्जत्तेसु-धुविगाण धीणगिद्धि-दण्डओ । दोवेदणी० सत्तणोक० चदुआयु० पंचिदिय-पज्जत्तभंगो । सादभगो तिण्णिगदि-चदुजादि-वेगुञ्चियसररीर पचमठा० दोअगो० छसघ० तिण्णि-आणु० परघादुस्ता० १० आदाउज्जो० दोविहाय० तस० ४ धिरादिछम्क० दुस्सर-उच्चागोदाण च । असादभगो तिरिक्खगदि-एदियजादि ओरालि० हुडसठा० तिरिक्खाणु० धाररादि० ४-अधिरादिपच-णीचागोदाण च । साधारणेण वेदणीयभगो । णरि अगो० सघड० विहाय० सरणामाण सादभगो । आहारदुग तित्थयर वधगा सच्चजी० केव० ?

साताके समान भग है । नपु सकवेद, अरति, शोक, नरकगति, पचजाति, वैक्रियिक शरीर, हुडक सस्थान, वैक्रियिक अगोपाग, नरकानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादि ६, नीचगोत्रमे असाताके समान भग है । नरक-मनुष्यायु, आहारकद्विक तथा तीर्थकरके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग है । अनत बहुभाग है ( ? ) ।

[ विशेष—यहाँ तीर्थकर आदिके वधक जीवोंके अनतर्वे भाग पाठ प्रतीत होता है । ]

सपूर्ण पचेन्द्रिय पर्याप्तकों के कितने भाग है ? अमरुयातर्वे भाग है । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग है । अनन्तर्वे भाग है । सर्वपचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग है ? असख्यात बहुभाग है । सामान्यसे सपूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भग है । विशेष-४ आयु, ६ सहनन का साताके समान भग है । अगोपाग विहायोगति तथा स्वरनामकी प्रकृतियोंका साताके समान भग है । आतप, उद्योतका साताके समान भग है ।

§२१७ त्रसोमे-पचेन्द्रियके समान भग है । त्रस पर्याप्तकों-४ प्रकृतियोंका स्थानगृद्धि दडकके समान भग है । दो वेदनीय, ७ नोकपाय, ४ आयुका पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान भग है । तीन गति, ४ जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ सस्थान, ० अगोपाग, ६ सहनन, ३ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, ० विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादिपदक, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका सातावेदनीयके समान भग है । तियंचगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, हुडकसस्थान, तियंचानुपूर्वी, धाररादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीचगोत्रका असाताके समान भग जानना चाहिए । सामान्यसे वेदनीयके समान भग है । विशेष, अगोपाग, सहनन, विहायोगति तथा स्वर नामकी प्रकृतियोंका साताके समान भग है । आहारकद्विक, तीर्थकरके वधक सर्वजीवोंके कितने

(संखेजा भागा) । असादं बधगा सव्व० केर० ? मखेज्जदिभागो । सव्वसुहुमअपज्जत्ताण  
 केर० ? संखेजा भागा । अबधगा मव्व० केर० ? संखेज्जदिभागो । सव्वसुहुमअपज्ज  
 ताण केर० ? संखेज्जदिभागो । दोण्ण वेदणीयाण बधगा सव्व० केर० ? संखेज्जदि  
 भागो । अबधगा णत्थि । एव सव्वाओ णादव्वाओ । णरि तिरिक्खायु-सादभगो ।  
 ५ मणुमायुबधगा सव्व० केर० ? अणतभागो । मव्वसुहुमअपज्जत्ताण केर० ? अणतभागो ।  
 अबधगा सव्व० केव० ? मखेज्जदिभागो । सव्वसुहुमअपज्जत्ताण केर० ? अणत  
 भागा । दोआयु तिरिक्खायुभगो । एव वण्णदि-णिपोदाण ।

३२१६ पचिदियाण मणुसोष । पचिदियपज्जत्तेसु-पचिदिय तिरिक्खापज्जत्तमगो ।  
 णरि धुविगाण मणुसोष । साधारणेण दोवेदणीयबधगा सव्व० केर० ? अणतभागो ।  
 १० सव्वपचिदियपज्जत्ता० केर० ? असखेजा भागा । अबधगा सव्व० केर० ? अणतभागो ।  
 सव्वपचिदिय-पज्जत्ता० केव० ? असखेज्जदिभागो । एव मादभगो इत्थि० पुरिस०  
 हस्मरदि-तिरिक्खायु-देनायु तिण्णिगादि-चदुजादि-ओरालि० पचसठा० ओरालि० अगो०  
 छसठ० तिण्णिआणु० पसत्थि० धावरादि ४ थिरादिछम्फ उच्चागोद च । असाद

भाग हैं ? सख्यातवें भाग हैं ? सर्वसूक्ष्म-एकेन्द्रिय-अपर्याप्तकोंक कितने भाग हैं ? सरयातवें  
 भाग हैं ( ? )

[ विशेष-यहाँ अबधक सर्वसूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमे सरयात बहुभाग पाठ उचित प्रवीत  
 होता है । ]

असाताके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? सरयातवें भाग हैं । सर्व सूक्ष्मअपर्याप्तकोंके  
 कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । अबधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? सरयातवें भाग हैं ।  
 सबसूक्ष्म अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? सरयातवें भाग हैं । दोनो वेदनीयके बधक सर्वजीवोंके  
 कितने भाग हैं ? सरयातवें भाग हैं । अबधक नहीं हैं । इस प्रकार सब प्रकृतियोंके विषयम  
 भी जानना चाहिए । विशेष, तिर्यचायुका साताके समान भग हैं । मनुष्यायुके बधक सबजीवोंके  
 कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । सर्वसूक्ष्म अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं ।  
 अबधक सबजीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग हैं । सर्वसूक्ष्म अपर्याप्तकोंके कितने भाग  
 हैं ? अनत बहुभाग हैं । मनुष्य तिर्यचायुका तिर्यचायुके समान भग है । वनस्पति निगोदोंमें-  
 इसी प्रकार जानना चाहिए ।

५०१६ पचेन्द्रियाका-मनुष्योंके ओषणत्त भग है । पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें-पचेन्द्रिय तिर्यचपर्या  
 त्तकोंके समान भग है । विशेष, ध्रुव प्रकृतियोंम मनुष्योंके ओषणत्त जानना चाहिए । सामान्यतरे  
 दो वेदनीयके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । सर्वपचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके  
 कितने भाग हैं ? असरयात बहुभाग हैं । अबधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग  
 हैं । सर्वपचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असरयातवें भाग हैं । खोवेद, पुरपवेद, हास्य, रति  
 तिर्यचायु देवायु, तिर्यच-मनुष्य देवगति, ८ जाति, जीवार्थिक शरीर, ५ सरथान, औदारिक  
 अगोपाग, ६ सहनन, ३ आनुपूर्धा, प्रगल्भविद्यायोगति, स्वावरादि ७, स्थिरादि ६ और उच्चगोत्रों

१२२२. ण्वंसगवेदस्स-पंचणा० चदुदसणा० चदुसज० पचत० बंधगा सव्व० केव०।  
 णंतमागा । अबधगा णत्थि । पंचदस० मिच्छत्त० बारसक० भयदु० तेजाक०  
 ण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० बधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागा । सव्वणवुसग-  
 दाण केव० ? अणतभागा । अबधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वणवुसग०  
 केव० ? अणतभागो । दो-वेयणी० तिण्णिवेद० जस० अजस० दोगोद च पचेगेण ५  
 साधारणेण च तिरिक्खोघ । हस्सरदि-अरदिसोगाण पचेगेण तिरिक्खोघ । साधारणेण  
 गीणगिद्धिभगो । आयुचत्तारि वि तिरिक्खोघ । एव णाम-पगडीण परियत्तमाणीण  
 चेगेण तिरिक्खोघ । साधारणेण थीणगिद्धिभगो । णवरि अगोव० सघड० विहाय०  
 णणामाण सादभगो ।

१२२३. अवगदवेदेसु-पंचणा० चदुदसणा० सादावे० चदुसज० जसगि० १०  
 उचागो० पचत० बधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वअवगदवे० केव० ?  
 अणतभागो । अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वअवगदवे० केव० ?  
 अणतभागा ।

१२२४. कोधे-पंचणा० चदुदसणा० चदुसज० पचत० बधगा सव्वजी० केव० ?  
 चदुभागो देसुणो । अबधगा णत्थि । पचदस० मिच्छ० बारसक० भयदुगु० तेजाक० १५

१२२२ नपुसकवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, ५ अतरायके बधक  
 सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनत बहुभाग है । अवधक नहीं है । ५ दर्शनावरण,  
 मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कामीण शरीर, वर्ण ४ अगुरुत्तधु, उपघात,  
 निर्माणके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । सपूर्ण नपुसकवेदियोंके  
 कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं ।  
 सर्व नपुसकवेदियोंके कितने भाग है ? अनतवें भाग हैं । दो वेदनीय, तीन वेद, यश कीर्ति,  
 अयश, कीर्ति, ० गोत्रका प्रत्येक तथा सामान्यसे तिर्यंचोके ओघवत् जानना चाहिए ।  
 हास्य-रति, अरति-शोकमे प्रत्येकसे तिर्यंचोके ओघवत् भग है । सामान्यसे स्त्यानगृद्धिके समान  
 भग है । बार आयुका तिर्यंचोके ओघ समान भग है । परिवर्तमान नामकर्मकी प्रकृतियोंका  
 प्रत्येकसे तिर्यंचोके ओघवत् भग है । सामान्यसे स्त्यानगृद्धिके समान भग है । विशेष, अगोपाग,  
 सहनन, विहायोगति तथा स्वरका सातावेदनीयके समान भग है ।

१२२३ अपगतवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, ४ सज्वलन, यश कीर्ति,  
 उच्चगोत्र, ५ अतरायके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनतवें भाग है । सर्व अपगतवेदियोंके  
 कितने भाग हैं ? अनतवें भाग है । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनतवें भाग है । सर्व  
 अपगतवेदियोंके कितने भाग है ? अनत बहुभाग है ।

१२२४ क्रोधरूपायमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, ५ अतरायके बधक सर्व  
 जीवोंके कितने भाग है ? कुछ कम चार भाग है । अवधक नहीं है । ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व,  
 १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कामीण, वर्ण ४, अगुरुत्तधु, उपघात, निर्माणके बधक सर्वजीवोंके



अवधगा सव्वजी० केव० ? असखेज्जदिभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? अणतभागो ।  
साधारणेण धुग्गिण भगो कादव्वो । ओरालियअगो० छसघ० दोविहा० दोम०  
पचेगेण साधारणेण वि सादभगो । सेसाण परियत्तियाण वेदभगो ।

§२२१. इत्थिवेदेसु—पचणा० चदुदसणा० चदुसज० पचत० बधगा सव्वजी०

५ केव० ? अणतभागो । अवधगा णत्थि । पचदस० मिच्छत्त-भारसक० भयदु० तेजक०  
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० बधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वत्थि  
वेद० केव० ? असखेज्जदि(आ)भागा । अवधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्व  
इत्थिवेद० केव० ? असखेज्जदिभागो । दोवेदणी० तिण्णिवेद-जस-अजस० दोमोदा  
पचेगेण साधारणेण वि पच्चिदिय-तिरिक्खणीभगो । आयुग्गण जोणिणीभगो ।  
१० हस्सरदि-तिण्णिगादि-चदुजादि-वेगुव्विय० पचसठा० दोअगो० छसघ० तिण्णि-आपु०  
आदाउज्जो० दोविहा० तस-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण थिरादि पच दुस्सर उच्चागोद च  
पचेगेण सादभगो । अरदि-सोग-तिरिक्खगादि-एइदिय-ओगालिय हुडसठा० तिरिक्खापु०  
परघादुस्ता० थावर-वादर-पज्जत्त-पचेय-सरीर-अथिरादि० ४ णीचागोदं च असादभगो ।  
एव पचेगेण साधारणेण पच्चिदियभगो । आहारदुग्ग तित्थपर च पच्चिदियभगो । तिण्णि  
१५ अगो० छसघ० दोविहा० सुस्सर-दुस्सर-साधारणेण सादभगो । एवं पुरिसवेदस्त वि ।

काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंके समान भग है ।  
औदारिक अगोपाग, छह सहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके बधकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे

साता वेदनीयके समान भग जानना चाहिए । शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंका वेदके समान भग है ।

§२२१ स्त्रीवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्यलन, ५ अतरायके बधक सर्वजीवोंके  
कितने भाग हैं ? अनतयें भाग हैं । अबधक नहीं हैं । ५ दर्शनावरण, मिध्यात्व, १२ कषाय, भय,  
जुगुप्सा, तैजस-कामाण शरीर, वर्ण ४, अगुस्तपु, उपघात, निर्माणके बधक सर्वजीवोंके कितने  
भाग हैं ? अनतयें भाग हैं ? सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग हैं ? असरघात बहुभाग हैं । अबधक  
सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतयें भाग हैं । सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग हैं ? असरघातयें  
भाग हैं । दो वेदनीय, ३ वेद, यश कीर्ति, ध्ययश कीर्ति तथा ० गोत्रके प्रत्येक तथा सामान्यसे  
पचेन्द्रिय तिर्यचिनीने समान भग है । आयुओंमे योनिमतीके समान भग है । हास्य, रति,  
तीन गति, चार जाति, वैज्जिक शरीर, ५ सस्थान, दो अगोपाग, ६ सहनन, तीन ध्यानुपूर्वी,  
ध्यानप, उद्योत, दो विहायोगति, व्रस, सूदम, अपर्याप्तक, साधारण, स्थिरादि पाच, दुस्वर तथा  
उच्चगोत्रना प्रत्येकसे साताके समान भग है । अरति, शोक, तिर्यचगति, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक  
शरीर, हुडक सस्थान, तिर्यचापुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, वादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, शरीर,  
अस्थिरादि ४ तथा नीच गोत्रके बधकने असाता वेदनीयने समान भग है । प्रत्येक तथा सामान्यसे  
पचेन्द्रियने समान भग है । आहारकद्विक तथा तीर्थकरका पचेन्द्रियके समान भग है । तीन  
अगोपाग, ६ सहनन, दो विहायोगति, सुस्वर, दुस्वरका सामान्यसे साताके समान भग है ।  
पुरूपवेद म—स्त्रीवेदके समान भग है ।

आयुगाण तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओ० असादभगो । मणुस-  
गदि-ओरालि० अगो० छसषड० मणुसाणु० परधादुस्ता० आदाउजो० दोविहा०  
दोसर० पत्तेगेण वि साधारणेण वि सादभगो । चदुगदि-चदुआणु० साधारणेण  
वेदभगो । ओरालिय० वधगा सव्वजी० के० ? चदुभागो देसणी । सव्वकोधेसु  
के० ? अणता मागा । अणधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो । सव्वकोधेसु के० ? ५  
अणतभागो । तिण्णिमरीरण साधारणेण वेदभगो । एव माणमायात्रि ।

§२२५. लोभेसु-पंचणा० चदुदसणा० पंचतरा० बंधगा सव्वजी० के० ?  
चदुभागो सादिरेयो । अणधगा णत्थि । पंचदस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाक०  
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० के० ? चदुभागो सादिरेयो । सव्व-  
लोभाण के० ? अणता भागा । अवधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो । सव्वलोभाण १०  
के० ? अणतभागो । सादासाद पत्तेगेण कोधभगो । साधारणेण दोण्णं वेदणीयाणं  
वधगा सव्वजी० के० ? चदुभागो सादिरेयो । अवधा ( धगा ) णत्थि । अथवा साद-  
वधगा सव्वजी० के० ? सखेज्जदिभागो । सव्वलोभे के० डिओ भागो ? मंखेज्जदि-  
भागो । अणधगा सव्वजी० के० ? चदुभागो सादिरेयो । सव्वलोभे के० ? सखे-

तिर्यंचानुका सात्वाके समान भंग है । चारों आयुओंका तिर्यंचायुके समान भंग है । तिर्यंचगति,  
तिर्यंचानुपूर्वीका असात्वाके समान भंग है । मनुष्यगति, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, मनुष्यानु-  
पूर्वी, परधात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, ० विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे सात्वा  
के समान भंग है । चार गति, चार आनुपूर्वीका सामान्यसे वेदके समान भंग है । औदारिक  
शरीरके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग हैं । सपूर्ण क्रोधियोंके कितने  
भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सपूर्ण  
क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । तीनों शरीरका साधारणसे वेदके समान भंग है ।

मान तथा मायाकषायमे—क्रोधके समान भंग है ।

§२२५. लोभकषायमे—५ ज्ञानारण्य, ४ दर्शनारण्य, ५ अतरायके वधक सर्वजीवोंके कितने  
भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं । अवधक नहीं हैं । पाच दर्शनारण्य, मिध्यात्व, १६ कषाय,  
भय-शुग्ता, तजम-वर्णा, चार ४, अगुरुलघु, उपधात, निर्माणके वधक सर्वजीवोंके कितने  
भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं । सपूर्ण लोभियोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं ।  
अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ?  
अतर्वे भाग हैं । सात्वा-असात्वाका प्रत्येकसे क्रोधके समान भंग है । सामान्यसे दोनों वेदनीयोंके  
वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं । अवधक नहीं है । अथवा सात्वाके  
वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ?  
सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं । सर्वलोभियों  
के कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं ( ? ) ।

- वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० वधगा सव्वजी० के० ? चदुभागो देख्णो ।  
 सव्वकोधेसु के० ? अणतभागा । अवधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो ।  
 सव्वकोधेसु के० ? अणतभागो । सादवधगा सव्वजी० के० ? सखेज्ज  
 दिभागो । सव्वकोधेसु के० ? सखेज्जदिभागो । अवधगा सव्वजी० के० ?  
 ५ सखेज्जदिभागो । सव्वकोधेसु के० ? सखेज्जा भागा । असादवधगा सव्वजी०  
 के० ? सखेज्जदिभागो । सव्वकोधेसु के० ? सखेज्जा भागा । अणधगा सव्वजी०  
 के० ? सखेज्जदिभागो । सव्वकोधेसु के० ? सखेज्जदिभागो । दोण्ण वेदणीयाण  
 वधगा सव्वजी० के० ? चदुभागो देख्णो । अवधगा णत्थि । एव जस०  
 अज्जस० दोगोद् च । इत्थि० पुरिस० पत्तेणेण सादभगो । णयुस० असादभगो ।  
 १० साधारणेण तिण्णिवेदाण वधगा सव्वजी० के० ? चदुभागा देख्णो । सव्वकोधेसु  
 के० ? अणतभागा । अवधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो । सव्वकोधेसु के० ?  
 अणतभागो । एव हस्सरदि-दोयुगल । पचजादि-उसठा-उत्तसाधारदि अट्टयुगल  
 तिण्णिआयु-वधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो । सव्वकोधेसु के० ? अणतभागो ।  
 अवधगा सव्वजी० के० ? चदुभागो देख्णो । सव्वकोधेसु के० ? अणतभागो ।  
 १५ एव दोगदि-दोसरी-दोअगो-दोआणु० । तित्थय० तिरिक्खाउ० सादभगो । चदुण्ण

कितने भाग है ? कुछ कम चार भाग है । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग है ।  
 अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनतवें भाग हैं ? सर्व क्रोधियोंके कितने भाग है ? अनतवें  
 भाग है । स्रतावेदनीयके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? सरयातवें भाग हैं । सर्व क्रोधियों  
 के कितने भाग है ? सरयातवें भाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? सख्यातवें भाग  
 हैं । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । असातावेदनीयके वधक सर्वजीवोंके  
 कितने भाग है ? सरयातवें भाग हैं । सर्व क्रोधियोंके कितने भाग है ? सरयात बहुभाग है ।  
 अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? सरयातवें भाग हैं । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ?  
 सख्यातवें भाग है । दोनो वेदनीयोंके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? छुट कम चार भाग हैं ।  
 अवधक नहीं हैं । यश कीर्ति, अयश कीर्ति, दो गोत्रास इसी प्रकार भग है । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके  
 प्रत्येककी अपेक्षा सातावे समान भग जानना चाहिये । नपुसफवेदका असाताके समान भग है ।  
 सामान्यसे तीन वेदोंके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? कुछ कम चार भाग हैं । सर्वक्रोधियों  
 के कितने भाग है ? अनत बहुभाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं ।  
 सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग है । हास्य रति, अरति शोकमें वेदोंके समान भग  
 है । ५ जाति, ६ मस्थान, अस-स्थावरदि आठ युगल तथा तीन प्रायुके वधक सर्वजीवोंके कितने  
 भाग है ? अनतवें भाग है । सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग है । अवधक सर्वजीवों  
 के कितने भाग है ? कुछ कम चार भाग है । सपूर्ण क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग  
 है । दो गति, २ शरीर, दो अगोपाग, दो आयुपूर्वभ इसी प्रकार जानना चाहिये । तीर्थकर तथा

पत्तेणेण साधारणेण वि देवोष । तिण्णिआयु-दोगदि-तिण्णिजादि-वेणुच्चियअगोवंग-  
दोआणुपुच्चि० सुहुम-अपज्जत्त-साधारण० मणजोगीण णिरयगदिभगो । तिरिक्खगदि-  
एहंदिय हुं डसठाण-तिरिक्खाणुपुच्चि-थावर-अथिरादिपच-णीचागोदाणं च असादभंगो ।  
पंचिंदियजादि-ओरालिय० अगो० छसंघ० मणुसगदि० मणुसगदि-पाओग्गाणुपु०  
आदाउज्जो० दोविहाय० दोसर० पत्तेणेण साधारणेण वि सादभगो । ओरालियसरीरस्स ५  
बादरभगो केण कारणेण देवगदि-वधगाण असखेज्जदिभागो ? असखेज्जजासायुगेषु  
विभंगणाणिवा(रा)सिस्स असखेज्जदिभागो णिभगे वट्टदि । तदो असखेज्जजासायुगादो  
देवा असखेज्जगुणा चि ।

‡२२९. आभि० सुद० ओधिणा०-पचना० छदस० वारसक० पुरिस० भयदु०  
पचिंदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिस० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० १०  
४-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोद-पचतराइगाण वधगा सव्वजी० केव० ?  
अणंतभागो । सव्वबंधगा आभि० सुद०-ओधि० केव० ? असखेज्जा भागा । अणधगा  
सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वआभिणि-सुद०-ओधिणा० केव० ? असखेज्जदि-  
भागो । दोवेदणीय हस्सरदि-दोयुगल विगदि तिण्णियुगल मणजोगिभंगो । दोआयु-  
गदिचदुक्क आहारदुग तित्थयर विभंगणाण च देवगदिभगो । मणुसगदि-पचग १५

३ आयु, २ गति, तीन जाति, वैक्रियिक अगोपाग, दो आयुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण-  
का मनोयोगियोंके नरकगतिके समान भग है । तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुडकमस्थान,  
तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि पचक तथा नीच गोत्रका असाताके समान भग है । पचेन्द्रिय  
जाति, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो  
विहायोगति तथा दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे भी साताके समान भग है ।

शका-औदारिक शरीरका बादर भग किस कारणसे देवगतिके वधकोंके असख्यातवें  
भाग है ?

समाधान-त्रिभगज्ञानियोंकी राशिका असख्यातवा भाग असख्यात वर्षकी आयुवालोंमें विभग  
ज्ञानमें रहता है, इस कारण असख्यात वर्षकी आयुवालोंसे देव असख्यात गुणे हैं ।

‡२२९ आभिनिवोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, पुरुष-  
वेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कामीण शरीर, समचतुरस्रस्थान, वञ्चपभसहनन,  
वर्ण ४, अगुस्तु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा  
५ अतरायके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग है । सपूर्ण आभिनिवोधिक-श्रुत-  
अवधिज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ?  
अनतवें भाग हैं । सपूर्ण आभिनिवोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवें  
भाग है । दो वेदनीय, हास्य-रति, अरति शोक, स्थिरादि तीन युगलोका मनोयोगियोंके समान  
भग है । दो आयु, ४ गति, आहारकट्टिक, तीर्थकरके विभगज्ञानियोंके देवगतिके समान भग हैं ।

ज्जदिभागो ( ज्ञाभागा ) । असादबधगा सव्वजी० केव० ? सखेज्जदिभागो । सव्वतोमे केव० ? सखेज्जा भागा । अयधगा सव्वजी० केव० ? सखेज्जदिभागो । सव्वतोमे केव० ? सखेज्जदिभागो । एवं अस० अज्जस० दोगोदं च । तिण्णिवे० [हस्तादि] दोयुगल० चदुआयु०-चदुगदि-पचजादि-सव्वसरीर-छसठा० तिण्णिअगो० छसष० चदुआयु० परवा ५ दुस्सा० आदाउज्जो० दोविहाय० तसयावरादिणयुगलाण कोधमगो । णवति य हि चदुभागे देवणे त हि चदुभागे मादिरेयो कादव्यो । एवं णाणत्त कोधादू० ( ? ) ।

§२२६. अकसाई-कैरलि ( ल ) णा० कैरलदसणा० सादावे० अणगदवेदमगो ।

§२२७ मदि० सुद०-धुविगाण मिच्छत्त वज्ज एहदियमगो । मिच्छत्त सेसणं च तिरिक्खसोय ।

१० §२२८. विभगे-धुविगाणं बधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । अयधगा णत्थि । मिच्छत्त-परषादुस्सास-वादापज्जत्त-पत्तेयाण बधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वविभगा केव० ? अमंखेज्जा भागा । अयधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वविभगे केव० ? असखेज्जदिभागो । दोवेदणीय-तिण्णिवेदणीय ( वेद ) सव्वयुगलाणं

[ विशेष-यहां अबधक सर्वलोभियोंकी सरया 'सरयात बहुभाग' वपयुक्त प्रतीत होती है । ]

असाताके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? सख्याततर्षे भाग हैं । सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? सरयात बहुभाग हैं । अबधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? सरयाततर्षे भाग हैं । सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? सरयाततर्षे भाग हैं । यश कीर्ति, अयश कीर्ति तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार भग हैं । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, चार आयु, चार गति, ५ जाति, सर्व शरीर, ६ मस्थान, तीन अगोपाग, ६ सहनन, ४ आयुपूर्वी, परधात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, अस-स्थावरादि ९ युगलका क्रोधके समान भग जानना चाहिए । विशेष, जहाँ पर दंशोन चार भाग हो, यहाँ इसमें साधिक चार भाग कर लेना चाहिए । यही क्रोधसे यहाँ विशेषता है ।

§२०६ अबपायी, केचलज्जानी, केयलदशनीमें-साता वेदनीयका अपगतवेदके समान भग है ।

§२२७ मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमें-मिथ्यात्वको छोड़कर गेप ध्रुय प्रकृतियोंका एकैन्द्रियके समान भग है । मिथ्यात्व तथा गेप प्रकृतियोंका तिर्यंचोंके ओषवत् भग है ।

§२२८ विभगज्ञानमें-ध्रुय प्रकृतियोंके बधक सर्वजावोंके कितने भाग हैं ? अनतर्षे भाग हैं । अयधन नहीं हैं । मिथ्यात्व, परधात, उच्छ्वास, वादा, पर्याप्त, प्रत्येकके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्षे भाग हैं । सर्वविभग ह्यानियोंके कितने भाग हैं ? असरयात बहुभाग हैं । अबधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्षे भाग हैं । सर्व विभगज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असरयाततर्षे भाग हैं । दो वेदनीय, तीन वेदनीय ( वेद ) सपूर्ण युगल प्रकृतियोंके प्रत्येक तथा सामान्यमें देयगतिसे ओषवत् जानना चाहिए ।

[ विशेष-यहां तीन वेदनीयके रणनमें 'तीन वेद' पाठ समत प्रतीत होता है । ]

पत्तेगेण साधारणेण वि देवोष । तिण्णिआयु-दोगदि-तिण्णिजादि-वेगुव्वियअंगोरंग-  
दोआणुपुव्वि० सुहुम-अपज्जत्त-साधारण० मणजोगीण णिरयगदिभगो । तिरिक्खगदि-  
इदिय-हुं डसठाण-तिरिक्खणुपुव्वि-थार-अथिरादिपच-णीचागोदाण च असादभगो ।  
पंचिदियजादि-ओरालिय० अगो० छसंध० मणुसगदि० मणुसगदि-पाओग्गाणुपु०  
आदाउज्जो० दोविहाय० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभगो । ओरालियसरीरस्म ५  
वादरभगो केण कारणेण देवगदि-बंधगाणं असखेज्जदिभागो ? असखेज्जनामायुगेषु  
विभगणाणिवा(रा)सिस्स असखेज्जदिभागो विभगे वड्ढिदि । तदो असखेज्जवासायुगादो  
देवा असखेज्जगुणा त्ति ।

१२२९. आभि० सुद० औधिणा०-पचणा० छदंस० वारसक० पुरिस० भयदु०  
पचिदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिम० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थवि० तस० १०  
४-सुभग-सुस्वर-आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोद-पचतराद्दगाण वधगा सव्वजी० केव० ?  
अणतभागो । सव्ववधगा आभि० सुद०-ओधि० केव० ? असखेज्जा भागा । अणवधगा  
सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वआभिणि-सुद०-ओधिणा० केव० ? असखेज्जदि-  
भागो । दोवेदणीय हस्मरदि-दोपुगल थिरादि तिण्णियुगल मणजोगिभंगो । दोआयु-  
गदिचहुक्क आहारदुग तित्थयर विभंगणाण च देवगदिभंगो । मणुसगदि पंचग १५

३ आयु, २ गति, तीन जाति, वैक्रियिक अगोपाग, दो आयुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण-  
का मनोयोगियोंके नरकगतिके समान भग है । तियंभगति, एकेंद्रिय जाति, हुडकसस्थान,  
तियंचानुपूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि पचक तथा नीच गोत्रका असाताके समान भग है । पचेन्द्रिय  
जाति, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो  
विहायोगति तथा दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे भी साताके समान भग है ।

शका-औदारिक शरीरका वादर भग किस कारणसे देवगतिके वधकोंके असरयातवें  
भाग है ?

समाधान-विभगज्ञानियोंकी राशिका असरयातना भाग असरयात वर्षकी आयुवालेंमें विभग  
ज्ञानमें रहता है, इस कारण असरयात वर्षकी आयुवालेंसे देव असरयात गुणे हैं ।

१२२९ आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानमें—५ ज्ञानानरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, पुरुष  
वेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस कार्माण शरीर, समचतुरस्रस्थान, वज्रवृषभसहनन,  
वर्ण ४, अगुस्तधु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा  
५ अतरायके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग है । सपूर्ण आभिनिबोधिक-श्रुत  
अवधिज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असरयात बहुभाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ?  
अनतवें भाग हैं । सपूर्ण आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असरयातवें  
भाग हैं । दो वेदनीय, हास्य-रति, अरति शोक, स्थिरादि तीन युगलेंका मनोयोगियोंके समान  
भग है । दो आयु, ४ गति, आहारकद्रिक, तीर्थकरके विभगज्ञानियोंके देवगतिके समान भग है ।

धुनिगाण भगो । पत्तेणेण साधारणेण वि गदिधुनिगाण भगो । एव दोमरीर-दोअगो ।  
दोआणु० । एव ओधिदं० ।

१२३०. मणपज्जन०-मणुसिभगो । णवरि वेदणीयस्स अनधगा णत्थि । एव  
सजदेपि । वेदणीयस्स अवधगा अत्थि ।

५ १२३१. सामाह० छेदो०-पचणा० चदुदस० लोभसजलण-उच्चागोद-पचतराहगाण  
केरडिओ भागो ? अणतभागो । अवधगा णत्थि । सेम मणपज्जनभगो ।

१२३२. परिहार०-आहारकाजोगिभगो ।

१२३३. सुहुमसप०-पचणा० चदुद० साद० जस० उच्चागो० पचंत० पचणा  
सव्वजी० केव० ? अणतभागो । अवधगा णत्थि ।

१० १२३४. यथाक्खाद०-सादधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वयथाक्खाद०  
केव० ? सखेज्जा भागा । अवधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वयथाक्खाद०  
केव० ? सखेज्जा भागा ( सखेज्जदिभागो ) । मजदासजदस्स अणुत्तरभगो । णवरि  
देवाणुत्तिययर च ओधिभगो । असजदा तिरिक्खोघ । तित्थयर मूलोपं । चक्खुदस०

मनुष्यगति ५ के ध्रुव प्रकृतियोंके समान भग है । प्रत्येक तथा साधारणसे गतिका ध्रुव प्रकृतियोंके  
समान भग है । दो शरीर, दो अगोपाग, दो आनुपूर्वीका भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।  
अवधिदर्शन में-उपरोक्त ज्ञानत्रयके समान है ।

१२३० मन पर्ययज्ञानमे-मनुष्यनियोंके समान भग है । विशेष, यहा वेदनीयके अनधक नहीं  
हैं । सयतोमे इसी प्रकार है । विशेष, यहाँ भी वेदनीयके अवधक नहीं हैं ।

१२३१ सामायिक-छेदोपस्थापना सयमम-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, लोभ-सव्वलन  
उच्चोत्तर तथा ५ अतरायके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अवधक  
नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंका मन पर्ययज्ञानके समान भग हैं ।

१२३२ परिहारविशुद्धिसयममे-आहारक्काययोगीके समान भग हैं ।

१२३३ सूक्ष्म-सापराय-सयमम-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यश कीर्ति  
उच्चोत्तर, ५ अतरायके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अनधक नहीं हैं ।

१२३४ यथाख्यात सयममे-साता वेदनीयके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनत  
भाग हैं । सत्र यथाख्यात सयमियोंके कितने भाग हैं ? सत्रयात बहुभाग हैं । अवधक सर्वजीवों  
कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व यथाख्यात सयमियोंके कितने भाग हैं ? सव्वय  
बहुभाग हैं ।

[ विशेष-यहाँ सर्व यथाख्यात सयमियोंके अवधकोंकी गणना सत्रयातर्वे भाग ठीक प्र  
होती है । ]

सयमासयममे-अनुत्तरयासी देवोंके समान भग जानना चाहिए । विशेष, द्वायु और ती  
परप्रकृतिना अवधिज्ञानके समान भग है । अमयतोमे-तियर्थोंके ओषवत् जानना चाहिए ।  
दीधकरका मूलके ओषवत् भग जानना चाहिए ।

तसपञ्जतमंगो । अचक्सुद० काजोगिभगो ।

१२३५. क्णिणाए-पचणा० छदसणा० वारसरु० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचतराडगाण वंधना सव्वजी० के० ? तिभागो सादिरेयो । अणधगा णत्थि । धीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त० अणताणु० ४ वधगा सव्वजी० के० ? तिभागा सादिरेया । सव्वक्णिणाए केव० ? अणता भागा । अणधगा सव्वजी० के० ? ५ अणंतभागो । मव्वक्णिणाए के० ? अणंतभागो । एं लोभमगो पत्तेगेण साधारणेण वि । णवरि दुपगदीणं वधगा सव्वजी० केव० ? तिभागो सादिरेयो । अणधा (धगा) णत्थि । एव परिचत्तमाणीण सव्व्याणं आयुगाण अगोपग-संधडण-विहायगदिसरवज्जार्ण पि । एदासिं पत्तेगेण साधारणेण वि सादमगो । एवं णीलकाउण । णरि तिभागो देसुणो ।

१२३६. तेऊए-पचणा० छदमणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० १० ४ वादरपज्जत्ते ( ? ) णिमि० पचत० वधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो । अणधगा णत्थि । दोआयु आहारदुगं वित्थपर च ओधिभगो । वारसरुसायाण धीणगिद्धि-भगो । देवगदिचदुक्क सादमगो । सेसाण देवोष ।

१२३७. पम्प्राए-पचणाणावरणीय-छदसणा० चदुसंजलण० भयदु० पंचिदि० तेजा-

चक्षुदर्शनमे—अस पर्याप्तकत्ता भग है । अचक्षुदर्शनमे—काययोगियोंके समान भग है ।

१२३५ कृष्णलेश्यामे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १० कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अतरायके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक तीन भाग प्रमाण हैं । अवधक नहीं हैं । स्थानगृद्धिरिक, मिथ्यात्व, अनतापुनधी ४ के वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक त्रिभाग हैं । सर्व कृष्णलेश्यावालोकके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग है । सर्व कृष्णलेश्यावालोकके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । प्रत्येक तथा सामान्यसे लोभकपायके समान भग जानना चाहिए । विशेष, साता असातारूप दो प्रकृतियोंके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक त्रिभाग हैं । अवधक नहीं हैं । इस प्रकार परिवर्तमान सर्व आयु, अगोपग, सहनन तथा विद्यायोगतिका जानना चाहिए । यहाँ स्वरको छोड़ देना चाहिए । इनका प्रत्येक तथा सामान्यसे सातावेदनीयके समान भग है । नील तथा कापोत्तेश्यामे—येमा ही जानना चाहिए । विशेष, यहाँ देशीन त्रिभाग जानना चाहिए ।

१२३६ तेचेलेश्यामे—५ ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, ४ सञ्चलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, यण ४, अगुरुलघु ४, वादर, प्रत्येक, निर्माण, ५ अतरायके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अवधक नहीं हैं । दो आयु, आहारकट्टिके, तीर्थकरका अणधिज्ञानके समान भग हैं । बारह कपायोंका स्थानगृद्धिके समान भग जानना चाहिए । देवगतिचतुष्कवा साता वेदनीयके समान भग है । शेष प्रकृतियोंका द्योके ओघवत् है ।

१२३७ पम्प्राएश्यामे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सञ्चलन, भय-जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति,



ध्रुविगाणं भगो । पत्तेगेण साधारणेण वि गदिध्रुविगाण भगो । एव दोसरीर-दोत्रगो०  
दोआणु० । एव ओधिदं० ।

§२३०. मणपज्जव०-मणुसिभगो । णवरि वेदणीयस्स अबधगा णत्थि । एवं  
सजदपि । वेदणीयस्स अबधगा णत्थि ।

५ §२३१ सामाइ० छेदो०-पंचणा० चदुदस० लोभसजलण-उच्चागोद-पचतराइगाण  
केरुट्टिओ भागो ? अणतभगो । अबधगा णत्थि । सेस मणपज्जवभगो ।

§२३२. परिहार०-आहारकाजोगिभगो ।

§२३३. सुहुमसप०-पंचणा० चदुद० साद० जम० उच्चागो० पचत० मधगा  
सव्वजी० केव० ? अणतभगो । अबधगा णत्थि ।

१० §२३४. यथाक्खाद०-सादबधगा मव्वजी० केव० ? अणतभगो । सव्वयथाक्खाद०  
केर० ? सखेज्जा भागा । अबधगा सव्वजी० केव० ? अणतभगो । सव्वयथाक्खाद०  
केव० ? सखेज्जा भागा ( सखेज्जदिभागो ) । मज्जदामज्जदस्स अणुत्तरभगो । णवरि  
देवायुत्तित्थयर च ओधिभगो । असजदा तिरिक्खोघ । तित्थयरं मूलोघ । चक्खुदस०

मनुष्यगति ५ के ध्रुव प्रकृतियोंके समान भग है । प्रत्येक तथा साधारणसे गतिका ध्रुव प्रकृतियोंके  
समान भग है । दो शरीर, दो अगोपाग, दो आनुपूर्वीका भी इसी प्रकार जानना चाहिये ।  
अवधिदर्शन में-उपरोक्त ज्ञानत्रयके समान है ।

§२३० मन पर्ययज्ञानमें-मनुष्यनियोंके समान भग है । विशेष, यद्वा वेदनीयके अबधक नहीं  
हैं । सयतोंम इसी प्रकार है । विशेष, यहाँ भी वेदनीयके अबधक नहीं हैं ।

§२३१ सामायिकृच्छेदोपस्थापना सयममें-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, लोभ-सव्वलन,  
उद्योग तथा ५ अतरायके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । अबधक  
नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंका मन पर्ययज्ञानके समान भग हैं ।

§२३२ परिहारविशुद्धिसयनम-आहारकवाययोगीके समान भग हैं ।

§२३३ सूक्ष्म-सापराय-सयममें-५ ज्ञानावरण, ८ दर्शनावरण सातावेदनीय, यशकीति,  
उद्योग, ५ अतरायके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । अबधक नहीं हैं ।

§२३४ यथाख्यात सयममें-साता वेदनीयके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें  
भाग हैं । सत्र यथाख्यात सयमियोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । अबधक सर्वजीवोंके  
कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । सर्व यथाख्यात सयमियोंके कितने भाग हैं ? सख्यात  
बहुभाग हैं ।

[ विशेष-यहाँ सर्व यथाख्यात सयमियोंमें अबधकोंकी गणना सख्यातवें भाग ठीक प्रतीत  
होती है । ]

सयमासयनम-अनुत्तरवासी दवोंके समान भग जानना चाहिये । विशेष, द्वायु और तीर्थ  
परप्रकृतिका अपधिज्ञानके समान भग है । अनयतोंम-तिर्यचाके ओषवत् जानना चाहिये ।  
सीधकरके मूलके ओषवत् भग जानना चाहिये ।

१२३८. सुक्काए-पंचणा० छद्दसणा० वारसरु० भयदु० पचिदि० तेजाक०  
 वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि० पचत० वधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो ।  
 सव्वसुक्काए केव० ? असखेजा भागा । अणधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो ।  
 सव्वसुक्काए केव० ? जसखेजदिभागो । धीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-अणताणुनधि० ४  
 तित्थयर वधगा केव० ? अणताभागो (अणतभागो) । सव्वसुक्काए केव० ? सखेज्जदि- ५  
 भागा (गो) । अणधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । सव्वसुक्काए केव० ? सखेजा  
 भागा । दोवेदणी० हस्तादिदोयुगल-धिरादितिणियुगल च मणजोगिभंगो । इत्थि०  
 णउंम० पचसठा० पचसघ० अप्यसत्थ० दूमग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोद च धीण-  
 गिद्धिभंगो । पुरिस० पसत्थानि० सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोद अमादभंगो । दोआयु-  
 दोगदि-आहारदु० ओधिभंगो । मणुसगदि० ४ वधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो । १०  
 सव्वसुक्काए केव० ? अमखेजा भागा । अणधगा सव्वजी० केव० ? अणतभागो ।  
 सव्वसुक्काए केव० ? असखेज्जदिभागो । एण पचेणेण साधारणेण वि तिणिवेद-  
 दोगदि-तिणिसीर-छसठाण दोअगो० छमंघ० दोआणुपु० दोनिहाय० सुभगादि-  
 तिणियुगल-दोमोद आभिणि० भंगो । अट्टपद तेउ-लेस्मिग-तिरिक्ख-मणुसा०  
 णउमगवेद ण वधति । पम्माए० सुक्कले० इत्थि-णउमकवेद ण वधति । भवसिद्धिया १५

१२३८ शुक्ल लेश्यामे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १० कषाय, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय,  
 तेजस-शार्माण, वर्ण ४, अगुश्लुषु ४, तस २, निर्माण, ५ अतरायोंके वधक सर्व जीवोंके कितने  
 भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्याजालोंके कितने भाग हैं ? असत्यात बहुभाग हैं ।  
 अयधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्याजालोंके कितने भाग  
 हैं ? असत्यातर्वे भाग हैं । स्थानगृद्धिप्रिक, मिथ्यात्व, अनतानुपधी ४ तथा तीर्थकरके वधक  
 सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सब शुक्ल लेश्याजालोंके कितने भाग हैं ?  
 सत्यातर्वे भाग हैं । अयधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्या  
 जालोंके कितने भाग हैं ? सत्यात बहुभाग हैं । दो वेदनीय, हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन  
 युगल-मनोयोगियोंके समान भग जानना चाहिए । स्त्रीवेद, नपुसकवेद, ५ सस्थान, ५ सहनन  
 अप्रशस्त विद्यायोगति, दुर्भंग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका स्थानगृद्धिके समान भग हैं । पुरुष  
 वेद, प्रशस्त विद्यायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रका असातवके समान भग हैं ।  
 दो आयु, दो गति, आहारद्विक्रमा अणधिज्ञानके समान भग हैं । मनुष्य गति ४ के वधक  
 सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व शुक्ल लेश्याजालोंके कितने भाग हैं ?  
 असत्यात बहुभाग हैं । अयधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व शुक्ल  
 लेश्याजालोंके कितने भाग हैं ? असत्यातर्वे भाग हैं । तीन वेद, २ गति, ३ शरीर, ६ सस्थान,  
 २ अगोपाग, ६ सहनन, २ आनुपूर्वी, दो विद्यायोगति, सुभगादि तीन युगल, दो गोत्रका सामान्य  
 तथा पृथक्मे आभिनिर्गोधिक ज्ञानके समान भग हैं । अर्थ पद यह है कि तेजो-लेश्याजाले  
 तिर्यंघ तथा मनुष्य नपुसकवेदका वध नहीं करते हैं । पद्म तथा शुक्ल लेश्यामें स्त्रीवेद तथा

- क० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि० पचत० बधगा सव्वजी० केव० । अणत  
भागो । अबधगा णत्थि । धीणगिद्धितियं मिच्छत्त वागसक० सव्वजी० केव० ।  
अणतभागो । सव्वपम्माए केव० । असखेज्जा भागा । अबधगा सव्वजी० केव० ।  
अणतभागो । सव्वपम्माए केव० । असखेज्जदिभागो । दोवेदणी० हस्सादिदोयुगल  
५ थिरादितिणियुगलाण तेउभगो । इत्थि० णबुस० उधगा सव्वजी० केव० । अणत  
भागो । सव्वपम्माए केव० । असखेज्जदिभागो । अउधगा सव्वजी० केव० । अणत  
भागो । सव्वपम्माए केव० । असखेज्जा भागा । पुरिस० उधगा सव्वजी० केव० । अणत  
भागो । सव्वपम्माए केव० । असखेज्जा भागा । अउधगा सव्वजी० केव० । अणतभागो ।  
सव्वपम्माए केव० । असखेज्जदिभागो । तिण्णिवेदाण मव्व० केव० । अणतभागो ।  
१० अबधगा णत्थि । एव णउसगभगो तिण्णिआयु-दोगदि-ओरालि० पचसटा-ओरालि  
अगो० छसंघ०-दोआणु० उज्जोव० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणाद० णीचागो० ।  
पुरिस० वेदभगो देवगदि० वेयुण्णियस० समचदु० वेउच्चि० अगो० देवाणुपु० पसव्व०  
सुगग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोद च । आहारदुग तिथयर देवायुभगो । साधारणेण वि  
तिण्णिवेदाण भंगो तिण्णिगदि-दोसरीर-छसटा० दोअगो० तिण्णिआणु० दोविहा०  
१५ थिरादिछयुगल दोगोद च । तिण्णिआयु-छसघ० साधारणेण वि इत्थिभगो ।

तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अतरायके बधक सर्वजीवोंके कितने भग  
हैं ? अनतर्वे भाग है । अबधक नहीं है । स्थानगुद्धित्रिक, मिध्यात्व, १२ वपायके बधक सर्व  
जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग है । सर्वपद्मलेश्यावालोकके कितने भाग हैं ? अनन्यात  
बहुभाग हैं । अबधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग है । अबधक सर्वपद्म लेज-  
वालोकके कितने भाग हैं ? असख्यातर्वे भाग है । दो वेदनीय, हात्य, रति, अरति, शोक, स्थिर  
तीन युगलोंवा तेजोलेश्याके समान भग है । स्त्रीवेद, नपुसकवेदके बधक सर्वजीवोंके कितने भग  
हैं ? अनतर्वे भाग है । सर्वपद्मलेश्यावालाके कितने भाग हैं ? असख्यातर्वे भाग है । अउध  
सर्वजीवाके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग है । अबधक मयपद्मलेश्यावालोकके कितने भाग हैं ?  
असख्यात बहुभाग हैं । पुरुषवेदके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व पद्म  
लेश्यावालोकके कितने भाग हैं ? अनन्यात बहुभाग हैं । अबधक सबजीवोंके कितने भाग हैं ?  
अनतर्वे भाग हैं । अबधक सर्वपद्म लेश्यावालोकके कितने भाग हैं ? असख्यातर्वे भाग हैं । तीन  
वेदोंके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग है । अबधक नहीं है । तीन आयु,  
० गति, औदारक शरीर, ५ सस्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, ० आनुपूर्वी, उद्योत, अम  
शान्तिविहायोगति, हुभंग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका नपुसक वेदके समान भग है । दयागति,  
वैकियिक शरीर, समचतुरस्रसस्थान, वैकियिअ अगोपाग, दयालुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग,  
सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका पुरुष वेदके समान भग है । आहारकद्रिक, तीर्थकरका देवायुके  
समान भग है । तीन गति, दो शरीर, ६ सस्थान, दो अगोपाग, तीन आनुपूर्वी, २ विहायोगति,  
स्थिरादि छद्म युगल, दो गोत्रका सामान्यले वेदत्रयके समान भग जानना चाहिए । तीन आयु,  
छद्म सहननका सामान्यसे स्त्रीवेदके समान भग है ।

§२४१. वेदगसम्मादिष्टि-धुविगाणं वधगा सन्वजी० के० ? अणतभागो । अंधगा पत्थि । सेसाण पत्तेगेण-ओधिभंगो । साधारणेण धुनिगाण भगो कादच्चे ।

§२४२. उवसम०-ओधिभगो । णरि विसेसो जाणिदच्चा ।

§२४३. मामणसम्मा०-धुविगाणं वधगा सन्वजी० केव० ? अणंतभागो । अवधगा पत्थि । तिण्णि आयु० देवगदि० ४ पत्तेगेण सुक्काए भगो । सेसाणं पत्तेगेण ५ ओधिभंगो । साधारणेण देवोयं ।

§२४४. सम्मामिच्छा०-धुविगाण वधगा सन्वजी० केव० ? अणतभागो । अवधगा पत्थि । टीवेदणीय हस्तादिदोयुगलं थिरादितिण्णियुगल देवभगो । मणुसगदि-पंचग देवगदि० ४ सुक्काए भगो । पत्तेगेण साधारणेण वेदणीयभगो । मिच्छादिष्टि मदिभगो । णवरि मिच्छत्त-अवधगा पत्थि । सण्णिमणजोगिभगो । असण्णि-१० धुविगाण वधगा सन्वजी० केव० ? अणता भागा । अवधगा पत्थि । सेसाण पगदीयं तिरिक्खीयं ।

§२४५. आहारगे-पचना० णरदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४

§२४१ वेदकसम्यक्त्वमी-द्रुव प्रकृतियोंके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वं भाग है । अवधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंका प्रत्येकसे अवधिज्ञानके समान भग है । सामान्यसे द्रुव प्रकृतियोंका भग जानना चाहिए ।

§२४२ उपशमसम्यक्त्वमी-अवधिज्ञानके समान भग है । इसमें जो विशेषता है, वह जान लेनी चाहिए ।

[ विशेष-जैसे मनुष्यायु तथा देवायुका वध उपशमसम्यक्त्वमें नहीं होता है । तिर्यचायु तथा नरकायुका वध तो सम्यक्त्वकी मात्रके नहीं होगा, कारण नरकायुकी वध-च्युच्छिति मिध्यात्वमें और तिर्यचायुकी सासादनमें हो जाती है । ]

§२४३ सासदनसम्यक्त्वमी-द्रुव प्रकृतियोंके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वं भाग हैं । अवधक नहीं हैं । नरकायुको छोड़कर शेष ३ आयु, देवगति ४ का पृथक् रूपसे शुद्ध लेख्याके समान भग है । शेष प्रकृतियोंका प्रत्येकसे अवधिज्ञानवत् भग है । सामान्यसे देवोंके ओघवत् है ।

§२४४ सम्यक्त्वमिध्यात्वमी-द्रुव प्रकृतियोंके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वं भाग है । अवधक नहीं हैं । दो वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिरादि तीन युगलका देवगतिके समान भग है । मनुष्यगतिपचक, देवगति ४ का शुद्धलेख्याके समान भग है । प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयके समान भग है । मिध्यादृष्टिमें-मत्यज्ञानके समान भग है । विशेष, चर्हा मिध्यात्वके अवधक नहीं हैं ।

सझीमें-मनोयोगीके समान भग है । असझीमें-द्रुव प्रकृतियोंके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग है । अवधक नहीं है । शेष प्रकृतियोंका तिर्यचोंके ओघवत् भग है ।

§२४५ आहारकमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिध्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगप्सा-

ओषधमगो ।

१२३९. अब्भवसि०-तिणिण्णआयु० वेउव्वियल्लक्क० बंधगा सव्वजी० के० ।  
अणतभागो । सव्व-अभवमिद्धिया के० ? अणतभागो । अवधगा सव्वजी० के० ।  
अणतभागो । सव्वअभवसिद्धिया के० ? अणतभागो ( गा ) । तिक्खिण्ण  
५ सादमगो । आयुचत्तारि तिक्खिण्णायुमगो । धुव्वधगा सव्वजी० के० । अणत  
भागो । अवधगा णत्थि । सेसाण पगदीण पत्तेगेण साधारणेण वि पच्चिदियतिक्खिण्णमगो ।

१२४०. मम्मदिद्धि-उइगसम्मदिद्धीसु-पचणा० छदसणा० वारमक० पुत्ति०  
भयदु० पच्चिदि० तेजाक० समचदु० चज्जरिसह० वण्ण० ४ अगु० ४ पत्तत्थि०  
तस० ४ सुमग-सुस्स-आदेज णिमिण-तित्थय-उच्चागोद पचतराइगाण वधमा मव्वनी०  
१० के० ? अणतभागो । सव्वमम्मदिद्धि-उइगसम्मदिद्धि के० ? अणतभागो ।  
अवधगा सव्वजी० के० ? अणतभागो । सव्वसम्मदिद्धि-उइगसम्मदिद्धि के० ।  
अणतभागो ( गा ) । एव सव्वपगदीण पत्तेगेण साधारणेण वि एस भगो कादव्वो ।

ननुसकनेदका वध नहीं करते हैं । अव्यसिद्धिकोंमें ओषधत्त भग है ।

१२४१. अव्यसिद्धिकोंमें—३ आयु, वैकियिकपट्टके वधक मर्व जीवोंके कितने भाग हैं ?  
अनतवें भाग हैं । सर्व अव्यसिद्धिकोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । अवधक  
सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । सर्व अव्यसिद्धिकोंके कितने भाग हैं ?  
अनतवें भाग हैं ( ? ) ।

[ निशेष—यहाँ अवधक अव्योने 'अनत बहुभाग' होना उचित प्रतीत होता है । ]

तिर्यचायुका साता वेदनीयके समान भग है । ४ आयुका तिर्यचायुके समान भग जान्ना  
चाहिए । ४ प्रवृत्तियोंके वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । अवधक त्थी  
है । शेष प्रवृत्तियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे पचेन्द्रिय तिर्यचोंके समान भग हैं ।

१२४०. सम्यग्दृष्टि-क्षाधिकसम्यग्दृष्टियोंमें—५ हानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कपाय, पुम्पव,  
भय-जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तेजस-कार्माण, समचतुरस्रमस्थान, वसवृपमसहना, ७१ ०,  
अगुल्लवु ४, प्रशास निहायोगनि, व्रस ४, सुमग, सुम्बर, आदेय, निमोण, तीर्थकर, उच्चागोव,  
५ अतरायरे वधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । सर्वसम्यग्दृष्टि-क्षाधिक  
सम्यग्दृष्टियोंके कितने भाग हैं ? अनतवें भाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ?  
अनतवें भाग हैं । अवधक सर्व सम्यग्दृष्टि-क्षाधिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कितने भाग हैं ?  
अनतवें भाग हैं ( ? ) ।

[ निशेष—अवधक सर्व सम्यग्दृष्टि-क्षाधिकसम्यग्दृष्टियोंके 'अनत बहुभाग' पाठ उचित  
प्रतीत होता है । ]

सानान्य तथा प्रत्येकमें सर्व प्रवृत्तियोंका इसी प्रकार भग है ।

वण्ण० ४ अणु० उप० णिमि० पंचतराइगाण वधगा सच्चजी० केव० ? असखेज्जदिभागो ।  
 सच्च-अणाहारका० केव० ? अणंतभागा । अवधगा सच्चजी० केव० ? अणतभागो ।  
 सच्चअणाहार० केव० ? अणतभागी । सादवधगा सच्चजी० केव० ? असखेज्जदि-  
 भागो । सच्चअणाहारगाण केव० ? सखेज्जदिभागो । अवधगा सच्चजी० केव० ?  
 असखेज्जदिभागो । सच्चअणाहारगेसु केव० ? सखेज्जा भागा । असाद-पडिलोम भाणि-  
 दच्च । दोण्ण वधगाण णाणावरणीयभगो । देवगदि० ४ तित्थयराण आहारभगो ।  
 सेसाणि कम्मणि पत्तेणेण साधारणेण य कम्मइगभगो ।

एवं भागाभाग समत्त ।



तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अणुस्त्वष्टु, उपघात, निर्माण तथा ५ अतरायके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असरयातर्वे भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । साताके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यातर्वे भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? सरयातर्वे भाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असरयातर्वे भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । असाताका प्रतिलोम क्रम जानना चाहिए । अर्थात् असाताके वधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यातर्वे भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यातर्वे भाग हैं । सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? सरयातर्वे भाग हैं । असाता-साताके वधकोंका ज्ञानावरणके समान भग हैं । दधगति ४, तीर्थकरका आहारके समान भग है । शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा साधारणसे कार्माण काययोगीके समान भग है ।

इस प्रकार भागाभाग प्ररूपणा समाप्त हुई ।

अगु० उप० णिमि० पंचत० बंधगा सच्चजी० के० ? असखेजा भागा । सच्चआहारे-  
 गेसु के० ? अणता भागा । अवधगा सच्चजी० के० ? अणतभागो । सच्चआहारेसु  
 के० ? अणतभागो । माद-बंधगा सच्चजी० के० ? सखेज्जदिभागो । सच्च-आहारेसु  
 के० ? सखेज्जदिभागो । अनंधगा सच्चजी० के० ? सखेज्जा भागा । सच्चआहारेसु  
 ५ के० ? सखेज्जा भागा । एव जसाद पडिलोमं भाणिद्व्व । दोवेदणीपरंधगा सच्चजी०  
 के० ? असखेजा भागा । अवधगा णत्थि । इत्थि० पुरिस० सादभगो । षड्गु०  
 असादभगो । तिण्णि वेदाण बधगा सच्चजी० के० ? असखेजा भागा । जरी  
 णाणावरणीयभगो । तिण्णि-आयु वेडवियल्लक्क आहारदुग तित्थयरं बंधगा सच्चजी०  
 के० ? अणतभागो । मच्च आहार० के० ? अणतभागो । अवधगा सच्चनी० के० ।  
 १० अमखेजा भागा । मच्च० आहार० के० ? अणतभागो (गा) । एव हस्तादीण पयोप  
 साधारणेण वेदभगो कादच्चो सच्च आयु० अगोणग सघडण आहार-गदि-सरं मोत्त ।  
 ( ? ) एदाण पि सादभगो पचेगेण साधारणेण वि ।

§२४६. अणाहारगेसु-पचणा० णउदम० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजः

तैजस-कार्माण, धर्णं ४, अगुस्सल्लु, उपधान, निर्माण तथा ५ अतरायके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असरयात बहुभाग हैं । सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? अनत बहुभाग हैं । अवधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं ? सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । साताके बधक सत्र जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । सत्र आहारकोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? सरयात बहुभाग हैं । सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । असाताके विषयम प्रतिनीन क्रम है । अर्थात् असाताके बधक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । अवधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? सरयातर्वे भाग हैं । सत्र आहारकोंके कितने भाग हैं ? सख्यातर्वे भाग हैं । दो वेदनीयक बधक सत्रजीवाके कितने भाग हैं ? असरयात बहुभाग हैं । अवधक नहीं हैं । स्त्री, पुरुषवेदमें सत्र वेदनीयके समान भग है । नपुसकवेदमें असाता वेदनीयके समान भग है । तीन वेदोंके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असरयात बहुभाग हैं । आगेकी प्रकृतियोंमें ज्ञानावरणके समान भग है । तीन आयु, वैजिकपट्टक, आहारकट्टिक, तीर्थकरके बधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । अवधक सत्र जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं । सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? अनतर्वे भाग हैं । ( ? )

[ विशेष-यहाँ अवधकोंका सत्र आहारकोंके 'अनन्त बहुभाग' पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है । ]  
 धार्यादि प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा साधारणसे वेदके समान भग है । सर्व आयु अगोपार्ण, सदनम, आहारकट्टिक, विद्यायोगति तथा स्वरके विषयमें वेदका पूर्वोक्त धर्णन नहीं लगाना चाहिए । इनका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भग है ।

§ २४६ अणाहारकोंमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, निर्यात्व, १६ कथाय, भय, जुगुप्सा,

१२४९. आदेसेण-णिरयेसु-धुविगाण बधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । अजधगा णत्थि । धीणगिद्धितिग-मिच्छत्त-अणताणुअधि ४-तिरिक्कत्तायु-उज्जोव-तित्थयराण बधगा अवधगा असखेज्जा । सादासादबंधगा असखेज्जा । दोण्णं वेदणीयाण बधगा केत्तिया ? असंखेज्जा । अवधगा णत्थि । मणुसापुबंधगा केत्तिया ? सखेज्जा । अवधगा केत्तिया ? असखेज्जा । सेसाण परियत्तमाणियाण वेदणीयभगो कादच्चो । ५ एष सच्चणेरइगाण ।

१२५०. तिरिक्कत्तेसु-धुविगाणं बधगा केत्तिया ? अणता । अवधगा णत्थि । धीण-गिद्धितिग-मिच्छत्त-अट्ठकसाय-ओरालियसरीराण बंधगा केत्तिया ? अणता । अवधगा असखेज्जा । सादासादबंधगा-अजधगा केत्तिया ? अणता । दोण्णं वेदणीयाण बधगा केत्तिया ? अणता । अवधगा णत्थि । तिण्णि-आयु० वेउच्चियच्छवक बधगा केत्तिया ? १० असखेज्जा । अवधगा अणता । एवं वेदणीय भगो सच्चणण परियत्तमाणियाणं । णवरि च्छुआयु-दो अगो० छसथ० परघादुस्ता० दोविहा० दोसर० बधगा अवधगा केत्तिया ?

१२४९ आदेशसे—नरकगतिमें, ध्रुव<sup>१</sup> प्रकृतियोंके बधक कितने हैं ? असख्यात है । अवधक नहीं है । स्थानगुद्धितिक, मिथ्यात्व, अनतानुबधी ४, तिर्यंचायु, उद्योत तथा तीर्थंकरके बधक अवधक कितने हैं ? असख्यात है<sup>२</sup> । माता-असाताके बधक असख्यात हैं । दोनों वेदनीयके बधक कितने हैं ? असख्यात हैं । अवधक नहीं हैं । मनुष्यायुके बधक कितने हैं ? सख्यात हैं । अवधक कितने हैं । असख्यात हैं । शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंमें वेदनीयके समान भग जानना चाहिए । सपूर्ण नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

१२५० तिर्यंचगतिमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बधक कितने हैं ? अनत हैं । अवधक नहीं हैं । स्थान-गुद्धितिक, मिथ्यात्व, अनतानुबधी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४ तथा औदारिक शरीरके बधक कितने हैं ? अनत हैं । अवधक असख्यात हैं । साता-असाताके बधक-अवधक कितने हैं ? अनत हैं । दोनों वेदनीयके बधक कितने हैं ? अनत हैं । अवधक नहीं हैं । तीन आयु ( तिर्यंचायुको छोड़ कर ), वैक्रियिकपट्टक ( देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपाग ) के बधक कितने हैं ? असख्यात हैं । अवधक अनत है ।

[ विशेष-आयुत्रिकमें यदि तिर्यंचायु सम्मिलित की जाती, तो बधक असख्यात न होकर प्रनत हो जावे, अत आयुत्रिकको तिर्यंचायु चिरहित समझना चाहिए । ]

इस प्रकार सर्व परिवर्तमान प्रकृतियोंमें वेदनीयके समान भग समझना चाहिए । विशेष यह है कि चार आयु, दो अगोपाग, ६ सहनन, परघात, उच्छ्वास, दो विद्यायोगति, दो स्वरके बधक अवधक कितने हैं ? अनत हैं ।

( १ ) "पादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचओ । सत्तेतालुबुवाण च्छुधा सेसाणय च्छुधा ॥" - गो० क० गा० १२४ ।

( २ ) "णिरयगहए णेरइएसु मिच्छइट्ठी दच्चपमाणेग केरडिया ? असंखेज्जा ।" - पट्ठ० ६० सू० १५ ।



## [ परिमाणाणुगम-परूवणा ]

§२४७. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण अदेसेण य ।

§२४८. तत्थ ओघेण—पचणाणावरण-णवदसणावरण-मिच्छत्त-मोलसकसाप-मपदु  
गच्छा-त्तेनाकम्मइग-चण्ण० ४ अगु० ४ आदा-उज्जोव-णिमिण पचंतराइगाण वधगा  
५ अवधगा केवडिया ? अणता । सादवधगा वधगा केव० ? अणता । असादबंधा (पणा)  
अवधगा केव० ? अणता । दोण्ण वेदणीयाण वधा (धगा) अवधगा अणता । एण  
सत्तणोक० पचजादि-छसठाण छसव० दोमिहाय० तसथावरादि-दसपुगल दोगाद  
च । तिण्णि-आयु-वेउविपउक्क-तित्थयर वधगा केव० ? अमखेज्जा । अवधगा  
केत्तिया ? अणता । तिरिक्सायु-दोगदि-ओरालिय० ओरालि० अगो० दोआणु-  
१० ध्वीण वधगा अवधगा केत्तिया ? अणता । चदुआयु-चदुगदि-दोसरीर-दोअगो० चदु  
आणुपुव्वीण वधगा अवधगा केत्तिया ? अणता । आहारदुगस्त वधगा केत्तिया ।  
सखेज्जा । अवधगा केत्तिया ? अणता ।

## [ परिमाणानुगम ]

§२४७ परिमाणानुगमका श्रोत्र और आदशसे दो प्रकार वर्णन करते हैं ।

§२४८ ओषसे—५ ज्ञानावरण, ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ ऋपाय, भय, जुगुप्सा, वैजस  
कामोण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आवप, उद्योत, निर्माण तथा ५ अतरायोंके वधक और अवधक  
कितने हैं ? अनत हैं । साता वेदनीयके वधक और अवधक कितने हैं ? अनत हैं । असावक  
वधक-अवधक कितने हैं ? अनत हैं । दोनों वेदनीयोंके वधक-अवधक अनत हैं । ७ नोकपाय  
( भय-जुगुप्साके छोड़कर ) ५ जाति, ६ सस्थार, ६ सहनन, दो विद्यायोगति, प्रस स्यावरादि  
दस पुगल और दो गोत्रके वधका अवधकोंका भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

नरक-देव-मनुष्यायु, वैकियिकपट्टक तथा तीर्थंकर प्रकृतिके वधक कितने हैं ? असख्यात  
हैं । अवधक कितने हैं ? अनत हैं । तिर्यंचायु, दो गति ( तिर्यंच-मनुष्यगति ), औदारिक शरीर,  
औदारिक अगोपाग, २ आनुपूर्वी ( तिर्यंच-मनुष्यानुपूर्वी ) के वधक-अवधक कितने हैं ? अनत  
हैं । चार आयु, ४ गति, दो शरीर ( औदारिक, वैकियिक ), दो अगोपाग ( औदारिक-वैकियिक  
अगोपाग ), ४ आनुपूर्वीके वधक-अवधक कितने हैं ? अनत हैं । आहारकट्टिकके वधक  
कितने हैं ? सरयात हैं । अवधक कितने हैं ? अनत हैं ।

[ विदोष—'आहारकट्टिकके वधक अप्रमत्त सयत होते हैं । उनकी सरया सरयात है । ]

१ ओघेण मिच्छादही दवपमाणेण वधडिया ? अणता ॥—पटख ६० सू० २ ।

२ 'अवधकचंजदा दवपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा ॥' पटख ६० सू० ८ ।

१२५३, देवेषु णिरयोर्ध । णररि भवणवासि याव सोधम्मीसाणा त्ति । एहंदि० पचिदि० [ ओरालि० ] ओरालि० अगो० छसंध० आदा-उज्जोव-दोविहाय० तस-थावर-दोसरारणं बधगा अबधगा असखेज्जा । सेसाण णिरयभगो । सब्बट्ठे सब्बभंगा सखेज्जा ।

१२५४. पचिदि०-तस० २-पंचणा० छदसणा० अट्ठकसाय० भयदु० तेजाक० ५ वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचतराइगाण बंधगा केत्तिया ? असखेज्जा । अबधगा केत्तिया ? संखेज्जा । थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं बधगा अबधगा केत्तिया ? असखेज्जा । एवं पग्घादुस्सास-आदाउज्जोव-वित्थयराण । सादासाद-बधगा अबधगा केत्तिया ? असखेज्जा । दोण्ण वेदणीयाण बंधगा केत्तिया ? असखेज्जा । अबधगा सखेज्जा । एव सेसाण पग्घीण पत्तेणेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो । णवरि च्चदुआयु १०

[ विशेष—यहाँ लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंका वर्णन नहीं हुआ है, अत प्रतीत होता है कि उक्त विषयमें पचेन्द्रियलक्ष्यपर्याप्तक तिर्यचोके समान भग होंगे । ]

१२५३ देवगतिये—नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए । 'भवनवासियोंसे लेकर सौधर्म ईशान स्वर्गतक विशेष जानना चाहिए । एकेन्द्रिय, पचेन्द्रिय जाति, [औदारिक शरीर], औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर तथा दो स्वरके बधक अबधक असख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंमें नारकियोंके समान भग है । सर्वार्थसिद्धिमें सम्पूर्ण भग सख्यात<sup>२</sup> है ।

१२५४ पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कपाय अर्थात् प्रत्याख्यानावरण तथा सज्ज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कामोण, वर्ण ४, अगुरु लघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अतरायोंके बधक कितने हैं ? असख्यात<sup>३</sup> है । अबधक कितने हैं ? सख्यात हैं । स्थानगृद्धितिक, मिथ्यात्व, आठ कपायके बधक अबधक कितने हैं ? असख्यात हैं । इसी प्रकार परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत तथा तीर्थंकरमें भी है । साता-असावाके बधक अबधक कितने हैं ? असख्यात हैं । दोनों वेदनीयके बधक कितने हैं ? असख्यात हैं । अबधक सख्यात हैं ।

[ विशेष—अयोगकेवली गुणस्थानमें वेदनीयगुणके अबधककी अपेक्षा 'सख्यात' प्रमाण कदा है । ]

शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयके समान पूर्ववत् भग जानना चाहिए ।

- ( १ ) "भवनवासिपदेवेषु मिच्छादिद्वी दब्बपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा ।" —पट्ख० ६० सू० ५७ ।  
 ( २ ) "सब्बट्ठसिद्धिदिमाणवासियदेवा दब्बपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा ।" —पट्ख० ६० सू० ७३ ।  
 ( ३ ) "पचिदिय-पचिदियपञ्चत्तएसु मिच्छादिद्वी दब्बपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा ।" —पट्ख० ६० सू० ८० । तसकाइय-तसकाइयपञ्चत्तएसु मिच्छादिद्वी दब्बपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा ।" —पट्ख० ६० सू० ९८ ।

अणता । एतं पचिदिय-तिरिक्ख० ३ । णवरि असखेज्जं कादच्च ।

§२५१. पंचिदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु-धुविगाणं बधगा असखेजा । अवधगा णत्थि । सेमाण पचिदिय तिरिक्खमगो । एव सच्चविगल्लिदिय-सच्चपुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादरवणप्फदिपत्तेय-एहंदि-वणप्फदि-णिपोदाण एव चेव । णवरि अणं ५ कादच्च । णरि मणुसायुवधगा अवधगा असखेजा ।

§२५२. मणुसेसु-पचणा० णवदस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेनाक० वण० ४ अगु० उप० णिमि० पचतरा० बधगा असखेजा । अवधगा सखेजा । सादासाद बधगा अवधगा असखेजा । दोण्ण पगदीण बधगा असखेज्जा । अवधगा सखेजा । एव पण्यत्तमाणियाण सव्याण । णरि दोआयु वेउच्चियछक्क० । आहारदुग तिल्लपण १० बधगा सखेज्जा । अवधगा असखेजा । साधारणेण वेदणीयमगो । छसव० दोविदा० दोसराण बधगा अवधगा पत्तेणेण साधारणेण वि असखेजा । परघादुस्तास-अर उज्जीवाण बधगा अवधगा असखेजा । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सच्चे भगा सखेजा ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंच तथा योनिमत् तिर्यंचोमे इसी प्रकार समझना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ अनतके स्थानमें 'असरयात' को ग्रहण करना चाहिए ।

§२५१ पचेन्द्रिय तिर्यंच-लक्ष्यपर्याप्तकोमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बधक असरयात हैं । अवधक नहीं है । शेष प्रकृतियोंमें पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान भग समझना चाहिए । सपूर्ण विफलेन्द्रिय, सपूर्ण पृथ्वीकायिक, अपृथ्वीकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, बादर धनरपतिकायिक प्रत्येक, एकेन्द्रिय, धनरपति निगोदमें भी इसी प्रकार है । विशेष यह है कि असख्यातके स्थानमें यहाँ 'अनत' कहना चाहिए । विशेष, मनुष्यायुके बधक, अवधक असख्यात हैं ।

[ विशेष—यह कथन सामायकी अपेक्षा है । तेजकाय, वायुकायमें मनुष्यायुके बधाभावके विशेष नियम यहाँ भी लागू रहेगा । ]

§२५२ मनुष्योंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय-जुगुप्सा, तेजस-कामीण शरीर, वर्ण ४, अगुरुत्तम, लपघात, निर्माण तथा ५ अतरायोंके बधक असख्यात, अवधक सख्यात हैं । साता असाताके बधक अवधक असरयात हैं । दोनों प्रकृतियोंके बधक असख्यात हैं । अवधक सख्यात हैं । सपूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंमें इसी प्रकार है । तथा वैश्विकपटक्, दो आयुके विषयमें विशेष है । आहारकद्विक तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बधक सख्यात हैं । अवधक असख्यात हैं । सामान्यकी अपेक्षा वेदनीयके समान भग है । ६ सहनन, दो विश्व-योगति, २ रराके बधक अवधक प्रत्येक तथा सामान्यसे असख्यात हैं । परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योगके बधक, अवधक असरयात हैं ।

मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनिर्योमे—सपूर्ण भग सख्यात है ।

( १ ) 'मणुसायु मणुसेसु मिच्छारिद्धा दव्यपमाणेण वधविया इ असखेजा । -पट्ख० ६० सू० ४० । मणुसिणीसु मिच्छारिद्धा दव्यपमाणेण वधविया इ कोडाकोधीए देहदा छप्प वणाणमुपरि वत्तं वणाण देहदा । मणुसिणीसु सासणसम्माइदिपट्टिदि याव अकोगिनेवत्तिं वव्यपमाणेण केवविया इ होजेज ।' -पट्ख० ६० सू० ४८-४९ ।

१२५३. देवेषु गिरयोर्धं । गवरि भवणयासि याव सोधम्मीसाणा त्ति । एहदि० पचिदि० [ ओरालि० ] ओरालि० अगो० छसंध० आदा-उज्जोव-दोविहाय० तस-थावर-दोतराणं बधगा अबंधगा असखेज्जा । सेसाण गिरयभगो । सच्चदूठे सच्चभंगा सखेज्जा ।

१२५४. पचिदि०-तस० २-पंचणा० छदसणा० अट्ठकसाय० भयदु० तेजाक० ५ वण्णा० ४ अगु० उप० णिमि० पचतराह्णण बंधगा केत्तिया ? असखेज्जा । अबधगा केत्तिया ? संखेज्जा । थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं बधगा अबंधगा केत्तिया ? असखेज्जा । एव परघादुस्सास-आदाउज्जोव-तित्थयराण । सादासाद-बधगा अबंधगा केत्तिया ? असखेज्जा । दोण्ण वेदणीयाण बधगा केत्तिया ? असखेज्जा । अबधगा सखेज्जा । एव सेसाण पगदीण पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो । गवरि चदुआयु १०

[ विशेष—यहाँ लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंका वर्णन नहीं हुआ है, अतः प्रतीत होता है कि उस विषयमें पचेन्द्रियलक्ष्यपर्याप्तक तिर्यचोंके समान भग होंगे । ]

१२५३ देवगतिमें—नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए । 'भवनवासियोंसे लेकर सौधर्म ईशान स्वर्गतक विशेष जानना चाहिए । एकेन्द्रिय, पचेन्द्रिय जाति, [औदारिक शरीर], औदारिक अगोपारा, ६ सहजन, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर तथा दो स्वरके बधक अबधक असख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंमें नारकियोंके समान भग है । सर्वार्थसिद्धिमें सम्पूर्ण भग सख्यात<sup>२</sup> है ।

१२५४ पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कपाय अर्थात् प्रत्याप्यानावरण तथा सज्वलन, भय, जुगुप्सा, तेजस, कामांग, धर्ण ४, अगुरु-लघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अतरायोंके बधक कितने हैं ? असख्यात<sup>३</sup> हैं । अबधक कितने हैं ? सख्यात हैं । स्थानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, आठ कपायके बधक अबधक कितने हैं ? असख्यात हैं । इसी प्रकार परघात, चच्छवास, आतप, उद्योत तथा तीर्थकरमें भी है । साता-असाताके बधक अबधक कितने हैं ? असख्यात हैं । दोनों वेदनीयके बधक कितने हैं ? असख्यात हैं । अबधक सख्यात हैं ।

[ विशेष—अयोगकेवली गुणस्थानमें वेदनीययुगलके अबधककी अपेक्षा 'सख्यात' प्रमाण कहा है । ]

शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयके समान पूर्ववत् भग जानना चाहिए ।

( १ ) "भगवासिपदेवेषु मिच्छादिद्वी दब्बपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा ।" —पट्ख० ६० सू० ५७ ।

( २ ) "सच्चदुसिद्धिमाणवासियदेवा दब्बपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा ।" —पट्ख० ६० सू० ७३ ।

( ३ ) "पचिदिय-पचिदिमपञ्चत्तएसु मिच्छादिद्वी दब्बपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा ।" —पट्ख० ६० सू० ८० । तसकाहय-तसकाहयपञ्चत्तएसु मिच्छादिद्वी दब्बपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा ।" —पट्ख० ६० सू० ९८ ।

दो अगो० छसध० दोविहाय० दोसराण पत्तेगेण साधारणेण वि बधगा अबधगा केत्तिया ? असखेज्जा । आहारदुग मणुसोव ।

§२५५. एव पचमण० पचवचि० धक्खुदस० सण्णित्ति । णरि दोवेदणीएसु अबधगा णत्थि ।

५ §२५६. काजोगीसु-पंचणा० छदसणा० अट्ठकसा० भयदु० तेजाक० वण्ण० ध अगु० उप० णिमि० पचतराइगाण बधगा अणता, अबधगा सखेज्जा । थीणगिद्धि-त्तिय मिच्छत्त-अट्ठकमाय-ओरालियसरीगण बधगा अणता, अबधगा असखेज्जा । सादासाद-बधगा अबधगा अणता । दोण्ण वेदणीयाण बधगा अणता । अबधगा णत्थि । तिण्णिआयु-वेगुब्बियछक्क आहारदुग तित्थयर च ओघ । सेसाण पत्तेगेण पधगा १० अबधगा अणता । साधारणेण बधगा अणता । अबधगा सखेज्जा । चदुआयु-दोअगोवग छस्मध० परघादुस्साम-आदाउज्जोव-दो विहा० दोसगण बधगा अबधगा अणता ।

§२५७. एव ओरालियकायजोगि-अचक्खुदसणी-आहारगत्ति ।

§२५८. ओरालियमिस्सका०-पचणा० णग्दस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु०

विशेष, ४ आयु, दो अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके प्रत्येक तथा साधारणसे बधक अबधक कित्ते है ? असरयात है । आहारकद्विकके मनुष्योंके ओघवत् है अर्थात् बधक सरयात, अबधक असख्यात है ।

§२५५. पाँच मन, ५ वचनयोग, चक्षुदर्शन और सहीपर्यन्त इसी प्रकार है । विशेष, यहाँ दो वेदनीयोंमें अबधक नहीं होते हैं ।

[ विशेष-वेदनीय युगलके अबधक अयोगकेवली होते हैं, यहाँ इन मार्गणाओंका अभाव है । ]

§२५६ काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कपाय, (प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन) भय, जुगुप्सा, तेजस कार्माण, वर्षा ४, अगुरुलघु, उपघात, मिमाण तथा ५ अतरायोंके बधक अनत हैं । अबधक सरयात हैं । स्थानगृह्णिक, मिथ्यात्व, ८ कपाय ( अनतानुबधी तथा अप्रत्यारया नावरण ) तथा औदारिक शरीरके बधक अनत हैं । अबधक असख्यात हैं । साता असातके बधक और अबधक अनत हैं । दोनों वेदनीयोंके बधक अनत हैं । अबधक नहीं हैं ।

[ विशेष-साता और असाता प्रतिपक्षी प्रकृतियों हैं । अत एकके बधमें दूसरीका अबध होगा इससे धृयक् २ के अबधव भी अनत वताये गये हैं । उभयके यहाँ अबधक नहीं होते हैं । ]

तीन आयु, पैक्रियिपपट्क, आहारकद्विक तथा तीर्थकरके बधक अबधक ओघवत् जानने चाहिये । अर्थात् बधक असरयात हैं, आहारकद्विकके बधक सख्यात हैं, किन्तु अबधक अनत हैं । शेष प्रकृतियोंके प्रत्येकसे बधक अबधक अनत हैं । सामान्यसे बधक अनत हैं, अबधक सख्यात हैं । चार आयु, दो अगोपाग, छह सहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके बधक अबधक अनत हैं ।

§२५७ औदारिक काययोगी, अचक्षुदर्शनी तथा आहारक पर्यन्त इसी प्रकार है ।

§२५८ औदारिकमिश्र काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय,

ओरालिय० तेजाक० वण्ण० ४ तित्थयराण ( ? ) [ पंचतराइगाण ] बंधगा अणता । अवधगा संखेज्जा । णवरि मिच्छत्त-अबंधगा असखेज्जा । देवगदि० ४ तित्थय० बंधगा संखेज्जा । अवधगा अणता । सेस ओरालिय-काजोगिमंगो ।

§२५९. एवं कम्महगे । णवरि थीणगिद्धि ३ मिच्छत्त-अणताणु० ४ अवधगा अमंखेज्जा ।

§२६०. वेउच्चियकाजोगि-वेउच्चियमिस्स० देवोष । णवरि वेउच्चियमिस्स० तित्थय० बंधगा संखेज्जा, अवंधगा असखेज्जा । आहार० आहारमिस्स० मणुसभगो ।

§२६१. एवं मणपज्जव० मजद-सामाह्य० छेदो० परिहार० सुहुमसंप० यथाक्खाद० ।

§२६२. इत्थिवेदेसु-पंचणा० चदुदस० चदुसंज० पंचतरा० बंधगा असखेज्जा । अवंधगा गात्थि । सेस पंचिदियभगो । णवरि दोवेदणीय-जस० अजस० दोगोदान १०

भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माणशरीर, वर्ण ४ तथा तीर्थंकर (?) के बधक अनंत, अबधक सरयात हैं<sup>१</sup> ।

[ विशेष—यहाँ मूलमे आगत 'तित्थयराण' पाठके स्थानमे '५ अतगय'का पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है । कारण इसके बाद ही देवगति ४ के साथ तीर्थंकर प्रकृतिका पृथक् रूपसे वर्णन किया गया है । यहाँ तीर्थंकरके बधक सख्यात कहे हैं । ]

इतना विशेष है कि मिथ्यात्वके अवधक असख्यात हैं । देवगति ४ ( देवगति, देवानुपूर्वी वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपाग ) तथा तीर्थंकरप्रकृतिके बधक सरयात हैं । अवधक अनंत हैं । शेष प्रकृतियोंका औदारिक काययोगीके समान भग है ।

§२५९ कार्माण काययोगियोंमे इसी प्रकार हैं । इतना विशेष है कि स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनतानुबधी ४ के अबधक असख्यात हैं ।

§२६० वैक्रियिक काययोगी तथा वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमे—देवोंके ओषवत् भग जानना चाहिए । विशेष, वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमे तीर्थंकरके बधक सख्यात, अबधक असख्यात हैं ।

<sup>२</sup>आहारक, आहारकमिश्र काययोगमे—मनुष्यके समान भग जानना चाहिए ।

§२६१ मन पर्ययज्ञान, सयत, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसापराय, यथाख्यातसयतमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§२६२ स्त्रीवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्जलन और ५ अवतरणके बधक असख्यात हैं, अबधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंका पचेन्द्रियके समान वर्णन है । विशेष, दो वेदनीय यज्ञ कीर्ति, अयज्ञ कीर्ति, दो गोत्रोंके बधक असख्यात हैं, अबधक नहीं हैं । तीर्थंकर कर्मके बधक

( १ ) "ओरालियमिस्सकायजोगीसु अणजदसम्माइही-सजोगि केवलीं दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ।" —पट्ख० ६० सू०—११०-१४ ।

( २ ) "आहारकायजोगीसु पमचसज्जदा दव्वपमाणेण केवडिया ? चदुवण्ण । आहारमिस्सकायजोगीसु पमचसदा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ।" —पट्ख० ६० सू० ११९-२० ।

बधगा असखेज्जा । अबधगा णत्थि । तित्थयरकम्मस्स बधगा सखेज्जा, अबधगा असखेज्जा । एवं पुरिसवेदे । णवरि तित्थयरस्स बधगा अबधगा असखेज्जा ।

‡२६३. ण्युस०—पचना० चदुदस० पचतराह्मण० अणता । अबधगा णत्थि । सेस काजोगिभगो । णवरि जस-अज्जस० दोगोदाण अबधगा णत्थि ।

५ ‡२६४. एव कौधादि० ४ । णवरि अप्पणो धुविगाण णादच्चाओ ।

‡२६५. मदि० सुद०—धुविगाण बधगा अणता । अबधगा णत्थि । मिच्छत्तस्स बधगा अणता । अबधगा असखेज्जा । सेस तिरिक्खोघ । एव अब्भ० सिद्धि० मिच्छादि० असण्णि त्ति । णवरि मिच्छत्तस्स अबधगा णत्थि ।

‡२६६. अणगदवेदेसु—पचना० चदुदस० चदुसज० साद० जस० उच्चागोद०  
१० पचतराह्मण बधगा सखेज्जा, अबधगा अणता ।

‡२६७. अकसाइ—सादबधगा सखेज्जा, अबधगा अणता ।

‡२६८. केवलणा० केवलदस० विभंग० पचिदिय-तिरिक्ख-भगो । णवरि किंचि विसेसो जाणिदब्बो ।

‡२६९. आमिणि० सुद० ओधि०—पचना० छदस० अट्ठकसाय-पुरिस० मयदु०

सरयात हैं, अबधक असख्यात हैं । पुरुषवेदमे इसी प्रकार है । विशेष, तीर्थकरके बधक अबधक असख्यात हैं ।

‡२६३ नपुसकवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अतरायके बधक अनत हैं, अबधक नहीं हैं । शेष प्रकृतियोंमें काययोगीके समान भग है । विशेष यह है कि यश कीर्ति, अयश कीर्ति तथा दो गोरोंके अबधक नहीं हैं ।

‡२६४ क्रोधादि ४ में इसी प्रकार है । विशेष, अपनी ध्रुव प्रकृतियोंकी विशेषताको यहाँ जान लेना चाहिए ।

‡२६५. मत्यज्ञान, धुताज्ञानमें—ध्रुवप्रकृतियोंके बधक अनत हैं, अबधक नहीं हैं । मिथ्यात्वके बधक अनत हैं । अबधक असख्यात हैं ।

[ विशेष—अबधक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा यह गणना की गयी है । ]

शेष प्रकृतियोंका तिर्यचोके ओघयत् भग जानना चाहिए ।

अव्यवसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, असक्षी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यहाँ मिथ्यात्वके अबधक नहीं हैं ।

‡२६६ अणगदवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, साता वेत्नीय, यश कीर्ति, उच्चगौर, ५ अतरायोंन बधक सरयात हैं । अबधक अनत हैं ।

‡२६७ अकपाय जीवोंमें—साताके बधक सरयात हैं, अबधक अनत हैं ।

‡२६८ केवलज्ञान, केवलदर्शन, विभगावधिमें—पचेन्द्रिय तिर्यचोका भग है । इसमें जो किंचित् विशेषता है, उसे जान लेना चाहिए ।

‡२६९ आमिनिबोधिक, धुतज्ञान, अवधिज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण / कणाय

पचिदि० तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगुरु० ४ पसत्थ० तस० ४ सुभग० सुस्सर-  
आदेज्ज० णिमि० उच्चा० पंचत० वधगा कैत्तिया ? असंखेज्जा । अबंधगा सखेज्जा ।  
सादासादवधगा अवधगा असंखेज्जा । दोण्ण वेदणीयाण वधगा असखेज्जा, अनधगा  
णत्थि । चदुणोकसायाण वंधगा अवधगा असखेज्जा । दोण्ण युगलाण वधगा असखे-  
ज्जा । अनधगा सखेज्जा । एव दोगदि-दोसरीर-दोअगोवग-दोआणुपुब्बि० थिरादि- ५  
तिण्णियुगलाण । मणुसायु-आहारदुग वधगा सखेज्जा, अवधगा असंखेज्जा । अपच्च-  
क्खाणावरण० ४ देवायु० वज्जरिसभ० तित्थयराण वधगा अवधगा असंखेज्जा ।

§२७०. एव औधिद० उवसम० । णवरि उवसम० तित्थयराण वधगा सखेज्जा,  
अबंधगा असखेज्जा ।

§२७१. सज्जदासज्जद-तित्थयराण वंधगा संखेज्जा, अवधगा असखेज्जा । सेस १०  
वधा० आयु दो प० असंखेज्जा ( ? ) ।

§२७२. असज्जदेसु-युविगाण वधगा अणता, अवधगा णत्थि । थीणगिद्वितिय

पुरपवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, समचतुरस्र सस्थान, वर्ण ४,  
अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा  
५ अतरायोंके वधक कितने हैं ? असख्यात हैं । अनधक सख्यात हैं । साता तथा असाताके  
वधक अवधक असख्यात हैं । दोनों वेदनीयोंके वधक असख्यात हैं । अनधक नहीं हैं । चार  
नोकपायों ( हास्य-रति, अरति-शोक ) के वधक अवधक असख्यात हैं । इन दोनों युगलोंके  
वधक असख्यात हैं । अवधक सख्यात हैं । इस प्रकार दो गति, २ शरीर, २ अगोपाग,  
२ आनुपूर्वी तथा स्थिरादि तीन युगलोंमें जानना चाहिए । मनुष्यायु तथा आहारकद्विके  
वधक सख्यात, अवधक असख्यात हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४, देवायु, वज्रवृषभसहनन तथा  
तीर्थंकर प्रकृतिके वधक अवधक असख्यात हैं ।

§२७० अवधिदर्शन और उपशम सम्यक्त्वमे इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, उपशम  
सम्यक्त्वमे तीर्थंकरके वधक सख्यात अवधक असख्यात हैं ।

[ विशेषार्थ—कुछ आचार्योंका मत है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वका काल अल्प होनेसे उसमें  
तीर्थंकर प्रकृतिका वध नहीं होता है, किन्तु द्वितीयोपशममें तीर्थंकर प्रकृतिके वधके विषयमें  
मतभेद नहीं है । ]

§२७१ सयतासयतोमें—तीर्थंकर प्रकृतिके वधक सख्यात हैं, अनधक असख्यात हैं ।

[ विशेष—'सेस वधा० आयु दो प० असखेज्जा'—इस पक्तिका स्पष्ट भाव समझमें नहीं  
आया, अत नहीं लिखा । ]

§२७२ असयतोमें—भ्रूव प्रकृतियोंके वधक अनत हैं । अनधक नहीं हैं । स्थानगृद्धिक,

( १ ) "पदमुवधमिये सन्ने सेवतिये अविरदादिचत्तारि । तित्थयरवधपारभया णरा केवल्लिदुगते ॥"  
—गो० क० गा० ९३ ।



मिच्छत् अणताशुन० ४ ओरालियसरीर वधगा अणता । अवधगा संखेजा । तित्ययरं वधगा असखेजा, अवधगा अणता । सेस तिरिक्खोष ।

१२७३. एव किण्ण-णील-काऊण । णवरि किण्ण० णील० तित्ययराण वधगा सखेजा, अवधगा अणता ।

१२७४. तेउए-मणुसायु-आहारदुग वधगा सखेजा, अवधगा असखेजा । पच्च-क्खाणावरणीय० ४ अवधगा सखेजा । सेमाण असखेजा । एव पम्माए । णवरि किंचि विसेमो जाणिदच्चो ।

१२७५. सुक्काए-पणजोगिभंगो । णवरि दोआयु-आहारदुग वधगा सखेजा, अवधगा असखेजा ।

१२७६. भवसिद्धिया०-काजोगिभंगो । णवरि वेदणीयस्त अवधगा सखेजा । समादिद्धिधुमिमाण वधगा असखेजा, अवधगा अणता । सेमाण धुमिमाण भंगो । पत्तेणेण सावारणेण वि मणुसायुआहारदुग वधगा संखेजा । एव रइगसम्मादिद्धीण ।

मिथ्यात्न, अनतानुयी ४, औदारिक शरीरके वधक अनत हैं, अवधक संख्यात हैं । तीर्थंकरके वधक असख्यात हैं, अवधक अनत हैं । शेष प्रकृतियोंमें तिर्यंचोंके ओषधत् जानना चाहिए ।

१२७३ कृष्ण, नील, कापोत लेख्यामें इसी प्रकार है । विरोध कृष्ण, नील लेख्यामें तीर्थंकरके वधक संख्यात तथा अवधक अनत हैं ।

१२७४ तेजोलेख्यामें—मनुष्यायु, आहारकद्विकके वधक संख्यात, अवधक असख्यात हैं । प्रत्याख्यानवरण ४ के अवधक संख्यात हैं ।

शेष प्रकृतियोंके वधक अवधक असख्यात हैं ।

पद्मलेख्यामें—इसी प्रकार है । इसमें जो कुछ विरोधता है उसे जान लेना चाहिए ।

[ विशेष—इस लेख्यामें तेजोलेख्याकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, स्थावर तथा आतपका वध नहीं होता है । ]

१२७५. शुक्लेख्यामें—मनोयोगीके समान भग है । विरोध, दो आयु, आहारकद्विकके वधक संख्यात अवधक असख्यात हैं ।

१२७६ भवसिद्धियोंमें—वायुयोगीके समान भग है । विरोध, यहाँ वेदनीयके अवधक संख्यात हैं ।

[ विशेष—भवजीवोंमें अयोगनेवली गुणस्थान भी पाया जाता है, इस अपेक्षा वेदनीयके अवधक यहाँ बड़े गये हैं । ]

सम्पत्प्रियोंमें—शुभप्रकृतियोंके वधक असख्यात हैं । अवधक अनत हैं । शेष प्रकृतियों का ध्रुव प्रकृतियत् भग है । प्रत्येक तथा सामान्यसे मनुष्यायु तथा आहारकद्विकके वधक संख्यात हैं ।

णवरि देवायुवधगा सखेजा, अवंधगा अणंता ।

§२७७. वेदग०-ध्रुविगाण वधगा असखेजा । अनधगा णत्थि । सेस पत्तेगेण ओधिभगो । साधारणेण अवंधगा णत्थि । आयुवज्जरिसहाण ओधिभगो ।

§२७८. सासणे-मणुसायुवंधगा सखेजा । सेमभगा असखेजा ।

§२७९. सम्मामिच्छे-सञ्जभगा असखेजा ।

§२८०. अणाहारगेसु-पंचणा० णवदत्त० मिच्छत्त सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० ४ आदाउज्जो० णिमि० पचंतराङ्गाण वंधगा अवंधगा अणता । सादामादवधगा अवधगा अणता । एवं सेसाण पि । णवरि देवगादिपचगं वधगा सखेजा, अवधगा अणता ।

### एवं परिमाणं समत्तं



क्षायिक सम्यक्त्वयोर्मे—इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, देवायुके वधक सख्यात, अवधक अनत हैं ।

§२७७ वेदकसम्यक्त्वयोर्मे—ध्रुव प्रकृतियोंके वधक असख्यात है, अवधक नहीं है । शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक रूपसे अवधिज्ञानके समान भंग है । सामान्यसे अवधक नहीं हैं । आयु तथा वसुधूपभसहननका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए ।

§२७८ सासादनमे—मनुष्यायुके वधक सरयात हैं । शेष प्रकृतियोंके भंग असख्यात हैं ।

§२७९ सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें—सर्व भंग असरयात जानना चाहिए ।

§२८० अनाहारकौर्म—५ ज्ञानावरण, ९ दशनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुत्सा, तेजस-कामाण, वर्षा ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण तथा ५ अतरायोंके वधक अवधक अनत हैं । साता-असातके वधक-अवधक अनत हैं । इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंमें भी जानना चाहिए । विशेष यह है कि देवगति ५ के वधक सरयात हैं, अवधक अनत है ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

## [ खेत्ताणुगम-परूखणा ]

१२८१. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्वेसो ओघेण आदेसेण य ।

१२८२. तत्थ ओघेण पचणाणवदसंमिच्छत्त-सोलसकं मयदुं तेजाकं वण्णं  
४ अगुं उयं णिमिं पचनराइगाण वधा ( बंधगा ) केवडिखेत्ते ? सच्चलोगे ।  
अबंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे, असखेज्जेसु वा भागेषु वा  
५ सच्चलोगे वा । सादासाद-बंधगा अबधगा केवडिखेत्ते ? सच्चलोगे । दोण्ण  
वेदणीयाण वधगा केवडिखेत्ते ? सच्चलोगे । अनधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स  
असखेज्जदिभागे । एउ संसाण पत्तेगेण वेदणीय भगो । साधारणेण घुन्निगाणं भगो ।  
णवरि तिण्णि-आयु वेउच्चिपछक्क-आहारदुग तित्थयर वधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स

### [ खेत्ताणुगम ]

१२८१ [ वस्तुकी वर्तमान निवास भूमि क्षेत्र<sup>१</sup> है । उसका समीचीन बोध खेत्ताणुगम है । ]  
खेत्ताणुगमका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारसे निर्देश करते हैं ।

१२८२ ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, तेजस  
कामीण, वर्ण ४, अगुरलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बधक जीव कितने क्षेत्रमें हैं ?  
सर्ग लोकमें । अबधक कितने क्षेत्रमें हैं ? लोकके असख्यातवर्ग भागमें अथवा असख्यात भागोंमें  
वा सर्वलोकमें रहते हैं ।

[ विशेषार्थ—ज्ञानावरणादिके अबधक उपशातकपायादि गुणस्थानधर्ती जीवोंका क्षेत्र लोकका  
असख्यातवा भाग है । सयोगी जिनके प्रतर-समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असख्यात बहुभाग हैं ।  
लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र कहा है । ]

सावा असाताके बधक अबधक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्ग लोकमें रहते हैं । दोनों  
वेदनीयके बधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें । अबधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके  
असख्यातवर्ग भागमें रहते हैं ।

[ विशेष—दोनोंके अबधक अयोगी जिन हैं । उनकी अपेक्षा लोकका असख्यातवर्ग भाग  
कहा है । ]

इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका पृथक् पृथक् रूपसे वेदनीयके समान भग जानना चाहिए ।  
सामान्य रूपसे शेष प्रकृतियोंका ध्रुव प्रकृतिवत् भग जानना चाहिए । विशेष, ३ आयु, बैक्रियिक-  
पट्क, आहारकृत्तिक तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवर्ग  
भागमें रहते हैं । अबधक सर्वलोकमें रहते हैं ।

(१) निशातसरयस्य निवासविप्रतिपत्ते खेत्ताभिधानम् । -त० १० पृ० ३० । एदेषु खेत्तेषु केण  
खेत्तेण पगद ? णोआगमदो दच्चखेत्तेण पगद । णो आगमदो दच्चखेत्तं णाम किं ? आगास, गगण, वैयपय,  
गो-इगात्तरिद अवगाएणलक्कणं आघेय विपापमाधारो भूमिचि एयदो वधा दत्ताणि द्विदाणि, तथाव-  
बोवो अणुगमो । खेत्तस्स अणुगमो खेत्ताणुगमो । -घ० टी० खे० सू० ८।१।

असखेज्जदिभागे । अर्धघगा सव्वलोगे । चट्टु-आयु-दो-अगोवग-छसवडण-दोविहायगदि-  
दोसराण वधगा अवधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे । एव परघाटुस्साण ।

§२८३. एवं काजोगि-कम्मइग० भनसिद्धिया-अणाहारगाण । णवरि कम्मइगस्स यं  
हि केवल्लिभगो त हि लोगस्स असखेज्जेसु वा भागेषु मव्वलोगे वा । एव ओरालिय-  
सरीर-ओरालियमिस्स-अचक्खुदुदसण-आहारग ति । णवरि केवल्लिभगो णत्थि । ५

§२८४. आदेसेण णेरइएसु-सव्वे भंगा लोगस्स असखेज्जदिभागे । एण सव्वणेरइएसु,  
सव्वर्षिचिदिय-तिरिक्ख-मणुम-अपजत्त-सव्व देव-सव्वविगलिदिय-तस-अपजत्त-वादरपुडणि०  
आउ० तेउ० वादरवणप्फदि-पचेय० पज्जत्ता-पचमण० पचवचि० [ वेउच्चिय ] वेउच्चि-  
यमिस्स० आहार० आहारमिस्स० इत्थि० पुरिस० विभग० आभिणि० सुद० ओधि०  
मणवज्जव० सामाइय० छेदोव० परिहार० सुहुमसप० सज्जटासज० चम्मउदं० ओधिदंसण- १०  
तेउलेस्सा-पम्मलेस्सा-वेदगसम्मा० उअसमसम्मा० सासण० सम्मामिच्छाइड्ढि सण्णि ति ।

§२८५. तिरिक्खेसु-धुविगाण वधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे । अर्धघगा

४ आयु, २ अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति और २ ररोंके वधक अवधक कितने  
क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं ।

इसी प्रकार परघात तथा उच्छ्वास प्रकृतिमें भी लगा लेना चाहिए ।

§२८३ इसी प्रकार काययोगी, कार्माण काययोगी, भव्यसिद्धिकों तथा अनाहारकोंमें जानना  
चाहिए । विशेष यह है कि कार्माण काययोगीमें जो केजलीका भग है, उसमें लोकका अमर्याद  
बहुभाग अथवा सर्वलोकप्रमाण क्षेत्र जानना चाहिए । इसी प्रकार औदारिक काययोगी, औदारिक  
मिश्र काययोगी, अचक्षुदर्शनी तथा आहारक पर्यन्त जानना चाहिए । विशेष यह है कि इसमें  
केजलीका भग नहीं है ।

§२८४ आदेशसे-नारकियोंमें सर्व भग लोकके असर्यातवें भाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार सर्व  
नारकी जीवोंमें जानना चाहिए । सर्व पचेन्द्रिय तियंच-भनुप्य इनके अपर्याप्तक, सपूर्ण देव, सर्व  
विकचेन्द्रिय, त्रस, इनके अपर्याप्त, वादर-पृथ्वी-जल-अग्नि, वादर वनस्पति प्रत्येक, इनके पर्याप्तक,  
५ मनयोगी, ५ वचनयोगी, [ वैत्रियिक, ] वैत्रियिकामिश्र, आहारक, प्राहारकमिश्र योगी, स्त्री-पुरुष-  
वेद, विभगज्ञान सुमति, सुभुत, अवधि-मन पर्ययज्ञान, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि,  
सूक्ष्मसापराय, सत्यतासयत, चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, तेज-पक्षलेश्या, वेदक-सम्यक्त्वी, उपशम-  
सम्यक्त्वी, सासादन सम्यक्त्वी, मिश्रसम्यक्त्वी तथा सक्षीपर्यंत इसी प्रकार है । अर्थात् यहाँ क्षेत्र  
लोकका असर्यातना भाग है ।

§२८५ तियंचोंमें-द्रुघ प्रकृतियोंके वधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें । अवधक नहीं

( १ ) "कम्मइयकायजोगिसु सजोगिकेवली केवडिखेत्ते लोगस्स असखेज्जेसु भागेषु सव्वलोगे वा ।"  
-यट्ठ० खे० सू० ४०, ४० ।

( २ ) "आदेसेण गदियाणुवादेण गिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइड्ढिपट्टि जाव अउवदसम्माइड्ढिचि  
केवडिखेत्ते १ लोगस्स असखेज्जदिभाग । एव सत्तु पुडनीसु णेरइया ।" -ध० टी० खे० सू० ५, ६ ।

णत्थि । सादासादवधगा अवधगा केवडिखेत्ते ? सच्चलोमे । दोण्ण वेदणीयाण  
 वधगा सच्चलोमे । अवधगा णत्थि । एव सच्चण पगदीण । णत्थरि तिण्णि आयु  
 वेउव्वियल्लक्कस्स वधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे । अवधगा सच्च-  
 लोमे । चदुआयु० दोअगो० छसघ० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसराण  
 ५ वधगा अवधगा केवडिखेत्ते ? सच्चलोमे । वीणगिद्धितिय मिच्छत्तं अट्टकसा०  
 ओरालि० वधगा केवडिखेत्ते ? मच्चलोमे । अवधगा लोगस्स असखेज्जदिभागे ।

§२८६. एव माद० मुद० अमज्ज० तिण्णिलेस्सा-अम्मवसिद्धि० मिच्छादि०  
 असण्णि त्ति ।

§२८७. मणुस० ३-पचणा० णवदस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाक० आहार-  
 १० दुग० वण्ण० ४ अगु० ४ आदाउज्जो० णिमिणत्तित्थयर-पचतराह्णाण वधगा केवडि-  
 खेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे । अवधगा केवल्लिभगो फादच्चो । सादवधगा केवलि-  
 भगो । अवधगा लोगस्स असखेज्जदिभागे । असादवधगा लोगस्स असखेज्जदिभागे ।  
 अवधगा केवल्लिभगो । दोण्णं पगदीण वधगा केवल्लिभगो । अवधगा लोगस्स

है । साता और असाताके वधक अवधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें । दोनों वेदनीयोंके  
 वधक सर्वलोकमें रहते हैं । अवधक नहीं है । इसी प्रकार सर्व प्रकृतियोंमें जानना चाहिए ।  
 विशेष यह है कि ३ आयु, वैक्रियिणपट्टके वधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असत्प्रातर्व  
 भागमें रहते हैं । अवधक सर्वलोकमें रहते हैं । ४ आयु, २ अगोपाग, ६ सहनन, परघात,  
 उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २ स्वरके वधक अवधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?  
 सर्वलोकमें । स्थानगृद्धि ३, मिध्यात्व, ८ कपाय तथा औदारिक शरीरके वधक कितने क्षेत्रमें  
 रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं । अवधक लोकके असत्प्रातर्व भागमें रहते हैं ।

[ विशेष—इनके अवधक दशसयमी होंगे उनका क्षेत्र यहाँ कहा है । ]

§२८६ मत्पज्ञान, भुताज्ञान, असयम, कृष्णादि तीन ऐश्या, अभव्यसिद्धिक, मिध्यादृष्टि तथा  
 असक्षी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§२८७ मनुष्यत्रिक ( मनुष्यसामाय, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनियों ) में—१ ज्ञानावरण, ९  
 दर्शनावरण, मिध्यात्न, १६ कपाय, भयत्रिक, तैत्तस, वार्माण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरु-  
 लघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीधकर तथा पाँच अतरायोंके वधक कितने क्षेत्रमें रहते  
 हैं ? लोकके असत्प्रातर्व भागमें रहते हैं । अवधकोंमें केवलीके समान भग जानना चाहिए  
 अर्थात् लोकका असत्प्रातर्व भाग, असत्प्रातर्व बहुभाग अथवा सर्वलोक है ।

[ विशेष—केवलीभागमें लोकका असत्प्रातर्व भाग क्षेत्र ईड तथा कपाट समुद्रातकी अपेक्षा  
 है । असत्प्रातर्व बहुभाग क्षेत्र प्रतरसमुद्रातकी तथा सर्वलोक लोकपूरणसमुद्रातकी अपेक्षा है ।<sup>१२</sup> ]  
 साता वेदनीयके वधकोंमें केवलीके समान भग है । अवधक लोकके असत्प्रातर्व भागमें रहते हैं ।  
 असाताके वधक लोकके असत्प्रातर्व भागमें रहते हैं । अवधकोंमें केवलीके समान भग है ।  
 दोनों प्रकृतियोंके वधकोंमें केवलीके समान भग है । अवधकोंमें लोकका असत्प्रातर्व भाग भग

असरोज्जदिभागो ( गे ) । इत्थि० पुरिस० णवुसग वधगा लोगस्स असरोज्जदिभागे ।  
अबधगा केरलिभगो । एव सव्वपगदीण वेदभगो कादच्चो ।

§२८८. एव पच्चिदिय-तस० तेसि चैव पज्जत्ता । एव चैव अवगदवेद-अकसाइ०  
केवलणा० सजदा-यथास्साद० केवलदसण० सुक्कलेस्सा-सम्मादिट्ठि-खइगसम्माइट्ठि त्ति ।

§२८९. एइदिय-सव्वसुहुम० पुढरि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदिणिगोद-तेसि ५  
च सव्वसुहुम० मणुसा० वधगा केरडिखेत्ते ? लोगस्स अमरोज्जदिभागे । अबंधगा  
केरडिखेत्ते ? सव्वलोगे । सेसाण सव्वे भगा सव्वलोगे ।

§२९०. वादर-एइदिय-पज्जत्ता-अपज्जत्ता-पचणा० णवदस० मिच्छ० सोलसक०  
भयदु० तिणिणिसरीर-वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचत० वधगा सव्वलोगे ।  
अनधा ( धगा ) णत्थि । सादासाद-वधगा अबधगा केर० खेत्ते ? सव्वलोगे । दोण्णं १०  
पगदीणं वधगा सव्वलोगे । अनधगा णत्थि । इत्थि-पुरिस० वधगा केरडिखेत्ते ? लोग-  
स्स संखेज्जदिभागे । अनधगा सव्वलोगे । णवुस० वधगा केरडिखेत्ते ? सव्वलोगे ।  
अबधगा लोगस्स असरोज्जदिभागे । तिणिण-वेदाण वधगा सव्वलोगे । अबंधगा णत्थि ।  
एव इत्थिभगो चदुजादि-पचसठा० ओरालि० अगो० छमघ० आदाउज्जो० दोविहा०  
तस-वादर-दोसर-सुभग-आदेज्ज-जसगित्ति । णवुसगभगो एइदि० हुडसंठा० थावर- १५

हैं। स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदके वधक लोकरुके असत्यातर्वं भागमें पाये जाते हैं। अबधकोंमें केरली  
के समान भग जानना चाहिए। इस प्रकार सर्व प्रकृतियोंमें वेदके समान भग है।

§२८८ पचेत्त्रियत्रस तथा उन दोनोंके पर्यायकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। अपगतवेद,  
अकषाय, केवलज्ञान, सयम, यथारयात, केवलदर्शन, शुद्धेश्या, सम्यक्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि  
पर्यंत इसी प्रकार जानना चाहिये।

§२८९. एकेन्द्रिय, सर्वसूक्ष्म, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, १(?) वनस्पति निगोद तथा उनके  
सर्वसूक्ष्म जीवोंमें मनुष्यायुके वधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असत्यातर्वं भागमें रहते  
हैं। अबधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्वलोकमें रहते हैं। शेष प्रकृतियोंके सपूर्ण भगोंमें  
सर्वलोक प्रमाण क्षेत्र जानना चाहिए।

§२९० वादर एकेन्द्रिय-पर्यायतत्तु तथा वादर एकेन्द्रिय अपर्यायतत्तु—१ ज्ञानावरण, ९ दर्शना  
वरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ३ शरीर, वण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण  
तथा ५ अतरायोंके वधकाका सर्वलोक क्षेत्र है। अनधक नहीं है। साता असाताके वधक-  
अबधक कितने क्षेत्रमें पाये जाते हैं? सर्वलोकमें। दोनोंके वधक सर्वलोकमें पाये जाते  
हैं। अबधक नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके। वधक कितने क्षेत्रमें हैं? लोकके सख्यातर्वं  
भागमें। अबधक सर्वलोकमें है। नपुंसकवेदके वधक कितने क्षेत्रमें हैं? सर्वलोकमें।  
अबधक लोकके सत्यातर्वं भागमें पाये जाते हैं। तीनों वेदोंके वधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं।  
अबधक नहीं हैं। ४ जाति, ५ सस्थान, आद्वारिक अगोपाग, ६ सहनन, आतप, उद्योत,

(१) 'तेजनाय वायुकायमे मनुष्यायुका वध नहीं होता।' -नो० क० गा० ११४।

दूमग-अणादेज्ज-अज्जसगित्ति । हस्मादि ४ बंधगा अबंधगा सब्वलोगे । हस्तादिदोयुगल बंधगा सब्वलोगे, अबंधगा णत्थि । एव परघादुस्सास-पज्जत्ता-अपज्जत्त-पत्तेय-साधारण-थिराथिरसुभासुमा त्ति । तिरिक्खायु-बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स सखेज्जदिभागे । अबंधगा सब्वलोगे । मणुसायु-बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे ।  
 ५ अनंधगा सब्वलोगे । दोआयु तिरिक्खायु-भगो । तिरिक्खगदितिय बंधगा सब्वलोगे । अबंधगा लोगस्स असखेज्जदिभागे । मणुसगदितिय मणुसायुभगो । दोगदि-दोआयु-पुब्बि-दोगोद बंधगा के० खेत्ते ? सब्वलोगे । अबंधगा णत्थि । सुहुमबंधगा सब्व लोगे । अबंधगा लोगस्स असखेज्जदिभागे । एव पत्तेगेण साधारणेण नि वेदणीयभगो ।

३२९१. एव वादरवाउ० [पज्जत्त] वादरवाउ० अपज्जत्ताण । एव चैव वादरपुढवि०

१० आउ० तेउ० वादरवणप्फदि-पत्तेयाण तेसिं चैव अपज्जत्ता, वादरवणप्फदिणिगोद-पज्जत्ता-अपज्जत्ता । णवरि य हि लोगस्स सखेज्जदिभागो त हि लोगस्स असखेज्जदि-भागो कादब्बो । वादरवाउकाइय पज्जत्ते सब्वे भंगा लोगस्स सखेज्जदिभागे ।

एव खेत्त समत्त ।

दो विहायोगति, प्रस, वादर, दो स्वर, सुभग, आदय, यश कीर्ति पर्यन्त स्त्रीवेदके समान भग जानना चाहिए । एकेन्द्रिय जाति, हुडक सस्थान, स्थावर, दुर्भग, अनादेय, अयश कीर्तिमें नपुसकवेदका भग जानना चाहिए । हास्यादि चारके बंधक-अबंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं । हास्यादि दो युगलोंके बंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं । अबंधक नहीं है । इस प्रकार परघात, उच्छ्वास, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ पर्यन्त जानना चाहिए । तिर्यंच आयुके बंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके सत्प्रातर्वे भागमें । अबंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं । मनुष्य आयुके बंधक कितने क्षेत्रमें पाये जाते हैं ? लोकके असत्प्रातर्वे भागमें । अनंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं । दो आयुमें तिर्यंच आयुका भग जानना चाहिए । तिर्यंचगतित्रिकके बंधक सर्वलोकमें और अबंधक लोकके अमत्प्रातर्वे भागमें पाये जाते हैं । मनुष्यगतित्रिकमें मनुष्य आयुके समान भग जानना चाहिए । २ गति, २ आयुपूर्वी, २ गौरके बंधक कितने क्षेत्रमें हैं ? सर्वलोकमें हैं । अनंधक नहीं है । सूक्ष्मके बंधक सर्वलोकमें और अनंधक लारुके असत्प्रातर्वे भागमें पाये जाते हैं । इस प्रकार प्रत्येक और साधारणसे वेदनीयके समान भग जानना चाहिए ।

३२९१ वादर वायुकायिक (पर्याप्तकों) और वादर वायुकायिक अपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । वादर पृथ्वीकायिक, वादर अपृथ्वीकायिक, वादर तेजकायिक, वादर वनस्पति कायिक प्रत्येक तथा इनके अपर्याप्तकाम एव वादर वनस्पतिकायिक-निग्ग्रेदके पर्याप्त-अपर्याप्त भेदोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि जहा लोकका सख्यातना भाग बड़ा है, बड़ा लोकका असत्प्रातर्वा भाग करना चाहिये । वादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें सम्पूर्ण भग लोकके सत्प्रातर्वे भाग जानना चाहिए ।

इस प्रकार क्षेत्र-अरूपणा समाप्त हुई ।

## [ फोसणाणुगमपरूवणा ]

§२९२. फोसणाणुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य ।

§२९३. तत्थ ओघेण—पचणा० छदसणा० अट्टक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४  
अगु० उप० णिमि० पचतराड्ढगाण वधगेहि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? सच्चलोगो ।  
अवधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो, असखेज्जा वा भागा वा, सच्चलोगो वा । सादवधगा  
अवधगा केवडि खेत्तं फोसिदं ? सच्चलोगो । असादवधगा अवधगा केवडि खेत्तं ५

## [ स्पर्शानुगम ]

§२९२ ओघ तथा आदेशसे स्पर्शानुगमका दो प्रकार निर्देश करते हैं ।

[ विशेष—क्षेत्रानुगममे वर्तमानकालीन निराममात्र ग्रहण किया जाता है, किन्तु स्पर्शानुगममें अतीत, अनागत तथा वर्तमान निवास ग्रहण किया जाता है । ]

§२९३ ओघसे—५ ज्ञानानरण, ६ दर्शनानरण, प्रत्यात्यानावरणदि ८ कपाय, भय-जुगुप्सा, तेजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अतरायके वधकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्व लोक स्पर्शन किया है । अधकोंने लोकका असख्यातवाँ भाग, असख्यात बहुभाग वा सर्व लोक स्पर्शन किया है ।

[ विशेषार्थ— ज्ञानानरणादिके अवधक उपशातकपाय, क्षीणकपाय तथा अयोगवेवलीकी अपेक्षा लोकका असख्यातवाँ भाग स्पर्शन कहा है । सयोगवेवलीकी अपेक्षा लोकका असख्यातवाँ भाग है । प्रतरसमुद्रातगत सयोगवेवलीकी अपेक्षा लोकका असख्यात बहुभाग तथा लोकपूरण समुद्रातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्शन है । ]

साताके वधकों-अवधकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वलोक । असावाके वधकों

( १ ) त्रिकालविषयाधीनरूपेण स्पर्शनम् मतम् । क्षेत्रादन्यत्रभागवर्तमानायत्नेपलक्षणात् ॥ ४१ ॥”  
— त० श्लो० पृ० १६० । “एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तपोसणेण पयद । अरपिं स्पूरयत्त इति स्पर्शनम् ।  
पोसणस्स अणुगमो फोसणाणुगमो, तेण फोसणाणुगमेण । णिदेसो कहण वक्ताणमिदि एयट्ठो । सो दुविहो  
ज्जा पयई । ओघेण पिंढेण अमेरेणेत्ति एयट्ठो । आदेसेण मेदेण जिसेसेणेत्ति समाणट्ठो ।” — ध० टी०  
फो० पृ० १४४, १४५ ।

( २ ) “पमत्तसघदप्पहुडि जाव अजोगिक्खेत्तली हि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो ।  
सजोगिकेवली हि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, असखेज्जा वा भागा, सच्चलोगो वा ।”  
— पद० फो० सू० १७०, १७० । “पदरगदो केवली केवडियेत्ते ? लोगस्स असखेज्जेसु मागेसु ।  
लोगपूरणगदो केवली केवडियेत्ते ? सच्चलोगो ।” — ध० टी० फो० पृ० ५०, ५५ ।



फोसिद् ? सव्वलोगो । दोण्ण पग्गदीण वधगा सव्वलोगो, अवधगा लोणस्स असत्ते-  
 ज्जन्दिभागो । वीणगिद्वितिय-णणताणु० ४ वधगा सव्वलोगो । अवधगा अट्ठचोदम-  
 भागा वा केवल्लिभगो । मिच्छत्त-वधगा सव्वलोगो, अवधगा अट्ठवारस-घोदसभागा  
 वा केवल्लिभगो वा । अवयक्खाणा० ४ वधगा सव्वलोगो, अवधगा छचोदसभागा वा  
 ५ केवल्लिभग च । इत्थि० पुग्गि० णनुमग० वधगा अवधगा सव्वलोगो । तिण्ण वेदाणं  
 वधगा सव्वलोगो, अवधगा केवल्लिभगो । वेदाण भगो हस्सादिदोयुगल पचजादि  
 अवधकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वं लोक । दोगों प्रवृत्तियेके वधकोंने सर्वं लोक स्पर्ण  
 किया है । अवधकोंने लोकका असरयात्त ( भाग स्पर्ण किया है ।

[ विशेष-दोनोंके अवधक अयोगवेवगियोंकी अपेक्षा लोकका अमक्यातर्वा भाग है । ]

स्थानवृद्धिप्रिक, अनतानुवधी ५ के वधकोंके सर्वं लोक, अवधकोंके अष्ट चतुदंश भाग अर्थात्  
 १/२ अवधका केवल्लिभंग है । अर्थात् लोकका असक्यातर्वा भाग, अमक्यात्त वट्टभाग अवधका  
 सर्वलोक है ।

[ विशेषार्थ-स्थानवृद्धिप्रिक तथा अनतानुवधी ५ के अवधक सम्यग्निध्यादृष्टि असयत-सम्य  
 दृष्टि जीवोंकी अपेक्षा १/२ भाग कदा है । विहारया-स्वस्थान, वेदना, क्पाय, वैक्रियिक समुद्रातकी  
 अपेक्षा मिथ्र गुणस्थानरती जीवोंने देशोन् १/२ भाग स्पर्श किया है । विहारया- स्वस्थान, वेदना,  
 क्पाय, वैक्रियिक, मारणातिक समुद्रातकी अपेक्षा असयतसम्य-दृष्टियोंने ऊपर ६ रानू तथा नीचे  
 दो, इस प्रकार देशोन् १/२ भाग स्पर्श किया है । मिथ्रगुणस्थानमें मरणका अभाव होनेसे मार  
 णातिक समुद्रातका वर्णन नहीं किया गया है । ( ध० टी० पृ० १६६, १६७ ) ]

मिथ्यात्वके वधकोंने सर्वलोक स्पर्शन किया है । अवधकोंने १/२, १/३ अवधका केवलीभग  
 अर्थात् लोकका असक्यातर्वा भाग, असरयात्त बहुभाग अवधका सर्वं लोक है ।

[ विशेषार्थ-मिथ्यात्वके अवधक सासादन सम्यन्तली जीवोंने विहारयन् स्वस्थान, वेदना,  
 क्पाय, वैक्रियिक समुद्रातकी अपेक्षा देशोन् १/२ भाग स्पर्श किया है । मारणातिक समुद्रातकी  
 अपेक्षा १/३ भाग स्पर्श किया है । यह इस प्रकार है कि सुमेरु पर्वतके मूलभागसे लेकर ऊपर  
 ईषत्त्राभार पृष्ठीतक सात रानू होते हैं और नीचे छठवीं पृष्ठी तक ५ रानू होते हैं । इस प्रकार  
 १/३ भाग है । सातवीं पृष्ठीमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मरण होनेसे छठवीं पृष्ठी तकका ही  
 उल्लेख किया गया है । ( ध० टी० पृ० १६२ ) ]

अप्रत्यास्थानामरण ४ के वधकोंने सर्वलोक, अवधकोंने १/२ भाग वा केवलीभग प्रमाय  
 क्षेत्र स्पर्शन किया है ।

[ विशेषार्थ-अप्रत्यास्थानामरण ४ के अवधक देशस्थयी जीवोंने अतीत फालकी अपेक्षा  
 मारणातिक समुद्रातकी दृष्टिसे देशोन् १/२ भाग स्पर्श किया । यहाँ सुमेरुसे नीचेने एक हजार  
 योजनसे और आरण अच्युत विमानोंके उपरिम भागसे कम करना चाहिए ( पृ० १७० ) ]

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेदके वधकों अवधकोंने सर्वलोक स्पर्शन किया है । तीनों  
 वेदोंके वधकोंने सर्वलोक स्पर्शन किया है । इनके अवधकामें केवलीके समान भग है ।

[ विशेषार्थ-स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसक वेदके अवधकोंका प्रत्येक वेदकी अपेक्षा अवधकोंके  
 सर्वलोक स्पर्शन कदा है, कारण यहाँ एक वेदका अवध होते हुए अन्य वेदका कम हो जाता है ।

उसठा० तसथानरादिणयुगल दोगोद च । वेदणीयायु-आहारदुग-वधगा लोगस्म असखेज्जदिभागो, अनधगा सच्चलोगो । तिरिक्साधुवंधगा अवधगा सच्चलोगो । मणुसायुजगा लोगस्म असखेज्जदिभागो, अट्टचोदसभागा वा सच्चलोगो वा । अनधगा सच्चलोगो । चदुआयुवधगा अवधगा केव० खेत्त फोसिट ? सच्चलोगो । णिरयटेवगदिवंधगा के० खेत्त फोसिट ? लोगस्म असखेज्जदिभागो, छचोदसभागा वा । अनधगा सच्चलोगो । तिरिक्कसमणुसगदिवधगा अनधगा सच्चलोगो । चदुगदिवधगा सच्चलोगो । अनधगे केवल्लिभगो । एष चदुआणुपुच्चि० । ओरालि० वधगा सच्चलोगो । अनधगा नारहचोदसभागी वा, केवल्लिभग च । वेउच्चियस० वंधगा नारह० । अनधगा सच्चलोगो । दोण्ण वधगा सच्चलोगो । अवधगा केवल्लिभगो । ओरालिय० अगो० वधगा अनधगा सच्चलोगो । वेउच्चिय० अगो० वधगा १०

वेत्तयके अवधक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे अयोगवेवली पर्यन्त है । उनकी अपेक्षा केवली भग अर्थात् लोकका असख्यातवा भाग, असख्यात बहुभाग अधवा सर्वलोक स्पर्श कहा है । ]

हास्य, रति, अरति, शोक, एकेन्द्रियाणि पच जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थावरदि नवयुगल तथा २ गोत्रमे वेदके समान भग है । वेदनीय, आयु, आहारकद्विके वधकोंके लोकका असख्यातवा भाग है । अनधकोंके सर्वलोक है । तिर्यचायुके वधकों-अवधकोंके सर्वलोक है । मनुष्यायुके वधकोंके लोकका असख्यातवा भाग, १/२ वा १/३ सर्वलोक है । अवधकोंके सर्वलोक है ।

[ विशेष—यहा ऊपरके ६ राजू तथा नीचेके २ राजू इस प्रकार १/३ राजू स्पर्शन हैं ]

चार आयुके वधकों अवधकाने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सबलोक । नरकगति, देवगतिके वधकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? लोकका असख्यातवा भाग वा १/३ भाग है । अवधकोंके सर्वलोक है ।

[ विशेष—यहा सप्तम नरकके स्पर्शनकी अपेक्षा नरकगतिका स्पर्शन १/३ है तथा सोलहवें स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा देवगतिका स्पर्शन १/३ कहा है ।

तियचगति-मनुष्यगतिके वधकों अनधकोंका सर्वलोक है । चारों गतियोंके वधकोंका सर्वलोक है । अवधकोंका केवली भग है । चार आयुपूर्वमि इसी प्रकार जानना चाहिए । औदारिक शरीरके वधकोंका सर्वलोक है । अनधकोंके १/३ भाग, वा केवली भग है । वैक्रियिक शरीरके वधकोंका २/३ भाग, अवधकोंका सर्वलोक है । दोनों शरीरके वधकोंका सर्वलोक है, अनधकोंका केवली भग है ।

[ विशेष—औदारिक शरीरका वध चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त, वैक्रियिक शरीरका अपूर्वकरण छठवें भाग पर्यन्त वध होता है । दोनोंके अनधकोंके अयोगवेवली पर्यन्त लोकका असख्यातवा भाग है, सयोगी तिनकी अपेक्षा लोकका असख्यात बहुभाग तथा सर्वलोक भी भग है । ]

औदारिक अगोपागके वधकों अवधकोंका सबलोक है । वैक्रियिक अगोपागके वधकोंका

( १ ) असखदसमाहट्टादि विहारवादिस्त्याण वेदण-कसाय वे-च्चिय मारणतियसमुग्ग दगदेदि अट्ट चाद सभागा देवणा फोसिदा उररि छ रज्जू, हेट्टा दो रज्जू ति ।" —ध० टी० फो० पृ० १६७ ।

वारहमागा वा । अनधगा सव्वलोगो । दोअगो० वधगा अनधगा सव्वलोगो ।  
छसघ० परघादुस्ता० आदाउज्जो० दीविहा० दोसरवधगा अनधगा सव्वलोगो ।  
वित्थय० वधगा अट्ठचोदसभागो वा । अनधगा सव्वलोगो ।

३२९४. आदेशेण—जेइएसु धुविगाण वधगा छचोदसभागो, अनधगा णत्थि ।

५. थीणगिद्धितिय अणताणु० ४ वधगा छचोदसभागो, अवधगा खेत्तभगो । सादासाद  
वधगा-अनधगा छचोदसभागो । दोण्ण पगदीण रधगा छचोदसभागो, अवधगा

३३ है, अनधकोंके सर्वलोक है । दोनो अगोपागोंके वधको अवधकोवा सर्वलोक है ।

[ विशेष—वैक्रियिक शरीरके वधकों तथा औदारिक शरीरके अवधकोंका स्पर्शन ३३ कहा है, किंतु इसी प्रकार वैक्रियिक अगोपागने वधकों तथा औदारिक अगोपागके अवधकोंका ३३ नहीं कहा है । इसका कारण यह है कि जिस प्रकार आदारिक शरीरका अवधक वैक्रियिक शरीरका वधक होता है अथवा वैक्रियिक शरीरका अनधक औदारिकका वधक होता है वैसा नियम औदारिक अगोपाग और वैक्रियिक अगोपागका नहीं है । एकेद्रियमे अगोपागका अभाव होनेसे शरीरके समान यहा व्याप्ति नहीं है । ]

छह सहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके वधकों अवधकों वा सर्वलोक स्पर्शन है । तीर्थंकर प्रकृतिके वधकाका ३३ है । अनधकोंका सर्वलोक है ।

[ विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिके वधक अत्रिरतसम्यक्त्वीकी अपेक्षा ३३ कहा है । विहारवत् स्वस्थान, वेदना-कपाय वैक्रियिक-मारणातिक समुद्घात गत असयतसम्यक्त्वी जीवोंमे मेरुके मूलसे ऊपर छह राजू तथा नीचे दो राजू प्रमाण स्पर्शन किया है ( घ टी पृ १६७ ) ]

३२९५. आदेशेण—नारकियों-ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंके ३३ है, अवधक नहीं है ।

[ विशेष—मारणात्तिक समुद्घात तथा उपपाद पदवाले मिश्यादृष्टि नारकियोंने अतीत कालमे ३३ स्पर्शन किया है । (पृ० १७५) सातवीं पृथ्वीके नारकीकी मारणातिक समुद्घात अथवा उपपादकी अपेक्षा कर्मभूमिया सक्षी मनुष्य या तिर्यंच पर्याप्तपर्याय प्राप्तिकी दृष्टिसे उ राजू स्पर्शन है । ध्रुव प्रकृतियोंका सभी नारकी वध करते है अत ३३ ध्रुव प्रकृतिके वधकोंका स्पर्शन कहा है । ]

स्थानगृद्धिनिन तथा अनतानुवधी ४ के वधकोंके ३३ भाग हैं, अनधकोंके क्षेत्रमे समान भग है । अर्थात् लोकका असरयातवा भाग है २ । साता, असाताके वधकों अवधकोंके ३३ है । दोनो प्रकृतियोंके वधकोंके ३३ है । अनधक नहीं हैं ।

[ विशेष—नरकगतिमे साता अथवा असाताके पृथक् ० रूपसे अवधकनी अपेक्षा ३३ भाग कहा है । इसका अर्थ यह है कि साताके अनधक अर्थात् असाताके वधक अथवा असाताके अनधक अथात् साताके वधक जीवोंका सप्तम पृथ्वीकी अपेक्षा ३३ भाग है । ]

( १ ) निरयदशण जेरइएसु मिच्छादिदृष्टी केादिये खेच पासिद ? कागस अयलेग्जदिमागा छ चाइवमागा वा देवगा । -पट्टय० फो० सू० ११, १० ।

( २ ) सम्मानिच्छादिदृष्टि अनइदसमादिदृष्टीके केसिये खेच पासिद ? कागस अयलेग्जदिमागा । -पट्टय० फो० सू० १३, १०, १५ ।

णरिय । एवं मत्तणोक० छसठा० उसंध० दोनिहा० थिरादिछयुगल । मिच्छत्तनधगा  
छच्चोदसभागो, अनधगा पचचोदसभागो । दोआयु० खेत्तभगो । अनधगा छचोदम-  
भागा । एवं तित्थयर । तिरिक्खणदिअंधगा छचोदस०, अनधगा खेत्तभगो ।  
मणुसगादिवधगा खेत्तभगो । अनधगा छचोदस० । दोण्णं पगदिअधगा छच्चोदस० ।  
अनधगा णरिय । एव दोआणुपुच्चि दोगोद च । उज्जोन० वधगा अनधगा  
छचोदस० । एव सव्वणोरहयाण । णजरि अप्पणो फोसण फादव्व । सत्तमीए  
मिच्छत्त अनधगा खेत्तभगो ।

§२९५. तिरिक्खण धुणिगाण नधगा सव्वलोगे । अनधगा णत्थि । अट्ठरुसा०

सात नोकपाय, छह सस्थान, छह सहनन, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमें  
इसी प्रकार है । मिश्र्यात्मके वधकोंके १२ भाग है । अवधकोंके १२ भाग है ।<sup>१</sup>

[ विशेष—मिथ्यात्वके अनधक सासादन सम्यक्त्वी जीनोंकी अपेक्षा उठवीं पृथ्वीकी दृष्टि  
से मारणातिक समुद्रघातमे १२ भाग है । सातवीं पृथ्वीमे मिथ्यात्व गुणस्थानमे ही मरण करता  
है, अत उसकी यहा अपेक्षा नहीं की गयी है । ]

दो आयु ( मनुष्य तिर्यंचायु ) के वधकोंके क्षेत्रान्त भग है अर्थात् लोकका असख्यातवा  
भाग है । अनधकोंके १२ भाग है । तीर्थंकर प्रकृतिके वधकोंके लोकका असख्यातवा भाग,  
अवधकोंके १२ भाग है ।

तिर्यंचगतिके वधकोंके १२ भाग है । अनधकोंके क्षेत्रान्त भग है । मनुष्यगतिके वधकों  
के क्षेत्रसमान भग है । अवधकोंके १२ भाग है । दोनोंके वधकोंके १२ भाग है । अवधक नहीं  
है । दो आनुपूर्वी ( मनुष्य तिर्यंचानुपूर्वी ) तथा ० गोत्रोंमे भी इसी प्रकार भग है । उद्योतके  
वधकों अवधकोंका १२ भाग है ।

इस प्रकार सर्व नारकियोंमे जानना चाहिए । विरोध, अपना अपना स्पर्शन निकाल  
लेना चाहिए ।

[ विशेष—पाचवीं पृथ्वीमे १२, चौथीमे १२, तीसरीमे १२, दूसरीमे १२ तथा पहली  
पृथ्वीमे लोकका असख्यातवा भाग मिथ्यात्व सासादन गुणस्थान मे स्पर्शन कहा है । मिश्र तथा  
अविरत सम्यक्दृष्टियोंके लोकका असख्यातवा भाग बताया है । इस स्पर्शनको ध्यानमे रखकर  
भिन्न भिन्न प्रकृतियोंके वधकों-अनधकोंके विषयमे यथायोग्य योजना करनी चाहिए । ]

सातवीं पृथ्वीमे—मिथ्यात्वके अवधकोंका क्षेत्रके समान भग है । अर्थात् लोकका  
असख्यातवा भाग है ।<sup>२</sup>

§२९५ तिर्यंचोम—द्रुव प्रकृतियोंके वधक सर्वलोकमे है । अनधक नहीं हैं । अनतानुनधी ४

( १ ) "निदिशदि जाव छट्ठीए पुटवीए णेरहएसु मिच्छादिट्ठिसासणसम्मादिट्ठिहि केणडिय खेतं  
पोसिद ? लोणस्स असखेज्जदिभागो । एव वे तिण्णि चत्तारि पच चोदसभागा वा देखण ।"—पट्टर०  
फो० सू० १७, १८ ।

( २ ) 'उत्तमाए पुटवीए णेरहएसु सासणसम्मादिट्ठि-सम्मादिट्ठि अज्जदसम्मादिट्ठिहि  
केणडिय खेतं पोसिद ? लोणस्स असखेज्जदिभागो ।"—पट्टर० फो० सू० २२ ।

- सञ्चलोगो । छसध० पचेगेण साधारणेण वि सेत्तभगो । अवधगा तेरह० सञ्चलोगो ।  
 परधादुस्सा० वधगा तेरह० सञ्चलोगो वा । अवधगा लोगस्स अससेजदिभागो,  
 सञ्चलोगो वा । आदावस्स बंधगा सेत्तभगो । अणधगा तेरह० सञ्चलोगो । उज्जोम्म  
 बंधगा सत्तचोदस० । अणधगा तेरह० सञ्चलोगो वा । पसत्थवि० वधगा छच्चोदस० ।  
 ५ अवधगा तेरह० मञ्चलो० । अप्पसत्थवि० वधगा छच्चोदस० । अण० सत्तचोद०  
 सञ्चलो० । दोण्णपि वारह० । अणधगा सत्तचोदस० मञ्चलो० । एव दूसर० । तसवधगा  
 वारह० । अणधगा सत्तचो० सञ्चलो० । थारणधगा सत्तचोदस० सञ्चलोगो ।  
 अवधगा वारहचोदस० । दोण्णपि वधगा तेरहचोदस० सञ्चलोगो । अणधगा णत्थि ।  
 वादर वधगा तेरह० । अणधगा लोगस्स अससेजदिभागो, सञ्चलोगो वा । सुहुमण्ण  
 १० लोगस्स अससे०, सञ्चलोगो वा । अवधगा तेरह० चोदस० । दोण्ण पगदीण वधगा  
 तेरह० सञ्चलो० । अणधगा णत्थि । पज्जत्त-पचेग० वधगा तेरह० मञ्चलो० । अण  
 धगा लोगस्स अससे० सञ्चलो० । अपज्जत्त साधारण-वधगा लोग० अससे०,

दोनों अगोपागोके वधकोंका  $\frac{1}{2}$  तथा अवधकोंका  $\frac{1}{4}$  वा सर्वलोक है ।

[ विशेष—दोनों अगोपागोके अणधकोंका एकेन्द्रिय जीवोंमें उत्पत्ति की अपेक्षा  $\frac{1}{2}$  बड़ा है ।  
 छह सहननोंका पृथक् पृथक् अणधना समुदाय रूपसे क्षेत्रके समान भग है अर्थात् सर्वलोक  
 है । अणधकोंका  $\frac{1}{2}$  वा सर्वलोक है । परधात, उच्छ्वासके वधकोंके  $\frac{1}{4}$  वा सर्वलोक है ।  
 अवधकोंके लोकना असत्यातवा भाग भग है । अथवा सर्वलोक है । आतपके वधकोंके क्षेत्रके  
 समान सर्वलोक है । अणधकोंके  $\frac{1}{4}$  अथवा सर्वलोक भग है । उद्योतके अणधकोंका  $\frac{1}{4}$ , अवधकोंका  
 $\frac{1}{2}$  वा सर्वलोक भग है । प्रशस्त विहायोगतिके वधकोंके  $\frac{1}{2}$ , अवधकोंके  $\frac{1}{4}$  वा सर्वलोक है ।

[ विशेष—अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा  $\frac{1}{2}$  बड़ा है, कारण देवोंके प्रशस्त विहायोगति  
 पायी जाती है । प्रशस्तविहायोगतिके अणधक अर्थात् अप्रशस्तविहायोगतिके वधक अणधना दोनोंके  
 अणधककी अपेक्षा अधोलोकके ६ राजू तथा ऊर्ध्वके ७ इस प्रकार  $\frac{1}{2}$  है । ]

अप्रशस्तविहायोगतिके वधकोंका  $\frac{1}{2}$ , अवधकोंका  $\frac{1}{4}$  वा सर्वलोक है ।

[ विशेष—सप्तम पृष्ठीके स्पर्शनकी अपेक्षा अप्रशस्तविहायोगतिके वधकोंके  $\frac{1}{2}$  है । विहायोगति  
 के अणधककी अपेक्षा लोकप्रके तिर्यंचोंके स्पर्शनकी दृष्टिसे  $\frac{1}{2}$  भाग है, कारण एकेन्द्रियके माथ  
 विहायोगतिके वधका सत्रिर्षपना नहीं पाया जाता है । ]

दोनों विहायोगतिके वधकोंके  $\frac{1}{2}$ , अवधकोंके  $\frac{1}{4}$  वा सर्वलोक है । दो स्वर्गोंमें भी  
 इसी प्रकार है । प्रसके वधकोंके  $\frac{1}{2}$ , अवधकोंके  $\frac{1}{4}$  वा सर्वलोक है । स्थावरके वधकोंके  
 $\frac{1}{2}$  वा सर्वलोक है । अणधकोंके  $\frac{1}{4}$  है । दोनोंके वधकोंके  $\frac{1}{2}$  वा सर्वलोक है । अणधक नहीं  
 है । वादरके वधकोंके  $\frac{1}{2}$  है, अवधकोंके लोकका असत्यातवा भाग वा सर्वलोक है । मूदमके  
 वधकोंके लोकका असत्यातवा भाग वा सर्वलोक है । अवधकोंके  $\frac{1}{4}$  भाग है । दोनों प्रकृतियोंके  
 वधकोंके  $\frac{1}{2}$  वा सर्वलोक है । अणधक नहीं है । पर्याप्त तथा प्रत्येकके वधकोंका  $\frac{1}{2}$  भाग वा  
 सर्वलोक है । अवधकोंके लोकना असत्यातवा भाग वा सर्वलोक है । अर्थात्, साधारणके वधकों

सञ्चलो० । अत्रधगा तेरह० सञ्चलो० । दोष्ण पगदीण वधगा तेरह० सञ्चलोगो ।  
अत्रधगा णत्थि । सुभग-आदेज्ज-समचदु० भंगो । दूभग-अणादेज्ज-हुडसठाणभगो ।  
दोष्णं पगदीण वधगा तेरह सञ्चलो० । अत्रधगा णत्थि । जसगित्तिस्म वधगा सत्त-  
चोदस० । अत्रधगा तेरह० सञ्चलोगो । अज्जस० वंध० तेरह० सञ्चलो० । अत्रधगा  
सत्तचोदस० । दोष्ण पगदीण वधगा तेरह० सञ्चलोगो । अत्रधगा णत्थि । दो ५  
गोदाण सठाण-भंगो ।

§२९७. पचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता-पचना० णउदंस० मिच्छ० सोलसक०  
भयदु० तिण्णिंसीर-वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिण-पचतराइगाणं वंधगा लोगस्स  
असखेज्जदिभागो सञ्चलोगो वा । अत्रधगा णत्थि । दोवेदणी० हस्तादि० दोयुगल-  
धिरादि० ४ वधगा अत्रधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो सञ्चलोगो वा । दोष्ण पग- १०  
दीण वधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो, सञ्चलोगो वा । अत्रधगा णत्थि । इत्थि०  
पुरिस० वधगा खेत्तभगो । अत्रधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो सञ्चलोगो वा । णवुस०  
वधगा पडिलोम भाणिदव्व । तिण्णि वेदाणं वधगा लोगस्स असखे०, सञ्चलोगो वा ।  
अत्रधगा णत्थि । इत्थिवेदभगो दोआयु मणुसगदि-चदुज्जादि पचसंठा० ओरालि०

के लोकका असख्यातना भाग, सर्वलोक है । अत्रधकोंके ३३ वा सर्वलोक है । पर्याप्त अपर्याप्त  
तथा प्रत्येक साधारणके वधकोंका ३३ वा सर्वलोक है । अत्रधक नहीं हैं । सुभग तथा आदेयका  
समचतुरस्र मस्थानके समान भग है । दुर्भग, अनादेयका हुडकसस्थानके समान भग है । सुभग,  
दुर्भग, आदेय, अनादेयके वधकोंका ३३ वा सर्वलोक है । अत्रधक नहीं हैं । यश कीर्तिके वधकों  
के ३३ है, अत्रधकोंके ३३ वा सर्वलोक है । अयश कीर्तिके वधकोंके ३३, सर्वलोक है । अत्रधकों  
के ३३ है । यश कीर्ति अयश कीर्तिके वधकोंके ३३ वा सर्वलोक है । अत्रधक नहीं हैं ।

[ विशेष—तिर्यचोमे तीर्थकरका वध न होनेसे यहाँ उसका वर्णन नहीं किया गया है । ]

दो गोरोंके निपयमे सस्थानके समान भग है ।

§२९७ पचेन्द्रिय-तिर्यच-ल-ध्वपर्याप्तकोंमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिध्यात्व, १६ कपाय,  
भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैत्रस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुस्त्वु, उपघात, निर्माण तथा ५  
अत्रधयके वधकोंके लोकका असख्यातना भाग वा सर्वलोक है । अत्रधक नहीं है । दो वेदनीय,  
हास्यादि दो युगल, स्थिरादि ४ युगलके वधकों-अत्रधकोंका लोकके असख्यातना भाग वा सर्वलोक  
है । दोनों प्रकृतियोंके वधकोंका लोकका असख्यातना भाग, वा सर्वलोक है । अत्रधक नहीं है ।  
स्त्री पुरुष वेदके वधकोंका क्षेत्र भग है अर्थात् लोकका असख्यातना भाग है । अत्रधकोंका लोकके  
असख्यातना भाग वा सर्वलोक भग है । नपुंसकवेदका प्रतिलोम क्रम है अर्थात् नपुंसकवेदके  
वधकोंका लोकका असख्यातना भाग वा सर्वलोक भग है । अत्रधकोंका लोकका असख्यातना भाग  
है । तीनों वेदोंके वधकोंका लोकका असख्यातना भाग वा सर्वलोक है । अत्रधक नहीं है ।

( १ ) ' पचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केरडिय खेतं पोटिद ' लोगस्स असखेज्जदिभागो, सञ्चलोगो  
वा ।' —पट्ख० फो० सू० ३२, ३३ ।

अगो० छसघ० मणुसाणु० आदाउजो० दोविहा० सुभग-सुस्तर-आदेज्ज० उच्चागोद  
 च । णयुसगवेद-भगो तिरिक्खगदि-एइदियजादि-हुडसठाण-तिरिक्खाणुपुब्बि थावर  
 पज्जत्तापज्ज० पत्तेग-माधारण-दूमग-दूसर-अणादेज्ज-णीचागोद च । दोआयु० छसघ०  
 दोविहा० दोसर० वधगा सेत्तभगो । अवधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो, सब्बलोगो  
 वा । गदि-जादि-सठाण-आणुपुब्बि-तत्तथावरादिसत्तयुगलदोगोदाण वधगा लोगस्स  
 असखेज्जदिभागो, सब्बलोगो वा । अवधगा णत्थि । परघादुस्साण वधगा अनधगा  
 लोगस्स असखेज्जदिभागो, सब्बलोगो वा । उज्जोवस्स वधगा सत्तचोइसभगो वा ।  
 अनधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो सब्बलोगो वा । एव वादरजसगिति तत्पडि-  
 पक्ख सुहुमं पज्जसगिति ।

१० §२९८ एण मणुसापज्जत्त० सब्बगिगलिदिय-पंचिंदिय तस अपज्जत्त-वादरपुढानि०  
 आउ० तेउ० वाउ० वादरणफ्फदि-पत्तेय-पज्जत्ता । णपरि वादरवाउपज्जत्ते ज हि  
 लोगस्स असखेज्जदिभागो त हि लोगस्स सखेज्जदिभागो कादब्बो ।

§२९९. मणुस० ३-पचणा० णवदस० सोलसक० भयदु० तैजाक० वण्ण० ४ अगु०

दो आयु (मनुष्य तिर्यंचायु) मनुष्यगति, दोदत्रियादि चार जाति, हुडक चिन्ता ५ सस्थान, औत्तरिक  
 अगोपाग, ६ सहजन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, सुभग, सुस्तर, आदेय,  
 उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भग है । तिर्यंचगति, एकेत्रिय जाति, हुडक सस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी,  
 स्थार, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भंग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका नपुंसकवेदके  
 समान भग है । दो आयु, ६ सहजन, २ विहायोगति, दो स्वरके वधकोंका क्षेत्रके समान भग है  
 अर्थात् सर्वलोक है । अनधकोंके लोकका असरयातवा भाग वा सर्वकोक भग है । गति, जाति,  
 सस्थान, आयुपूर्वी, अस-न्यावरदि सप्त युगल, २ गोत्रके वधकोंका लोकका असरयातवा भाग वा  
 सर्वलोक है । अनधक नहीं है । परयात, उच्छ्वासके वधकों अवधकोंका लोकका असरयातवा  
 भाग वा सर्वलोक भग है । उद्योतके वधकोंका १४, अवधकोंका लोकका असरयातवा भाग वा सर्व  
 लोक है । वादर, यरा कीर्ति तथा इनके प्रतिपक्षी सूक्ष्म और अयश कीर्ति से इसी प्रकार भग है ।

§२९८ लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सर्व विकलेत्रिय, पचेत्रिय अपर्याप्तक, अस अपर्याप्तक, वादर  
 पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वादर वनस्पति, प्रत्येक, पर्याप्तमेंमे इसी प्रकार भग है । विशेष, वादर रायु  
 कायिर् पर्याप्तमेंमे जहा लोकका असरयातवा भाग है, वहा लोकका सरयातवा भाग जानना चाहिये ।

§२९९ 'मनुष्यत्रिक अधोत् मनुष्य, पर्याप्त-मनुष्य, मनुष्यनीमे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनानरण,  
 १६ कपाय, भय जुगुप्सा, तैजस-वर्माण, वर्ण ४, अगुरुत्तु, वपवात, निर्माण, ५ अतरायके

( १ ) "मणुसगदीए मणुस मणुसप जत्त मणुसिगीनु मिच्छादिदुहीहि केवडिय सेतं पोसिद ? लोगस्स  
 असखेज्जदिभागो सब्बलोगो वा । सगसग्गमादिदुहीहि केवडिय सेतं पोसिद ? लोगस्स असखे-ज्जदिभागो  
 सन्नोददत्तभागो वा देवणा । सम्मामिच्छादिदुहिण्हुट्टि भाव अजोगिक्खेवहीहि केवडिय सेतं पोसिद ?  
 लोगस्स असखेज्जदिभागो । सजोगिक्खेवलोहि केवडिय सेतं पोसिद ? लोगस्स असखे-ज्जदिभागो भवत्ते  
 वत्ता वा भागा सब्बलोगो वा ।" -पट्ठ० फी० सू० ३५-४१ ।

उप० णिमि० पचंतराइगाण वंधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो सच्चलोगो वा । अंधगा केवलमगो । मिच्छत्तस्स वधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो सच्चलोगो वा । अवधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो सत्तचोइसभागो वा केवलमगो । सादग्धगा लोगस्स असखेज्जदिभागो केवलमगो । अग्धगा लोगस्स असखेज्जदिभागो सच्चलोगो वा । असादग्धगा लोगस्स असखेज्जदिभागो सच्चलोगो वा । अग्धगा लोगस्स असखे० भागो ५ केवलमगो । दोण्ण पग्दोण वधगा केवलमगो । अंधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो । इत्थि० पुरिस० वंधगा खेत्तमगो । अग्धगा केवलमगो । णवुस० असादमगो । तिण्ण वेदाण वधगा लोगस्स असखे० भागो सच्चलोगो वा । अग्धगा केवलमगो । इत्थिमगो चटुआयु तिण्णिग्दि-चटुजादि-वेउच्चि०-आहार०-पंचसंठा० तिण्णिअगो० छसघ० तिण्णि-आणु० आदाव० दोविहा० तस सुमग० दोसर ( ? ) [सुस्सर०] १० आदे० उच्चागोद च । णवुसकवेदमगो हस्सरदि-अरदिसोग्-तिरिक्कग्दि-एइंदियजादि-ओरालि० हुडसठा० तिरिक्कणु० धापर-पज्जत्त-अपज्जत्त० पत्तेय० साधारण० धिरा-धिर-सुभासुभ-दुग्भ-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोद च । एव पत्तेगेण साधारणेण वि वेद-

वधकोंका लोकका असख्यातवा भाग वा सर्वलोक है । अग्धकोंका केवली भग है । मिथ्यात्व के वधकोंका लोकका असख्यातवा भाग वा सर्वलोक है । अवधकोंका लोकका असख्यातवा भाग वा ३/४ अथवा केवली भग है ।

[ विशेष—मिथ्यात्वके वधकोंके मारणातिक समुद्रात तथा उपपाद पदकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन कहा है । ( ध० टी० फो० पृ० २२७ ) ]

साताके वधकोंके लोकका असख्यातवा भाग वा केवली भग है । अग्धकोंके लोकका असख्यातवा भाग वा सर्वलोक है । असाताके वधकोंके लोकका असख्यातवा भाग वा सर्वलोक है । अवधकोंके लोकका असख्यातवा भाग वा केवली भग है । दोनो प्रकृतियोंके वधकोंका केवली भग है । अवधकोंका लोकका असख्यातवा भाग है ।

[ विशेष—दोनोंके अग्धक अयोगकेवलीकी अपेक्षा असख्यातवा भाग कहा है । ]

स्त्रीवेद, पुरुषवेदके वधकोंका क्षेत्रके समान भग है अर्थात् लोकका असख्यातवा भाग है । अग्धकोंका केवली भग है । नपुसकवेदका असाताके समान भग है । तीनों वेदोंके वधकोंका लोकका असख्यातवा भाग वा सर्वलोक भग है । अवधकोंका केवली भग है । चार आयु, तीन गति, ४ जाति, वैक्रियिक, आहारक शरीर, ५ सस्थान, तीन अगोपाग, छह सहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुमग, दो स्वर ( ? ) [ सुस्वर ], आदेय तथा उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भग है । हास्य, रति, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, हुडक सस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका नपुसकवेदके समान भग है । प्रत्येक तथा सामा यसे भी वेदके समान भग है ।



भगो । परघादुस्तानं हस्तभगो । उज्जोवस्त यधगा सत्तचोदसभागो । अबधगा  
 केवलभगो । एव बादरजसगिति । सुहुम बधगो लोगस्त असखेज्जदिभागो, सब्  
 लोगो वा । अबधगा केवलभगो । अजसगित्तिसस बधगा लोगस्त असखेज्जदिभागो,  
 सब्लोगो वा । अबधगा सत्तचोदसभागो केवलभगो । दोण्ण पगदीण बंधगा लोगस्त  
 ५ असखेज्जदिभागो सब्लोगो वा । अबधगा केवलभगो । तित्थयरस्त बधगा खेतभगो ।  
 अबधगा लोगस्त असखेज्जदिभागो केवलभगो ।

§३००. देवेसु-धुविगाण बधगा अट्ट-णत्त चोदसभागो वा । अबधगा णत्थि ।  
 थीणगिद्वित्थि-अणताणु० ४ यधगा अट्टणत्त-चोदसभागो वा । अबधगा अट्ट-चोदस  
 भागो वा । एव णत्थस० तिरिक्खगदि० एइदि० हुडसठा० तिरिक्खाणु० थावर०

परघात, उच्छ्रासका हास्यके समान भग है । अर्थात् लोकका असख्यातवा भाग वा  
 सर्वलोक है । अबधकोंका लोकका असख्यातवा भाग वा केवली भग है । उद्योतके बधकोंका  
 १/२ है । अबधकोंका केवली भग है । बादर तथा यश कीर्ति मे इसी प्रकार है । सूह्रमके बधकोंका  
 लोकका असख्यातवा भाग वा सर्वलोक है । अबधकोंका केवली भग है । अयश कीर्तिके  
 बधकोंका लोकका असख्यातवा भाग वा सर्वलोक है । अबधकोंका १/२ वा केवली भग है ।  
 बादर, सूह्रम तथा यश कीर्ति-अयश कीर्तिके बधकोंका लोकका असख्यातवा भाग वा सर्वलोक है ।  
 अबधकोंका केवली-भग है । तीर्थकरके बधकोंका क्षेत्रवत् भग है अर्थात् लोकका असख्यातवा  
 भाग है । अबधकोंका लोकका असख्यातवा भाग वा केवली भग है ।

§३०० देवोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बधकोंके १/२, १/४ भाग है । अबधक नहीं हैं ।

[ विशेष—बिहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा बैक्रियिक समुद्रघातसे परिणत मिथ्यात्व  
 तथा सासादन गुणस्थानवर्ती देवाने प्रतीतमे दशोन १/२ भाग स्पर्श किया है । मारणातिक  
 समुद्रघातगत मिथ्यात्वी तथा सासादन सम्यक्त्वी देवोंने नीचे दो राजू तथा ऊपर सात राजू इस  
 प्रकार १/२ भाग स्पर्श किया है ( १ घ० टी० फो० पृ० २२५ ) । ]

स्थानगृद्धिजिक, अनतानुबधी ४ के बधकोंका १/२ वा १/४ भाग है । अबधकोंका १/२  
 भाग है ।<sup>२</sup>

[ विशेष—यहा स्थानगृद्धि आदिबे अबधक सम्यग्मिथ्यात्वी, अविरतसम्यक्त्वी जीवोंके  
 बिहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा बैक्रियिक समुद्रघातकी अपेक्षा ऊपर छह राजू तथा नीचे  
 दो राजू इस प्रकार १/२ भाग स्पर्शन है । यह विशेष है कि अविरत सम्यक्त्वी देवोंने मारणातिक  
 समुद्रघातकी अपेक्षा भी १/२ भाग है । उपपादकी अपेक्षा १/४ भाग है । ]

नपुसकप्रेद, तियचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुडकसस्थान, तिर्यचानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भंग,

(१) "देवगदीए देवेसु मि० आदिदि०-सावणसम्मदिद्दिदि केन्द्रिय खेत्तं पविदि १ लागसस असखेज्जदि  
 भागा, अट्टणत्तचोदसभागा वा देवगा । -पट्ख० फो० सू० ४२, ४३ ।

(२) "सम्मामिच्छदिदि अणबदसम्मदिद्दिदि केन्द्रिय खेत्तं पविदि १ लोगस्त असखेज्जदिभागो,  
 अट्टचोदसभागो वा देवगा । -पट्ख० फो० सू० ४४, ४५ ।

दुभग-अणादेज्ज-णीचागोद च । मिच्छत्तस्स बंधगा अवधगा अट्ठणनचोद्दसभागो वा । एव उच्चागो० । सादासादवधगा अनधगा अट्ठणनचोद्दसभागो वा । दोण्ण पगदीण बंधगा अट्ठणन-चोद्दसभागो वा । अवंधगा णत्थि । एव हस्सादिदोयुगल यिरादि-तिण्णियुगल च । इत्थि० पुरिस० वधगा अट्ठचोद्दसभागा । अवधगा अट्ठणन-चोद्दस-भागो वा । तिण्ण वेदाण अट्ठणन चोद्दस० । अवधगा णत्थि । इत्थिमगो दोआयु- ५ मणुसगदि-पंचिदि० पचसठा० ओराल्लि० अगो० छसंध० मणुसाणु० आदाव० दोवि-हाय० तस सुभग-आदेज्ज० दोसर० तित्थयर० उच्चागोद च । एव पत्तेणेण साधारणेण वि वेदमगो । णपरि आयुमगो छसघ० दोविहाय० दोसर० पत्तेणेण साधारणेण वि । एव सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसण कादच्च ।

अनादेय तथा नीचगोत्रका इसी प्रकार है । मिथ्यात्वके बधकों अवधकोंका १/४ वा ३/४ है । इसी प्रकार उच्चगोत्रमे भी है । साता असताके बधकों अवधकोंका १/४ वा ३/४ भाग है । दोनों प्रकृतियोंके बधकोंका १/४ वा ३/४ भाग है । अवधक नहीं है ।

[ विशेष—देवोंमें आदिके चार गुणस्थान ही होते हैं अत अयोगकेवलीमें अवध होनेवाले इन साता असाता युग्मका अनधक यहा नहीं कहा है । असाताका प्रमत्तसयत तक तथा साताका सयोगी जिन पर्यन्त वध होता है इसी कारण देवोंमें इनके अवधक नहीं है । ]

हास्यादि दो युगल तथा स्थिरादि तीन युगलमे इसी प्रकार है । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बधकोंके ३/४ है । अवधकोंके १/४ वा ३/४ है । तीनों वेदोंके बधकोंका १/४ वा ३/४ है । अवधक नहीं है ।

[ विशेष—जन देवोंमें वेदोंके अनधक नहीं है, तन स्त्रीवेद, पुरुषवेदके अवधकोंका तात्पर्य नपुसकवेदके बधकोंसे है । नपुसकवेदका वध मिथ्यात्वी जीवोंके ही होगा अत उनके १/४ वा ३/४ कहा है ।

तिर्यंच-मनुष्यायु, मनुष्यगति, पचेन्द्रियजाति, ५ सस्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सह-नन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, ग्रस, सुभग, आदेय, दो स्वर, तीर्थकर और उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भग है । अर्थात् बधकोंके ३/४ तथा अवधकोंके १/४ वा ३/४ है । इस प्रकार प्रत्येक तथा साधारणसे भी वेदोंके समान भग जानना चाहिए । विशेष, छह सहनन, दो विहायागति, दो स्वरका प्रत्येक तथा साधारणसे दो आयु ( तिर्यंच-मनुष्यायु ) के समान भग जानना चाहिए ।

इस प्रकार सर्वदेवोंमें अपना अपना स्पर्शन निकाल लेना चाहिए ।

[ विशेष—भयनत्रिकमे मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा लोकना असरयातना भाग, ३/४, १/४ वा ३/४ भाग है । ये विहारयत् स्स्थान, वेदना, कपाय, विन्रियापदके द्वारा उपरोक्त लोकना स्पर्शन करते हैं । मेरुतलसे दो राजू नीचे तथा सौधर्मस्वर्गके विमान ध्वजदंड

( १ ) "भरगनासिय-वाग्वेत्तर-जोदिधियदेयेसु मिच्छादिदि-सासणम्मदिहीदि वेत्तियि खेत्त फोसिद ? लोगस्स असरोग्ग-दसमो, अद्दुध्ठा वा अट्ठणनचोद्दसभागा वा देवशा ।" —पट्टर० फो० सू० ४६ ४७ ।



§३०१. एइदिएसु-धुविगाण वधगा सव्वलोगो । अनधगा णत्थि । सादासाद-  
वधगा अवधगा सव्वलोगो । दोण्णं पगदीण वधगा सव्वलोगो । अनधगा णत्थि ।  
एवं सव्वान्ण वेदणीयमगो । णत्तरि मणुसाणुअधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्व-  
लोगो वा । अवधगा सव्वलोगो । तिरिक्खायुवधगा अवधगा सव्वलोगो । दोण्ण  
आयुगाणं वधगा अवधगा सव्वलोगो । एव छसध० ओरालि० अंगो० परघादुस्तास- ५  
आदाउज्जोव दोविहाय-दोसर० ।

§३०२. एव सव्वसुहुम-एइदिय-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदि-णिगोद  
एदेसि० सव्वसुहुमाण च ।

§३०३. वादरेइदिय-पज्जत्ताअपज्जत्त-धुविगाण वधगा सव्वलोगो । अनधगा  
णत्थि । सादासाद नधगा अनधगा सव्वलोगो । दोण्ण पगदीण वधगा सव्वलोगो । १०  
अनधगा णत्थि । एव चदुणोकसा० परघादुस्ता० थिराथिरसुभासुमाण । इत्थि० पुरिस०  
नधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो । अवधगा सव्वलोगो । णयुम० वधगा सव्वलोगो ।  
अनधगा लोगस्स सखेज्जदिभागो । एव इत्थिभगो तिरिक्खायु-चदुजादि-पचसठा० ओरालि०

§३०१ एकेन्द्रियोमे—<sup>१</sup> ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका सर्वलोक है । अवधक नहीं है ।

[ विशेष—स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणातिक तथा उपपादकी अपेक्षा एकेन्द्रिय  
जीवोने अतीत अनागत कालमे सर्वलोक स्पर्श किया है । ( ध० टी० फो० सू० २४० ) ]

साता-असाताके वधकों अवधकोंका स्पर्शन सर्वलोक है । दोनों प्रकृतियोंके वधकोंका  
सर्वलोक स्पर्शन है । अवधक नहीं है । इस प्रकार सर्व प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भग है ।  
विशेष, मनुष्यायुके वधकोंका लोकका असरयातवा भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है । अवधकोंका  
सर्वलोक है । तिर्यचायुके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है । दोनों आयुके वधकों अवधकोंका  
सर्वलोक है । छह सहनन, औदारिक अगोपान, परघात, उच्छ्वास, ध्यातप, उद्योत, दो  
विहायोगति तथा दो स्वरमे इसी प्रकार भग है ।

§३०२ सर्वसूक्ष्म एकेन्द्रियोमे इसी प्रकार है । पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक,  
वायुकायिक, धनस्पतिरायिक, निगोद, इनके सर्वसूक्ष्म भेदोंमे भी इसी प्रकार है २ ।

§३०३ वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमे—ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंके  
सर्वलोक है । अवधक नहीं है । माता असाताके वधकों अवधकोंके सर्वलोक स्पर्शन है ।  
दोनों प्रकृतियोंके वधकोंके सर्वलोक है । अवधक नहीं हैं । हास्यादि चार नोक्षाय, परघात,  
उच्छ्वास, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभमे इसी प्रकार जानना चाहिए । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके वधकोंके  
लोकका असख्यातवा भाग, अवधकोंके सर्वलोक है । नपुंसकवेदके वधकोंके सर्वलोक है तथा

( १ ) 'इदियाणुमादेश एइदिय वादर-सुहुम-अजवापअचएहि केवडिय खेत्त कोसिद ? सव्वलोगो !'  
-पट्टर० फो० सू० ५७ ।

( २ ) 'वादरपुढविहाय-वादरआउकाइय वादरतेउकाइय-वादरवणप्फदिहाइय त्तेयसरीरपज्जत्तएहि  
केवडिय खेत्त कोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ।'—सू० ६७-६८ ।

अगो० छसघ० आदा० दोनिहाय० तम-सुभग-दोसर-आदेज्ज० । णधुसक भगो एइंदिय  
हुडसटा०-धावर-दुभग-अणाटेउज्ज० । मणुसापु-वधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो ।  
अवधगा लोगस्स सखेज्जदिभागो सब्वलोगो वा । दो-आधु-वधगा लोगस्स सखेज्जदि  
भागो । अवधगा लोगस्स सखेज्जदिभागो, सब्वलोगो वा । एवं छसघ० दोनिहा०  
५ दोसर० । तिरिक्खगदिअवधगा सब्वलोगो । अवधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो । मणुस  
गदिवधगा [लोगस्स] असखेज्जदिभागो । अवधगा सब्वलोगो । दोण्ण पगदीण वधगा  
सब्वलोगो । अवधगा णत्थि । एव दो-आधु० दो-भोदाणं । उज्जोवस्स वधगा लोगस्स  
सखेज्जदिभागो, सत्तचोइसभागो वा । अवधगा सब्वलोगो । एव वादर-जस० ।  
पज्जत्ता-अपज्जत्त पत्तेग साधारण वेदणीय भगो । सुहुम-अज्जत्त० वधगा सब्वलोगो ।  
अवधगा लोगस्स सखेज्जदिभागो, सत्तचोइसभागो वा । दोण्ण पगदीणं वधगा सब्व-  
१० लोगो । अवधगा णत्थि । एव वादर-वाउ० अपज्जत्तात्ति । वादर-पुठवि-आउ० तेउ०  
तेसि च अपज्जत्ता वादर-वणप्फदि-णिगोद-पज्जत्ता-अपज्जत्ता वादर-वणप्फदि०

अवधकोंके लोकका सरयातवा भाग है ।<sup>१</sup> तिर्यंचायु, चार जाति, पाच सस्थान, औदारिक  
अगोपाग, छह सहनन, आतप, दो विहायोगति, प्रस, सुभग, दो स्वर तथा आदेयमे स्त्री  
वेदका भग जानना चाहिए । एकेंद्रिय, हुडकसस्थान, थावर, दुभंग तथा अनादेयमे नपुसक-  
वेदका भग जानना चाहिए । मनुष्यायुके वधकोंका लोकका असख्यातवा भाग है । अर्धवधकोंका  
लोकका सख्यातवा भाग वा सर्वलोक है । मनुष्य तिर्यंचायुके वधकोंका लोकका सरयातवा  
भाग है । अवधकोंका<sup>२</sup> लोकका सरयातवा भाग वा सबलोक है । छह सहनन, दो विहायोगति  
तथा दो स्वरम इसी प्रकार है । तिर्यचगतिके वधकोंके सबलोक है । अवधकोंके लोकका  
असरयातवा भाग है । मनुष्यगतिके वधकोंके [लोकका] असरयातवा भाग है, अवधकोंके सर्वलोक  
है । दोनों प्रकृतियाके वधकोंके सर्वलोक है । अवधक नहीं है । मनुष्य तिर्यंचानुपूर्वी  
तथा दो भोनोंमे इसी प्रकार है । उद्योतके वधकोंका लोकका सख्यातवा भाग वा ३२ भाग  
है । अवधकोंके सर्वलोक है । वादर तथा यश कीर्तमे इसी प्रकार जानना चाहिए । पर्याप्त,  
अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारणमें वेदनीयके समान भग है । सूद्धम तथा अयश कीर्तिके वधकोंका  
सर्वलोक है । अवधकोंका लोकका सरयातवा भाग वा ३२ है । वादर-सूद्धम तथा यश कीर्ति  
अयश नीं तके वधकोंका सर्वलोक है । अवधक नहीं हैं । वादर वायुकायिक, वादरवायुकायिक  
अपर्याप्तकोमे इसी प्रकार है । वादर पृथ्वीकायिक, वादर अप्कायिक, वादर तेजकायिक, वादर  
पृथ्वीनायिक-अपर्याप्तक, वादर-अप्कायिक अपर्याप्तक, वादर-तेजकायिक-अपर्याप्तक, वादर  
वनस्पतिकायिक, वादर निगोद, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, वादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक,  
वादर निगोद पर्याप्तक, वादर निगोद-अपर्याप्तक, वादर वनस्पति प्रत्येक, वादर वनस्पति प्रत्येक

(१) वादरबाउप-उत्तएहि केवडिय से । पोसिद २ लोगस्स संखेज्जदिभागो । सब्वलोगो वा । -पट्टर०  
को० सू० ६९, ७२ । (२) 'मारणत्थियउववादपरिणदेहि सब्वलोगो पोसिदो । एव वादर तेउकाइयपवक  
चाण वि बसव्व । णत्थि वेउत्तियस्य तिरियलगस्स संखेज्जदिभागो मन्त्तो ।'

पत्तेय तस्मै अपञ्जत्तादरएडदियभगो । पत्रि य हि लोगस्स ससेज्जदिभागो तं  
हि लोगस्स अससेज्जदिभागो कायव्वो ।

§३०४. पचिदिय-तम-तैसि पञ्जत्ता-पचणा० उदंस० अट्ठक० भयदु० तेजाक०  
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचत वधगा लोगस्स अससेज्जदिभागो, अट्ठ तेरह-  
चोद्दमभागो वा सव्वलोगो वा । अवधगा केवल्लिभगो । धीणगिद्वि० ३ अणताणु० ४ ५  
वधगा अट्ठतेरह०, सव्वलोगो वा । अवधगा अट्ठ-चोद्दसभागो केवल्लिभगो ।  
[ साद० वधगा अट्ठ-तेरह-चोद्दस० केवल्लि-भगो । ] अवधगा अट्ठ तेरह० सव्वलोगो  
वा । असाद-वधगा अट्ठ तेरह० सव्वलोगो वा । अवधगा अट्ठतेरह-चोद्दस०  
केवल्लिभगो । दोण्ण वग्गा अट्ठतेरह० चोद्दसभागो केवल्लि-भगो । दोण्ण अवधगा

अपर्याप्तमे वादर एकेन्द्रियके समान भग है । त्रिषेप, जहाँ लोकना सख्यातया भाग है, यहाँ  
लोकना असख्यातया भाग करना चाहिए ।

§३०४ 'पचेन्द्रिय, त्रस, पचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस पर्याप्तकौमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण,  
आठ कपाय, भय-जुगुप्सा, तजस कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अतरायके  
वधक लोकके असख्यातयें भाग, १६, १७ वा सर्वलोकका स्पर्शन करते हैं । अवधकोंका केवली-  
भग है । स्थानगृह्णिक, अनतानुधी ४ के वधकोंका १६, १७ वा सर्वलोक है । अवधकोंके १६  
भाग वा केवलीके समान भग जानना चाहिए ।

[ विशेष-विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैकियिक समुद्घातकी अपेक्षा ज्ञानावर  
णादिके वधकोंका स्पर्शन १६ है, कारण मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू प्रमाण स्पर्शन  
है । मारणातिक तथा उपपादकी अपेक्षा सर्वलोक है । सप्तम पृथ्वीके नारकीने मारणातिक कर  
मध्यलोकको स्पर्श किया, पश्चात् मध्यलोकमे जन्म धारण कर अनतर लोकाप्रमे जाकर बादर  
पृथ्वीनायिक आदिके रूपमे उत्पन्न हुआ । इस प्रकार ६ तथा ७ = १३ राजू स्पर्शन हुआ ।  
अवधकोंमे केवली भग लोकका असख्यातयों भाग प्रमाण, अथवा प्रतर समुद्घातकी अपेक्षा  
असख्यात बहुभाग एव लोमपूरणकी अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण है । स्थानगृह्णिक तथा  
अनतानुधी, ४ के अवधक मम्यक् मिथ्यात्वी तथा अचिरतमम्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा  
१६ है, कारण ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू प्रमाण स्पर्शन विहारवत् स्वस्थान, वेदना,  
कपाय, वैकियिक तथा मारणानिक समुद्घातकी अपेक्षा कदा है । मिश्रगुणस्थानमे मारणा-  
तिक समुद्घात नहीं होता है ( ध० टी० फो० पृ० १६७ ) ]

[ साता वेत्तीयके वधकोंका १६, १७ वा केवली-भग है । ] अवधकोंका १६, १७ वा सर्व-  
लोक है । असाताके वधकोंका १६, १७ वा सर्वलोक है । अवधकोंका १६, १७ वा केवली भग है ।  
दोनोंके वधकोंका १६, १७ वा केवली-भग है । दोनोंके अवधकोंका लोकके असख्यातयें भाग है ।

( १ ) 'पचिदिय-पचदियपञ्जत्तएसु मिच्छादिदृष्टाहि केवडिय मेत्त पोसिद ? लोगस्स अससेज्जदि-  
भगो । अट्ठचोद्दसभागा देसणा सव्वलोगो वा । सासणम्ममादिट्ठिप्पहृदि जाव अजागिकेवल्लिचि  
आप ।' -पट्ठन० फो० सू० ६०, ६० ।

"तसकाइय-तसकाइयपञ्जत्तएसु मिच्छादिदृष्टिप्पहृदि जाव अजागिकेवल्लिचि ओष ।" -सू० ७२ ।

लोगस्त असंखेज्जदिभागी । मिच्छत्तस्म वधगा अट्ठतेरह०, सच्चलोगो वा । अवधगा अट्ठतेरह० केरलिभगो । अपच्चस्साणा० ४ वधगा अट्ठतेरह०, सच्चलोगो वा । अवधगा छचोद्दसभागी केरलिभगो । इत्थि० पुरिस० वधगा अट्ठ-वारह० । अवधगा अट्ठतेरह० केरलिभगो । णवुस० वधगा अट्ठ-तेरह० सच्चलोगो वा । अवधगा अट्ठवारह० केरलि-भगो । तिण्णि वेदाण वधगा अट्ठ-तेरह० सच्चलोगो वा । अवधगा केरलिभगो । इत्थिभगो पचसठा० छस्सव० सुभग दोसर-आदे० । णवुस कभगो हुडसठा० दूमग० अणादे० । साधारणेण वेदभगो । णवरि सघडणसरणा माण वधगा अट्ठ-वारह-चोद्दसभागी वा । अवधगा अट्ठणव-चोद्दस० सच्चलोगो वा । हस्सरदि-अरदि-सोग-वधगा अट्ठ-तेरह० सच्चलोगो वा । अवधगा अट्ठ तेरह० भागी, केरलिभगो । चटुण्ण वधगा अट्ठ-तेरह० सच्चलोगो वा । अवधगा केरलिभगो । एव थिराथिरसुभासुभ० दो-आयु तिण्णिजादि । आहारदुग्ग खेतभगो । अवधगा अट्ठतेरह० केरलिभगो । दो-आयु० मणुसगदि-आदाव-तित्थप०

[ विशेष—तेनोने अवधक अयोगवेवलीका स्पर्शन लोकका असख्यातवो भाग कहा है । (१७०) ]  
मिध्यात्वके वधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका १४, १३ वा केरली-भग है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के वधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका १४ वा केवली भग है ।  
[ विशेष—अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवधक देशसयमीके अच्युत स्वरा पर्यन्त मारणातिककी अपेक्षा १४ कहा है । ( ध० टी० फो० पृ० १७० ) ]

स्त्रीवेद, पुरुषवेदके वधकोंका १४, १३ है । अवधकोंका १४, १३ वा केवली-भग है ।  
[ विशेष—मेस्तलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू इस प्रकार १४ है । ७ थी पृथ्वीका नारकी मारणातिक कर मध्यलोकका स्पर्श करता है, मरण कर वहाँ उत्पन्न हुआ, पश्चात् अच्युत स्वर्गका स्पर्शन किया, इस प्रकार १४ राजू स्त्री पुरुषवेदके वधकोंके हुए । ]

नपुंसकवेदके वधक का १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका १४, १३ वा केवलीभग है । तीनों वेदोंके वधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका केवली-भग है । ५ सस्थान, ६ सहनन, सुभग, दो स्वर, आदेयना स्त्रीवेदके समान भग है । हुडक सस्थान, दुर्भग, आदेयका नपुंसक वेदके समान भग है । इनका सामान्यसे वेदके समान भग है । विशेष, सहनन, स्वर नामक प्रकृतियोंके वधकोंका १४, १३ भाग है, अवधकोंके १४, १३ वा सर्वलोक भग है ।

[ विशेष—तीसरी पृथ्वीमें विक्रिया द्वारा पहुँचा हुआ देव मारणातिक द्वारा लोकाप्रका स्पर्श करता है इस प्रकार १४ भाग होता है । ]

हास्य-रति, अरति शोकके वधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक स्पर्श है । अवधकोंका १४, १३ वा केरली भग है । सामान्यसे हास्यादि ४ के वधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका केवली-भग है । स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, दो आयु तथा ३ जातिमें इन्ही प्रकार जानना चाहिए । आहारवद्विक्रमे क्षेत्रके समान भग है । अर्थात् लोकका असख्यातवो भाग है । अवधकोंका १४, १३ वा केरली भग है । दो आयु, मनुष्यगति, आतप तथा तीर्थकरके वधकोंका

बधगा अट्ठचोद्दसभागो । अनधगा अट्ठ-तेरह० केवलभगो । चदु-आपुनधगा  
 अट्ठ-चोद्दसभागो । अनधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा । दोगदि-बधगा छच्चो-  
 द्दस० । अनधगा अट्ठतेरह० केरालभगो । तिगिक्खगदि बधगा अट्ठतेरह० सव्व-  
 लोगो वा । अबधगा अट्ठ-वारह० केवलभगो । चदुण्ण गदीण बंधगा अट्ठ-तेरह०  
 सव्वलोगो वा । अबधगा केवलभगो । एच आणुपुव्वीण । एइदिय० बधगा अट्ठ-  
 णव-चोद्दस० सव्वलोगो वा । अबधगा अट्ठवारह० केवलभगो । पच्चिदि०  
 बधगा अट्ठ-वारह० । अनधगा अट्ठ-णवचोद्दस० केवलभगो । पचण्ण जादीण  
 बधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा । अनधगा केरालभगो । ओरालि० बधगा अट्ठ-  
 तेरह०, सव्वलोगो वा । अवंधगा वारस० केवलभगो । वेउव्विय० बधगा वारह० ।  
 अबधगा अट्ठतेरह० केराल-भगो । दोण्ण बंधगा धुविगाणं भंगो । ओरालि० अगो० १०  
 अट्ठवारह-चोद्दस० । अनधगा अट्ठतेरह० केवलभंगो । वेउव्वि० अंगो० बधगा  
 वारह० । अनधगा अट्ठतेरह० केवलभगो । दोण्ण बधगाण अट्ठवारहभागो । अवंधगा  
 अट्ठणव-चोद्दसभागो केरालभगो । परघादुस्ता० बधगा अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो  
 वा । अवंधगा केवलभगो । उज्जोवस्स बधगा अट्ठतेरह० । अबधगा अट्ठतेरहभागो  
 केवलभगो । पसत्थ-अप्पसत्थविहायगदिवधगा अट्ठवारहभागो । अबधगा० अट्ठ- १५

रुह है । अनधकोंका रुह, रूहे वा केवलीभग है । चार आयुके बधकोंका रुह है, अबधकोंका  
 रुह, रूहे वा सर्वलोक है । नरकगति-देवगतिके बधकोंका रुह है, अबधकोंके रुह, रूहे वा केवली  
 भग है । तिर्यचगतिके बधकोंका रुह, रूहे वा सर्वलोक है । अबधकोंका रुह, रूहे वा केवली भग  
 है । चारों गतिके बधकोंका रुह, रूहे वा सर्वलोक है, अबधकोंमें केवली भग है । आनुपूर्वियोंमें  
 इसी प्रकार जानना चाहिए ।

एकेन्द्रियके बधकोंका रुह, रुहे वा सर्वलोक है । अनधकोंके रुह, रूहे वा केवली-भग  
 है । पचेन्द्रियके बधकोंका रुह, रूहे है । अनधकोंका रुह, रुहे वा केवली-भग है । पचजातियोंके  
 बधकोंके रुह, रूहे वा सर्वलोक है, अनधकोंके केवली-भग है । औदारिक शरीरके बधकोंके  
 रुह, रूहे वा सर्वलोक है । अबधकोंके रूहे वा केवली-भग है ।

[ विशेष—औदारिक शरीरके अनधकों अर्थात् धैक्रियिक शरीरके बधकोंके मेरुतलसे ऊपर  
 अच्युत पर्यन्त ६ राजू तथा सन्नम पृथ्वी पर्यन्त ६ राजू, इसी प्रकार रूहे हैं । ]

वैमिथिक शरीरके बधकोंके रूहे, अबधकोंके रुह, रूहे वा केवली भग है । दोनोंके  
 बधकोंके रुह, रूहे, लोकना असख्यातना भाग वा सर्वलोक स्पर्शन ध्रुव प्रकृतियोंके बधकोंके  
 समान है । अबधकोंके केवली भग है । औदारिक अगोपागके बधकोंका रुह, रूहे है । अबधकों-  
 का रुह, रूहे वा केवली-भग है । धैक्रियिक अगोपागके बधकोंका रूहे है । अबधकोंका रुह, रूहे  
 वा केवली-भग है । दोनोंके बधकोंका रुह, रूहे है । अबधकोंका रुह, रुहे वा केवली-भग है ।  
 पर्याप्त, उच्छ्वासके बधकोंका रुह, रूहे वा सर्वलोक है । अबधकोंके केवली भग जानना  
 चाहिए । उद्योतके बधकोंका रुह, रूहे है, अबधकोंका रुह, रूहे वा केवली भग है । प्रशस्त विह-



तेरह० केरलिभगो । दोण्ण वधगा अट्ठनारहभागो० । अणधगा अट्ठणचोद्दस०  
 केवलिभगो । तसवधगा अट्ठनारह० । अणधगा अट्ठणचोद्दस० केरलिभगो ।  
 थानर-वधगा अट्ठणव चोद्दस० सब्बलोगो वा । अवधगा अट्ठनारह० केरलि  
 भगो । दोण्ण वधगा अट्ठतेरह० सब्बलोगो वा । आधगा केरलिभगो । वादर  
 ५ वधगा अट्ठ तेरह० । अणधगा केवलिभगो । पल्लत्तपत्तेय० वधगा अट्ठतेरह० सब्ब  
 लोगो वा । अणधगा केरलिभगो । सुहुम-अपल्लत्त-माधारणवधगा लोगस्म अससेज्जदि  
 भागो सब्बलोगो वा । अवधगा अट्ठतेरह० केरलिभगो । वादर-सुहुम-वधगा अट्ठ  
 तेरह० सब्बलोगो वा । अणधगा केरलिभगो । जसगिति उच्चोप (?) वधगा,  
 अज्जस० वधगा अट्ठ तेरह० सब्बलोगो वा । अवधगा अट्ठतेरह० केरलिभगो ।  
 १० दोण्ण वधगा अट्ठतेरह० सब्बलोगो वा । अणधगा केवलिभगो । उच्चगोदे मणुमा  
 पुभगो । णीचागोद वधगा अट्ठतेरह० सब्बलोगो वा । अणधगा अट्ठचोद्दस०  
 केरलिभगो ।

योगति, अग्रशस्तविहायोगतिके वधकोंका ४४, ३३ है । अवधकोंका ४४, ३३ वा केवली भग है ।  
 दोनोंके वधकोंका ४४, ३३ है । अवधकोंका ४४, ३३ वा केवली भग है ।

[ विशेष—एकेन्द्रिय जातिके साथ विहायोगतिना सन्निकर्ष नहीं पाया जाता है अत विहा  
 योगतिद्विक के अवधकोंके मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजूकी अपेक्षा ४४ तथा मेरुतल  
 से ऊपर सात राजू तथा नीचे दो राजू, इस प्रकार ४४ भाग जानना चाहिए । ]

उसके वधकोंका ४४, ३३ है । अवधकोंके ४४, ३३ वा केवली भग है । स्थावरके  
 वधकोंका ४४, ३३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका ४४, ३३ वा केवली भग है । दोनोंके वधकोंका  
 ४४, ३३ अथवा सर्वलोक हैं । अवधकोंका केवली भग है । वादरके वधकोंका ४४ वा  
 ३३ है । अवधकोंके केवली भग है । पर्याप्त, प्रत्येकके वधकोंका ४४, ३३ वा सर्वलोक है ।  
 अवधकोंका केरली भग है । सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणके वधकोंका लोकवा असख्यातवों भाग वा  
 सर्वलोक है । अवधकोंके ४४, ३३ वा केवली भग है । वादर, सूक्ष्मके वधकोंके ४४, ३३ वा  
 सर्वलोक है । अवधकोंके केरली भग है । यश कीर्ति, उद्योत (?) के वधकों, अयश कीर्तिके  
 वधकोंके ४४, ३३ वा सर्वलोक है । अणधकोंके ४४, ३३ वा केवली भग है । गेनेके वधकोंके  
 ४४, ३३ वा सर्वलोक भग है । अवधकोंके केवली भग है ।

[ विशेष—यहां यश कीर्तिक साथ उद्योतका पाठ अधिक प्रतीत होता है । कारण परधात  
 उच्छ्वासके वधकोंके जनतर उद्योतका वखन किया जा चुका है । ]

उच्चगोपना मनुष्यायुके समान भग है अर्थात् लोकका अक्षरयातवा भाग, ४४ वा  
 सर्वलोक है, अवधकोंका सर्वलोक है । नीच गोत्रके वधकोंका ४४, ३३ वा सर्वलोक है ।  
 अवधकोंके ४४ वा केवली भग है ।

(१) "पविदिय पविदियपञ्चएतु मिच्छादिहादि केरडिह लेख पोसिद" लोगस्म अससेज्जदिभागा  
 अट्ठचोद्दसभागा देवणा सव्वलोगो वा । -पट्ख० पी० सू० ६०, ६१ ।

§३०५. एव पचमण० पचपचि० । णवरि केरलिभगो णत्थि । वेदणीयस्त  
अग्रधगा णत्थि । काजोगि-ओघो । णवरि वेदणी० अग्रधगा णत्थि ।

§३०६. ओरालियकाजोगीसु-पचणा० छदंसणा० अट्ठकसा० भयदु० तेजाक०  
वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचतराइगाण वधगा, सब्वतोगो । अवधगा लोगस्त  
असखेज्जदिभागो । सेसाणं तिरिक्खोघो कादघ्नो । णवरि अग्रधा (धगा) धुन्निगाण भगो । ५

§३०७. आयु सघडण-प्रिहायगदिसर मोचूण । ओरालियमिस्सवेगुन्वियमिस्स-  
आहार० आहारमिस्स खेतभगो । णवरि ओरालियमिस्स-मणुसायुवधगा लोगस्त  
असखेज्जदिभागो, सब्वतोगो वा । अग्रधगा सव्वतोगो ।

§३०८. वेगुन्विय-काजोगीसु-पचणा० छदस० वारसक० भयदु० ओरालि०  
तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ वादर-पज्जत्त० पत्तेय-णिमिण-पचतराइगाण वधगा १०

§३०५ पच मन, पच वचनयोगियोंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यहाँ केरली भग  
नहीं है । वेदनीयके अवधक नहीं ह । काययोगीमें—ओघके समान है । यहाँ वेदनीयके  
अग्रधक नहीं है ।

§३०६ औदारिक काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरण ४ तथा  
सञ्चलन ४ रूप कपायाष्टक, भय जुगुप्सा, तैजस कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण  
तथा ५ अतरायके वधकोंके सबलोक है । अग्रधकोंके लोकका असख्यातर्ता भाग है । १ श्रेय  
प्रकृतियोंका तिर्यचोके ओघजत्त जानना चाहिए । विशेष, अवधकोंमें प्रुध प्रकृतियोंका भग  
जानना चाहिए ।

§३०७ औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारकमिश्रमें—आयु, सहनन, प्रिहायो  
गति, दो स्वरको छोडकर श्रेय प्रकृतियोंका क्षेत्रके समान लोकका असख्यातर्ता भाग जानना चाहिए ।  
विशेष, औदारिक मिश्र काययोगीमें—मनुष्यायुके वधकोंका लोकका असख्यातर्ता भाग वा सर्वलोक  
स्पर्शन है । अवधकोंके सर्वलोक है ।

§३०८ वैक्रियिक काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, अप्रत्याख्यानावरणदि १२  
कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक,

(१) ओरालियकायजोगीसु मिच्छादद्धो आघ (सव्वतोगो) । पमचसज्जदप्पुट्ठि जाव सजागि  
केरलीहि केरडिय खेत्तं पासिद ? लोगस्त असखेज्जदिभागा ।" —पट्खु० फो० सू० ८१-८७ ।

(२) वेगुन्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीवासणसम्मादिट्ठी अग्रधदसम्मादिट्ठाहि केरडिय खेत्तं  
पासिद ? लोगस्त असखेज्जदिभागा ।" —सू० ९४ ।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमचसज्जदेहि केरडिय खेत्तं पासिद ? लोगस्त असखे  
ज्जदिभागा ।" —सू० ९५ । 'ओरालिमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघ ।" —सू० ८८ ।

"वासणसम्मादिट्ठि-अग्रधदसम्मादिट्ठि-सजागिकेरलीहि केरडिय खेत्तं पासिद ? लोगस्त असखेज्जदि  
भागो ।" —सू० ८९ ।

(३) "वेगुन्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केरडिय खेत्तं पासिद ? आगस्त असखेज्जदिभागा ।  
अट्ठत्तेरहचोदसभागा वा देवणा ।" सू०-९० ।

अट्ठ-तेरहभागो । अवधगा णत्थि । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त० अणताणु० ४ वधगा अट्ठतेरह० । अवधगा अट्ठ-चोद्दसभागो । णवरि मिच्छत्तस्स वधगा अट्ठवारह भागो । सादासादस्स वधगा अवधगा अट्ठ-तेरहभागो । दीण्ण वधगा अट्ठतेरह० । अवधगा णत्थि । एव हस्मादि-दोयुगल, थिरादि-तिण्णियुगल । इत्थि० पुरिसवेदाण वधगा अट्ठनारहभागो । अवधगा अट्ठतेरहभागो । णवुसग-वेदस्स वधगा अट्ठ-तेरहभागो । अवधगा अट्ठ-वारहभागो । तिण्णि वेदाण अट्ठतेरहभागो । अवधगा णत्थि । इत्थिभगो पचसंठा० ओरालि० अगो० छसंध० सुभग० आदेज्ज० । णवुसगवेदभगो हुडसठा० दूमग० अणादे० । साधारणेण वेदभगो । दोआपु० मणुसग० मणुसाणु० आदाव तित्थयर उच्चागोद वधगा अट्ठ-चोद्दसभागो । १० अवधगा अट्ठतेरहभागो । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० णीचागोद वधगा अट्ठ-

निर्माण तथा ५ अतरायके वधकोंका १४, १३ है । अवधक नहीं है ।

[ विशेष—मिध्याहृष्टि वैक्रियिक काययोगियोंने विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिकसमुद्रात पद परिणत जीवोंने ऊपर ६ राजू तथा मेरुतलसे नीचे २ राजू इस प्रकार १४ भाग स्पर्श किया है । मारणातिक समुद्रातकी अपक्षा ऊपर ७ तथा नीचे ६ राजू, इस प्रकार १३ भाग स्पर्श किया है । ( ध० टी० फो० टी० २६६ ) ]

स्त्यानगृद्धिजिक, मिध्यात्व, अनतानुवधी ४ के वधकोंका १४, १३ है, अवधकोंका १४ है । विशेष, मिध्यात्वके वधकोंका १४, १३ है ।

[ विशेष—स्त्यानगृद्धिजिकादिके अवधक सम्यग्मिध्याहृष्टि तथा अविरत सम्यक्त्वी विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणातिक परिणत जीवोंके १४ स्पर्शन किया है । मित्र गुणस्थानमे मारणातिक नहीं है । ( ध० टी० फो० पृ० २६७ ) ]

साता, असाताके वधकों अवधकोंके १४, १३ है । दोनोंके वधकोंके १४, १३ है । अवधक नहीं है । हात्यरति, अरति शोक, स्थिरादि तीन युगलमे इन्नी प्रकार जानना चाहिए । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके वधकोंके १४, १३ है । अवधकोंके १४, १३ है । नपुसकवेदके वधकोंके १४, १३ है । अवधकोंके १४, १३ है । तीनों वेदोंके वधकोंके १४, १३ है । अवधक नहीं हैं । ५ सस्थान, औदारिक अगोपाल, ६ सहनन, सुभग, आदेयमें स्त्रीवेदका भग है । हुडक सस्थान, दुर्भग, अनादेयमें नपुसकवेदके समान भग है । सामायसे वेदके समान भग है । मनुष्य तिर्यचायु, मनुष्यगत, मनुष्यानुपूर्वा, आतप, तीर्थकर तथा उच्चगोत्रके वधकोंका १४ है, अवधकोंका १४, १३ भाग है ।

[ विशेष—वैक्रियिक काययोगी अविरतसम्यक्त्वी विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणातिक समुद्रात द्वारा ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू, इस प्रकार १४ स्पर्शन करता है । तीर्थकर आदि प्रकृतियोंके अवधक मिध्यात्वी जीवने मेरुतलसे नीचे ६ राजू तथा ऊपर ७ राजू इस प्रकार १३ भाग स्पर्श किया है । ]

तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी तथा नीचगोत्रके वधकोंके १४, १३ भाग है । अवधकोंके

तेरहभागो । अंधगा अट्ठचोद्दसभागो । दोण्ण वधगा  
 णत्थि । एव दोण्ण आउ० ( पु० ) (?) दोणोद० ।  
 चोद्दसभागो । अंधगा अट्ठवारहभागो ।  
 अट्ठणव-चोद्दसभागो । दोण्ण वधगा  
 तस-धावर० । उज्जीव-वधगा-अवधगा  
 बंधगा अट्ठनारह० । अवधगा अट्ठ-  
 धारहभागो । अंधगा अट्ठतेरहभागो । दोण्ण  
 अट्ठचोद्दसभागो । एव ओरालिय० अगे०

०  
 -  
 ।।  
 ह०  
 ह० ५  
 ण्ण०  
 गो ।  
 षागवा  
 क है ।  
 आतप,  
 लोकका

§३०९. कम्महगस्स-पचणा० छन्दु०  
 उप० णिमि० पचंतराद्दगाणं वधगा

भाग है । दोनों गतियोंके बधकोंके  
 दोनों गोरोंका इसी प्रकार वर्णन जानना  
 है । पचेन्द्रिय जातिके बधकोंके  
 भाग है । अंधक नहीं है ।

१४, १३

[ विशेष-वैक्रियिक कारणके

चोइन्द्रिय जातिके वर्णन नहीं दिए

प्रस, स्यावरोंका इसी प्रकार वर्णन  
 है । प्रशस्तविहायोगिके बधकोंके  
 के बधकोंके भाग है । अंधक  
 धकोंके भाग है । अंधक

मे आठ  
 कहा है ।  
 तिक और  
 सात राजू  
 टिसे

[ विशेष-औदारिक

हो चुका है । यहा पुनः

§३०९ कर्माण

कर्माण, वर्ण ४,  
 अवधकोंका

अवधकों

[ विशेष-

भाग वर्ण

भाग कहा है

अवधकोंका

और

। अविरत-  
 वैक्रियिक,  
 । मिश्र  
 यत सम्य-

के बधकों  
 सख्यातवें

लोगस्स

।  
 संखेज्जदि

असखेडा वा भागा वा सब्वलोगो वा । शीणगिद्धि० ३ अणताणु० ४ वधगा सब्व लोगो । अवधगा छच्चोदसभागो, केवलभगो । मादासाद वधगा अवधगा सब्व लोगो । दोण्ण वधगा सब्वलोगो । अवधगा पत्थि । मिच्छत्तस्स वधगा सब्वलोगो । अवधगा एहाहभागो, केवलभगो । इत्थि० पुरिस० णवुम० वधगा अवधगा सब्व लो० । तिण्ण वधगा सब्वलोगो । अवधगा फलभगो । एव तिण्ण वेदाप भगो चदुणोक्क० पचजादि-छत्ता० तसथानरादिणअणुगल दोगोद च । तिरिक्खरादि मणुम- गदिवधगा अवधगा सब्वलोगो । देवगादिवधना खेत्तभगो । अवधगा सब्वलोगो । तिण्ण गदीण वधगा सब्वलोगो । अवधगा त्तलभगो । एव तिण्णि आणु० । ओरात्ति० वधगा सब्वलोगो । अवधगा लोकास्स असमेज्झदि० वा भागा वा सब्वलोगो वा । वेउ १० निगवधगा खेत्तभगो । अवधगा सब्वलोगो । दोण्ण वधगा सब्वलोगो । अवधगा

स्थानगृद्धिनि, अनतानुवधी ४ के वधकोंके सर्वलोक है । अवधकोंके १२ वा केवली भग है ।

[ विशेष-इस योगमें स्थानगृद्धि आदिके अवधक असयतसम्यक्त्वी तियच मेन्तलसे ऊपर छह राजू जा करके उत्पन्न होते हैं । मेरुत्तलसे नीचे ५ राजू प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र नहीं पाया जाता है, कारण नारकी असयतसम्यक्त्वी जीवोना तिर्यंचोमें उपपाद नहीं होता है । (पृ० २७१) ]  
साता असाता वेदनीयके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है । दोनोंके वधकोंका सर्वलोक है । अवधक नहीं है । मिथ्यात्तने वधकोंना सबलोक है, अवधकोंना १२ अधना केवली भग है ।

[ विशेष-उपपाद परम वर्तमान मिथ्यात्वके अवधक सात्तादन सम्यक्त्वी जीव मेरुके मूल भागसे नीचे पाच राजू और ऊपर अच्युत करप तक छह राजू प्रमाण क्षेत्रना स्पर्शन करते हैं इससे १२ भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाना है । ( ध० टी० फो० पृ० २७० ) ]

स्त्रीवद, पुरुषवेद, नपुमकवेदके वधकोंका सर्वलोक स्पर्शन है । तीनों वेदोंके वधकों का सबलोक है । अवधकोंका केवली भग है । हास्यादि ४ नोकपाय, ५ जाति, ६ सस्थान, त्रस स्थावरादि ननुगल तथा ० गौरवा वेदवधके समान भग है । तिर्यंचात्ति मनुष्यगतिके वधका अवधकोंना सर्वलोक स्पर्श है । देवगतिके वधकोंना क्षेत्रने समान अर्थात् लोकना असरयात्तवा भाग भग है । अवधकोंना सर्वलोक है । तीन गतिके वधकोंका सबलोक है । अवधकोंना केवली भग है । तीन आनुपूर्वियामि इसी प्रकार जानना चाहिए ।

[ विशेष-सामान काययोगमें नरकगति तथा नरकगत्यानुपूर्वीका वध न होनेमें यहाँ तीन ही गतियोंना उल्लेख किया है । ]

औनारिज शरीरके वधकोंका सर्वलोक है । अवधकोंना लोकके असरयात्त बहुभाग वा सबलोक है । वैक्रियिक शरीरके वधकोंका क्षेत्र समान भग है अर्थात् लोकवा असरयात्तना भाग है । अवधकोंका सर्वलोक है । दोनों शरीरोंके वधकोंना सर्वलोक है । अवधकोंके

( १ ) 'कमे उरालमित्तं वा ।'-गो० क० ग० ११९ । "आराळ वा मिस्तेण्हि मुरणिरयाउडा रणिरवदुग ।-गो० क० ग० ११६ ।

केवलभगो । ओरालि० अगोत्रगस्त वधगा अवधगा सव्वलोगो । वेउज्विय० अंगो०  
खेत्तभगो । दो-अगोत्रगाणं वंधगा अंधगा सव्वलोगो । एवं छसघ० परघादुस्सास-  
आदाउज्जो० दोविहा० दोसर० । तित्थिय० वधगा खेत्तभगो । अवंधगा सव्वलोगो ।

५३१०. इत्थियवेदे-पचणा० चदुदंस० चदुसज० पंचंतराङ्गाण वधगा अट्ठतेरह०  
सव्वलोगो । अवंधगा णत्थि । धीणागद्धि० ३ अणताणु० ४ वधगा अट्ठतेरह० ५  
सव्वलोगो वा । अंधगा अट्ठचीदुदसभागो । णिदुदापयला-भयदु० तेजाक० वण्ण०  
४ असु० उप० णिमिण वधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा । अवधगा खेत्तभगो ।

केवली भग है । श्रौदारिक अगोपागके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है । वैक्रियिक अगोपागका  
क्षेत्रके समान भग है अर्थात् वधकोंका लोकका असख्यातवा भाग, अवधकोंका सर्वलोक है ।  
दोनों अगोपागोंके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है । छह सहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप,  
उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरमे पेसा ही है । तीर्थकरके वधकोंका क्षेत्रके समान लोकका  
असख्यातवा भग है । अवधकोंके सर्वलोक है ।

५३१० स्त्रीवेदमे-५ ज्ञानारण, ४ दर्शनारण, ४ सज्वलन, ५ अतरायके वधकोंका ४, ३  
भाग वा सर्वलोक है । अवधक नहीं है ।

[ विशेष-विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिक समुद्रात परिणत देवीमे आठ  
राजू बाहुल्यवाले राजू प्रतर प्रमाण क्षेत्रमे भ्रमण करनेकी शक्ति होनेसे ४४ स्पर्शन कहा है ।  
मारणातिक तथा उपपाद परिणत उक्त जीव सबलोकको स्पर्श करते हैं, कारण मारणातिक और  
उपपाद परिणत मिथ्यात्वी स्त्री, पुरुषवेदी जीवोंके अगम्य प्रदेशका अभाव है । ऊपर सात राजू  
तथा नीचे छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शनकी अपेक्षा अतीत-अनागत कालकी दृष्टिसे ३  
भाग है । ( २७२ ) ]

स्त्यानशुद्धित्रिक, अनतानुवधी ४ के वधकोंके ४, ३ या सर्वलोक है ।<sup>२</sup> अवधकों  
के ४ है ।

[ विशेष-स्त्यानशुद्धि ३ तथा अनतानुवधी ४ के अवधक सम्यग्मिथ्यात्वी वा अविरत-  
सम्यक्त्वी जीवोंने अतीत-अनागत कालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक,  
मारणान्तिक समुद्रातकी अपेक्षा ऊपर उह और नीचे दो इस प्रकार ४४ स्पर्शन किया है । मिश्र  
गुणस्थानमे उपपाद पद तथा मारणान्तिक समुद्रात नहीं होते हैं । स्त्रीवेदी जीवोंने असयत सम्य-  
क्त्वीका उपपाद नहीं होता है । ( २७४ ) ]

नित्रा प्रचला, भय-जुगुप्सा, तैजस-वार्माण, पर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके वधकों  
का ४, ३ या सर्वलोक है । अवधकोंका क्षेत्रके समान है अर्थात् लोकके असख्यातवें

( १ ) 'वेदाणुमादेण इत्थियवेदपुरिषवेदणु मिच्छादिट्ठीहि केवदियं सेतं पोसिदं । लगसस  
अं क्षेत्रदिभागो । अट्ठचोदसभागा देसा सव्वलोगो वा ।'—पट्ठ० को० सू० १०२, १०३ ।

( २ ) 'वग्गामिच्छादिट्ठि-असंभदसग्गमादिट्ठीदि केवदियं सेतं पोसिदं । लोगसस अंसंखेज्जदि-  
भागो । अट्ठचोदसभागा वा देसा पोसिदा ।'—सू० १०६

असखेजा वा भागा वा सब्वलोगो वा । थीणगिद्धि० ३ जणताणु० ४ वंधगा म-  
 लोगो । अवधगा छच्चोहसभागो, केरलिभगो । सादासाद वंधगा अवधगा सब्व  
 लोगो । दोण्य वधगा सब्वलोगो । अवधगा गत्थि । मिच्छत्तम्म यधगा सब्वलोगो ।  
 ५ अवधगा एकारहभागो, केरलिभगो । इत्थि० पुरिस० णत्तुस० वधगा अवधगा सब्व  
 लोगो । तिण्य वधगा सब्वलोगो । अवधगा केरलिभगो । एव तिण्य वेदार्ण भंगो  
 चत्तुणोक्क० पचजादि-छत्तटा० तसथानरादिणत्तुगल दीगोद च । तिरिक्खगदि-मणुम  
 गदिवधगा अवधगा सब्वलोगो । देवगदिअधगा खेत्तभगो । अवधगा सब्वलोगो ।  
 तिण्य गदीण वधगा सब्वलोगो । अवधगा केरलिभगो । एव तिण्य आणु० । ओरालि०  
 वधगा सब्वलोगो । अवधगा लीगस्स असखेजादि० वा भागा वा सब्वलोगो वा । वेउ  
 १० वियवधगा खेत्तभगो । अवधगा मत्तलोगो । दोण्य वधगा सब्वलोगो । अवधगा

स्त्यानगृद्धिद्विक, अनतानुवधी ४ के वधकोंके सर्वलोक है । अवधकोंके १३ वा  
 केवली भग है ।

[ विशेष-इस योगमे स्त्यानगृद्धि आदिके अवधक असयनसम्यक्स्वी तिर्यंच मेन्तलसे  
 ऊपर छह राजू जा करके उत्पन्न होते हैं । मेरुतलसे नीचे ५ राजू प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र नहीं पाया  
 जाता है, कारण नारकी असयतसम्यक्स्वी जीवोंका तिर्यंचोम उपपात् नहीं होता है । (पृ० २७१) ]  
 साता-असाता वेदनीयके वधकों अवधकोंका सबलोक है । दोनोंके वधकोंका सर्वलोक है ।  
 अवधक नहीं है । मिथ्यात्वके वधकोंका सर्वलोक है, अवधकोंका ३३ अथवा केवली भग है ।

[ विशेष-उपपाद पदमे वतमान मिध्यात्वके अवधक सासादन सम्यक्स्वी जीव मेरुके मूल  
 भागसे नीचे पाच राजू और ऊपर अच्युत कल्प तक छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं  
 इससे ३३ भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाता है । ( ४० टी० फो० पृ० २७० ) ]

खीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके वधकोंका सर्वलोक स्पर्शन है । तीनों वेदके वधकों  
 का सर्वलोक है । अवधकोंका केवली भग है । हास्यादि ४ नोकपाय, ५ जाति, ६ स्थान, प्रस  
 स्थानरादि नरयुगल तथा २ गोत्रका वेदनयके समान भग है । निर्यंचाति मनुष्यगतिके वधकों  
 अवधकोंका सर्वलोक स्पर्श है । देवगतिके वधकोंका क्षेत्रमे समान अर्थात् लोकका असरयातका  
 भाग भग है । अवधकोंका सर्वलोक है । तीन गतिके वधकोंका सर्वलोक है । अवधकोंका  
 केवली-भग है । तीन आनुपूर्विकोम इसी प्रकार जानना चाहिए ।

[ विशेष-नार्माण काययोगम नरकगति तथा नरकगत्यानुपूर्वीका यध ३ होनेसे यही ती  
 हो गतियोंका उत्तरम किया है । ]

औद्यारिक शरीरके वधकोंका सर्वलोक है । अवधकोंका लोकमे असरयात बहुभा  
 वा सर्वलोक है । वैकियिक शरीरके वधकोंका क्षेत्र समान भग है अर्थात् लोकका असरयात  
 भाग है । अवधकोंका सर्वलोक है । दोनों शरीरोंके वधकोंका सर्वलोक है । अवधकोंका

( १ ) 'कम्मे उरालभिसु वा । -गो० फ० गा० १९ । 'आराते वा मिस्सेण्हि मुरणिरयाउठा  
 रणियदुग । -गो० फ० गा० १६ ।

केवलभगो । ओरालि० अगोवंगस्स वधगा अबंधगा सव्वलोगो । वेउव्विय० अंगो०  
खेत्तभगो । दो-अगोवंगणं वधगा अबंधगा सव्वलोगो । एवं छसध० परघादुस्सास-  
आदाउज्जो० दोविहा० दोसर० । तित्थिय० बंधगा खेत्तभगो । अबंधगा सव्वलोगो ।

§३१०. इत्थिवेदे-पचणा० चदुदस० चदुसज० पंचतराइणं बंधगा अट्ठतेरह०  
सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । थीणांगद्धि० ३ अणंताणु० ४ बंधगा अट्ठतेरह० ५  
सव्वलोगो वा । अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो । णिद्धापयत्ता-भयदु० तेजाक० वण्ण०  
४ अगु० उप० णिमिण वधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा । अबंधगा खेत्तभगो ।

केवली भग है । औदारिक अगोपागके वधकों अबधकोंका सर्वलोक है । वैक्रियिक अगोपागका  
क्षेत्रके समान भग है अर्थात् वधकोंका लोकका असख्यातवा भाग, अबधकोंका सर्वलोक है ।  
दोनों अगोपागोंके वधकों अत्रधकोंका सर्वलोक है । छह सहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप,  
उद्योत, दो विद्यायोगति, दो स्वरमे पेसा ही है । तीर्थकरके वधकोंका क्षेत्रके समान लोकका  
असख्यातवा भाग है । अबधकोंके सर्वलोक है ।

§३१० स्त्रीवेदमे-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, ५ अतरायके वधकोंका १६, १३  
भाग वा सर्वलोक है । अबधक नहीं हैं ।<sup>१</sup>

[ विशेष-विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिक समुद्रात परिणत देवीमे आठ  
राजू बाहुल्यवाले राजू अतर प्रमाण क्षेत्रमे भ्रमण करनेकी शक्ति होनेसे १६ स्पर्शन कहा है ।  
मारणान्तिक तथा उपपाद परिणत उक्त जीव सर्वलोकको स्पर्श करते हैं, कारण मारणान्तिक और  
उपपाद परिणत मिथ्यात्वी स्त्री, पुरुषवेदी जीवोंके अगम्य प्रदशका अभाव है । ऊपर सात राजू  
तथा नीचे छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शनकी अपेक्षा अतीत-अनागत कालकी दृष्टिसे १३  
भाग है । ( २७२ ) ]

स्त्यानगृद्धिन्निक, अनतानुवधी ४ के वधकोंके १६, १३ वा सर्वलोक है ।<sup>२</sup> अबधकों  
के १६ है ।

[ विशेष-स्त्यानगृद्धि ३ तथा अनतानुवधी ४ के अबधक सम्यमिथ्यात्वी वा अचिरत-  
सम्यक्त्वी जीवोंने अतीत-अनागत कालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक,  
मारणान्तिक समुद्रातकी अपेक्षा ऊपर छह और नीचे दो इस प्रकार १६ स्पर्शन किया है । मिश्र  
गुणस्त्यानमे उपपाद पद तथा मारणान्तिक समुद्रात नहीं होते हैं । स्त्रीवेदी जीवोंने असयत सम्य  
क्त्वीका उपपाद नहीं होता है । ( २७४ ) ]

निद्रा प्रचला, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरत्तपु, उपघात, निर्माणके वधकों  
का १६, १३ वा सर्वलोक है । अबधकोंका क्षेत्रके समान है अर्थात् लोकके असख्यातवें

( १ ) वेदाणुगवेण इत्थिवेदपुरिसवेदणमु मिच्छादिदुहोहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स  
अग खेज्जिभागो । अट्ठचोद्दसभागा देवणा सव्वलोगो वा । -यट्ख० फो० सू० १०२, १०३ ।

( २ ) "सम्मामिच्छादिदुहोहि-असंजदसम्मादिदुहोहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जि-  
भागो । अट्ठचोद्दसभागा वा देवणा फोसिदा ।" -सू० १०६



सादबधगा अट्ठणवचोद्दस० सच्चलोगो वा । अवधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा ।  
 असादबधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा । अवधगा जट्ठणवचोद्दस० सच्चलोगो वा ।  
 दोण्ण वधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो वा । अवधगा णत्थि । मिच्छत्तस्स वधगा अट्ठ  
 तेरह-चोद्दम० सच्चलोगो वा । अवधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो । अपचवसाणा०  
 ५ ४ वधगा अट्ठ तेरह०, सच्चलोगो वा । अवधगा छच्चोद्दसभागो । इत्थि० पुरिस०  
 वधगा अट्ठचोद्दसभागो । अरधगा अट्ठतेरह० सच्चलोगो । णुस० वधगा अट्ठ  
 तेरह० सच्चलोगो वा । अर्धवधगा अट्ठचोद्दसभागो । तिण्ण वेदाण वधगा अट्ठतेरह०  
 सच्चलोगो वा । अवधगा णत्थि । हस्सरदि सादभगो । अरदिसोग असादभगो ।  
 दोण्ण युगलाण वधगा अट्ठ तेरहभागो, सच्चलोगो वा । अवधगा खेत्तभगो । एवं

भाग हैं । साता वेदनीयके वधकोंका १४, १४ वा सर्वलोक है । अवधकोंका १४, १३ वा  
 सर्वलोक है । असाताके वधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका १४, १४ वा सर्वलोक  
 है । दोनाके वधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधक नहीं है । मिथ्यात्वके वधकोंका १४,  
 १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका १४, १४ है ।<sup>१</sup>

[ विशेष-मिथ्यात्वके अवधक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंने विहारवत्त्वस्थान, वेदना,  
 कपाय तथा वैत्रियिक समुद्रातकी अपेक्षा १४ भाग स्पर्श किया है, कारण ८ राजू बाहुल्यनाले  
 राजू प्रतरके भीतर द्य ह्री सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके गमनागमनके प्रति प्रतिषेधका अभाव  
 है । मारणान्तिक समुद्रात परिणत उक्त जीवोंने नीचे दो और ऊपर ७ राजू अर्थात् १४ भाग  
 स्पर्श किये हैं । ( २७२ ) ]

अप्रत्याख्यानापरण ४ के वधकोंके १४, १३ वा सर्वलोक स्पर्श है, अवधकोंके १४ है ।

[ विशेष-अप्रत्याख्यानापरणके अवधक देशजती स्त्रीवेदीने मारणान्तिक द्वारा १४ भाग सश  
 किये, कारण अत्युत कल्पके ऊपर सयतासयत तिर्यंचोंका उत्पाद नहीं होता है । ( २७५ ) ]<sup>१</sup>

स्त्रीवेद पुरपवेदके वधकोंका १४, अवधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । नपुसकवेदके  
 वधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका १४ है । तीनों वेदोंके वधकोंका १४, १३ वा  
 सर्वलोक है । अवधक नहीं है । इत्यर-रतिमे साता वेदनीयके समान है अर्थात् १४, १४ वा  
 सर्वलोक है, अवधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अरति शोकमे असाता वेदनीयके समान भग  
 है । अर्थात् वधकोंके १४, १३ वा सर्वलोक है, अवधकोंके १४, १ वा सर्वलोक है । हास्य रति,  
 अरति शोक इन दो युगलोंने वधकोंके १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंके क्षेत्रके समान भग है ।

( १ ) साधनसम्मादिदृष्टाहि नेत्रडिर्ब खेत्त फोसिद ? लगरस असत्तेज्जदिभागो । अट्ठणवचोद्द  
 सभागा देवणा । -सू० १०८, ११५ ।

( २ ) उज्जदासंनदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असत्तेज्जदिभागो । उचोद्दसभागा  
 देवणा । -सू० १०८

( ३ ) पमत्तर्वाज्जदप्पुट्टि जाण अणियट्ठिडवसाग-त्तनएहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असत्ते  
 ज्जदिभागो । -सू० ११०

विरायिर-सुभासुम-णिरयदेनायु तिष्णिजादि० । आहारदुग् तित्थयर वधगा खेत्तभगो ।  
 अनधगा अट्ट-तेरहभागो सच्चलोगो वा । दोओयु-मणुसगदि-मणुसाणुपुव्वि-आढा-  
 उजोण दोगोद वधगा अट्ट-चोदसभागो । अवधगा अट्टतेरहभागो, सच्चलोगो वा ।  
 दोगदि-दो-आणुपुव्वि-वधगा छचोदसभागो । अवधगा अट्टतेरहभागो, सच्चलोगो वा ।  
 तिरिक्कण्णदि-तिरिक्कण्णुपुव्वि-वधगा अट्टणवचोदसभागो, सच्चलोगो वा । अवधगा ५  
 अट्टणवहभागो । चदुण्ण गदीण वधगा अट्टतेरहभागो सच्चलोगो वा । अवधगा  
 खेत्तभगो । एव आणुपुव्वीण । एहदियवधगा अट्टणवचोदसभागो सच्चलोगो वा ।  
 अवधगा अट्टणवहभागो । पच्चिदिय वधगा अट्टणवहभागो । अवधगा अट्टणवचोदस-  
 भागो, सच्चलोगो वा । पच्चण्ण जादीण वधगा अट्टतेरहभागो, सच्चलोगो वा ।  
 अवधगा खेत्तभगो । ओरालियसरीर वधगा अट्टणव-चोदसभागो, सच्चलोगो वा । १०  
 [ अवधगा ] अट्टणवहभागो । वेउव्विय वधगा वारहभागो । अवधगा अट्टणव-  
 चोदसभागो सच्चलोगो वा । दोण्ण वधगा अट्टतेरहभागो सच्चलोगो वा । अवधगा  
 खेत्तभगा । पच्चमठाण इत्थिभगो । हुडसठाण णवुसगवेद साधारणेण वि वेदभगो ।  
 णररि अवधगाण खेत्तभगो । ओरालिय-अगोणवधगा अट्टचोदसभागो, अन०  
 अट्टतेरहभागो, सच्चलोगो वा । वेउव्वियसरीर-अगोणवधगा वारहभागो । १५

अर्यात् लोकके असख्यातर्जे भाग है । स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, नरकायु, देवायु, तीन  
 जातिम इसी प्रकार है । आहारकद्विक और तीर्थकरके वधकोंका क्षेत्रके समान भग है ।  
 अवधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक है । मनुष्यायु, तिर्यचायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यापूर्वी,  
 आतप, उद्योत तथा दो गोत्रके वधकाका १६ है । अवधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक है । नरक-  
 गति, देवगति, नरकानुपूर्वी, देवानुपूर्वीके वधकोंका १६ है । अवधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक  
 है । तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वीके वधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका १६, ३३ है ।  
 चार गतियोंके वधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका क्षेत्रके समान भग है । चारों  
 आनुपूर्वीम इसी प्रकार जानना चाहिए । एकेन्द्रियके वधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक है ।  
 अवधकोंका १६, ३३ है । पचेन्द्रियके वधकोंका १६, ३३ है, अवधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक है ।  
 पाचों जातियोंके वधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक है । अवधकाके क्षेत्रके समान भग है ।  
 औदारिक शरीरके वधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक है । [ अवधकोंका ] १६, ३३ है । वैक्रियिक  
 शरीरके वधकोंका ३३ है । अवधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक है । दोनों शरीरोंके वधकोंका  
 १६, ३३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका क्षेत्रके समान भग है । ५ सस्थानोंमें स्त्रीवेदके समान  
 भग है । हुडक सस्थानना नपु स्रकवेदके समान भग है । ६ सस्थानोंका सामान्यसे वेदके समान  
 भग है । निरोप, अवधकोंका क्षेत्रके समान भग है अर्यात् केवली-भग है । १ औदारिक अगोपागके  
 वधकोंका १६ है । अवधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक है । वैक्रियिक अगोपागके वधकोंका ३३ है ।

( १ ) "तिष्ण वेदाण वधगा सवत्तगा, अवधगा केवलिभगो । वेदाण भगो इत्थादिदोयुगल  
 पचत्रादिल्लसठा० तसयान्तरदिणवुगल दागोद च ।"-( महावधे क्षेत्रप्ररूपायाम् )

- अवधगा अट्टणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा । दोण्ण बधगा  
 अवधगा अट्टणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा । छसघडण बधगा ४पो३  
 अवधगा अट्टतेरहभागो सव्वलोगो वा । एव साधारणेण वि । परघादुस्तास  
 वारहभागो सव्वलोगो वा । अवधगा लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो  
 ५ उच्चागोद बधगा अट्टणवचोद्दसभागो वा । अवधगा अट्टतेरह० सव्वलोगो  
 पसत्थविहायगदि बधगा अट्टचोद्दसभागो । अवधगा अट्टतेरह० सव्वलोगो  
 अप्पसत्थविहायगदि बधगा अट्टवारहभागो । अवधगा ७ १० ११ १२ १३ १४  
 वा । दोण्ण बधगा अट्टवारहभागो । अवधगा अट्टणवचोद्दसभागो सव्वलोगो वा  
 एव दीसराण । तस-बधगा अट्टवारहभागो । अवधगा अट्टणवचोद्दसभागो, सव्वले  
 १० वा । थावर-बंधगा अट्टणवचोद्दसभागो सव्वलोगो वा । अवधगा अट्टवारहभागो ।  
 दोण्ण पगदीण बधगा अट्टतेरहभागो सव्वलोगो वा । अवधगा खेत्तमंगो । वादर-बधगा  
 अट्टतेरहभागो । अवधगा लोगस्म असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । सुट्टम-बधगा  
 लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । अवधगा अट्टतेरहभागो । दोण्ण पगदी  
 बधगा अट्टतेरहभागो सव्वलोगो वा । अवधगा खेत्तमंगो । एव पज्जापज्जत  
 १५ पत्तेय-साधारण च । सुभग-आदेजाण बधगा अट्टचोद्दसभागो, [ अवधगा ] अट्ट  
 तेरहभागो, सव्वलोगो वा । दुभग-अणदेजाण बधगा अट्टतेरहभागो, सव्वलोगो वा ।

अवधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । दोनों अगोपारोंके बधकोंका १४, १३ है । अवधकोंका  
 १४, १३ वा सर्वलोक है । छह सहननके बधकोंका १४ है । अवधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक  
 है । सामान्यसे भी छह सहननका इसी प्रकार जानना चाहिए । परधान, उच्छ्वासके बधकोंका  
 १४, १३ अथवा सर्वलोक है । अवधकाका लोकके असख्यातवें भाग वा सर्वलोक है । उच्चगोरके  
 बधकोंका १४, १३ है । अवधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । प्रशस्तविहायोगतिके बधकोंका  
 १४ है । अवधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अप्रशस्त विहायोगतिके बधकोंका १४, १३ है ।  
 अवधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । दोनोंके बधकोंका १४, १३ है । अवधकोंका १४, १३  
 वा सर्वलोक है । दो ररोंमें विहायोगतिके समान है । त्रस प्रकृतिके बधकोंका १४, १३ है ।  
 अवधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । स्थावरके बधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकों  
 का १४, १३ है । दोनोंके बधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका क्षेत्रके समान है  
 अर्थात् लोकका असख्यातवा भाग है । वादरके बधकोंका १४, १३ है । अवधकोंका लोकका  
 असख्यातवा भाग वा सर्वलोक है । सुट्टमके बधकोंका लोकका असख्यातवा भाग वा सर्वलोक  
 है । अवधकोंका १४, १३ है । दोनोंके बधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका क्षेत्रके  
 समान लोकका असख्यातवा भाग रपधान है । पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारणमें भी इसी प्रकार  
 जानना चाहिए ।

सुभग, आदयके बधकोंका १४ है । [अवधकोंका] १४, १३ वा सर्वलोक है । दुर्भग, अनादयके  
 बधकोंका १४, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंका १४ है । सुभग, दुर्भग, आदय, अनादयके

अवधगा अट्ठचोद्दसभागो । दोण्णं पगदीण वधगा अट्ठतेरहभागो, सच्चलोगो वा ।  
 अवधगा खेचमगो । जसगिचिस्स वधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो । अवधगा अट्ठ-  
 तेरहचोद्दसभागो, सच्चलोगो वा । अजसगिचिस्स वधगा अट्ठतेरहभागो, सच्चलोगो  
 वा । अवधगा अट्ठणवचोद्दसभागो । दोण्ण वधगा अट्ठतेरहभागो सच्चलोगो वा ।  
 अवधगा णत्थि । उच्चागोद वधगा अट्ठभागो, अवधगा अट्ठतेरहभागो सच्चलोगो ५  
 वा । णीचागोद वधगा अट्ठतेरहभागो, सच्चलोगो वा । अवधगा अट्ठभागो । दोण्ण  
 गोदाण वधगा अट्ठतेरहभागो सच्चलोगो वा । अवधगा णत्थि ।

§३११. एव पुरिसवेदस्स । णररि तित्थयर वधगा अट्ठचोद्दसभागो । अवधगा  
 अट्ठतेरहभागो, सच्चलोगो वा ।

§३१२. णुमगवेद०—धुविगाण वधगा सच्चलोगो । अवधगा णत्थि । धीण- १०  
 गिद्धित्थि अणताणुवधचदुक्क वधगा सच्चलोगो । अवधगा छच्चोद्दसभागो ।  
 णिद्धा-पयला-पच्चक्खाणाव० ४ भयदु० तेजा० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं  
 वधगा सच्चलोगो । अवधगा खेचमगो । सादामाद-वधगा अवधगा सच्चलोगो ।

वधकोंस १२, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंस क्षेत्रत् भग है । यज्ञ कीर्तिके वधकोंस १२, १३  
 है । अवधकोंस १२, १३ वा सर्वलोक है । अयज्ञ कीर्तिके वधकोंस १२, १३ वा सर्वलोक है ।  
 अवधकोंस १२, १३ है । दोनोंके वधकोंस १२, १३ वा सर्वलोक है । अवधक नहीं है ।

[ विशेष—दोनोंके अवधक उपशात कपायादिमें होते हैं अत एव स्त्रीवेदमें अवधकोंस अभाव  
 बताया है । ]

उच्चगोत्रके वधकोंस १२ है । अवधकोंस १२, १३ वा सर्वलोक है । नीच गोत्रके  
 वधकोंस १२, १३ वा सर्वलोक है । अवधकोंस १२ है । दोनों गोत्रके वधकोंस १२, १३ वा  
 सर्वलोक है । अवधक नहीं है ।

[ विशेष—दो गोत्रोंका वर्णन आतप, उद्योतके साथ पूर्वमें किया है और यहाँ पुन वर्णन  
 हुआ है । यहाँका गोत्रका वर्णन विशेष सगत प्रतीत होता है । ]

§३११ पुरुषवेदमें इसी प्रकार है । विशेष, तीर्थकर प्रकृतिके वधकोंस १२ है । अवधकोंस  
 १२, १३ वा सर्वलोक है ।

§३१२. नपुंसकवेदमें—धुव प्रकृतियोंके वधकोंस सर्वलोक है । अवधक नहीं हैं । स्थान-  
 गृह्णिक, अनवातुनधी ४ के वधकोंस सर्वलोक है । अवधकोंस १२ है ।

[ विशेष—भारणातिक पद परिणत असयत सम्यक्त्वी नपुंसकवेदीका अच्युत कल्पके रक्षण  
 की अपेक्षा १२ भाग कहा है ( पृ० २७८ ) । ]

निद्रा, प्रथला, प्रत्याप्यानातरण ४, भय-जुगुप्सा, तैजस-धर्माण, वर्ण ४, अगुरुत्तु,  
 उपपात, निर्माणके वधकोंस सर्वलोक है । अवधकोंस क्षेत्रके समान लोरुका असख्यातवर्ण भाग

(१) 'सम्मामिच्छादिदि-असब्रदसम्मामिच्छादिदि केवदिय सेच फोत्तिद । लोगसु अवसेत्रदिमागो ।  
 अट्ठचोद्दसभागो वा देदमा फासिदा ।'—पट्ठ० फो० सू० १०६ ।

दोष्ण ग्रंथगा सव्वलोगो । अग्रधगा णत्थि । एव जस-अजसगिच्छि-दोगोदाणि ।  
 मिच्छत्त वधगा सव्वलोगो । अग्रधगा चारहभागो० । अपच्चक्खाणावरण-चउक्क  
 वधगा मव्वलोगो । अग्रधगा छच्चोद्दमभागो । इत्थि० पुरिस० णत्तुसग-वेदाण  
 वधगा अग्रधगा सव्वलोगो । तिष्ण वधगा सव्वलोगो । अग्रधगा णत्थि । हस्सा  
 ५ दि० ४ वधगा अग्रधगा [ एव ] दोष्ण युगलाण वधगा अग्रधगा खेत्तमगो ।  
 एव पचनादि छसठा० तनयानरादि-अद्दयुगलं दो-आयु० । आहारदुग तित्थपर सेत्त  
 मगो । अग्रधगा सव्वलोगो । तिस्सिप्पायु-अग्रधगा अग्रधगा सव्वलोगो । मणुसायु-  
 वधगा लोगस्स अससेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । अग्रधगा सव्वलोगो । चदुष्ण  
 आयुगाण वधगा अग्रधगा सव्वलोगो । एव छसव० । दोविहा० दोसर० दोगदि०  
 १० दोआणु० वधगा छच्चोद्दमभागो । अग्र० सव्वलोगो । दोगदि० दोआणु० वधगा  
 अग्रधगा सव्वलोगो । चदुग्गादि-चदुआणु० वधगा सव्वलोगो । अग्रधगा खेत्तमगो ।

है । साता असाताके वधका अवधकाका सर्वलोक स्पर्शन है । दोनोके वधकोंका सर्वलोक है ।  
 अवधक नहीं है । यरा कीर्वि, अयश कीर्वि, दोनों गोत्रोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए । मिध्यात्वके  
 वधकोंका सर्वलोक है । अवधकोंका  $\frac{१}{३}$  भाग है ।<sup>१</sup>

[ विशेष-भारणातिक पद परिणत मिध्यात्वके अवधक सासादन सम्यक्स्वी जीवोंने  $\frac{१}{३}$   
 भाग स्पर्श किया, कारण नारकियोंके ५ राजू तथा तिर्यंचोंके ७ राजू इस प्रकार १२ राजू बाहुल्य  
 वाला राजू अंतर प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र है ( २७७ ) । ]

अप्रत्याख्यानानरण ४ के वधकोंका सर्वलोक है । अवधकोंका  $\frac{१}{२}$  है ।<sup>२</sup>

[ विशेष-भारणातिक पद परिणत सयतासयतोंने  $\frac{१}{२}$  स्पर्श किया है कारण अच्युत कल्पके  
 ऊपर सयतासयत तिर्यंचोंके गमनका अभाव है ( २७८ ) । ]

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदके पृथक्-पृथक् रूपसे वधकों और अवधकोंका सर्वलोक  
 स्पर्शन है । तीनों वेदोंके वधकोंका सव्वलोक है । अवधक नहीं है । हास्यादि चारके पृथक् पृथक्  
 रूपमे वधकों, अवधकोंना इसी प्रकार है । दोनों युगलोंके वधकों अवधकोंका क्षेत्रके समान  
 भाग है । इसी प्रकार पांच जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थायरादि ८ युगल तथा २ आयुमें जानना  
 चाहिए । आहारकद्विक तथा तीर्थकरका क्षेत्रपत्त भग है । अवधकोंके सर्वलोक है । तिर्यंचायुके  
 वधकों अग्रधकोंना सर्वलोक है । मनुष्यायुके वधकोंका लोकना असख्यातवों भाग है, वा सर्वलोक  
 है । अवधकोंका सर्वलोक है । चारों आयुके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है । छह सहननमे  
 इसी प्रकार है । दो विद्यायोगति, दो स्वर, दो गति, दो ध्यानुपूर्वीके वधकोंका  $\frac{१}{२}$  भाग है ।  
 अवधकोंका सर्वलोक है । दो गति, २ ध्यानुपूर्वीके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है । चार गति,

(१) 'साधणसम्म-दिद्विहीदि केणटिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । बारह बोहसमागा  
 वा देवणा ।' - पट्ठस० फो० सू० ११२, ११३ ।

(२) 'णउसववेदेण अथजदसममादिद्वि-सबदासजःइहि केवटिधं खेत्त फासिद ? लोगस्स असखेज्जदि-  
 भागा, छच्चोद्दममागा देवणा ।' - सू० ११५ ।

ओरालियसरीररस बंधगा सव्वलोगो । अवधगा वारह० । वेउव्विय० वधगा वारह० । अवधगा सव्वलोगो । दोष्णं वधगा सव्वलोगो । अवधगा खेत्तभगो । ओरालिय-अगोवग वधगा, अवधगा सव्वलोगो । वेउव्विय अंगोउगं, वधगा वारह-भगो, अवंधगा सव्वलोगो । दोष्ण वधगा अवधगा सव्वलोगो । परघादुस्सास आदायुज्जोवं वधगा अवधगा सव्वलोगो । एव णीचुच्चागोदाण ।

§३१३. अवगदवेदे खेत्त-भगो । एवं अफसाइ० केउलिणा० सज० सामाड० छेदो० परिहा० सुहुम प० ( सुहुमसंप० ) यथाकसाद० केवलदसण चि ।

§३१४. कोधादि० ४-ओषभंगो । णवरि धुविगाण वधगा सव्वलोगो । अवंधगा णत्थि । यं हि अउधगा अत्थि तं हि लोगसस असखेज्जदिभागो ।

§३१५. मदि० सुद०-धुविगाण वधगा सव्वलोगो । अवधगा णत्थि । सादा- १० माद-वधगा अवधगा सव्वलोगो । दोष्ण वधगा सव्वलोगो । अवधगा णत्थि । एव तिण्णिवे० हस्सादि दोयुगल पचजााद छसंठा० तसथावरादिणवयुगल दोगोदाण च । मिच्छत्त बंधगा सव्वलोगो । अवंध० अट्टवारह० । दो-आयुवधगा खेत्तभगो ।

चार आनुपूर्विके वधकोंका सर्वलोक है, अवधकोंका क्षेत्रके समान भग है । औदारिक शरीरके वधकोंका सर्वलोक है । अवधकोंका ३३ है । वैक्रियिक शरीरके वधकोंका ३३ है । अवधकोंका सर्वलोक है । दोनोंके वधकोंका सर्वलोक है । अवधकोंका क्षेत्रके समान है । औदारिक अगो पागके वधकों और अवधकोंका सर्वलोक है । वैक्रियिक अगोपागके वधकोंका ३३ है । अवधकोंका सर्वलोक है । दोनोंके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है । परचात, उच्छवास, आतप, उद्योतके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है । इसी प्रकार नीच गोत्र, उच्च गोत्रका स्पर्शन जानना चाहिए ।

§३१३ अपगतवेदमे क्षेत्रके समान भग है ।<sup>१</sup> अकपाय, वेवलज्ञान, सयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूदमसापराय, यथाख्यात, केवलदर्शन पर्यन्त इसी प्रकार है ।

§३१४ क्रोधादि ४ कपायमे-ओषके समान भग है । विणोप, ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका सर्वलोक है । अवधक नहीं है । जहाँ अवधक हैं, वहाँ लोकका असख्यातवा भाग स्पर्शन है ।

§३१५ मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानीमे-ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका सर्वलोक है । अत्रवक नहीं है । साता, असाताके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है । दोनोंके वधकोंका सर्वलोक है । अवधक नहीं है । तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ५ जाति, ६ सस्थान, त्रस-स्थावरादि नव युगल तथा ० गोत्रोंमे इसी प्रकार है । मिथ्यात्वके वधकोंका सर्वलोक है । अवधकोंका ३३, ३३ है ।

[ विशेष-मिथ्यात्वके अवधक सासादन सन्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा विहारयत् स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक पदोंमे ३३ भाग है । मारणातिकवी अपेक्षा ३३ भाग है । (पृ० २८२) ]

देध-नरकायुके वधकोंका क्षेत्रके समान भग है । अवधकोंका सर्वलोक है । तिर्यचायुके

( १ ) 'अपगतवेदणु अणियट्ठिण्णहंदि जाग अजोगिक्खेवलिच्चि आप । उजोगिक्खेवली ओष ।'  
-पट्ठ० फो० सू० ११८, ११९ ।

अवधगा सव्वलोगो । तिरिक्खायुवधगा अव० सव्वलोगो । मणुसायु-वधगा अट्ट-  
 वारह० सव्वलोगो । अवधगा सव्वलोगो । चटुआयुवध० अव० सव्वलोगो । एव  
 छसध० दोविहा० दोसर० । णिरयगदि णिरयाणु० वधगा छच्चोदस० । अण० सव्व  
 लोगो । दोगदि० दोआणु० वध० अण० सव्वलोगो । देवगदि-देवगदिपाओ० वधगा  
 ५ पच-चोदस० । अव० सव्वलोगो । चटुगदि चटुआणु० वधगा सव्वलोगो । अवधगा  
 णत्थि । ओरालि० वधगा सव्वलोगो । अवधगा एककारहभागो । वेउच्चियाणु० (१)  
 ( वेउच्चिय ) वधगा एककारहभागो । अवधगा सव्वलोगो । दोण्ण वधगा सव्वलोगो ।  
 अवधगा णत्थि । ओरालिय० अगोवग वधगा अवधगा सव्वलोगो । वेगुच्चिय०  
 अगोवग वधगा [ अवधगा ] वेगुच्चिय० भगो । दोण्ण वधगा अण० सव्वलोगो ।

१० §३१६. एवं अन्वयसिद्धि० । मिच्छादिद्विभिद्भि भगे ध्रुविगाण वधगा अट्टतेरह-  
 भागो, सव्वलोगो वा । अवधगा णत्थि । सादासाद० वधगा अवधगा अट्टतेरहभागो,  
 सव्वलोगो वा । दोण्ण वधगा अट्टतेरहभागो, सव्वलोगो वा । अवधगा णत्थि ।  
 एव चटुणो० ४ (१) धिराधिर-सुमासुभाण । मिच्छत्त-वधगा अट्टतेरह० सव्वलोगो वा ।  
 अवधगा अट्टवारहभागो । इत्थि० पुरिस० वधगा अट्टवारह-चोदस० । अण० अट्टतेरह०

वधकों अवधकोंका सर्वलोक है । मनुष्यायुके वधकोंका १६, ३३ वा सव्वलोक है । अवधकोंका  
 सर्वलोक है । चार आयुके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है । छह सहनन, दो विद्यायोगति,  
 दो स्वर्ग इसी प्रकार है । नरकगति, नरकानुपूर्वके वधकोंके १६ है । अवधकोंके सर्वलोक है ।  
 मनुष्यगति तियचगति, मनुष्यानुपूर्वके, तिर्यचानुपूर्वके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है ।

देवगति, द्युगत्यानुपूर्वके वधकोंका १४, अवधकोंके सर्वलोक है । ४ गति, ४ आनु  
 पूर्वके वधकोंका सव्वलोक है । अवधक नहीं हैं । औदारिक शरीरके वधकोंका सर्वलोक है ।  
 अवधकोंके ३३ है । वैक्रियिक शरीरके वधकोंका ३३ है । अवधकोंका सर्वलोक है ।

[ विशेष-उपपादकी अपेक्षा नीचेके ५ राजू तथा ऊपरके छह राजू इस प्रकार ३३ भाग  
 समान है ( २८२ ) । ]

दोनों शरीरके वधकोंका सव्वलोक है । अवधक नहीं हैं । औदारिक अगोपागके वधकों  
 अवधकोंका सर्वलोक है । वैक्रियिक अगोपागके वधकों ( अवधकों ) का वैक्रियिक शरीरके समान  
 है अर्थात् वधकोंका ३३, अवधकोंका सव्वलोक भग है । दोनोंके वधकों अवधकोंका सर्वलोक है ।

§३१६ अन्वयसिद्धिकोमि इसी प्रकार है । मिच्छादृष्टियोंम ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका  
 १६, ३३ वा सर्वलोक है । अवधक नहीं हैं ।

[ विशेष-मेरुतलमे ऊपर ६ राजू तथा नीचे ० राजू इस प्रकार १६ है तथा मेरुतलसे ऊपर  
 ७ राजू तथा नीचे ६ राजू इस प्रकार ३३ भाग है । ]

सादा-असादाके वधकों अवधकोंका १६, ३३ वा सर्वलोक है । दोनोंके वधकोंका १६, ३३ वा  
 सर्वलोक है । अवधक नहीं हैं । ४ नोकपाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभमे इसी प्रकार है ।  
 मिच्छात्वके वधकोंका १६, ३३ सर्वलोक है, अवधकोंका १६, ३३ वा है । खीवेद पुरुषवेदके

सञ्चलोगो वा । ण्युस० वधगा अट्ठतेरह० सञ्चलो० । अन्धगा अट्ठवारह० । तिण्ण  
 वेदाणं वधगा अट्ठतेरह० सञ्चलोगो वा । अवधगा णत्थि । इत्थिवेदभगो पंचिदिय-  
 जादि-पचसंठा० छसघ० तससुभग० आदेज्ज० । णवुंसगभंगो एइदिय हुडसठा०  
 थानरदुभग-अणादेजाण । णरि एइदिय-थानर-वधगा अट्ठणन० सञ्चलोगो वा ।  
 अन्धगा अट्ठवारहभागो । पत्तेणेण साधारणेण वेदभगो । दोआयु० तिण्णिजादि- ५  
 वधगा खेत्तभंगो । अन्धगा अट्ठतेरह० सञ्चलोगो वा । दोआयु० मणुसगदि०  
 मणुसाणु० आदान० उचागोद वधगा अट्ठचोइसभागो । अन्धगा अट्ठतेरह० सञ्च-  
 लोगो वा । णिरयगदिनवगा छचोइसभागो । अन्धगा अट्ठतेरह० सञ्चलोगो वा ।  
 तिरिक्खगदि० णीच० वधगा अट्ठतेरह० सञ्चलोगो वा । अन्धगा अट्ठेकारस० ।  
 णरि णीचा० अट्ठभागो । देवगदि-वधगा पंचचोइम० । अन्धगा अट्ठतेरह० सञ्च- १०  
 लोगो वा । चदुण्ण गदीण वधगा अट्ठतेरहभागो, सञ्चलोगो वा । अन्धगा णत्थि ।  
 एवं चेत्त आणुपुब्बि-णीचुच्चागो० । ओरालियसरिीर वधगा अट्ठतेरहभागो सञ्चलोगो  
 वा । अन्धगा एक्कारहभागो । वेउब्बिय-वधगा एक्कारह० । अन्धगा अट्ठतेरह-  
 भागो । दोण्णं वे० ( व० ) अट्ठतेरह० सञ्चलो० । अवधगा णत्थि । ओरालि०  
 णगो वधगा अट्ठवारह० । अन्धगा अट्ठतेरह० सञ्चलो० । वेउब्बिय० अगो० वधगा १५  
 एक्कारह० । अन्धगा अट्ठतेरह० सञ्चलो० । दोण्ण वधगा अट्ठनारह० । अवधगा

वधकोणा ४६, ४७ है, अवधकोणा ४६, ४७ वा सर्वलोक है । नपुमकवेदके वधकोणा ४६, ४७  
 वा सर्वलोक है । अवधकोणा ४६, ४७ है । तीनों वेदोंके वधकोणा ४६, ४७ वा सर्वलोक है ।  
 अवधक नहीं है । पचेन्द्रिय जाति, ५ सस्थान, ६ सहनन, व्रस, सुभग, आदेयमें स्त्रीवेदका भग है ।  
 एन्द्रिय दृढक सस्थान, स्थावर, दुर्भग तथा अनादेयमें नपुसकवेदका भग है । विज्ञेय, एकेन्द्रिय,  
 स्थावरके वधकोणके ४६, ४७ वा सर्वलोक है । अन्धकोणके ४६, ४७ है । प्रत्येक तथा सामान्यसे  
 वेदने समान भग है । दो आयु, तीन जातिके वधकोणा क्षेत्रके समान भग है । अवधकोणा  
 ४६, ४७ वा सर्वलोक है । दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आतप तथा उच्चगोत्रके वधकोणके  
 ४६ है । अन्धकोणके ४६, ४७ वा सर्वलोक है । नरकगतिके वधकोणके ४६ है । अन्धकोणके ४६, ४७  
 वा सर्वलोक है । तिर्यंच गति, नीच गोत्रके वधकोणके ४६, ४७ वा सर्वलोक है । अवधकोणके  
 ४६, ४७ है । विज्ञेय, नीच गोत्रका ४६ है । देवगतिके वधकोणके ४६ है । अवधकोणके ४६, ४७  
 वा सर्वलोक है । चारों गतियोंके वधकोणके ४६, ४७ वा सर्वलोक है । अन्धक नहीं है ।  
 इसी प्रकार आनुपूर्वियों तथा नीच, उच्च गोत्रोंमें जानना चाहिए ।

श्रीगणेश शरीरके वधकोणा ४६, ४७ वा सर्वलोक है । अवधकोणा ४६ है ।  
 वैश्विक शरीरके वधकोण ४७ है । अवधकोणके ४६, ४७ है । दोनोंके वधकोणके ४६, ४७ वा  
 सर्वलोक है । अवधक नहीं है । श्रीगणेश अगोपागके वधकोणा ४६, ४७ है । अवधकोणके  
 ४६, ४७ वा सर्वलोक है । वैश्विक अगोपागके वधकोणा ४६, ४७ वा सर्वलोक



- अट्टणवचो० सच्चलोगो वा । परघादुस्ता० वधगा अट्टतेरह० सच्चलोगो वा । अघगा लोमस्त असखेज्जदिभागो, सच्चलोगो वा । उज्जोव-वधगा अट्टतेरहभागो, अघगा अट्टतेरहभागो सच्चलोगो वा । एव जसगित्ति० । पसत्थविहायगदि वधगा अट्टतरह-भागो । अघगा अट्टतेरह० सच्चलो० । अप्पसत्थग्गि० वधगा अट्टतरह० ।
- ५ अघगा अट्टतेरह० सच्चलोगो वा । दोण्ण वधगा अट्टतरह० । अ० अट्टणव-चोइसभागो, सच्चलोगो वा । एव दोसर० । बादरवधगा अट्टतेरह० । अघगा लोमस्त अमग्गेज्जदिभागो, सच्चलोगो वा । तत्थिवरीद सुहुम । दोण्ण वध० अट्टतेरह० सच्चलोगो वा । अ० णत्थि । पज्जत्त पत्तेग० वधगा अट्टतेरह० सच्चलोगो वा । अ० लोमस्त असखेज्जदिभागो सच्चलोगो वा । तत्थिवरीद अपज्ज० साधारण० ।
- १० दोण्ण वधगा अट्टतेरह० सच्चलोगो वा । अघगा णत्थि । [ जस० वधगा अट्ट-तेरह० । अ० अट्टतेरह० सच्चलोगो वा । ] अज्जस० वधगा अट्टतेरह सच्चलो० । अ० अट्टतेरह० । दोण्ण वधगा अट्टतेरह० सच्चलोगो वा । अघगा णत्थि ।

३१७. आमि० सुद० ओधि०-पचना० छदस० जट्टकसा० पुरिस० भयदु० पचिदि० तेजाक० समचदु० वण्ण० ४ अगु० ४ पसत्थ० तस० ४ सुभगादि-  
१५ तिण्णि णिमिण-उच्चागोद-पचतराइमाण वधगा अट्टचो० । अ० रोत्तमगो ।

है । दोनों अगोपागोंके वधकोंका ४४, ४४ है । अघकोंके ४४, ४४ वा सर्वलोक है । परघात, उच्छ्वासके वधकोंका ४४, ४४ वा सर्वलोक है । अघकोंके लोकका असत्प्रायतया भाग वा सर्वलोक है । उद्योतने वधकोंका ४४, ४४ है । अवधकोंके ४४, ४४ वा सर्वलोक है । यश कीर्तिमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

प्रशस्त विहायोगतिके वधकोंके ४४, ४४ है । अवधकोंके ४४, ४४ वा सर्वलोक है । अप्रशस्त विहायोगतिके वधकोंके ४४, ४४ है । अवधकोंके ४४, ४४ वा सर्वलोक है । दोनोंके वधकोंके ४४, ४४ है । अवधकोंके ४४, ४४ वा सर्वलोक है । इसी प्रकार दो स्वरके विषयमें जानना चाहिए । बादरके वधकोंके ४४, ४४ है । अवधकोंके लोकका असत्प्रायतया भाग वा सर्वलोक है । सूद्धमें विषयमें विपरीत क्रम है अर्थात् वधकोंके लोकका असत्प्रायतया भाग वा सर्वलोक है । अवधकोंका ४४ वा ४४ है । दोनोंके वधकोंका ४४, ४४ वा सर्वलोक है । अवधक नहीं हैं । पर्याप्त प्रत्येकके वधकोंका ४४, ४४ वा सर्वलोक है । अवधकोंमें लोकका असत्प्रायतया भाग वा सर्वलोक है । अपर्याप्त तथा साधारणमें इसने विपरीत क्रम है अर्थात् वधकोंके लोकका असत्प्रायतया भाग वा सर्वलोक है । अवधकोंके ४४, ४४ वा सर्वलोक है । दोनोंके वधकोंका ४४, ४४ वा सर्वलोक है । अघक नहीं है । [ यश कीर्तिके वधकोंका ४४, ४४ है । अवधकोंका ४४, ४४ वा सर्वलोक है । ] अयश कीर्तिके वधकोंका ४४, ४४ वा सर्वलोक है । अवधकोंका ४४, ४४ है । दोनोंके वधकोंका ४४, ४४ वा सर्वलोक है । अवधक नहीं है ।

३१७ आमिनिरोधिक-श्रुत अनधिज्ञानियोंमें-५ ज्ञानारण, ६ दर्शनावरण, ८ कपाय, पुरुष वेद, भय, जुगुप्सा, पचेत्त्रिय, तेजस-कामाण, समचतुरस्रस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रम ४, सुभगादि ३, निर्माण, उच्चगोत्र, ५ अतरायने वधकोंके ४४, अवधकोंके क्षेत्र

मादासाद-बंधगा अनधगा अठचोइस० । दोण्ण वधगा अठचोइस० । अव०  
 णत्थि । अप्पच्चक्खणाणां ४ वज्जरिसहं वधगा अठचो० । अन० छचोइस० ।  
 हस्सरदि-अरदिसोगाण वधगा अवंधगा अठचोइस० । दोण्ण युगलाण वधगा  
 अठचो० । अव० खेत्तभगो । एव थिराथिर-सुभामुभ-असअज्जसगिचीण । मणुसायु-  
 तित्थयर वंधा (धगा) अनधगा अठचोइसभागो । देवायु० आहारदुग० वधगा ५  
 खेत्तभगो । अव० अठचो० । दोण्ण आयुगाणं वधा (धगा) अवधगा अठ-  
 चोइस० । मणुसगदि० ४ वधगा अठचोइस० । अन० छचोइस० । देवगदि० ४  
 वधगा छचोइस० । अन० अठचोइस० । दोण्ण व० अठचोइसभागो । अवधगा  
 खेत्तभगो । एव दोसरी० दोअगो० दोआणु० ।

३३१८. एव ओघिद० । मणवज्ज० सजद० सामा० छेदो० परिहार० सुहुमसंप० १०

के समान भग है अर्थात् लोकका असरयातवां भाग है ।

[ विशेष—अतीत कालकी अपेक्षा विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैकल्पिक तथा मार-  
 णान्तिक समुद्रघातगत सम्यक्त्वी जीवोंने १/४ भाग स्पर्शन किया, जो कि मेरुके मूलसे ६ राजू  
 ऊपर तथा नीचे दो राजू प्रमाण है । ( १६७ )<sup>१</sup> ]

साता-असाताके वधकों अवधकोंका १/४ है । दोनोंके वधकोंका १/४ है । अनधक नहीं हैं ।  
 अप्रत्याख्यानावरण ४, वधवृत्तभसहननके वधकोंका १/४, अवधकोंका १/४ है ।<sup>२</sup>

[ विशेष—मारणातिकसमुद्रातगतसयतासयतोंने अच्युतकल्प पर्यन्त १/४ भाग स्पर्श किया है । ]  
 हास्य-रति, अरति शोकके वधकों अनधकोंका १/४ है । दोनों युगलोंके वधकोंका १/४  
 है । अवधकोंका क्षेत्रके समान भग है अर्थात् लोकका असरयातवां भाग है । इस प्रकार स्थिर-  
 अस्थिर, शुभ, अशुभ, यश कीर्ति, अयश कीर्तिमें भी जानना चाहिए । मनुष्यायु तथा तीर्थकरके  
 वधको अवधकोंके १/४ है<sup>३</sup> । देवायु तथा आहारकद्विकके वधकोंका क्षेत्रवत् भग है अर्थात् लोकके  
 असख्यातवां भाग है । अनधकोंके १/४ है ।

मनुष्यायु-देवायुके वधकों अवधकोंका १/४ है । मनुष्यगति ४ के वधकोंका १/४ है ।  
 अनधकोंका १/४ है । देवगति ४ के वधकोंका १/४ है । अवधकोंका १/४ है ।

[ विशेष—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्व, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपागके अवधक दश  
 व्रतीकी अपेक्षा १/४ कहा है । ]

मनुष्यगति ४, देवगति ४ के वधकोंका १/४ है । अवधकोंका क्षेत्रके समान लोकका  
 असख्यातवा भाग है । दो शरीर, दो अगोपाग तथा दो आनुपूर्वी में इसी प्रकार जानना चाहिए ।

३३१८ अवधिदर्शनमें-ऐसा ही जानना चाहिए । मन पर्ययज्ञानी, सयम, सामायिक, छेदोप

( १ ) "अजदासंज्ञेदि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असत्तेज्जदिभागो ।" -पट्ठसू० फो० सू० ७ ।

( २ ) "पमसत्तं अदं पट्ठि षाव अजागिकेरलीदि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असत्तेज्जदिभागो ।"  
 -पट्ठसू० फो० सू० ९ । ( ३ ) "अजदसम्माइट्ठीदि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असत्तेज्जदि-  
 भागो । अठचोइसभागो वा देयणा" -सू० ५-६ ।

खेत्तभगो० ।

१३१९. सजदासजद-ध्रुविगाण वधगा छच्चोद्दस० । अत्रधगा णत्थि । सादा-साद-बधा(धगा) अत्रधगा छच्चोद्दस० । दोण्ण पगदीण वधगा छच्चोद्दसमागो । अवधगा णत्थि । एव चदुणोऊ० धिरादि-तिण्णियुगल० । देवायु तित्थयर वधगा  
५ खेत्तभगो । अथ० उच्चोद्दसमागो ।

१३२०. असंनदेसु-ध्रुविगाण वधगा सव्वलोगो । अवधगा णत्थि । धीणगिद्धितियं अणताणुव० ४ वधगा सव्वलो० । अत्रधगा अट्ठचोद्दस० । मिच्छत्तवधगा सव्व-लोगो । अत्र० अट्ठवारह० । वेउव्विय छक्क आयुचदुक्क तित्थयर च ओध । सेस मदि-अण्णाणिभगो ।

१० १३२१. चक्खुद० तस-पज्जत्त-भगो । णवरि केवल्लिभगो णत्थि । अवक्खुद० ओध । णवरि केवल्लिभगो णत्थि ।

१३२२. ऋण्ह-णील-काउ०-ध्रुविगाण वधगा सव्वलोगो । अवधगा णत्थि । धीणगिद्धि ३ अणताणु० ४ वधगा अवधगा खेत्तभगो । मिच्छत्तवधगा सव्वलोगो । अवधगा पच चत्तारि-ये चोद्दसमागो वा ।

स्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसापरायमे-<sup>१</sup>क्षेत्रके समान लोकना असख्यातवा भग है ।

१३१९. सयतासयतोमे-ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका  $\frac{1}{4}$  है । अवधक नहीं है । साता-असाताके वधकों अवधकोंका  $\frac{1}{4}$  है । दोनों प्रकृतियोंके वधकोंका  $\frac{1}{4}$  है । अवधक नहीं है । हास्य रति, अरति शोक तथा स्थिरादि तीन युगलोंमें इभी प्रकार जानना चाहिए । देवायु तथा तीर्थंकर प्रकृतिके वधकोंका क्षेत्रके समान है । अवधकोंका  $\frac{1}{4}$  है ।

१३२० असयताम-ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका सर्वलोक है । अवधक नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनताणुवधी ४ के वधकोंका सर्वलोक है । अवधकोंका  $\frac{1}{4}$  है । मिथ्यात्वके वधकोंका सर्वलोक है । अत्रधकोंका  $\frac{1}{4}$ ,  $\frac{1}{4}$  है । बैक्रियिकपट्क, आयु ४ तथा तीर्थंकरका ओघवत् भग है । शेष प्रकृतियोंना मत्स्यज्ञानके समान भग है ।

१३२१ चल्लुदशनम-त्रस पर्याप्तके समान भग है । विशेष, केवली-भग नहीं है । अचल्लु दर्शनमें ओघवत् जाना चाहिए । विशेष, केवली भग नहीं है ।

१३२० कृष्ण नील-कापोत ऐश्यामे-ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंके सर्वलोक है । अत्रधक नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनताणुवधी ४ के वधकों अवधकोंका क्षेत्रके समान भग है । मिथ्यात्वके वधकों का सर्वलोक है । अवधकोंका  $\frac{1}{4}$ ,  $\frac{1}{4}$ ,  $\frac{1}{4}$  है ।<sup>२</sup>

(१) "पमचसवदप्पट्टि जात्र अजागिकेवलीहि केवडिय खेत्त पोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिमागो । यट्ठवार० फो० सू० ९ ।

(२) "सावणसम्मादिदहीहि केवडिय पासिद ? लोगस्स असखेज्जदिमागो । अट्ठवारह चाद्दसमागा वा देवणा ।" सू० ३-४ ।

सावणसम्मादिदहीहि केवडिय खेत्त पोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिमागो । पचचत्तारि-वे चोद्दसमागा वा देवणा । सू०-१४७, १४८ ।

दोआयु-देवगदि-देवाणु० तित्थयर-वधगा खेत्तभंगो । अनधगा सच्चलोगो ।  
तिरिक्ख मणुसायु० णवुसगभंगो । चदुआयु-वधगा अनधगा सच्चलोगो । गिर-  
यगदिदुग वेगुव्वियदुगं वधगा छच्चोद्दस-च्चत्तारिवे० । अपधगा सच्चलोगो । जोरालि०  
वधगा सच्चलोगो । अपधगा छच्चत्तारिवेचोद्दस० । [ वेउच्चिय० वधगा छच्चत्तारि-  
वेचोद्दस ० । अनधगा सच्चलोगो । ] दोण्ण सरीराणं वधगा सच्चलोगो । अनधगा ५  
णत्थि । सेसाण असजदभगो ।

१३२३. तेउलेस्साए-पचणा० छदस० चदुसज० भयदुगु० तेजाक० वण्ण० ४  
अगु० ४ वादर-पज्जत्त-पत्तेय० णिमि० पचंत० वधगा अट्टणवचो० । अनधगा  
णत्थि । थीणगिद्धितिय अणंताणुगधि० ४ वधगा अट्टणवचो० । अनधगा अट्टचोद्दस-

[ विशेष-मारणातिक समुद्दात तथा उपपाद पद-परिणत छठवें नरकके नारकी सासादन  
गुणस्थानीने कृष्णलेश्यायुक्त हो  $\frac{१}{४}$ , नील लेश्या वाले ५ वीं पृथ्वीवालोंने  $\frac{१}{४}$  तथा कापोत लेश्या-  
वाले तीसरी पृथ्वीके नारकी सासादनसम्यक्त्वी जीवोंने  $\frac{३}{४}$  भाग स्पर्श किया है ( पृ० २९१ ) ]

देवायु, नरकायु, देवगति, देवानुपूर्वी तथा तीर्थकरके वधकोंका क्षेत्रके समान लोकवा  
असरयातवा भाग है। अवधकोंका सर्वलोक है। तिर्यंचायु, मनुष्यायुका नपुसकवेदके समान  
भग है। चारों आयुके वधको अवधकोंका सर्वलोक जानना चाहिए।

नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपागके वधकोंके  $\frac{१}{४}$ ,  $\frac{१}{४}$ ,  $\frac{१}{४}$   
हैं। अवधकोंके सर्वलोक है।

[ विशेष-इन प्रकृतियोंके वधक मनुष्य तथा तिर्यंच ही होंगे। देव तथा नारकी इन  
प्रकृतियाका वध नहीं करते हैं। सातवें नरकमे उपपाद या मारणातिरकी अपेक्षा कृष्ण लेश्यामे  
 $\frac{१}{४}$  है। नील लेश्या मे ५ वीं पृथ्वीकी अपेक्षा उपपाद या मारणातिके द्वारा  $\frac{१}{४}$  है। कापोत  
लेश्यामे तीसरी पृथ्वीकी अपेक्षा  $\frac{१}{४}$  है। ]

औदारिक शरीरके वधकोंके सर्वलोक है। अवधकोंके  $\frac{१}{४}$ ,  $\frac{१}{४}$ ,  $\frac{१}{४}$  है। [ वैक्रियिक  
शरीरके वधकोंका  $\frac{१}{४}$ ,  $\frac{१}{४}$ ,  $\frac{१}{४}$  है, अवधकोंका सर्वलोक है। ] दोनों शरीरोंके वधकोंके  
सर्वलोक है, अवधक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका असयतोंके समान भग है।

[ विशेष-औदारिक शरीरके अवधक नारकियामे उपपाद तथा मारणातिककी अपेक्षा  
सातवीं, पाचवी तथा तीसरी पृथ्वीकी दृष्टिसे  $\frac{१}{४}$ ,  $\frac{१}{४}$ ,  $\frac{१}{४}$  भाग कहा है। ]

१३२३ तेजोलेश्यामे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शानावरण, ४ सज्वलन, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण,  
वर्ण ४, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अतरायके वधकोंका  $\frac{१}{४}$ ,  $\frac{१}{४}$  है।  
अवधक नहीं है।

[ विशेष-विहारयत्तस्वस्थान, वेदना, कपाय और वैक्रियिक पद परिणत मिध्यात्वी जीवोंने  
 $\frac{१}{४}$  भाग, मारणातिक समुद्दात परिणत जीवोंने  $\frac{३}{४}$  भाग स्पर्श किया है। ( २९५ ) ]

( १ ) "तेउलेस्सिएसु मिच्छादिदडि-सासणसम्मादिदुद्धीदि केवदिय सेत्त फोसिद १ जगस्स थसले  
ज्जदिभागो । अट्टणवचोद्दसभागा वा देसणा ।"-पट्ट० फो० सू० १५१ १५२ ।

भागो । सादासाद-बंधगा अट्ठणवचो० । दीण्ण बधगा अट्ठणवचो० । अत्र  
 धगा णत्थि । एव चट्ठणोक्० धिरादि तिण्णिण्ण-युगल । मिच्छत्त-उज्जीव-बधगा  
 अट्ठणवचोद्दस० । अचचकसाणावरण० ४ बधगा अट्ठणवचो० । अनधगा दिव-  
 ड्ठचोद्दसभागो । पच्चकसाणावरण० ४ बधगा अट्ठणवचो० । अबधगा खेत्तमगो ।  
 ५ इत्थि० पुरिम० बधगा अट्ठचोद्दस० । अनधगा अट्ठणवचो० । णसुम०  
 बधगा अट्ठणवचो० । अनधगा अट्ठचोद्दस० । तिण्णि वेदाण बधगा अट्ठण-  
 वचो० । अनधगा णत्थि । इत्थिमगो दोआपु मणुसगदिदुग पचिदिं० पचसठा०  
 ओरालि० जगो० छसष० आदा० दोविहा० तस-सुभग-आदे० तित्थयर  
 उच्चापोदं च । णसुसगभगो तिरिक्खगदिदुगं एइदि० हुडसठां धारर दूमग

स्त्यागृद्धिनिक, अनतानुबधी ४ के बधकोंका १४, १४ है । अबधकोंका १४ है ।

[ निरोप—विहारवनस्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक तथा मारणातिक पद परिणत मिश्र  
 तथा अविरत सम्यक्त्वी जीवोंने पीत लक्षयामे १४ स्पर्शन किया है । निरोप, मिश्र गुणस्थानमें  
 मारणातिक नहीं होता है । उपपादपरिणत अविरत सम्यक्त्वी जीवोंके १४ भाग होता  
 है । ( २९६ ) ]

साता, असाताके बधकोंका १४, १४ है । दोनोंके बधकोंका १४, १४ है । अबधक नहीं  
 है । हाम्यरति, अरतिशोक, ग्थिरादि तीन युगलमे इमी प्रकार जानना चाहिये । मिथ्यात्व तथा  
 उद्योतके बधकोंके १४, १४ है । अबधकोंके १४ है । अप्रत्यारयानावरण ४ के बधकोंके १४, १४  
 है । अनधकोंके १४ है ।

[ निरोप—विहारवनस्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक पदसे परिणत मिथ्यात्वी तथा  
 सासादन गुणस्थानवती जीवोंने १४, मारणातिक समुद्घात परिणत उक्त जीवोंने १४  
 तथा उपपाद परिणत उन जीवोंने १४ स्पर्श किया है । मिश्र तथा अविरत गुणस्थानमे भी १४, १४  
 भाग है । निरोप, मिश्रमे मारणातिक नहीं होता है । उपपाद परिणत अविरत सम्यक्त्वी  
 जीवोंने १४ स्पर्श किया है । ]

प्रत्यारयानावरण ४ पे बधकोंका १४, १४ है । अबधकोंका क्षेत्रके समान लोकका अस्तरयातवा  
 भाग है । श्लोवेद, पुरुषवेदके बधकोंका १४, अबधकोंके १४, १४ है । नपुसकवेदके बधकोंके १४,  
 १४ है । अबधकोंके १४ है । तीनों वेदोंके बधकोंके १४, १४ है । अबधक नहीं है । मनुष्य-तिर्यंचायु,  
 मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पचेन्द्रिय, पच सस्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, आतप,  
 सो विहायोगति, अस, सुभग, आदेय, तीर्थंकर तथा उद्योगात्रका श्लोवेदके समान जानना चाहिये ।  
 तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, हुडकसस्थान, स्वावर, दुर्भंग, अनादेय तथा नीचगोत्रका

( १ ) 'सम्माभिच्छादिदुदि अचब्रदसम्मादिदुद्दी केवदिय खेतं फोसिद ? लागस अरलेज्जदि  
 मागो । अट्ठचाददसभागो वा देवणा । -पट्ख० फो० सू० १५२ १५३ ।

( २ ) 'सज्जरासंभवेदि केवदिय खेतं फोसिद ? लागस अरलेज्जदिमागो । दिवड्ठचोद्दसभागो  
 वा देवणा । -सू० १५४ १५५ ।

अणादे० णीचागोद च । देवायु-आहारदुग्धं वधगा खेत्तभगो । अणधगा अट्ठणन-  
चोद्दस० । देवगदि० ४ वंधगा दिवड्ढ-चोद्दसभागो । अणधगा अट्ठणवचो० ।  
ओरालियसरीर वंधगा अट्ठणवचो० । अणधगा दिवड्ढचोद्दसभागो । एव पत्ते०  
साधारणेण वि । सव्वपगदीण वधगा अट्ठणन चोद्दसभागो । अणधगा णत्थि ।  
आयु० अणोवग-सघडण-विहाय० [ एव ] ।

§३२४. पम्माए-पचणा० छदसणा० चदुसजल० भयदु० पचिदि० तेजाऊ०  
वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमिण पचतराडयाण वधगा अट्ठ० । अवंधगा  
णत्थि । थीणगिद्वितिय मिच्छत्त० अणताणु० ४ वंधा ( धगा ) अवधगा अट्ठचोद्द-  
सभागो । एव दोआयु० उज्जीव तित्थयर च । सादासादाण वधा ( धगा ) अव-  
धगा अट्ठचोद्दसभागो । दोणं वधगा अट्ठचोद्दसभागो । अणधगा णत्थि । एव १०  
वधगा वेदणीयभगो । सेमाण पत्तेगेण साधारणेण । णवरि देवायु वधगा खेत्तभगो ।  
अणधगा अट्ठचोद्दसभागो । तिण्ण जायु० वधा ( धगा ) अवधगा अट्ठचोद्दस-

नपुसकत्रेदके समान भग है । देवायु, आहारकद्विकके वधकोंके क्षेत्रके समान लोकका असख्या-  
तवा भाग है । अवधकोंका १/४, १/४ है । देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक  
अगोपांगके वधकोंके १/४, अणधकोंके १/४, १/४ है । औदारिक शरीरके वधकोंके १/४, १/४ है  
अणधकोंके १/४ है । प्रत्येक तथा सामान्यसे भी इसी प्रकार है । शेष सर्व प्रकृतियोंके वधकोंके  
१/४, १/४ है । अणधक नहीं हैं । आयु, अगोपांग, सहजन तथा विद्यायोगतिमे [ इसी प्रकार  
जानना चाहिए ] ।

§३२५ पद्मलेश्यामे-१ ज्ञानावरण, ६ दर्शनारण, ४ सज्जलन, भय-जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति,  
तैजस, कार्माण, वर्ण ५, अगुस्त्वधु ४, व्रस ५, निर्माण तथा ५ अतरायके वधकोंके १/४ है ।  
अवधक नहीं है ।

[ विशेष-पद्मलेश्या वाले मिथ्यात्वसे अरिस्त सम्यक्त्वी पर्यंत जीवोंने विहारतत्त्वस्थान,  
वेदना, कपाय, वैक्रियिक तथा मारणातिक्रमी अपेक्षा ६ राजू ऊपर तथा नीचे नो राजू, १/४ भाग  
स्पर्श किया है । उपपाद परिणत उक्त जीवोंने १/४ स्पर्श किया है । विशेष, मिश्र गुणस्थानमे  
उपपाद मारणातिक्रमके अभावा है । ( पृ १९८ ) ]

स्त्यानगुद्विक्रिक, मिथ्यात्व, अनतानुवधी ४ के वधकों अवधकोंका १/४ है । मनुष्य  
तियचायु, उद्योत तथा तीर्थकरका इसी प्रकार है । साता, असाताके वधकों अवधकोंका १/४ है ।  
दोनोंके वधकोंका १/४ है । अणधक नहीं हैं । इस प्रकार धवने वाली यथा हास्यादि ४, स्थिरादि  
तीन युगलमे वेदनीयके समान भग है । शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे इसी प्रकार  
है । विशेष, देवायुके वधकोंका क्षेत्रके समान भग है अर्थात् लोकका असख्यातवा भाग  
है । अणधकोंका १/४ है । तीन आयु ( नरकायु विना ) के वधकों अणधकोंका १/४ है ।

( १ ) 'पम्मलेस्तिएसु मिच्छादिद्विपट्टि जाव असज्जदसम्मादिदोहि केवदिय खेत्त पोसिद ? लागस्स  
अत्तेअदिमागो । अट्ठचोद्दसभागो वा देस्सणा ।' -यट्ठस० फो० सू० १५७-१५५ ।

भागो । देवगदि० ४ वधगा पचचोद्दस० । जवधगा अट्ठचोद्दसमागो । अप-  
च्चवखाणा० ४ ओरालियम० जोरालिय० अगो० छसघ० साधारणेण पधगा  
अवधगा पचचोद्दस० । पच्चवखाणा० ४ वंधगा अट्ठचोद्दस० । अवधगा सेत-  
भगो । आहारदुग देवायुभंगो ।

५ §३२५. सुकाए—पचणा० छदस० अट्ठकसा० भयदु० पचिदि० तेजाक०  
वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमिण पचतराइयाण वधगा छचोद्दसभागो । अनधगा  
केवलिभगो । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-अट्ठकसा० मणुमायु तित्थयर वंधगा छच्चो

देवगति, च्चवखानुपूर्वा, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिअ अगोपागके वधकोंका रूद्र है । अवधकोंका  
रूद्र है । अग्रत्याख्यानावरणचतुष्क, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, ६ सहजतके वधकों  
अवधकोंका सामायसे रूद्र है ।

[ विशेष—दशसयमी पञ्चलेख्या वाले जीवोंके मारणातिक समुत्पातकी अपेक्षा शतार सहस्रार  
कल्पके स्पर्शनकी दृष्टिसे रूद्र कहा है । ]

प्रत्याख्यानावरण ४ के वधकोंका रूद्र है । अवधकोंका क्षेत्रये समान लोकका असख्यातवा  
भाग भग है ।

[ विशेष—प्रत्याख्यानावरण ४ के अवधक प्रमत्तरयतोंकी अपेक्षा लोकका असख्यातवा भाग  
कहा है । ]

आहारकद्विकना देवायुके समान भग है अर्थात् वधकोंके लोकका अरुरयतवा भाग है ।  
अवधकोंके रूद्र है ।

§३१५ शुद्ध लेख्यामे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणदि ८ कपाय, भय-सुगुप्ता,  
पचेन्द्रिय, तैजस-वार्माण वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अतरायके वधकोंका रूद्र  
है<sup>३</sup> । अवधकोंके केवली भग है ।

[ विशेष—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र तथा असयत सम्यक्त्वो शुद्धलेख्यावालोंने विहारयत  
स्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक तथा मारणातिक पद परिणत जीवोंने रूद्र स्पर्श किया है ।  
स्वस्थान स्वस्थान, विहारयतस्वस्थान, वेदना, कपाय, वैक्रियिक पद परिणत सयतासयतोंने लोकका  
अमख्यातवा भाग स्पर्श किया है । मारणातिक पद परिणत उक्त जीवोंने रूद्र भाग स्पर्श किया है ।  
कारण तियच सयतासयतोंका शुद्धलेख्याके साथ अच्युत कल्पमे उपपाद पाया जाता है । मिश्र  
गुणस्थानमे उपपाद तथा मारणातिक पद नहीं होते हैं । ( पृ० ३०० ) ]

स्थानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनतातुवधी आदि ८ कपाय, मनुष्यायु, तीर्थंकरके वधकोंके

( १ ) सञ्जासञ्जदेदि केवडिय क्षेत्रे पोसिदः । लोगस्स असखेत्तञ्जदिभागो । पचचोद्दसभागा वा  
देवगा । —पट्टर० फो० सू० १५९-१६० ।

( २ ) ' प्रमत्ताप्रमत्तैल्लेस्सपासटपयमाग । ' —स० सि० १।८ ।

( ३ ) ' सुवकलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पट्ठि वाध संजडासञ्जदेदि केवडिय क्षेत्रे पोसिदः । लोगस्स  
असखेत्तञ्जदिभागो । छचोद्दसभागा वा देवगा । ' —सू० १६२-१६३ ।

दूदसभागो । अन्धगा छच्चोद्दसभागो, केवलभगो । साद-वधगा छच्चोद्दसभागो  
केवलभगो । अन्धगा छच्चोद्दसभागो । असाद-वधगा छच्चोद्दसभागो । अन्धगा  
छच्चोद्दस० केवलभगो । दोषणं वधगा छच्चोद्दमभागो केवलभगो । अन्धगा  
णत्थि । देवगदि० ४ वधगा छच्चोद्दस० । अन्धगा छच्चोद्दस० केवल-  
भगो० । एव षोदच्च । भवसिद्धि ओष ।

§३२६. सम्मादिट्ठि ओधिभंगो । णवरि केवलभगो कादच्चो । सइग-सम्मा-  
दिट्ठि० पंचणा० उदस० वारसक० पुरिस० भयदु० पचिदि० तेजाक० वण्ण० ४  
अगु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोद-पचतराइ-  
गाण वधगा अट्ठचोद्दस० । अन्धगा केवलभगो । एवं सेसाण पगदीण सम्भा-  
दिट्ठि-भगो । णवरि मणुसगदिपचग अन्धगा । देवगदि० ४ वधगा खेत्तभंगो । १०  
वेदगे ओधिभगो पचेगेण साधारणेण । अन्धगा णत्थि ।

§३२७. उपसमस० सइगसम्मादिट्ठिभंगो । णवरि केवलभगो णत्थि । त्थियर

१/४ भाग हैं । अन्धकोंके १/४ वा केवली भग है । साताके वधकोंके १/४ भाग तथा केवली-भग  
है । अन्धकोंके १/४ है । असाताके वधकोंके १/४ है । अन्धकोंके १/४ वा केवली भग है । दोनोंके  
वधकोंके १/४ वा केवली भग है । अन्धक नहीं है । देवगति ४ के वधकोंके १/४ है । अन्धकोंके  
१/४ तथा केवली भग है । शेष प्रकृतियोंका इसी प्रकार निर्मलना चाहिए ।

भव्यसिद्धिकोमं ओधवत् भग है ।

§३२६ सम्यक्त्वियोंमें<sup>२</sup> अवधिज्ञानके समान भग है । विशेष, यहाँ केवली-भग करना चाहिए ।

[ विशेष—सम्यक्त्वमार्गणामे चतुर्थसे लेकर चौदहवें गुणस्थानका सद्भाव है । इस कारण  
यहाँ केवली भग भी कहा है । ]

ध्यायिक सम्यक्त्वियोंमें—५ ज्ञानारण, ६ दर्शनावरण, १२ क्पाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा,  
पचेन्द्रिय, तेजस-आर्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, व्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय,  
निर्माण, उच्चगोत्र, ५ अतपयके वधकोंका १/४ है । अन्धकोंका केवली भग है ।

[ विशेष—निहारवत् स्वस्थान, वेदना, क्पाय, वैत्रियिक तथा मारणातिक समुद्रघातकी अपेक्षा  
अविरत गुणस्थानवर्ती ध्यायिक सम्यक्त्वियोंके १/४ भाग स्पर्श किया है । (घ० टी० फो० पृ० ३०२) ]

इस प्रकार शेष प्रकृतियोंका सम्यक्त्विके समान भग है । मनुष्यगति ५ के अन्धकोंमें  
विशेष जानना चाहिए । देवगति ४ के वधकोंका क्षेत्रके समान भग है ।

वेदकसम्यक्त्वोंमें—अवधिज्ञानके समान प्रत्येक तथा सामान्यसे भग है । यहाँ अन्धक नहीं हैं ।

§३२७ उपशमसम्यक्त्वोंमें—ध्यायिकसम्यक्त्वोंके समान भग है । विशेष, यहाँ केवली भग  
नहीं है । तीर्थंकरके वधकोंका क्षेत्रके समान भग है ।

( १ ) 'भरिणपुत्रादेग भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुट्टि जाव अन्नोगिक्केवलत्थि आध ।'—पट्ठ०  
फो० सू० १६५ ।

( २ ) 'सम्माचापुत्रादेग सम्मादिट्ठीसु अराबदत्तम्मादिट्ठिप्पहुट्टि जाव सञ्जागिक्केवलत्थि ।'—सू० १६७ ।



वधगा खेत्तमंगो ।

- १३२८ मामणे धुरिगाण वधगा अट्टवारह० । अवधगा णत्थि । सादासादवधगा  
अवधगा अट्टवारह० । दोण्ण वधगा अट्टवारह० । अवधगा णत्थि । एव चदुपोरु० ।  
थिरादि-तिण्णि-युगल । इत्थि० पुरिस० वधगा अवधगा अट्टएक्कारसभागो० ॥  
५ दोण्ण वधगा अट्टएक्कारस० । अवधगा णत्थि । एव पचसठा० पचसघ० दो  
विहाय० दोसर० । दो आयु-मणुसगदिदुग उच्चागोद वधगा अट्ट चोद्दस०  
अवधगा अट्टवारह० । देवायुवधगा खेत्तमंगो । अवधगा अट्टवारह० । तिण्णि  
आयु-वधगा अट्टचोद्दस० । अवधगा अट्टवारहभागो । तिरिक्खगदिदुग णीचागोद  
च वधगा अट्टवारह० । अवधगा अट्टचोद्दसभागो । देवगदि० ४ वधगा पच  
१० चोद्दस० । अवधगा अट्टवारहभागो । तिण्ण गदीण वधगा अट्टवारह० । अवधगा  
णत्थि । ओरालि० ओरालि० अगो० पचसघ० वधगा अट्टवारह० । अवधगा पच  
चोद्दसभागो । उज्जीव वधगा अवधगा अट्टवारहभागो । सुभग-आदे० वधगा अट्ट-  
चोद्दस० । अवधगा अट्टवारहभागो । दुभग-अणादे० वधगा अट्टवारह० । अवधगा  
अट्टचोद्दस० । दोण्ण वधगा वेदणीयमंगो ।
- १५ १३२९ सम्मामिच्छाइट्ठि धुविगाण वधगा अट्ट-चोद्दस० । अवधगा णत्थि ।

१३२८ सासादनमे-ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका १४, १३ है। अवधक नहीं है। साता, असाताके  
वधकों अवधकोंका १४, १३ है। दोनोंके वधकोंका १४, १३ है। अवधक नहीं है। इस प्रकार  
हास्यादि चार नोकपाय तथा स्थिरादि तीन युगलमे जानना चाहिए। स्त्रीवेद, पुम्पवेदके वधकों  
अवधकोंके १४, १३ है। दोनोंके वधकोंके १४, १३ है। अवधक नहीं है। ५ सस्थान (हुडक  
विना) ५ सहजन (असप्राप्तासृपाटिका विना), दो विहायोगति तथा दो स्वरमे इसी प्रकार है।  
तियच-मनुज्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रके वधकोंके १४ है। अवधकोंके १४ तथा  
१३ है। देवायुके वधकोंमें क्षेत्रयत् भग है। अवधकोंमे १४, १३ है। तीन आयु (नरक विना)  
के वधकोंके १४, अवधकों १४, १३ है। तियचगति, तियचानुपूर्वी, नीचगोत्रके वधकोंके १४, १३  
है। अवधकोंके १४ है। देवगति ४ के वधकोंके १४ है। अवधकोंके १४, १३ है।  
तीनों गतियोंके (नरक विना) वधकोंके १४, १३ है। अवधक नहीं है। औदारिक  
शरीर, औदारिक अगोपाग, ५ सहजनके वधकोंके १४, १३ है। अवधकोंके १४ है। उद्योतके  
वधकों अवधकोंके १४, १३ है। सुभग, आदेयके वधकोंके १४ है। अवधकोंके १४, १३ है।  
दुभग, अनादेयके वधकोंके १४, १३ है। अवधकोंके १४ है। सुभग, दुभग तथा आदेय-अनादेय  
के वधकोंमें वेदनीयके समान भग है।

१३२९ सम्मामिच्छाइट्ठिमे-ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका १४ है। अवधक नहीं है।

[ विशेष-विहारयत्त्वस्थान, वेदना, कपाय तथा वैक्खियिन् ससुद्धातकी अपेक्षा मेरुतलसे  
ऊपर ६ राजू तथा नीचे दो राजू, १४ भाग है। (ध० टी० प० पृ० १६७) ]

देवगदि० ४ वधगा खेत्त भंगो । अवधगा अट्ठ-चोद्दसभागो । मणुसगादिपचग वंधगा अट्ठ-चोद्दस० । अत्रधगा खेत्तभंगो । सेसाणं पत्तेणेण वधगा अनधगा अट्ठ-चोद्दस-भागो । साधारणेण धुविगाण भगो ।

§३३०. सण्णी मणजोगिभगो । असण्णी खेत्तभगो । णवरि एह्दियपगदीण एह्दिय-भगो ।

§३३१. आहारादि ( ? ) (आहार०) ओघ । णवरि केरलिभंगो णत्थि । अणाहार० कम्महगभगो । णवरि वेदणीय साधारणेण ओघ ।

### एव फोसण समत्तं ।

देवगति ४ के वधकोंके क्षेत्रके समान भग है । अत्रधकोंके १/४ है । मनुष्यगति ५ के वधकोंके १/४ है । अवधकोंके क्षेत्रके समान है । शेष प्रकृतियोंके प्रत्येकसे वधकों अवधकोंका १/४ है । सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंका भग है ।

§३३० सङ्गीमे—मनोयोगियोंका भग है । असङ्गीमे—क्षेत्रके समान है । त्रिगेष, एकेन्द्रिय जातिके एकेन्द्रियके समान भग है ।

§३३१ आहारकोंमे १ ओघवत् भग है । किन्तु केरलिभग नहीं है ।

[ विशेष—मिथ्यादृष्टी जीवके सर्लोक है, सासादनके लोकका असरयातना भाग, १/४, १/४ भाग है । मिश्र तथा अविरत सम्यक्त्वीके लोका असरयातना भाग, १/४ है । देशसयतके असरयातना भाग वा १/४ है । प्रमत्तसयतसे सयोगि जिनपर्यन्त लोकना असरयातना भाग है । विशेष, सयोगकेरलीके प्रतर तथा लोकपूरण ममुद्घात आहारक अवस्थामे नहीं होते । ]

अनाहारकोंमे—कार्माण काययोगवत् है । विशेष, वेदनीयना सामान्यसे ओघवत् भग है २ ।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

( १ ) “आहाराणुगदेण आहारएसु मिच्छादिद्वी ओघ । सासणसम्मदिट्ठिण्णहुडि जाव सज्जदासज्जदा आघ । पमत्तसज्जदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त पोसिद २ कागस्स असलेज्जदिभागो ।” —पट्ठ० फो० सू० १८१-१८३ ।

( २ ) ‘अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभि सर्लोक स्पृष्ट । सासादनसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासख्येय-भाग, एकादश चतुर्दशभागा वा देशोना । सयोगकेवल्लिना लोकस्यासख्येयभाग सर्वलोको वा । अयोगकेवल्लिना लोकस्यासख्येयभाग ।’—स० सि० १-८ ।

“आणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभगो । णवरि त्रिसेतो । अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त पोसिद २ लोगस्य असलेज्जदिभागो ।” —सू० १८४-१८५

## [ कालाणुगम-परूवणा ]

§३३२ कालाणुगमेण दुविदो णिद्वेसो, ओघेण आदेसेण य ।

§३३३. तत्थ ओघेण पचणा० णवदस० मिच्छत्त मोलसक० भयदु० तेज्जक०

आहारदुग वण्ण० ४ अगु० ४ आदाउज्जो० णिमिण० तित्थयर-पचतराइगाण वधगा  
अनधगा केवचिर कालादो होंति ? सच्चद्धा । सादासादाण वधा (वधगा) अनधगा०  
५ सच्चद्धा । दोण्ण वधगा अवधगा केवचिर कालादो हाति ? सच्चद्धा । एव सेसाण  
पगदीण वेदणीय भगो । णवरि । तण्णिआयु वधगा केवचिर कालादो होंति ? जहण्णेण  
अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । अवधगा सच्चद्धा । तिरि  
क्कायुवधानधगा केवचिर कालादो होंति ? सच्चद्धा । एव चदुआयुगाण । एव  
ओघमगो काजोगीसु ओरालियकाजोगी० भगसिद्धि० आहारगत्ति । णवरि भगसिद्धिये  
दोवेदणीयस्म अनधगा केव० कालादो होंति ? साधारणेण जहण्णुक्कस्सेण अतो-

## [ कालानुगम ]

§३३२ कालानुगमका ( नानाजीवीकी अपेक्षा ) ओघ तथा आदशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं ।

§३३३ ओघसे-५ ज्ञानावरण, ९ दशनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय-जुगुप्सा, तेजस, का  
र्माण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरुत्व ४, ध्यातप, उद्योग, निर्माण, तीक्ष्ण, ५ अंतरायोंके वधक  
अवधक कितने काल तक होते हैं ? नानाजीवीकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं । सादा असादाके  
वधक अनधक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं । दोनोंके वधक अवधक कितने काल  
तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं । गेप प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भग है । निशेष, ३ आयुके  
वधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उच्छृष्टसे पल्योपमके असरयातर्वे भाग तक  
है । अवधकोंका रूपकाल है । तियचायुके वधक अनधक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल  
होते हैं । इसी प्रकार चार आयुजा जानना चाहिए ।

काययोगी, औदारिककाययोगी, भव्यसिद्धिक, आहारक मार्गशापर्यन्त ओघवत् जानना  
चाहिए । इतना विशेष है कि भव्यसिद्धिकोमे दो वेदनीयके<sup>२</sup> अनधक कितने काल तक होते हैं ?

(१) ओघेण मिच्छादिद्वी केवचिर कालादो हाति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा । सवकाल णाणाजीव  
पडुच्च मिच्छादिद्वी वाच्छदा णरियत्ति मण्णिदो हिदि ॥ -ध० टी० का० पृ० ३२३ ।

'साणसम्मदिद्वी केवचिर कालादो हाति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमज्जो, उक्कस्सेण  
पलिदावमस्स असंने ज्जदिभागो ।' -पट्ठ० का० सू० ५, ६ ।

(२) "चदुह्ण सवगा अजोगिकेअरी केवचिर कालादो हाति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतामुहुत्त  
उक्कस्सेण अतामुहुत्त ।" -पट्ठ० का० सू० २६ ।

मुहुत् । सेमाण मगणाण वेदणीयस्स साधारणेण अंधगा णत्थि । णरि काजोगि-  
ओरालियका० तिण्ण आयुगाण जहण्णेण एगसमओ ।

§३३४. आदेसेण णेरइयेसु धुमिगाणं वंधगा केवचिरं कालादो हंति ? सच्चद्धा ।  
अंधगा णत्थि । धीणगिद्धि-तिय मिच्छत्त-अणताणु० ४ उज्जोव-तित्थयराणं ओघ ।  
तिरिक्खायु-वधगा केव० कालादो हंति ? जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदो-  
वमस्स असखेज्जदिभागो । अंधगा सच्चद्धा । मणुसायु-वधगा केव० जहण्णुक्कसेण  
अतोमुहुत्त । अंधगा सच्चद्धा । दो-आयु वधगा केवचिरं ? जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्क-  
स्सेण पलिदोमस्स असखेज्जदिभागो । अंधगा सच्चद्धा । सेसाण पत्तेणेण सच्चे विग-  
प्पा सच्चद्धा । साधारणेण अंधगा णत्थि । एवं सच्चणेरइगाणं ।

§३३५. तिरिक्खेसु-चदुआयु ओघ । सेसाण सच्चे विगप्पा सच्चद्धा । एव एइंदि० १०

सामान्यकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त है ।

[ विशेष-दोनों वेदनीयके अनधक अयोगी जिनकी अपेक्षा अतर्मुहूर्त काल कहा है । ]

शेष मार्गणाओंमें सामान्यसे वेदनीयके अवधक नहीं हैं । विशेष, काययोगियों, औदारिक  
काययोगियोंमें तीन आयुके वधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे एक समय पर्यन्त होते हैं ।

§३३४ आदेशसे-नारकियोंमें ध्रुवप्रकृतियोंके वधक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल  
होते हैं । अवधक नहीं हैं ।<sup>१</sup> स्थानगृद्धिन्निक्क, मिध्यात्व, अनवानुमधी ४, उद्योत और तीर्थंकरके  
वधकोंमें ओघके समान सर्वकाल जानना चाहिए । तिर्यंचायुके वधक कितने काल तक होते हैं ?  
जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असत्यातर्तं भाग होते हैं । अवधक सर्वकाल होते हैं ।  
मनुष्यायुके वधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्य तथा उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त होते हैं । अवधक  
सर्वकाल होते हैं । दो आयु अर्थात् मनुष्य तिर्यंचायुके वधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे  
अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असत्यातर्तं भाग होते हैं । अनधक सर्वकाल होते हैं । शेष प्रकृ-  
तियोंमें सर्व विकल्प पृथक्-पृथक् रूपसे सर्वकालरूप होते हैं । साधारणसे अनधक नहीं हैं ।  
इसी प्रकार सर्व नारकियोंमें जानना चाहिए ।

§३३५. तिर्यंचागतिमें चार आयुके वधक अनधक कितने काल तक होते हैं ? ओघके समान  
जानना चाहिए । शेष सर्व विकल्प सर्वकाल प्रमाण हैं ।<sup>३</sup> एकेंद्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक,

(१) "णेरइयसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादा हंति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।"—पट्टर०  
का० ३३ ।

(२) "तिरिक्खमदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो हंति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।"  
—पट्टर० का० ४७ ।

(३) "एरदिया केवचिरं कालादो हंति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।" (सू० १०७) । "पुढविक्खाया  
आउक्काया-तेउक्काया-नाउक्काया केवचिरं कालादो हंति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा । (सू० १३९) ।  
'बादरपुढविक्खाय बादरआउक्काय बादरतेउक्काय बादरयण्णदिकाय-पत्तेयसरीर-अप-जत्ता केवचिरं

पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणफ्फदि पचेय० तैसि वादर-वादर-अपजत्त-सच्चसुहुम०  
वणफ्फदि णिगोद मदि० सुद० असजद० तिणि लेस्ता० अन्नमसि० मिच्छादिट्ठि-  
अमण्णित्ति ।

१३३६. पचिदिय-तिरिक्खेसु चहुआयु जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोव-

५ मस्त असखेज्जदिभागो । अबधगा सच्चद्धा । सेसाणं सच्चे भगा सच्चद्धा ।

१३३७ एव पचिदिय तिरिक्ख अपजत्तजोणिणीसु । पंचिदिय-तिरिक्ख-अपजत्त-दो

आयुवधगा जहण्णेण अतोमुहुत्त । उक्कस्सेण पलिदोवमस्त असखेज्जदिभागो । अब-  
धगा सच्चद्धा । एव सच्चविगल्लिदिय पचिदिय-तस० अपजत्त वादर पुढवि० आउ०  
तेउ० वाउ वादरवणफ्फदिपचेय पज्जत्ताण ।

१० १३३८. मणुसेसु सादासादवधगा सच्चद्धा । दोण वेदणीयाण वधगा सच्चद्धा ।

तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पति, प्रत्येक तथा इनके वादर तथा वादर अपर्याप्तकॉम, सर्व  
सूक्ष्मोंमें, वनस्पतिनिगोदोंमें, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, भ्रसयत, कृष्णादिदेश्यात्रय, अभव्वसिद्धिक,  
मिथ्यादृष्टि असक्षी पर्यन्त पूर्वयत् नानना चाहिए ।

१३३६ पचेत्त्रिय तिर्यंचोमं-वार आयुके वधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे अत  
मुहुत्त, उल्लृष्टसे पल्यके असख्यातवें भाग पयत्त होते हैं । अबधक सर्वकाल होते हैं । शेष  
प्रकृतियोंके सर्व विकल्प सर्वकाल जानना चाहिए ।

१३३७ पचेत्त्रिय तिर्यंच, पचेत्त्रिय तिर्यंचपर्याप्तक, पचेत्त्रिय तिर्यंचयोनिमतियोंमें इसी  
प्रकार जानना चाहिए । पचेत्त्रिय तिर्यंचल-ध्यपर्याप्तकॉम दो आयु (नर तिर्यंचायु) के वधक  
जघन्यसे अतमुहुत्त, उल्लृष्टसे पल्यके असख्यातवें भाग होते हैं । अबधक सर्वकाल होते हैं ।  
सर्वत्रिकेत्त्रिय, पचेत्त्रिय तस इनने अपर्याप्तकॉम वादर पृथ्वी जल-अग्नि-वायुकायिक, वादर  
वनस्पति प्रत्येक तथा इनके पर्याप्तकॉम इसी प्रकार जानना चाहिए ।

१३३८ मनुष्योंमें-साता असाता वेदनीयके वधकोंका सर्वकाल है । दोनों वेदनीयके वधकों  
का सर्वकाल है । अबधकोंका जघन्य उल्लृष्टकाल अतमुहुत्त है ।

[ विशेष-दोनों वेदनीयके अबधक अयोगिजिर्नीनी अपेक्षा अतमुहुत्त कहा गया है । ]

कालादो हांति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा । ( १४८ ) । "सुहुमपुढविकाइया सुहुमभाउकाइया सुहुमतेउ-  
काइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणफ्फदिकाइया सुहुमणिगादजीवा सुहुमेइदिय पज्जत्त अपज्जत्ताण भयो ।'  
( १५१ ) । "णाणाणुमादेण मदि अण्णाणि सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठि ओघ । ( १६० ) । "असंनदेसु  
मिच्छादिट्ठिपट्ठि ओघ वाव असजदसम्मादिट्ठि ओघ । ( १७५ ) । 'निण्हेस्सिय-गील्लेस्सिय-काउलेस्सि  
एसु मिच्छादिट्ठो केचिंर कालादो हांति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा । ( १८१ ) । 'अभवविदिया  
केचिंर कालादो हांति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा । ( १९५ ) । "मिच्छादिट्ठी आघ । ( १२९ ) ।  
'असणो केचिंर कालादो हांति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।" ( १३४ ) ।

( १ ) 'चहुहुं शवभा अनीगिकेत्तली केचिंर कालादो हांति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतो  
मुहुत्त उक्कस्सेण अतोमुहुत्त । -पदर० फा० २६ ।

अग्रधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । दोआयु० वधगा जहण्णेण अतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । अवधगा सच्चद्धा । दोआयु० वधगा जहण्णुक्कस्सेण अतोमुहुत्तं । अग्रधगा सच्चद्धा । चट्टुआयुवधगा जहण्णेण अतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । अवधगा सच्चद्धा । सेसाण सव्वे भगा सच्चद्धा ।

§३३९, एव मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि चट्टुआयु पत्तेगेण साधारणेण य वधगा जहण्णुक्कस्सेण अतोमुहुत्तं । अवधगा केवचिरं कालादो होंति ? सच्चद्धा ।

§३४०. मणुस-अपज्जत्तेसु-धुविगाणं वधगा केव० कालादो होंति ? जहण्णेण सुद्धा भवग्गहण, उक्क० पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । अवधगा णत्थि । सादासाद-वधगा अवधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्क० पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । दोण्ण वधगा जहण्णेण सुद्धाभवग्गहण, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । अवधगा णत्थि । दो-आयु० पत्तेगेण साधारणेण य वधगा अग्रधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । ओरालि० अगो० छसघड० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहाय० दोसर वधगा अग्रधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । एव पत्तेगेण साधारणेण वि । सेसाणं वेदणीयभगो ।

दो आयुके वधक जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्त्यके असख्यातवें भाग होते हैं । अवधक सर्वकाल होते हैं । दो आयुके वधक जघन्य-उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त होते हैं । अवधकोंका सर्वकाल है । चारों आयुके वधकोंका जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पत्त्यके असख्यातवें भाग होते हैं । अवधक सर्वकाल होते हैं । शेष प्रकृतियोंके मर्त्यभग सर्वकाल जानना चाहिए ।

§३३९ मनुष्य पर्याप्तकों, मनुष्यनिर्यातों इसी प्रकार जानना चाहिए । विगेप यह है कि चार आयुके प्रत्येक तथा सामान्यसे वधक जघन्य और उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त पर्यन्त होते हैं । अवधक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं ।

§३४० मनुष्य लघ्वपर्याप्तकोंमें<sup>१</sup>-ध्रुव प्रकृतियोंके वधक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे सुद्रभवग्रहण फाल, उत्कृष्टसे पत्त्यके असख्यातवें भाग पर्यन्त होते हैं । अवधक नहीं हैं । साता-असाता वेदनीयके वधक अवधक जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्त्यके असख्यातवें भाग होते हैं । दोनोंके वधक जघन्यसे सुद्रभवग्रहण पर्यन्त, उत्कृष्टसे पत्त्यके असख्यातवें भाग होते हैं । अवधक नहीं हैं । दो आयु ( मनुष्य तिर्यंचायु ) के वधक-अवधक प्रत्येक साधारणसे जघन्य अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पत्त्योपमके असख्यातवें भाग हैं । औदारिक अगोपाग, छह सहनन, परघात-उच्छ्वास आतप, उद्योत, दो विद्यायोगति, दो स्वरके वधक अवधक जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्त्योपमके असख्यातवें भाग हैं । सामान्य तथा प्रत्येकसे इसी प्रकार जानना चाहिए । शेषना वेदनीयके समान भग जानना चाहिए । अर्थात् जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पत्त्योपमका असख्यातवें भाग है ।

( १ ) 'मणुस-अपज्जत्ता केवचिरं कालादा होंति ? णाणाजीव पटुच्च जहण्णेण सुद्धाभवग्गहण, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो ।' -पट्ख० फ० ८३-८४ ।

§३४१. देवाण णिरयभगो । णरि एहंदियपयडि जाणिट्ठण भाणिट्ठव्व ।

§३४२. पचिदिय-त्तस० तेसिं पज्जता वेदणीय साधारणेण अवधगा जहण्णुक्क  
स्सेण अंतोमुहुत्त, चदुण्ण आयुगाण वधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्त उक्क० पलिदोवमस्स  
असखेज्जदिभागो । सेस भगा सच्चद्धा ।

५ §३४३. एवं तिण्णि-मण० तिण्णि-वचि० । णरि वेदणीयस्स साधारणेण अवधगा  
णत्थि । चदुआयु० वधगा जहण्णेण एगस०, उक्क० पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो ।  
दोमण० दोरचि० पंचणा० उदसणा० चदुसज० भयदु० तेजाक० वण्ण०  
४ अगु० उप० णिमिण० पंचंतराद्दगाण वधगा सच्चद्धा । अवधगा जह० एगसमओ,  
उक्क० अंतोमुहुत्त । सादामादाण वधगा अवधगा सच्चद्धा । दोण्ण वधगा सच्चद्धा,  
१० अवधगा णत्थि । इत्थि० पुरिस० णवुंसगवेदाण वधगा अवधगा सच्चद्धा । तिण्ण  
वेदाण वधगा मच्चद्धा । अवधगा जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्त । एवं दौयुगल

§३४१ 'द्वौम-नारकियोंके समान भग' है । विशेष यह है कि यहाँ एकेन्द्रिय प्रकृतिको भी  
जानकर कहना चाहिए ।

[ विशेष-नारको जीव मरणकर सही पचेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य या तियेच होते हैं,  
किन्तु देवो की उत्पत्ति एकेन्द्रियोंमे भी होती है । अत देशगति मे एकेन्द्रिय जातिके वधका भी  
उल्लेख है ।

§३४२ पचेन्द्रिय त्रस तथा इनके पर्याप्तकमे-साधारणसे वेदनीयके अवधकोंका जघन्य,  
उत्कृष्टकाल अतर्मुहूर्त है । चार आयुके वधकोंका जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टमे परयोपमका  
असत्प्रातवा भाग है । शेष भग सर्वकाल है ।

§३४३ तीन मनोयोग, तीन वचनयोगमे इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि वेदनीयके  
सामान्यसे अवधक नहीं है । चार आयुके वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट पन्थोपमका  
असत्प्रातवा भाग काल है । दो मन तथा दो वचनयोगमे-पाँच ज्ञानावरण, छह दर्श  
नावरण, ४ सच्चलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण  
तथा पाँच अतरायोंके वधकोंका सर्वकाल है । अवधकोंका जघन्यमे एक समय, उत्कृष्टसे  
अतर्मुहूर्त है । साता-असाताके वधनों अवधकोंका काल सर्वकाल है । दोनोंके वधकोंका सर्वकाल  
है । अवधक नहीं है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदके वधकों अवधकोंका सर्वकाल है । तीनों  
वेदोंके वधकोंका सर्वकाल है । अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त है ।

( १ ) 'जेरइरमु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादा होति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा । साण  
सम्मामिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओधं । -यट्ठ० फा० ३६ ।

साण-सम्मामिट्ठी केवचिर कालादा होति ? णाणाजीव पडुच्च जरणेण एगसमओ, उक्कस्सेण  
पचिदारमस्स असंखेज्जदिभागो । ( १६ ) । 'सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिर कालादा होति ? णाणाजीव पडुच्च  
अरण्णे' अंतोमुहुत्त उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । ( १७ ) । असंखदसम्मामिट्ठी केवचि  
कालादा होति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा । -यट्ठ० फा० १३ ।





युगलार्ण । दोश्रायु ओष । देवगदि० ४ तित्थय० वधगा जहणुक्कस्सेण अंतोमुहुत्त ।  
अनधगा सव्वद्धा । दोगदिअधगा अचधगा सव्वद्धा । तिण्ण गदीण वधगा सव्वद्धा ।  
अनधगा जह० एगसमओ । उक्क० सखेजममया । मिच्छत्तअधगा सव्वद्धा । अन  
धगा जह० एगस०, उक्क० पलिदोवमस्स असखेजदिभागो । थीणगिद्धि-तिथ  
५ अणताणुअधि० ४ ओरालि० वंधगा सव्वद्धा । अचंधगा जह० एगसमओ । उक्क०  
अतोमुहुत्त । एव सव्वरण णेदव्व ।

३४६, एवं कम्मइयका० । णवरि थीणगिद्धि-तिथ मिच्छ० अणताणु० ४ वधगा  
सव्वद्धा, अनधगा जह० एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असखेजदिभागो ।  
देवगदि० ४ तित्थयर वधगा जह० एगम० । उक्क० सखेजसमया । अनधगा  
१० सव्वद्धा । ओरालिय-बंधगा सव्वद्धा । अनधगा जह० एगसमओ । उक्कस्सेण  
सखेजसमया ।

३४७, वेउव्विण्णायजोगिस्स देवोष । वेउव्वियमिस्स० धुव्विगाण वधगा जहणुणेण  
अतोमुहुत्त । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेजदिभागो । अचधगा णरियि । थीणगि

चाहिये । देवगति ४, तीर्थकरके वधकोंका जघन्य, उत्कृष्ट काल अतमुहुत्त है ।<sup>१</sup> अनधकोंका सर्व  
काल है । दो गतिके वधकोंका अनधकोंका सवकाल है । तीन गतिके वधकोंका सर्वकाल है ।  
अनधकाका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सरयात समय है । मिथ्यात्वके वधकोंका सर्वकाल  
है ।<sup>२</sup> अनधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे परयोपमका असख्यातवा भाग है । स्त्यानगृद्धि  
त्रिक, अनतानुअधी ४ तथा औदारिक शरीरके वधकोंका सर्वकाल है । अचधकोंका जघन्य एक  
समय, उत्कृष्ट अतमुहुत्त है । इसी प्रकार सर्व प्रकृतियोंका जानना चाहिए ।

३४६ कर्माणाययोगियोमि—इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धि  
त्रिक, मिथ्यात्व, अनतानुअधी ४ के वधकोंका सर्वकाल है । अचधकोंका जघन्य एक समय,  
उत्कृष्ट आगलीका असरयातवा भाग है । देवगति ४, तीर्थकरके वधकोंका जघन्य एक समय,  
उत्कृष्ट सरयात समय है । अचधकोंका सर्वकाल है । औदारिक शरीरके वधकोंका सर्वकाल है ।  
अचधकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट सख्यात समय है ।

३४७ वैत्रिकिण्णाययोगियोमि—दुव्वोंके ओषवत्त जानना चाहिए । वैक्रियिकमिअ्र णाययोगि  
याम—धुव्व प्रकृतियोंके वधकोंका काल जघन्यसे अतमुहुत्त है । उत्कृष्टसे परयके असख्यातव

( १ ) असजदसम्मादिद्धी केअचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहणेण अतामुहुत्त  
उक्कस्सेण अतामुहुत्त । -पट्ख० का० १८९-९० । ( २ ) "साणसम्मादिद्धी केअचिर कालादो होति ?  
णाणाजीव पडुच्च जहणेण एगसमय उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेजदिभागो । -पट्ख० का०  
१८५-८६ । ( ३ ) साणसम्मादिद्धी असजदसम्मादिद्धी केअचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च  
जहणेण एगसमय उक्कस्सेण आवलियाए असखेजदिभागो । -पट्ख० का० २२०-२१ । ( ४ ) वेउव्वि  
यमिस्सकायवोगीसु मिच्छादिद्धी असजदसम्मादिद्धी केअचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहणेण  
अतामुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदानमस्स असखेजदिभागो । -पट्ख० का० २०१-२०२ ।

द्विदिगं मिच्छत्त अणंताणुपधि० ४ वंधगा अबधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । णरि मिच्छत्त-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ । दोवेदणीय-बंधगा अबधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । दोण्णं वधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अणधगा णत्थि । एव तिण्णं वेदाणं दोण्णं युगलार्णं दोगदि-दोजादि-छस्संठाण-दोआणुपुब्बि- ५ तसथावरादि-पंच-युगल-दोगोदाण च । ओरालि-अंगोवग-छस्संधडण-दोविहायगदि-दोसरार्णं वंधगा अबधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । तिथ्यरं-बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्त । अणधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§३४८. आहारका०-धुविगाणं वधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतो- १ मुहुत्त । अबंधगा णत्थि । सेसाणं वंधगा अणधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त ।

§३४९. आहारमि०-धुविगाणं वधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्त । अबंधगा

भाग है । अवधक नहीं हैं । स्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनतानुवधी चारके वंधकों अवधकोंका काल जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असरयातवें भाग है । 'विशेष यह है कि मिथ्यात्वके अवधकोंका जघन्य काल एक समय है । दोनों वेदनीयके वधकों अवधकोंका जघन्यसे काल एक समय, उत्कृष्टसे पल्यका असरयातवा भाग है । दोनोंके वधकोंका काल जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यका असरयातवा भाग है । अवधक नहीं है । तीनों वेदों, हास्यादि दो युगलों, २ गति, २ जाति, ६ सस्थान, दो आनुपूर्वा, त्रस-स्थावरादि पंचयुगल तथा दो गोरोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए । औदारिक अगोपाग, ६ सहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरोंके वधकों-अधधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असरयातवा भाग है । तीर्थंकरके वधकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त है । अवधकोंका जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असरयातवा भाग है ।

§३४८ आहारकाययोगियोंमे<sup>२</sup> ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त है । अवधक नहीं है । शेष प्रकृतियोंके वधकों अणधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त है ।

§३४९ आहारकमिश्रमे-<sup>३</sup> ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त है ।

( १ ) 'सातणसम्मादिद्वी केरचिर कालादो होति २ णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।'-पट्ख० का० २०५-२०६ ।

( २ ) 'आहारकायजोगीणु पमत्तसज्जा केरचिर कालादो होति २ णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त ।'-पट्ख० का० २०९-२१० ।

( ३ ) 'आहारमिस्सकायजोगीणु पमत्तसज्जा केरचिर कालादो होति २ णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त ।'-पट्ख० का० २१३-१४ ।

णत्थि । वेदनीय-वधगा-अवधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अतोमुहुच । दोण  
वधगा जहण्णुक्कस्सेण अतोमुहुच । अवधगा णत्थि । आयु० तित्थय० सादभंगो

§३५०. इत्थिवे०-पचणा० चदुदस० चदुसज० पचत० वधगा सच्चद्धा । अवधगा  
णत्थि । धीणगिद्धि० ३ मिच्छज-वारसक० आहारदुग-पग्घादुम्सामआदा-उज्जीव  
५ तित्थयराण वधगा अवधगा सच्चद्धा । णिदापचल ( ला )-भयदु० तेज्जाक० चण्ण०  
त्रगु० उय० णिमि० वधगा मच्चद्धा । अवधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्से  
अतोमुहुच । सादासाद वधगा अवधगा सच्चद्धा । दोणं वधगा सच्चद्धा । अवधगा  
णत्थि । एव तिण्णि-वेद-जस०-अजस० दोगोद च । हस्सरदि-अग्दि-रोग वधगा अवधगा  
सच्चद्धा । दोण युगलाण वधगा मच्चद्धा । अवधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्से  
१० अतोमुहुच । सेसण पत्तेणेण साधारणेण णि हस्सरदीण भगो । चदुआयुमाण वधगा  
पत्तेणेण जहण्णेण अतोमुहुच, उक्कस्सेण पलिदोमस्स असखेज्जदिभागो । अवधगा  
सच्चद्धा । साधारणेण चदुआयुमाण वधगा जहण्णेण अतोमुहुच, उक्कस्सेण पलिदो  
वमस्स असखेज्जदिभागो । अवधगा सच्चद्धा ।

अवधक नहीं है । वेदनीयके वधकों अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अतमुहूर्त है ।  
दोनोंके वधकोंका जघय तथा उत्कृष्टसे अतमुहूर्त है । अवधक नहीं है । आयु तथा तीर्थकरके  
साताके नमान भग है ।

§३५० स्त्रीवेदमे-<sup>१</sup> ५ ज्ञानापरण, ४ दर्शनावरण, ४ सम्पलन, ५ अतरायने वधकोंका सर्वकाल  
है । अवधक नहीं है । स्थानगुद्धिनि, मिध्यात्व, १२ कषय, आहारवद्विक, परघात, उच्छ्वास  
आतप, ज्योत तथा तीर्थकरके वधकों अवधकोंका सर्वकाल है ।<sup>२</sup> निद्रा-प्रचला, भय-जुगुप्सा  
तेजस-कामोण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणक वधकोंका सर्वकाल है । अवधकोंका  
जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अतमुहूर्त है ।<sup>३</sup> साता प्रसाता वेदनीयके वधकों अवधकोंका सर्वकाल  
है । दोनोंके वधकोंका सबकाल है । अवधक नहीं है । तीन वेद, यश नीति, अयश नीति तथा दो  
गोत्रोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । हात्य रति, अरति शोकके वधकों अवधकोंका सर्वकाल है ।  
दोनों युगलोंके वधकोंका सर्वकाल है । अवधकोंका जघयसे एक समय, उत्कृष्टसे अतमुहूर्त है ।  
दोष भ्रूतियोंमें प्रत्येक तथा सामान्यसे हास्य-रतिके समान भग । जानना चाहिए । चार आयुके  
वधकोंका प्रत्येकसे जघन्यकी अपेक्षा अतमुहूर्त काल है, उत्कृष्टसे पल्योपमका असरयातवा भाग  
है । अवधकोंका सबकाल है । सामान्यसे चार आयुके वधकोंका काल जघयसे अतमुहूर्त, उत्कृष्टसे  
पल्यका असरयातवा भाग है । अवधकोंका सर्वकाल है ।

( १ ) इत्थिवेदेसु मिच्छादिद्वी केचचिर कालादा ह्येति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।” -पट्ख०  
का० ०७ । ( २ ) असक्कस्साम्मादिद्वी केचचिर कालादो ह्येति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।” -पट्ख०  
का० २३२ । ( ३ ) चदुण उवसमा कवचिर कालादो ह्येति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय,  
उक्कस्सेण अतोमुहुच ।” -पट्ख० का० ०० २३ ।

§३५१. एवं पुरिमवेदस्त वि । एवं चैत्र णतुसगवेद-क्रोधादितिण्णं कसायाण ।  
णवरि तिरिक्खायुवधगा अवंधगा सच्चद्धा । साधारणेण च्दुआयुगाण वधगा अंधगा  
सच्चद्धा । एव चैव लोभे वि । णवरि पचणा० च्दुद० पचतराडगाण बंधगा सच्चद्धा ।  
अवधगा णरिय ।

३५२. अगदवेदेसु-सादस्त वधाबंधगा सच्चद्धा । सेसाण बंधगा जहण्णेण ५  
एगसमओ, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त । अवंधगा सच्चद्धा ।

§३५३. अकसाहगेसु-सादस्त बंधगा अवधगा सच्चद्धा । एवं केवलणा०  
केवलदंस० ।

§३५४. विभगे पविदिय-तिरिक्ख भगो । णवरि मिच्छत्त-अंधगा जहण्णेण एग-  
समओ, उक्कस्सेण पत्तिदोवमस्स असखेज्जदिभागो ।

१०

§३५५. आभि० सुद० ओधि० धुधिगाण वधगा सच्चद्धा । अवधगा जहण्णेण

§३५१ पुरुषवेदमे-इसी प्रकार जानना चाहिए । नपुसकवेदमे भी इसी प्रकार है । क्रोव-मान-  
मायाकपायमे भी इसी प्रकार है । विशेष यह है कि तिर्यंचआयुके वधकों अवधकोंका सर्वकाल  
है । सामान्यसे चार आयुके वधको अवधकोंका मरकाल है । लोभकपायमे-इसी प्रकार जानना  
चाहिए । विशेष यह है कि ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनानरण तथा ५ अंतरायोंके वधकोंका सर्वकाल है ।  
अवधक नहीं है ।

§३५२ अपगत वेदमे-मातावेदनायके वधकों अवधकोंका सर्वकाल है । शेष प्रकृतियोंके  
वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त है । अवधकोंका सर्वकाल है ।

§३५३ अकपायियोंमे-साता वेदनीयके वधकों अवधकोंका सर्वकाल है । केवलज्ञान, वेवल-  
दर्शनमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§३५४ विभगज्ञानमे-पचेन्द्रिय तिर्यंचके समान भग जानना चाहिए । विशेष यह है कि  
मिध्यात्वके अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे परयोपमका असरयातया भाग है ।

§३५५ आभिनिरोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमे-त्रुष प्रकृतियोंके वधकोंका सर्व-

( १ ) 'विभगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केचरि कालादो हंति ? णाणाजीव पडुच्च सच्चद्धा ।  
-पट्ठ० का० २६२ । सासणसम्मादिट्ठी ओघ ( २६५ ) णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ,  
उक्कस्सेण पत्तिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । ५६ ।

( २ ) आभिनिरोधियाणि सुदणाणि-ओधिणाणीसु असज्जदसम्मादिट्ठियट्ठि जाव रीणरूपाय  
पीदराग छदुमत्थासि आप । -सू० २६६ । 'असज्जदसम्मादिट्ठी केचरि कालादो हंति ? णाणाजीव पडुच्च  
सच्चद्धा । सज्जदामज्जदा सच्चद्धा । पमत्त अपमत्तसज्जदा सच्चद्धा । सच्चद्ध उअममा णाणा  
जीव पडुच्च जहण्णेण एगसमथ उक्कस्सेण अतोमुहुत्त । च्दुदुह्द एगगा अनोसिनेल्ली जहण्णेण  
अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त । -सू० १३, १६, १९, २०, २३, २६, २७ ।

एगसमओ, उक्कस्सेण अतोमुहुच । अहुकसा० आहारदु० षजरिसभ० तित्थप०  
वधानवगा सच्चद्धा । सेसाण दोण्ण मणजोगीण भगो । णरि मणुसायु० मणुमिभंगो ।  
दयायु० ओष ।

१३५६. एव ओषिटंस० । एवं चैव मणपज्व० सामा० छेदो० । णरि देवायु०  
५ मणुमिभंगो । सज्जा मणुसिभंगो ।

१३५७. परिहार धुविगाण वधगा मच्चद्धा । अणधगा णत्थि । दोवेदणीयार्ण  
वधानधगा सच्चद्धा । दोण्ण पगदोण वधगा सच्चद्धा । अणधगा णत्थि । देवायु०  
मणुसिभंगो । सेस वेदणीयभंगो ।

१३५८. एव सज्जासज्जादाणं । देवायु० ओष । सुहुम० सच्चण वधगा जहण्णेण  
१० एगसमओ, उक्कस्सेण अतोमुहुच । अवधगा णत्थि ।

१३५९. तेऊ देवोय । एव पम्माए वि । सुक्काए धुविगाण वधानधगा सच्चद्धा ।

काल है। अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टमे अवसुहूर्त है। आठ कपाय, आहारकदिक, वन्नवृषमसहनन, तीर्थकरके वधको अवधकोंका सर्वकाल है। शेष प्रकृतियोंका दो मनोयोगियोंके समान भग है। अर्थात् वधकोंका सर्वकाल है। अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टमे अवसुहूर्त है। विशेष यह है कि मनुष्यायुका मनुष्यनिष्ठीके समान भग है। देवायुके विषयमे श्रोत्रनत् जानना चाहिए।

१३५६ इसी प्रकार अवधिदर्शनेमे जानना चाहिए। मन पर्यवधान, सामायिक, छेदोपस्थापना, सयममे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि देवायुके वधकामे मनुष्यनीका भग जानना चाहिए। सयतौम मनुष्यनीका भग है।

१३५७ परिहारशिशुद्विसयममे-धुवप्रकृतियोंके वधकोंका सर्वकाल है। अणधक नहीं है। दोनों वेदनीयके वधका अणधकोंका सर्वकाल है। दोनों प्रकृतियोंके वधकोंका सर्वकाल है। अणधक नहीं है। देवायुका मनुष्यनीके समान भग है। शेष प्रकृतियोंके वेदनायका भग है।

१३५८ सयतासयतौम इमी प्रकार जानना चाहिए। देवायुका श्रोत्रनत् भग जानना चाहिए। सूक्ष्मसापरायसयममे सर्व प्रकृतियोंके वधकोंका जघन्यकाल एक समय, उत्कृष्टमे अवसुहूर्त है। अणधक नहीं है।

१३५९ 'तेजोश्रयामे-देवोंके ओष समान है। पद्मश्रयामे-इसी प्रकार है। शकुलेश्रयामे ध्रुवप्रकृतियाके वधकों अणधकोंका सर्वकाल है। शेष प्रकृतियोंका मनुष्यपर्याप्तके समा भग है।

(१) सुक्कापरराइयमुदिसज्जेतु सुहुमसापराइयमुदिसज्जा उवयमा प्पमा ओष । -२७२ । (२) ते लमिय पम्माएत्थिएतु मिक्काएत्थि अणधवधम्मालिद्धी सच्चद्धा" -पद७० का० २९१ । 'धास यम्मालिद्धी धाय ।" -२९४ । "यम्मामिक्काएत्थि ओष । -२९५ । "वधदासज्जासज्जासज्जासज्जा सच्चद्धा । -२९६ । (३) सुक्काएत्थिएतु चट्ठणुसयमा चट्ठणु सज्जासज्जासज्जासज्जा ओष । -३०८

सेस मणुस-पञ्जत्तभगो ।

§३६०. सम्मादि० दोआयु ओधिभगो । सेसं सच्चद्धा । एव रडग-सम्मा० । दोआयु सुक्कभगो । वेदने०—धुविगाण उधा ( वधगा ) सच्चद्धा, अबधगा णत्थि । सेस ओधिभगो । णवरि साधारणेण अंधगा णत्थि ।

§३६१. उवसमसम्मा०—धुविगाण वधगा जहण्णेण अतोमुहुच । उक्कस्सेण पलि- ५  
दोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अनधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुच ।  
जपच्चस्स्राणा० ४ वधगा अंधगा जहण्णेण अंतोमुहुच, उक्कस्सेण पलिदोमस्स  
अमखेज्जदिभागो । पच्चस्स्राणा० ४ वधगा जहण्णेण अतोमुहुच, उक्कस्सेण पलिदो-  
वमस्स असंखेज्जदिभागो । अबधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुच । सादासाद—बंधगा-  
अनधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । दोण्णं १०  
वेदणीयाण बंधगा जहण्णेण अतोमुहुच, उक्कस्सेण पलिदोमस्स असंखेज्जदिभागो ।  
अनधगा णत्थि । मणुमगदि-पचग वधगा अनधगा जहण्णेण अंतोमुहुच । उक्कस्सेण  
पलिदोमस्स असंखेज्जदिभागो । देवगदि० ४ वधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण  
पलिदोमस्स असंखेज्जदिभागो । एव अनधा (अंधगा) । णवरि जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§३६० सन्यग्दृष्टियोंमें—दो आयुके वधकों अवधकोंका ओषके समान भग है । शेष प्रकृतियोंमें सर्गकाल भग है । क्षायिकसम्यन्त्रित्वियोंमें—इसी प्रकार है । दो आयुका शुक्लेश्याके समान भग है । वेदकसम्यन्त्रित्वियोंमें—द्रुवप्रकृतियोंके वधकोंका सर्वकाल है । अनधक नहीं है । शेष प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान भग है । विशेष यह है कि सामान्यसे अवधक नहीं है ।

§३६१ 'उपशमसम्यन्त्रित्वियोंमें—द्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका काल जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पर्यके असख्यातवें भाग है । अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट से अतर्मुहूर्त है ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के वधको अनधकोंका जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पर्योपमके असम्यातवें भाग है । प्रत्याख्यानावरण ४ के वधकोंका जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पर्योपमका असख्यातवा भाग है । अनधकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अतर्मुहूर्त है । साता असाताके वधकों अनधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पर्योपमका असख्यातवा भाग जानना चाहिए । दोनों वेदनीयोंके वधकोंका जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पर्योपमका असख्यातवा भाग है । अवधक नहीं है । मनुष्यगतिपत्रके वधकों अनधकोंका जघन्यसे अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पर्योपमका असख्यातवा भाग है । देवगति ४ के वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पर्योपमका

( १ ) "उवसमसम्मादिद्वीसु असज्जदसम्मादिद्वी सज्जदसज्जदा केचिर कालादो होंति १ णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतामुहुच, उक्कस्सेण पलिदोमस्स असंखेज्जदिभागो ।" —पट्ट० का० सू० ३१९-२० ।  
"पमत्तसज्जदप्पट्टि जान उवसत्तसज्जद वीदरागडुमयात्ति केचिर कालादो होंति १ णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण अतामुहुच ।" —३०३-२४ ।

आहारदुग्ध वधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त । अनधगा जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एव तिन्ययरस्स । च्चदुणोक्क सायाण वधगा अवधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागो । दोण्ण युगल्लान वधगा जहण्णेण अतोमुहुत्त । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे ज्जदिभागो । अनधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त । एवं धियादि तिण्णिपुगल्लान ।

१३६२. सासणे-धुनिगाण वधगा जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदि भागो । अनधगा पत्थि । एव वेदणीय पत्तेणेण वधगा अवधगा । साधारणेण वधगा अवधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । १० अनधगा पत्थि । एव सन्नाण । दोआयु० वधावधगा जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो । मणुसायु० देवमगो । अनधगा जह० एगस० उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो । एव साधारणेण वि ।

१३६३. सम्पामि० धुनिगाण वधगा जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्क० पलिदो०

असंख्यातना भाग है । इसी प्रकार अवधकोंका जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ जघन्य अवसुहूर्त है । आहारकद्विकके वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अतमुहूर्त है । अवधकोंका जघन्यसे अतमुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातना भाग है । तीर्थंकरका इसी प्रकार जानना चाहिए । चार नोवपायान वधकों अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातना भाग है । दोनों युगल्लान वधकोंका जघन्यसे अतमुहूर्त है । उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातना भाग है । अनधकोंका जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे अतमुहूर्त है । स्थिरादि तीन युगल्लाने इसी प्रकार जानना चाहिए ।

१३६२ सासादनने—'धुव प्रकृतियोंके वधनाना जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातना भाग है । अनधक नहीं है । वेदनीयने वधको अनधकोंमें प्रत्येकसे इसी प्रकार है । सामायसे वधना अनधनोंका जघन्यसे एक समय है, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातना भाग है । अवधक नहीं है । शेष प्रकृतियाम इसी प्रकार जानना चाहिए । दो आयुके वधकों अवधकोंका जघन्यसे अतमुहूर्त है । उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातना भाग है । मनुष्यायुके वधकोंमें देवोंके समान भग है । अनधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातना भाग है । इसी प्रकार सामायसे भी जानना चाहिए ।

१३६३ सम्यक्त्वमिध्यात्मने—'धुव प्रकृतियोंके वधकोंका वाउ जघन्यसे अतमुहूर्त, उत्कृष्ट

(१) "सालयसम्मादिदी केरिचि कालदा होति १ गागाजीव पडुव्व जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । —पट्ट० का० ५६ ।

(२) "सम्पामिच्छादिदी केरिचि कालदा होति १ गागाजीव पडुव्व जहण्णेण अतमुहूर्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।"—११० ।

असखेज्जदिभागो । अवधगा णत्थि । सादासादाण वधगा० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असखेज्जदिभागो । दोण्ण वधगा जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदो-  
वमस्स असखेज्जदिभागो । अवधगा णत्थि । एव परियत्तमाणियाण सव्वाण । मणुस-  
गदिपचग देवगदि० ४ वधानधगा जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स  
असखेज्जदिभागो । एव साधारणेण वि । अवधगा णत्थि । ५

§३६४ अणाहारे धुविगाण वधगा अवधगा सव्वद्धा । देवगदिपंचग वंधगा  
जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण सखेज्जा समया । अवधगा सव्वद्धा । सेसाण वधा-  
वधगा सव्वद्धा ।

एव कालं समत्त ।

से पल्योपमका असख्यातवा भाग है । अवधक नहीं है । साता-असाताके वधकोंका जघन्य  
से एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असख्यातवा भाग है । दोनोके वधकोंका जघन्यसे अतर्मुहूर्त  
है । उत्कृष्टसे पल्योपमका असख्यातवा भाग है । अवधक नहीं है । परिवर्तमान सर्वप्रकृतियों  
में इस प्रकार जानना चाहिए । मनुष्यगतिपचक, देवगति ४ के वधकों अवधकोंका जघन्यसे  
अतर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असख्यातवा भाग है । इस प्रकार सामान्यसे भी भग जानना  
चाहिए । अवधक नहीं है ।

§३६४ अनाहारकोंमें—श्रुव प्रकृतियोंके वधकों अवधकोंका सर्वकाल है । देवगतिपचकके  
वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सख्यात समय है । अवधकोंका सर्वकाल है । शेष  
प्रकृतियोंके वधकों अवधकोंका सर्वकाल है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा कालरूपणा समाप्त हुई ।



## [ अतराणुगम-परूवणा ]

§३६५. अतराणुगमेण दुविहो णिदेसो, ओघेण आदेसेण य ।

§३६६. तत्थ ओघेण-पचणा० णचदस० मिच्छत्त० सोलमक० मपदु० पाहारुं  
तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ आदाउज्जो० णिमिण तित्थयर पंचतराइमाण वच-अ  
धगा णत्थि अतर णिरतर । तिण्णि आयु० धघगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कम्मेण च  
५ व्हीस मुहुत्त । जघघगा णत्थि । तिरिक्खायुग्घानधगा णत्थि अतर । चदुआयुक्क  
जघघगा णत्थि अतर । सेसविगप्पाण वधगा अवधगा णत्थि अतर । एव काजोगि (१) ।  
§३६७. ओघमगो काजोगि-ओरालियकाजोगि-भवसिद्धि-आहारगत्ति । गवरी  
मवसिद्धि० ।

§३६८. आदेसेण णेरइगेसु-दो-आयुवधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कम्मेण  
१० चउव्हीस मुहुत्त अडदालीस मुहुत्त, पम्प, मास, वेमास, चत्तारि मास, छम्मास,

## [ अतरानुगम ]

[ अतरशब्द छिद्र, मध्य, विरह आदि अनेक अर्थोंका द्योतक है । यहाँ अतर शब्द  
विरहकालका द्योतन है । एक वस्तु अवस्थाविशेषमें कुछ समय रहकर कुछ फलकं लिये  
अवस्थान्तर रूप हो गयी और बादमें यह उस अवस्थाविशेषकी पुन प्राप्त हो गयी । इस मध्यवर्ती  
स्थानको अतर कहते हैं । यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा वर्णन किया गया है । ]

§३६५ यहाँ ओघ तथा आदेशकी अपेक्षा अतरका दो प्रकारसे निर्देश करते हैं ।

§३६६ ओघसे ५ क्षानापरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कपाय, भय, जुगुप्सा, आहारक  
द्विक, वैजम कामाण, चर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अतराविके  
वधका अवधकोंका अतर नहीं है, निरतर बंध है ।

नरक-मनुष्य देवायुके वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ०४ मुहूर्त अतर है ।  
अवधक नहीं है । तिर्यंचायुके वधकों अवधकोंका अतर नहीं है । चार आयुके वधकों  
अवधकोंका अतर नहीं है । दोष प्रकृतियोंके वधकों अवधकोंका अतर नहीं है ।

§३६७ काययोगी, औदारिक काययोगी, भव्यसिद्धिक आहारपर्यन्त ओघकी तरह अतर  
जानना चाहिए । भव्यसिद्धिकोमि विशेष जानना चाहिए ।

§३६८ आदेशसे-नारकियोंमें मनुष्य तिर्यंचायुके वधकोंका अतर जघन्यसे एक समय,  
उत्कृष्टसे ०४ मुहूर्त, ४८ मुहूर्त, पक्ष, मास, दो मास, चार मास, छह मास तथा बारह मास अतर

( १ ) अन्तगन्धद्वयानेकार्पणुत्तेल्लद्रमध्यविरदेध्वन्यतमप्रदणम् । -त० श० पृ० ३० ।  
अन्तगन्धद्वयानेकार्पणुत्तेल्लद्रमध्यविरदेध्वन्यतमप्रदणम् । -त० श० पृ० ३० ।  
अतरा पृ० ३ ।

वारसमास । एव सव्यणोरङ्गण । सेस पगदीण णत्थि अतर ।

§३६९. तिरिक्खेसु-आयु० ओषं । सेस णत्थि अंतर । एण एइदिय-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० त्तेसि चैव वादरअपज्ज० सव्वसुहुम-सव्वणणफ्फदि-निगोद-वादर वणणफ्फदि-पत्तेय तस्सेण अपज्जत्त-मदि० सुद० असज्ज० तिण्णिले० अब्भवसिद्धि-मिच्छादिद्धि याव असण्णित्ति । एदेसिं च किंचि विसेस ओघादो साघेदूण णेदच्च । ५ पंचिदिय तिरिक्ख० ४ तिण्णि आयु० ओष । तिरिक्खायु-अधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अतोमुहुत्त । पज्जत्तजोणिणीसु चउव्वीस मुहुत्त । चदु-आयु-तिरिक्खायुभगो । पंचिदिय-तिरिक्ख-अपज्ज० तिरिक्खायु० जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अतोमुहुत्त । मणुसायु ओष । दो-आयु० तिरिक्खायुभगो । सेस णत्थि अतर । एव पंचिदिय-तस-अपज्ज० विगालिंदिय-वादर पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वादर-वणणफ्फदि-पत्तेय- १० पज्जत्ताण । णगरि तेउ० आउ चउव्वीस मुहुत्त ।

§३७० मणुसेसु चदु-आयुअधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण चउव्वीस मुहुत्त । दो वेदणी० अअधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण छम्मास० । मणुसिणीसु

है । इसी प्रकार सर्व नारकियोंमें जानना चाहिए । जेप प्रकृतियोंका अतर नहीं है, कारण उनका निरतर बंध होता है ।

§३६९ तिर्यंचोमै—आयुके बंधकोंका अतर श्लोचवत् जानना चाहिए । जेप प्रकृतियोंके बंधकोंका अतर नहीं है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, पृथ्वी, अप, तेज, वायु तथा इनके वादर अपर्याप्तक भेदोंमें, सपूर्ण सूक्ष्म, सर्व वनस्पतिनिगोद, वादरवनस्पति—प्रत्येक तथा उनके अपर्याप्तकोंमें एव मत्स्यज्ञान, श्रुताज्ञान, असयम, तीन लोरया, अभव्यसिद्धिक, मिश्यादृष्टिसे असङ्गी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । इनमें पायी जाने वाली विशेषताओंको ओष-वर्णनसे जानकर निकालना चाहिए ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यंचअपर्याप्त तथा पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीमें—तीन आयुका ओषवत् है । तिर्यंचायुके बंधकोंका अतर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अतमुहूर्त है । पर्याप्तक योनिमती तिर्यंचोम अतर २४ मुहूर्त है । चार आयुके बंधकोंमें तिर्यंचायुके समान भग है ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तमें तिर्यंचायुका अतर जघन्यमें एक समय और उत्कृष्टसे अतमुहूर्त है । मनुष्यायुका ओषवत् अतर है । दो आयुके बंधकोंका तिर्यंचायुके समान भग है । श्लेष प्रकृतियोंमें अतर नहीं है ।

इसी प्रकार पचेन्द्रिय-अस-अपर्याप्तक, विकलेन्द्रिय, वादर पृथ्वी, वादर अप, वादर तेज, वादर वायु, वादर वनस्पति प्रत्येक पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए । विशेष, तेजकायमें आयुका २४ मुहूर्त अतर है ।

§३७० मनुष्यगतिमें—चार आयुके बंधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अतर है । दो वेदनीयके अवधनोंका जघन्यसे अतर एक समय, उत्कृष्टसे छह माह हैं ।

वासपुधत्त । सेस णत्थि अतर । मणुम-अपज्ज० सञ्जाण जहण्णेण एगसमजो । उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्म असखेज्जदिभागो ।

१३७१ दराण-णिरयभगो । णरि सव्वहे पल्लिदोवमस्त सखेज्जदिभागो । पवि दियत्तस० २ तिण्णि आयु-वधगा जहण्णेण एगम० । उक्कस्सेण चउच्चीसं मुहुत्त । तिरि ५ करायु रंधगा जहण्णेण एगम० । उक्कस्सेण अतोमुहुत्त । पज्जत्ते चउच्चीसं मुहुत्त । सेस मणुसोष । तिण्णि-मण० तिण्णि-वचि०-नदुआयु० वधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण चउच्चीसं मुहुत्त । सेस णत्थि अतर ।

१३७२ दोमण० दोवचि० चदुआयु० तिण्णि मणभगो । पचणा० छट्ठसणा० चदुमन० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमि० पचत्ताइगाण वधगा णत्थि अतर । अवधगा

[ विशेष-साता-अमातायुगलके अवधक धयोगेयली होंगे । उनका गाना जीवोंकी अपेक्षा जपन्य अतर एक समय है, उत्कृष्ट अतर छह मास है । ]

मनुष्यनियोगे-दोनों वेदनीयोंके अवधकोंका अतर वर्षपृथक्त्व है । शेषका अतर नहीं है । मनुष्य अपयात्तकोम-सर्व प्रकृतियोंका जघयसे अतर एक समय, उत्कृष्टसे पत्थोपमका असव्यातता भाग है ।

१३७१ देवोंके-नरकके ममान भग है । विशेष इतना है कि सर्वोर्मसिद्धिसे पत्थोपमके सरवातवें भाग प्रमाण अतर है ।

पचेन्द्रिय-पर्याप्त, प्रस पर्याप्तकोम-तीन आयुके वधकोंका अतर जपन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त है । तिर्यचायुके वधकोंका जघयसे एक समय, उत्कृष्टसे अतमुहूर्त अतर जानना चाहिए । पर्याप्तकोम २४ मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंमें मनुष्योंके ओधयत्त जानना चाहिए ।

तीन मनोयोगी, तीन रचनयोगी-१ आयुका जघयसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अतर है । शेष प्रकृतियोंमें अतर नहीं है ।

१३७२ दो मनयोगी, दो वचनयोगी-४ आयुके अतरका तीन मनयोगीके ममान भग है । अर्थात् जघयसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त है । पाच ज्ञानावरण, ६ दर्शानावरण, ४ सब्बलन, तेजस-कार्माण, वण ४, अगुसुल्लयु, उपधात, निर्माण तथा ५ अतरायोंके वधकोंका अतर नहीं है ।

( १ ) चदुह्द स्वराग अजोमिकेउलीणमतर केवचिर काळादा हादि ? णाणाजीव पटुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण छम्मात्त ।" -पटुच्च० अतरा० १६, १७ । 'उत्कृष्टेन पयसा । -सि० १, ८ ।

( २ ) मणुव मणुवरा वा-मणुवित्तिमु चदुह्दमुत्तसमगाणमतर केवचिर काळादा हादि ? णाणाजीव पटुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त ।" -७०, ७१ । मणु-अण्णत्ताणमतर केवचिर काळादा हादि ? णाणाजीव पटुच्च जहण्णेण एगसमय ।" -७८ । किमिद मेदस्स एम्मइत्तस्स रात्तिस अत हादि ? एत्थो सहावो एदस्स । ण च सहावे शुचिवादस्स पत्तेता आत्थमिण्णविसयादा ।" -४० टी अ- ५६ । उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्त अतवे ज्जदिभागो ।" -७८७ ।

जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण छम्भासं । सेस पत्तेगेण साधारणेण य वधगा णत्थि अतर । अग्रधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण छम्भास । णवरि थीणगिद्धित्तिग मिच्छत्त-वारमक० दोअगो० छस्सघ० परघादुस्मास आहारदुग आदाउजोव दो विहाय० दोसर वधगा अग्रधगा णत्थि अतरं ।

१३७३. एव चक्रु० अचक्रु० सण्णि ति । णवरि अचक्रुदस० आयु० ओघ । ५ ओराल्लियमिस्म०-धुग्गिण वधगा णत्थि अतर । अग्रधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण वासपुधत्त । धिणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-अणताणुधधि० ४ ओराल्लि० वधगा णत्थि अतरं । अग्रधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण मासपुधत्त । दोआपु० छस्सघ० दोविहाय० दोसर० वधा-अग्रधगा णत्थि अतरं । णवरि मणुसायु ओघ । तित्थयर० वधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्त । अग्रधगा णत्थि अतर । सेसाण पत्तेगेण साधारणेण य ?

अग्रधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह मास अतर है । शेषके वधकोंका सामान्य तथा प्रत्येक रूपसे अतर नहीं है । अग्रधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ६ माह अतर है । विशेष यह है कि स्थानगृद्धित्तिक, मिथ्यात्व, १२ कपाय, दो अगोपाय, ६ सहनन, परघात, उच्छ्वास, आहारकट्टिक, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, दो स्वरोंके वधकों अवधकोंका अतर नहीं है ।

१३७३ इसी प्रकार चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शनसे सही पर्यन्त जानना चाहिए । विशेष यह है कि अचक्षुदर्शनमें आशुका ओषधत् अतर है ।

औदारिक मिश्रकाययोगमें—ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंका अतर नहीं है । अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टमें वर्षप्रथक्त्व अतर है ।<sup>१</sup>

[ विशेष—इस योगमें ध्रुव प्रकृतियोंके अग्रधक सयोगकेवली होंगे । वहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अतर एक समय है और उत्कृष्ट अतर वर्षप्रथक्त्व है । कारण, कपाट समुद्रात रहित केवली जघन्यसे एक समय तथा उत्कृष्टसे वर्षप्रथक्त्व पर्यन्त होते हैं ।—व० टी० अन्तरा० पृ० ५१ ]

स्थानगृद्धित्तिक, मिथ्यात्व, अनतानुग्रही ५ तथा औदारिक शरीरके वधकोंका अतर नहीं है । अग्रधकोंका अतर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासप्रथक्त्व अतर है । दो आयु, ६ सहनन और २ विहायोगति, २ स्वरके वधकों अवधकोंका अतर नहीं है । विशेष यह है कि मनुष्यायुके निषयमें आधवत्त जाना ।<sup>२</sup> तीर्थकरके वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षप्रथक्त्व अतर है । अग्रधकोंका अतर नहीं है ।

[ विशेष—इस योगमें तीर्थकर प्रकृतिके वधक चतुर्थगुणस्थानवर्ता जीव होंगे । उनका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षप्रथक्त्व अतर कहा है । ]

( १ ) 'सजोगिकेवलीगमतर केवचिर कालादा होदि ? णाणाजीव पइच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त ।'—पट्ट० अतरा० १६६-६७ ।

( २ ) 'असंजरसम्मादिहीगमतर केवचिर कालादा होदि ? णाणाजीव पइच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त ।'—१६३ ६४ ।

णत्थि अतर । अवधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्त ।

§३७४. वेउच्चियका०-द्वीध । वेउच्चियमिस्स धुग्गिमाण वधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वारम मुहुत्त । अवधगा णत्थि अतर । धिणगिदि० ३ मिच्छत्त-अणतापु व० ४ अवधगा, तित्थय० वधगा ओरालियमिस्सभगो । मंसाण वधावधगा जहण्णेण ५ एगस० । उक्क० वारसमुहुत्त । णवरि एडटिय० ३ वउच्चोस मुहुत्त ।

§३७५ आहार० आहारमिस्स० धुग्गिमाण वधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्त । अवधगा णत्थि अतर । सेमाण वधावधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण वामपुधत्त ।

§३७६ कम्महा कायो ओरालियमिस्स भगो ।

१० §३७७ इत्थिवेदे-धुग्गिमाण वधगा णत्थि अतर । अवधगा णत्थि । णिदा-पचला भयदु० तैजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ उप० णिमिण वधगा णत्थि अतर । अवधगा

शेष प्रकृतियोंके वधकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे अतर नहीं है । अवधका जघ-दसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अतर है ।

§३७४ वैक्रियिण काययोगमे—द्वीधके ओपवत् जानना चाहिए । वैक्रियिण मिश्रकाययोगमे धुध प्रकृतियोंके वधकोंका जघ-य अतर एक समय, उत्कृष्ट १२ मुहुत्त अतर है । अवधकोंका अतर नहीं है । स्थानवृद्धिप्रिक, मिश्र्यात्व, अनतानुधधी ४ धे अवधकाका तथा तीर्थवरके वधकोंका औदारिक मिश्रकाय योगके समान भग जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंके वधको अवधकोंका जघन्य अतर एक समय, उत्कृष्ट १० मुहुत्त अतर है । विशेष यह है कि एकत्रिष प्रिकका अतर ०४ मुहुत्त जानना चाहिए ।

§३७५ आहारक तथा आहारक मिश्रकाययोगमे—धुध प्रकृतियोंके वधकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट वषपृथक्त्व अतर है । अवधकोमे अतर नहीं है । शेष प्रकृतियोंके वधको अवधकोंका जघ-व एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अतर है ।

§३७६ कार्माणकाययोगमे—औदारिक मिश्रकाययोगके समान भग जानना चाहिए ।

§३७७ स्त्रीवेदे—धुध प्रकृतियोंके वधकोंका अतर नहीं है । इनके अवधक नहीं हैं । निद्रा प्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, उपपात, निर्माणके वधनोंका अतर नहीं

( १ ) वेउच्चियमिस्सकायजागीसु मिच्छादिद्वीणमतर केवचिर कालादा होदि । णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वारसमुहुत्त ।” —पट्ट० अतरा० १७०-१७१ ।

( २ ) आहारकायजागीसु आहारमिस्सकायजागीसु पमत्तज्जाणमतर केवचिर कालादा हादि । णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त ।” —१७४-१७५ ।

( ३ ) इत्थिवेदेसु दाहमुक्कामाणमतर केवचिर कालादा होदि । णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय ।” —पट्ट० अतरा० १७७ ।

जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्त अतरं । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त वाग्गसकमा०  
दोअगो० उस्संघ० आहारदु० परघादुस्मा० आदाउज्जोव-दोविहाय० दोसर० बधगा०  
णत्थि अतरं । अमंघगा णत्थि अतरं । एव वेदणीय-तिण्णिवेद-जम० अज्जस० तित्थय०  
दोगोदाण । सेमाण पत्तेणेण बधानधगा णत्थि अतर । साधारणेण बधानधगा णत्थि  
अतर । अमंघगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्त अतर ।

§३७८. एव पुरिमवेदं णवुसगवेदं । णवरि पुरिसे य हि वासपुधत्त, तं हि वास  
सादिरेय । इत्थि० पुरिस० चदुआयु० पच्चिदिय-यज्जत्तभगो । णवुसगे ओष ।

§३७९. कोधादिस्सु तिसु पुरिमभगो । णवरि तिरिक्खायु ओष । एव लोमे,  
णवरि छम्मास ।

है ।<sup>१</sup> अवधकोंका जघचसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अतर है । स्थानगृह्णित्तिक,  
मिथ्यात्व, बारह कपाय, दो अगोपाग, ६ सहनन, आहारकट्टिक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत,  
० त्रिहायोगति, ० स्वरके बधकोंका अतर नहीं है । अवधकोंका भी अतर नहीं है । इसी प्रकार  
वेदनीय, ३ वेद, यश कीर्ति, अयश कीर्ति, तीर्थंकर तथा ० गोत्रका जानना । गोप प्रकृतियोंके बधकों  
अवधकोंका प्रत्येकसे अतर नहीं है । सामान्यसे भी इनका अतर नहीं है । अवधकोंका जघन्यसे  
एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अतर है ।

§३७८ पुरुषवेदं नपुसकवेदमे इस प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि पुरुषवेदमे<sup>२</sup>  
वर्ष-पृथक्त्वके स्थानमें साधिकवर्ष जानना चाहिए ।

[ विशेष-पुरुषवेदके द्वारा अपूर्वकरण क्षपक गुणस्थानको प्राप्त हुए सभी जीव ऊपरके  
गुणस्थानोंको चले गये, अत अपूर्वकरण गुणस्थान अतर युक्त हो गये । पुन ६ मास व्यतीत  
होनेपर सभी जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणी पर आरूढ हो गये । पुन ४, ५ मासका अतर  
करके नपुसकवेदके उदयसे कुछ जीव क्षपकश्रेणी पर चढे । पुन १, २ मासका अतर कर कुछ  
जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणी पर चढे । इस प्रकार सत्यात वार स्त्रीवेद और नपुसकवेदके  
उदयसे ही क्षपक श्रेणीपर आरोहण करा करके पश्चात् पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी चढने  
पर साधिक वर्ष प्रमाण अतर हो जाता है । क्योंकि निरतर ६ मासके अतरसे अधिक अतरका  
होना असंभव है । इसी प्रकार 'पुरुषवेदी' अनित्यत्तिकरण क्षपकका भी अतर जानना चाहिए ।  
द्विती ही सूत्र पौथियोंमें पुरुषवेदका उत्कृष्ट अतर ६ मास पाया जाता है । ]

स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा ४ आयुके बधकों अवधकोंमें पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान भग जानना  
चाहिए । नपुसकवेदमे-ओषयत्त जानना चाहिए ।

§३७९ क्रोध-मान-मायाकपायमे-पुरुषवेदके समान भग है । विशेष इतना है कि तिर्यञ्चायुके  
बधकों अवधकोंका अतर ओषयत्त जानना चाहिए । लोभकपायमे-दूसी प्रकार समझना चाहिए ।  
विशेष, यहा अतर छह मास जानना चाहिए ।

( १ ) "गाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त ।" -पट्टर० अतरा० १२, १३ ।

( २ ) 'पुरिस वेदएसु दोष्ख रावाणमतर केवचिर मलादा होदि २ गाणाजीव पडुच्च जहण्णेण  
एगसमय उक्कस्सेण वास सादिरेय । -पट्टर० अतरा० १९३, २०४, २०५ ।

२५४  
पत्थिः  
उक्त्स  
व० ४  
एगस

वाम्पृ  
वाम

य

§३८० अनगदवेदंसु मादवघाजवघा पत्थि अत्र। षे १५  
एगस०, उक्त्समेण छम्मा। उववघा पत्थि अत्र।  
§३८१ अकसाडगेसु साद-वघा अवघा पत्थि अत्र। एव षे १५  
पचिदिय-तिरिक्त्स-पज्जत्तभगो।

§३८२. आमि० सुट० ओधि० दो आयु० वघा जहण्णेण एग,  
मासपृथत्त अत्र। सेसाण दो-मणमंगो। ओधिणा० वासपृथत्त।  
§३८३ एव मणपज्जव० ओधिद०। णवरि मणपज्जव० देवापु० १५  
§३८४ एवं परिहारे सजदु० ( ? ) त चेव, णवरि मास-पृथत्त। ए  
छोप०। मज्जामजदा० सुट्टमस० सच्चाण वघा जहण्णेण एगस०।  
छम्मा अत्र। अनघा पत्थि। यथाक्साद०-सादरवघा पत्थि अत्र।  
जराणो एगस० उक्त्समेण छम्मास० ( स )।

§३८० अपगतवदम-साताके वधको अवधको अत्र नहीं है। शेष प्रकृतिक।  
अपगतवदम एक समय, उत्कृष्टसे छद् माह अत्र है। अवधकोका अत्र नहीं है।  
§३८१ अकसायियोम-माताके वधको अवधको अत्र नहीं है। केवलमात्र,  
इहा प्रकर जानना। विभंगावयवम पचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोका भग जानना चाहिए।  
§३८२ आमि त्वाविक श्रुत तथा अवधिज्ञानमें-दो आयु अर्थात् मनुष्य-देवायुक एव  
अपगतवदम उत्कृष्टमे मासपृथक्त्व अत्र है। शेष प्रकृतियोंमें दो मनयोगिता  
अर्थात् आभियोगे वपपृथक्त्व अत्र है।  
§३८३, मासपृथक्त्व अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष है  
अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-२।

§३८४, मासपृथक्त्व अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो  
अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-३।  
§३८५, मासपृथक्त्व अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो  
अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-४।  
§३८६, मासपृथक्त्व अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो  
अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-५।  
§३८७, मासपृथक्त्व अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो  
अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-६।  
§३८८, मासपृथक्त्व अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो  
अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-७।  
§३८९, मासपृथक्त्व अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो  
अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-८।  
§३९०, मासपृथक्त्व अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो  
अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-९।

( १ ) 'मासपृथक्त्व' अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-१।  
( २ ) 'मासपृथक्त्व' अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-२।  
( ३ ) 'मासपृथक्त्व' अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-३।  
( ४ ) 'मासपृथक्त्व' अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-४।  
( ५ ) 'मासपृथक्त्व' अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-५।  
( ६ ) 'मासपृथक्त्व' अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-६।  
( ७ ) 'मासपृथक्त्व' अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-७।  
( ८ ) 'मासपृथक्त्व' अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-८।  
( ९ ) 'मासपृथक्त्व' अत्र वध वदोमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वधवदो अपगतवदम अत्र वपपृथक्त्व है-९।

§३८५. तेउपम्माण-तिण्णि-आयुं वधा जहं एगसं । उक्कस्सेण अडदालीस

मुहुच, पन्स ।

§३८६. मुक्काए-दो आयुं मासपुघत्तं ।

§३८७. सम्मादिट्ठि आभिणिभगो । सडगसम्मां वासपुघत्तं । सेसाण णत्थि अतर । वेदगसम्मां आयुं आभिणिभगो । सेस णत्थि अंतर । ५

§३८८. उपसमसम्मां-पच्णां छदसं चदुसजं पुरिसं भपदुं पंचिदिं तेजाकं समचदुं वज्जरिसमं वण्णं ४ अगुं ४ पसत्थविं तसं ४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोद पचतराह्णण वधगा जहण्णेण एगसं उक्कस्सेण सत्तरादिदियाणि । [ अवंधगा ] जहण्णेण एगसं, उक्कस्सेण वासपुघत्तं । णवरि वज्जरिसं अवंधगा सत्तरादिदियाणि । मणुसगदिं ४ वज्जरिसम-भगो । दोवेदणीं वधा-अपधगा जहण्णेण १० एगसं । उक्कस्सेण सत्तरादिदियाणि । दोण्ण वधगा जहण्णेण एगसं । उक्कस्सेण सत्तरादिदियाणि । अपधगा णत्थि । चदुणोक्कं पधा-बंधगा जहण्णेण एगसं ।

§३८५. तेजोलेश्या-पद्मलेश्यामे-तीन आयुके वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट से ४८ मूर्त्त तथा पक्ष प्रमाण अतर है ।

§३८६ शुक्लेश्यामें-दो आयुके वधकोंका मासपृथक्त्व अतर है ।

§३८७ सम्यग्दृष्टियोंमें-आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भग है । क्षायिक सम्यक्त्वोंमें दो आयुके वधकोंका वर्षपृथक्त्व अतर है<sup>१</sup> । शेष प्रकृतियोंका अतर नहीं है । वेदक सम्यक्त्वियोंमें-आयुके वधकोंका आभिनिबोधिक ज्ञानके रुमान है । शेष प्रकृतियोंमें अतर नहीं है ।

§३८८ उपशमसम्यक्त्वियोंमें-५ ज्ञानारण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, समचतुरस्रसस्थान, वस्रवृषभसहनन, वर्ष ४, अगुरु-उषु ४, प्रशस्तविद्यायोगति, ग्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अतरायोंके वधकोंका अतर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात रातदिन है<sup>२</sup> । अपधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अतर है ।

[ विशेष-इन प्रकृतियोंके अवधक उपशातकपायी होंगे, उनका जघन्य अतर एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व है । ]

निशेष यह है कि वस्रवृषभनाराचके अवधकोंका अतर सात दिन रात है । मनुष्यगति ४ के वधकोंका अतर वस्रवृषभनाराचसहननके समान है । दो वेदनीयके वधको अवधकोंका अतर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिनरात है । साता असाताके वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिनरात है । अपधक नहीं है । चार नोकपायों अर्थात् हास्यादिचतुष्कके

( १ ) “चदुसजसुराभगाणमतर केचरि कालादो होदि ? णाणाजीव पडुध जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।” -पट्ठ० अ० सू० ३४३, ४४ ।

( २ ) “उपसमसम्मादिट्ठीनु अणजदण्णमादिट्ठीणमतर केचरि कालादो होदि ? णाणाजीव पडुध नदण्णेण एगसमय उपस्सेण सत्तरादिदियाणि ।” -पट्ठ० अ० सू० ३५६, ३५७, ।



§३८०. अवगदवेदसु सादवधाअवधगा णत्थि अतर । सेम वधगा जहण्णेण एगमं, उक्कस्सेण छम्मास । अरधगा णत्थि अतर ।

§३८१. अकमाइगेसु साद-वधा अरधगा णत्थि अतर । एव वेवलदसणां । रिभी पचिदिय-तिरिस्स-पज्जत्तभगो ।

५ §३८२. जामिं सुदं ओधिं दो आयुं वधगा जहण्णेण एगसं, उक्कस्सेण मासपुधत्त अतर । सेसाण दो-भणभगो । ओधिणां वासपुधत्त ।

§३८३ एव मणपज्जवं ओधिदं । णरि मणपज्जवं देवायुं वासपुधत्त ।

§३८४ एव परिहारे सजदुं ( १ ) त चेय, णरि माम-पुधत्त । एव सामाइं छेदोपं । सजदासजदां सुहुमसं सव्वाण वधगा जहण्णेण एगसं । उक्कस्सेण एगमसं अतर । अरधगा णत्थि । यथाक्सादं-सादवधगा णत्थि अतर । अवधगा जहण्णेण एगसं उक्कस्सेण छम्मासं ( स ) ।

§३८० अपगतवेदमें-साताके वधकों अवधकॉ अतर नहीं है । दोप प्रकृतिके वधकों जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह माह अतर है । अवधकोंका अतर नहीं है ।

§३८१ अकपायिंयोंमें-साताके वधकों अवधकोंमें अतर नहीं है । केवलज्ञान, केवलदर्शनमें इसी प्रकार जानना । विमगावधिमं पचेत्त्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंका भग जानना चाहिए ।

§३८२ आभिनियोगिकं धृत तथा अवधिज्ञानमं-दो आयु अर्थात् मनुष्य देवायुके वधकोंका जघन्यसे एकसमय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अतर है । दोप प्रकृतियोंमें दो मनयोगियोंके समान भग है । अवधिज्ञानियोंमं वपपृथक्त्व अतर है ।

§३८३ मन पर्ययज्ञान अवधि दर्शनमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि मन पर्ययज्ञानमें देवायुका अन्तर वपपृथक्त्व है ।

§३८४ परिहायिणुद्धिमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वर्षपृथक्त्वके स्थानमं मासपृथक्त्व जानना चाहिए । इसी प्रकार सामायिक छेदोपरथापना समयमें जानना चाहिए । सयतासयत और सूक्ष्म संपराय मयममें सय प्रवृत्तियोंने वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह मास अतर है । अवधकं नहीं है ।

यथारथावधयममें-साता वेदनीयके वधकोंका अतर नहीं है । अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट छह मास अतर जानना चाहिए ।

[ विशेष-साता वेदनीयके अवधकोंका इस समयमें अयोगकेवली गुणस्थान है । उसका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट अतर छह मास है । ]

( १ ) ' आभिनियोगिकं सुदआदिणामीसु चदुष्दसुरसामग्गमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणा नीच पडुच्च जहण्णेण एगमसं उक्कस्सेण मासपुधत्त । -पट्ठवं अतरां २४२, २४१, २४०, २४५ ।

( २ ) ' मणपज्जवणासु चदुष्दसुरसामग्गमतर केवचिर कालादा हादि ? णाणा नीच पडुच्च जहण्णेण एगसं उक्कस्सेण वासपुधत्त । -२४६, २४५, २५० ।

( ३ ) ' चदुष्द मरग-अजागिकेवलीणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणा नीच पडुच्च जहण्णेण एग मसं उक्कस्सेण छम्मास । -१६, १७ ।

## भावाणुगम-परूवणा

§३९१. भावाणुगमेण दुनिहो णिहेसो । ओघेण आदेसेण य ।

§३९२. तत्थ ओघेण-पचणा० छदंसणा० मिच्छ० सोलसक० भयदुगु० तेजाक० चण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणपचतराइगाण वधगा ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगात्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा । थीणगिद्धित्तिगं वारसकसा० वधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगात्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा । मिच्छत्त-वधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगात्ति को भावो ? उवसमिओ वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा । साद वधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो ।

### [ भावानुगम ]

§३९१ भावानुगमका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं ।

§३९२ ओघसे—५ ज्ञानानरण, ६ दर्शनानरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तेजस, कामाण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण, और ५ अन्तरायोंके वधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव हैं । अवधकोंके कौन भाव हैं ? औपशमिक भाव वा क्षायिकभाव हैं ।

[ विशेष—इन प्रकृतियोंका अवध उपशात कषाय अथवा क्षीणमोहमे होगा, अत एव उपशम श्रेणीकी अपेक्षा औपशमिक और क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा क्षायिकभाव है । ]

स्त्यानगृद्धित्रिक, १२ कषायके वधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव हैं । अवधकोंमे कौन भाव हैं ? औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है ।

[ विशेष—इनके अवधकोंका प्रमत्तसयत गुणस्थान होगा । वहाँकी अपेक्षा तीन भाव कहे गये हैं । ]

मिथ्यात्वके वधकोंमे कौनसा भाव है ? औदयिक है । अवधकोंमे कौनसा भाव है ? औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक वा पारिणामिक ।

[ विशेष—यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवके जीवत्व, भव्यत्व अथवा अभव्यत्व रूप पारिणामिक भावोंका भी वर्णन किया जा सकता है, किंतु यहाँ दर्शन मोहके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमकी अपेक्षा न रररर उत्पन्न होनेवाले पारिणामिक भावकी विशेष विवक्षावश मिथ्यादृष्टि जीवके उसका वर्णन नहीं किया गया है । मिथ्यात्वके अवधकोंमे पारिणामिकभाव सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा कहा गया है ।

शक-सासादन गुणस्थानमे अन-तानुधी चतुष्कके उदयकी अपेक्षा औदयिक भाव क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यहाँ दर्शन मोहनीयकर्मके सिवाय अन्य कर्मोंके उदयकी विवक्षा नहीं की गयी है । ]

उम्कस्सेण सत्तरादिदियाणि । दोणं युगलाण वधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण सत्तरादिदियाणि । अवधगा जहण्णेण एगस० । उक्क० वासपुधत्त । एव पत्ति [माणि] याण । अपच्चक्राणावरण० ४ वधगा जहण्णेण एगस० । उक्क० सत्तरादिदियाणि । अवधगा जह० एगस० । उक्क० चोइसरादिदियाणि । पच्चक्राणावरण० ४ वधगा जह० एगस० । उक्क० सत्तरादिदि० । अवधगा जह० एगस० उक्क० पण्णारमगदिदि० । आहारदुग तित्थपरं वधगा जह० एगस० । उक्क० वासपुधत्त । अवधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण सत्तरादिदियाणि ।

३२=९. सासणे-मन्वे विगप्पा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण पलिदोवमत्त अमखेज्जदिमागो । एव सम्मामि० ।

१० ३३९०. अणाहारै-धुमिगाण वधा-अवधगा गत्थि अतरं । एव सेमाण । णवरि देवगदि० ४ वधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण वासपुधत्त अतर । तित्थपर वधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण वासपुधत्त अतर । अवधगा गत्थि ।

एव अतर समत्त ।



वधनों अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात अतर है । दोनों युगलोंके वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात अन्तर है । अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है । परिवर्तमान प्रकृतियोंमें इसी प्रकार भग जानना चाहिए । अपत्यात्यानावरण ४ के वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिनरात अतर है । अवधकोंका जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे १४ दिन रात है । प्रत्याख्यानावरण ४ के वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात अतर है । अवधनोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे १५ दिन रात है ।<sup>१</sup> आधारकद्विक वीर्यकरके वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है । अवधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात है ।

३३८९ सासादनम सर्व विकल्प जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्लोपमके असत्यातवे भाग हैं । इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्यमे जानना ।

३३९० अणाहारै-धुमिगाण वधा-अवधकोंका अतर नहीं है । इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंमें भी जानना चाहिए । विशेष, देवगति चारके वधकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वासपुधत्त है । वीर्यकर प्रकृतिके वधनोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है । अवधक नहीं हैं ।

इस प्रकार अन्तरानुगत समाप्त हुआ ।



(१) सब्बदासज्जदाणमतर केचिचि कालादा होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण चाहसगदिदियाणि । -पट्टर० अ० सू० ३६०, ३६१ ।

(२) पमत्तज्जपमत्तज्जदाणमतर केचिचि कालादा होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण पण्णारसरादिदियाणि । -३६२, ६५ ।

(३) वासपुधत्तमादिदी-सम्मामि-गदिदीणमतर केचिचि कालादा होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण पलिदोवमत्त अमखेज्जदिमागो । -३७५, ७६ ।

अबंधगात्ति को भावो ? सङ्गो वा उवसमिगो वा । इत्थि णत्तुंसकभगो चदु-आयु-  
 तिष्णिगदि-चदुजादि-ओरालि० पचसंठा० ओरालि० अगो० छस्सघ० तिष्णि आणु०  
 आदायुजो० अप्पसत्थमि० थावरादि० ४ अप्पसत्थवि० ( ? ) उच्चागोद च । पुरिसभगो  
 हस्सरदि-देवगदि पंचिदि० वेउच्चि० आहार० समचदु० दोआगो० देवाणु० परघा-  
 दुस्ता० पसत्थविहाय० तस० ४ विरादि-छक्कं तित्थयरं [ णीचागोद च ] । पत्तेगेण ५  
 साधारणेण चदुआयु-दो-अगो० छस्सघ० २ विहाय० दोसराण बंधगात्ति को भावो ?  
 ओदङ्गो भावो । अवधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो वा उवसमिगो वा सङ्गो वा ।  
 णरि चदुआयु० छस्सघ० अवधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो वा उवसमिगो वा  
 सङ्गो वा स्वयोवसमिगो वा । दो युगल-चदुगदि-पंचजादि-दोसरीर० छसठा० चदुआणु०  
 तसथावरादिणवयुगल दोगोद च बंधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवंधगात्ति को १०  
 भावो ? उवसमिगो वा सङ्गो वा । एव ओघभंगो मणुसगदि(?) तिग पचिदिय-तस० २

[ विशेष—वेदत्रयके अवधकके अनिष्टुत्तिकरणके अवेद भागमे ज्ञायिक तथा औपशमिक भाव फहा है । ]

४ आयु, देवगतिको छोडकर तीन गति, ४ जाति, औदारिक शरीर, समचतुरस्रसस्थान-  
 को छोडकर शेष पाँच सस्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सहनन देवानुपूर्वीके विना तीन आनुपूर्वी,  
 आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, अप्रशस्त विहायोगति(?) तथा उच्च गोत्रके बधकोंमे  
 स्त्रीवेद और नपुसक वेदके बधकोंके समान भाव जानना चाहिए अर्थात् बधकोंके औदयिक भाव  
 हैं तथा अवधकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है ।

[ विशेष—यहाँ अप्रशस्त विहायोगतिका दो बार उल्लेख आया है । प्रनीत होता है, आदेयके  
 स्थानमे अप्रशस्तविहायोगतिका पुन उल्लेख हो गया है । ]

हास्य, रति, देवगति, पचेन्द्रियजाति, बैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, समचतुरस्र-  
 सस्थान, बैक्रियिक तथा आहारक-अगोपाग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्चवास, प्रशस्त विहायोगति,  
 त्रस ४, स्थिरादि ६, तीर्थकर प्रकृति, [नीच गोत्र] के बधकोंमे पुरुषवेदके समान भग है, अर्थात्  
 औदयिक भाव है, अवधकोंमे औदयिक, ज्ञायिक वा ज्ञायोपशमिक है । प्रत्येक तथा सामान्यसे  
 ४ आयु, ० अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरोंके बधकोंमे कौन भाव है ? औदयिक  
 है । अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक तथा ज्ञायिक भाव है । विशेष यह है कि  
 ४ आयु, ६ सहननके अवधकोंमे औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा ज्ञायोपशमिक भाव है ।  
 हास्य रति युगल, ४ गति, ५ जाति, औदारिक, बैक्रियिक शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस  
 स्थावरादि ९ युगल और दो गोत्रोंके बधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके  
 कौन भाव है ? औपशमिक या ज्ञायिक भाव है ।

[ विशेष—हास्य, गोत्रादिके अवधक उपशान्त कपाय या क्षीणकपाय गुणस्थानमे होंगे, वहाँ  
 उक्त भाव फहे है । ]

मनुष्यत्रिक ( मनुष्य, पर्याप्तमनुष्य तथा मनुष्यनी ), पचेन्द्रिय पचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस,

अवधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा खइगो वा [ असाद-वधगात्ति को भावो ? ]  
 ओदइ० । [ अवधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा ] खइगो वा खयोवसमिगो वा ।  
 दोष्ण वधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगात्ति को भावो ? खइगो भावो ।  
 इत्थि० णवुम० वधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगात्ति को भावो ।  
 ५ ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा । णवरि णवुम० पारिणामिगो  
 भावो । पुग्गिमे० वधगात्ति ओदइगो भावो । अवधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा  
 उवसमिगो वा खइगो वा । तिण्ण वेदाण वधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो ।

सातावेदनीयके वधकोंमें कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंमें कौन भाव है ?  
 औदयिक या क्षायिक है ।

[ विशेष—सातावेदनीयकी वध व्युच्छित्तिराले अयोगवेवली गुणस्थानमें क्षायिकभाव  
 है, किन्तु असाताके वधक अथवा साताके अवधकोंमें औदयिक भाव है, कारण साता और असा  
 ताके परस्पर प्रतिपक्षी होनेसे असाताके वधकानमें साताका अवध होगा । इस दृष्टिसे औदयिक  
 भावका निरूपण किया है । ]

[ असाता वेदनीयके वधकोंके कौनसा भाव है ? ] औदयिक है । [ अवधकोंके कौनसा  
 भाव है ? औदयिक ] या क्षायिक या क्षायोपशमिक है ।

[ विशेष—असाताकी वधव्युच्छित्ति प्रमत्तसयतमें होती है, अत एव अप्रमत्त गुणस्थानकी  
 अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है । ]

दोनोंके वधकोंमें कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंमें कौनसा भाव है ?  
 क्षायिकभाव है ।

[ विशेष—यहाँ दोनोंके अवधक अयोगवेवलीकी अपेक्षा क्षायिकभाव कहा है । ]

स्त्रीवेद, नपुसकवेदके वधकोंमें कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंमें  
 कौनसा भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक या क्षायोपशमिक है । इतना विशेष है कि  
 नपुसकवेदके अवधकोंमें पारिणामिक भाव भी पाया जाता है ।

[ विशेष—यहाँ स्त्रीवेद, नपुसकवेदके अवधकोंमें औदयिक भावका निरूपण पुरुषवेदके  
 वधकनी अपेक्षासे किया है । नपुसकवेदके अवधक सासादन गुणस्थानमें होते हैं । यहाँ दर्शन  
 मोहनीयके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमका अभाव होनेसे पारिणामिक भाव कहा है । ]

पुरुषवेदके वधकोंमें कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंमें कौनसा भाव  
 है ? औदयिक, औपशमिक या क्षायिक है ।

[ विशेष—पुरुषवेदके अवधक अनितृत्तिकरणके अवेद भागमें होंगे । यहाँ चारित्रमोहनीयके  
 उपशम अथवा क्षयमें तत्पर जीवोंकी अपेक्षा औपशमिक तथा क्षायिक भाव है । पुरुषवेदके  
 अवधक किन्तु स्त्री-नपुसकवेदके वधकनी अपेक्षा औदयिक भाव होगा । ]

दोनों वेदोंके वधकोंमें कौनसा भाव है ? औदयिक है । अवधकोंके कौनसा भाव है ?  
 क्षायिक या औपशमिक है ।

अवधगात्ति को भावो ? खइगो वा उवसमिगो वा । इत्थि णवुसकभगो चदु-आयु-  
 तिण्णिगादि-चदुजादि-ओरालि० पचसंठा० ओरालि० अगो० छस्संघ० तिण्णि आयु०  
 आदावुज्जो० अप्पसत्थवि० धावरादि० ४ अप्पसत्थवि० ( ? ) उचागोद च । पुरिसभंगो  
 हस्सरदि-देवगादि-पचिदि० वेउव्वि० आहार० समचदु० दोआगो० देवाणु० परघा-  
 दुस्सा० पसत्थविहाय० तस० ४ यिरादि-छक्कं तित्थयर [ णीचागोद च ] । पत्तेण ५  
 साधारणेण चदुआयु-दो-अगो० छस्सघ० २ विहाय० दोसराण वंधगात्ति को भावो ?  
 ओदइगो भावो । अवधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा ।  
 णररि चदुआयु० छस्सघ० अवधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा  
 खइगो वा सयोवसमिगो वा । दो युगल चदुगदि-पचजादि-दोसरीर० छसठा० चदुआयु०  
 तसथावरादिणवयुगल दोगोद च वधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगात्ति को १०  
 भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा । एव औघभगो मणुसगदि(?) तिग पचिदिय-त्तस० २

[ विशेष-वेदत्रयके अवधकके अनिवृत्तिकरणके अवेद भागमें क्षायिक तथा औपशमिक भाव कहा है । ]

४ आयु, देवगतिको छोड़कर तीन गति, ४ जाति, औदारिक शरीर, समचतुरस्रस्थान को छोड़कर शेष पाँच सस्थान, औदारिक अगोपाग, ६ सहजन, देवानुपूर्वके चिना तीन आनुपूर्वी, आतप, सद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थारदि ४, अप्रशस्त विहायोगति(?) तथा उच्च गोत्रके वधकोंमें स्त्रीवेद और नपुसक वेदके वधकोंके समान भाव जानना चाहिए अर्थात् वधकोंके औदयिक भाव हैं तथा अवधकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है ।

[ विशेष-यहाँ अप्रशस्त विहायोगतिका दो द्वार उल्लेख आया है । प्रतीत होता है, आदेयके स्थानमें अप्रशस्तविहायोगतिका पुनः उल्लेख हो गया है । ]

हास्य, रति, देवगति, पचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, समचतुरस्र-सस्थान, वैक्रियिक तथा आहारक-अगोपाग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, तीर्थकर प्रकृति, [ नीच गोत्र ] के वधकोंमें पुरुषवेदके समान भग हैं, अर्थात् औदयिक भाव है, अवधकोंमें औदयिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है । श्रत्येक तथा सामान्यसे ४ आयु, ० अगोपाग, ६ सहजन, २ विहायोगति, ० स्वरोके वधकोंमें कौन भाव है ? औदयिक है । अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक तथा क्षायिक भाव है । विशेष यह है कि ४ आयु, ६ सहजनके अवधकोंमें औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है । हास्य रति युगल, ४ गति, ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, ६ सस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल और दो गोत्रोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक या क्षायिक भाव है ।

[ विशेष-हास्य, गोजादिके अवधक उपशान्त कथाय या शीरकथाय गुगस्थानमें होंगे, वहाँ उक्त भाव कहे हैं । ]

मनुष्यत्रिक ( मनुष्य, पर्याप्तमनुष्य तथा मनुष्यनी ), पचेन्द्रियपचेन्द्रिय पर्याप्तक नमः

पचमण० पचरचि० काजोगि ओगालिय का० चकरु० अचकरु० मुम्भले० भागिदि०  
सण्णि-अणाहारग ति । गपरि (अ) जोगादिसु (१) वेदनीय उधगा णत्थि ।

§३९३. आदेशेण णेरइगोसु-धुग्गिमाण वंधगा ति को भावो? ओदइगो भावो । अ  
धगा णत्थि । धीणगिद्विदिग अणंताणुवधि० ४ वधगात्ति को भावो? ओदइगो  
भावो । अउधगात्ति को भावो? उउसमिगो वा रुइगो वा खयोवसमिगो वा । सादा-  
सादवधगा अउधगा ति को भावो? ओदइगो भावो । दोण्णं वधगा ति०? ओदइगो  
भावो । अउधगा णत्थि । एव चटुणोकमा० यिरादि-तिण्णियुगल० । भिच्छत वधगा

प्रसपर्याप्तक, पच मनोयोगी, पच वचनयोगी, धार्ययोगी, औदारिक काययोगी, पञ्चदशनी,  
अचक्षुशनी, शुक्लालेश्यक, भव्यसिद्धिक, सक्षी तथा अनाहारकोंमें ओघके समान भाव है।  
इतना विशेष है कि (अ) योगादिकामे वेदनीयके वधक नहीं है (?)।

[ विशेष-वेदनीयके अवधक, अयोगानेयली होते हैं। इस दृष्टिसे 'जोगादिसु'के स्थान  
पर 'अजोगी' पाठ होने पर अर्थकी मर्यात बैठती है । ]

§३९३ आदेशे-नारकियांम धुध प्रकृतियोंके वधकोंके कौन भाव है? औदयिक है।  
अवधक नहीं है। स्थानगृह्णिक, अन्तानुवधी ० के वधकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव  
है। अवधकोंके कौन भाव है? औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। साता असाताके  
वधकों अवधकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है।

[ विशेष-नरक गतिमें साताका वधक असाताका अवधक होगा, असाताका वधक साताक  
अवधक होगा इसलिये अन्यतरके वधककी अपेक्षा औदयिक भाव बढ़ा है । ]

दोनोंके वधकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अवधक नहीं है। इसी प्रकार चार जो-  
क्याय, स्थिरादि तीन युगलमें जानना चाहिए। मिथ्यात्वके उधकोंके कौन भाव है? औदयिक है।

[ विशेष-शका-मिथ्यात्वके वधकों औदयिक भाव न कहकर क्षायोपशमिक भाव  
पढ़ना चाहिये था, कारण इनके सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय क्षयसे;  
उनके सदवस्थारूप उपशमसे तथा सम्यक्तर प्रकृतिके दशघाती स्पर्धकोंके उदय क्षयसे, उरके  
सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदय रूप उपशमसे और मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके  
उदयसे मिथ्यादृष्टिस्व भाव उत्पन्न होता है।

ममाधान-सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके दशघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षय  
अथवा सदवस्थारूप उपशम अथवा अनुदयरूप उपशमसे मिथ्यादृष्टि भाव नहीं होता। कारण,  
ऐसा माननेमें दोष जाता है। जो जिसमें नियम उत्पन्न होता है, वह उसका कारण होता है।  
ऐसा न माननेपर अनरस्था दोष आया। कदाचित् यह कहा जाय कि मिथ्यात्वके उत्पन्न होनेके  
कालमें जो भाव विद्यमान है, वे उसके कारणपनेको प्राप्त होते हैं, तो फिर ज्ञान दर्शन असम्यक्  
आदि भी मिथ्यात्वके कारण हो जायेंगे, किंतु ऐसा नहीं है। कारण इस प्रकारका व्यवहार नहीं  
पाया जाता। अत एव यह सिद्ध होता है कि मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि भाव होता है कारण  
इसके बिना मिथ्यात्व भावकी उत्पत्ति नहीं होती। ( ध० टी० भा०० पृ० २०७ ) ]

चतुर्जादि-ओरालि० पचसठा० ओरालि० अगो० छस्मघ० तिण्णि आणु०  
 १० अप्पमत्थपि० धाररादि० ४ दूमग-दुस्मर-अणादे० णीचागोटं च ।  
 गो देवायु-देवगादि-पंचिदि० वेउच्चिय० समचहु० वेउच्चि० अगो० देवाणु०

जम परिणाम चारित्र मोहनीयके उदय होने पर उत्पन्न होते हैं। यहाँ प्रत्याख्यानाकरण, प्रार नोकपायोंके उदय होते हुए भी पूर्णतया चारित्रना विनाश नहीं होता। इस प्रत्याख्यानादिके उदयकी क्षय सहा की गयी है। उन्हीं प्रकृतियोंकी उपशम नशा भी है, जो चारित्र अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करती। इस प्रकार क्षय और उपशमसे उत्पन्न प्रत्याख्यानाको क्षायोपशमिक भाव कहा है।

इस आचार्य कहते हैं—अप्रत्याख्यानापरणचतुष्वने सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय क्षयसे उपशमस्वरूप उपशमसे तथा चारों सज्वलन और नत्र नोकपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके नभाती क्षय, उनके सदवस्वरूप उपशम तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे और प्रत्याख्याना-चारके सघघाती स्पर्धकोंके उदयसे देश नयम होता है।

इस सम्वन्धम धीरसेनस्वामी ध्यालोचना करते हुए बताते हैं कि—उदयके अभावकी उदय सहा करनेसे उत्पन्न विरहित सर्व प्रकृतियोंकी तथा उन्हींके स्थिति, अनुभागके स्पर्धकों उपशम सहा प्राप्त हो जाती है, जिसका घतमानमे क्षय नहीं है, किन्तु उदय निश्चयमान है नक्ष क्षय नामकरण अयुक्त है, इसलिए ये तीनों ही भाव उदयोपशमिकपनेको प्राप्त होंगे। किन्तु इस बातका प्रतिपादक कोई सूत्र नहीं है। फलतः देकर तथा निर्जराको प्राप्त होकर दूर प्रकृतिकर्म-मार्गोंकी 'क्षय' सहा करके दशरित गुणस्थानको क्षायोपशमिक कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर मिथ्यादृष्टि आदि सभी भावोंके क्षायोपशमिकत्वका प्रसंग प्राप्त होगा। उम कारण पूर्वोक्त अर्थ ही निर्दोष जानना चाहिए। ( घ० टी० भावानु पृ० २००-२०३ ) ]

तीन आयु ( देवायु को छोड़कर ) तीन गति, चार जाति, औत्तरिक शरीर, समचतुरस्र-सम्या पिना नेप पाँच मस्थान, औत्तरिक अगोपाग, छह महानन, दशानुपूर्वी विना तीन आनु-पूर्वी, आरप, उद्योत, अप्रसन्नविद्योमति, रानरादि २, दुर्भंग, दुस्वर, अनादय तथा नीच गोत्र-मे श्रीवद्, नपुंसकवेदके समान भग है। अर्थात् चधकोंके औदयिक भाव है। अनघकोंके औत्तरिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है।

[ विशेष-नरक-वियंच-मनुष्याय औत्तरिक शरीर आत्तिके अरधक वियंचोमे देग सवमी होंग। उनके उपगन सम्यक्त्वं, क्षायिक सम्यक्त्वं तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्वंकी अपेक्षा औप-शमिक क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव कहे हैं। चारित्र मोहनीयकी अपेक्षा भी क्षायोपशमिक भाव कहा गया है। यहाँ जो अथघकाके औदयिक भाव कहा है उसका कारण यह प्रतीत होता है कि यद्यपि यहाँ गतिविक्र आदिका अधघ है, किन्तु तथापि आत्तिका ता धध है, अत एव त्रायी अपेक्षा औदयिक भाव कहा गया है। धमवधनके मूलमे कारणभूत औदयिक परिणतिको उत्पन्न रणरर धधकी अथस्थान औत्तरिक भाव का उत्पन्न किया है। ]

देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैदिकिकशरीर, ममचतुरस्रस्थान, वैदिकिक अगो-

( १ ) 'देश नरे मने ररे य पथानथामनमाग दु । —गो० जी० ।



अवधगा णत्थि । एव पट्टमाए । विदियाए यान सत्तमा त्ति एवं चेय । णवरि रइग्ग  
णत्थि । सत्तमाए मिच्छत्त तिरिक्खासु वधगा त्ति को भावो ? ओदइग्गो भावो । अवधगा  
त्ति को भावो ? ओदइग्गो वा उवसमिग्गो वा रय्योउवसमिग्गो वा पारिणामियो वा ।  
णवरि मिच्छत्त-अवधगात्ति को भावो ? ओदइग्गो णत्थि ।

- ५ §३९४ तिरिक्खेसु-दु(धु)विगणं वधगा त्ति को भावो ? ओदइग्गो भावो । अवधगा  
णत्थि । धीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त अणत्ताणुज० ४ वधगात्ति को भावो ? ओदइग्गो  
भावो । अवधगा त्ति को भावो ? उवसमिग्गो वा रइग्गो वा रय्योउवसमिग्गो वा । णवरि  
मिच्छत्त-अवधगा पारिणामिग्गो भावो । वेदणी० णिरयमग्गो । एव च्चदुणोकसा० धिरादिति  
ण्णियुग्ग० तिण्णिवेद णिरयमग्गो । अपक्कक्खाणा० ४ वधगात्ति को भावो ? ओदइग्गो  
१० भावो । अवधगा त्ति को भावो ? रय्योउवसमिग्गो भावो । इत्थि-णवुसमग्गो तिण्णि-आयु०

जानना । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथ्वी पर्यन्त इसी प्रकार जानना । विशेष यह है कि द्वितीय  
आदि पृथ्वियोंमें क्षाधिकभान नहीं है । [ कारण क्षायिकसम्यक्त्वी जीवका प्रथम पृथ्वीपर्यन्त  
उत्पाद होता है । ] सातवीं पृथ्वीमें मिथ्यात्व तथा तिर्यंचायुके वधकोंके कौन भाग हैं ? औदयिक  
भाव हैं । अवधकोंके कौन भाग हैं ? औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक हैं ।  
विशेष, मिथ्यात्वसे अवधकोंके कौन भाग हैं ? औदयिक भाव नहीं है, अर्थात् यहाँ औपशमिक  
क्षायोपशमिक वा पारिणामिक भाव हैं ।

[ विशेष-सासदिन गुणस्थानकी अपेक्षा पारिणामिक भाग है, अविरत सम्यक्त्वकी  
अपेक्षा औपशमिक तथा क्षायोपशमिक भाव है । समयका घात करनेवाले कर्मोदयकी अपेक्षा  
असमरूप औदयिक भाग भी है । ]

§३९४ तिर्यंचोमे-भ्रुव प्रकृतियोंके वधकोंके कौन भाग हैं ? औदयिक भाव है । अवधक  
नहीं है ।

[ विशेष-इनके अवधक उपशात कयायादि गुणस्थानमाले होंगे । तिर्यंचोमे केवल आदिके  
पाँच गुणस्थान होते हैं, इस कारण तिर्यंचोमे भ्रुव प्रकृतियोंके अवधकाका अभाव कहा है । ]

स्थानशुद्धिन्निक, मिथ्यात्र, अनत्ताणुववी चारके वधकोंके कौन भाग हैं ? औदयिक  
है । अवधकोंके कौन भाग हैं ? औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक हैं । इतना विशेष  
है कि मिथ्यात्वके अवधकोंके पारिणामिक भाव पाया जाता है । वेदनीयका नरक गतिके समान  
भाग है, अर्थात् साता-असाताके वधक अवधकोंमें औदयिक भाव है । दोनोंके उधकोंमें औदयिक  
भाग है, अवधक नहीं है ।

चार नो कपाय, स्थिरान्ति तीन युगल, तीन वेदके वधकों अवधकोंमें नरकगतिके  
समान भाग है, अर्थात् वधकोंमें औदयिक भाव है तथा अवधकोंमें औपशमिक, क्षायिक, क्षायो  
पशमिक वा पारिणामिक हैं । अप्रत्याग्यानावरण चारके उधकोंके कौन भाग हैं ? औदयिक हैं ।  
अवधकाय कौन भाग हैं ? क्षायोपशमिक भाव है ।

[ विशेष-यहाँ दशमपत्नी जीवकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाग कहा है । क्षायोपशमरूप

तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि० पचमठा० ओरालि० अगो० छस्सव० तिण्णि आणु०  
आदायुज्जो० अप्पमत्थवि० थानरादि० ४ दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागोदं च ।  
पुरिसवेदभगो देवायु-देवगदि-पचिदि० वेउव्विय० समचदु० वेउव्वि० अगो० देवाणु०

सयमासयम परिणाम चारित्र मोहनीयके उदय होने पर उत्पन्न होते हैं। यहाँ प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन और नोकपायोंके उदय होते हुए भी पूर्णतया चारित्रिक मिनाश नहीं होता। इस कारण प्रत्याख्यानादिके उदयकी क्षय सज्ञा की गयी है। उन्हीं प्रकृतियोंकी उपशम सज्ञा भी है, कारण वे चारित्र अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करती। इस प्रकार क्षय और उपशमसे उत्पन्न हुए भावको क्षायोपशमिक भाव कहा है<sup>१</sup>।

कोई आचार्य कहते हैं—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय क्षयसे उन्हींके सद्व्यथारूप उपशमसे तथा चारों सज्वलन और नन नोकपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षय, उनके सद्व्यथारूप उपशम तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे और प्रत्याख्यानावरण चारके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे देश सयम होता है।

इस सम्बन्धमे धीरसेनस्वामी आलोचना करते हुए बताते हैं कि—उदयके अभावकी उपशम सज्ञा करनेसे उदयसे विरहित सर्व प्रकृतियोंकी तथा उन्हींके स्थिति, अनुभागके स्पर्धकों की उपशम सज्ञा प्राप्त हो जाती है, जिसका वतमानमे क्षय नहीं है, किन्तु उदय विद्यमान है उसका क्षय नामकरण अयुक्त है, इसलिए ये तीनों ही भाव उदयोपशमिकपनेको प्राप्त होंगे। किन्तु इस बातका प्रतिपादक कोई सूत्र नहीं है। फलको देकर तथा निर्जराको प्राप्त होकर दूर हुए कर्म-स्पर्धकोंकी 'क्षय' सज्ञा करके देशविरत गुणस्थानको क्षायोपशमिक कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर मिव्याट्टि आदि सभी भावोंके क्षायोपशमिकत्वका प्रसंग प्राप्त होगा। इस कारण पूर्वोक्त अर्थ ही निर्दोष जानना चाहिए। ( ध० टी० भावाणु पृ० २००-२०३ ) ]

तीन आयु ( देवायु को छोड़कर ) तीन गति, चार जाति, औदारिक शरीर, समचतुरस्र-सस्थान निना शेष पाँच सस्थान, औदारिक अगोपाग, छह सहनन, दवानुपूर्वी यिना तीन आनु-पूर्वी, आतप, उद्योत, अग्रशस्तविहायोगति, स्थावरादिक ८, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्र-मे स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके समान भग है। अर्थात् बधकोंके औदयिक भाव हैं। अवधकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं।

[ त्रिशेष—नरक-तिर्यच-मनुष्यायु औदारिक शरीर आदिके अवधक तिर्यचोम देश सयमी होंगे। उनके उपशम सम्यक्त्न, क्षायिक सम्यक्त्न तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकी अपेक्षा औप-शमिक क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव कहे हैं। चारित्र मोहनीयकी अपेक्षा भी क्षायोपशमिक भाव कहा गया है। यहाँ जो अवधकोंके औदयिक भाव कहा है उसका कारण यह प्रतीत होता है कि यद्यपि यहाँ गतित्रिक आदिका अवध है, किन्तु देवगति आदिका तो बध है, अत एव उनकी अपेक्षा औदयिक भाव कहा गया है। कर्मबधनके मूलमे कारणभूत औदयिक परिणतिको लक्ष्यमे रसमर बधकी अवस्थामे औदयिक भाव का उल्लेख किया है। ]

देवायु, देवगति, पचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसस्थान, वैक्रियिक अगो

( १ ) "देशनिरदे पमचे इदरे य सभान्णमवमाना दु ।—गो० जीव० ।

परघादुस्मा० पमत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्वर-आटेञ्ज-उच्चागोद च । एव पत्तेणेण  
साधारणेण वेदणीय भगी । णवरि चदुआयु-दोअगोवग० छस्मघ० दोधिहा० दोसर०  
बधगा-अबधगाति को भावो ? ओदद्गो भावो । णवरि छस्सघडणाण अबधगाति  
ओदद्गाद्विचत्तारिभावे ।

५ §३९५ एव पचिदिय तिरिक्ख० ३ । णवरि जोणिणीसु खड्ग णत्थि । सव्व  
अपल्लत्ताण तसाण सव्वे० (१) खयोपसम-पारिणामिय णत्थि । विगप्पा ओदद्द० ।

परा, दवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्रयाम, प्रशस्तविहायोगति, श्रम ४, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्च  
गोत्रके उधकमें पुस्पदेदके समान भग है, अर्थात् बधकों अबधकोंमें औदयिक भाव है ।

[ विशेष—तिर्यच गतिमें देवायु, दधगति, आदिकी बध-व्युच्छित्तियाले गुणस्थानका अभवाव  
है, कारण यहाँ देव समय गुण स्थान तक ही पाए जाते हैं, अत अवधकोंका यह भाव है कि इन  
प्रकृतियोंके स्थानमें नरकायु आदिका बध होता है, अत देवायु आदिकी अबध स्थितिमें नरकायु  
आदिने बधकी अपेक्षा अबधकोंमें औदयिक भाव कहा है । ]

इस प्रकार प्रत्येक तथा साधारणसे वेदनीयके समान भग है अर्थात् बधकोंके औद  
यिक भाव हैं, अबधक नहीं है । विशेष यह है कि चार आयु, दो अगोपाग, छह सहनन, दो  
विहायोगति, दो स्वरके बधकों अबधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । विशेष छह सह  
ननके अबधकोंमें औदयिक आदि चार भाव ( पारिणामिकको छोड़कर ) हैं ।

[ विशेष—शाम-दो अगोपाग, छह सहनन, दो विहायोगति, दो स्वर, चार आयुके बधकोंमें  
औदयिक भाव ठीक है, इनके अबधकोंमें औदयिक कैसे कहा ? दूसरी बात यह है कि जब छह  
सहननके अबधकोंमें औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भाव कहे गये, तब यहाँ  
भी विहायोगति आदिके अबधकोंमें केवल औदयिक भाव क्यों कहा ?

समाधान—तियच गतिमें दो विहायोगति, दो स्वर तथा दो अगोपागके अबधक  
एकेन्द्रियत्वके साथ हैं, कारण एकेन्द्रियत्व विहायोगति, स्वर तथा अगोपागका उदय नहीं है,  
इससे एकेन्द्रियकी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है । एकेन्द्रियके सिवाय दध और नारकी भी छह  
सहननरहित पाये जाते हैं, उनसे अपेक्षा सम्यक्त्वत्रयकी दृष्टिसे औपशमिक, क्षायिक तथा  
क्षायोपशमिक भाव भी अबधकोंमें कहे हैं । ]

§३९५ पचेंद्रिय तिर्यच, पचेंद्रिय तियचपर्याय तथा पचेंद्रिय योनिमत् तियचोम इसी प्रकार  
जानना । इतना विशेष है कि योनिमत् तियचोम क्षायिक भाव नहीं है ।

[ विशेष—तियच छीमे चायिक भावके अभावका कारण यह है कि दर्शन मोहनीयका  
क्षयण मनुच गतिमें ही होता है और बद्धायुद्ध क्षायिकसम्यक्त्वा जीवकी स्त्रीवेदी रूपसे  
व्यपत्ति नहीं होती । अत स्त्रीतियचमें क्षायिक भाव नहीं पाया जाता । ( घ० टी० भा०  
पृ० २१३ ) ]

सब वचनान् प्रसंगे सर्वभाव हैं, क्षायोपशमिक तथा पारिणामिक नहीं है । औदयिक  
भाव विकल्प रूपसे है । (१)

§३९६. एव अणुदिस याव सव्वट्ठत्ति ।

§३९७. सव्वएहदिय-सव्वविगलिय-सव्वपचकाय० आहार० आहारमि० मदि० सुद० विभग० अब्भसि० सासण० सम्मामि० मिच्छादि० असण्णि त्ति । णवरि मदि० सुद० विभगे मिच्छ० अनधगात्ति को भावो ? पारिणामिगो भावो ।

§३९८. देवाण णिरयोध याव णवगेउज्जा त्ति । णवरि देवोधादो याउ सोधम्मी-  
साणा त्ति । एहदिय-आदाव-थावर-वधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो । अवधगात्ति को  
भावो? ओदइगो वा उपसमिगो वा रुइगो वा रायोवसमिगो वा पारिणामिगो वा ।  
तप्पडिपक्खाण वधा-अधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । दोण्ण वधगा त्ति  
को भावो ? ओदइगो भावो । अवधा णत्थि । भणणसि-वाणवेंतर-जोडिसिगेसु  
रइग णत्थि ।

§३९९. ओरालिमि० पचना० छदस० धारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु०  
उप० णिमि० पचतराइगाण वधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अधगात्ति को

§३९६ अनुदिश स्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§३९७ सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व पचकाय, आहारक, आहारकमिश्र, मत्स्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभगावधि, अभव्यसिद्धिक, सासादन, सम्यग्मिथ्यात्वी, मिथ्यादृष्टि, असङ्गी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, मत्स्यज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभगावधिमे मिथ्यात्वके अवधकोंके कौन भाव है ? पारिणामिक भाव है ।

[ विशेष—यहाँ सासादन गुणस्थानकी दृष्टिसे दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा पारिणामिक भाव कहा गया है । ]

§३९८ देवोंमे—प्रवेयकपर्यंत नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, देवोंके ओघसे सौधर्म ईशान स्वर्ग पर्यंत जानना चाहिए । एकेन्द्रिय आतप स्थावरके वधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । अधवकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक वा पारिणामिक भाव है । इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंके वधकों अवधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है । दोनोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है, अवधक नहीं है । भयनवासी, घ्राण व्यतर तथा ज्योतिषियोंमे क्षायिक भाव नहीं है ।

§३९९ औदारिक मिश्र काययोगमे—५ ज्ञानावरण, ६ दशानारण १० कपाय, भय, जुगुप्सा, तैनस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तथा ५ अतरायोंके वधकोंके कौन भाव

( १ ) आहारक आहारक मिश्रमें चार उज्वला और सात ताकपावोंके उदय प्राप्त देशघाती स्वधकोंकी उपशम सञ्जा है, कारण पूर्णतया चारित्रिके घातनेकी शक्ति वहाँ उपशम पाया जाता है । उहाँ ग्यारह चाण्डि माहनीयकी प्रकृतियोंके सञ्जाती स्वधकोंकी क्षय सञ्जा है क्योंकि उनका उदय भाव नष्ट हो चुका है । इस प्रकार क्षय और उपशमते उत्तर समय क्षायोपशमिक है । पूर्वोक्त ग्यारह प्रकृतियोंने उदयकी ही क्षयापशम सञ्जा है, कारण चारित्रिके घातनेकी शक्तिके अभावकी ही शयोपशम सञ्जा है । इस प्रकार क्षयापशमते उत्तर प्रमादयुक्त समय क्षयापशमिक है । ( घ० टी० भावाणु० पृ० ०२१ )

भावे ? रहगो भावे । थीणगिद्धि० ३ मिच्छत्त-अणताणु० ४ वंधगा त्ति को भावे । ओदइगो भावे । अवधगा त्ति को भावे ? रहगो वा खुयोवममिगो वा । णत्ति मिच्छत्त-पारिणामियो वि अत्थि । सादवघाअधगा त्ति को भावे ? ओदइगो भावे । अमाद-अधगा त्ति को भावे ? ओदइगो भावे । अअधगा त्ति को भावे ? ओदइगो वा रहगो वा । दोण्ण अधगा त्ति को भावे ? ओदइगो भावे । अअधगा णत्थि । इत्थि

है ? औदयिक भाव है । अअधकोंके कौन भाव है ? क्षायिक भाव है ।

[ विशेष—यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अवधक संयोग केवलीकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है । ]  
 त्यानगृद्धिन्निक, मिथ्यात्व और अनन्तानुपयी चारके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अअधकोंके कौन भाव है ? क्षायिक वा क्षायोपशमिक है । मिथ्यात्वके अवधकोंमें पारिणामिक भाव भी पाया जाता है ।

[ विशेष—शका—यहाँ औपशमिक भाव क्यों नहीं कहा गया ?

समाधान—चारों गतियोंके उपशमसम्यक्त्वी जीवोंका मरण न होने से इस योगमें उपशम सम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता ।

शका—उपशम श्रेणीपर चदत्त-उतरते हुए सयतनीवोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण पाया जाता है ।

समाधान—यह सत्य है, किन्तु उपशम श्रेणीमें मरनेवाले उपशमसम्यक्त्वोंके औदयिक मिश्रणयोग नहीं होता, कारण इनकी वधोंके विधाय अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है । ( घ० टी० भाषाणु० पृ० ७९ ) ]

साताके वधकों अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । असाताके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अअधकोंके कौन भाव है ? औदयिक वा क्षायिक भाव है । साता असाताके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है, अअधक नहीं है ।

[ विशेष—शका—जब साताके वधकों-अअधकोंमें औदयिक भाव कहा, तब असाताके वधकों अअधकमें औदयिक भाव ही कहना था । यहाँ असाताके वधकोंमें औदयिकके साथ क्षायिक भाव क्यों कहा है ?

समाधान—यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि औदारिक मिश्रयोगमें मिथ्यात्व, सासादन, अवि रति तथा संयोगनेरली गुणस्थान होने हैं । साताके अअधक अयोगनेरली ही होने, जिनने साताकी वध व्युच्छिन्न कर ली है । औदारिक मिश्रणयोगमें अयोगनेरली गुणस्थान न होनेसे साता असाताके युगलके अअधकोंका यहाँ अभाव कहा है ।

साता और असाताके वधकोंके औदयिक भाव है । साताका वध होनेपर असाताका वध नहीं होता और असाताका वध होनेपर साताका वध नहीं होता, कारण वे परस्पर प्रतिपक्षी प्रकृतियों हैं । एकत्र वध होनेपर अन्यत्र अवध होगा । यह अवध वधव्युच्छिन्नताका द्योतक नहीं है । अवधके अनन्तर तो पुन वध ही भी जाता है किन्तु जिस गुणस्थानमें वध व्युच्छिन्न

णतुसअंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा खइगो वा सयोनसमियो न । णररि णवुसगेसु पारिणामियो वि अत्थि । पुरिसवेदगेसु वधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा खइगो वा । तिण्ण वेदाण वधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवंधगा त्ति को भावो ? खइगो भावो । इत्थि णवुस० भगो दोआयु-दोगदि-चदुजादि-ओरालि० ५ पचसठा० ओरालिय अगो० छस्सघ० दोआणु० आदावुज्जो० अप्पसत्थयि० धाररादि० ४ दूमग दुस्सर-अणा० णीचागोद च । पुरिसवेदभगो चदुणोक्क०

हुई है उसमे आनेके पूर्व उस प्रकृतिका वध नहीं होगा। साताकी वधव्युच्छित्ति जय सयोगनेवली गुणस्थानमे होती है तत्र साताके अवधका अर्थ है असाताका वध। असाताकी वधव्युच्छित्ति प्रमत्तसयतमे होती है उसके पूर्व असाताके अवधका तात्पर्य साताके वधका होगा। प्रमत्त सयतके आगे असाताके अवधका भाव उसकी वधव्युच्छित्तिका होगा। इस कारण औदारिक मिश्रयोगकी अपेक्षा साताके अवधक तथा वचकने औदयिक भाव कहा है। कारण यहाँ साताके अवधकने असाताका वध होगा। असाता वेदनीयकी बात दूसरी है, वहा असाताके वधकके औदयिक भाव होगा और असाताके अवधक अर्थात् साताके वधक सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव होगा। असाताके अवधकके अप्रमत्त आदि गुणस्थान इस योगमे नहीं होंगे, इसलिए यहा औदयिक भावके साथ क्षायिक भाव भी असाताके अवधकके साथ जोडा गया है। साताका अवधक इस योगमे चतुर्व्य गुणस्थान पर्यन्त ही पाया जायगा, उसके असाताका वध होगा। इससे वचक अवधकके औदयिक भाव कहा है। ]

स्त्रीवेद, नपुसक वेदके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। इतना विशेष है कि नपुसक वेदके अवधकोंके पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

[ विशेष—इस योगमे उपशम सम्यक्त्वका अभाव होनेसे औपशमिक भाव नहीं कहा। ]

पुरुष वेदके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक वा क्षायिक भाव है।

[ विशेष—पुरुष वेदके अवधक किंतु स्त्री नपुसक वेदके वधकों की अपेक्षा औदयिक भाव कहा है। पुरुष वेदकी वधव्युच्छित्तियुक्त गुणस्थान इस योगमे सयोग केवलीका होगा उस अपेक्षासे क्षायिक भाव कहा है। ]

तीनों वेदोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अवधकोंके कौन भाव है ? क्षायिक भाव है।

[ विशेष—औदारिकमिश्र काययोगमे तीनों वेदोंके अवधक सयोगी जिन होंगे, इस कारण उपशम भाव न कहकर, क्षायिक भाव ही कहा है।

दो आयु, दो गति, चार जाति, औदारिक शरीर, पाच सस्थान, औदारिक अगोपाग, छद्म सहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रदास्त विहाययोगति, स्थावरादि चार, दुर्भंग, दुस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रके वधकोंका स्त्रीवेद, नपुसक वेदके समान जानना चाहिए। हास्यादि

भावो ? रइगो भावो । धीणगिदि० ३ मिच्छत्त-अणताणु० ४ वधगा त्ति को भावो । ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ? रइगो वा रयवसमिगो वा । णत्तं मिच्छत्त-परिणामियो ति अत्थि । सादवधानवधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । असाद-वधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा रइगो वा । दोणवधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा णत्थि । इत्थि

हैं ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन भाव है ? क्षायिक भाव है ।

[ विशेष—यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अवधक संयोग केरलीकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है । ]

स्थानशुद्धिक, सिव्यात्व और अनन्तानुबंधी चारके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवधकोंके कौन भाव है ? क्षायिक वा क्षायोपशमिक है । मिथ्यात्वके अवधकोंमें पारिणामिक भाव भी पाया जाता है ।

[ विशेष—शका—यहाँ औपशमिक भाव क्या नहीं कहा गया ?

समाधान—चारों गतियोंके उपशमसम्यक्त्वकी जीवोंका मरण न होने से इस योगमें उपशम सम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता ।

शका—उपशम श्रेणीपर चढते-उतरते हुए सयतचीवोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण पाया जाता है ।

समाधान—यह सत्य है, किन्तु उपशम श्रेणीमें मरनेवाले उपशमसम्यक्त्वके औदारिक मिश्रणयोग नहीं होता, कारण इनकी दृष्टिके सिवाय अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है । ( ध० टी० भाषाणु० पृ० २१९ ) ]

साताके वधकों अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । असाताके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकाके कौन भाव है ? औदयिक वा क्षायिक भाव है । साता असाताके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है, अवधक नहीं है ।

[ विशेष—शका—जब साताके वधका-अवधकोंमें औदयिक भाव कहा, तब असाताके वधकों अवधकोंमें औदयिक भाव ही कहना था । यह असाताके वधकोंमें औदयिकके साथ क्षायिक भाव क्यों कहा है ?

समाधान—यह यह ध्यान देना चाहिए कि औदारिक मिश्रणयोगमें मिथ्यात्व, सासादन, अधि रति तथा सयागकेवली गुणस्थान होते हैं । साताके अवधक अयोगकेवली ही होंगे जिनने साताकी वध व्युच्छित्ति कर ली है । औदारिक मिश्रणयोगमें अयोगकेवली गुणस्थान न होनेसे साता असाताके गुणके अवधकोंका यहा जभाव कहा है ।

साता और असाताके वधकोंके औदयिक भाव हैं । साताका वध होनेपर असाताका वध नहीं होता और असाताका वध होनेपर साताका वध नहीं होता, कारण ये परस्पर प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं । एकके वध होनेपर अन्यमा अवध होगा । यह अवध वधव्युच्छित्तिमा द्योतक नहीं है । अवधके अनन्तर तो पुन वध हो भी जाता है किन्तु जिस गुणस्थानमें वध व्युच्छित्ति

त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खङ्गो वा खयोवसमिगो वा । मिच्छ० [अ] वध० पारिणामियो भावो । साद-वधावंधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । असादवधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अ-वधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो खङ्गो वा । टोण्ण वधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अउधा (धगा) णत्थि । इत्थि णवुसउधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । ५  
अउधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो वा उउसमिगो वा खङ्गो वा खयोवसमिगो वा । णवुस० पारिणामियो भावो । पुरिस० वधगा त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अउधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो वा खङ्गो वा । तिण्ण वधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अवधगा त्ति को भावो ? खङ्गो भावो । एव इत्थिभगो त्तिरिक्खग०

वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है ।

[ विशेष—यहाँ उक्त प्रकृतियोंके अवधक अविरत सम्यक्त्वकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव कहे हैं । सयोगवेवलीकी भी अपेक्षा क्षायिक भाव है । ]

मिथ्यात्वके वधको(?)के कौन भाव है ? पारिणामिक है ।

[ विशेष यहाँ वधकोंके स्थान पर अवधक पाठ ठीक बैठता है, कारण पारिणामिक भाव सासादन गुणस्थान मे पाया जाता है जहाँ मिथ्यात्वका अउध है । ]

साताके वधकों अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । असाताके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अउधकोंके कौन भाव है ? औदयिक वा क्षायिक भाव है । साता असाता दोनोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है, अउधक नहीं है ।

स्त्रीवेद, नपुसकवेदके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है । नपुसकवेदके अवधकोंके पारिणामिक भाव पाया जाता है ।

[ विशेष—इसने अवधक सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंकी अपेक्षा पारिणामिक भाव कहा है । ]

पुरुष वेदके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक वा क्षायिक है ।

[ विशेष—इस योगमे पुरुषवेदके वधका अभाव सयोगवेवलीके होगा, वहा मोह क्षयजनित क्षायिक भाव है । अय वेदद्वयके वधकनी अपेक्षा औदयिक भाव भी कहा है । ]

तीनों वेदोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवधकोंके कौन भाव है ? क्षायिक है ?

[ विशेष—यहाँ सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है । ]

तिर्यचगति, चार सस्थान, चार सहनन, निर्यञ्चानुपूर्वी, उद्योत, अग्रस्तविद्यायोगति, दुर्भंग,



देवगदि-पंचिदि० वेउच्चि० समचदु० वेउन्नि० अगो० देनाथु० पत्तादु०  
 पसन्धनि० तस० ४ थिरादिदोष्णिपुगल सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं ३ ।  
 एव पत्तेणेण साभारणेण वि । दो आपुबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो ।  
 अवधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा रुइगो वा खयोत्तसमिगो वा पाणिगान्नि  
 ५ वा । एव दो अगो० छम्मघ० दो विहा० दो सर० किचि विमेसो जाणिरुण पडव० ।  
 सेमाण वधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ? रुइ  
 भावो । तित्थयर वधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ?  
 ओदइगो वा रुइगो वा ।

१४००. वेउच्चियका०-देवोष । वेउच्चि० मि० त चेत्त । पारि आयु णत्थि ।

१० १४०१. कम्मडगका० धुविगाण वधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अव  
 धगात्ति को भावो ? रुइगो भावो । धीणगिद्धित्थि मिच्छत्त अणत्ताथु० ४ वपणा

चार नोक्कपाय, दधगति, पंचंद्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र सस्थान वैत्रियिक अणोपग,  
 द्वावतुपूरी, परधान, उच्छ्वास प्रशस्तनिद्रायोगति, त्रस चार, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुक्क,  
 आदिय तथा उच्चगोत्रम पुरुषपदके समाप्त जानना चाहिए । इसी प्रकार प्रत्येक तथा सामान्य  
 जानना चाहिए । दो आयुके वधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन  
 भाव हैं ? औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक हैं ।

[ विशेष-इस योगमें उपशम सम्यक्त्व न होनेमें तथा उपशम पारित्रिका सदभाव न होनेके  
 कारण औपशमिक भाव नहीं कहा है । ]

इस प्रकार दो अगोपाग, छह सहना, दो विहायोगति, दो स्वरके विषयम किंचित्  
 विशेषताको जानकर भग निकल लेना चाहिए । दो प्रकृतियोंके वधकोंके कौन भाव हैं ?  
 औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन भाव हैं ? क्षायिक भाव है । तीधकर प्रकृतिके वधकोंके  
 कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक वा क्षायिक भाव है ।

[ विशेष-तीधकर प्रकृतिका वध न करनेवाले मिथ्यात्वीके दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा औदयिक  
 भाव कहा जा सकता है जयवा असयत सम्यक्त्वीका अनिरतत्व स्वय औदयिक है । तीधकर  
 प्रकृतिनी वध-व्युच्छिस्तियुक्त इस योगमें सरोगी चिनरी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है । ]

१४०० वैत्रियिक काययोगियोंमें देवोंने शोधयत्त जानना चाहिए ।

वैक्रियर मिधाययोगियों देवोंने शोधयत्त है । इनका विशेष है कि यहाँ आयुक्त  
 वध नहीं पाया जाता है ।

[ विशेष-इस योगमें मिथ्यात्वीके औदयिक, सासादन सम्यक्त्वीके पारिणामिक तथा असयत  
 सम्यक्त्वीके औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव हैं ]

१४०१ धार्मिक काययोगियों धुक्क प्रकृतियोंके वधकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है । अव  
 धकोंके कौन भाव हैं ? क्षायिक भाव है । त्त्यानगुद्धित्थिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुवधी चारके

ओदङ्गो भावो । अत्रधगा णात्थ । हस्सादि० ४ पत्तेगेण ओघमंगो । साधारणेण  
वधगा ओदङ्गो । अत्रध० उत्रममि० खड्गो० । एव सञ्वाण ओघ । णवरि जस०  
अज्जम० दोगोद पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयमगो ।

१४०३. एव पुरिस० णवुस० कोधादि० ४ । णवरि कोधे पुरिस० हस्समगो ।  
माणे तिण्ण सजलणा० । मायाए दोण्ण संजलणा० । लोभे लोभ-सजल० धुविगाण ५  
मगो । सेस-सजलण णिद्दामगो ।

वेदके अत्रधकोंमें औदयिक भाव है । सामान्यसे इनके वधकोंके औदयिक भाव है ।  
अत्रधकोंका अभाव है । हास्यादि चारका प्रत्येक में ओघवत् भग जानना चाहिए । सामान्यसे  
हास्यादिके वधकोंके औदयिक भाव है । अवधकोंके औपशमिक तथा क्षायिक भाव है । इस प्रकार  
शेष प्रकृतियोंमें ओघके समान भग जानना चाहिए ।

[ विशेष—हास्यादिके अत्रधक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होंगे । उनके उपशम तथा  
क्षायिक चारित्रकी दृष्टिसे औपशमिक तथा क्षायिक भाव कहे हैं ।

शका—अनिवृत्तिकरणमें कर्मोंका उपशम न होनेसे औपशमिक भाव कैसे कहा जायगा ?

समाधान—उपशम शक्तिसे समन्वित अनिवृत्तिकरणके औपशमिक भाव माननेमें आपत्ति  
नहीं है । इस प्रकार उपशम होने पर उत्पन्न होनेवाला तथा उपशम होने योग्य कर्मोंके उपशम-  
नार्थ उत्पन्न हुआ भाव औपशमिक कहलाता है । अथवा, भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले उपशम  
भावनमें भूतकालका उपचार करनेसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें औपशमिक भाव बन जाता है ।  
जैसे, सब प्रकारके असयममें प्रवृत्त चक्रवर्ती तीर्थंकरके 'तीर्थंकर' यह सज्ञाकरण बन जाता है ।

शका—अनिवृत्तिकरणमें मोहनीयका क्षय न होनेसे क्षायिक भावका कथन उचित नहीं है ।

समाधान—मोहनीयका एक देश क्षय करनेवाले वादरसाम्पराय सूक्ष्मसाम्पराय क्षयकोंके  
भी कर्मक्षयजनित भाव पाया जाता है । कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाए जानेसे अपूर्वकरण  
गुणस्थानमें भी क्षायिकभाव माना है । अथवा, उपचारसे अपूर्वकरण सयतके क्षायिक भाव मानना  
चाहिए, इसमें अतिप्रसंगकी आशा नहीं करनी चाहिए । कारण, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती  
अर्थके प्रसंगवश अतिप्रसंग दोषका परिहार होता है । ( ध० टी० भाषाणु० पृ० २०५-६ ) ]

शेष प्रकृतियोंमें इतना विशेष है कि यश कीर्ति, अयश कीर्ति, तथा दो गोत्रोंका प्रत्येक  
सामान्यकी अपेक्षा वेदनीयके समान भग है ।

१४०३ पुरुषवेद, नपुंसकवेद तथा क्रोध आदि चार कषायोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।  
विशेष यह है कि क्रोधमें, पुरुष वेदके वधकोंका हास्यके समान भग है । मानमें, तीन सज्वलन,  
मायामें, दो सज्वलन तथा लोभमें लोभ सज्वलनके वधकोंका ध्रुव प्रकृतिसे समान भग है, अर्थात्  
वधकोंके औदयिक और अत्रधकोंके औपशमिक तथा क्षायिक भाव हैं । सज्वलन कषायमें वध  
होनेवाली शेष प्रकृतियोंके वधकोंका निद्राके समान भग है । अर्थात् वधकोंके औदयिक,  
अवधकोंके औपशमिक तथा क्षायोपशमिक है ।

चदुसठा० चदुसघ० तिरिक्खाणु० उजो० अप्पसत्त्य० दूभग दुस्सर-अणा० पीचागोद  
 च । णुसुसकभगो चट्टादि हुडसठा० असपत्तसे० आदाय थायगदि० ४ । पुगिसभो  
 चदुणोक० दोगदि० पचिदि० दोसररीरममचदु० दोअगो० वज्जरिमभ० दो-आणु०  
 परघादुस्सा० पसत्थयि० तस० ४ थिरादि दोण्णि युगल सुभग-सुस्सर-आदे० उच्चागोद  
 ५ च । एव पत्तेणेण माधारणेण त्रि ओरालियमिस्स भगो ।

१४०२. इत्थिवेदेसु-पचना० चदुदम० चदुसज० पचतराडगाण वंधगा त्ति को  
 भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा णत्थि । थीणगिद्धि-तिय-मिच्छत्त-चारसक०  
 वधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो  
 वा खडगो वा खयोवसमिगो वा । मिच्छत्त० पारिणामि० । णिहापचना०  
 १० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगुरु० उप० णिमि० वधगा त्ति को भावो ?  
 ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खडगो वा ।  
 मादवधावधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । असाद-वधगा त्ति को भावो ?  
 ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा खडगो वा खयोवसमिगो  
 वा । दोण्ण वधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा णत्थि । तिण्ण वेदान  
 १५ पत्तेणेण ओघ । णवरि पुरिस० अवधगा त्ति ओदइगो भावो । साधारणेण वधा०

दुस्सर, अनादय, तथा नीच गोत्रका स्त्रीवेदके समान भग जानना चाहिए । चार जाति, हुण्डक  
 सस्थान, असम्प्राप्तपाठिका सहनन, आतप तथा श्वावरादि चार मे नपुसक, वेदके समान भग  
 जानना चाहिए । चार नोमपाय, दो गति, पचेन्द्रिय जाति, दो शरीर, समचतुरस्रसस्थान, दो अगो  
 पारा, उन्नवृषभसहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विद्यायोगति, ब्रस चार, स्थिरादि  
 दो युगल, सुभग, सुस्सर, आदय और उच्च गोत्रके वधकोंमे पुरुषवेदके समान भग जानना  
 चाहिए । प्रत्येक और सामान्यसे औदारिक मिश्रकाययोगके समान भग जानना चाहिए ।

१५०० स्त्रीवेदमे—५ ज्ञानानरण, ४ दर्शनानरण, ४ सज्जलन, ५ अतरायोके वधकोंके कौन  
 भाव है ? औदयिक है । अवधक नहीं है । स्थानगृह्णिक, मिथ्यात्व, चारह कपायके वधकोंके  
 कौन भाव है ? औदयिक है । अवधकके कौन भाव है ? औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक  
 भाव है । विशेष, मिथ्यात्वके अवधकोंके पारिणामिक भाव है । निद्रा, प्रचल्य, भय, जुगुप्सा,  
 तेजस, कामौण, वण ४, अगुरुहृद्यु, उपघात, निर्माणके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है ।  
 अवधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक तथा क्षायिक है ।

सालके वधकों अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है ।

[ विशेष—यहाँ सालके अवधकाक अमालाने वधककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है । ]

आसालाने वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवधकोंके कौन भाव है ?  
 औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक है । तैलेंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवधक  
 नहीं हैं । तीनों वेदोंमा पृथक् पृथक् रूपसे ओघवत् जानना चाहिए । विशेष यह है कि पुरुष

ओदङ्गो भावो । अत्रधगा णात्थ । हस्सादि० ४ पत्तेगेण ओघभंगो । साधारणेण वंधगा ओदङ्गो । अत्रध० उत्रममि० रुड्गो० । एव सव्वाणं ओघ । णवरि जस० अज्जस० दोगोद पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयमगो ।

§४०३. एव पुरिस० णरुंस० कोधादि० ४ । णवरि कोधे पुग्गि० हस्सभगो । माणे तिण्ण सजलणा० । मायाए दोण्ण सजलणा० । लोभे लोभ-सजल० धुविगाण ५ भगो । सेस-सजलण णिद्दामगो ।

वेदके अत्रधकोंमें औदयिक भाव है । सामान्यसे इनके वधकोंके औदयिक भाव है । अत्रधकोंका अभाव है । हास्यादि चारका प्रत्येक से ओघवत् भग जानना चाहिए । सामान्यसे हास्यादिके वधकोंके औदयिक भाव है । अवधकोंके औपशमिक तथा क्षायिक भाव है । इस प्रकार शेष प्रकृतियोंमें ओघके समान भग जानना चाहिए ।

[ विशेष—हास्यादिकके अत्रधक अनितृत्तिकरण गुणस्थानमें होंगे । उनके उपशम तथा क्षायिक चारित्रकी दृष्टिसे औपशमिक तथा क्षायिक भाव कहे हैं ।

शका—अनितृत्तिकरणमें कर्माका उपशम न होनेसे औपशमिक भाव कैसे कहा जायगा ?

समाधान—उपशम शक्तिसे समन्वित अनितृत्तिकरणके औपशमिक भाव माननेमें आपत्ति नहीं है । इस प्रकार उपशम होने पर उत्पन्न होनेवाला तथा उपशम होने योग्य कर्मोंके उपशमनाथ उत्पन्न हुआ भाव औपशमिक कहलाता है । अथवा, भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले उपशम भावमें भूतकालका उपचार करनेसे अनितृत्तिकरण गुणस्थानमें औपशमिक भाव बन जाता है । जैसे, सप्त प्रकारके असयममें प्रवृत्त चक्रवर्ती तीर्थंकरके 'तीर्थंकर' यह सङ्गाकरण बन जाता है ।

शक्य—अनितृत्तिकरणमें मोहनीयका क्षय न होनेसे क्षायिक भावका कथन उचित नहीं है ।

समाधान—मोहनीयका एक देश क्षय करनेवाले चारसाम्पराय सूक्ष्मसाम्पराय क्षयकोंके भी कर्मक्षयजनित भाव पाया जाता है । कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाए जानेसे अपूर्वकरण गुणस्थानमें भी क्षायिकभाव माना है । अथवा, उपचारसे अपूर्वकरण सयतके क्षायिक भाव मानना चाहिए, इसमें अतिप्रसंगकी आशा नहीं करनी चाहिए । कारण, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसंगरश अतिप्रसंग दोषका परिहार होता है । ( ध० टी० मानाणु० पृ० २०५-६ ) ]

शेष प्रकृतियोंमें इतना विशेष है कि यश कीर्ति, अयश कीर्ति, तथा दो गोत्रोंका प्रत्येक सामान्यकी अपेक्षा वेदनीयके समान भग है ।

§४०३ पुरुषवेद, नपुंसकवेद तथा क्रोध आदि चार कषायोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि क्रोधमें, पुरुष वेदके वधकोंका हास्यके समान भग है । मानमें, तीन सज्वलन, मायामें, दो सज्वलन तथा लोभमें लोभ सज्वलनके वधकोंका ध्रुव प्रकृतिके समान भग है, अर्थात् वधकोंके औदयिक और अत्रधकोंके औपशमिक तथा क्षायिक भाव हैं । सज्वलन कषायमें वध होनेवाली शेष प्रकृतियोंके वधकोंका निद्राके समान भग है । अर्थात् वधकोंके औदयिक, अवधकोंके औपशमिक तथा क्षायोपशमिक है ।

§४०४. अवगदवेदेसु—पचणा० चदुदस० चदुसज० जस० उच्चागोद-पचतराड  
गाणं वयगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो  
वा रुइगो वा । सादवध० को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ?  
रुइगो भावो ।

५ §४०५. अकमाइगेसु—साद-वधगा . ओदइगो भावो । अवधगा० रुइगो भावो ।

§४०६ एव केवलणा० यथासाद० केवल-दसणा० ।

§४०७ आभि० सुद० ओधि० मणपज्जव० सजद० जोधि० सम्मादि० रुइग०  
ओष । णरि मिच्छ-सपुत्ताओ वज्ज० ।

§४०८ सामाड० छेदो०—पचणा० चदुदस० लोभसजल० उच्चागोद-पचतराडगाण  
१० वंधगा० ओदइगो भावो । अवधा णत्थि । सेस नणपज्जव-भगो । परिहारे-देमापु-वध०

§२४ अपगत वेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सञ्चलन, यश कीर्ति, उच्च गौर  
तथा ५ अतरायोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । इनके अवधकोंके कौन भाव है ?  
औपशमिक तथा क्षायिक है ।

साता वेदनीयके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है ? अवधकोंके कौन भाव  
है ? क्षायिक भाव है ।

[ विशेष—अपगतवेदमे साताके अवधक अयोगवेगली होंगे, उनके क्षायिक भाव है । ]

§४०९. अकपायियोंमे—साताके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन  
भाव है ? क्षायिक भाव है ।

[ विशेष—शका—अकपाय मार्गणा नहीं बन सकती, कारण जीवका जैसे ज्ञानदर्शन गुण है,  
उसी प्रकार कपाय नामका भी गुण है । गुणने विनाश माननेपर गुणीका भी विनाश होगा ।  
इस प्रकार अकपायमार्गणा मानने पर जीवका अभाव हो जायगा ।

समाधान—ज्ञानदर्शनके समान कपाय नहीं है, अत एव कपाय जीवका लक्षण नहीं हो  
सकता । कर्मजनित कपाय मानने, जीवका लक्षण या गुण मानना अयुक्त है । कपायोंका कर्मसे  
उत्पन्न होना असिद्ध नहीं है, कारण कपायकी वृद्धि होने पर जीवके ज्ञानकी दानि अन्य प्रकारसे  
नहीं बन सकती, इसलिये कपायका कर्मसे उत्पन्न होना सिद्ध है । गुण गुणान्तरका विरोधी नहीं  
होता, क्योंकि अन्यत्र वैसा नहीं देखा जाता । ( घ० टी० भा० ५, पृ ००३ ) ]

§४०६ केवल ज्ञान, यथाख्यातसयम, केवल दर्शनमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§४०७ आभिनिबोधिक, धृत, अनधि ज्ञान, मन पर्ययज्ञान, सयम, अवधिदर्शन, सम्यग्दृष्टि,  
क्षायिक सम्यग्दृष्टिचे ओषवत् भाव जानना चाहिए । इतना विरोध है कि यहाँ मिथ्यात्वसयुक्त  
प्रकृतियाकी नहीं लेना चाहिए ।

§४०८ सामायिक छेदोपस्थापना सयममे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, लोभ सञ्चलन, उच्च  
गौर, तथा ५ अतरायोंके वधकोंके औदयिक भाव है । अवधक नहीं है । शेष प्रकृतियोंके वधकों  
अवधकोंमें मन पर्ययज्ञानके समान भग जानना चाहिए ।

ओदङ्गो भावो । अवध० ओदङ्ग० खयोवसमिगो वा । एवं असादादिछ० । सेस ओदङ्ग० भावो ।

§४०९ सुहुमस०-सजदासजद-सन्नाण वध० ओदङ्ग० । असजद० तिणिण ले०-तिरिक्खोघ । णवरि अपच्चक्खणाणा० ४ अन्धगा णत्थि । तित्थय० वधगा अत्थि ।

§४१० तेऊए-पचणा० छदसणा० चदुसज० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० ४ ५ वादर-पज्जत्त पचेय-णिमि० पचत्त० वधगा० ओदङ्गो भावो । अवधगा णत्थि । थीणगिद्धि० ३ अणत्ताणुनधि० ४ वधगा० ओदङ्गो भावो । अन्धगा त्ति उवसमि० सङ्ग० सयोनस० । मिच्छत्त० ओघ । साद० रंधा-अवधगा त्ति ओदङ्गो भावो । असाद० वध० ओदङ्गो भावो । अवध० ओदङ्ग० सयोनसमिगो वा । दोण्ण वधा०

परिहारविशुद्धि सयममे—देवायुके वधकोंके औदयिक भाव है । अन्धकोंके औदयिक तथा क्षायोपशमिक भाव है ।

[ विशेष—परिहारविशुद्धि सयम प्रयत्न अप्रमत्त गुणस्थानमे पाया जाता है । वहाँ देवायुके अन्धक अर्थात् वध न करनेवाले जीवोंके चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है । अन्य प्रकृतियोंके वधकोंकी अपेक्षा औदयिक भाव है । ]

इसी प्रकार असाता, अस्थिर, अशुभ, अयश कीति, शोक तथा अरतिमे जानना चाहिए । जेपमें औदयिक भाव है ।

§४०९ सूद्धमसापराय तथा सयमासयममे—सव प्रकृतियोंके वधकोंके औदयिक भाव है । असयतों तथा कृष्णादि तीन लेश्यावालोमे—तियचोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ अप्रत्याट्यानावरण ४ के अवधक नहीं है ।

[ विशेष—अप्रत्याट्यानावरण ४ के अवधक देशसयमी होते हैं उनका यहो अभाव है, कारण अशुभ त्रिक लेश्या असयतोंमे ही होती है । ]

इतना विशेष है कि जहा तियचोंमे तीर्थंकर प्रकृतिका वध नहीं होता, वहाँ यहाँ तीर्थंकर प्रकृतिका वध होता है ।

§४१० तजोलेश्यामे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, भयद्विक, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अतरायोंके वधकोंके औदयिक भाव है । अन्धक नहीं है ।

[ विशेष—तेजोलेश्या अप्रमत्त सयतपर्यन्त पायी जाती है, अत यहाँ ज्ञानावरणादिके अवधक नहीं पाये जाते हैं । ]

स्त्यानशुद्धित्रिक, अनताणुधी ४ के वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अन्धकोंके कौन भाव है ? आपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक है । मिथ्यात्वमे ओघने समान है । साता वेदनीयके वधकों अवधमें औदयिक भाव है ? आसताके बन्धकोंमे औदयिक भाव है । अन्धकोंके कौन भाव है । औदयिक अथवा क्षायोपशमिक भाव है ।

[ विशेष—असाताकी वधव्युच्छित्तियुक्त अप्रमत्त गुणस्थानकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव है । असाताके अवधक किन्तु साताके वधककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है । ]

§४०४ अगदवेदेसु-पचणा० चदुदस० चदुसंज० जस० उच्चागोद-पचतराद्  
गाण वधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ? उवसार्गो  
वा खइगो वा । सादवध० को भावो ? ओदइगो भावो । अवधगा त्ति को भावो ?  
खइगो भावो ।

५ §४०५. अकसाइगेसु-साद-वधगा-ओदइगो भावो । अवधगा० खइगो भावो ।

§४०६. एव केवलणा० यधाराद० केवल-दसणा० ।

§४०७. आभि० सुद० ओधि० मणपज्जव० सजद० जोधि० सम्मादि० खइग०  
ओष । णपरि मिच्छ-संपुत्ताओ वज्ज० ।

§४०८ सामाड० छेदो-पचणा० चदुदस० लोमसजल० उच्चागोद-पचतराद्गाण  
१० वधगा० ओदइगो भावो । अवधा णत्ति । सेस मणपज्जव-भगो । परिहारे-डेवापु-वप०

§४०९ अपगत वेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सञ्चलन, चक्षु कीर्ति, उच्च गौर  
तथा ५ अतरायके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । इनके अवधकोंके कौन भाव है ?  
औपशमिक तथा क्षायिक है ।

साता वेदनीयके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है ? अवधकोंके कौन भाव  
है ? क्षायिक भाव है ।

[ विशेष-अपगतवेदमे साताके अवधक अयोगकेवली होंगे, उनके क्षायिक भाव है । ]

§४०५ अकपायिणोम—साताके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन  
भाव है ? क्षायिक भाव है ।

[ विशेष-शरा-अकपाय मार्गणा नहीं बन सकती, कारण जीवका जैसे ज्ञानदर्शन गुण है,  
उसी प्रकार कपाय नामका भी गुण है । गुणके विनाश माननेपर गुणीका भी विनाश होगा ।  
इस प्रकार अकपायमार्गणा मानने पर जीवका अभाव हो जायगा ।

समापान—ज्ञानदर्शनके समान कपाय नहीं है, अत एव कपाय जीवरू लक्षण नहीं हो  
सकता । कर्मजनित कपाय भावको, जीवका लक्षण या गुण मानना अयुक्त है । कपायोंका कर्मसे  
उत्पन्न होना असिद्ध नहीं है, कारण कपायकी वृद्धि होने पर जीवके ज्ञानकी हानि अथ प्रभारसे  
नहीं बन सकती, इसलिये कपायका कर्मसे उत्पन्न होना सिद्ध है । गुण गुणान्तरका विरोधी नहीं  
होता, क्योंकि अन्यत्र देसा नहीं देसा जाता । ( ध० टी० भावा० ५, पृ २२३ ) ]

§४०६ केवल ज्ञान, यथाख्यातसयम, केवल दर्शनमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।

§४०७ आभिनिवोधिव, श्रुत, अवधि ज्ञान, मन पर्ययज्ञान, सयम, अवधिदर्शन, सम्यग्दृष्टि,  
क्षायिक सम्यग्दृष्टिके ओषवत् भाव जानना चाहिए । इतना निगेष है कि यहाँ मिथ्यात्वसयुक्त  
प्रकृतियोंको नहीं लेना चाहिए ।

§४०८ सामायिण छेदोवस्थापना सयममे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, लोम सञ्चलन, उच्च  
गौर, तथा ५ अतरायोंके वधकोंके औदयिक भाव है । अवधक नहीं हैं । गेष प्रकृतियोंके वधकों  
अवधकमें मन पययज्ञानने समान भग जानना चाहिए ।

§४११ एष मन्माए, एइदिय० आदाव धावर वज्ज ।

§४१२ वेदगे-पुत्रिगाणं वधगा० ओदडगो भावो । अंधा णत्थि । सेसाणं

तेउ-भंगो । उवसम०-पंचणा० छटस० चदुसज० पुरिस० मयदु० तेजाक० वण्ण० ४  
पंचिदि० अगुरु० ४ पसत्थयि० तस० ४ सुभग-सुस्तर-आदे० णिमि० तित्थयर०  
उच्चागोदं पचत्त० वधगा त्ति को भापो ? ओदडगो भापो । अणव० उणसमियो भापो । ५  
साद उधा-अवध० ओदडगो भावो । असाद-वधगा त्ति को भापो ? ओदड० । अणंधगा  
त्ति० ओदडग० उवस० सयोवस० । दोण्ण वधगा० ओदड० । अणधा णत्थि ।  
अट्टकमा० वध० ओदडगो भावो । अणव० उणम० सयोवसमिगो वा । इम्मरदि०

§४११ पदलेख्यामे—इसी प्रकार जानना चाहिए । 'त्रिगोप यह है कि यहाँ एकन्द्रिय, आतप तथा स्थानर प्रकृतियोंको नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

§४१२, वेदकसम्यक्त्वमे—ऋष प्रकृतियोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधक नहीं हैं ।

[ विशेष—वेदकसम्यक्त्व अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है और ऋष प्रकृतियोंके अवधक उपजातम्पायी होते हैं । इस कारण यहाँ ऋष प्रकृतियोंके अवधक नहीं कहा है । ]

गोप प्रकृतियोंमें तेजोदेहोंके समान भग है ।

उपशम सम्यक्त्वमे—५ ज्ञानावरण, स्थानगृह्णित्विक रहित ६ दर्शनावरण, ४ सज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तेजम-कार्माण शरीर, उर्ण ७, पचेन्द्रिय जाति, अगुरुलघु, प्रशस्त जिहायो-गति, व्रस ४, सुभग, सुस्तर, आन्य, निर्माण, तीर्थाकर, उचगोत्र तथा पाच अतरायोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके औपशमिक भाव है । साता वेदनीयके वधकोंके औदयिक भाव है ? औदयिक भाव है । असाता वेदनीयके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक तथा क्षायोपशमिक है ।

[ विशेष—क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्वोंके नहीं होगा, अतः क्षायोपशमिक भाव चारित्रमोहनीयके क्षयोपशमकी अपेक्षा जानना चाहिए । ]

साता असाताके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवधक नहीं हैं । आठ वधायोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक या क्षायोपशमिक है ।

[ विशेष—अप्रमत्तगुणानावरण ७, प्रत्यास्थानावरण ४ के अवधकोंके अप्रमत्तसयन गुणस्थान होगा । यहाँ उपशमसम्यक्त्वकी अपेक्षा औपशमिक भाव है तथा चारित्रमोहनीयके क्षयोपशमकी अपेक्षा क्षायोपशमिक चारित्ररूप क्षायोपशमिक भाव है । उपशमसम्यक्त्वोंके दर्शन मोहका क्षय न होनेसे क्षायिक भाव नहीं कहा है । ]



ओदङ्गो भावो । अवधा णत्थि । एत्तं चटुणोरु० विरादि-तिण्णिणुगल-इत्थिणुसु०  
 वधगा ओदङ्गो भावो । अवधगा ओदङ्ग० उरसमि० रडङ्गो० रयोम० । णुसु०  
 पारिणामि० । पुरिसवे० वधा अर० ओदङ्गो भावो । तिण्णि रंधा० ओदङ्गो भावो ।  
 अरणा णत्थि । तिरिक्खायुवधा० ओदङ्गो भावो । अवधगा ओदङ्ग० उरस० खर०  
 ५ रयोवस० । मणुम-देवायु रधा० ओदङ्ग० । अवधगा ओदङ्ग० रयोम० । तिण्णि  
 आयु० वधा० ओदङ्ग० । अवध० जोदङ्ग० रयोम० । इत्थिणुसुग-भगो तिरिक्खगदि  
 एहंदिपनादि पचमठा० पचसघ० तिरिक्खाणु० आदा-उज्जो० अप्पसत्थवि० धावरदूम  
 दुस्सर-अणा० णीचानाद च । मणुसगदि-ओगलि० ओरालि० जगो० पज्जिमि०  
 मणुमाणु० वध० ओदङ्गो भावो । अव० ओदङ्ग० रयोवसमिगो वा । दवगदि० ४  
 १० पचिदि० आहादुग-समचटु० पसत्थवि० तस० सुमग-सुस्वर-आदे० तिथ्य० वध० अव०  
 ओदङ्गो भावो । तिण्ण गदीण वध० ओदङ्ग० । अवधगा णत्थि । एदंण वीज्जपदेण पेद्व्व ।

साता-असाता दोनोंके वधकोंके औदयिक भाव है । अवधक नहीं है । इस प्रकार  
 ४ नोकपाय, विधरादि ३ युगल, स्त्रीवेद, नपुसर्ववेदके वधकाके औदयिक भाव है । अवधकोंके  
 औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है । विशेष यह है कि नपुसर्ववेदके  
 अवधकोंमें पारिणामिक भाव भी है ।

पुरुषवेदके वधकों अवधकाके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । तीनों वेदोंके  
 वधकोंमें औदयिक भाव है । अवधक नहीं है । तिर्यचायुके वधकोंमें औदयिक भाव है ।  
 अवधकोंमें औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है ।

[ विशेष-अविरतसम्पत्तीके अन्य आयुर्वकी अपेक्षा औदयिक भाव है तथा तिर्यचायुके  
 अवधक सम्पत्तरययालोको अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है ।  
 वृगविरत, प्रमत्त, अप्रमत्तकी अपेक्षा क्षायोपशमिक है । ]

मनुष्यायु देवायुके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके औदयिक, क्षायो  
 पशमिक भाव है । तिर्यच-मनुष्य-देवायुके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है ।

[ विशेष-तेनोलेरयामे नरनायुका वध नहीं होनेसे उमका ग्रहण नहीं किया है । ]

आयुर्वयने अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक तथा क्षायोपशमिक है । तिर्यचगति, एनेन्द्रिय  
 जाति, ५ सस्थान, ५ सहनन, तिर्यचायुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थानर, दुर्भंग,  
 दुस्तर, अनादय तथा नीच गौरमे स्त्रीवेद, नपुसक वेदके समान भग जानना चाहिए । अर्थात्  
 वधकोंके औदयिक है । अवधकोंके औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक है ।

मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, यज्ञद्वयमसहनन तथा मनुष्याउ-  
 पूर्वीके वधकाके औदयिक भाव है । अवधकोंके औदयिक वा क्षायोपशमिक भाव है ।

दवगति ८, एचेन्द्रिय जाति, आहाररुद्धिक, समचतुरस्रमस्थान, प्रशस्त विहायोगति,  
 उरस, सुभग, सुस्वर आदय तथा तीर्यकरके वधकों अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है ।  
 हीन गतियों वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधक नहीं है । इसी वीनपदके  
 द्वारा अन्य प्रकृतियोंका वर्णन जानना चाहिए ।

§४११ एव पम्माए, एइदिय० आदान-थावर वज्ज ।

§४१२ वेदगे-धुविगाण वधगा० ओदङ्गो भावो । अवंधा णत्थि । सेसाणं तेउ भगो । उवसम०-पचणा० छदस० चदुसज० पुरिस० भयदु० तेजाक्क० वण्ण० ४ पच्चिदि० अगुरु० ४ पसत्थधि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आटे० णिमि० तित्थयर० उच्चागोद पचत० वधगा त्ति को भागो ? ओदङ्गो भागो । अत्रध० उवसमियो भागो । ५ साद वधा-अवध० ओदङ्गो भागो । असाद वधगा त्ति को भावो ? ओदङ्ग० । अत्रधगा त्ति० ओदङ्ग० उवस० एयोउस० । दोण्ण वधगा० ओदङ्ग० । अत्रध णत्थि । अट्टकसा० वध० ओदङ्गो भावो । अत्रध० उवस० एयोवसमिगो वा । हस्सरदि०

§४११ पद्मलेख्यामे-इसी प्रकार जानना चाहिए । 'विशेष यह है कि यहाँ एकेन्द्रिय, आतप तथा स्थानर प्रकृतियोंको नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

§४१२ वेदकसम्यक्त्वमे-ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंके कौन भाग है ? औदयिक भाव है । अवधक नहीं है ।

[ विशेष-वेदकसम्यक्त्व अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है और ध्रुव प्रकृतियोंके अवधक उपशतकपायी होते हैं । इस कारण यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अत्रधक नहीं कहा है । ]

शेष प्रकृतियोंमें तेजोलेख्याके समान भग है ।

उपशम सम्यक्त्वमे-५ ज्ञानानरण, स्थानगृह्णित्वा रहित ६ दर्शनानरण, ४ सञ्चलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तेजस कार्माण शरीर, वर्ण ४, पचेन्द्रिय जाति, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आत्थेय, निर्माण, तीर्थकर, उच्च गोर तथा पाच अतरायोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके औपशमिक भाग है । साता वेदनीयके वधकों अत्रधकों के कौन भाग है ? औदयिक भाव है । असाता वेदनीयके वधकोंके कौन भाग है ? औदयिक भाव है । अत्रधकोंके कौन भाग है ? औदयिक, औपशमिक तथा क्षायोपशमिक है ।

[ विशेष-क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्वके नहीं होगा, अत्र क्षायोपशमिक भाव चारित्रमोहनीयके क्षयोपशमकी अपेक्षा जानना चाहिए । ]

साता असाताके वधकोंके कौन भाग है ? औदयिक है । अवधक नहीं हैं । आठ कपायोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक वा क्षायोपशमिक है ।

[ विशेष-अप्रत्याख्यानारण ५, प्रत्याख्यानारण ५ के अवधकोंके अप्रमत्तसयत गुणस्थान होगा । वहाँ उपशमसम्यक्त्वकी अपेक्षा औपशमिक भाव है तथा चारित्रमोहनीयके क्षायोपशमकी अपेक्षा क्षायोपशमिक चारित्ररूप क्षायोपशमिक भाग है । उपशमसम्यक्त्वके दर्शन मोहका क्षय न होनेसे औदयिक भाव नहीं कहा है । ]

जोदङ्गो भावो । अंधा णत्थि । एण चट्ठणोरु० विरादि तिण्णियुगल-इत्थि-णत्थु०  
 वधगा जोदङ्गो भावो । अणधगा ओदङ्ग० उवसमि० खड्गो० खयोमम० । णत्थु०  
 पारिणामि० । पुरिसवे० वधा अण० ओदङ्गो भावो । तिण्णि वंधा० ओदङ्गो भावा ।  
 अणधगा णत्थि । तिरिक्खाणुणधा० ओदङ्गो भावो । अणधगा ओदङ्ग० उवस० खड्ग०  
 ५ खयोवम० । मणुस-देवायु वधा० ओदङ्ग० । अणधगा ओदङ्ग० खयोव० । तिण्णि  
 आयु० वधा० ओदङ्ग० । अणध० ओदङ्ग० खयोव० । इत्थि-णत्थुसग-भगो तिरिक्खगदि  
 एइदियजादि पचसठा० पचमघ० तिरिक्खाणु० आदा-उज्जो० अप्पसत्थि० धाररुग्ग  
 दुस्सर-श्रणा० णीचागाद च । मणुसगदि-ओरालि० ओगलि० जगो० वज्जिस०  
 मणुसाणु० वध० ओदङ्गो भावो । जव० ओदङ्ग० खयोवममिगो वा । देवगदि० ४  
 १० पच्चिदि० जाहारदुग-समचदु० पसत्थि० तस० सुमग सुस्सर-आदे० तित्थि० वध० अण०  
 ओदङ्गो भावो । तिण्ण गदीण वध० ओदङ्ग० । अणधगा णत्थि । एदण धीजपदेण णेदण्य ।

साता-असाता दोषोंके षड्विंशको अौदयिक भाव हैं । अवधक नहीं हैं । इम प्रकार  
 ४ नोकपाय, स्थिरादि ३ युगल, स्त्रीवेद, नपुसकवेदके षड्विंशको अौदयिक भाव हैं । अणधकों  
 अौदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं । विशेष यह है कि नपुसकवेदके  
 अणधकोंमें पारिणामिक भाव भी हैं ।

पुरुषवेदके षड्विंशको अवधकोंके कौन भाव हैं ? अौदयिक भाव हैं । तीनों वेदोंके  
 षड्विंशमें अौदयिक भाव हैं । अणधक नहीं हैं । त्रिचंद्याने षड्विंशमें अौदयिक भाव हैं ।  
 अवधकोंमें अौदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं ।

[ विशेष-अनिरतसम्यक्त्वोंके अन्य आयुषधकी अपेक्षा अौदयिक भाव हैं तथा त्रिचंद्याके  
 अणधक सम्यक्त्वत्रयसालोंके अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं ।  
 देशनिरत, प्रमत्त, अप्रमत्तकी अपेक्षा क्षायोपशमिक हैं । ]

मनुष्यायु देवायुके षड्विंशको कौन भाव हैं ? अौदयिक भाव हैं । अवधकोंके अौदयिक, क्षायो  
 पशमिक भाव हैं । त्रिचंद्या-मनुष्य द्वायुके षड्विंशको कौन भाव हैं ? अौदयिक हैं ।

[ विशेष-नेत्रोत्थेयमें नरकायुका वध नहीं होनेसे उसका ग्रहण नहीं किया है । ]

आयुषधके अणधकोंके कौन भाव हैं ? अौदयिक तथा क्षायोपशमिक हैं । त्रिचंद्यागति, एनेन्द्रिय  
 जालि, ५ सन्धान, ५ सहनन, त्रिचंद्यापूर्वी, आनप, उद्योत, अप्रशान्त विहायोगति, स्वाधर, दुमग,  
 दुस्सर, अनात्थ तथा नीच गोत्रम स्त्रीवेद, नपुसक वेदके ममान भग जानना चाहिए । अर्थात्  
 षड्विंशमें अौदयिक हैं । अणधकोंमें औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक हैं ।

मनुष्यागति, अौदारिक शरीर, अौदारिक अगोपाग, वधवृषभसहनन तथा मनुष्यायु-  
 पूर्वीमें षड्विंशको अौदयिक भाव हैं । अणधकोंके अौदयिक वा क्षायोपशमिक भाव हैं ।

देवगति ४, पचेन्द्रिय जाति, जाहाररुद्धिन, समचतुरस्रसन्धान, प्रशान्त विहायोगति,  
 प्रस, सुमग, सुस्सर, आदेश तथा तीर्थकरके वधका अवधकोंके कौन भाव हैं ? अौदयिक भाव हैं ।  
 तीन गतियोंके षड्विंशको कौन भाव हैं ? अौदयिक भाव हैं । अणधक नहीं हैं । इसी नीतपदे  
 द्वारा अथ षड्विंशको वर्णन जानना चाहिए ।

§४११ एव पम्माए, एइदिय० आदाव-थावर वज्ज ।

§४१२ वेदगे-धुविगारणं वधगा० ओदङ्गो भावो । अण्धा णत्थि । सेसाण तेउ भगो । उवसम०-पंचणा० छदस० चट्टसज्ज० पुरिस० भयदु० तेजाक० वण्ण० ४ पच्चिदि० अगुरु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० तित्थयर० उच्चागोद पंचत० वधगा चि को भागो ? ओदङ्गो भागो । अवध० उवसमियो भावो । ५ साद पधा-अनध० ओदङ्गो भागो । असाद वधगा चि को भागो ? ओदङ्ग० । अनधगा चि० ओदङ्ग० उवस० सयोवस० । दोण्ण वधगा० ओदङ्ग० । अनधा णत्थि । अट्टकसा० वध० ओदङ्गो भावो । अवव० उवस० सयोवसमिगो वा । हस्सरदि०

§४११ पञ्जालेरयामे—इसी प्रकार जानना चाहिए । 'विशेष यह है कि यहाँ एकेन्द्रिय, आतप तथा स्थानर प्रकृतियोंको नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

§४१२ वेदकसम्यक्त्वमे—ध्रुव प्रकृतियोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधक नहीं है ।

[ विशेष—वेदकसम्यक्त्व अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है और ध्रुव प्रकृतियोंके अवधक उपशातकपायी होते हैं । इस कारण यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अवधक नहीं कहा है । ]

शेष प्रकृतियोंमे तेजोलेख्याके समान भग है ।

उपशम सम्यक्त्वमे—५ ज्ञानानरण, स्थानगृह्णित्वा रहित ६ दर्शानारण, ४ सज्जलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस कामाण शरीर, वर्ण ४, पचेन्द्रिय जाति, अगुरुलघु, प्रशस्त विद्यायोगति, व्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदय, निर्माण, तीर्थंकर, उद्य गोत्र तथा पाच अतरायोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके औपशमिक भाव है । साता वेदनीयके वधकों अनधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । असाता वेदनीयके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक तथा क्षायोपशमिक है ।

[ विशेष—क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्वकी नहीं होगा, अत क्षायोपशमिक भाव चारित्रमोहनीयके क्षयोपशमकी अपेक्षा जानना चाहिए । ]

साता असाताके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अवधक नहीं है । आठ कपायोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके कौन भाव है ? औपशमिक वा क्षायोपशमिक है ।

[ विशेष—अप्रत्याख्यानारण २, प्रत्याख्यानारण ४ के अवधकोंके अप्रमत्तसयत्त गुणस्थान होगा । यहाँ उपशमसम्यक्त्वकी अपेक्षा औपशमिक भाव है तथा चारित्रमोहनीयके क्षयोपशमकी अपेक्षा क्षायोपशमिक चारित्ररूप क्षायोपशमिक भाव है । उपशमसम्यक्त्वकी दृष्टान मोहका क्षय न होनेसे क्षायिक भाव नहीं कहा है । ]

बधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अन्ध० ओदङ्गो वा उवसमिगो वा । अरति-  
मोग बधगा ति ओदङ्ग० । अन्धगा० जोदङ्ग० उरम० ररयो० । दोण्ण बधगा ति  
ओदङ्ग० । अन्ध० उरसमिगो भावो । एव दोगदि-दोआणु० दोसररर दोअगोनग-  
आहारदुग-धिरादि-त्तिण्णियुगल ।

५ §४१२ अणाहारं कम्मङ्गभगो । णवरि साद० ओच । साधारणेण वि ओर ।  
मिच्छत्त-सजुताओ सोलस पगदीओ ओघाओ । सञ्चत्थ याव अणाहारग ति उवगा  
त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अन्धगा ति को भावो ? ओदङ्गो वा उरसमिगो  
वा सङ्गो वा उरयोवसमिगो वा पारिणामिओ वा भावो ।

एव भाव समत्त ।



हास्य रतिके बधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबधकोंके कौन भाव है ?  
औदयिक वा औपशमिक है । अरति शोकके बधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अब-  
धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, क्षायोपशमिक तथा औपशमिक भाव है ।

[ विशेष—अरति शोकके अबधक किन्तु हास्य-रतिके उधकनी दृष्टिसे औदयिक भाव हैं ।  
अरति, गोमरी बध-व्युत्ति प्रसन्नमयनोंके होनी हैं । अत एव अरति, शोकके अबधक अप्रसन्न  
सयवोंकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है । सम्यक्त्वकी अपेक्षा औपशमिक कहा है, कारण,  
यहाँ उपशमसम्यक्त्वकी अपेक्षा वर्णन है । ]

हास्य-रति, अरति शोक इन दोनों युगलोंके बधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है ।  
अन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक भाव है ।

[ विशेष—इन चारोंके अबधक अनिवृत्तिपरण गुणस्थानवर्ती होंगे, वहाँ चारित्रमोहनीयरी  
अपेक्षा औपशमिक भाव कहा है । ]

इस प्रकार मनुष्य-देव गति, दो जानुपूर्वा, औदारिक वैश्विक शरीर, २ अगोपाग  
आहारकद्विक, स्थिरादि तीन युगलोंके बधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबधकोंके  
कौन भाव है ? औपशमिक भाव है ।

§४१२ अनाहारकमे—कर्मणि-काययोगके समान भग है । विशेष यह है कि यहाँ सात्ता वेद-  
नीयना जोरत्त भग जानना चाहिए । इसी प्रकार सामान्यसे भी ओघवत्त जानना चाहिए ।  
मिथ्यात्व समुक्त १६ प्रकृतियोंका ओघवत्त भग है । सर्वोपसिद्धिसे लेकर अनाहारकपर्यन्त  
बधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अबधकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक,  
क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक है ।

इस प्रकार भाजानुगम समाप्त हुआ ।

( १ ) मिच्छत्तुदुच्छदा उपचेयवन्थावरादात् । सुहुमतिव विवत्तिदी णिरयुणिरयायुग मिच्छे ॥  
-गो० क० भा० १५ ।

## [ अप्पावहुगपरूवणा ]

§४१४ अप्पावहुग दुविध, जीन-अप्पावहुग चैव, अद्दा-अप्पावहुगं चैव । तत्थ जीन-अप्पावहुग दुविध, सत्थाण परत्थाण च । सत्थाण-जीनअप्पावहुगे दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य ।

§४१५. तत्थओघेण सच्चत्थोना पचणाणावरण अनधगा जीना, [बंधगा] अणत्तगुणा ।

§४१६. सच्चत्थोना चट्टुदसणावरण अवधगा जीना । णिदापचलाण अनधगा जीवा विसेसाहिया । थीणगिट्ठि० ३ अवधगा जीवा विसेसाहिया । चवगा जीवा अणत्तगुणा । णिदापचलावधगा जीवा विसेसाहिया । चट्टुदस० चधगा जीवा विसेसाहिया ।

§४१७. सच्चत्थोवा सादासादाण दोण्ण पगदीण अवधगा जीवा । सादवधगा जीवा अणत्तगुणा । असादवधगा जीना सखेज्जगुणा । दोण्ण वधगा जीवा विसेसाहिया ।

## [ अल्पवहुत्व ]

§४१४ अल्पवहुत्वके दो भेद हैं । एक जीव अल्पवहुत्व, दूसरा काल अल्पवहुत्व । जीव अल्पवहुत्व भी स्वस्थान जीव अल्पवहुत्व, ओर परस्थान जीव अल्पवहुत्वके भेदसे दो प्रकार है ।

[ विशेष—अल्पता, नहुलताका वर्णन करनेवाला अनुगम अल्पवहुत्वानुगम है । ओघवर्णन में अभेद दृष्टि को ग्रहण करनेवाले द्रव्याधिक नयका अवलम्बन लिया जाता है । आदेश वर्णनमें भेदयुक्त दृष्टि को ग्रहण करनेवाले पर्यायाधिक नयका आश्रय लिया गया है ।<sup>१</sup> ]

स्वस्थान जीव अल्पवहुत्वमें ओघ तथा आदशसे दो प्रकार निर्देश किया जाता है ।

§४१५ ओघसे—५ ज्ञानावरणके अवधक जीव सत्तसे कम है । [ बन्धक ] जीव उनसे अनन्तगुणों है ।

§४१६ चार दर्शनावरणके अनधक जीव सत्तसे कम हैं । निद्रा, प्रचलाके अनधक जीव इनसे विशेष अधिक हैं । स्थानगृद्धिनिवृत्ते अनधक जीव विशेषाधिक हैं । इनके बन्धक जीव अनन्तगुणों हैं । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । चार दर्शनावरणके बन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हैं ।

§४१७ साता असाता दोनों प्रवृत्तियोंके अनधक जीव सत्तसे कम अर्थात् स्तोक हैं । साताके बन्धक जीव अनन्तगुणों हैं । असाताके बन्धक जीव सत्त्यातगुणित हैं । दोनोंके बन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हैं ।

(१) अप्प च न्हञ्च च अप्पावहुवाणि । तेसिण्णुगमा अप्पावहुवाणुगामो । तेण अप्पावहुवाणुगमेण निदेसा दुविहा होदि । ओघो आदेसात्ति । सगहिदवयणसलावो दव्वट्ठियणिवधणो ओघो णाम । असगहिदवयणसलावा पुच्चिलत्थानवयणिवो पत्तवट्ठियणिवधो आदेसो णाम । -ध० टी० अप्पावहु० पृ० २३३ ।

वधगात्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अथ० ओदङ्गो वा उवसमिगो वा । अरति  
सोम वधगा ति ओदङ्ग० । अन्धगा० जोदङ्ग० उवम० खयोव० । दोष्ण वधगा ति  
ओदङ्ग० । अथ० उवसमिगो भावो । एव दोगदि-दोआणु० दोसरीर दोअगोवग  
आहारदुग थिरादि तिष्णिण्युगल ।

- ५ [४१३ अणाहारे-कम्मङ्गभगो । णरि साद० ओघ । साधारणेण वि ओप ।  
मिच्छत्त-सजुत्ताओ सोलस-पगदीओ ओघाओ । सञ्चत्थ यान अणाहारग ति वधगा  
त्ति को भावो ? ओदङ्गो भावो । अथ० वधगा ति को भावो ? ओदङ्गो वा उवसमिगो  
वा सङ्गो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिओ वा भावो ।

एव भाव समत्त ।



हास्य रतिने वधकोंने कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंक कौन भाव है ?  
औदयिक वा औपशमिक है । अरति शोकने वधकोंने कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अन्-  
धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, क्षायोपशमिक तथा औपशमिक भाव है ।

[ विशेष-अरति शोकने अन्धक वि-तु हास्य-रतिके वधकनी दृष्टिसे औदयिक भाव है ।  
अरति, शोककी वध-व्युत्पत्ति प्रमत्तस्यतोंके होती है । अत एव अरति, शोकने अन्धक अप्रमत्त  
सयवाकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है । सम्यक्त्वकी अपेक्षा औपशमिक कहा है, कारण,  
यहाँ उपशमसम्यक्त्वकी अपेक्षा वर्णन है । ]

हास्य-रति, अरति शोक इन दोनों युगलोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है ।  
अन्धकके कौन भाव है ? औपशमिक भाव है ।

[ विशेष-इन चारोंने अन्धक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानजर्ता होंगे, वहा चारिन्मोहनीयनी  
अपेक्षा औपशमिक भाव कहा है । ]

इस प्रकार मनुष्य-द्वय गति, दो आनुपूर्वी, औदारिक वैक्रियिक शरीर, २ अगोपाग  
आहारकद्विक, थिरान्ति तीन युगलोंके वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अवधकोंके  
कौन भाव है ? औपशमिक भाव है ।

[४१३ अनाहारकमे-कर्मण-वाययोगके समाप्त भग है । विशेष यह है कि यहाँ सावा वेद-  
नीयका ओघवन् भग जानना चाहिए । इसी प्रकार सामान्यसे भी ओघवत् जानना चाहिए ।  
मिथ्यात्व समुच्च १६ प्रकृतियोंका ओघवन् भग है । सर्वार्थसिद्धिसे लेकर अनाहारकपर्यन्त  
वधकोंके कौन भाव है ? औदयिक है । अन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक,  
क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक है ।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

( १ ) मिच्छत्तदुइसदा उपत्तेमकरथासदादा । सुहृमतिथ विवद्विदी गिरवदुणिरसायुग मिच्छे ॥  
-गो० क० गा० ९५ ।

§४२१ सव्वत्थोवा देवगदि-वधगा जीवा । णिरयगदि-वधगा जीवा सखेज्जगुणा ।  
 चट्ठुण्ण गदीण अवधगा जीवा अणतगुणा । मणुसगदि-वधगा जीवा अणतगुणा ।  
 तिरिक्खगदि-वधगा जीवा सखेज्जगुणा । चट्ठुण्ण गदीण वधगा जीवा विसेसाहिया ।  
 सव्वत्थोवा पंचण जादीण अवधगा जीवा । पंचिदिय-वधगा जीवा अणतगुणा ।  
 चट्ठुरिदिय वधगा जीवा सखेज्जगुणा । तीइदिय-वधगा जीवा सखेज्जगुणा । वीइदिय ५  
 वधगा जीवा सखेज्जगुणा । एइदिय वधगा जीवा सखेज्जगुणा । पचण्ह जादीण वधगा  
 जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा आहारसरीरस्स वधगा जीवा । वेउव्वियसरीरस्स  
 वधगा जीवा असखेज्जगुणा । पचण्ण सरीराण अवधगा जीवा अणतगुणा । ओरालिय-  
 सरीरस्स वधगा जीवा अणतगुणा । तेजाकम्मइग-सरीरस्स वधगा जीवा विसेसाहिया ।  
 यया जादिणामाण तथा सठाणणामाण । सव्वत्थोवा आहार० अंगोवग० वधगा १०  
 जीवा । वेउव्विय-अगो० वधगा जीवा असखेज्जगुणा । ओरालिय-अगो० वधगा जीवा  
 अणतगुणा । तिण्णि अगोवगाण वधगा जीवा विसेसाहिया । अवधगा जीवा सखे-  
 ज्जगुणा । सव्वत्थोवा वज्जरिसभसंधडणं वधगा जीवा । वज्जणारायाण वधगा जीवा  
 सखेज्जगुणा । णारायाण वधगा जीवा सखेज्जगुणा । अट्ठणारायाण वधगा जीवा  
 सखेज्जगुणा । सीलिय० वधगा जीवा संखेज्जगुणा । असपत्तसेवट्ठ० वधगा जीवा १५  
 संखेज्जगुणा । छस्सघडण-वधगा जीवा विसेसाहिया । अवधगा जीवा सखेज्जगुणा ।

§४२१ देवगतिके वधक जीव सर्वस्तोक अर्थात् सबसे कम है । नरकगतिके बन्धक जीव  
 सरयातगुणे है । चारों गतियोंके अवधक जीव अनन्तगुणें हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव  
 अनन्तगुणें हैं । तिर्यचगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणें हैं । चारों गतियोंके वधक जीव  
 विशेषाधिक हैं । पाँच जातियोंके अवधक जीव सबसे अल्प हैं । पञ्चेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव  
 अनन्तगुणें हैं । चट्ठुरिन्द्रियके वधक जीव सरयातगुणें हैं । त्रीन्द्रियके बन्धक जीव सरयात-  
 गुणें हैं । द्वीन्द्रियके बन्धक जीव सरयातगुणें हैं । एकेन्द्रियके वधक जीव सख्यातगुणें  
 हैं । पाँचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । आहारक शरीरके बन्धक सबसे स्तोक  
 हैं । वैक्रियिक शरीरके वधक असरयातगुणें हैं । पाँचों शरीरोंके अवधक जीव अनन्तगुणें  
 हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव अनन्तगुणें हैं । तैजस कार्माण शरीरके बन्धक जीव  
 विशेषाधिक हैं । जाति नामकर्मके अल्पबहुत्वके समान स्थान नामकर्मका अल्पबहुत्व जानना  
 चाहिए । आहारक अगोपागके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । वैक्रियिक अगोपागके वधक जीव  
 असरयातगुणें हैं । औदारिक अगोपागके वधक जीव अनन्तगुणें हैं । तीनों अगोपागोंके  
 वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव सरयातगुणें हैं । वज्रवृषभसहननके वधक जीव  
 सर्व स्तोक हैं । वज्रनाराचसहननके वधक जीव सरयातगुणें हैं । नाराचसहननके वधक जीव  
 सरयातगुणें हैं । अर्धनाराचसहननके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । कीलित सहननके वधक  
 जीव सरयातगुणें हैं । असप्राप्तासपाटिका सहननके वधक जीव सरयातगुणें हैं । छह सहननके  
 वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव सरयातगुणें हैं । वर्णचतुष्क तथा निर्माणके



§४१८. सब्बत्थोवा लोभसज्जलण-अणधगा जीवा । माय-सज्जलण-अणधगा जीवा  
 विसेमाहिया । माण-सज्जलण-अणधगा जीवा विसेसाहिया । क्रोधसज्जलण-अणधगा जीवा  
 विसेमाहिया । पच्चक्राणा० ४ अणधगा जीवा विसेसाहिया । अपचक्राणावर० ४  
 अणधगा जीवा विसेसाहिया । अणताणुपधि० ४ अणधगा जीवा विसेसाहिया । मिच्छ  
 ५ अणधगा जीवा विसेसाहिया, णधगा जीवा अणतगुणा । अणताणुपधि० ४ अणधगा  
 जीवा विसेसाहिया । अपच्चक्राणा० ४ अणधगा जीवा विसेसाहिया । पच्चक्राणा०  
 ४ अणधगा जीवा विसेसाहिया । क्रोधमज्जलण-अणधगा जीवा विसे० । माणसज्जलण-अणधगा  
 जीवा विसे० । मायमज्जलण-अणधगा जीवा विसे० । लोभमज्जलण-अणधगा जीवा विसे० ।

§४१९. मच्चत्थोवा णरणोकसायाण अणधगा जीवा । पुरिसवेदस्स अणधगा जीवा  
 १० अणतगुणा । इत्थिवेदस्स अणधगा जीवा सखेज्जगुणा । हस्सरदिवधगा जीवा सखेज्जगुणा ।  
 अरदिमोगाण अणधगा जीवा सखेज्जगुणा । णत्तुसगवेदस्स अणधगा जीवा विसेसाहिया ।  
 भयदुगु० अणधगा जीवा विसे० ।

§४२०. सब्बन्थोवा मणुमायु-अणधगा जीवा । पिरयायुअणधगा जीवा असखेज्जगुणा ।  
 देवायुअणधगा जीवा असखेज्जगुणा । तिरिकियायुअणधगा जीवा अणतगुणा । चदुण्ण  
 १५ आयुगण अणधगा जीवा विसेसाहिया । अणधगा जीवा सखेज्जगुणा ।

§४१८ सबसे स्तोक लोभ सब्बलनके अणधक जीव है । माया सब्बलनके अणधक जीव  
 इनसे विशेषाधिक है । मान सब्बलनके अणधक जीव विशेषाधिक है । क्रोध सब्बलनके अण  
 धक जीव विशेषाधिक है । प्रत्यारयानावरण ४के अणधक जीव विशेषाधिक है । अप्रत्यारया  
 नावरण ४के अणधक जीव विशेषाधिक है । अनन्तानुपधी ४ के अणधक जीव विशेषाधिक है ।  
 मिध्यातनके अणधक जीव विशेषाधिक है । मिध्यातनके अणधक जीव इनसे अनन्तगुणें हैं ।  
 अनन्तानुपधी ४के अणधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्यारयानावरण ४ के अणधक जीव विशेषा  
 धिक है । प्रत्यारयानावरण ४ के अणधक जीव विशेषाधिक है । क्रोध सज्जलनके अणधक  
 जीव विशेषाधिक है । मान सब्बलनके अणधक जीव विशेषाधिक है । माया सब्बलनके  
 अणधक जीव विशेषाधिक है । लोभ सब्बलनके अणधक जीव विशेषाधिक है ।

§४१९ न नोपपावन्ति अणधक जीव सर्वसे स्तोक अर्थान् अन्य है । पुरुषवेदके अणधक  
 जीव इनसे अनन्तगुणें हैं । सखेज्जगुणें अणधक जीव इनसे सख्यातगुणें हैं । हास्य, रति  
 अणधक जीव सख्यातगुणें हैं । अरति, शोकके अणधक जीव सख्यातगुणें हैं । नपुंस  
 वेदके अणधक जीव विशेषाधिक है । भय, जुगुप्साके अणधक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४२० सर्वस्तोक मनुष्यायुके अणधक जीव हैं । नरकायुके अणधक इनसे असख्यातगुणें हैं ।  
 देवायुके अणधक जीव अमर्यातगुणें हैं । तिरिचयायुके अणधक जीव अनन्तगुणें हैं । चारों  
 आयुओंके अणधक जीव विशेषाधिक हैं । अणधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

§४२४. सव्वत्थोवा अणताणुण० ४ अनधगा जीवा । मिच्छत्त-अवधगा जीवा विसेसाहिया । बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । अणताणुणधि० ४ वधगा जीवा निसेसाहिया । वारसकसायाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा पुरिसवेदस्स वधगा जीवा । इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्सरदिवंधगा जीवा निसेसाहिया । णवुंसकवेदस्स बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । अरदिसोगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया ५ भयदु० बंधगा जीवा विसे० ।

§४२५. सव्वत्थोवा मणुसायुवधगा जीवा । तिरिक्खायुवधगा जीवा असंखेज्जगुणा । दोण्णं आयुगाण वधगा जीवा विसेसाहिया । अवधगा जीवा संखेज्जगुणा ।

§४२६ सव्वत्थोवा मणुसगादिवधगा जीवा । तिरिक्खगदिवधगा जीवा सखेज्जगुणा । दोण्णं वधगा जीवा विसेसाहिया । अवधगा गत्थि । एव दो आणु० दो १० विहाय० थिरादिछयुगल दीगोद च । समचदु० वधगा जीवा सव्वत्थोवा । सेससठाण वधगा जीवा सखेज्जगुणा । एव सघड० । सव्वत्थोवा उज्जोव बंधगा जीवा । अनधगा जीवा सखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा तित्थयरं वधगा जीवा । अनधगा जीवा सखेज्जगुणा ।

§४२७. एव सत्तसु पुढवीसु । णवरि गज्झिमासु सव्वत्थोवा मणुसायुवधगा ५ जीवा । तिरिक्खायुवधगा जीवा असखेज्जगुणा । दोण्ण आयुगस्स बंधगा जीवा

§४२४ अनन्तानुवधी ४ के अवधक जीव सर्वं स्तोक हैं । मिथ्यात्वके अवधक जीव विरोधाधिक हैं । वधक जीव असख्यातगुणें हैं । अनन्तानुवधी ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । १० कपायोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । स्त्रीवेदके वधक सख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । अरति, शोकके वधक जीव विरोधाधिक हैं । भय, जुगुप्साके वधक जीव विरोधाधिक हैं ।

§४२५ मनुष्यायुके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । तिर्यचायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । दोनों आयुओंके वधक जीव विरोधाधिक हैं । अवधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

§४२६ मनुष्यगतिके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । तिर्यचगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । दोनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक नहीं है । इसी प्रकार २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरदि छह युगल तथा दो गोत्रोंमें जानना चाहिए ।

समचतुरस्रसंस्थानके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । शेष संस्थानोंके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । इस प्रकार सहननमें भी जानना चाहिए ।

उद्योतके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । अवधक जीव सख्यातगुणें हैं । तीर्थंकर प्रकृतिके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । अवधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

§४२७ इसी प्रकार सात पृथ्वियोंने जानना चाहिए । विरोध यह है, कि मध्यम पृथ्वियोंमें मनुष्यायुके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । तिर्यचायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । दोनों

(१) तीर्थंकर प्रकृति का धम्मा वशा तथा मेघा पृथ्वीपर्यन्त ही वध होता है । चतुर्पादिकमें नहीं होता है ।

सन्तथोवा वण्ण० ४ णिमिण-अवधगा जीवा, उधगा जीवा अणतगुणा । यथागदि  
 तथाआणुपुच्चि । सच्चथोवा अगुरु० उपधा० अवधगा जीवा । परघादुस्मा० वधगा  
 जीवा अणतगुणा । अवधगा जीवा सखेज्जगुणा । अगुरु० उपधा० वधगा जीवा  
 विसेसाहिया । सच्चथोवा आदाबुज्जो० वधगा जीवा, अवधगा जीवा सखेज्जगुणा ।

५ सच्चथोवा पसत्थाविहाय० सुस्सर० वधगा जीवा । अप्पसत्थाविहाय० दुस्सर०  
 उधगा जीवा सखेज्जगुणा । दोण्ण वधगा जीवा विसेसाहिया । अवधगा जीवा  
 संखेज्जगुणा । सच्चथोवा तसथारर-अवधगा जीवा । तस० वधगा जीवा अणतगुणा ।  
 थावरवधगा जीवा सखेज्जगुणा । दोण्ण वधगा जीवा विसेसाहिया । एव सेताण  
 जुगलाण गोदतियाण । सच्चथोवा तित्थयर-वधगा जीवा । अवधगा जीवा

१० अणतगुणा । सच्चथोवा पचतराइमाण अवधगा जीवा । वधगा जीवा अणतगुणा ।

१४२२ आदेशेण— गदियाणुनादेण णिरयगदि-णेरइएसु-सच्चथोवा धीणगिद्धि०  
 ३ अवधगा जीवा, वधगा जीवा अखेज्जगुणा । छदम० वधगा जीवा विसेसाहिया ।

१४२३. सच्चथोवा सादवधगा जीवा, असादवधगा जीवा सखेज्जगुणा । दोण्ण  
 वधगा जीवा विसेसाहिया ।

अवधक जीव सर्वं स्तोकं ह्ये । इनके वधक जीव अनन्तगुणं ह्ये । गतिके समान आनुपूर्वीका  
 धरपवहुत्व जानना चाहिए । अगुरुलघु, उपघातने अवधक जीव सर्वं स्तोकं ह्ये । परघात,  
 उच्च्यासके वधक जीव अनन्तगुणं ह्ये । अवधक जीव सरयातगुणं ह्ये । अगुरुलघु, उपघातके  
 अवधक जीव विशेषाधिक ह्ये । आतप, उद्योतके वधक जीव सर्वं स्तोकं ह्ये । अवधक जीव  
 सख्यातगुणं ह्ये । प्रशास्त विद्यायोगति सुस्वरके वधक जीव सर्वं स्तोकं ह्ये । अप्रशास्त विद्यायोगति,  
 दुस्वरके वधक जीव सरयातगुणं ह्ये । दोनोंके वधक जीव विशेषाधिक ह्ये । अवधक जीव  
 सख्यातगुणं ह्ये । तस-स्थावरके अवधक जीव सर्वं स्तोकं ह्ये । उसके वधक जीव अनन्तगुणं  
 ह्ये । स्थावरके वधक जीव सरयातगुणं ह्ये । दोनोंके वधक जीव विशेष अधिक ह्ये ।

इस प्रकार गोत्र कर्म है अन्तमे जिनके-ऐसे गोप युगलाका क्रम जानना चाहिए ।

[ विशेष—गदर पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेश-सदृश नामकर्मकी शेष युगल  
 अष्टवियाना अल्पवहुत्व तस-स्थावरके समान जानना चाहिए । गोत्र कर्मका भी ऐसा ही है । ]

सौधेकर प्रकृतिके वधक जीव सर्वं स्तोकं ह्ये । अवधक जीव अनन्तगुणं ह्ये । ५ अतरायोंके  
 अवधक जीव सर्वं स्तोकं ह्ये । वधक जीव अनन्तगुणं ह्ये ।

१७२२ आदेशे— गतिके अनुवादसे नरक गतिके नारकिणोमे स्थानगृद्धिकके अवधक जीव  
 सर्वं स्तोकं ह्ये । वधक जीव असत्मातगुणं ह्ये । छह दशाधारणके वधक जीव विशेषाधिक ह्ये ।

[ विशेष—५ क्षान्तावरण, ५ अतरायके सर्वं नारकी वधक ह्ये । अवधक नहीं है । इस कारण  
 इनका अल्पवहुत्व यहाँ नहीं कहा है । उनका एक साथ निरंतर वध होना है । ]

१७२३ सातके वधक जीव सर्वं स्तोकं ह्ये । असाताके वधक जीव सख्यातगुणं ह्ये । दोनोंके  
 वधक जीव विशेषाधिक ह्ये ।



- विसेमाहिया । अवधगा जीना असखेज्जगुणा । सव्वत्थोरा सत्तमाए पुढवीए मणुस गदि-मणुसाणुपुब्बि-उच्चागोदाण वधगा जीना । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपुब्बि-गीवा गोदाण वधगा जीना असखेज्जगुणा । दोण्ण वधगा जीना विसेमाहिया । अनधगा जीवा णत्थि । सव्वत्थोरा तिरिक्खायुवधगा जीना । अनधगा जीना अमखेज्जगुणा ।
- ५ §४२८. तिरिक्खेसु-सव्वत्थोवा थीणगिद्धि० ३ अनधगा जीना । वधगा जीवा अणतगुणा । छदमणा० वधगा जीना विसेसाहिया । सव्वत्थोवा सादवधगा जीना । असादनधगा जीना सखेज्जगुणा । दोण्ण वधगा जीना विसेसाहिया । अनधगा णत्थि । सव्वत्थोरा अपक्कखाणा० ४ अवधगा जीना । अणताणुव० ४ अवधगा असखेज्जगुणा । मिच्छत्त-अवधगा जीवा विसे० । वधगा जीना अणतगुणा । अणताणु-
- १० १० ४ वधगा जीना विसेसा० । पच्चस्ताणावरण० ४ वधगा जीना विसेसा० । जट्ट-कमायाण वधगा जीना विसेसाहिया । सव्वत्थोरा पुसिसेवेदस्स वधगा जीना । इत्थिवेदस्स वधगा जीना सखेज्जगुणा । हस्सरदिवधगा जीना सखेज्जगुणा । अरदिसीगाण वधगा जीवा सखेज्जगुणा । णुसकवेदस्स वधगा जीवा विसेसाहिया । भयदुगुच्छाण वधगा जीना विसेमाहिया । आयु० अगोप० सघ० आदा० उज्जो० विहाय० सठाण च मूलोय ।
- १५ सव्वत्थोवा पचिदिय-वधगा जीवा । मेम वधगा जीवा सखेज्जगुणा । मव्वत्थोवा देव-

आयुओंके वधक जीव विरोधाधिक हैं । अवधक जीव असरयातगुणें हैं ।

सातनीं पृथ्वीमे—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी तथा एक गोत्रके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । तिर्यचगति, तिर्यचाणुपूर्वी तथा नीच गोत्रके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । दोनोंके ( मनुष्यगति तिर्यचगति आत्ति ) वधक जीव विरोध अधिक हैं । अनधक नहीं हैं । तिर्यचाणुके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । अनधक नीच असरयातगुणें हैं ।

§४२८ तिर्यचगतिमे—स्त्यानगुद्धिन्निरुने अवधक जीव सप्तस्तोक हैं । वधक जीव अनन्त गुणें हैं । ६ दर्शनारणके वधक जीव विरोधाधिक हैं ।

सातावेदनीयके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । असाताने वधक जीव सरयातगुणें हैं । दोनों के वधक त्राव विरोध अधिक हैं । अनधक नहीं हैं । अग्रत्याख्यानावरण ४ के अवधक जीव सर्वं स्तोक हैं । अनन्तानुधी ४ के अवधक जीव असरयातगुणें हैं । मिध्यात्वके अवधक जीव विरोध अधिन हैं । इससे वधक जीव अनन्तगुणें हैं । अनन्तानुधी ४ के वधक जीव विरोध अधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के वधक जीव विरोधाधिक हैं । ८ कयायके वधक जीव विरोधाधिक हैं ।

पुरुषवेदके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । खीवेत्के वधक जीव सरयातगुणें हैं । हास्य, रतिने वधक जीव सरयातगुणें हैं । अरति, शोरुके वधक जीव सरयातगुणें हैं । नपुसकवेदके वधक जीव विरोध अधिक हैं । भय, जुगुप्साके वधक जीव विरोधाधिक हैं ।

आयु, अगोपाण, सहनन, आतप, बयोत, विद्यायोगवि, मस्थानके वधकजीमिं मूलके ओघवत् जानना चाहिये ।

पचिदिय जातिके वधक जीव सर्वं स्तोक हैं । शेष जातियोंके वधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

गदिबंधगा जीवा । गिरयगदिबंधगा जीवा सखेज्जगुणा । मणुसगदिवधगा जीवा  
अणतगुणा । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा सखेज्जगुणा । चदुण्णं गदीण बंधगा जीवा  
विसेमा० । सच्चत्थोवा वेउच्चिय-बंधगा जीवा । ओरालियबंधगा जीवा अणतगुणा ।  
तेजाऋम्मद्दगवधगा जीवा विसेमा० । संठाणं गिरयभगो । सच्चत्थोवा परघादुस्सा०  
बंधगा जीवा । अणधगा जीवा सखेज्जगुणा । अगु० उप० बंधगा जीवा विसेमा० । ५  
सेसाण युगलाण सादासादभगो । एव पच्चिदियतिरिक्खाण । णरि य हि अणतगुणं  
त हि असखेज्जगुण कादव्व ।

§४२९. पंचिदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु-दसणावरण-मोहणीय-गोदे एसेन भगो ।  
सच्चत्थोवा मणुमायुबंधगा जीवा । गिरयायुबंधगा जीवा असखेज्जगुणा । देवायु-  
बंधगा जीवा असखेज्जगुणा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा सखेज्जगुणा । चदुण्ण १०  
आयुगाण बंधगा जीवा विसेमा० । अणधगा जीवा सखेज्जगुणा । सच्चत्थोवा देवगदि-  
बंधगा जीवा । मणुमगदि-बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा  
असखेज्जगुणा । गिरयगदिवधगा जीवा संखेज्जगुणा । सच्चत्थोवा चदुरिदिय-बंधगा  
जीवा । तीहदिय-बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । वीहदिय-बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । १५  
एहदिय-बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । पच्चिदिय-बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । सच्चत्थोवा

द्वयगतिके बंधक जीव सर्वं स्तोक है । नरक गतिके बंधक जीव सख्यातगुणों हैं । मनुष्यगति  
के बंधक जीव अनन्तगुणों हैं । तिर्यंचगतिके बंधक जीव सरयातगुणों हैं । चारों गतिके बंधक  
जीव त्रिशोपाधिक हैं । वैत्रियिक शरीरके बंधक जीव सर्वं स्तोक हैं । औदारिक शरीरके बंधक  
जीव अनन्तगुणों हैं । तैजस, कामाणके बंधक जीव त्रिशोपाधिक हैं ।

सरयानोंके बंधकोंमें नरकगतिये समान भग है । अर्थात् समचतुरस्र सस्थानके बंधक जीव  
सर्वं स्तोक हैं । शेषके बंधक जीव सरयातगुणों हैं । परघात, उच्छ्वासके बंधक जीव सर्वं  
स्तोक हैं । अवधक तीव्र सरयातगुणों हैं । अगुस्त्वु, उपघातके बंधक जीव त्रिशोपाधिक हैं ।  
शेष युगलोंके बंधकोंमें साता असाताका भग जानना चाहिए । पचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें भी इसी प्रकार  
जानना चाहिए । विशेष यह है कि जहाँ 'अनन्तगुणा' है वहाँ 'असरयातगुणा' लगाना चाहिये ।

§४३० पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमत्तियोंमें-दर्शनावरण, मोहनीय और गोत्रके  
बंधकोंमें यही भग जानना चाहिये ।

मनुष्यायुके बंधक जीव सर्वं स्तोक है । नरकायुके बंधक जीव असरयातगुणों हैं ।  
दवायुके बंधक जीव असरयातगुणों हैं । तिर्यंचायुके बंधक जीव सरयातगुणों हैं । चारों आयुके  
बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अणधक जीव सख्यातगुणों हैं ।

द्वयगतिये बंधक जीव सर्वं स्तोक हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव सख्यातगुणों हैं ।  
तिर्यंचगतिके बंधक जीव असरयातगुणों हैं । नरक गतिके बंधक जीव सख्यातगुणों हैं ।  
चतुरिन्द्रिय जातिके बंधक जीव सर्वं स्तोक हैं । त्रिन्द्रिय जातिके बंधक जीव सरयात-  
गुणों हैं । दा इन्द्रिय जातिके बंधक जीव सरयातगुणों हैं । ऐरेन्द्रियके बंधक जीव

विसेसाहिया । अनधगा जीना असखेज्जगुणा । सव्वत्थोरा सत्तमाए पुढवीए मणुस  
गदि-मणुमाणुपुच्चि-उच्चागोदाण वधगा जीना । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपुच्चि-णीचा  
गोदाणं वधगा जीना असंखेज्जगुणा । दोण्ण वधगा जीवा विसेसाहिया । अनधगा  
जीवा णत्थि । सव्वत्थोवा तिरिक्खाणुअधगा जीना । अबधगा जीना असखेज्जगुणा ।

५ §४२८. तिरिक्खेसु-सव्वत्थोवा धीणगिट्ठि० ३ अबधगा जीवा । वधगा  
जीवा अणतगुणा । छदसणा० वधगा जीना विसेसाहिया । मव्वत्थोवा सादवधगा  
जीवा । असादनधगा जीना सखेज्जगुणा । दोण्णं वधगा जीवा विसेसाहिया । अनधगा  
णत्थि । सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणा० ४ अनधगा जीना । अणताणुव० ४ अनधगा  
असखेज्जगुणा । मिच्छत्त अनधगा जीना विसे० । वधगा जीना अणतगुणा । अणताणु

१० व० ४ वधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणावरण० ४ वधगा जीवा विसेसा० । अह्-  
कसायाण वधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोना पुरिसवेदस्म वधगा जीवा । इत्थिवेदस्स  
वधगा जीना सखेज्जगुणा । हस्सरदिवधगा जीना सखेज्जगुणा । अरदिसोगाण वधगा  
जीना सखेज्जगुणा । णयुसकवेदस्स वधगा जीवा विसेसाहिया । भयदुगुच्छाण वधगा जीना  
विसेसाहिया । आयु० अगोत्रं० सघ० आदा० उज्जो० विहाय० सठाण च मूलोव ।

१५ सव्वत्थोना पचिदिय-वधगा जीवा । सेम-वधगा जीवा सखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा देव-

आयुओंके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव असरयातगुणें हैं ।

सातरीं पृथ्वीमें—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्रके वधक जीव सर्व स्तोक हैं ।  
तिर्यचगति, तिर्याचानुपूर्वी तथा नीच गोत्रके वधक जीव असरयातगुणें हैं । दोनोंके (मनुष्यगति  
निर्यचगति आदि) वधक जीव विशेष अधिक हैं । अवधक नहीं हैं । तिर्यचायुके वधक जीव  
सर्व स्तोक हैं । अनधक जीव असरयातगुणें हैं ।

§४२८ तिर्यचगतिम—स्त्यानगृद्धिक्खेने अवधक जीव सर्वस्तोक हैं । वधक जीव अनन्त  
गुणें हैं । ६ दर्शनारणके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मातापितृनीयके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । असाताके वधक जीव सरयातगुणें हैं । दोनों  
के वधक जीव विशेष अधिक हैं । अनधक नहीं हैं । अप्रत्यायानावरण ४ के अवधक जीव सर्व  
स्तोक हैं । अनन्तानुयधी ४ के अवधक जीव असरयातगुणें हैं । मिथ्यात्वके अवधक जीव विशेष  
अधिक हैं । इसके वधक जीव अनन्तगुणें हैं । अनन्तानुयधी ४ के वधक जीव विशेष अधिक  
हैं । प्रत्यायानावरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । ८ कपायके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

पुरुषवेदके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । स्त्रीवेदके वधक जीव सरयातगुणें हैं । हास्य,  
रतिरके वधक जीव सरयातगुणें हैं । जरति, शोत्रके वधक जीव सरयातगुणें हैं । नपुसकवेदके  
वधक जीव विशेष अधिक हैं । भय, जुगुप्माने वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

आयु, अगोत्राण, सहनन, आतप, इद्योत, निहायोगति, सरथानके वधकोंमें मूलके ओषधत्  
जानना चाहिये ।

पचेन्द्रिय जातिके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । शेष जातियोंके वधक जीव सरयातगुणें हैं ।

निसेसा० । अर्धगा णन्धि । सच्च[त्योवा] पंचिदिय-बधगा जीवा० । चदुर्दिय-  
 उधगा जीवा सखेज्जगुणा । तीईदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वीईदि० बंधगा जीवा  
 सखेज्ज० । एइदियबधगा जीवा संखेज्जगुणा । सच्चत्योवा ओरालिय-अगो० आदा-  
 उज्जी० बंध० जीवा । अउधगा जीवा सखेज्ज० । संठाण-संधडण० पर० उत्सा०  
 दो विहा० तसथावरादि-दसयुगल दोगोदं च पंचिदिय-तिरिक्त्तभंगो । एव सच्च- ५  
 अपज्जत्तगाण तसाण सच्चएइंदिय-त्रिगलिदिय-सच्चपचकायाण च । णवरि वणफ्फदि-  
 काय णिगोदेसु सच्चत्योवा मणुसायु उधगा जीवा । तिरिक्त्तापुबंधगा जीवा अणत-  
 गुणा । दोण्णं बंधगा जीवा निसे० । अर्धगा जीवा सखेज्ज० ।

§४३१. मणुसेसु-सच्चत्योवा पचना० अउधगा जीवा, बंधगा जीवा असंखेज्ज-  
 गुणा । एवं अतराडगाण चैव । सच्चत्योवा चदुदस० अउधगा जीवा । णिहापचला- १०  
 अउधगा जीवा निसेसा० । थीणगिद्धि० ३ अउधगा जीवा सखेज्जगुणा । बधगा  
 जीवा असखेज्जगुणा । णिहापचला-बधगा जीवा निसेसा० । चदुदस० बंधगा जीवा  
 निसेसा० । सच्चत्योवा सादासाद-अउधगा जीवा । साद-बंधगा जीवा असखेज्जगुणा ।  
 असाद-बधगा जीवा सखेज्जगुणा । दोण्ण बधगा जीवा निसेसा० । सच्चत्योवा लोभ-

वधक विगोपाधिक हैं, अउधक नहीं हैं । पंचेन्द्रिय जातिके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । चौइन्द्रिय  
 जातिके वधक जीव सरयातगुण हैं । त्रीन्द्रिय जातिके वधक सरयातगुण हैं । दोइन्द्रिय  
 जातिके वधक जीव सरयातगुण हैं । एकेन्द्रिय जातिके वधक जीव सरयातगुण हैं । औदारिक  
 अगोपाग, आतप, उद्योतके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । अउधक जीव सरयातगुण हैं । सस्थान,  
 सधनन, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, त्रस-स्थानरादि दस युगल तथा दो गोत्रोंके वधकोंमें  
 पचेन्द्रिय तिर्यंधके समान भग जानना चाहिए ।

इसी प्रकार सर्व लघ्वपर्याप्तक त्रसों, सर्व एकेन्द्रिय, त्रिकेन्द्रिय और सर्व पचकाय-  
 वालोंमें है । विशेष यह है, कि वनस्पति काय निगोदियोंमें मनुष्यायुके वधक जीव सर्व स्तोक  
 हैं । तिरयायुके वधक जीव अनन्तगुण हैं । दोनोंके वधक जीव विशेष अधिक हैं । दोनोंके  
 अउधक जीव सरयातगुण हैं ।

§४३१ मनुष्यगतिमें—५ ज्ञानावरणके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । वधक जीव असख्यात-  
 गुण हैं । इसी प्रकार अतरायोंमें भी जानना । अर्थात् अवधक जीव सर्व स्तोक और वधक  
 जीव असख्यातगुण हैं ।

चार दर्शनावरणके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । निद्रा प्रचलाके अउधक जीव विगोपाधिक  
 हैं । स्थानगृद्धिप्रिके अवधक जीव सरयातगुण हैं । वधक जीव असख्यातगुण हैं । निद्रा-  
 प्रचलाके वधक जीव विशेषाधिक हैं । चार दर्शनावरणके वधक जीव विगोपाधिक हैं ।

साता, असाता चेदनीयके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । साताके वधक जीव असख्यात  
 गुण हैं । असाताके वधक जीव सरयातगुण हैं । दोनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।



ओरालिय-मरीचधगा जीवा । वेडविय प्रधगा जीवा सखेज्जगुणा । तेजाकम्महा०  
 बधगा जीवा विसेसा० । सठाण सधडण पचिदिय-तिरिक्कसभगो । मव्वत्थोवा ओगलिय  
 अगोरग-बधगा जीवा । दोण्ण अगो० अबधगा जीवा सखेज्जगुणा । वेडविय  
 अगो० बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । दोण्ण अगो० बधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा  
 ५ परघादुस्मा० अबधगा जीवा । बधगा जीवा सखेज्जगुणा । अगु० उप० बधगा जीवा  
 म्पिसेसा० । सव्वत्थोवा पसत्थनिहायगादि-बंधगा जीवा । सुस्सर-बधगा जीवा०, दोण्ण  
 अवधगा जीवा सखेज्जगुणा । अप्पसत्थविहायगादि-बधगा, दुस्सरबधगा जीवा  
 सखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा थावरादि० ४ बधगा जीवा । तसादि ४ बधगा जीवा  
 सखेज्जगुणा ।

१० §४३०. पचिदिय-तिरिक्क-अपज्जत्तगेसु-सव्वत्थोवा पुरिसवेदनधगा जीवा ।  
 इत्थिवेदबधगा जीवा सखेज्जगुणा । हस्सरदिबधगा जीवा सखेज्जगुणा । अगदिसोण-  
 बधगा जीवा सखेज्जगुणा । णुसु० बधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बधगा जीवा  
 म्पिसेसा० । सव्वत्थोवा मणुसायु बधगा जीवा । तिरिक्कसायुबधगा जीवा असखेज्ज-  
 गुणा । दोण्ण बधगा जीवा विसेसा० । अबधगा जीवा सखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा  
 १५ मणुसादिबधगा जीवा । तिरिक्कसादिबधगा जीवा सखेज्जगु० । दोण्ण बंधगा जीवा

मख्यातगुण हैं । पचेन्द्रियके बधक जीव सख्यातगुण हैं । औदारिक शरीरके बधक  
 जीव सर्व स्तोक हैं । वैक्रियिक शरीरके बधक जीव सरयातगुण हैं । तैजस, कामीणके  
 बधक जीव विशेषाधिक हैं । सस्थान और सहजनने बधक जीव पचेन्द्रिय तिर्यंचना भग जानना  
 चाहिए । औदारिक अगोपागके बधक जीव सर्व स्तोक हैं । दोनों अगोपागके अनबक जीव  
 सरयातगुण हैं । वैक्रियिक अगोपागके बधक जीव सरयातगुण हैं । दोनों अगोपागके बधक  
 जीव विशेषाधिक हैं । परघात, च्छासने अबधक जीव सर्व स्तोक हैं । धन्वक जीव सरयातगुण  
 हैं । अगुरुलघु, उपघातके बधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रशस्तविहायोगतिके बधक जीव सर्व स्तोक  
 हैं । सुस्सरके बधक जीव सरयातगुण हैं । दोनोंके अनधक जीव सरयातगुण हैं । अप्रशस्त  
 विहायोगतिके बधक और दुस्सरके बधक जीव सरयातगुण हैं । थावरादि ४ के बधक जीव सर्व  
 स्तोक हैं । तसादि ४ के बधक जीव सख्यातगुण हैं ।

§४३० पचेन्द्रिय तिर्यंच लघ्यपर्याप्तकोमे—पुरपनेदके बधक जीव सर्व स्तोक हैं । स्त्रीवेदके  
 बधक जीव सरयातगुण हैं । हास्य, रतिके बधक जीव सरयातगुण हैं । अरति, शोर्नके  
 बधक जीव सरयातगुण हैं । नपुसकवेदके बधक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके  
 बधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बधक जीव सर्व स्तोक हैं । तिर्यंचायुके बधक जीव असरयातगुण हैं ।  
 दोनोंके बधक जीव विशेषाधिक हैं । अबधक सरयातगुण हैं ।

मनुष्यागतके बधक जीव सर्व स्तोक हैं । तिर्यंचगतिके बधक सरयातगुण हैं । दोनों

विसेसा० । अवंधगा णत्थि । सव्वत्थोवा] पंचिदिय-बंधगा जीवा० । चदुरिंदिय-  
बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । तीईदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वीईदि० बंधगा जीवा  
सखेज्ज० । एईदियबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा ओरालिय-अगो० आदा-  
उज्जो० वध० जीवा । अणधगा जीवा सखेज्ज० । संठाण-संधटण० पर० उस्ता०  
दो विहा० तसथावरादि-दसयुगलं दोगोद च पंचिदिय-तिरिक्खमंगो । एवं सव्व-  
अपज्जत्तगाण तसाण सव्वएईदिय-विगल्लिंदिय-सव्वपंचहायाणं च । णवरि वणफ्फदि-  
काय णिगोदेसु सव्वत्थोवा मणुसायु णधगा जीवा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा अणंत-  
गुणा । दोण्ण वधगा जीवा विसे० । अणधगा जीवा सखेज्ज० ।

§४३१. मणुसेसु-सव्वत्थोवा पंचणा० अवंधगा जीवा, वधगा जीवा असंखेज्ज-  
गुणा । एव अतराड्ढगाणं चेव । सव्वत्थोवा चदुदस० अणधगा जीवा । णिदापचला-  
अवधगा जीवा विसेसा० । धीणगिद्धि० ३ अवंधगा जीवा सखेज्जगुणा । वधगा  
जीवा असखेज्जगुणा । णिदापचला-वधगा जीवा विसेसा० । चदुदस० वधगा जीवा  
विसेसा० । सव्वत्थोवा सादासाद-अवंधगा जीवा । साद-वधगा जीवा असखेज्जगुणा ।  
असाद-वधगा जीवा सखेज्जगुणा । दोण्ण वंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा लोम-

वधक विशेषाधिक है, अवधक नहीं है । पचेन्द्रिय जातिके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । चौन्द्रिय  
जातिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । त्रीन्द्रिय जातिके वधक सख्यातगुणें हैं । दोन्द्रिय  
जातिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । एकेन्द्रिय जातिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । अणुत्तरे  
अगोपता, आतप, वयोतके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । अणधक जीव सख्यातगुणें हैं । सत्थान,  
सहानन, परधात, उच्छवास, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि दस युगल तथा दो गोत्रोंके वधक  
पचेन्द्रिय तिर्यंचके समान भग जानना चाहिए ।

इसी प्रकार सर्व लब्धपर्याप्तक त्रसों, सर्व एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सर्व पच-  
पालोंमें है । विशेष यह है, कि वनस्पति काय निगोदियोंमें मनुष्यायुके वधक जीव सर्व स्तोक  
हैं । तिर्यायुके वधक जीव अनन्तगुणें हैं । दोनोंके वधक जीव विशेष अधिक हैं । दोनोंके  
अवधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

§४३१ मनुष्यगतिमें—५ ज्ञानावरणके अणधक जीव सर्व स्तोक हैं । वधक जीव असख्या-  
तगुणें हैं । इसी प्रकार अन्तरायोंमें भी जानना । अर्थात् अवधक जीव सर्व स्तोक और  
जीव असख्यातगुणें हैं ।

चार दर्शनावरणके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । निद्रा प्रचलाके अणधक जीव विशेष  
हैं । सत्थानगुद्विधिवके अणधक जीव सरयातगुणें हैं । वधक जीव असख्यातगुणें हैं ।  
प्रचलाके वधक जीव विशेषाधिक हैं । चार दर्शनावरणके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
साता असाता वेदनीयके अणधक जीव सर्व स्तोक हैं । साताके  
गुणें हैं । असाताके वधक जीव सरयातगुणें हैं । दोनोंके वधक जीव

- सजल० अवधगा जीवा । मायासज० अ२० जीवा विसेसा० । माण सज० अ२० जीवा विसेसा० । क्रोधसज० अ२० जीवा विसेसा० । पञ्चकखाणावरण० ४ अ२० जीवा सखेज्ज० । अपञ्चकखाणा२० ४ अ२० जीवा सखेज्ज० । अणताणुअधि० ४ अ२० जीवा सखेज्जगु० । मिच्छ० अ२० जीवा विसेसा० । वधगा जीवा असखेज्जगुणा । ५ अणताणु२० ४ वधगा जीवा विसेसा० । अपञ्चकखाणावर० ४ वधगा जीवा विसेसा० । पञ्चकखाणा२० ४ वधगा जीवा विसेसा० । क्रोधसज० वधगा जीवा विसेसा० । माणसज० वधगा जीवा विसेसा० । माया सज० अवधगा जीवा विसेसा० । लोभसज० वधगा जीवा विसेसा० । सञ्चत्थोवा णरुण णोकसायाण अवधगा जीवा । पुरिस० वधगा जीवा असखेज्जगुणा । मेम १० तिरिकस्रोध । सञ्चत्थोवा णियायु-वधगा जीवा । देवायु-वधगा जीवा सखेज्जगु० । मशुसायु-वधगा जीवा असखेज्जगु० । तिरिकसायु-वधगा जीवा असखेज्जगुणा । चटुण्ण आयुगाण वधगा जीवा विसेसा० । अवधगा जीवा सखेज्जगुणा । सञ्चत्थोवा चटुण्ण गदीण अवधगा जीवा । देवगदिवधगा जीवा सखेज्जगुणा । णिरयगदिवधगा जीवा सखेज्जगु० । मशुसगदिवधगा जीवा सखेज्ज० । तिरिकसगदिवधगा जीवा

लोभ सञ्चलनने अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । माया सञ्चलनने अ२धक जीव विशेषाधिक है । मान-सञ्चलनके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध सञ्चलनके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के अवधक जीव सरयातगुणें हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अ२धक जीव सरयातगुणें हैं । अनन्तानुअधी ४ के अवधक जीव सरयातगुणें हैं । मिध्यात्यके अ२धक जीव विशेषाधिक हैं । वधक जीव असरयातगुणें हैं । अनन्तानुअधी ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध सञ्चलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-सञ्चलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । माया-सञ्चलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-सञ्चलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

नव नोकपायके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । पुरुषवेदके वधक जीव असरयातगुणें हैं । शेष प्रकृतियोंके तिर्यचोके ओघवत् जानना चाहिये ।

[ विशेष-स्त्रीवेदके वधक सरयातगुणें हैं । हाम्य-रतिके वधक सरयातगुणें हैं । अरति शोचने वधक सरयातगुणें हैं । नपुसकवेदके वधक विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके वधक विशेषाधिक हैं । ]

नरकायुके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । देवायुके वधक जीव सरयातगुणें हैं । मनुष्यायुके वधक जीव असरयातगुणें हैं । तिर्यचायुके वधक जीव असरयातगुणें हैं । चारों आयुओंके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव सरयातगुणें हैं ।

चारों गतिके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । नरकगतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । तिर्यञ्च

संखेज्ज० । सव्वत्थोवा पचण्ण जादीण अवध० जीवा । पच्चिदि० बंधगा जीवा  
 असंखेज्जगुणा । सेस वधगा जीवा सखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा आहारसररीर-बंधगा  
 जीवा । पचण्णं सररीरण अग्रधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउच्चियसररीरधगा जीवा  
 सखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा असखे० । तेजाक० वधगा जीवा निसेसा० ।  
 सव्वत्थोवा छण्ण सठाणाण अवंधगा जीवा । समचहु० वधगा जीवा असखेज्जगुणा । ५  
 सेसं ओध । सव्वत्थोवा आहार० अगो० वधगा जीवा । वेउच्चियअगो० वधगा  
 जीवा सखेज्जगु० । ओरालि० अगो० वधगा जीवा असखेज्जगु० । तिण्णि अगोधगण  
 वधगा जीवा निसेसा० । अवधगा जीवा सखेज्जगु० । संघह० आदाउज्जो० दो विहा०  
 दोसर० ओध । सव्वत्थोवा वण्ण० ४ णिमिण-अग्रधगा जीवा । वधगा जीवा असखेज्ज० ।  
 सव्वत्थोवा अगु० उप० अवधगा जीवा । परघाटुस्सा० वधगा जीवा असखेज्जगुणा । १०  
 अग्रधगा जीवा सखेज्जगु० । अगुरु० उप० वधगा जीवा निसेसा० । सेसाणं युगलाण  
 ओध-भगो । णवरि य हि अणतगुण त हि असखेज्जगुण कादव्व । सव्वत्थोवा  
 तित्थयरंधगा जीवा । अंधगा-जीवा असंखेज्जगुणा ।

§४३२, मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु एसेन भगो । णवरि य हि असखेज्जगुण दव्व,  
 तं हि सखेज्जगुण कादव्व । यासु सरिसताओ इमाओ पगदीओ गदिसु च जादिसु च १५

गतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । पाचों जातिके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । पचेन्द्रिय जातिके  
 वधक जीव असख्यातगुणें हैं । शेष जातियोंके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । आहारक शरीरके  
 वधक जीव सर्व स्तोक हैं । पाँचों शरीरोंके अवधक जीव सरयातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके  
 वधक जीव सख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । तेजस, कार्माणके  
 वधक जीव विशेषाधिक हैं । ६ सस्थानोंके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । समचतुरस्रसस्थानके  
 वधक जीव असख्यातगुणें हैं ।

शेष सस्थानोंमें ओधवत् जानना चाहिए । अर्थात् शेषके वधक जीव सरयातगुणे हैं ।  
 आहारक अगोपागके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । वैक्रियिक अगोपागके वधक जीव सख्यात-  
 गुणे हैं । औदारिक अगोपागके वधक जीव असख्यातगुणे हैं । तीनों अगोपागके वधक  
 जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव सख्यातगुणे हैं । सहनन, आतप, उद्योत, २ विहायो-  
 गति, ० स्वरोमे ओधवत् जानना चाहिए । वर्ष ४ और निर्माणके अवधक जीव सर्व स्तोक  
 हैं । वधक जीव असख्यातगुणे हैं । अगुरुलघु, उपाघातके अवधक जीव सर्व स्तोक  
 हैं । परघात, उच्छ्वासके वधक जीव असख्यातगुणे हैं । अवधक जीव सख्यातगुणे हैं ।  
 अगुरुलघु, उपाघातके वधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष युगलोंमें ओधके समान भग जानना  
 चाहिए । इतना विशेष है कि जहाँ 'अनन्तरुणा' कहा है वहाँ 'असख्यातगुणा' कर लेना चाहिए ।

तीवकर प्रकृतिके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । अवधक जीव असख्यातगुणें हैं ।

§४३२ मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनियामे—इसी प्रकार भग जानना चाहिए । यह विशेष है कि जहाँ  
 असख्यातगुणित द्रव्य कहा है, वहाँ सरयातगुणित कर लेना चाहिए ।

गिरयगति पचिदिय-पच्छा कादव्या । आहारसरीग्मधगा धोवा । पचण्ण सरीराण  
अरधगा जीवा मखेज्जगुणा । ओरालि० धधगा जीवा सखेज्जगुणा । वेउअब्बि० वधगा  
जीवा सखेज्ज० । तेत्ताक० वधगा जीवा विसेसा० । तसादि चदुयुगलाण च ।  
सव्वत्थोवा अरधगा जीवा अप्पमत्थाण । वधगा जीवा सखेज्जगुणा । तसादि० ४  
५ वधगा जीवा सखेज्ज० । विहाय० मरणामतिरिक्खिणीमंगो ।

§४३३. देवेसु-गिरयमगो । एवं याव मद्रमहस्मारत्ति । किंचि विसेसो देवो  
धादो यान ईसाण त्ति, त पुण इम । सव्वत्थोवा पुरिसवे० वधगा जीवा । इत्थिवे०  
वधगा जीवा सखेज्जगुणा । हस्सरदि-वधगा जीवा सखेज्ज० । अरदिसोग-वधगा जीवा  
सखेज्ज० । णवुम० वधगा जीवा विसेसा० । भयदु० वधगा जीवा विसेसा० ।  
१० सव्वत्थोवा पचिदियस्स वधगा जीवा । एहदिय-वधगा जीवा सखेज्ज० । सन्त्थोवा

जो गति और जाति नामकी समान प्रकृतियों हैं उनमें नरक गति और पचेन्द्रिय जातिको पीछे कर लेना चाहिए ।

[ विशेष-चारों गतिके अवधक जीव सत्र स्तोक हैं । देवगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं, मनुष्यगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं, तिर्यच गतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं, नरकगतिके वधक जीव सख्यात गुणें हैं ।

पच जातियोंके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । पचेन्द्रियको छोड़कर शेषके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । पचेन्द्रियके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । ]

आहारक शरीरके वधक स्तोक हैं । ५ शरीरके अवधक जीव सख्यातगुणें हैं । औदारि-  
रिप शरीरके वधक जीव सख्यात गुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके वधक जीव सख्यातगुणें हैं ।  
तजस धार्माण शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

यही भ्रम व्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येकके युगलौमें भी लगा लेना चाहिए ।

स्थावर, सूक्ष्म अपर्याप्तक साधारण इन अप्रशस्त प्रकृतियोंके अवधक जीव सत्रसे स्तोक  
हैं । वधक जीव सख्यातगुणें हैं । व्रसादिकके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । विहायोगति, स्वर  
नामक प्रकृतियोंमें तिर्यञ्चिनीके समान भग जानना चाहिए ।

§४३३ देवोंमें नारकियोंमें समान भग जानना चाहिए । यह बात शतार, सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त  
जानना चाहिए । किन्तु देवोचकी अपेक्षा ईशान स्वर्ग पर्यन्त किंचित् विशेषता है । यह यह है ।

[ विशेष-सौधमंन्द्रिक पचन्त एकेन्द्रिय, स्थावर, आतपका वध होता है । सहस्रार पर्यन्त  
तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु तथा उद्योतका वध होता है । ]

पुरुषवेदके वधक जीव मत्र स्तोक हैं । स्त्रीवेदके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । हास्य  
रतिके वधक जीव सख्यात गुणें हैं । अरति, शोम्के वधक जीव सख्यातगुणें हैं । मनुष्यक वेदके  
वधक जीव विशेषाधिक हैं । मय, जुगुप्सामे वधक जीव विशेषाधिक हैं । पचेन्द्रिय जातिके वधक  
जीव सत्र स्तोक हैं । एकेन्द्रिय जातिमें वधक जीव सख्यातगुणें हैं । औदारिक अगोपागके

ओरालि० अगो० बधगा जीवा । अत्रधगा जीवा सखेज्जगुणा । संघड० आदा-उज्जो० दोवि-  
 हाय० दोसर० ओघभगो । एव विसेसो णाद्वो आणद याव णवगेवज्जा त्ति । सव्वत्थोना  
 धीणगिद्धि० ३ बधगा जीवा । अवधगा जीवा सखेज्जगुणा । सेसाण बधगा जीवा  
 विसेसा० । सव्वत्थोवा मिच्छत्त-बधगा जीवा । अणताणुण० ४ बधगा जीवा  
 विसेसा० । अवधगा जीवा सखेज्जगुणा । मिच्छत्तस्स अवधगा जीवा विसेसा० । सेस-  
 ५  
 वधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा इत्थि-बधगा जीवा । णवुसत्रधगा जीवा सखेज्ज-  
 गुणा । हस्सरदि-बधगा जीवा संखेज्जगु० । अरदिसो० वध० जीवा सखेज्ज० । पुरिसवे०  
 वधगा जीवा विसेसा० । भयदु० वध० जीवा विसेसा० । मणुसायुबध० जीवा  
 थोवा । अत्रधगा जीवा असखेज्ज० । णग्गोद० वध० जीवा थोवा । सादिय० वध०  
 जीवा सखेज्जगु० । खुज्ज० वध० जीवा सखेज्ज० । यामण० वध० जीवा सखेज्जगु० । १०  
 हुडस० वध० जीवा सखेज्ज० । समचदु० वध० जीवा सखेज्ज० । सघडणं सठाण

वधक जीव सर्व स्तोक है । अवधक जीव सख्यातगुणें हैं । सहनन, आतप, उद्योत, २ विहा  
 योगति, २ स्वरका ओघवत्त जानना चाहिए ।

आनतसे लेकर नव भ्रैवेयक पर्यन्त विशेषता निकाल लेनी चाहिए ।

[ विशेष-आनतादि 'स्वर्गोभे तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु तथा उद्योतका वध  
 नहीं होता है । सानत्कुमारादिभे एकेन्द्रिय, 'स्थायर तथा आतपका वध नहीं होता है । ]  
 स्त्यानगृद्धिप्रिके वधक जीव सत्रसे स्तोक हैं । अत्रधक जीव सख्यातगुणें हैं । शेष  
 प्रकृतियोंके वधक जीव विशेषाधिक है ।

मिथ्यात्वके वधक जीव सबसे स्तोक हैं । अनन्तानुवन्वी / के वधक जीव विशेषाधिक  
 हैं । अत्रधक जीव सख्यातगुणें हैं । मिथ्यात्वके अत्रधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके  
 वधक विशेषाधिक हैं । ऋग्वेदके वधक सबसे स्तोक हैं । नपुसक वेदके वधक जीव सख्यातगुणें  
 हैं । हास्य, रतिके वधक जीव सख्यातगुण हैं । अरति शोकके वधक जीव सख्यातगुणें हैं ।  
 पुरुषवेदके वधक विशेष अधिक हैं । भय, जुगुप्साके वधक जीव विशेषाधिक है ।

मनुष्यायुके वधक जीव स्तोक हैं । अवधक जीव असख्यातगुणें हैं ।

[ विशेष-आनतादि स्वर्गभे एक मनुष्यायुका ही वध होता है । ]

न्यमोधपरिमण्डल सस्थानके वधक जीव सबसे स्तोक हैं । रभति सस्थानके वधक जीव  
 सख्यातगुणें हैं । शुद्धकये वधक जीव सख्यातगुणें हैं । यामनके वधक जीव सख्यातगुणें हैं ।  
 हुडकसस्थानके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । समचतुरस्र सस्थानके वधक जीव सख्यात  
 गुणें हैं ।

(१) कथित्थीमु ण तित्थ सदरसहस्रारणात्ति तिरियदुग ।

तिरियाऊ उजावे अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ ॥ -गो० क० गा० ११२ ।

(२) 'गिरयेन होदि देवे आइणात्ति सच्च गम छिदी ।

खाल्ल चैव अत्रथा भणत्ति णत्थि तित्थपरं ॥ -गो० क० गा० ११३ ।

भगो । अप्सस्त्यत्रि० दूभग-दुस्मर-अणादेज्ज-णीचागोदाण वधगा जीवा थोवा । तप्यडिक्कसाण वधगा जीवा सखेज्ज० । सेसाणं युगलाण गिरयभगो । तित्थयर वधगा जीवा थोवा । अणधगा जीवा सखेज्ज० । अणुदिस याव सन्नद्ध त्ति सव्वत्थोवा हस्मरदि वध० जीवा । अग्दिसोग-वध० जीवा सखेज्ज० । पुरिसवे० भयदु० वध० जीवा विसेसा० । सेसाण युगलाण गिरयभगो । आयु० तित्थय० आणदभगो ।  
 ५ गयरि सव्वहे आयु० वधगा जीवा थोवा । अणध० जीवा सखेज्ज० ।

१० १४३४. पंचिदिघेसु-पचणा० सव्वत्थोवा अणध० जीवा । वधगा जीवा अत्त खेज्ज० । चदुदत्त० अणध० जीवा थोवा । णिहापचला अणध० जीवा विसेसा० । थोण-गिद्धि० ३ अवध० जीवा असखेज्ज० । वध० जीवा असखेज्ज० । णिहा-पचलाण वध० जीवा विसेसा० । चदुण्णं दसणावरणाण वध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा लोभ-मज्जल० अणधगा जीवा । माया सज्ज० अवध० जीवा विसेसा० । माणसज्ज० अणध० जीवा विसेसा० । कोधसज्ज० अण० जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणावरणी० ४ अवधगा जीवा असखेज्जगुणा । [ अपच्चक्खाणा० ४ अवधगा जीवा असखेज्ज० । ] अणताणुणध० ४ अवध० जीवा अण

सहननामे सत्थानके समान भग हैं । अप्रशस्त विहायोगति, दुभग, दुस्वर, अन्नादेय तथा नीचगोत्रके वधक जीव सप्तसे स्तोक हैं ।

इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ अर्थात् सुभग, सुस्मर, आदय तथा उद्यगोत्रके वधक जीव सरयातगुणें हैं । शेष युगलोंके विषयमे नरक गतिके समान भग हैं । तीर्थंकर प्रकृतिके वधक जीव सप्तसे स्तोक हैं । अवधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

अनुलिशमे लेकर सर्वायसिद्धिमे—हास्य-रतिके वधक जीव सप्तसे स्तोक हैं । अरति-शोकके वधक जीव सरयातगुणें हैं । पुरुषवेद तथा भय जुगुप्साके वधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष युगलोंमें नरक गतिके समान भग हैं ।

आयु तथा तीर्थंकरके वधकोंमे आन्तरे समान भग हैं । विशेष सर्वायसिद्धिमें आयुके वधक सर्ष स्तोक हैं । अवधक जीव सरयातगुणें हैं ।

१५३४ पचेत्ति-योम—५ ज्ञानावरणके अणधक जीव सप्तसे स्तोक हैं । वधक जीव असख्यात गुणें हैं । ४ दर्शनावरणके अणधक जीव सप्तसे स्तोक हैं । निद्रा प्रचलाके अणधक जीव विशेषाधिक हैं । स्थानगृद्धिनिकने अवधक जीव असरयातगुणें हैं । वधक जीव असख्यातगुणें हैं । निद्रा, प्रचलाके वधक जीव विशेषाधिक हैं । ४ दर्शनावरणके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

लोभ सज्जलनके अवधक जीव सर्ष स्तोक हैं । माया सज्जलनके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । मान सज्जलनके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध सज्जलनके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के अणधक जीव असख्यातगुणें हैं । [ अणयातयानावरण ४ के अवधक जीव असख्यातगुणें हैं । ] अणताणुणधी ४ के अवधक जीव असख्यातगुणें हैं । मिथ्यात्वके अणधक जीव विशेषाधिक हैं । वधक जीव असख्यातगुणें हैं ।

खेज्ज० । मिच्छन्त-अवध० जीवा विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । एत्तो पडिलोम विसेसाहिय । सादा-साद पंचजादि-संठाण संघड० वण्ण० ४ अगुरु० ४ आदाउज्जो० दोनिहाय० तसादि-दसयुगल० तिस्थय० दोगोद० पचतराइमाणं मणुसोव । मणुसायुबंधगा जीवा थोवा । णिरयायु-वधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-वधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । चटुण्ण आयुमाणं ५ वधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा सखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा चटुण्णं गठीणं अपधगा जीवा । देवगदि वध० जीवा अमखेज्ज० । णिरयगदि-वधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुमगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । सव्व-त्थोवा आहारम० वध० जीवा । पंचण्णं सरीराण अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउच्चि० बंध० जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालि० बंध० जीवा असंखेज्जगुणा । तेजा- १० वम्मइ-बंधगा जीवा विसेसाहिया । आहार० अगो० बंधगा जीवा थोवा । वेउच्चि० अगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्ण अंगोबंधगा वधगा जीवा विसेसाहिया । अवंधगा जीवा संखेज्जगुणा । गदिमगो आपुणुव्धीए ।

इससे विपरीत क्रम विशेष अधिकका शेष वधकोंमें लगाना चाहिए अर्थात् अनन्तानुवधी ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार अप्रत्यायानावरण ४, प्रत्यायानावरण ४ के वधक जीवोंमें विशेषाधिकका क्रम जानना चाहिए तथा क्रोध, मान, माया तथा लोभ सज्वलनमें विशेषाधिककी योजना प्रत्येकमें करनी चाहिए ।

साता, असाता, पचजाति, ६ सस्थान, ६ सहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, ० विहायोगति, त्रसादि दस युगल, तीर्थकर, दो गोर, ५ अन्तरायोंके वधकोंमें मनुष्योंके ओषघत्त जानना चाहिए ।

मनुष्यायुके वधक जीव स्तोक हैं । नरकायुके वधक जीव असत्यातगुणें हैं । देवायुके वधक जीव असत्यातगुणें हैं । तिर्यंचायुके वधक जीव असत्यातगुणें हैं । चारो आयुओंके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव सत्यातगुणें हैं ।

४ गतिके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके वधक जीव असत्यातगुणें हैं । नरकगतिके वधक जीव सत्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव असत्यातगुणें हैं । तिर्यंच-गतिके वधक जीव सत्यातगुणें हैं । आहारक शरीरके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । पाँचों शरीरोंके अपधक जीव सत्यातगुणें हैं । वैमिथिक शरीरके वधक जीव असत्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव असत्यातगुणें हैं । तैजस, कामाणके वधक जीव विशेषाधिक हैं । आहारक अगोपागके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । वैमिथिक अगोपागके वधक जीव असत्यात-गुणें हैं । औदारिक शरीर अगोपागके वधक जीव असत्यातगुणें हैं । तीनों अगोपागके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अपधक जीव सत्यातगुणें हैं । आनुपूर्वमि गतिके समान भग जानना चाहिए ।



१४३५. पचिदिय पज्जत्तगोसु—एमेव भगो । णवरि आयु० पचिदिय तिरिक्ख  
पज्जत्तभंगो । चट्ठगदिअवधगा जीवा थोवा । देवगदिवधगा जीवा असखेज्जगुणा ।  
मणुसगदिवधगा सखेज्जगुणा । तिरिक्खगदिवधगा जीवा सखेज्जगुणा । णिरयगदि  
वधगा जीवा सखेज्जगुणा । चट्ठण गदीण वधगा जीवा विसेसा० । पचजाटीण अणधगा  
जीवा थोवा । चट्ठरिदियअणधगा जीवा असखेज्जगुणा । तीइदि० अण० जीवा  
सखेज्ज० । वीइदि० वधगा जीवा असखेज्ज० । एइदियअणधगा जीवा सखेज्ज० ।  
पचिदिय वधगा जीवा सखेज्जगुणा । आहारस० अण० जीवा थोवा । पचण्ण मरीरण  
अणधगा जीवा सखेज्जगुणा । ओरालि० अण० जीवा असखेज्ज० । वेउळ्वि० वधगा जीवा  
सखेज्ज० । तेजाक० अण० जीवा विसेसाहिया । आहारस० अणो० वधगा जीवा थोवा ।  
ओरालि० अणो० वधगा जीवा असखेज्ज० । तिण्णि अणो० अवधगा जीवा सखेज्ज० ।  
वेउळ्वि० अणो० वधगा जीवा सखेज्ज० । तिण्ण अणोवगाण वधगा जीवा विसेसाहिया ।  
थावरादि० ४ अवधगा जीवा थोवा । वधगा जीवा असखेज्जगुणा । तसादि ४ अणधगा  
जीवा सखेज्जगुणा । थिरादि ६ युगल-दोगोदाण अवधगा थोवा । थिरादिउक्क-  
उच्चगोदाण च वधगा असखेज्जगुणा । तप्पडिपक्खाण अणधगा जीवा सखेज्जगुणा ।  
१५ णवरि दोविहा० दोसर० पचिदिय तिरिक्ख पज्जत्तभगो । एव विसेसो तसेसु पचि-

१४३५ पचेन्द्रिय पर्याप्तकोमे—ऐसे ही ( पचेन्द्रिय समान ) भग जानना चाहिए । विशेष यह  
है कि आयुके वधक जीवोंमें पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकरे समान भग करना चाहिए । चारों गतिके  
अवधक जीव स्तोक हैं । देवगतिके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव  
सख्यातगुणें हैं । तिर्यंचगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । नरकगतिके वधक जीव सख्यात गुणें  
हैं । चारों गतिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । पाँचों जातिके अवधक जीव स्तोक हैं । चौद्विषय  
जातिके वधक जीव असख्यातगुण हैं । त्रीन्द्रिय जातिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । दो इन्द्रिय  
जातिके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । एकेंद्रियके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । पचेन्द्रिय जातिके  
वधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

आहारक शरीरके वधक जीव स्तोक हैं । पाँचों शरीरोंके अवधक जीव सख्यातगुणें  
हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । वैकियिक शरीरके वधक जीव सख्यात-  
गुणें हैं । वैजस कामाणके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

आहारक शरीरगोपागके वधक जीव स्तोक हैं । औदारिक अगोपागके वधक जीव असख्यात-  
गुणें हैं । तीनों अगोपागके अणधक जीव सख्यातगुणें हैं । वैकियिक अगोपागके वधक जीव  
सख्यातगुणें हैं । तीनों अगोपागके वधक जीव विशेषाधिक हैं । स्थिरादि चतुष्कके अवधक  
जीव स्तोक हैं । वधक जीव असख्यातगुणें हैं । प्रसादिचतुष्कके वधक जीव सख्यातगुणें हैं ।  
स्थिरादि छह युगल, २ गोत्रोंके अणधक जीव स्तोक हैं । स्थिरादिपट्क तथा उच्च गोत्रके वधक  
जीव असख्यातगुणें हैं । इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियाके वधक जीव सख्यातगुणें हैं अर्थात् अस्थि-  
रादि पट्क तथा नीच गोत्रके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । विशेष यह है कि २ विहायोगति,

दियोव । णवरि पज्जत्तगेषु तिरिक्कप्पायुबंधगा जीवा सखेज्जगुणा । णामस्स सव्वत्थोवा  
 च्चदुग्गदि-अणधगा जीवा । देणग्गदिणधगा जीवा असखेज्जगुणा । मणुसग्गदि-वध०  
 जीवा सखेज्ज० । णिरयग्गदि-बंधगा जीवा सखेज्जगु० । तिरिक्कग्गदि-बंधगा जीवा  
 सखेज्ज० । पचण्ण जादीण अणधगा जीवा योवा । च्चदुग्गिदियबंधगा जीवा असखेज्ज-  
 गुणा । तीह्दियणधगा जीवा सखेज्ज० । वीह्दिय-वधगा जीवा संखेज्ज० । ५  
 पच्चिदियणधगा जीवा सखेज्ज० । एह्दिय-वध० जीवा सखेज्जगुणा । तस-थावरादि  
 च्चदुयुग्गलवधगा जीवा योवा । तसादि० ४ वधगा जीवा असखेज्ज० । थापरादि  
 ४ वधगा जीवा सखेज्जगु० । एदंण वीजेण णेदव्व पचमण० तिण्णिवचि० छण्ण  
 कम्मण-पच्चिदियमग्गो । णवरि वेदणी० अणधा गत्थि । मणुसायु-वधगा जीवा  
 योवा । णिरयायुणधगा जीवा असखेज्जगुणा । देणायुवधगा जीवा असखेज्ज० । १०  
 तिरिक्कप्पावधगा जीवा असखेज्ज० । च्चदुआयु-वधगा जीवा विसेसा० । अणधगा  
 जीवा सखेज्जगुणा । च्चदुण्णं गदीणं अवधगा जीवा योवा । णिरयग्गदिवधगा जीवा

२ स्वरोके वधक जीवोंमें पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकके समान भग जानना चाहिए । अर्थात् वधक जीव असख्यातगुणें हैं ।

त्रस जीवोंमें—पचेन्द्रियके ओघवत् विशेष जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ पर्याप्तकोंमें तिर्यंचायुके वधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

नामकर्मसम्बन्धी चार गतियोंके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । नरकगतिके वधक जीव सख्यात गुणें हैं । तिर्यंचगतिके वधक जीव सख्यात गुणें हैं । पौषों जातियोंके अणधक जीव स्तोक हैं । चौह्द्विज्य जातिके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । त्रीन्द्रिय जातिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । दोह्द्विज्य जातिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । पचेन्द्रिय जातिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । एकेंद्रिय जातिके वधक जीव सख्यात गुणें हैं ।

त्रस स्थावरादि चार युगलके वधक जीव स्तोक हैं । त्रसादि चारके वधक जीव असख्यात-गुणें हैं । स्थावरादि ४ के वधक जीव सख्यातगुणें हैं । इस वीजसे अर्थात् इस ढगसे अन्य प्रकृतियोंमें जानना चाहिए ।

[ विशेष—त्रस-स्थावरादि चार युगलके समान जेप वचे स्थिर, शुभ, सुभगादि युगलोंका वर्णन जानना चाहिए । ]

५ मनोयोगी, ३ वचनयोगियोंमें ६ कर्मोंके वधक जीवोंमें पचेन्द्रियके समान भग निकालना चाहिए । विशेष यह है कि वेदनीयके अणधक नहीं हैं ।

मनुष्यायुके वधक जीव स्तोक हैं । नरकायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । देवायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । तिर्यंचायुके वधक जीव असख्यात गुणें हैं । चारों आयुके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

चारा गतिके अवधक जीव स्तोक हैं । नरक गतिके वधक जीव असख्यातगुणें हैं ।

१४३५. पचिदिय पज्जत्तगोसु—एसेव भगो । णवरि आयु० पचिदिय तिरिक्ख  
पज्जत्तभगो । च्दुग्गदिअरधगा जीना थोवा । देवगदिबधगा जीना असखेज्जगुणा ।  
मणुमगदिबधगा सखेज्जगुणा । तिरिक्खगदिअरधगा जीना सखेज्जगुणा । णिरयगदि  
बधगा जीना सखेज्जगुणा । च्दुण्ण गदीण बधगा जीना विसेसा० । पचजादीण अबधगा  
जीवा थोवा । च्दुरिदियअरधगा जीना असखेज्जगुणा । तीइदि० बध० जीना  
सखेज्ज० । वीइदि० बधगा जीना असखेज्ज० । एइदियबधगा जीना सखेज्ज० ।  
पचिदिय-बधगा जीना सखेज्जगुणा । आहारस० अ० जीना थोवा । पचण्ण सरीरण  
अबधगा जीना सखेज्जगुणा । ओरालि० बध० जीना अमखेज्ज० । वेउन्नि० बधगा जीना  
सखेज्ज० । तेनाक० बध० जीना विसेसाहिया । आहारस० अगो० बधगा जीना थोवा ।  
१० ओरालि० अगो० बधगा जीना असखेज्ज० । तिण्णि अगो० अबधगा जीना सखेज्ज० ।  
वेउन्नि० अगो० बधगा जीना सखेज्ज० । तिण्ण अगोवगाण बधगा जीना विसेसाहिया ।  
थावरादि० ४ अरधगा जीना थोवा । बधगा जीना असखेज्जगुणा । तसादि ४ बधगा  
जीना सखेज्जगुणा । धिरादि ६ मुगल-दोगोदाण अबधगा थोवा । धिरादिछक्क  
उच्चगोदाण च बधगा असखेज्जगुणा । तप्पडिपक्खाण बधगा जीना सखेज्जगुणा ।  
१५ णवरि दोविहा० दोसर० पचिदिय तिरिक्ख पज्जत्तभगो । एव विसेसो तसेसु पचि-

१४३५ पचेन्द्रिय पर्याप्तकाम—एसे ही ( पचेन्द्रिय समान ) भग जानना चाहिए । विशेष यह  
है कि आयुके बधक जीवोंम पचेन्द्रिय तिर्यक् पर्याप्त करने समान भग करना चाहिए । चारों गतिके  
अबधक जीव स्तोक हैं । द्वागतिके बधक जीव असख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बधक जीव  
सख्यातगुणें हैं । तिर्यचगतिके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । नरकगतिके बधक जीव सख्यात गुणें  
हैं । चारों गतिने बधक जीव विशेषाधिक हैं । पाँचों जातिके अबधक जीव स्तोक हैं । चौद्वित्रिय  
जातिके बधक जीव असख्यातगुणें हैं । त्रीद्वित्रिय जातिने बधक जीव सख्यातगुणें हैं । दो इद्वित्रिय  
जातिके बधक जीव असख्यातगुणें हैं । एकेन्द्रियके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । पचेन्द्रिय जातिके  
बधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

आहारक शरीरके बधक जीव स्तोक हैं । पाँचों शरीरोंके अबधक जीव सख्यातगुणें  
हैं । औदारिक शरीरके बधक जीव असख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बधक जीव सख्यात-  
गुणें हैं । तेनस चार्माणके बधक जीव विशेषाधिक है ।

आहारक शरीरानोपागके बधक जीव स्तोक है । औदारिक अगोपागके बधक जीव असख्यात-  
गुणें हैं । तीनों अगोपागके अबधक जीव सख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक अगोपागके बधक जीव  
सख्यातगुणें हैं । तीनों अगोपागके उधक जीव विशेषाधिक हैं । स्थावरादि चतुष्कके अबधक  
जीव स्तोक है । बधक जीव असख्यातगुणें हैं । तसादिचतुष्कके बधक जीव सख्यातगुणें हैं ।  
स्थिरादि छह मुगल, ० गोत्रोंके अबधक जीव स्तोक हैं । स्थिरादिपट्क तथा उच्च गोत्रके बधक  
जीव असख्यातगुणें हैं । इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंके बधक जीव सख्यातगुणें हैं अर्थात् अस्थि-  
रादि पट्क तथा नीच गोत्रके उधक जीव सख्यातगुणें हैं । विशेष यह है कि ० विहायोगति,

ओषधभगो, किंचि त्रिसेसा० ।

§४३७. ओरालिय निस्से-सव्वत्थोवा छदसणा० अवंधगा जीवा । थीणगिद्धि  
३ अवधगा० सखेज्ज० । अवधगा (?) (वधगा) जीवा अणतगु० । छदसणा० वधगा जीवा  
त्रिसेसा० । सव्वत्थोवा वारसव्व० अवधगा जीवा । अणंताणु० ४ अवधगा० सखेज्ज० ।  
मिच्छ० अवधगा जीवा असंखेज्ज० । वधगा जीवा अणतगुणा । अणंताणुवधि० ४ ५  
वधगा० त्रिसेसा० । वारसव्व० वधगा० जीवा त्रिसेसा० । तिण्णं गदीण [ अ ] वधगा  
जीवा थोवा । देवगदिनवधगा जीवा सखेज्ज० । मणुमगदिनवधगा जीवा अणतगुणा ।  
तिरिक्खगदिनवधगा जीवा संखेज्जगुणा । तिण्णि गदीण वधगा जीवा त्रिसेसा० ।  
सव्वत्थोवा चट्ठण सरीराणं अवधगा जीवा । वेउवियसरीर वधगा जीवा सखेज्ज० ।  
ओरालि० वधगा० अणतगु० । तेजाक० वधगा० त्रिसेसा० । वेउविय अगो० वधगा १०  
जीवा थोवा । ओरालि० अगो० वधगा जीवा अणतगु० । दोण्ण वधगा जीवा त्रिसे० ।  
अवधगा जीवा सखेज्ज० । गदिभगो आणुपुण्ड्रि० । सेस ओष ।

काययोगियों तथा औदारिक काययोगियोंमें-ओषधे समान भग है । किन्तु उसमें विशेषा-  
धिकता क्रम जानना चाहिए ।

§४३७ औदारिक मिश्रमें-६ दर्शानारणके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । स्थानगृद्धिद्रिकके  
अवधक जीव सख्यातगुणें हैं । स्थानगृद्धिद्रिकके अवधक (वधक) जीव अनन्तगुणें हैं ।  
६ दर्शानारणके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[ विशेष-द्वितीय बार आगत स्थानगृद्धिद्रिकके अवधकके स्थानमें वधकका पाठ उपयुक्त  
प्रतीत होता है । ]

बारह कपायके अवधक जीव सर्व स्तोक हैं । अनन्तानुवधी ४ के अवधक जीव सख्यात-  
गुणें हैं । मिश्रत्वमें अवधक जीव असख्यातगुणें हैं । वधक जीव अनन्तगुणें हैं । अनन्ता-  
नुवधी ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । बारह कपायके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

तीन गतिके [ अ ] वधक जीव स्तोक हैं । देवगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं ।  
मनुष्यगतिके वधक जीव अनन्तगुणें हैं । तिर्यच गतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । तीनों गति-  
के वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[ विशेष-यहां नरकगतिका वध नहीं होता है । इस कारण तीन गतियोंका वर्णन किया  
गया है । ]

चारों शरीरके अवधक जीव सर्वस्तोक हैं । वैक्रियिक शरीरके वधक जीव सख्यात-  
गुणें हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव अनन्तगुणें हैं । तजस-कामाणिके वधक जीव  
विशेषाधिक हैं ।

वैक्रियिक अगोपागके वधक जीव स्तोक हैं । औदारिक अगोपागके वधक जीव अनन्त  
गुणें हैं । दोनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

आनुपूर्वमि गतिके समान भग कहना चाहिए । शेष प्रकृतियोंमें ओषधत्व जानना चाहिए ।

- असखेज्ज० । देवगदिबधगा जीना असखेज्ज० । मणुमगदिबधगा जीना सखेज्ज० ।  
 तिरिम्पुगदिबधगा जीना सखेज्जगु० । चदुण्ण गदीण बधगा जीना विसेमा० ।  
 पंचण जादीण अबधगा जीवा योवा । चदुरिंदिग-बध० जीना असखेज्ज० । तीइदिय  
 बधगा जीना संखेज्ज० । बीइदि० बधगा जीना सखेज्ज० । पचिदिय० बधगा जीना  
 ५ असखेज्ज० । एइदिय० बधगा जीना मखेज्ज० । पचण्ण जादीण बधगा जीना  
 विसेमा० । पचण्ण सरीराण अबधगा जीना योवा । जाहारस० बधगा जीना सखेज्ज० ।  
 वेउब्बिय० बधगा जीना असखेज्ज० । ओरालि० बधगा जीना सखेज्जगुणा । तेन  
 क० बधगा जीना विसेसाहिया । सठाण अगोव० सघह० वण्ण० ४ आदा-उब्बो  
 दोनिहाय० तसथारदादिछुगल णिमिण तित्थयर० पचिदियमंगो । गदिभगो आण  
 १० पुब्बि० । अगु० उप० अन० जीना थोवा । परघाटुस्ता० अबधगा जीवा असखेज्ज० ।  
 बधगा जीना असखेज्ज० । अगु० उप० बधगा जीना विसेमा० । सब्बत्थोवा वाद  
 रादि तिण्णि-युगलाण अबधगा जीना । सुट्टमादितिण्णिवधगा जीवा असखेज्ज० ।  
 वादरादि तिण्णिवधगा जीना असखेज्जगु० । दोण्ण बधगा जीना विसेमा० ।

§३३६. वचिजोगि-असचमोसचि-तनपज्जचमगो । काजोगीसु ओरालियका०

द्वगतिके बधक जीव असख्यातगुणें हैं । मनुष्य गतिके बधक जीव सरयातगुणें हैं । तिर्यच  
 गतिने बधक जीव मर्यातगुणें हैं । चारो गतिके बधक जीव विशेष अधिक हैं ।

पाँचो जातिके अबधक जीव स्तोक हैं । चौइन्द्रिय जातिने बधक जीव असरयातगुणें  
 हैं । त्रीन्द्रिय जातिके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । दोइन्द्रिय जातिके बधक जीव सरयातगुणें  
 हैं । पचेन्द्रिय जातिके बधक जीव असरयातगुणें हैं । एकेन्द्रिय जातिने बधक जीव मर्यातगुणें  
 हैं । पाँचों जातियोने बधक जीव विशेषाधिक हैं ।

पाँचो शरीरके अबधक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके बधक जीव सरयातगुणें  
 हैं । वैत्रियिक शरीरके बधक जीव असरयातगुणें हैं । औदारिक शरीरके बधक जीव सरयात  
 गुणें हैं । तैजस, कार्मणके बधक जीव विशेषाधिक हैं ।

सन्धान, अगोपाता, सहनन, वण ४, आतप, उद्योत, २ विद्यायोगति, अस-स्थाररादि  
 ६ युगल, निर्माण और तीर्थकरके बधकोंने पचेन्द्रियके समान भग जानना चाहिए ।

आनुपूर्वीके बधकोंने गतिके समान जानना चाहिए ।

अगुरुल्लघु, उपघातके अबधक जीव स्तोक हैं । परघात, उच्छ्वासके अबधक जीव अस  
 रयातगुणें हैं । बधक जीव असख्यातगुणें हैं । अगुरुल्लघु उपघातके बधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
 नाइरादि वान युगलोंके अबधक जीव मर्य स्तोक हैं । सूट्टमादि तीनके बधक जीव  
 असख्यातगुणें हैं । वादरादि तीनके बधक जीव असरयातगुणें हैं । दोनोके बधक जीव  
 विशेषाधिक हैं ।

§३३६ वचनयोगी, असत्त्वमृपा वचनयोगी अथात् अनुभव वचनयोगीमे अस पर्याप्तमे  
 समान भग हैं ।

ओषधमगो, किंचि त्रिसेसा० ।

५४३७. ओरालिय मिस्से-सञ्चत्थोना छद्दसणा० अरंधगा जीवा । धीणगिद्धि  
३ अरंधगा० सखेज० । अरंधगा (?) (वधगा) जीवा अणतगु० । छद्दसणा० वधगा जीवा  
त्रिसेमा० । सञ्चत्थोना धारसक० अरंधगा जीवा । अणताणु० ४ अरंधगा० सखेज्ज० ।  
मिच्छ० अरंधगा जीवा असखेज्ज० । वधगा जीवा अणतगुणा । अणताणुवधि० ४ ५  
वधगा० त्रिसेसा० । धारसक० वधगा० जीवा त्रिसेसा० । तिण्ण गदीण [ अ ] वधगा  
जीवा थोना । देवगदिवधगा जीवा सखेज्ज० । मणुमगदिवधगा जीवा अणतगुणा ।  
तिरिक्खगादिवधगा जीवा संखेज्जगुणा । तिण्णि गदीण वधगा जीवा त्रिसेमा० ।  
सञ्चत्थोना च्चट्टुण्ण सरीराण अवधगा जीवा । वेडन्नियसरीर वधगा जीवा सखेज्ज० ।  
ओरालि० वधगा० अणतगु० । तेजाक० वधगा० त्रिसेमा० । वेडन्निय अगो० वंधगा १०  
जीवा थोना । ओरालि० अगो० वधगा जीवा अणतगु० । दोण्ण वधगा जीवा त्रिसे० ।  
अवधगा जीवा सखेज्ज० । गदिभगो जाणुपुच्चि० । सेस ओष ।

काययोगियों तथा औदारिक काययोगियों-ओषधके समान भग है । किन्तु उनमें विशेषा  
धिकता नम जानना चाहिए ।

५४३७ औदारिक मिश्रमे-६ दर्शानारणके अवधक जीव सर्व स्तोक है । स्थानगृद्धिप्रिने  
अवधक जीव सरयातगुणें है । स्थानगृद्धिप्रिने अवधक ( वधक ) जीव अनन्तगुणें है ।  
६ दर्शानारणके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[ विशेष-द्वितीय धार आगत स्थानगृद्धिप्रिकने अरंधकके स्थानमें वधकका पाठ उपयुक्त  
प्रतीत होता है । ]

धारह क्पायके अरंधक जीव सर्व स्तोक हैं । अनन्तानुबधी ४ के अरंधक जीव सरयात  
गुणें हैं । मिश्र्यात्वने अवधक जीव असख्यातगुण हैं । वधक जीव अनन्तगुणें हैं । अनन्ता-  
नुबधी ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । धारह क्पायके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

तीन गतिके [ अ ] वधक जीव स्तोक हैं । देवगतिने वधक जीव सरयातगुणें हैं ।  
मणुगतिने वधक जीव अनन्तगुणें हैं । तिर्य्य गतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । तीनों गति-  
के वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[ विशेष-उह/ नरकगतिना वध नहीं होता है । इस कारण तीन गतियोंका वर्णन किया  
गया है । ]

चारों शरीरने अवधक जीव सर्वस्तोक हैं । वैश्विक शरीरके वधक जीव सरयात-  
गुणें हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव अनन्तगुणें हैं । तेजस-सामीने वधक जीव  
विशेषाधिक हैं ।

वैश्विक अगोपागने वधक जीव स्तोक है । औदारिक अगोपागके वधक जीव अनन्त-  
गुणें हैं । दोनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अरंधक जीव सरयातगुणें हैं ।

आनुपूर्वम गतिके समान भग कहना चाहिए । शेष प्रकृतियोंमें ओषधन् जानना चाहिए ।

§४३८. वेडवियका० वेडवियमि० देवोघ ।

§४३९ आहार० आहारमि० सव्वट्टभगो ।

§४४०. कम्मइ० ओरालिय-मिस्त-भगो । णरि सव्वत्थोवा छदसणा० अवधगा जीवा । थीणगिद्धि ३ अरधगा जीवा असखे० । उधगा जीवा अणंतगुणा ।  
 ५ छदसणा० वधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा चारसक० अरधगा जीवा । अणताणु वधि० ४ अरधगा जीवा असखेज्जगुणा । मिच्छ० अरधगा जीवा विसेसाहिया ।  
 वधगा जीवा अणतगु० । अणताणुव० ४ वधगा जीवा विसेसा० । चारसक० वध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा निष्ण गदीण अरधगा जीवा । देवगदि-वधगा जीवा सखेज्ज० । मणुमगदिवधगा जीवा अणतगु० । तिरिक्खगदिवधगा जीवा सखेज्ज-  
 १० गुणा । एदेण कमेण षेट्ठव ।

§४४१ इत्थिवेद०—सव्वत्थोवा णिदापचलाण अरधगा जीवा । थीणगिद्धि ३ अरधगा जीवा असखेज्ज० । वधगा जीवा असखेज्ज० । णिदापचलाण वधगा जीवा विसेसा० । चदुदसण० वधगा जीवा विसेसा० । वेदणीय मणमगो । सव्वत्थोवा पच्च वसाणा० चदु० अरधगा जीवा । अपच्चवसाणा० ४ अरधगा जीवा असखेज्ज० ।  
 १५ अणताणुव० ४ अरधगा जीवा असखेज्ज० । मिच्छत्त-अरध० जीवा विसेसा० । वधगा जीवा असखेज्ज० । अणताणु० ४ वध० जीवा विसेसा० । अपच्चवसाणा० ४

§४३८ वैकिकिक काययोगी और वैकिकिक मिश्रयोगीम दवोंके ओघवत् जानना चाहिए ।

§४३९ आहारक काययोगी और आहारक मिश्रयोगीमे सर्वोर्धसिद्धिने समान भग है ।

§४४० कार्माण काययोगियों—औदारिक मिश्र काययोगीके समान भग कहना चाहिए ।  
 विशेष यह है कि ६ दर्शनावरणके अवधक जीव सवस्तोक है । स्थानगुद्धि ३ के अरधक जीव असखातगुणों है । वधक जीव अनन्तगुणों है । ६ दर्शनावरणके वधक जीव विशेषाधिक है । १० कपायके अवधक जीव सर्वस्तोक है । अनन्तानुवधी ८ के अवधक जीव असखातगुणों है । मिथ्यात्वके अवधक जीव विशेषाधिक है । वधक जीव अनन्तगुण है । अनन्तानुवधी ८ के वधक जीव विशेषाधिक है । १० कपायके वधक जीव विशेषाधिक है । तीनों गतिके अवधक जीव सव स्तोक है । दवगतिके वधक जीव सखातगुणों है । मनुष्यगतिके वधक जीव अनन्त गुणों है । नियचगतिके वधक जीव सखातगुणों है । इस क्रमसे अरध जानना चाहिये ।

[ विशेष—इस योगमे नरकगतिका वध नहीं होता है । ]

§४४१ खीवेदम निद्रा, प्रचलाके अवधक जीव सवस्तोक है । स्थानगुद्धिके अरधक जाव असखातगुण है । वधक जीव असखातगुणों है । निद्रा, प्रचलाके वधक जीव विशेषाधिक है । चारों दर्शनावरणके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

वेदनीयके वधक जीवोंमें मनोयोगीके समान भग है ।

प्रत्याख्यानावरण ५ के अरधक जीव सवस्तोक है । अप्रत्याख्यानावरण ८ के अवधक जीव असखातगुणों है । अनन्तानुवधी ४ के अवधक जीव असखातगुणों है । मिथ्यात्वके अवधक जीव विशेषाधिक है । वधक जीव असखातगुणों है । अनन्तानुवधी ४ के वधक जीव

वधगा जीवा विसेसा० । पञ्चक्लाणा० ४ वधगा जीवा विसेसा० । चदुसंजलण-  
 वधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा पुरिसवेद-बंधगा जीवा । इत्थिवेद-बंधगा जीवा  
 सखेज्जगु० । हस्सरदि-बंधगा जीवा सखेज्जगु० । अरदिसोग-बंधगा जीवा सखेज्ज० ।  
 णवुस० वधगा जीवा विसेसा० । भय दुगुं० वधगा जीवा विसेसा० । णमणोक०  
 वधगा जीवा विसेसा० । आयुचदुकक-पंचिदि०-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । सव्वत्थोवा ५  
 चदुष्ण गदीणं अवधगा जीवा । देवगदिनधगा जीवा असखेज्ज० । णिरयगदिवधगा  
 जीवा सखेज्ज० । मणुसगदिवधगा सखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा सखेज्ज-  
 गुणा । चदुष्ण गदीण वधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा पचजादि-अवधगा जीवा ।  
 चदुरिदिय-बंधगा जीवा असखेज्ज० । तीइदि० वध० जीवा सखेज्ज० । वीइंदिय-  
 वधगा जीवा सखेज्ज० । एइदि० वधगा जीवा संखेज्ज० । पच-जादीणं वधगा जीवा १०  
 विसेसाहिया । पचसरिीर० छसठाण तिण्णि-अगो० छस्संध० दो विहा० दोसरं मण-  
 जोगिभगो । सव्वत्थोवा अगु० उप० अवधगा जीवा । परघादुस्सा० अंध० जीवा  
 असखेज्ज० । वधगा जीवा सखेज्ज० । अगुरु० उप० वधगा जीवा विसेसा० । तस-  
 थावरादि पचयुगल-तित्थयर-दो गोदाण मणजोगिभगो । णवरि जस-अज्जस० दो

विशेषाधिक हैं । अत्रत्याख्यानानरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानारण ४ के  
 वधक जीव विशेषाधिक हैं । ४ सञ्चलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

पुरुषवेदके वधक जीव सर्वस्तोक हैं । स्त्रीवेदके वधक जीव सरयातगुणें हैं ।  
 हारय, रतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । अरति, शोकके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । नपुसक  
 वेदके वधक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके वधक जीव विशेषाधिक हैं । नव नोरुपायके  
 वधक जीव विशेषाधिक हैं । ४ आयुके वधकोंमें पचेन्द्रिय तिर्यकपर्याप्तकका भङ्ग जानना चाहिए ।

चारों गतिके अवधक जीव सर्वस्तोक हैं । देवगतिके वधक जीव असरयातगुणें हैं ।  
 नरक गतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । तिर्यच  
 गतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । चारों गतिके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

पच जातियोंके अवधक जीव सर्वस्तोक हैं । चौइन्द्रिय जातिके वधक जीव असरयात-  
 गुणें हैं । त्रीइन्द्रिय जातिके वधक जीव सख्यात गुणें हैं । दो इन्द्रिय जातिके वधक जीव सख्यात-  
 गुणें हैं । एकेन्द्रिय जातिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । पाचों जातियोंके वधक जीव  
 विशेषाधिक हैं ।

[ विशेष—यहां पचेन्द्रिय जातिके वधकोंका प्रमाण वर्णन करनेसे छूट गया प्रतीत होता है । ]

५ शरीर, ६ सस्थान, ३ अगोपाग, ६ सहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके वधक जीवोंमें  
 मनोयोगियोंके समान भग जानना चाहिए ।

अगुन्लघु, उपघातके अवधक जीव सर्वस्तोक हैं । परघात, उच्छ्वासके अवधक जीव  
 असरयातगुणें हैं । वधक जीव सरयातगुणें हैं । अगुरुलघु, उपघातके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

अस, स्थाररादि ५ युगल, तीथकर, २ गोत्रके विषयमें मनोयोगियोंके समान भग हैं ।  
 विशेष यह है कि यश कीर्त्ति, अयश कीर्त्ति तथा दोनों दोनोंके समान भग हैं ।



गोटाण साधारणेण अनधगा णत्थि । सच्चत्थोमा चादरादि-त्तिण्णि-युगल-अनधगा जीमा । सुहुमादित्तिण्णि युगल (१) वधगा जीवा असखेज्ज० । चादरादि त्तिण्णि युगल (१) वधगा जीमा सखेज्जगुणा । एव पुरिमवे० । णयुमगवे० ओघमगो । णवरि विसेसो वि इत्थि-वेदण साधिज्जदि ।

१. §४४२ अवगदवेदेसु-सच्चत्थोमा पचणा० वधगा० । आधगा जीमा अणतगुणा । एव चदुदसणा०, माद० जस० उच्चगो० पचत० । सच्चत्थोमा कोध-मज्जल० वधगा । माण-सज्जल० वधगा जीवा विसेसा० । माया-सज्ज० वधगा जीमा विसेसा० । लोम-सज्ज० वध० जीवा विसेसा० । तस्सेण अनधगा जीवा अणतगुणा । मायासज्ज० अथागा जीवा विसे० । माण-सज्ज० अघ० जीमा विसे० । कोध सज्ज० अघ० जीवा विसेमा० ।
- १० §४४३. कोधे-णयुसकभगो । णरि णय णोःसाय ओघ । माणे-सच्चत्थोवा कोध-सज्ज० अघ० जीमा । सेस ओघं । णरि कोध० वधगा जीमा विसे० । माण-माय-लोम-सज्जलणवधगा जीमा विसेसा० । मायाए-सच्चत्थोवा माणसज्ज० अघ०

वादरादि तीन युगलके अवधक जीव सर्वे स्तोके हैं । सूक्ष्मादि तीन युगल (१) के वधक जीव असख्यातगुणें हैं । वादरादि तीन युगल (१) के वधक जीव मख्यातगुणें हैं ।

[ विशेष-यहा सूक्ष्मादि तीन तथा वादरादि तीनके वधकाके साथम युगल शर अर्धक प्रतीत होता है । कारण सूक्ष्मादि तीन युगलके ही अलगत वादरादि तीन प्रकृतियाँ हैं, एव वादरादि तीन युगलमे सूक्ष्मादि तीन प्रकृतियाँ हैं । ]

पुरुपेमे-छीवेदके समान भग है ।

नपुसकवदमे-ओघवत् भग है । विशेष, छीवेदने जो विशेषता हो, उसे निश्चल लेना चाहिए ।

१७४० अपगतवेदियोंम-५ ज्ञानावरणने वधक जीव सबस्तोक हैं । अवधक जीव अनन्त गुणें हैं । इसी प्रकार ४ दर्शनावरण, साता वेदनीय, यश वीर्य, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायोंके वधकों अवधकोंम भी जानना चाहिए ।

क्रोध-सञ्जलनके वधक जीव सस्तोक हैं । मान-सञ्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । माया-सञ्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । लोम-सञ्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । लोम-सञ्जलनके अनधक जीव अनन्तगुणें हैं । माया-सञ्जलनके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-सञ्जलनके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-सञ्जलनके अनधक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४४३ क्रोधमे-नपुसकवेदके समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि ९ नोकपायाके वधकोंमे ओघवत् जानना चाहिए ।

मानम-क्रोध-सञ्जलनके अनधक जीव सबस्तोक हैं । शेष प्रकृतियोंमे ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, क्रोधके वधक जीव विशेषाधिक हैं । मान, माया, लोम, सञ्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

जीवा सेस माणकसाह-भगो । णवरि मायलोभसज० वधगा जीवा विसे० । लोभे-  
मोह० ओघ । सेस कोवभगो । अकसाह-सव्वत्थोवा साद-बंध० । अणधगा जीवा  
अणत्तगु० । एव केवलणा० केवलदसणा० ।

१४४४ मदि० सुद०-सव्वत्थोवा मिच्छत्त-अवधगा जीवा । वंधगा जीवा  
अणत्तगुणा । सोलसक० वधगा जीवा विसेसा० । सेस तिरक्खोघ । णवरि सम्मत्त- ५  
सयुत्त णत्थि ।

१४४५ विभगे-सव्वत्थोवा मिच्छत्त-अव० जीवा । वधगा जीवा असखेज्ज० ।  
सोलसक० वधगा जीवा विसेसा० । दो वेदणी० णत्तणीक० छस्संठाण० छस्सघ०  
दो विहा० तसथावरादि छयुगलणं दोगोद० देवोव-भगो । सव्वत्थोवा मणुसायु-वधगा  
जीवा । णिरयायु वधगा जीवा असखेज्जगु० । देवायु-वधगा जीवा असखेज्ज० । १०  
तिरिक्खायु-वध० जीवा असखेज्ज० । चटुण्ण आयु-वधगा जीवा विसे० । अवधगा  
जीवा सखेज्ज० । णिरयगदि वध० जीवा थोवा । देवगदि-वध० जीवा असखेज्ज० ।  
मणुसगदि वधगा जीवा असखेज्ज० । तिरिक्खगदि वधगा जीवा सखेज्ज० । चटुण्ण

मायामे—मान स्वप्नके अवधक जीव सर्वस्तोक है । शेष प्रकृतियोंमें मान कर्मायियोंके  
समान भग जानना । विशेष यह है कि माया, लोभ स्वप्नके वधक जीव विशेषाधिक है ।

लोभमे—मोहनीयके ओघ समान है । शेष प्रकृतियोंमें क्रोधके समान भग है ।

अकर्पाय जीवोंमें—साता वेदनीयके वधक जीव सर्वस्तोक है । अवधक जीव अनन्तगुणें हैं ।

इसी प्रकार वैचलजानी, वैचलदशनवाले जीवोंमें जानना चाहिए ।

१४४४ मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमे—मध्यात्वके अणधक जीव सर्वस्तोक हैं । वधक जीव अनन्त  
गुणें हैं । सोलह कर्पायके वधक जीव विशेषाधिक है । शेष प्रकृतियोंके वारमें तिर्यचोंके ओघ  
समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहा सम्यक्त्वने साथ बंधनेवाली प्रकृतियोंका  
अभाव है ।

[ विशेष—तीर्थंवर तथा आहारकद्विवका सम्यक्त्वके साथ ही वध होता है । अत इनका  
वध न होगा । ]

१४४५ विभगज्ञानियोंमें—मध्यात्वके अणधक जीव सर्वस्तोक है । वधक जीव असख्यात  
गुणें हैं । सोलह कर्पायके वधक जीव विशेषाधिक है । २ वेदनीय, ९ नोनपाय, ६ सस्यान,  
६ सहनन, २ विहायोगति, त्रस थावरादि ६ युगल तथा दो गोत्रोंमें देवोंके ओघवत् भग है ।

मनुष्यायुके वधक जीव सर्वस्तोक है । नरकायुके वधक जीव असख्यातगुण हैं । देवायुके  
वधक जीव असख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । चारों आयुके वधक  
जीव विशेषाधिक हैं । अणधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

नररगतिके वधक जीव स्तोक है । देवगतिने वधक जीव असख्यातगुण हैं । मनुष्यगतिके  
वधक जीव असख्यातगुणें हैं । तिर्यचगतिने वधक जीव सख्यातगुणें हैं । चारों गतिके वधक  
जीव विशेषाधिक हैं ।

गद्दीण वधगा जीवा विसेमा० । एव आणुपु० । चदुरिन्द्रिय-वधगा जीवा घोरा । तीन्द्रियवधगा जीवा सरसेज्ज० । घीन्द्रिय-वधगा जीवा सरसेज्ज० । पचिदि० वध० जीवा अससेज्ज० । एन्द्रिय-वधगा जीवा सरसेज्ज० । पचजादीण वधगा जीवा विसेमा० । वेउन्वियसरीरवधगा जीवा घोरा । ओरालि० वधगा जीवा अससेज्ज० ।  
 ५ तेजाक० वध० जीवा विसे० । सव्वत्थोवा वेउन्वि० अगो० वधगा जीवा । ओरालि० अगो० वधगा जीवा अससेज्ज० । दोण्णं अगो० वधगा जी० विसेमा० । अरवधगा जीवा अससेज्ज० । परघादुस्मा० अरवध० जीवा घोरा । वधगा जीवा अससेज्ज० । अगु० उप० वधगा जीवा विसेसा० । आदावुज्जोव-ठेवोप । सव्वत्थोवा सुदुमादि-तिण्ण वधगा जीवा । तप्पडिपमत्ताण वधगा जीवा अससेज्जगुणा । दोण्ण वधगा  
 १० जीवा विसेमा० ।

१४४६. आभि० सुद० ओधि०-मव्वत्थोवा पचना० अवधगा जीवा । वधगा जीवा अससेज्ज० । एव जतराद्दगा । मव्वत्थोवा चदुदस० अव० जीवा । णिहापचला अव० जी० विसेसा० । वधगा जीवा अससेज्जगु० । चदुदस० वध० जीवा विसेसा० । दोवेदणी० दरोष । सव्वत्थोवा लोभमज्ज० अव० जीवा । मायासज्ज० अव० जीवा

इसी प्रकार आनुपूर्वियोंमें जानना चाहिए ।

चौन्द्रिय जातिके वधक जीव स्तोक हैं । त्रीन्द्रिय जातिके वधक जीव असत्प्रातगुणें हैं । द्वीन्द्रिय जातिके वधक जीव असत्प्रातगुणें हैं । पचेन्द्रिय जातिके वधक जीव असत्प्रातगुणें हैं । एकेंद्रियके वधक जीव असत्प्रातगुणें हैं । ५ जातियोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

वैत्रियिक शरीरके वधक जीव स्तोक हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव असत्प्रातगुणें हैं । तैजस, धार्माणके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

वैत्रियिक अगोपागके वधक जीव सप्तस्तोक हैं । औदारिक अगोपागके वधक जीव असत्प्रातगुण हैं । दोनो अगोपागके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अरवधक जीव असत्प्रातगुणें हैं ।

परघात, उच्छ्वासके अरवधक जीव स्तोक हैं । वधक जीव असत्प्रातगुणें हैं । अगुरुलक्षण उपघातके वधक जीव विशेषाधिक हैं । आतप, उद्योतके वधकजीमि द्योषयन् जानना चाहिए ।

सूक्ष्मान्ति ३ के वधक जीव सर्वगतोक्त हैं । इनके प्रतिपक्षी वादरान्ति ३ के वधक जीव असत्प्रातगुणें हैं । दोनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

१४४६ आभिनिरोधिक, श्रुत, अपयिज्ञान मे ५ ज्ञानारणके अरवधक जाय स्तोक हैं । वधक जीव असत्प्रातगुणें हैं । ऐसा ही अन्तरायका वर्णन जानना चाहिए अर्थात् अरवधक जीव सर्व स्तोक हैं और वधक जीव असत्प्रातगुणें हैं ।

४ दर्शनावरणके अवधक जीव सप्तसे कम हैं । निद्रा, प्रवृत्ताके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । इनके वधक जीव असत्प्रातगुणें हैं । ४ दर्शनावरणके वधक जीव विशेषाधिक हैं । दो वेदनीयके वधक अवधक जीवोंमें द्योषयन् जानना ।

लोभ-सव्वलनके अवधक जीव सप्तसे स्तोक हैं । माया-सज्जलनके अवधक जीव विसे

विसेसा० । माणसज० अव० जीवा विसेसा० । क्रोधसज० ज्व० जीवा विसेसाहिया । पच्चक्खाणावर० ४ अग्रध० जीवा सखेज्ज० । अपच्चक्खाणावर० ४ अग्रध० जीवा असखेज्जगु० । वध० जीवा असखेज्ज० । पच्चक्खाणा० ४ वध० जीवा विसेसा० । क्रोधसज० वध० जीवा विसेसा० । माणसज० वध० जीवा विसे० । मायासज० वध० जीवा विसे० । लोभसज० वध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोना सत्तणोक० अग्रधगा जीवा । हस्सरदिवधगा जीवा असखेज्जगु० । अरदिसोग-वधगा जीवा विसेसा० । भयदुगुच्छावधगा जीवा विसेसा० । लोभसज० वधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोना सत्तणोक० (१) पुरिस० वधगा जीवा विसेसा० । मणुसायु-वधगा जीवा थोत्रा । देवाउगं वधगा जीवा असखेज्ज० । दोण्ण वधगा जीवा विसे० । अर० जीवा असखेज्ज० । दोण्णं गदीण्ण अवध० जीवा थोत्रा । देवगादि-वधगा जीवा असखेज्ज० । मणुसगदिवधगा जीवा असखेज्ज० । दोण्ण वध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा पचिदि० समचदुर० वज्जरिसभ-सध० वण्ण० ४ अगुरु० ४ पसत्थवि० तस० ४ सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिण-उच्चागोदाण अवधगा । वध० जीवा असखेज्ज० । पचसरी० अवधगा जीवा थोत्रा । आहारसरीर-वधगा जीवा सखेज्जगु० । वेउच्चिय० वधगा जीवा असखेज्ज० । ओगालि० वधगा जीवा असखेज्ज० । तेजाक० वधगा ।

अधिक है । मान सज्जलनके अवधक जीव इनसे कुछ अधिक हैं । क्रोध सज्जलनके अवधक जीव विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण के अवधक जीव सरयातगुणें हैं । अप्रत्याख्यानावरण के अवधक जीव असख्यातगुणें हैं तथा वधक जीव अमरयातगुणें हैं । प्रत्याख्यानावरण के वधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-सज्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-सज्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । माया सज्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-सज्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

सात नोकपायके अवधक जीव सबसे स्तोक है । हास्य-रतिके वधक जीव असख्यात-गुणें हैं । अरति शोकके वधक जीव विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके वधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके वधक जीव स्तोक हैं । दवायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । दोनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव असख्यातगुणें हैं ।

दोनों गतिके अवधक जीव स्तोक हैं । दवगातके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । मनुष्य गतिके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । दोनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र मस्थान, वज्रवृषभसहनन, वर्ण ४, अगुरुस्थ ४, प्रशस्त, विहायोगति, व्रस ४, सुभग, सुस्सर, आदेय, निर्माण और उच्च गोत्रके अवधक जीव सबसे स्तोक हैं । वधक जीव अमरयातगुणें हैं ।

५ शरीरके अवधक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । वैक्रियक शरीरके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । वैजस, चार्माणके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

जीवा विसेमा० । सच्चरयोना तिष्णि-अगो० अवधगा जीवा । आहार० अगो० वधगा जीवा मरेज्ज० । नेउच्चिय० अगो० वधगा जीवा असखेज्ज० । जोरालि० अगो० वधगा जीवा असखेज्ज० । तिष्ण वधगा जीवा विसे० । धिरादि-तिष्णि-गुणं पचिदिय भगो । निन्धयर वधगा जीवा थोवा । अग्रधगा जीवा अमखेज्ज० ।  
५ एव ओविदम० । मणपज्जवणा० ओधिभगो । णरि असखेज्जपगदीओ णत्थि । सखेज्जगुण ङादन्व ।

§४४७ एव सजद० वेदणीयमणुत्तिभगो ।

§४४८. सामाह० छंदो०-सच्चरयोवा मायासज० अव० जीवा । माणसज० अव० जीवा विसेसा० । क्रोध सज० अव० जीवा विसेसा० । वधगा जीवा अमखेज्ज० ।  
३० माणसज० वधगा जीवा विसेसा० । माया सज० वधगा जीवा विसे० । लोभसज० वधगा जीवा विसे० । सेमाण किंचि विसेसेण वणपज्जवणमी ।

§४४९. परिहार०-आहारकाजोगिभगो । णरि आहारदुग अत्थि । सुहुमसपरा-

तीनों अगोपागके अवधक जीव सबसे कम हैं । आहारक अगोपागके वधक जीव सरयातगुणों हैं । वैनिषिक अगोपागके वधक जीव असरयातगुणों हैं । श्रौतारिक अगोपागके वधक असरयातगुणों हैं । तीनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

स्थिरादि ३ गुणका पचेत्त्रय जातिके समान भग जानना चाहिए ।

तीर्थाकरके वधक जीव स्तोक हैं । अग्रधक जीव असरयातगुणों हैं । इसी प्रकार अवधि-दशम जानना चाहिए । मन पययज्ञानसे ध्यवधिज्ञानके समान भग है । विशेष यह है कि यहाँ मन पयय ज्ञानम असरयातगुणी सरयातली प्रकृति नहीं है । उनके स्थानमें सरयातगुणों का पाठ करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि मन पयय ज्ञानमें सख्यातगुणोंका क्रम लगाना चाहिये ।

§४४७ इन्ही प्रकार सयमभागज्ञान जानना चाहिए । वेदनीयका मनुष्यकीके समान भग है । अर्थात् साता असाताके अवधक जीव सर्वस्तोक हैं । साताके वधक असरयातगुणों हैं । अमानाके वधक सरयातगुणों हैं । दोनोंके वधक विशेषाधिक हैं ।

§४४८ सामायिक छेदोपरयापना सयममें-माया सञ्चलनके अग्रधक जीव स-से कम हैं । मान-सञ्चलनके अग्रधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-सञ्चलनके अग्रधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध सञ्चलनके वधक जीव असरयातगुणों हैं । मान सञ्चलनके वधक जीव विशेष अधिक हैं । माया-सञ्चलनके वधक जीव विशेष अधिग्र हैं । लोभ-सञ्चलनके वधक जीव विशेष अधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमें कुछ विशेषताके साथ मन पयय ज्ञानमें समान भग है ।

§४४९ परिहा विशुद्धि सयनमें-आहारक काययोगीके समान भग है । विशेष, इस सयममें आहारकद्विकका वध पाया जाता है ।

[ विशेष-परिहारविशुद्धि सयममें आहारकद्विकके वधका विरोध है, वधका नहीं है । ]

सूत्रमसापरायमें अरुपधदुहन नहीं है ।

इयस्म-गत्थि अप्पानहुग । यथावसादस्स-अवंधगा जीवा थोवा । वंधगा जीवा सखेज्जगुणा । सजदासंजदा-परिहारभगो । णवरि थोवा देवायु-तित्थयर-वधगा जीवा । अवधगा जीवा असखेज्ज० । असजद-तिरिक्खोघ । णवरि अपच्चक्खाणावरणस्स अवंधगा गत्थि । तित्थयर ओघ ।

§४५०. चक्षुदम०-तसपज्जत्तभगो । अचस्सुदं ओघ । णवरि एदेसि दोण्ण ५ विसैसो णादब्बो ।

§४५१. तिणिलेस्सा-असजदभगो । तेहए-सव्वत्थोवा थीणगिद्धि ३ अवं० । वधगा जीवा असखेज्ज० । छदसण० वधगा जीवा विसैसा० । दोवेदणी० णव-णोक० इस्मठाण छसघ० आदाउज्जो० दोविहा० तसथाव० थिरादिछुयम दोगोदं देवोघ । सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा० ४ अवधगा जीवा । अपच्चक्खाणा० ४ अवध० १० जीवा असखेज्ज० । अणताणुव० ४ अवंधगा जीवा असखेज्ज० । मिच्छत्त० अण० जीवा विसैसा० । वधगा जीवा असखेज्ज० । अणताणु० ४ वधगा जीवा

[ विशेष-यहा ज्ञानावरण ५, अतराय ५, दर्शनावरण ४, धरा कीर्ति, उच्च गोत्र तथा साता-वेदनीयका वध होता है । इनके वधकोंमें हीनाधिकपनेका अभाव है । यहाँ १७ प्रकृतियोंका समूह वध होगा । ]

असत्यायातसयममे-अवधक जीव स्तोक हैं । वधक जीव असत्यातगुणों हैं ।

[ विशेष-यहाँ एक सातावेदनीयका ही वध पाया जाता है । ]

सयतामयतोमि-परिहारविशुद्धिके समान भग है । विशेष, देवायु तथा तीर्थंकरके वधक स्तोक हैं । अवधक जीव असत्यातगुणों हैं ।

असयममें-तिरिचोंके ओघवत् हैं । विशेष, यहा अप्रत्याख्यानवरणके अवधक नहीं है । तीर्थंकर प्रकृतिका ओघवत् जानना चाहिए ।

§४५० चक्षुदर्शनमे-त्रस पर्याप्तके समान भग है ।

अचक्षुदर्शनमें-ओघवत् जानना चाहिए । विशेष यह है, कि इन दोनोंमें जो विशेषता है उसे जान लेना चाहिये ।

§४५१ कृष्णादि तीन लेश्यामे-असयतके समान भग हैं ।

तेजोलेश्यामे-स्त्यानगृद्धिके अवधक जीव मयसे स्तोक हैं । इनके वधक जीव असत्यान-गुणों हैं । ६ दर्शनावरणके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

= चक्षुनीय, ९ नोकपाय, ६ सरथान, ६ सहनन, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, व्रम, स्थावर, स्थिरादि ६ युगल तथा २ गोत्रका देवोघके समान समझना चाहिए ।

अप्रत्याख्यानवरण ४ के अवधक जीव समूह ५ हैं । अप्रत्याख्यानवरण ४ के अवधक जीव असत्यातगुणों हैं । अनन्तानुनधीचतुष्पके अवधक जीव असत्यातगुणों हैं । मिथ्यात्वके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । इसके वधक जीव असत्यातगुणों हैं । अनन्तानुनधी ४ के वधक

त्रिसेमा० । अपचन्त्राणा० ४ वधगा जीवा त्रिसेमा० । पचन्त्राणा० ४ वधगा जीवा त्रिसेमा० । च्दुस्रज० वधगा जीवा त्रिसेमा० । सन्त्रथोत्रा मणुसायु-वधगा जीवा । त्रिस्त्रिंशद्यु-वधगा जीवा असरेज्ज० । देवायु-वधगा जीवा त्रिसेमा० । तिष्णि वधगा जीवा त्रिसेमा० । अच० जीवा असरेज्ज० । एव चित्तिज्जदि । एव पुण ५ परिज्जदि । सन्त्रथोत्रा मणुसायु-वधगा जीवा । देवायु-वधगा जीवा असखेज्ज० । त्रिस्त्रिंशद्यु-वधगा जीवा असखेज्ज० । तिष्ण वधगा जीवा त्रिसेमा० । अवधगा जीवा सखेज्ज० । दवगदि वधगा जीवा थोवा । रुणुमगदिय-वधगा जीवा सखेज्ज० । त्रिस्त्रिंशद्यु-वधगा जीवा सखेज्ज० । तिष्ण गदीण वधगा जीवा त्रिसे० । एव आणुपृच्छि० । पंचिदिय-वधगा जीवा थोवा । एइदिय-वधगा जीवा सखेज्जगु० । दोष्ण वधगा जीवा १० त्रिसे० । आहारम० वधगा जीवा थोवा । वेउन्विय-वधगा जीवा असखे० । ओरगलि० वध० जीवा सखेज्ज० । तेजाक० वधगा जीवा त्रिसेमा० । तिष्ण अगो० एव चैव । णरि तिष्ण अगो० वधगा जीवा त्रिसे० । अच० जीवा सखेज्ज० ।

§४५२ एव पम्माए । णरि थोवा इत्थिवेदाण वध० जीवा । णुस० वधगा जीव विशेषाधिक है । अपत्यारयानावरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्यारयानावरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । चारों सञ्चलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके वधक जीव सबसे कम है । त्रियंशायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । देवायुके वधक जीव त्रिंशपाधिक हैं । तीनों आयुके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव असख्यातगुणें हैं ।

[ विशेष—इस अर्थयामे नरकायुका वध नहीं होता है । यह चिंतनीय है तथा ऐसा समझमें आता है कि मनुष्यायुके वधक जीव सबसे कम है । ]

देवायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । त्रियंशायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । तीनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

[ विशेष—आयुके नियम दो प्रकारकी प्रतिपादना सम्भवत दो परपरआंकी बताती है । ]

दवगतिके वधक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । त्रियंश गतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । तीनों गतिके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकार आनुपूर्वीय भी जानना चाहिये ।

पंचेन्द्रियके वधक जीव स्तोक हैं । एकत्रियके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । दोनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

आहारक शरीरके वधक जीव स्तोक हैं । वैक्रीयिक शरीरके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । औत्तरिक शरीरके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । तेजस, कामाणके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

तीना अगोपागम एसा ही हैं, किन्तु तीनों अगोपागमके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव सख्यातगुणें हैं ।

§५२ पद्येदयामे इसी प्रकार जानना चाहिये ।

यहां इनना विशेष है, ऋग्वेदके वधक जीव स्तोक हैं । नपुसकवेदके वधक जीव

जीवा मखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० ।  
 पुरिस० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसेसा० । मणुसायु-बंधगा जीवा  
 थोवा । तिरिक्सायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा विसे० । तिण्णं  
 बंधगा जीवा विसे० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा थोवा ।  
 तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्ण ५  
 बंधगा जीवा विसे० । एव आणुपुत्ति० । सन्वत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा ।  
 ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । वेउत्थि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक०  
 बंधगा जीवा विसे० । एव अगो० । सव्वत्थोवा णग्गोदपरि० बंधगा जीवा । सादि-  
 यस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । रुज्जसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । वामणस० बंधगा  
 जीवा संखेज्ज० । हुडसठाण-बंधगा जीवा संखेज्ज० । समचदुर० बंधगा जीवा १०  
 असंखेज्ज० । छण्ण बंधगा जीवा विसेसा० । वज्जरिसभ-संध० बंधगा जीवा थोवा ।  
 वज्जणाराच० बंधगा जीवा संखेज्ज० । उवरि सखेज्जगुणं कादव्व । छस्सघड० बंधगा  
 जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । उज्जेअ-तित्थय० बंधगा जीवा थोवा ।

मर्यादातगुणें हैं । हास्य-रतिके बंधक जीव असख्यातगुणें हैं । अरति-शोकके बंधक जीव सरयात-  
 गुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव विवेगाधिक हैं । भय-जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
 मनुष्यायुके बंधक जीव स्तोक हैं । तिर्यचायुके बंधक जीव असख्यातगुणें हैं । देवायुके  
 बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तीनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अथर्वक जीव असख्यात-  
 गुणें हैं ।

मनुष्यगतिके बंधक जीव स्तोक हैं । तिर्यचगतिके बंधक जीव मख्यातगुणें हैं । देवगतिके  
 बंधक जीव असख्यातगुणें हैं । तीनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकार आनुपूर्ति भी समझना चाहिए ।

आहारक शरीरके बंधक जीव सबसे स्तोक हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव अस-  
 ख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बंधक जीव असख्यातगुणें हैं । वैजस, कामार्णके बंधक  
 जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकार अगोपागमे भी समझना चाहिये ।

न्यग्रोधपरिमण्डलमस्थानके बंधक जीव सबसे कम हैं । स्वातिकसस्थानके बंधक जीव सरया-  
 तगुणें हैं । हृन्-बन्धसस्थानके बंधक जीव सरयातगुणें हैं । वामनसस्थानके बंधक जीव सरयातगुणें  
 हैं । हुडकसस्थानके बंधक जीव सरयातगुणें हैं । समचतुरस्रमस्थानके बंधक जीव असख्यातगुणें  
 हैं । उहो सस्थानोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

यष्टपृथममहानके बंधक जीव स्तोक हैं । यमनाराचसहनके बंधक जीव सरयात  
 गुणें हैं । आगेके सहननामे सख्यातगुणें अधिकांश क्रम लगाना चाहिये । छह सहननोंके बंधक  
 जीव विशेषाधिक हैं । अथर्वक जीव असख्यातगुणें हैं ।

अथर्वक, तीर्थंकरके बंधक जीव स्तोक हैं । अथर्वक जीव असख्यातगुणें हैं ।



विसेमा० । अपच्चमत्ताना० ४ वधगा जीना विसेमा० । पच्चमत्ताना० ४ वधगा जीवा विसेमा० । चटुसज० वधगा जीना विसेमा० । सव्वत्थोवा मणुसायु-वधगा जीना । तिरिक्खायु-वधगा जीवा असरोज्ज० । देवायु वधगा जीना विसेमा० । तिण्णि वधगा जीना विससा० । अय० जीवा असरोज्ज० । एव चित्तिज्जदि । एव पुण परिज्जदि । सव्व-योना मणुसायु वधगा जीवा । देवायु-वधगा जीवा असरोज्ज० । तिरिक्खायु-वधगा जीवा असरोज्ज० । तिण्ण वधगा जीना विसेसा० । अवधगा जीना सरोज्ज० । देवगदि वधगा जीवा थोवा । मणुसगदिवग्गा जीना सरोज्ज० । तिरिक्खायु-वधगा जीना सरोज्ज० । तिण्ण गदीण वधगा जीना विसे० । एव आणुपूच्चि० । पचिदिय-वधगा जीवा थोवा । एडादेय-वधगा जीवा सरोज्जगु० । दोण्ण वधगा जीवा विसे० । आहारस० वधगा जीवा थोवा । वेउव्वियवधगा जीवा असरो० । ओरात्ति० वध० जीना सरोज्ज० । तेजाक० वधगा जीवा विसेसा० । तिण्ण अंगो० एव चेव । णवरि तिण्ण अगो० वधगा जीवा विसे० । अय० जीवा सरोज्ज० ।

§४५२ एव पम्माए । णवरि थोवा इत्थिवेदाण वध० जीवा । णवुम० वधगा जीन विशेषाधिक है । अप्रत्याख्यानावरण ५ के वधक जीव विशेषाधिक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक है । चारों सबलनके वधक जीव विशेषाधिक है ।

मनुष्यायुके वधक जीव सबसे कम है । तिर्यचायुके वधक जीव असरयातगुणें हैं । देवायुके वधक जीव विशेषाधिक हैं । तीनों आयुके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव असरयातगुणें हैं ।

[ विशेष-इस लक्ष्यम नरकायुका वध नहीं होता है । यह चिंतनीय है तथा ऐसा भ्रमभ्रम आता है कि मनुष्यायुके वधक जीव सरस कम हैं । ]

देवायुके वधक जीव असरयातगुणें हैं । तिर्यचायुके वधक जीव असरयातगुणें हैं । तीनोंके वधक जीव विशेषाधिक है । अवधक जीव मख्यातगुणें हैं ।

[ विशेष-आयुके निषयमे दो प्रसारी प्रतिपान्ना सभवत दो परपराओंको बताती है । ]  
द्वगतिके वधक जीव स्तोक है । मनुष्यगतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । तिर्यचगतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । तीनों गतिके वधक जीव विशेषाधिक है ।

इसी प्रकार आनुपूर्वम भी जानना चाहिए ।  
पचेन्द्रियके वधक जीव स्तोक हैं । एनेन्द्रियके वधक जीव सरयातगुणें हैं । दोनोंके वधक जीव विशेषाधिक है ।

आहारक शरीरके वधक जीव स्तोक है । वैविकिरु शरीरके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव सरयातगुणें हैं । तैजस, कार्माणके वधक जीव विशेषाधिक है । तीनों अगोपारामे ऐसा ही है, किन्तु तीनों अगोपागके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव सरयातगुणें हैं ।

§४५२ पद्मप्रेराम इसी प्रकार जानना चाहिये ।  
यहाँ इतना विवेक है, खीवेदके वधक जीव स्तोक हैं । नपुसकवेदके वधक जीव

विसेसा० । लोभमंज० वधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा णवणोक्क० अवंघगा  
 । इत्थिव० वधगा जीवा असखेज्ज० । णवुनक० वंघगा जीवा संखेज्ज० ।  
 यदिवंघगा जीवा सखेज्ज० । अरदिसोग-वधगा जीवा सखेज्जगुणा । पुरिमवे०  
 गा जीवा विसेसा० । भयदु० वधगा जीवा विसे० । मव्वत्थोवा मणुसायु-वंघगा  
 गा । देवायु वधगा जीवा विसेसा० । दोण्य वंघगा जीवा विसेसा० । अवधगा ५  
 ग अखेज्ज० । सव्वत्थोवा दोण्य गदीण अवंघगा जीवा । देवगदि-वंघगा जीवा  
 सखेज्ज० । मणुसगदि वंघगा जीवा असखेज्ज० । दोण्यं गदीण वंघगा जीवा  
 ससा० । पचण्य सरिराण्य अवधगा जीवा घोसा । आहारन० वंघ० जीवा संखेज्ज० ।  
 उद्विय वधगा जीवा असखेज्जगुणा । ओरालि० वंघ० जीवा अमखेज्ज० । तेजाक०  
 वधगा जीवा विसे० । एव अगो० । सव्वत्थोवा छस्संठा० अयं० जीवा । णगोद-१०  
 वधगा जीवा असखेज्ज० । सादिय-वंघगा जीवा सखेज्जगु० । सुज्जसं० वधगा  
 जीवा सखेज्ज० । वाम्भण० जीवा सखेज्ज० । हुडस० वंघ० जीवा संखेज्ज० ।  
 ममचदु० वंघगा जीवा संखेज्ज० । छण्यं वधगा जीवा विसेसा० । एवं छस्सव० ।

विशेषाधिक है।

नन नोकपावके अवधक जाण समे कम है । खीवेदके वधक जीव असस्यतागुणें हैं ।  
 न्युमवेदके वधक जीव सस्यतागुणें हैं । हास्यरतिके वधक जीव सस्यतागुणें हैं । अर-  
 शोक वधक जीव सस्यतागुणें हैं । पुरुवेदके वधक जीव विशेषाधिक है । मय, लुगुन्नाके  
 वधक जाण विशेषाधिक है ।

मनुष्यके वधक जीव समे कम है । देवायुके वधक जीव विशेषाधिक है । जानेंके  
 वधक जीव विशेषाधिक है । अवधक जीव असस्यता गुणें हैं ।

दोनों गति ( देव-मनुष्यगति ) के अवधक जीव समे स्तोक हैं । देवगतिके वधक  
 अवधक जीव सस्यतागुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव असस्यतागुणें हैं । दोनों गतियाँ वधक  
 विशेषाधिक हैं ।

अवधक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके वधक जीव सस्यतागुणें  
 वधक जीव असस्यतागुणें हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव असस्यता-  
 वधक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार अगोपाणम भी जानना ।

सबसे कम है । न्यग्रोधपरिमण्डल सस्यानके वधक जीव  
 वधक जीव सस्यतागुणें हैं । कुञ्जरके वधक जीव  
 वधक जीव सस्यतागुणें हैं । हुडसस्थानके वधक जीव

अपघना जीवा असखेज्ज० । अप्पसत्थवि० दूमग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० बधगा जीवा थोवा । तप्पडिपक्ख बधगा जीवा असखेज्ज० । दोण्ण बधगा जीवा विसेसा० । धिरादि-विणिण्ण युगल दवोध ।

१४५३. सुक्काए-पचणा० पचिदि० वण्ण० ४ अगु० ४ तस० ४ णिमि०  
 ५ पचंतराइमाण अपघना जीवा थोवा । बधगा जीवा असखेज्ज० । चदुद० अपघना जीवा थोवा । णिहापचला० अबधगा जीवा विसेसाहिया । थीणगिद्धि ३ [अ] बधगा जीवा असखेज्ज० । बधगा जीवा मखेज्जगुणा । णिहा-पचला-बधगा जीवा विसे० । चदुद० बधगा जीवा विसेमा० । वेदणीय देवोध । लोभ-संज० अपघना जीवा थोवा । माया-मज्ज० अय० जीवा विसे० । माण-सज्ज० अय० जीवा विसे० । कोध-सज्ज० अय० जीवा विसे० । पच्चक्खाणा० ४ अय० जीवा सखेज्ज० । अपच्चक्खाणा० ४ अय० जीवा असखेज्ज० । मिच्छत्त-अबधगा जीवा असखेज्ज० । अणताणु० ४ बधगा जीवा विसेमा० । अबधगा जीवा सखेज्जगुणा । मिच्छत्त-अबधगा (१) बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा० ४ बधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणावरण० बधगा जीवा विसे० । कोधसज्ज० बधगा जीवा विसे० । माणसज्ज० बधगा जीवा विसे० । मायासज्ज० बधगा जीवा विसे० ।

अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भंग, दुस्सर, अनादेय और नीचगोत्रके बधक जीव स्तोक हैं। इनके प्रतिपक्षी प्रशस्त विहायोगति, सुभंग, सुस्सर, आदेय, उच्चगोत्रके बधक जीव असख्यातगुणें हैं। दोनोंने बधक जीव त्रिगोपाधिक हैं।

धिरादि ३ युगलोंका द्वयोधके समान जानना चाहिए।

१४५३ शुक्ल लेश्यामे—५ ज्ञानावरण, पचैद्रिय जाति, वर्ण ४, अगुस्त्वधु ४, तस ४, निर्माण और ५ अन्तरायने अबधक जीव स्तोक हैं। बधक जीव असख्यातगुणें हैं।

४ दर्शनावरणके अबधक जीव स्तोक हैं। निद्रा, प्रचलाके अबधक जीव विशेषाधिक हैं। स्तानगृद्धिप्रिकके [अ]बधक जीव असख्यातगुणें हैं। बधक जीव सख्यातगुणें हैं। निद्रा प्रचलाने बधक जीव विशेषाधिक हैं। ४ दर्शनावरणके बधक जीव विशेषाधिक हैं।

वेदनायमा द्वयोधके समान जानना चाहिए।

लोभ-सञ्जलनके अबधक जीव स्तोक हैं। माया सञ्जलनके अबधक जीव विशेषाधिक हैं। मान-सञ्जलनके अबधक जीव विशेष आधिक हैं। क्रोध-सञ्जलनके अबधक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानारण ५ के अबधक जीव सख्यातगुणें हैं। अपत्याख्यानारण ४ के अबधक जीव असख्यातगुणें हैं। मिध्यात्यके अबधक जीव असख्यातगुणें हैं।

अनतानुनधो ४ के बधक जीव त्रिगोपाधिक हैं। इनके अबधक (बधक) जीव सख्यातगुणें हैं। मिध्यात्यके बधक जीव विशेषाधिक हैं।

अपत्याख्यानारण ४ के बधक जीव त्रिगोपाधिक हैं। प्रत्याख्यानारण ४ के बधक जीव विशेषाधिक हैं। क्रोध-सञ्जलनके बधक जीव त्रिगोपाधिक हैं। मान सञ्जलनके बधक जीव विशेषाधिक हैं। माया-सञ्जलनके बधक जीव विशेषाधिक हैं। लोभ सञ्जलनके बधक जीव

जीवा विसेसा० । लोभसज० बंधगा जीवा विसे० । सच्चत्योना णवणोक० अंधगा  
 जीवा । इत्थिवे० यधगा जीवा असखेज्ज० । णवुसक० वधगा जीवा सखेज्ज० ।  
 हस्सरदि-वधगा जीवा सखेज्ज० । अरदिसोग वधगा जीवा सखेज्जगुणा । पुरिसवे०  
 वधगा जीवा विसेसा० । भयदु० वधगा जीवा विसे० । सच्चत्योवा मणुसायु-वधगा  
 जीवा । देवायु-वधगा जीवा विसेसा० । दोण्ण यधगा जीवा विसेसा० । अयधगा ५  
 जीवा असखेज्ज० । सच्चत्योवा दोण्णं गदीण अवधगा जीवा । देवगदि-वधगा जीवा  
 असखेज्ज० । मणुसगदि यधगा जीवा असखेज्ज० । दोण्ण गदीण वधगा जीवा  
 विसेसा० । पचण्ण सरैराण अवधगा जीवा थोवा । आहारम० वध० जीवा सखेज्ज० ।  
 वेउव्विय-यधगा जीवा असखेज्जगुणा । ओरालि० वध० जीवा असखेज्ज० । तेजाक०  
 वधगा जीवा विसे० । एव अगो० । सच्चत्योवा छस्सठा० अन० जीवा । णग्गोद- १०  
 वधगा जीवा असखेज्ज० । सादिय-वधगा जीवा सखेज्जगु० । सुज्जस० वधगा  
 जीवा सखेज्ज० । वामणन० जीवा सखेज्ज० । हुडस० वध० जीवा सखेज्ज० ।  
 समचदु० वधगा जीवा सखेज्ज० । छण्ण वधगा जीवा विसेसा० । एव छस्सघ० ।

विशेषाधिक है ।

ननु नोक्यायके अवधक जीव सनसे कम हैं । स्त्रीवैदके वधक जीव असख्यातगुणें हैं ।  
 नपुमकवेदके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । हास्य-रतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । अरत-  
 शोके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके वधक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके  
 वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके वधक जीव सनसे कम हैं । देवायुके वधक जीव विशेषाधिक हैं । दानोंके  
 वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव असख्यात गुणें हैं ।

दोनों गति ( देव-मनुष्यगति ) के अवधक जीव सनसे स्तोक हैं । देवगतिके वधक  
 जीव असख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव असख्यातगुण हैं । दोनों गतियोंके वधक  
 जीव विशेषाधिक हैं ।

पार्श्व शरीरके अवधक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके वधक जीव सख्यातगुणें  
 हैं । अक्षिक शरीरके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव असख्यात  
 गुणें हैं । तेजस, कामाणये वधक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार अगोपागम भी जानना ।

६ स्थानोंके अवधक जीव सनसे कम हैं । न्यप्राधपरिमण्डल स्थानके वधक जीव  
 असख्यातगुणें हैं । स्थानिक स्थानके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । कुञ्जकके वधक जीव  
 सख्यातगुणें हैं । वामनस्थानके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । हुडकस्थानके वधक जीव  
 सख्यातगुणें हैं । समचतुरस्रस्थानके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । छद्म स्थानोंके वधक  
 जीव विशेषाधिक हैं ।

इस प्रकार ६ सहननमे जानना चाहिये ।

दोविहा० सुभगादि-तिणिण-युगल-शीचुच्चागो० अब० जीवा थीवा । अप्पसत्थयि०  
 दूमग-दुम्मस-अणादे० शीचागो० बधगा जीवा असखेज्ज० । तप्पडिपक्खाण बधगा  
 जीवा सखेज्ज० । थिरादितिणिणयुग० मणभगो । सव्वत्थोना तित्थययवधगा जीवा ।  
 अबधगा जीवा सखेज्ज० ।

५ १४५४. भवसिद्धि—ओघ ।

१४५५ अन्नसिद्धिया - मदिभगो । णरि मिच्छत्त अन्नगा जीवा णत्थि ।

१४५६. सम्मादिट्ठीसु—सव्वत्थोना पचना० पचिदि० समचदु० वज्जरिसभ०

वण्ण० ४ अगुरु० ४ पसत्थविहा० तस० ४ सुभगादितिणिणयु० णिमिण तित्थय०  
 उच्चागो० पचत० बधगा जीवा । अयध० अणतगुणा । सव्वत्थोना णिहापचला

१० बधगा जीवा । चदुदस० बधगा जीवा विसेसा० । अब० अणतगुणा । णिहापचला  
 अन्नगा जीवा विसेसा० । माद-बधगा जीवा थीवा । असाद-बधगा जी० मखेज्ज० ।

दोण्ण बधगा जीवा विसेगा० । अन्नगा जीवा अणतगु० । अपच्चस्साणा० ४ बध०  
 जीवा थीवा । पच्चस्साणा० ४ बधगा जीवा विसे० । क्रोध-स० व० जी० त्रिमे० ।

माणसज्ज० वध० जी० विसेसा० । मायासज्ज० वध० जी० विसेसा० । लोभसज्ज०  
 १५ बधगा जीवा विसे० । अबध० अणतगुणा । मायास० अब० जीवा विसे० । माणसज्ज०

० विहायोगति, सुभगादि ३ युगल नीच तथा उच्चगोत्रके अन्नधक जीव स्तोक हैं ।  
 अप्रशस्त विहायोगति, दुभग, दु स्वर, अनादय, नीचगोत्रके बधक जीव असखातगुणें हैं । इनके  
 प्रतिपक्षी प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदय तथा उच्चगोत्रके बधक जीव सखातगुण  
 हैं । थिरादि ३ युगलोंम मनोयोगियोंके समान भग हैं ।

तीर्थकर प्रकृतिके बधक जीव सर्व स्तोक हैं । अन्नधक जीव सखातगुणें हैं ।

१४५४ भवसिद्धिकोम ओघयत् ज्ञानना चाहिए ।

१४५५ अभव्यसिद्धिकोम—मत्यज्ञानके समान जानना चाहिए । विशेष, मिथ्यात्रके अबधक  
 जीव नहीं हैं ।

१४५६ सम्यग्दृष्टियोंम—, ज्ञानारण, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसस्थान, वज्जरूपमसहन,  
 घण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, तस ४, सुभगादि तीन युगल, निर्माण, तीर्थकर, उच  
 गोत्र, ५ अन्तरायके बधक जीव स्तोक हैं । अन्नधक अन्नतगुणें हैं ।

निद्रा, प्रचलाके बधक जीव सर्व स्तोक हैं । ४ दशनारणके बधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
 इनने अबधक अन्नतगुण हैं । निद्रा, प्रचलाके अबधक जीव विशेषाधिक हैं ।

साताके बधक जीव स्तोक हैं । असातार बधक जीव सखातगुणें हैं । दोनोंके बधक जीव  
 विशेषाधिक हैं । अन्नधक जीव अन्नतगुणें हैं ।

अप्रत्यायानारण ४ के बधक जीव स्तोक हैं । प्रत्यायानारण ४ के बधक जीव  
 विशेषाधिक हैं । क्रोध-सज्जनके बधक जीव विशेषाधिक हैं । मान-सज्जनके बधक जीव  
 विशेषाधिक हैं । माया-सज्जनके बधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-सज्जनके बधक जीव

अच० जीवा विसेसा० । क्रोधसंज० अ० जीवा विसे० । पच्चक्खाणा० ४ अवं० जीवा विसे० । अपच्चक्खाणा० ४ अचं० जीवा विसेसा० । हस्सरदि-बंधगा जीवा थोवा । अरदिसोग-बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । भयदु० बंध० जीवा विसे० । पुरिम-वे० बंधगा जीवा विसे० । अनध० अणत्तगुणा । भयदु० अव० जीवा विसे० । अरदिसोग-अच० जीवा विसे० । हस्सरदि-अच० जी० विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवायु- ५ बंधगा जीवा असखेज्ज० । दोणं बंधगा जीवा विसे० । अनध० जीवा अणत्तगुणा । देवगदि २० जीवा थोवा । मणुसगदि बंधगा जीवा असखेज्ज० । दोण बंध० जीवा विसे० । अव० अणत्तगुणा । एव दी-आणुपुब्बि० । आहारसरी० बंधगा जीवा थोवा । वेउप्पि० बंधगा जीवा असखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा असखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । अवधगा जीवा अणत्तगुणा । एव तिण्णि-अगो० । धिरादि- १० तिण्णियुगलं वेदणीय-भगो ।

१४५७ एव रङ्ग-सम्मा० । णरि थोवा देवायु-बंधगा जीवा । मणुमायु-बंधगा जीवा विसे० । सवत्थोवा अपच्चक्खाणा० ४ बंधगा जीवा । पच्च-

विशेषाधिक है । इसके अचधक अनन्तगुणें हैं । माया-सञ्चलनके अवधक जीव विशेषाधिक है । मान-सञ्चलनके अवधक जीव विशेषाधिक है । क्रोध-सञ्चलनके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्यानानावरण ४ के अवधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवधक जीव विशेषाधिक हैं ।

हास्य, रतिके बंधक जीव स्तोक हैं । अरतिशोकके बंधक जीव रत्यातगुणें हैं । भय-जुगुप्साके बंधक जीव विशेषाधिक है । पुरुषवेदके बंधक जीव विशेषाधिक है । अनधक जीव अनन्तगुणें हैं । भय, जुगुप्साके अवधक जीव विशेषाधिक है । अरति, शोकके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । हास्य, रतिके अ० जीव विशेषाधिक है ।

मनुष्यायुके बंधक जीव स्तोक हैं । देवायुके बंधक जीव असख्यातगुणें हैं । दोनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव अनन्तगुणें हैं ।

देवगतिके बंधक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीव असख्यातगुणें हैं । दोनोंके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । इनके अवधक अनन्तगुणें हैं ।

इसी प्रकार दो आनुपूर्वी ( देवमनुष्यानुपूर्वी ) में भी जानना चाहिए ।

आहारकशरीरके बंधक जीव स्तोक हैं । वैक्रियिकशरीरके बंधक जीव अमन्यातगुणें हैं । औदारिकशरीरके बंधक जीव असख्यातगुणें हैं । तैजस, मार्माणके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव अनन्तगुणें हैं । इसी प्रकार ३ अगोपागमें भी जानना चाहिए । स्थिरदि ३ युगलके बंधकोंमें वेदनीयके समान भाग जानना चाहिए ।

१४५७ ध्यायिकसम्यक्त्वमे—इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि देवायुके बंधक स्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक विशेषाधिक है ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बंधक

कृत्वाणा० ४ वधगा जीवा विसे० । एव चदुसजल० वधगा जीवा विसे० । अब०  
अणतगुणा । सस पडिलोमेण भाणिद्व्व । हस्सरदि-वधगा जीवा योना । अरदिसोग  
वधगा जीवा सखेज्ज० । भयदु० वधगा जीवा विसे० । पुरिसवेद-वधगा जीवा विसे० ।  
अव० अणतगुणा । सेस पडिलोमेण भाणिद्व्व ।

५ १४५८ वेदगे-सव्वत्थोवा पच्चकत्वाणा० ४ अवधगा जीवा । अपच्चकत्वाणा० ४  
अवधगा जीवा असखेज्ज० । वधगा जीवा असखेज्जगुणा । पच्चकत्वाणा० ४ वधगा  
जीवा विसे० । चदुसज० वधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा हस्सरदि-वधगा जीवा ।  
अरदिसोग वधगा जीवा सखेज्ज० । भयदु० पुरिसवे० वधगा जी० विसे० । मणुमायु  
वधगा जीवा योना । देनायु वधगा जीवा असखेज्ज० । दोण वधगा जीवा विसे० ।  
१० अ० जीवा असखेज्ज० । दवगदि-वधगा जीवा योवा । मणुसगदि-वधगा असखेज्ज० ।

जीव विशेषाधिक है । इसीप्रकार ४ सञ्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक अन  
न्तगुणें हैं ।

शेष भग प्रतिभोमसे जानना चाहिए, अर्थात् प्रत्याख्यानवरण ४ के अवधक जीव विशेषा  
धिक हैं, अप्रत्याख्यानवरण ४ के अवधक जीव विशेषाधिक हैं ।

हास्य, रतिके वधक जीव स्तोक हैं । अरति, शोकके वधक जीव सरयातगुणें हैं । भय,  
जुगुप्साके वधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव  
अनन्तगुणें हैं । शेष भगमे प्रतिभोमसे जानना चाहिए अर्थात् भय, जुगुप्साके अवधक जीव  
विशेषाधिक हैं । अरति शोकके अवधक जीव विशेषाधिक हैं । हास्य-रतिके अवधक जीव भी  
सरयातगुणें हैं ।

§ ४१८ वेदकसम्यक्त्वमे-प्रत्याख्यानवरण ४ के अवधक जीव सर्वस्तोक हैं । अप्रत्याख्या  
नावरण ४ के अवधक जीव असरयातगुणें हैं । वधक जीव असरयातगुणें हैं । प्रत्याख्यान-  
वरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । ४ सञ्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[ विशेष-सञ्जलनचतुष्के अवधक जीवोंका यहाँ वर्णन नहीं किया गया । कारण वेदक  
सम्यक्त्व ४ से ७ वें गुणस्थान तक पाया जाता है, और सञ्जलन क्रोध, मान, माया, लोभकी  
वधव्युच्छित्ति अनिवृत्तिकरणमें होती है । अतः वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षा सञ्जलन ४ के  
अवधक जीवना अभाव होनेसे वर्णन नहीं किया गया । ]

हास्य-रतिके वधक जीव सर्वस्तोक हैं । अरति शोकके वधक जीव सरयातगुणें हैं । भय  
जुगुप्साके वधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[ विशेष-पुरुषवेदके अवधकना यहाँ उल्लेख नहीं किया है, कारण इसकी वधव्युच्छित्ति  
नवमें गुणस्थानमें होती है किन्तु यहाँ वेदकसम्यक्त्व नहीं पाया जाता है । इस कारण यहाँ  
अवधक नहीं कहे गये हैं । ]

मनुष्यायुके वधक जीव स्तोक हैं । दवायुके वधक जीव असरयातगुणें हैं । दोनोंके वधक  
जीव विशेषाधिक हैं । अवधक जीव असरयातगुणें हैं ।

द्वयगतिके वधक जीव स्तोक हैं । मनुष्यायुके वधक जीव असरयातगुणें हैं । दोनोंके वधक

दोष्णं वधगा जीवा विसे० । एवं दो आणुपुव्वि० । आहार० वंधगा जीवा थोवा । वेउव्विय० वधगा जीवा असखेज्ज० । ओरालि० वंधगा असखेज्ज० । तेजाक० वंधगा जीवा विसे० । एव तिण्णि अगोवग० । वज्जरिसम-संध० ओधिभगो । सेसं युगलं देवोधं ।

§४५८. उवसमस०-ओधिभंगो ।

§४५९. सासणे-वेदणीय-पचसठा० उज्जोव-दोविहाय० थिरादि-छयुग० दोगोद ५  
णिरयोधं । सव्वत्थोवा पुरिसवे० वधगा जीवा । हस्सरदि-वधगा जीवा विसे० ।  
इत्थिवे० वंधगा जीवा सखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा विसे० । भयदु० वंधगा  
जीवा विसे० । मणुसायु-वधगा जीवा थोवा । देवायु-वधगा जीवा असखेज्ज० ।  
तिरिक्खायु-वधगा जीवा असखेज्ज० । तिण्णं वधगा जीवा विसे० । अणं जीवा  
असखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगदि-वधगा जीवा असखेज्ज० । १०  
तिरिक्खगदि वधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं वधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० ।  
वेउव्वियस० वधगा जीवा थोवा । ओरालि० वधगा जीवा असखेज्ज० । तेजाक०

जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकार दोनों आनुपूर्वियोंमें भी जानना चाहिये ।

आहारक शरीरके वधक जीव सर्वस्तोक हैं । वैक्यिक शरीरके वधक जीव असख्यात-  
गुणें हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । तेजस-वर्माण शरीरके वधक जीव  
विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार तीनों अगोपागमे भी जानना चाहिए । वज्रवृषभनाराच सहननमे  
अवधिज्ञानके समान भग है । शेष युगलोंमें देवोंके ओष समान जानना चाहिए ।

§४५८ वपशमसम्यक्त्वमे अवधिज्ञानके समान भग जानना चाहिए ।

§४५९ सासादनसम्यक्त्वमे-वेदनीय, ५ सस्थान, उद्योत, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगळ,  
२ गोत्रके वधकोंमें नरकके ओधवत् जानना चाहिए ।

पुरपवेदके वधक जीव सर्वस्तोक हैं । हास्य-रतिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्रीवेदके  
वधक जीव सख्यातगुणें हैं । अरति शोकके वधक जीव विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके वधक  
जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके वधक जीव स्तोक हैं । देवायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके  
वधक जीव असख्यातगुणें हैं । तीनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं । इनके अवधक जीव  
असख्यातगुणें हैं ।

[ विशेष-नरकायुका मिथ्यात्वगुणस्थान तक वध होनेसे यहा उसका अभाव है । ]

देवगतिके वधक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । तिर्यच-  
गतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । तीनोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकारका क्रम आनुपूर्वीमें भी जानना चाहिए ।

वैक्यिक शरीरके वधक जीव स्तोक हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव असख्यातगुणें  
हैजस, वर्माणके वधक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार अगोपागमे भी जानना चाहिए ।



बंधगा जीना विसे० । एय अगोनग० । पचमंध० अघघगा जीना थोवा । वज्जरिसम०  
 वधगा जीना अससेज्ज० । उवरि ससेज्जगुणा । पचण्णं बंधगा जीना विसे० ।

१४६० सम्मामिच्छे-वेदणी० सत्तणोरु० टोगदि-दो-सरीर दोअंगो० वज्जरिसम०  
 धिगदितिण्णियुगल वेदमंगो । मिच्छादिद्वि-असण्णि-ज्जमवसिद्विय-भगो ।

५ १४६१. सण्णी-मणनोगि भगो ।

१४६२. आहार-ओघभगो ।

१४६३. अणाहार०-पचणा० पचत० वण्ण० ४ णिमि० अघघगा जीना थोवा ।

वधगा जीना जणनगुणा । छदम० अवधगा जीना थोवा । थोणगिद्वि ३ जवधगा

जीना विसे० । वधगा जीना अणतगु० । छदम० वधगा जीना विसे० । सेम ओघ

१० णवरि थोवा देवगदि-वधगा । तिण्ण गदीण अघघगा जीना अणतगुणा । मशुत्तगदि

वधगा, तिरिक्खगदि-वधगा जीना० ससेज्ज० । तिण्ण वधगा जीना विसे० । ए

आशुपुच्चि० । अगो० कम्मइगभगो ।

एव सत्याण-नीव-अप्पानहुग समच ।



५ सहननके अवधक जीव स्तोक है । पचवृपभनाराचसहननके वधक जीव असरयातगुणें हैं  
 वधनाराच, नाराच जादि सहननके वधक जीवोंमें सरयातगुणित वध जानना चाहिए । पाप  
 सहननोंके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[विशेष-हुडक सस्थानकी वधव्युच्छित्त प्रथम गुणस्थानमें होनेसे उसका वर्णन नहीं हुआ ।

१४६० सम्यक्त्व मिश्यात्वमे, २ वेदनीय, ७ नोकपाय, २ गति, २ शरीर, २ अगोपाग, वध  
 वृपभसहनन स्थिरादि ३ युगलमे वेदके समान भग जानना चाहिए ।

मिध्यादृष्टि तथा असहीम अभव्यसिद्धिकाका भग जानना चाहिए ।

१४६१ सहीम-मनोयोगियोंका भग जानना चाहिए ।

१४६२. आहारकम-ओघवत् भग है ।

१४६३ अनाहारकोमे-५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय, वर्ण ४, निर्माणके अवधक जीव स्तोक हैं  
 इनके वधक जीव अनन्तगुणें हैं । ६ दर्शनावरणके अवधक जीव स्तोक हैं । स्थानगृद्धिकके  
 अवधक जीव विशेषाधिक हैं । वधक जीव अनन्तगुणें हैं । ६ दर्शनावरणके वधक जीव विशेषाधिक  
 हैं । शेष वृत्तियोंमें ओघवत् हैं । विशेष यह है कि देवगतिके वधक जीव स्तोक हैं । तीनों गतिमें  
 अवधक जीव अनन्तगुणें हैं । मनुष्य, तिर्यचगतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । तीनोंके वधक  
 जीव विशेषाधिक हैं ।

[विशेष-अनाहारकोंमें नरकगतिके वधकोंका अभाव है इससे उसकी यहा परिगणना नहीं हुई है।  
 इसी प्रकार आनुपूर्थमि भी जानना चाहिए । अगोपागमें फाण फाययोगके समान भग  
 जानना चाहिए ।

इस प्रकार स्वस्था-जीव-अल्प-बहुत्वका वर्णन समाप्त हुआ ।

## [ परस्थाण-जीव-अप्पा-बहुगपरुवणा ]

§४६४. परस्थाण जीव-अप्पा-बहुगाणुगमेण दुविहो णिदेसो । ओघेण, ओदेसेण य ।

§४६५. तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा आहारसरीर-वधगा जीमा । तित्थयर-वधगा जीवा असखेज्जगुणा । मणुसायु वधगा जीवा अमसेज्ज० । गिरयायु-वधगा जीवा असखेज्जगुणा । देवायु वधगा जीमा असखेज्जगुणा । देवगदि-वधगा जीवा सखेज्ज० । गिरयगदि-वधगा जीवा संसेज्ज० । वेउव्वि० वधगा जीवा विसे० । ५ तिरिक्खायु-वधगा जीवा अर्णतगुणा । उच्चागोद-वधगा जीमा सखेज्ज० । मणुस-नाइ-वधगा जीमा संसेज्ज० । पुरिस० वधगा जीवा सखेज्ज० । इत्थिवे० वधगा जीमा सखेज्ज० । जसगिच्चिवधगा जी० सखेज्ज० । हस्मरदि-वधगा जीवा सखेज्ज० । साद-वधगा जीमा विसे० । असाद-अरदिसो० वधगा जीवा ससेज्ज० । अज्जसं० वधगा जीमा विसे० । णसुस० वधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-वधगा जीमा विसे० । १० णीचागो० वधगा जीवा विसे० । ओरालि० वधगा जी० विसे० । मिच्छत्त-वधगा जी० विसे० । थीणगिद्धि ३ अणताणु० ४ वधगा जीमा विसे० । अपचम्पणा० ४

## [ परस्थान-जीव-अल्प-बहुत्व ]

§४६४ अथ परस्थान जीव अल्प-बहुत्व अनुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकार वर्णन करते हैं ।

§४६५ ओघकी अपेक्षा आहारक शरीरके वधक जीव सर्वस्तोक हैं। तीर्थकर प्रकृतिके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । मनुष्यायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । नरकायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । देवायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । देवगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । नरकगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । वैक्यिक शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचायुके वधक जीव अनन्तगुणें हैं । उच्च गोनके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । यश कीर्तिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । हास्य-रतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । साता-वेदनीयके वधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । अयश कीर्तिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । नपु सकवेदके वधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचगतिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके वधक जीव विशेषाधिक हैं । स्थानगृद्धित्रिक, अनन्तानुवयी ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानारण ४ के वधक जीव विशेषा-

वधगा जीवा विसे० । एव अगोपग० । पचमघ० अघघगा जीवा थोवा । वजनसिम०  
वंधगा जीवा असखेज्ज० । उवरि सखेज्जगुणा । पचण्ण वधगा जीवा विमे० ।

§४६० सम्मामिच्छे-वेदणी० सत्तणोरु० दोगदि-दो-मरीर-दो-जगो० वज्जसिम०  
धिरादितिण्णियुगल वेदभगो । मिच्छादिद्वि-असण्णि-अन्मममिद्विय भगो ।

५ §४६१. सण्णी-मणनोगि भगो ।

§४६२. आहार-ओषभगो ।

§४६३. अणाहार०-पचणा० पचत० वण्ण० ४ णिमि० अघघगा जीवा थोवा ।  
वधगा जीवा अणतगुणा । छदस० अघघगा जीवा थोवा । थोणगिद्वि ३ अघगा  
जीवा विसे० । वधगा जीवा अणतगु० । छदम० वधगा जीवा विसे० । सेमं ओषं ।  
१० णवरि थोवा दग्गदि-वधगा । तिण्ण गदीण अघघगा जीवा अणतगुणा । मणुसगदि  
वधगा, तिरिकरगदि-वधगा जीवा० सखेज्ज० । तिण्णं वधगा जीवा विसे० । एव  
आशुपुच्चि० । अगो० कम्मद्दगभगो ।

एव सत्याण-जीव-अप्पावहुग समत्त ।



५ सहननेके अवधक जीव स्तोक है । घञ्जवृषभनाराचसहननेके वधक जीव असत्यातगुणें हैं ।  
घञ्जनाराच, नाराच आदि सहननेके वधक जीवोंमें सत्यातगुणित भ्रम जानना चाहिए । पापों  
सहननेके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

[विशेष-दुडक सरथानकी वधव्युत्ति प्रथम गुणस्थानमे होनेसे उसका वर्णन नहीं हुआ।]

§४६० सन्यक्त्व मिथ्यातरम, २ वेदनीय, ७ नोकपाय, २ गति, २ शरीर, २ अगोपाग, घञ्ज  
वृषभसहनन, स्थिरादि ३ भुगलमे वेदके समान भग जानना चाहिए ।

मिथ्यादृष्टि तथा असक्षीम अमव्यसिद्धिकोंसा भग जानना चाहिए ।

§४६१ सक्षीम-मनोयोगियोंका भग जानना चाहिए ।

§४६२ आहारकम-ओषवत् भग हैं ।

§४६३ अनाहारकोमे-५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय, वर्ण ४, निर्माणके अवधक जीव स्तोक हैं ।  
इनके वधक जीव अनन्तगुणें हैं । ६ दर्शनावरणके अवधक जीव स्तोक हैं । स्थानगृद्धिरिके  
अवधक जीव विशेषाधिक हैं । वधक जीव अनन्तगुणें हैं । ६ दर्शनावरणके वधक जीव विशेषाधिक  
हैं । शेष प्रकृतियोंमें ओषवत् हैं । विशेष यह है कि देवगतिके वधक जीव स्तोक हैं । तीनों गतिके  
अवधक जीव अनन्तगुणें हैं । मनुष्य, तिर्यचगतिके वधक जीव सत्यातगुणें हैं । तीनोंके वधक  
जीव विशेषाधिक हैं ।

[विशेष-अनाहारकोंम नरकगतिके वधकोंका अभाव है इससे उसकी यहा परिगणना नहीं हुई है]  
इसी प्रकार आनुपूर्वमि भी जानना चाहिए । अगोपागमे कार्माण फाययोगके समान भग  
जानना चाहिए ।

इस प्रकार स्वस्थान जीव-अल्प-बहुत्वका वर्णन समाप्त हुआ ।

गुणा । पुरिसवे० बंधगा जीवा असखेज्ज० । इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।  
उवरि सो चेय भंगो । णवरि मिच्छत्त बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्वितिय अणता-  
णुवधि ४ तिरिक्खगदि-णीचागो० बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० । सेसाणं बंधगा  
जीवा विसेसा० ।

§४६७. तिरिक्खेसु-सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । णिरयायु-बंधगा जीवा ५  
असखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा सखेज्ज० ।  
णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउन्विय० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खायु-  
बंधगा जीवा अणतगुणा । उच्चागोदस्स बंधगा जीवा सखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा  
जीवा सखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थि० बंधगा जीवा सखेज्ज० ।  
जस० बंधगा जीवा सखेज्ज० । साद-हस्सरदि-बंधगा जीवा सखेज्ज० । असाद- १०  
अरदि-सोग-बंधगा जीवा सखेज्ज० । अज्जस० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुस०  
बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा  
जीवा विसेसा० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्त बंधगा जीवा विसेसा० ।  
थीणगिद्वि-तियं अणताणुवधि० ४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खणाणा० ४ बंधगा  
जीवा विसेसा० । सेमाण पगदीण बंधगा जीवा सरिसा विसेसाहिवा । एव पच्चिदिय- १५  
तिरिक्ख० । णवरि असखेज्जगुण कादच्च ।

जीव सख्यातगुणों हैं । आगे इसी प्रकार सख्यातगुणों सख्यातगुणेका भग है । विशेष यह  
है कि मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्थानगृद्धित्रिक, अनन्तानुवधी ४, तियंचगति  
और नीच गोत्रके बंधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव  
विशेषाधिक हैं ।

§४६७ तियंचगतिमे-मनुष्यायुके बंधक जीव सर्वस्तोक है । नरकायुके बंधक जीव असख्यात-  
गुणों हैं । देवायुके बंधक जीव असख्यातगुणों हैं । देवगतिके बंधक जीव सख्यातगुणों हैं ।  
नरकगतिके बंधक जीव सख्यातगुणों हैं । वैश्वियिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
तियंचायुके बंधक जीव अनतगुणों हैं । उच्च गोत्रके बंधक जीव सख्यातगुणों हैं । मनुष्यगति-  
के बंधक जीव सख्यातगुणों हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव सख्यातगुणों हैं । स्त्रीवेदके बंधक  
जीव सख्यातगुणों हैं । यश कीर्तिके बंधक जीव सख्यातगुणों हैं । साता वेदनीय, हास्य,  
रतिने बंधक जीव सख्यातगुणों हैं । असाता, अरति, शोकके बंधक जीव सख्यातगुणों हैं ।  
अयश कीर्तिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुसकवेदके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । तियंच-  
गतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके  
बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । स्थानगृद्धित्रिक,  
अनन्तानुवधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अपत्याप्यानापरण ४ के बंधक जीव विशेषा-  
धिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बंधक जीव समान रूप से विशेषाधिक हैं ।

पंचेन्द्रिय तियंचोमे इसी प्रकार जानना चाहिये । विशेष, यहाँ असख्यातगुणा नम करना चाहिये ।

- बंधगा जीना विसे० । पच्चरसाणा० नघ० जीना विसे० । णिहापचला-बंधगा जीना विसे० । तैजाक० बंधगा जीना विसे० । भयदु० बंधगा जीना विसे० । कोध-संब० बंधगा जीना विसे० । माणसं० व० जीना विसे० । माया-स० बंधगा जीना विसे० । लोमसं० बंधगा जीना विसे० । पंचणा०, चदुदस०, पचत०, बंधा तुल्ला विसेसाहिया ।
- ५ §४६६, आदेशेण णेरइएसु-सन्वत्योवा मणुसायु बंधगा जीना । तित्थप० बंधगा जीना असखेज्ज० (?) । तिरिक्खायु-बंधगा जीना असखे० । उच्चागो० बंधगा जी० सखेज्ज० । मणुसादिबंधगा जीना सखेज्ज० । पुरिसवे० बंधगा जीना सखेज्ज० । इत्थि० बंधगा जीना सखेज्ज० । साद जस हस्स-रदिवंधगा जीना विसेसा० । णवुंसं० बंधगा जीना सखेज्ज० । असाद-अरदिसो० अज्जसगित्ति-बंधगा जीना विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीना विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीना विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीना विसेसाहिया । वीणगिद्धि-तिय-अणताणुनधि० ४ बंधगा जीना विसेसाहिया । सेसाण पगदीण तुल्ला विसेसाहिया । एव पढमाए । पचसु मच्चिभामु एव चेष । णपरि उच्चागोदस्स बंधगा जीना असखेज्जगुणा । सत्तमाए पुढीए-सन्वत्योवा मणुसादि उच्चागो० बंधगा जीना । तिरिक्खायु-बंधगा जीना असखेज्ज

धिक हैं । प्रत्यारयानारण ४ के बंधक जीन विशेषाधिक हैं । नित्रा, प्रचलाके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । तैजस, वार्माण शरीरके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । क्रोध-सज्वलनके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । मान-सज्वलनके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । माया सज्वलनके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । लोम-सज्वलनके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायके बंधक जीन समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४६६ आदेशसे—नारनियोमं-मनुष्यायुके बंधक जीन सर्वस्तोक हैं । तीर्थंकर प्रकृतिके बंधक जीन असरयातगुणें हैं (?) । तिर्यंचायुके नघक जीन असरयातगुणें हैं । उच्चगोत्रके बंधक जीन सरयातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बंधक जीन सरयातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीन सरयातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीन सरयातगुणें हैं । साता वेदनीय, यश कीर्त्ति, हास्य, रतिके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बंधक जीन सरयातगुणें हैं । अमाता-वेदनीय, अरति, शोक, अयज्ञ कीर्त्तिके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । तिर्यंचगतिके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीन विशेषाधिक हैं । स्वानुद्धिप्रिक, अन्तातुनधी ४ के बंधक जीन विशेषाधिक हैं । शीघ्र प्रकृतियोंमें बंधक जीन समान रूपसे अधिक क्रमवाले हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथ्वीमे जानना चाहिए ।

मध्यवर्ती ५ पृथ्वियोंमें अथात् दूसरीसे छठवीं पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, उच्चगोत्रके बंधक जीन असरयातगुणें हैं । मातवी पृथ्वीम-मनुष्यगति, उच्चगोत्रके बंधक जीन सर्वस्तोक हैं । तिर्यंचायुके बंधक जीन असरयातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीन असरयातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक

असाद-अरदि-मो० बधगा जीवा सखेज्ज० । अज्जस० बंधगा० जीवा विसे० । णवुस० बधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बधगा जीवा विसे० । णीचागो० बधगा जीवा विसे० । सेसाण पगदीण बंधगा सरिसा विसेसाहिया ।

§४७०. मणुसेसु-सव्वत्थोवा आहार० बधगा जीवा । [ तित्थयर बंधगा जीवा ] सखेज्जगुणा । णिरयायु बंधगा जीवा सखेज्ज० । देवायु-बधगा जीवा सखेज्जगु० । ५ देवगदि-बधगा जीवा सखेज्ज० । णिरयगदि-बधगा जीवा सखेज्ज० । वेउव्वि० बधगा जीवा० विसे० । मणुसायु-बधगा जीवा असखेज्जगु० । तिरिक्खायु-बधगा जीवा असखेज्ज० । उच्चागोद० बधगा जीवा सखेज्ज० । मणुसगदि-बधगा जीवा सखेज्ज० । पुरिस० बधगा जीवा सखेज्ज० । इत्थिवे० बधगा जीवा सखेज्ज० । जस० बधगा जीवा सखेज्ज० । हस्सरदि-बधगा जीवा सखेज्ज० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । १० अमाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा सखेज्ज० । अज्जस० बधगा जीवा विसेसा० । णवुस० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बधगा जीवा विसे० । णीचागो० बधगा जीवा विसे० । ओरालि० बधगा जीवा विसेसा० । मिच्छ० बधगा जीवा विसे० । उररि मूलोघ ।

§४७१. मणुस-पज्जत्त-मणुसिणीसु-सव्वत्थोवा आहार० बधगा जीवा । तित्थय० १५

असाता, अरति, शोकके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । अयश कीर्तिके बधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुसकवेदके बधक जीव विशेष अधिक हैं । तिर्यंचगतिके बधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बधक जीव विशेषाधिक हैं । शोप प्रकृतियोंके बधक जीव समान रूपसे विशपाधिक हैं । §४७० मनुष्य गतिमे आहारक शरीरके बधक जीव सर्व स्तोक हैं । [तिर्यंचरके बधक] सरयात गुणें हैं । नरकायुके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । देवायुके बधक जीव सरयातगुणें हैं । देवगतिके बधक जीव सरयातगुणें हैं । नरकगतिके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके बधक जीव विशेषाधिक हैं । मनुष्यायुके बधक जीव असख्यातगुणें हैं । तिर्यंचायुके बधक जीव असरयातगुणें हैं । उच्च गोत्रके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके बधक जीव सख्यात गुणें हैं । पुरुषवेदके बधक जीव सरयातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । यश-कीर्तिके बधक जीव सरयातगुणें हैं । हास्य, रतिके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । साता वेदनीयके बधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता वेदनीय, अरति, शोकके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । अयश कीर्तिके बधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुसकवेदके बधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यंच-गतिके बधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बधक जीव विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीर के बधक जीव विशेष अधिक हैं । मिथ्यात्वके बधक जीव विशेष अधिक हैं । आगेनी प्रकृ-तियोंमे अर्थात् स्थानगृह्णिक, अनतानुबधी ४, अप्रत्याग्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, निद्रा, प्रचला, तैजस, धार्मीण, भय, जुगुप्सा, सज्ज्वलन-क्रोध मान माया लोभ, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शानवरण, ५ अतराय मूलके ओधवत् जानना चाहिए ।

§४७१ मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यचोर्नियोंमे आहारक शरीरके बधक सर्वस्तोक हैं । तीर्थकर

§४६८. पचिदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणीसु-सन्वत्थोवा मणुसायुवधगा जीवा । णिरयायु-वधगा जीवा असखेज्जगु० । देवायु-वधगा जीवा असखेज्ज० । तिरिस्सायु-वधगा जीवा सखेज्ज० । देवगदि-वधगा जीवा संखेज्ज० । उच्चागोद-वधगा जीवा सखेज्ज० । मणुसगदि-वधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० वधगा जीवा सखेज्ज० । इत्थिवे० वधगा जीवा सखेज्ज० । जस० वधगा जीवा सखेज्ज० । साद-हस्मरदि-वधगा जीवा सखेज्ज० । तिरिक्खगदि-वधगा जीवा सखेज्ज० । ओरालि० वधगा जीवा विसेसा० । णिरयगदि-वधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउच्चि० वधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोगवधगा जीवा विसेसा० । अज्जम० वधगा जीवा विसेसा० । णवुम० वधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० वधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्त-वधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धितिय अणताणुववि० ४ वधगा जीवा विसेसा० । अपच्चकराणा० ४ वधगा जीवा विसेसा० । सेमाण पगदीण वधगा मरिमा विसेसा० ।

§४६९ पचिदिय तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु-सन्वत्थोवा मणुसायु-वधगा जीवा । तिरिक्खायु-वधगा जीवा असखेज्जगु० । उच्चागो० वधगा जीवा सखेज्जगु० । मणुसगदि-वधगा जीवा सखेज्ज० । पुरिस० वधगा जीवा सखेज्जगु० । इत्थिवे० वधगा जीवा सखेज्ज० । जस० वधगा जीवा सखेज्ज० । सादहस्मरदि-वधगा जीवा सखेज्जगु० ।

§४८८ पचेत्त्रिय तियच पर्याम पचेत्त्रिय तियच योनिमतियोम-मनुष्यायुके वधक जीव सर्व स्तोके हैं । नरकायुके वधक जीव असखातगुणें हैं । देवायुके वधक जीव असखातगुणें हैं । तिरिंघायु के वधक जीव सखातगुणें हैं । द्यवगतिके वधक जीव सखातगुणें हैं । उच्च गोत्र के वधक जीव सखातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव सखातगुणें हैं । पुरुषवेदके वधक जीव सखातगुणें हैं । स्त्रीवेदके वधक जीव सखातगुणें हैं । यज्ञ कीर्तिके वधक जीव सखातगुणें हैं । सातावेत्तीय, हास्य, रतिके वधक जीव सखातगुणें हैं । तियच गविने वधक जीव सखातगुणें हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं । नरकगतिके वधक जीव सखातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोशके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अयज्ञ कीर्तिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके वधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके वधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्यके वधक जीव विशेषाधिक हैं । स्यानगृद्धिक, अनन्तानुवधी ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानाधरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रवृत्तियोंके वधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४६९ पचेत्त्रिय तिरिंघ लक्ष्यपर्याप्तकोम मनुष्यायुके वधक जीव सर्वस्तोके हैं । तिरिंघायुके वधक जीव असखातगुणें हैं । उच्च गोत्रके वधक जीव सखातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव सखातगुणें हैं । पुरुषवेदके वधक जीव सखातगुणें हैं । स्त्रीवेदके वधक जीव सखातगुणें हैं । यज्ञ कीर्तिके वधक जीव सखातगुणें हैं । साता, हास्य, रतिने वधक जीव सखातगुणें हैं ।

तिरिक्त्वगदि-बधगा जीवा विसेसा० । पीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छ०  
 बधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्वि ३ अनताणु० ४ बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं  
 बंधगा जीवा सरिसा विसे० । एउ भण० याव ईसाणत्ति । णपरि जोदिसियसोधम्मी-  
 साणे उच्चागोदस्स बधगा जीवा असखेज्ज० । सणक्कुमार याव सहस्सारत्ति विदिय-  
 पुढविभंगो । आणद याव उवरिमगेउजात्ति सब्बत्थोना मणुसायुबंधगा जीवा । इत्थिवे० ५  
 बंधगा जीवा असखेज्ज० । णुम० बंधगा जीवा सखेज्जगु० । पीचागो० बधगा जीवा  
 विसे० । मिच्छत्तबंधगा जी० विसे० । थीणगिद्वि-निय० अणंताणु० ४ बंधगा  
 जीवा विसे० । साद-हस्स-रदि-जसगि० बधगा जीवा सखेज्जगु० । असाद-अरति-सोग-  
 अज्ज० बधगा जीवा सखेज्जगु० । उच्चागो० बधगा जीवा विसे० । पुरिस्सवे० बधगा  
 जीवा विसे० । सेसाण बधगा जीवा सरिसा विसेसा० । अणुद्दिअणुत्तर० सब्बत्थोवा १०  
 मणुसायु-बंधगा जीवा । साद हस्स-रदि जसगि० बंधगा जीवा असखेज्ज० । असाद-  
 अरदि-सोग-अज्जस० बधगा जीवा संखेज्जगु० । सोसाणं बधगा जीवा सरिसा विसेसा० ।  
 एवं सब्बट्ठे । णपरि सखेज्जगुण कादच्च ।

हैं । नपुसकवेदके बधक जीव विगेषाधिक हैं । तयैचगतिके बधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
 नीच गोत्रके बधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बधक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धि ३,  
 अनन्तानुवधी ४ के बधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणादि-  
 के बधक जीव समान रूपसे विशपाधिक हैं ।

भयनवासियोसे ईशान स्वर्गपर्यंत इसी प्रकार जानना चाहिए ।

विशेष यह है कि ज्योतिष्कदेव तथा सौवर्म, ईशान स्वर्गवासियोंमें उच्चगोत्रके बधक  
 जीव अमरयातगुणों हैं ।

सनत्कुमारसे सहस्वार स्वर्गतक दूसरे नरकके समान भग जानना चाहिए ।

आनतसे उपरिम प्रवेयक तक मनुष्यायुके बधक जीव सर्वस्तोक हैं । स्त्रीवेदके बधक  
 जीव असन्यातगुणों हैं । नपुसकवेदके बधक जीव सख्यातगुणों हैं । नीच गोत्रके बधक  
 जीव विशेष अधिक हैं । मिथ्यात्वके बधक जीव विशेष अधिक हैं । स्त्यानगृद्धिक, अनन्ता-  
 नुवधी ४ के बधक विशेषाधिक हैं । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिके बधक जीव सख्यातगुणों  
 हैं । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके बधक जीव सख्यातगुणों हैं । उच्च गोत्रके बधक  
 जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बधक जीव  
 समान रूपसे विशेष अधिक हैं ।

अनुद्दिश-अनुत्तरवासी देवोंमें-मनुष्यायुके बधक जीव सर्वस्तोक हैं । साता, हास्य, रति,  
 यश कीर्तिके बधक जीव असख्यातगुणों हैं । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके बधक जीव  
 सख्यातगुणों हैं । शेष प्रकृतियोंके बधक जीव समान रूपसे विगेष अधिक हैं ।

सर्वाधसिद्धिमें ऐसा ही जानना चाहिए । विगेष, बड़ा 'सत्यानगुणों' क्रमकी योजना  
 परनी चाहिये ।



वधगा जीरा संखेज्जगु० । मणुसायुधगा जीरा संखेज्जगु० । गिरयायुधगा  
 जीरा संखेज्जगु० । देवायुधगा जीरा संखेज्जगु० । तिरिक्रयायुधगा जीरा  
 संखेज्जगु० । देवगदि-वधगा जीरा संखेज्जगु० । उच्चागो० वधगा जीरा संखेज्जगु० ।  
 मणुसगदि-वधगा जीरा संखेज्जगु० । पुरिस० वधगा संखेज्जगु० । इत्थि० वधगा जीरा  
 ५ संखेज्जगु० । जस० वधगा जीरा संखेज्जगु० । हस्सरदि वधगा जीरा संखेज्जगु० । साद  
 वधगा जीरा विसे० । तिरिक्रयागदि-वधगा जीरा संखेज्जगु० । ओरालि० वधगा जीरा  
 विसे० । गिरयागदि-वधगा जीरा संखेज्जगु० । वेउव्वि० वधगा जीरा विसे० । असाद  
 अरदि-सोगवधगा जीरा विसे० । अज्जस० वधगा जीरा विसे० । णवुस० वधगा  
 जीरा विसे० । णीचागो० वधगा जीरा विसे० । मिच्छत्तवधगा जीरा विसे० । उववि  
 १० मूलोष । मणुस अपज्जत्त-पचिंदिय तिरिक्र-अपज्जत्तमगो ।

१४७२ देवसु सब्बत्थोवा मणुसायुधगा जीरा । तित्थय० वधगा जीरा  
 असखेज्जगु० । तिरिक्रयायुधगा असखेज्जगु० । उच्चागो० वधगा जीरा संखेज्जगु० ।  
 मणुसगदि-वधगा जीरा संखेज्जगु० । पुरिस० वधगा जीरा संखेज्जगु० । इत्थि० व०  
 जी० संखे० । साद-हस्सरदि-जसगि० वधगा सरिसा संखेज्जगु० । असाद-अरदि  
 १५ मोग-अज्जसगि० वधगा जीरा सरिसा संखेज्जगु० । णवुस० वधगा जीरा विसे० ।

प्रकृतिके वधक जीर सरयातगुणें हैं । मनुष्यायुके वधक जीव सरयातगुणें हैं । नरकायुके वधक  
 जीर सरयातगुणें हैं । देवायुके वधक जीव सरयातगुणें हैं । तियायुके वधक जीव सरयात  
 गुणें हैं । देवगतिके वधक जीर सरयातगुणें हैं । उच्चगोत्रके वधक जीव सरयातगुणें हैं ।  
 मनुष्यगतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । पुरुषवेदके वधक जीव सरयातगुणें हैं । स्त्रीवेदके  
 वधक जीव सरयातगुणें हैं । यश कीर्तिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके वधक  
 जीव सरयातगुणें हैं । सातावेदनीयके वधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचगतिके वधक जीर  
 सरयातगुणें हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं । नरकगतिके वधक जीव सख्या  
 तगुणें हैं । बैक्रियिज शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके वधक  
 विशेष अधिक हैं । अयश कीर्तिके वधक विशेषाधिक हैं । नपुसकवेदके वधक विशेषाधिक हैं ।  
 नीच गोत्रके वधक विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।

आगोकी प्रकृतियोंमें अर्थात् क्षानाकरण ५, दर्शनावरण ४, अतराय ५, स्थानगृद्धिक,  
 अनतानुधी ४ आग्नि मूलके ओषधत्त जानना चाहिए ।

मनुष्यलभ्यपर्याप्तकोंमें-पचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तके समान भग है ।

१४७२ देवगतिमें-मनुष्यायुके वधक जीव सर्वस्तोक हैं । तीर्थंकर प्रकृतिके वधक जीव अस  
 ख्यातगुणें हैं । तियायुके वधक जीव असरयातगुणें हैं । उच्च गोत्रके वधक जीव सरयातगुणें  
 हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके वधक जीव सख्यातगुणें हैं ।  
 स्त्रीवेदके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिके वधक जीव समान रूपसे  
 सख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके वधक जीव समान रूपसे सरयातगुणें

विसेसा० । सेसाणं वंधगा सरिसा विसेसा० ।

१४७९ वेउच्चिय काजो, वेउच्चियमि०—देवोधं । णपरि मिस्से आयुगं पत्थि ।

१४८०. आहार० आहारमिस्स०—सच्चत्थोवा तित्थयरनधगा जीवा । देवायु-  
वधगा जीवा संसेज्जगुणा । साद हस्स-रदि जसगित्ति-वधगा जीवा संसेज्जगुणा ।  
असाद-अरदि-सोग अज्जसगित्तिवधगा जीवा संसेज्जगुणा । सेसाण वंधगा सरिसा ५  
विसेसाहिया ।

१४८१. कम्महगागा० सच्चत्थोवा देवगदि-वेउच्चिय० वंधगा जीवा । उच्चागो०  
वधगा जीवा अणत्तगुणा । म्णुसग० वधगा जीवा संसे० गुणा । पुरिस० वध० जीवा  
सखेज्जगुणा । इत्थिवे० वंधगा जीवा सखेज्जगु० । जस० वंधगा जीवा सखेज्जगुणा ।  
हस्स-रदि-वधगा जीवा सखेज्जगुणा । साद-वधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि- १०  
सो० वंधगा जीवा सखेज्जगु० । अज्ज० वधगा जीवा विसेसा० । णयुंस० वधगा  
जीवा विसेसा० । तिक्खिखगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० वधगा जीवा  
विसेसा० । मिच्छत्तवधगा जीवा विसेसा० । वीणागिद्धि ३ अणत्ताणु० ४ वधगा  
जीवा विसेसा० । जोरालि० वधगा जीवा विसेसा० । सेमाण वधगा जीवा  
सरिसा विसेसा० ।

१५

गृद्धिन्निक, अनन्तानुपधी ४ तथा औदारिक शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतिके  
वधक जीवोंमें समान रूपसे विशेष अधिकता क्रम है ।

१४७९ वैक्रियिक-काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमें द्वोंके ओषवत् जानना चाहिए ।  
विशेष, वैक्रियिकमिश्र काययोगमें आयुका वध नहीं है ।

१४८० आहारक, आहारक मिश्रकाययोगियोंमें—तीर्थकरके वधक संस्तोक हैं । देवायुके  
वधक जीव सरयातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिके वधक जीव सरयातगुणें हैं ।  
असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । शेष प्रकृतियोंके वधक जीव  
समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

१४८१ कार्माण काययोगियोंमें—देवगति, वैक्रियिक शरीरके वधक जीव संस्तोक हैं । उच्च  
गोत्रके वधक जीव अनन्तगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके वधक  
जीव सख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके वधक जीव सरयातगुणें हैं । यश कीर्तिके वधक जीव सरयात-  
गुणें हैं । हास्य, रतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । सातावेदनीयके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
अमाता, अरति, शोकके वधक जीव सरयातगुणें हैं । अयश कीर्तिके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
नपुंसकवेदके वधक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यंच गतिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्र  
के वधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके वधक जीव विशेषाधिक हैं । स्थानगृद्धिन्निक तथा  
अनन्तानुपधी ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
शेष प्रकृतियोंके वधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

जीना सखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीना सखेज्जगु० । जस० बंधगा जीना सखेज्ज० । हस्तरदि-बधगा जीना सखेज्जगु०, अथवा विसेसाहिय । साद-बधगा जीना विसे० । अमाद-अरदि मो० बधगा जीना सखेज्जगु० । अज्ज० बधगा जीना विसे० । णवुस० बधगा जीना विसे० । तिरिक्खगदिबधगा जीना विसे० । णीचागोद० बधगा जीना विसे० । ओरालि० बधगा जीना विसे० । मिच्छ० बधगा जीना विसे० । उरति ओधमंगो । वचिजोगि-असच्चमोस० तसपज्जतमंगो ।

§४७७. काजोगि-ओरालिय-काजोगि ओधमंगो ।

§४७८ ओरालियमिस्से—मच्चत्थोना दधगादि वेगुच्चि० बधगा जीना । मणुसायु बधगा जीना असखेज्ज० । तिरिक्खायु-बधगा जीना अणतगुणा । उच्चागो० बधगा जीना सखेज्ज० । मणुसगदि बधगा जीना सखेज्ज० । पुरिसवे० बधगा जीना सखेज्जगुणा । इत्थिवे० बधगा जीना सखेज्ज० । जस० बधगा जीना सखेज्जगु० । हस्तरदिबधगा जीना सखेज्ज० । साद-बधगा जीना विसे० । अमाद-अरदि-सो० बधगा जीना सखेज्ज० । अज्ज० बधगा जीना विसे० । णवुस० बधगा जीना विसेसा० । तिरिक्खगदि-बधगा जीना विसेसा० । णीचागो० बधगा जीना विसे० । मिच्छत्त० बधगा जीना विसेसा० । वीणगिद्धि ३ अणताणुमधि० ४ ओरालि० बधगा जीना

बधक जीव सख्यातगुणें है । स्त्रीवेदके बधक जीव सख्यातगुणें है । यश कीर्तिके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बधक जीव सख्यातगुणें हैं अथवा विशेषाधिक हैं । साता वेदनीयके बधक जीव विशेषाधिक हैं । अमात्त, अरति, शोकके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । अयश कीर्तिके बधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुसकवेदके बधक जीव विशेषाधिक हैं । तियचगवतिके बधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बधक जीव विशेष अधिक हैं । औदारिक शरीरके बधक जीव विशेषाधिक है । मिथ्यात्रके बधक जीव विशेषाधिक हैं । अवशेष प्रागेमी मरुतिषोम जोधयत् जानना चाहिए ।

असत्पमृपा अर्थात् अनुमयनचनयोगम-त्रसपर्योत्तके समान भग हैं ।

§४७७ काययोगी, औदारिक काययोगीम ओधभग है ।

§४७८ औदारिक मिश्र काययोगीम-द्वगति, वैत्रिथिक शरीरके बधक जीव सर्वस्तोक है । मनुष्यायुके बधक जीव असत्पमतगुणें हैं । तियचायुके बधक जीव अनन्तगुणें हैं । उच्च गोत्रके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिने बधक जीव सख्यातगुणें हैं । पुरुषेदके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । स्त्रीरदके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । यश कीर्तिके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । हास्य, रतिके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । साताके बधक जीव विशेषाधिक है । असाता, अरति, शोकके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । अयश कीर्तिके बधक जीव विशेषाधिक है । नपुसकवेदके बधक जीव विशेषाधिक है । तियचगवतिके बधक जीव विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बधक जीव विशेषाधिक है । मिथ्यात्रके बधक जीव विशेषाधिक है । स्थान

बधगा जीवा विसे० । मायासं० बंधगा जीवा विसे० । लोभसं० बंधगा जीवा विसेमा० । पंचणा० चतुदस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसे० ।

§४८८. एव संजद-सामाड० छेदो० । णवरि याव मायासंजलणं ताव मणपज्जव-भंगो । उवरि सेसाण बंधगा सरिसा विसेसाहिया ।

§४८९. परिहारे—सच्चत्थोवा देवायुबंधगा जीवा । आहार० बंधगा जीवा ५ संखेज्ज० । साद-हम्मस-रदि-जसगि० सरिसा संखेज्जगुणा । असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बधगा जीवा संखेज्जगुणा । सेसाण सरिसा विसेसा० ।

§४९०. संजदासंजदा—सच्चत्थोवा देवायु-बंधगा जीवा । साद-हम्मस-रदि-जस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बधगा जीवा संखेज्जगु० । सेसाण बधगा जीवा सरिसा विसेसाहिया । १०

§४९१. असंजदेसु—तिविक्खोर्धं । णवरि थीणगिद्धि ३ अणंताणुबंधि ४ बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाण बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० ।

§४९२. चक्खुदसणी-तस-पज्जत्तभगो । अचक्खुदसणी-ओध । ओधिदंसणी-ओधिणाणिभंगो ।

§४९३ तिप्णि लेस्सा-असंजदभगो । तेउलेस्सि०—सच्चत्थोवा आहार० १५

सञ्चलनके बधक जीव विशेषाधिक हैं । मानसञ्चलनके बधक जीव विशेषाधिक हैं । माया-सञ्चलनके बधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभसञ्चलनके बधक जीव विशेषाधिक हैं । ५ ज्ञाना-यरण, ४ दर्शनारण, उच्चागो, ५ अन्तरायके बधक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४८८ सयम, सामायिक छेदोपस्थापना सयममे इसी प्रकार हैं । विशेष, मायासञ्चलनपर्यन्त मन पर्ययके समान भग हैं । आगेवी शेष प्रकृतियोंके बधक जीवोंमे सदृश रूपसे विशेषाधिकता है ।

§४८९ परिहारविशुद्धि सयममे—देवायुके बधक जीव सर्वस्तोक हैं । आहारकशरीरके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिमे सदृश रूपसे सख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके बधक जीव मख्यातगुणें हैं । जेप प्रकृतिके बधक सदृश रूप विशेषाधिक हैं ।

§४९० मयतासयतोम—देवायुके बधक जीव सर्वस्तोक हैं । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके बधक जीव सख्यातगुणें हैं । जेप प्रकृतियोंके बधक जीव सदृश रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४९१ असयतोम—तिथंओवे ओधवत् जानना चाहिए । विशेष, स्थानगृद्धिक, अनन्तानु-बधी ४के बधक जीव विशेषाधिक हैं । जेप प्रकृतियोंके बधक जीव सदृश रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४९२ च्छुदर्शनवालोमि—असपर्याप्तके समान भग जानना चाहिए । अच्छुदर्शनवालोमि—ओधवत् जानना चाहिए । अवधिदर्शनवालोमि—अवधिज्ञानके समान भग हैं ।

§४९३ वृष्णाणि धीन रेख्यावालोमि—असयतोके समान भग हैं । तेजोलेख्यावालोमि—

१४८६ आभि० सुद० ओधि०—सव्यस्थोवा आहारस० वधगा जीवा । मशु  
सायु वधगा जीवा सखेज्जगु० । देवायु वधगा जीवा असखेज्ज० । देवगदिवेज्ज्वि०  
वधगा जीवा अमखेज्ज० । हस्स रदि-वधगा जी० अम० गुणा । जम० वधगा जीवा  
निसेसा० । साद-वधगा जीवा निसे० । अमाद-अरदि-सोग-अज्जस० वधगा जीवा  
५ संखेज्जगुणा । मशुसगदि ओरालि० वधगा जीवा निसेसा० । अप्चकराणा० ४ वधगा  
जीवा विसेसा० । प्चकराणा० ५ वधगा जीवा विसेसा० । णिदापचला-वधगा जीवा  
निसेसा० । तेनाक० वधगा जीवा निसेसा० । भयदु० वधगा जीवा विसे० । पुरिसवे०  
वधगा जीवा विसे० । कोधमज० वधगा जीवा विसेसाहिया । माणस० वधगा जीवा  
निसेसा० । मायास० वधगा जीवा विसे० । लोभस० वधगा जीवा विसे० । पचणा०  
१० चटुत्स० उच्चागो० पचत० वधगा जीवा विसे० ।

१४८७ मणपज्ज०—सव्यस्थोवा आहार० वधगा जीवा । देवायु-वधगा जीवा  
सखेज्जगुणा । हस्स-रदि-वधगा जीवा सखेज्जगु० । जस० वधगा जीवा निसे० ।  
सादवधगा जीवा विसे० । अमाद-अग्दि-सोग-अज्ज० वधगा जीवा सखेज्जगुणा ।  
णिदा-पचला-वधगा जीवा निसे० । देवगदि वेज्ज्विय० तेजा० वधगा जीवा  
५ विसे० । पुरिसवे० वधगा जीवा निसे० । कोधसज० वधगा जीवा विसे० । माणस०

हैं । मिथ्यात्वके वधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके वधक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

४८६ आभिनिनोभिक-श्रुत अथधि ज्ञानम—आहारके शरीरके वधक जीव सबसे स्तोक हैं । मनुष्यायुके वधक जीव सरयातगुणें हैं । देवायुके वधक जीव असरयातगुणें हैं । देवगति, वैज्जिक शरीरके वधक जीव असरयातगुणें हैं । हास्य, रतिके वधक जीव असरयातगुणें हैं । यशस्कौतिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । साता वेत्तनीयके वधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोक, अयश कीतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । मनुष्यगति, औदारिक शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अमत्याट्यानावरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याट्यानावरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । निद्रा, प्रचला के वधक जीव विशेषाधिक हैं । तैजस, कामाण के वधक जीव विशेषाधिक हैं । भय सुगुप्साके वधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके वधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोधसज्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । मानसज्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं । मायासज्जलन के वधक जीव विशेषाधिक हैं । लोभसज्जलनके वधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
५ ज्ञानावरण, ४ दशानावरण, षडगोत्र, ५ अन्तरायके वधक जीव विशेष अधिक हैं ।

१४८७ मन्त पयवज्ञानम—आहारकशरीरके वधक जीव सबसे स्तोक हैं । देवायुके वधक जीव सरयातगुणें हैं । हास्य, रतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । यश कीतिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । साताके वधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता अरति, शोक, अयश कीतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । निद्रा, प्रचलाके वधक जीव विशेषाधिक हैं । देवगति, वैज्जिक तैजस कामाण शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके वधक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध

बधगा जीवा विसे० । मायास० बंधगा जीवा विसे० । लोभस० बंधगा जीवा विसेमा० । पंचणा० चतुदस० उच्चागो० पंचत० बंधगा जीवा विसे० ।

§४८८. एव संजद-सामाड० छेदो० । णवरि याव मायासंजलणं ताव मणपज्जव-भगो । उवरि सेसाण बंधगा सरिसा विसेसाहिया ।

§४८९. परिहारे—सव्वत्थोवा देवायुबंधगा जीवा । आहार० बंधगा जीवा ५ संखेज्ज० । साट-हस्स-रदि-जसगि० सरिसा संखेज्जगुणा । असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बधगा जीवा सखेज्जगुणा । सेसाण सरिसा विसेसा० ।

§४९०. सजदासंजदा—सव्वत्थोवा देवायु-बंधगा जीवा । साट-हस्स-रदि-जस० बधगा जीवा संखेज्जगुणा । असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा सखेज्जगु० । सेसाण बंधगा जीवा सरिसा विसेसाहिया । १०

§४९१. असजदेसु—तिरिक्खोघं । णरि थीणगिद्धि ३ अणंताणुंघि ४ बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाण बधगा जीवा सरिसा विसेसा० ।

§४९२. चक्खुदसणी-त्तस-पज्जत्तभगो । अचक्खुदसणी-ओष । ओधिदसणी-ओषिणाणिभगो ।

§४९३ तिण्णि सेस्सा-असंजदभगो । तेउलेस्सि०—सव्वत्थोवा आहार० १५

संज्ञानके बधक जीव विशेषाधिक हैं । मानसज्जलनके बधक जीव विशेषाधिक है । माया-सज्जलनके बधक जीव विशेषाधिक है । लोभसज्जलनके बधक जीव विशेषाधिक हैं । ५ ज्ञाना-परण, ४ दशानारण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बधक जीव विशेषाधिक हैं ।

§४८८ समय, सामायिक छेदोपस्थापना समयमे इसी प्रकार है । विशेष, मायासज्जलनपर्यन्त मन, पर्यये समान भग है । आगेकी शेष प्रकृतियोंके प्रथक जीवोंमे सदृश रूपसे विशेषाधिकता है ।

§४८९ परिहारविशुद्धि समयमे—देवायुके बधक जीव सर्वस्तोक हैं । आहारकशरीरके बधक जीव सख्यातगुण हैं । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिके सदृश रूपसे सख्यातगुण हैं । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके बधक जीव सख्यातगुण हैं । शेष प्रकृतिके बधक सदृश रूप विशेषाधिक हैं ।

§४९० मयतामयवोमि—देवायुके बधक जीव सर्वस्तोक हैं । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिके बधक जीव सख्यातगुण हैं । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके बधक जीव सख्यातगुण हैं । शेष प्रकृतियोंके बधक जीव सदृश रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४९१ अमयवोमि—वियवोके ओपपत्त ज्ञानना चाहिए । विशेष, स्थानशुद्धिविक, अनन्तातु-पथी ४के बधक जीव विशेषाधिक है । शेष प्रकृतियोंके बधक जीव सदृश रूपसे विशेषाधिक हैं ।

§४९२ च्छुदगंननालोमि—प्रसवयोमके समान भग जानना चाहिए । अचक्षुदगंननालोमि—

ओपपत्त ज्ञानना चाहिए । अवधिदगंननालोमि—अप्रधिहानके समान भग हैं ।

§४९३ कृष्णाणि तीण लेस्सावालोमि—असवयोके समान भग हैं । तेजोलेस्सावालोमि—

गत जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा सखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असखेज्जगु०  
 रत्तुसायु-बंधगा [ जीवा ] असखेज्ज० । देवगदि-वेउच्चिय० बंधगा सखेज्जगुणा  
 वगो० बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । मणुसग० बंधगा जीवा सखेज्जगुणा  
 वे० बंधगा जीवा सखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा [ जीवा ] सखेज्जगुणा  
 हस्स-रदि-जस० बंधगा जीवा सखेज्जगु० । असाद-अरदि-सोग अज्ज० बंधगा  
 संखेज्जगुणा । णवुस० बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा  
 ० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि० बंधगा जीवा विसे० ।  
 च-बंधगा जीवा विसे० । धीणगिद्धि ३ अणताणुनधि ४ बंधगा जीवा विसेसा०  
 । अपच्चक्खाणावर० ४ बंधगा जी० विमे० । पच्चक्खाणावर० ४ व० जीवा  
 ० । सेनाग बंधगा सरिसा विसेसा० ।

११९४. पम्माए—आहार० योवा । मणुसायु-बंधगा जीवा सखेज्जगुणा । तिरि-  
 ११९५ जीवा असखेज्जगु० । देवायु बंधगा जीवा विसेसा० । मणुसग०  
 जीवा सखेज्जगु० । इत्थिवे० व० जीवा सखेज्जगु० । णवुस० बंधगा जीवा  
 ११९६ जीवा । तिरिक्खगदि-बंधगा जी० विसे० । णीचागो० व० जीवा विसे० ।  
 ११९७ बंधगा जीवा विसे० । साद हस्स-रदि-जस० बंधगा सरिसा असखेज्ज-  
 ११९८ असाद-अरदि-सो०-अज्जस० बंध० सरिसा सखेज्जगुणा । देवगदि वेउच्चि०

शरीरके बंधक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव सख्यातगुणें हैं ।  
 बंधक जीव असख्यातगुणें हैं । तिर्यंचायुके बंधक [ जीव ] असख्यातगुणें हैं । देवगति,  
 शरीरके बंधक जीव सख्यातगुणें हैं । उच्चगोत्रके बंधक जीव सख्यातगुणें हैं । मनुष्य  
 बंधक जीव सख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके बंधक जीव सख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक  
 ] सख्यातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिके बंधक जीव सख्यातगुणें हैं ।  
 अरति, शोक, अयश कीर्तिके बंधक जीव सख्यातगुणें हैं । नपुसकवेदके बंधक जीव  
 गुणें हैं । तिर्यंचगतिके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नीचगोत्रके बंधक जीव विशेषा  
 । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बंधक जीव विशेषाधिक  
 यानगिद्धि ३, अनन्तानुबधी ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानवरण ४ के  
 जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानवरण ४ के बंधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके  
 जीव समानरूपसे विशेषाधिक हैं ।

११९९ पद्मलेखामे—आहारक शरीरके बंधक जीव स्तोक हैं । मनुष्यायुके बंधक जीव  
 गुणें हैं । तिर्यंचायुके बंधक जीव असख्यातगुणें हैं । देवायुके बंधक जीव विशेषाधिक  
 बंधक जीव सख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बंधक जीव सख्यातगुणें हैं । तिर्यंचगतिके बंधक जीव विशेषाधिक  
 विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके बंधक जीव विशेषाधिक हैं । नपुसक-  
 वेदनीय-  
 हैं ।

बंधगा जीवा विसे० । उच्चागो० बंध० जी० विसे० । पुरिस० बधगा जीवा विसे० ।  
मिच्छत्त-बधगा जीवा विसे० । उवरि तेउमगो ।

§४९५ सुक्काए—सच्चथोवा आहारस० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा  
संखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउव्वि० बंधगा जीवा असखे-  
ज्जगु० । इत्थिवे० बधगा जीवा असखेज्जगु० । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । ५  
णीचागो० बधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त-बधगा जीवा विसे० । थीणगिद्धि ३  
५०, अणताणुं० ४ बधगा विसे० । इस्स-रदि-बधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा  
जीवा विसे० । साद-बधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-[सोग] अज्ज० बधगा  
जीवा सखेज्जगुणा । उच्चागो० बंधगा जीवा विसेसा० । पुरिस० बध० जीवा विसेसा० ।  
मणुसग० औरालि० बधगा जी० विसे० । अपच्चक्खाणा० ४ बंध० जीवा विसेसा० । १०  
पच्चक्खाणा० ४ बधगा जीवा विसेसा० । उवरि ओधमंगो ।

§४९६. भगसिद्धि—मूलोष । अब्भवमिद्धि—मदिमंगो । णवरि मिच्छत्त-सोलस-कसा०  
एत्थ भाण्णिव्वा ।

§४९७. सम्मादिद्धि—ओधिभगो । सहग सम्मा०—सच्चथोवा आहार० बंधगा जीवा ।

जीव विशेषाधिक हैं । च्छगोत्रके बधक जीव विशेषाधिक है । पुरुषवेदके बधक जीव विशेषाधिक  
हैं । मिथ्यात्वके बधक जीव विशेषाधिक हैं । आगेकी प्रकृतियोंमें तेजोलेश्याके समान भग हैं ।

§४९५ शुषल्लेदयामे—आहारक शरीरके बधक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बधक जीव  
सख्यातगुणें हैं । देवायुके बधक जीव विशेषाधिक हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बधक जीव  
असख्यातगुणें हैं । स्त्रीवेदके बधक जीव असख्यातगुणें हैं । नपुंसकवेदके बधक जीव सख्यात-  
गुणें हैं । नीचगोत्रके बधक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
स्थानगृद्धिप्रिकके बधक जीव विशेषाधिक हैं । अनन्तानुबधी ४ के बधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
दात्य, रतिने बधक जीव सख्यातगुणें हैं । यश कीर्तिके बधक जीव विशेषाधिक हैं । साताके  
बधक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, [शोक] अयश कीर्तिके बधक जीव सख्यातगुणें  
हैं । च्छगोत्रके बधक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बधक जीव विशेषाधिक हैं ।  
मनुष्यगति, श्रौतारिक शरीरके बधक जीव विशेषाधिक हैं । अपत्याख्यानावरण ४ के बधक जीव  
विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बधक जीव विशेषाधिक हैं । आगेकी प्रकृतियोंमें—  
ओषधत् भग जानना चाहिए ।

§४९६ मव्यसिद्धिकोंमें—मूल ओषधत् जानना चाहिए । अभव्यसिद्धिकोंमें—मत्यज्ञानवत्  
भग जानना चाहिए । विशेष, मिथ्यात्व और सोलह कपायके बधकोंका भग एक साथ  
लगाना चाहिये ।

[ विशेष—यहां मिथ्यात्वके साथ १६ कपायका सदा बध होता है । इस कारण उनका धृत्य  
भग नहीं बध है । ]

§४९७ सम्यग्प्रियोंमें—अवधिज्ञानके समान भग जानना चाहिए । क्षायिकसम्यक्त्व-  
में—आहारक शरीरके बधक जीव सर्वस्तोक हैं । देवायुके बधक जीव सख्यातगुणें हैं ।





बंधगा जी० विसे० । णीचागो० बंधगा जी० विसे० । ओरालि० बंधगा जी० विसे० ।  
सेमाण पगदीणं बंधगा जी० सरिसा विसेमा० ।

१५०१. सम्मामिच्छ०—सञ्चत्योवा देवगदि-बंधगा जीवा, वेउच्चि० बंधगा जीवा ।  
साद-हसरदि-जम० बंधगा जीवा असंसे० गुणा । असाद-अराद-सो० अज्ज०  
बंधगा जी० सखेज्जगु० । मणुसग० ओरालि० बंधगा जी० विसे० । सेसाणं पगदीणं ५  
बंधगा जीवा सरिसा विसे० । मिच्छादिदि अम्मरसिद्धिभंगो ।

१५०२. सप्पीसु—सञ्चत्योवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जी०  
असखे० गुणा । णिरयायु-बंधगा जीवा असखे० गुणा । देवायु-बंधगा [ जीवा ]  
असखे० गुणा । णिरयागदि-बंधगा जी० सखेज्जगुणा । तिरिक्खायु-बंधगा जी० असखे०  
गुणा । देवगदि-बंधगा जी० सखेज्जगु० । वेउच्चि० बंधगा जी० विसे० । उच्चागो० १०  
बंधगा जी० सखेज्जगु० । मणुसग० बंधगा जी० संखेज्जगु० । पुरिस० बंधगा जीवा  
सखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जी० सखेज्जगु० । जस० बंधगा जी० सखे० गु० ।  
हस्मन्ति बंधगा जी० विसे० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । उत्रि मणजोगिभंगो ।  
असप्पी मिच्छादिदि-भंगो ।

१५०३. आहारा-ओघभंगो । अणाहारा-कम्मद्वगभंगो ।

१५

एव परत्याण-जीव-अप्पा-नहुगं समत्त ।

निरोपाधिक हैं । औदारिक शरीरके वधक जीव विशेषाधिक हैं । जेप प्रकृतियोंके वधक जीव  
समान रूपसे निरोपाधिक हैं ।

१५०१ मन्थमिध्यात्तमे—देवगतिके वधक जीव सरस्तोक हैं । वैक्रियिक शरीरके वधक  
जीव भी इसी प्रकार हैं । साता वेदनीय, हास्य, रति, यशःकीर्तिके वधक जीव असख्यातगुणें  
हैं । अमाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके, औदारिक  
शरीरके वधक जीव निरोपाधिक हैं । जेप प्रकृतियोंके वधक जीव समान रूपसे निरोपाधिक हैं ।

मिच्छादिदिमे—अभज्य सिद्धि के समान भग हैं ।

१५०२ मत्तीम—आहारक शरीरके वधक जीव सर्व स्तोक हैं । मनुष्यायुके वधक जीव अस-  
ख्यातगुणें हैं । नरवायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । देवायुके वधक [ जीव ] अमख्यातगुणें हैं ।  
नरपगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । तिर्यचायुके वधक जीव अमख्यातगुणें हैं । देवगतिके  
वधक जीव सख्यातगुणें हैं । वैक्रियिक शरीरके वधक जीव निरोपाधिक हैं । उच्च गोरके वधक  
जीव मख्यातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव सख्यातगुणें हैं । पुरुषवेदके वधक जीव मख्यात  
गुणें हैं । स्त्रीवेदके वधक जीव मख्यातगुणें हैं । यश कीर्तिके वधक जीव मख्यातगुणें हैं । हा य,  
अभिषेकके वधक जीव निरोपाधिक हैं । साता वेदनीयके वधक जीव निरोपाधिक हैं । आगेकी जेप  
अभंगे । अमत्तीम—मिच्छादिदि के समान भग हैं ।  
भग हैं । अनद रवोम—कामांग काययोगीके समान भग हैं ।  
जीव अरूप बहुत्व समान हुआ ।

देवायु-वध० जी० सखेज्ज० । मणुसायु वधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउच्चि० वधगा जीवा विसे० । उवरि ओधिभगो ।

§४९८. वेदगे—मव्वन्थोवा आहार० व० जीवा । मणुसायु-वधगा जीवा सखे-ज्जगु० । देवायु-वधगा जीवा असखेज्जगु० । देवगदि-वेउच्चि० वधगा जीवा असखे-ज्जगु० । साद-हस्म-रदि०-जस० वधगा जी० असखे० गु० । असाद-अरदि-सो० अज्जस० वधगा जीवा सखेज्जगु० । मणुमग० ओगलि० वधगा जीवा विसे० । अपच्चक्खाणा० ४ वधगा जीवा विसे० । पच्चकराणा० ४ वध० जीवा विसे० । सेसाण वधगा जीवा सरिमा विसे० ।

§४९९. उवसम स०—सव्वत्थोवा आहार० वधगा जीवा । देवगदि-वेउच्चि-प-वधगा जी० असखेज्जगु० । उवरि ओधिभगो ।

§५००. सासणे—सव्वत्थोवा मणुसायु-वधगा जीवा । देवायु-वधगा जीवा असखे-ज्जगु० । देवगदि वेउच्चि० वधगा जी० असखे० गुणा । तिरिक्खायु-वधगा जी० असखे० गुणा । मणुसगदि-वधगा जी० सखेज्जगुणा । पुरिस्खे० वधगा जीवा सखे० गुणा । साद हस्म-रदि-जस० वध० जीवा विसे० । इत्थिखे० वधगा जी० सखेज्ज-गुणा । असाद-अरदि-सो० अज्ज० व० जीवा विसेमा० । अथवा असाद-अरदि-सो० अज्ज० वधगा जीवा सखेज्जगु० । इत्थिखे० वधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि०

मनुष्यायुके वधक जीव विशेष अधिक हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके वधक जीव विशेष अधिक हैं । आगे अर्थाधज्ञानके समान भग है ।

§५९८ वेदकसम्यक्त्वम—आहारक शरीरके वधक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके वधक जीव सरयातगुणें हैं । देवायुके वधक जीव असरयातगुणें हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके वधक जीव असरयातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । मनुष्यगति, औदारिक शरीरके वधक जीव निरुपाधिक हैं । अप्रत्यारयानावरण ८के वधक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्यारयानावरण ४ के वधक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतिके वधक जीव समानरूपसे विशेषाधिक हैं ।

§५९९ उपशमसम्यक्त्वमे—आहारक शरीरके वधक जीव सर्वस्तोक हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके वधक जीव असरयातगुणें हैं । आगेकी प्रकृतियोंमें अवधिज्ञानका भग है ।

§५०० सासादनसम्यक्त्वम—मनुष्य युने वधक जीव सर्वस्तोक है । देवायुके वधक जीव असख्यातगुणें हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके वधक जीव असरयातगुणें हैं । तिर्यचायुके वधक जीव असरयातगुणें हैं । मनुष्यगतिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । पुरुषवेदके वधक जीव सरयातगुणें हैं । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्रीवेदके वधक जीव सरयातगुणें हैं । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । अथवा असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके वधक जीव सरयातगुणें हैं । स्त्रीवेदके वधक जीव निरुपाधिक हैं । तिर्यचगतिके वधक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोनके वधक जीव



## [ अद्धा-अप्पा-बहुगपरूवणा ]

§५०४. अद्धा-अप्पा-बहुग दुविहं । सत्थाण-अद्धा-अप्पा-बहुग चेय, परत्थाण-अद्धा-अप्पा-बहुग चेय । सत्थाण अद्धा-अप्पा-बहुग पगदं । दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य ।

§५०५ तत्थ ओघेण-एत्तो परियत्तमाणियाण अद्धाण जहण्णुक्कस्सपदेण एककदो  
५ काट्ठण चोदसण्ण जीनसमासाण ओधियअप्पा-बहुग वत्तइस्सामो ।

§५०६. चोदससण्ण जीनसमासाण—सादासाद दोण्ण पगदीण जहण्णियाओ वध-गद्धाओ सरिसाओ धीनाओ । सुहुम-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कम्मिया बंधगद्धा सस्वेज्जगुणा । असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा सखेज्जगुणा । वादर-एहदिय-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा सखेज्जगुणा । असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा

## [ अद्धा अल्प बहुत्व ]

§५०४ अद्धा-अल्पबहुत्वका अर्थ है कालसम्बन्धी हीनाधिकपना । यहाँ स्वस्थान-अद्धा-अल्प-बहुत्व तथा परस्थान अद्धा-अल्प-बहुत्व से अद्धा अल्प-बहुत्व दो प्रकारका है । स्वस्थान-अद्धा-अल्प बहुत्व प्रकृत है । उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारसे निर्देश करते हैं ।

§५०५ ओघसे यहाँसे आगे चौदह जीवसमासोंमें ओघसम्बन्धी अल्प-बहुत्वका परिवर्तमान प्रकृतियोंके कालको जघन्य और उत्कृष्ट पदके द्वारा एक एक करके, वर्णन करेंगे ।

§५०६ चौदह जीन समासोंमें साता असाता इन दोनों प्रकृतियोंके बंधकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है ।

[ विशेष-सूत्र एकन्द्रिय, वादर एकन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असङ्गी पचेन्द्रिय, सङ्गी पचेन्द्रिय, इन सातोंमेंसे प्रत्येकके पर्याप्त अपर्याप्त भेद करने पर चौदह जीव समास होते हैं । यहाँ वेदनीय २, वेद ३, हास्यादि ४, गति ४, जाति ५, शरीर २, सस्थान ६, सहनन ६, आनुपूर्वी ८, विहायोगति, व्रसस्थावरादि ४, स्थिरादि ६ युगल, अंगोपाग २, गोत्र २ ये परिवर्तमान प्रकृतिया जघन्य उत्कृष्ट कालके भेदसे चौदह जीनसमासोंमें वर्णित की गई हैं । ]

सूत्र-अपर्याप्तके साताके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । वादर एकन्द्रिय अपर्याप्तके साताके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयात-

(१) अतिय चादस जीनसमासा । के ते ? एहदिया दुविहा वादरा सुहुमा । वादरा दुविहा, पज्जत्ता, थनजत्ता । सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । चीरन्दिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । तीरन्दिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । चउरिन्दिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । पच्चिन्दिया दुविहा सण्णिणा असण्णिणा । सण्णियो दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । असण्णिणा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता इदि । ऐदे चोदस जीनसमासा वदीदनीवसमासा वि अतिय । -ध० टी० भा० २ पृ० ४१५, ४१६ ।

सखे जगुणा । सुहृम-पञ्जचस्त सादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा सखेज्जगुणा । असादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा संखेज्जगुणा । वादर एइदिय-पञ्जचस्म सो चैव मंगो । वेडदिय-अपञ्जचस्त सादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा संखेज्जगुणा । तेडदिय-अपञ्जचस्म सादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा विसेसाहिया । चदुरिदिय-अपञ्जचस्त सादस्त उक्कस्मिया बंधगद्वा विसेसाहिया । वेडदिय-अपञ्जचस्त असादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा संखेज्जगुणा । तेडदिय अपञ्जचस्त असादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा विसेसाहिया । चदुरिदिय-अपञ्जचस्म असादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा विसेसाहिया । एव पञ्जचगेसु वि सादासादारणं णेद्व्व । पचिदिय-असण्णि-अपञ्जचस्त सादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा संखेज्जगुणा । असादस्त उक्कस्मिया बंधगद्वा सखेज्जगुणा । पचिदिय-सण्णि-अपञ्जचस्त सादस्त उक्कस्मिया बंधगद्वा सखेज्जगुणा । असादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा सखेज्जगुणा । पचिदिय-सण्णिस्त पञ्जचस्त सादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा संखेज्जगुणा । असादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा संखेज्जगुणा । पचिदिय-सण्णिस्त पञ्जचस्त सादस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा संखेज्जगुणा । असादस्त उक्कस्मिया बंधगद्वा संखेज्जगुणा ।

§५०७. चोइसण्ण जीवसमासाण तिण्णि वेदाणं नहणिया बंधगद्वा सरिसा थोवा । सुहृम-अपञ्जचस्त पुरिसवेदस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा संखेज्जगुणा । इत्थिवेदस्त उक्कस्सिया बंधगद्वा संखेज्जगुणा । णुत्तकवेदस्त उक्कस्मिया बंधगद्वा संखेज्जगुणा । गुणा है । असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । सूह्रम पर्याप्तकमे साताके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकमे सूह्रम अपर्याप्तकके समान भग है ।

दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमे—साताके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमे—साताके बंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । चौइन्द्रिय अपर्याप्तकमे साताके बंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमे, असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमे, असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । चौइन्द्रिय अपर्याप्तकमे, असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रियोंके पर्याप्तकमे, साता, असाताके बंधकका काल पूर्ववत् जानना चाहिए ।

पचन्द्रिय-असही अपर्याप्तकमे—साताके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । पचेन्द्रिय-सही-अपर्याप्तकमे—साताके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । पचेन्द्रिय-सही पर्याप्तकमे—साताके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । असाताके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है ।

§५०७ चौह जीव-समामोमे—तीन वेदोंके बंधकोंका जघन्य बंधकाल सख्यातगुणा है । सूह्रम अपर्याप्तकमे—पुरुषवेदके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । नपुंसकवेदके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है ।

वादर-अपज्जत्तस्स तं चैव भाणिदव्व । सुहुम वादर-पज्जत्ताण च त चैव भगो । वेहंदिय  
 अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा सखे० गुणा । तेइदिय-अपज्जत्तस्स  
 पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया । चदुरिंदिय अपज्जत्तस्स पुरिसवेदस्स  
 उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा० । वेइदिय-अपज्जत्तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा  
 सखेज्जगुणा । तेइदिय-अपज्जत्तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा० ।  
 चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा० । वेइदिय-अपज्जत्तस्स  
 णवुसकवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा सखे० गुणा । तेइदिय अपज्जत्तस्स णवुसकवेदस्स  
 उक्क० बंधगद्धा विसेसा० । चदुरिंदिय अपज्जत्तस्स णवुसकवेदस्स उक्क० बंधगद्धा विसे-  
 सा० । एव पज्जत्तगेषु णि तिण्ण वेदाण णेदव्व । पचिदिय-असण्णि-अपज्जत्तस्स पुरिस-  
 वेदस्स उक्क० बंधगद्धा सखेज्जगुणा । इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा सखे० गुणा ।  
 णवुसकवेदस्स उक्क० बंधगद्धा सखेज्जगुणा । पचिदिय-सण्णि-अपज्जत्तस्स त चैव भाणि  
 दव्व । पचिदिय-असण्णि-पज्जत्तस्स एसेव भगो । पचिदिय-सण्णि-पज्जत्तस्स त चैव भगो ।  
 §५०८. हस्स रदि-अरदि-सोगाणं सादासाद-भगो ।

§५०९. चदुण्ण गदीण बंधगद्धाओ जहण्णियाओ सरिसाओ थोमाओ ।  
 सुहुम-अपज्जत्त-मणुसगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा सखेज्जगुणा । तिरिक्खगदि उक्क-  
 स्सिया बंधगद्धा सखेज्जगुणा । वादर वेदणीयभगो । एव यान सण्णि-असण्णि-

पचैन्द्रियम—उपरोक्त ही भग है । सूक्ष्म पर्याप्तक तथा वादर पर्याप्तकम—यही भग जानना चाहिए ।  
 दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमे—पुरुषवेदके बंधकका उत्कृष्टकाल सरयातगुणा है । त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमे—  
 पुरुषवेदके बंधकका उत्कृष्ट काल विरोधाधिक है । चौइन्द्रिय अपर्याप्तकमे—पुरुषवेदके बंधकका  
 उत्कृष्टकाल विरोधाधिक है । दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमे—स्त्रीवेदके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा  
 है । त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमे स्त्रीवेदके बंधकका उत्कृष्टकाल विरोधाधिक है । चौइन्द्रिय अपर्याप्तकमे—  
 स्त्रीवेदके बंधकका उत्कृष्ट काल विरोधाधिक है । दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमे—नपुंसकवेदके बंधकका  
 उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमे—नपुंसकवेदके बंधकका उत्कृष्टकाल विरोधाधिक  
 है । इसी प्रकार दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय पर्याप्तकमे तीन वेदोंका काल जानना चाहिए ।

पचैन्द्रिय-असही-अपर्याप्तकमे—पुरुषवेदके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । स्त्री  
 वेदके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । नपुंसकवेदके बंधकका उत्कृष्टकाल सरयातगुणा  
 है । पचैन्द्रिय-सही अपर्याप्तकमे—पूर्वोक्त भग जानना चाहिए । पचैन्द्रिय-असही पर्याप्तकमे भी  
 ऐसा ही जानना चाहिए । पचैन्द्रिय-सही पर्याप्तकमे भी पूर्वोक्त भग जानना चाहिए ।

§५०८ चौदह जीव-समार्थोम—हास्य-रति, अरति-शोकके बंधकोंका उत्कृष्ट तथा जघन्यकाल  
 सता तथा असाता वेदनीयने समान जानना चाहिए ।

§५०९ चौदह जीव-समार्थोम—चारों गतिने प्रथमोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक हैं ।  
 सूक्ष्म अपर्याप्तकमे—मनुष्यगतिके बंधकका उत्कृष्टकाल मर्यातगुणा है । तिर्यचगतिके बंधकका  
 उत्कृष्टकाल सरयातगुणा है । वादर-अपर्याप्तकमे—वेदनीयने समान भग है । इसी प्रकार सही,

अपञ्जत्तग ति वेदणीयभगो । पंचिदिय-असण्णि-अपञ्जत्तस्स देवगदि-उक्कस्सिया  
 बंधगद्धा सखेज्जगुणा । मणुसगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा सखेज्जगुणा । तिरिक्खगदि-  
 उक्कस्सिया ऋधगद्धा सखेज्जगुणा । णिरयगदि-उक्कस्सिया ऋधगद्धा सखेज्ज-  
 गुणा । एव पचिदिय-सण्णि पञ्जत्तस्स० । पचण्ण जादीण जहण्णियाओ बंधगद्धाओ  
 सरिसाओ थोमाओ । सुहुम-अपञ्जत्तस्म पचिदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा ५  
 संखेज्जगुणा । चदुरिदियस्स उक्कस्मिया बंधगद्धा सखेज्जगुणा । तेइदियस्स उक्कस्मिया  
 बंधगद्धा सखेज्जगुणा । वेइदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा सखेज्जगुणा । एइदियस्स  
 उक्कस्सिया बंधगद्धा सखेज्जगुणा । एव वादर-अपञ्जत्ताणं । सुहुम-चादर-एइदिय-  
 पञ्जत्ताण च एवं चेन भगो । वेइदिय-अपञ्जत्तस्म पचिदियस्म उक्कस्सिया बंधगद्धा  
 सखेज्जगुणा । तेइदियस्म-अपञ्जत्तस्स उक्कस्मिया बंधगद्धा विसेसाहिया । चदुरिदिय- १०  
 अपञ्जत्तस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा० । एव सेसाण जादीण । एवं पञ्जत्ताण  
 च णेद्व्व । पचिदिय-सण्णि-असण्णि-अपञ्जत्ता सुहुम-अपञ्जत्तभगो । पचिदिय-असण्णि-  
 पञ्जत्तस्स—चदुरि० उक्कस्सिया बंधगद्धा सखेज्जगुणा । तेइदियस्स उक्कस्सिया  
 बंधगद्धा सखेज्जगुणा । वेइदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा सखेज्जगुणा । एइदियस्स

असही अपर्याप्तक पर्यन्त वेदनीयके समान भग जानना चाहिए । पचेन्द्रिय-असही अपर्याप्तकमे—  
 द्धगतिके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । मनुष्यगतिके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा  
 है । तिर्यंचगतिके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । नरकगतिके बंधकका उत्कृष्ट काल  
 सरयातगुणा है ।

पचेन्द्रिय-सही पर्याप्तकमे—इसी प्रकार जानना चाहिए ।

पचजातियोंके बंधकोंका जघन्य काल समानरूपसे स्तोक है । सूक्ष्म-अपर्याप्तकमे—  
 पचेन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । चौइन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल  
 सख्यातगुणा है । त्रीन्द्रियके बंधकका उत्कृष्टकाल सरयातगुणा है । दोइन्द्रियके बंधकका  
 उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । एकेन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । वादर  
 अपर्याप्तकमे इसी प्रकार भग है । सूक्ष्म-वादर-एकेन्द्रिय पर्याप्तकमे भी इसी प्रकार जानना  
 चाहिए ।

दोइन्द्रिय अपर्याप्तकमे—पचेन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । त्रीन्द्रिय  
 अपर्याप्तकमे—पचेन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । चौइन्द्रिय-अपर्याप्तकमे—  
 पचेन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । चौइन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, दोइन्द्रिय  
 जाति, एकेन्द्रिय जातिके बंधकोंका काल इसी प्रकार जानना चाहिए । इसी प्रकारका वर्णन  
 दोइन्द्रिय पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय-पर्याप्तक, चौइन्द्रिय पर्याप्तकमे जानना चाहिए । पचेन्द्रिय सही-असही-  
 अपर्याप्तकमे सूक्ष्म अपर्याप्तकके समान भग जानना चाहिए ।

पचेन्द्रिय-असही पर्याप्तकमे—चौइन्द्रियके बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । त्रीन्द्रिय-  
 के बंधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । दोइन्द्रिय जातिके बंधकका उत्कृष्ट काल सरयात-



उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्जगुणा । पचिदियस्स उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्जगुणा ।  
 एव सण्णियज्जत्ता । दोण्ण मरीरण जहण्णिगाओ बधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ ।  
 सुहुमअपज्जत्तम्म ओरालियसरीरस्स उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्जगुणा । एवं यार  
 पचिदियअसण्णिय सण्णिय—[अ] पज्जत्तगत्ति । तेसिं चैव पज्जत्तेसु ओरालियसरीरस्स  
 ५ उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्जगुणा । वेउण्णियसरीरस्स उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्ज-  
 गुणा । एव पचिदियसण्णिय पज्जत्तयस्स० । छस्सठाण छस्सघडण चट्ठुआणुपृत्विदो-  
 विहायगदि तराधावरादि० ४ थिरादिछयुगल सादासादाणं भगो यार पचिदिय  
 असण्णियसण्णिय पज्जत्तात्ति । णारि पचिदियअसण्णियपज्जत्तयस्स थावर० उक्कस्सिया  
 बधगद्धा सखेज्जगुणा । तसस्स उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्जगुणा । एव पचिदिय-  
 १० सण्णियपज्जत्तयस्स । एव वादर सुहुमअपज्जत्तापज्जत्तयत्तेय साधारण कादव्व । दोअगो-  
 वगाण सरीर भगो । दोभोद वेदणीयभगो ।

§५१० आदेसेण—णेरइएसु दोण्ण जीवसमासाण दोण्ण पगदीण जहण्णियाओ  
 बधगद्धाओ सरिसाओ थोवा । अपज्जत्तयस्स सादस्स उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्ज-

गुणा है । एवेन्द्रिय जातिके बधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । पचेन्द्रिय जातिके बधकका  
 उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । पचेन्द्रियसङ्गी पर्याप्तकमे—इसी प्रकार भग है ।

दोनों शरीरों—वैक्रियिक औदारिक शरीरके बधकोंका जघय काल समान रूपसे स्तोक  
 है । सूक्ष्मअपर्याप्तकमे—औदारिक शरीरके बधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । पचेन्द्रिय  
 असङ्गी सङ्गी अपर्याप्तक पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । इनके ही पर्याप्तकोंमे अर्थात् पचेन्द्रिय  
 असङ्गीसङ्गी पर्याप्तक पर्यन्त औदारिक शरीरके बधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । वैक्रियिक  
 शरीरके बधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । पचेन्द्रियसङ्गीपर्याप्तकोंमे भी इसी प्रकार  
 जानना चाहिए ।

६ सख्यान, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वी, ० विहायोगति, त्रस, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६  
 युगलोंके विषयमे पचेन्द्रिय असङ्गी सङ्गी पर्याप्तक पर्यन्त साता, असाताके समान जानना चाहिए ।  
 निगेष, पचेन्द्रियअसङ्गी पर्याप्तकमे स्थावर प्रकृतिके बधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है ।  
 त्रसके बधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । इसी प्रकार पचेन्द्रियसङ्गी पर्याप्तकमे भी जानना  
 चाहिए । वादर—सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त प्रत्येकसाधारणमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । अर्थात्  
 निस प्रकार स्थावर तथा त्रसके बधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा कहा है, उसी प्रकार यहा भी  
 वादर, सूक्ष्मादिके बधकोंमे जानना चाहिए । दो अगोपाग अर्थात् औदारिक वैक्रियिक अगोपाग  
 के बधकोंमे शरीरके समान भग जानना चाहिए अर्थात् औदारिक, वैक्रियिक शरीरके बधकोंमे  
 समान इनके भग हैं । नीच, उच्च गोत्रके बधकोंमे वेदनीयके सदृश भग है ।

§५१० आदेशसे—नारकियोंमे—पर्याप्तक, अपर्याप्तक रूप दो जीव समासोंमे साता असाता इन  
 दो प्रकृतियोंका जघय बधकाल समान रूपसे स्तोक है । अपर्याप्तक नारकीमे—साताके बधकका

गुणा । असादस्त उक्कस्सिया वधगद्धा सरसेज्जगुणा । पज्जत्तस्त सादस्त उक्कस्सिया वधगद्धा सरसेज्जगुणा । असादस्त उक्कस्सिया वधगद्धा सरसेज्जगुणा । एव तिण्णि-वेदाणंहस्स-रदि-अरदि-सोगाण दोगदि-छस्मंठाण छस्संघडण दो-आणुपुन्वि-दोविहायगदि-धिरादिछयुगलं दोगोदाण च सादासादभंगो । एव याव छट्ठित्ति । सत्तमाए एव चेव । णवरि दोगदि-दोआणुपुन्वि-दोगोदाण च णत्थि अप्पावहुगं । ५

५५११. तिरिक्क[क्ख]गदि-णवुंसगवेद-मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-असजद-अचक्खु-दसाणि-भगसिद्धिय-अब्भवसिद्धिय-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-आहारग त्ति ओघभंगो । णवरि असण्णीसु वारस जीवसमासा त्ति भाणिदव्व ।

५५१२. पंचिंदिय-तिरिक्खेसु-चदुणं जीवसमासाण कादव्वं । पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तजोणिणीसु दोजीवसमासाण भाणिदव्व सण्णि-असण्णित्ति । पंचिंदिय- १० तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु दोजीवसमासा सण्णि-असण्णित्ति ।

५५१३ मणुसेसु-दो जीवसमासा । पज्जत्तजोणिणीसु एकं चेव । सादासादाणं

उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । असाताके वधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । पर्याप्तक नारकी मे-साताके वधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । असाताके वधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, २ गति ( मनुष्य तिर्यंचगति ), ६ सत्थान, ६ सहजन, २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रोंके वधकोंमे साता, असाता वेदनीयके समान भग जानना चाहिए । यह क्रम प्रथम पृथ्वीसे छठवीं पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए । सातवीं पृथ्वीमे—इसी प्रकार भग है । विशेष, दो गति, २ आनुपूर्वी, २ गोत्रोंके वधकोंमे अल्पबहुत्व नहीं है ।

[ विशेष—सातवीं पृथ्वीमे मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थानमे ही तिर्यंचगति तिर्यंचानुपूर्वी तथा नीचगोत्रका वध होता है । तृतीय तथा चतुर्थ गुणस्थानमे ही मनुष्यगति मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्च-गोत्रका वध होता है । अत इनके निमित्तसे सप्तम पृथ्वीमे अल्पबहुत्वपना नहीं पाया जाता है । ]

५५११ तिर्यंचगति, नपुसकवेद, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयमी, अचक्षुदर्शनी, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, असही, आहारक पर्यन्त ओघके समान भग जानना चाहिए । विशेष, असही जीवोंमे धारह जीवसमास कहना चाहिए ।

[ विशेष—इनमे सही पर्याप्तक तथा सही अपर्याप्तक ये दो जीवसमास नहीं होते हैं । ]

५५१२ पचेन्द्रिय-तिर्यंचोमे—सही, असही तथा इन दोनोंके पर्याप्तक, अपर्याप्तक भेदरूप चार जीवसमास हैं ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक तथा पचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिमतियोंमे—सही तथा असही ये दो जीवसमास कहना चाहिए । पचेन्द्रिय तिर्यंच-अपर्याप्तकोंमे—सही तथा असही ये दो जीव समास हैं ।

५५१३ मनुष्योंमे—सही पर्याप्तक तथा सही अपर्याप्तक ये दो जीव समास हैं ।

[ विशेष—मनुष्योंमे असहीभेद नहीं होता । उच्चपर्याप्तक मनुष्य भी सही ही होते हैं । ]

उक्कस्मिया बधगद्धा सखेज्जगुणा । पचिदियस्स उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्जगुणा ।  
 एव सण्णि-यज्जत्ता । दोण्ण सरीराण जहण्णिगाओ बधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ ।  
 सुहुम-अपज्जत्तस्स ओरालियसरीरस्स उक्कस्सिया बधगद्धा संखेज्जगुणा । एवं याव  
 पचिदिय-असण्णि सण्णि-[अ] पज्जत्तगत्ति । तेमि चेव पज्जत्तेसु ओरालियसरीरस्स  
 उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्जगुणा । वेउच्चियसरीरस्स उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्ज-  
 गुणा । एव पचिदिय-सण्णि पज्जत्तयस्स० । छस्सठाण छस्सघडण चदु-आणुपुच्चि-दो-  
 विहायगदि-त्तसधानरादि० ४ थिरादिछयुगल सादासादाण भगो याव पचिदिय  
 असण्णि-मण्णि पज्जत्तात्ति । णवरि पचिदिय-असण्णि-पज्जत्तस्स थावर० उक्कस्सिया  
 बधगद्धा सखेज्जगुणा । तस्स उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्जगुणा । एव पचिदिय-  
 सण्णि-यज्जत्तस्स । एव धादर सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय साधारण कादव्व । दो-अगो-  
 वगाण सरीर-भगो । दो-गोद वेदणीय-भगो ।

§५१० आदेशेण-णेरइएसु दोण्ण जीवसनासाण दोण्ण पगदीण जहण्णियाओ  
 बधगद्धाओ सरिसाओ थोवा । अपज्जत्तयस्स सादस्स उक्कस्सिया बधगद्धा सखेज्ज-

गुणा है । पचेन्द्रिय जातिने बधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । पचेन्द्रिय जातिके बधकका  
 उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । पचेन्द्रिय-सक्षी-पर्याप्तकमे—इसी प्रकार भग है ।

दोनों शरीरों—वैज्ञानिक औदारिक शरीरके बधकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक  
 है । सूक्ष्म अपर्याप्तकमे—औदारिक शरीरके बधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । पचेन्द्रिय  
 असक्षी-सक्षी अपर्याप्तक पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । इनके ही पर्याप्तकोंमें अर्थात् पचेन्द्रिय  
 असक्षी-सक्षी पर्याप्तक पर्यन्त औदारिक शरीरके बधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । वैज्ञानिक  
 शरीरके बधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । पचेन्द्रिय सक्षी-पर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार  
 जानना चाहिए ।

६ सख्यान, ६ सहनन, ४ आनुपूर्वा, २ विहायोगति, २स, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६  
 युगलोंके निपयमे पचेन्द्रिय असक्षी सक्षी पर्याप्तक पर्यन्त माता, असाताके समान जानना चाहिए ।  
 निगेष, पचेन्द्रिय-असक्षी-पर्याप्तकमे स्थावर प्रकृतिके बधकका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है ।  
 प्रसके बधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय सक्षी पर्याप्तकमे भी जानना  
 चाहिए । धादर-सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त प्रत्येक-साधारणमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । अर्थात्  
 निच प्रकार स्थावर तथा प्रसके बधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा कहा है, उसी प्रकार यहा भी  
 धादर, सूक्ष्मादिके बधकोंमें जानना चाहिए । दो अगोपाग अर्थात् औदारिक वैज्ञानिक अगोपाग  
 के बधकोंमें शरीरके समान भग जानना चाहिए अर्थात् औदारिक, वैज्ञानिक शरीरके बधकोंके  
 समान इनके भग है । नीच, उच्च गोत्रके बधकोंमें वेदनीयके मद्दश भग है ।

§५१० आदेशे—नारकियोंमें-पर्याप्तक, अपर्याप्तक रूप दो जीव समाप्तमें साता असाता इन  
 दो प्रकृतियोंका जघन्य बधकाल समान रूपसे स्तोक है । अपर्याप्तक नारकीमें—साताके बधकका

चाउद्गाइय णिगोदाण । णररि तेउ वाऊण मणुसग्गदितियं णत्थि । वणप्फदि-काइय-छुण्णं जीवसमासाण । वादर-वणप्फदि-पत्तेय० दोण्ण जीवसमासाण । विकलिदि० दोण्ण जीवसमासाण । पज्जत्तापज्जत्ताण एवकं चैव जीवसमासा । पंचिदिएसु च्चदुण्णं जीवसमामाणं । पज्जत्ते दोण्णं जीवसमासाण । अपज्जत्ते दोण्ण जीवसमामाण । तसेसु-दस-जीवसमासाण पज्जत्तापज्जत्ताण पच जीवसमासाण ।

५

१५१६. पचण० पंचवचि० वेउच्चिय० वेउच्चियमिस्सका [ आहार ] आहारमिस्सका० कम्मइग० अगग्ग० कोघादि० ४ सुहुमसापराय सासाणसम्मोडट्टि-सम्मामिच्छाहट्टि-अणाहारगत्ति णत्थि अप्पावहुमं ।

१५१७ काजोगीसु-वेउच्चियच्छक्क वज्ज सेसाण ओघमंगो कादब्बो । एवं ओरालिय-काजोगि-ओरालियमिस्स-काजोगीसु । णररि सत्तण्ण जीवसमासाण ति भाणिद्व्व ।

१०

१५१८. इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु-चदुण्णं जीवसमासात्ति भाणिद्व्वं ।

चाहिए । विशेष, तेजकायिक, वायुकायिकमे मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी तथा मनुष्यायुका उय नही होता है । धनस्पतिकायिकमे साधारण तथा प्रत्येक ये दो भेद है । इनमेंसे प्रत्येकके पर्याप्त तथा अपर्याप्त ये दो भेद हैं । साधारणके वादर तथा सूक्ष्मये दो भेद हैं । वादरके पर्याप्त तथा अपर्याप्त और सूक्ष्मके भी पर्याप्त तथा अपर्याप्त इस प्रकार धनस्पतिकायिकमे ६ जीव-समास हैं । वादर-धनस्पति प्रत्येकके पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव-समास हैं । विकलेन्द्रियके पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव-समास हैं । इनके पर्याप्तकों तथा अपर्याप्तकोंमें एक एक जीव-समास हैं । पचेन्द्रियोंमें चार जीव-समास हैं । पर्याप्तमें मही और असहीमे दो जीव-समास है । अपर्याप्तकोंमें भी सही और असही ये दो जीव-समास हैं ।

त्रसोंमें—दम जीव समास हैं, पर्याप्तकोंमे पाच अर्थात् दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असही पचेन्द्रिय, सही पचेन्द्रिय ये पाच हैं तथा अपर्याप्तकोंमें भी पाच जीव समास हैं । इस प्रकार दोनों मिलकर दस जीव समास होते हैं ।

१५१६ ५ मनोयोगी, ५ वचनयोगी, वैज्ञानिक, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, [ आहारक ] आहारकमिश्रकाययोगी, कामाणकाययोगी, अपगतवेद, क्रोधादि ४ कपाय, सूक्ष्ममापराय, सासाण-सम्यन्त्वी, सम्यग्मि-व्याट्टि, अनाहारकपर्यंत अरूपबहुतरु नही है ।

१५१७ काययोगियोंमें—वैक्रियिकपटक्को छोड़कर शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भग करना चाहिए । औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगीमें—इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यदा सात जीव-समास करना चाहिए । अर्थात् पर्याप्तकोंके सूक्ष्म-वादर-एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असही पचेन्द्रिय, सही पचेन्द्रिय ये सात भेद हैं तथा अपर्याप्तकोंके भी ये सात जीव-समास हैं ।

१५१८ स्त्रीवेदियां, पुरुषवेदियोंमें—पर्याप्त, अपर्याप्त भेद युक्त सही तथा असही पचेन्द्रिय ये चार जीव समास कहना चाहिए ।

जहणिया उधगद्धा सरिसा थोरा । सादस्त उक्कस्सिया वधगद्धा संखेज्जगुणा ।  
अमादस्त उक्कस्सिया उधगद्धा सखेज्जगुणा । एदेण कमेण भाणिव्व । एव मणुस-  
अपज्जत्ता ।

५५१४. देवाण-णिरयमगो यात्र सहस्तरत्ति । णवरि भवणवासिय यात्र ईसाण  
५ त्ति । दोण्ण जादीण तसथावरादीणं दाण्ण जीवममासाण जहणिया वधगद्धा सरिसा  
थोरा । अपज्जत्त पचिदिय-तसस्त उक्कस्सिया वधगद्धा संखेज्जगुणा । एइदिय  
थावरस्त उक्कस्सिया वधगद्धा सखेज्जगुणा । त चेव पज्जत्ते० । आणद यात्र उवरिम-  
गेरजात्ति गोरह्यमगो । णवरि मणुसगदि० २ धुव कादव्व । अणुहिसादि यात्र  
सवहत्ति-दोण्ण जीवममासाण दोवेदणीय-हस्म-रदि-अरदि-सोग-धिरादि-तिण्णिपुगल  
१० णिरयमगो । सेसाण णत्थि अप्पाउहुगं ।

५५१५. एइदिएसु-चदुण्ण जीवसमामाण ओघमगो । एव वादर० दोण्ण० [ण्ण]  
जीवसमामाण । सुहुम० दोण्ण जीवसमामाण, वादर-पज्जत्त-अपज्जत्त सुहुम-पज्जत्ता-  
पज्जत्तगेसु पत्तेगं पत्तेग एग जीवहाण । एउ पुढाणिकाइय-आउकाइय-त्तेउकाइय-

मनुष्य पर्याप्तक तथा मनुष्यनीमे—एक पर्याप्तक रूप ही जीवसमास है । साता अमाता  
के वधकोंका लघन्य काल समान रूपसे स्तोक है । साताके वधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है ।  
असाताके वधकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । इस क्रमसे अन्य प्रकृतियोंके वधका क्रम जानना  
चाहिए ।

अपर्याप्तक मनुष्योंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए ।

५५१४ देवगतिमें—सहस्राण रजग पर्यन्त नारकियोंके समान भग है । विशेष, भवनत्रिक तथा  
सौघम ईशानमें त्रस-स्थावरदिके वधकोंका लघन्यकाल दोनों जीवममासोंमें समान रूपसे स्तोक  
है । अपर्याप्त-पचेन्द्रिय-त्रसका उत्कृष्ट वधकाल सख्यातगुणा है । एकेन्द्रिय-स्थावरका उत्कृष्ट  
वधकाल सख्यातगुणा है । पर्याप्त पचेन्द्रिय त्रस तथा पर्याप्त एकेन्द्रिय-स्थावरके वधकोंके विषयमें  
अपर्याप्तकोंके समान भग है । आनतसे उपरिम भ्रैवेयन पर्यन्त-नारकियोंके समान भग है । विशेष  
यह है, कि यहा मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्विका ध्रुव भग करना चाहिए । कारण वहा तिथच  
गतिद्विकका वध नहीं होता है । अनुदिशसे सर्गार्थसिद्धि पर्यन्त पर्याप्त अपर्याप्त रूप दोनों जीव  
समासोंमें—दो वेदनीय हास्य-रति, अरति शोक, ग्धिरादि तीन युगलके वधकोंका नरकके समान  
भग जानना चाहिए । जेप प्रकृतियोंमें अल्पबहुद्वय नहीं है ।

५५१५. एकेन्द्रियोंमें—सूक्ष्म, वादर तथा इनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक रूप चार जीव-समास  
होते हैं, उनमें ओघमत्त भग है । इसी प्रकार वादरमें पर्याप्त, अपर्याप्त रूप दो जीव समास  
हैं । सूक्ष्ममें भी पूर्वाक्त पर्याप्त, अपर्याप्तमें दो जीव समास हैं । वादर, पर्याप्त अपर्याप्त तथा  
सूक्ष्म पर्याप्त-अपर्याप्तमें प्रत्येक प्रत्येकका एक जीव समास है ।

[ विशेष-एकेन्द्रियमें वादर, सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त अपर्याप्त इस प्रकार चार पृथक्-पृथक्  
जीवसमास होते हैं । ]

शारीकायिक, अप्पायिक, तेजकायिक, धायाकायिक तथा निगोदियोंमें इसी प्रकार जानना



§५१९. विभगे वेउव्विय छक्क तिण्णिजादि-सुहुम अपज्जत्त-साधारणाणं णत्थि अप्पाबहुगं । सेसाण देवभगो ।

§५२०. आभि० सुद० ओधिणाणीसु—दोण्ण जीवसमासाण दोवेदणीय-चदु-णो कसाय-धिरादि-तिण्णि-युगलाण ओघ । सेसाण णत्थि अप्पाबहुग । एव ओधिदं० सम्मादिट्ठी-सइग-सम्मादिट्ठी वेदग-सम्मादिट्ठी उवसम सम्मादिट्ठी त्ति । मणपज्जव णाणि ओधिभगो । णररि एकरु जीवहाण ।

§५२१. एव सनद-सामाहय-छेदो-महावण परिहार-सज्जदासज्जद० । चक्खु-दसणी तिण्णि जीवसमासाणि ।

§५२२. तिण्णिलेस्सि० वेउव्वियछक्क पच्चजादि तसथावरादि ४ णत्थि अप्पाबहुग । सेसाण णिरय-भगो । तेउलेस्सि०-देवगदि० ४ वज्ज सेसाण देवोघमंगो । एव पम्माए । णवरि सहस्सार-भगो । सुक्काए-आणद-भगो ।

§५२३ सण्णिस्त दोण्ण जीवसमासाण ओघ ।  
एव सत्थाण अद्धा अप्पाबहुग समत्त । एव पत्तेणेण णीद ।

§५१९ विभगावधिमे—वैक्रियिकपट्क, तीन जाति, सूत्स, अपर्याप्तक-साधारणके वधकोंमें अल्पनहुत्व नहीं है । शेष प्रकृतियोंके विषयमे देवगतिके समान भग है ।

§५२० आभिनि-ओधिक श्रुत अत्रधिज्ञानियोंमे—पर्याप्तक, अपर्याप्तकरूप दो जीव समास हैं । इनमे दो वेदनीय, चार नोक्पाय, स्थिरादि तीन युगलके वधकोंमें ओघवन जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंमें अल्पनहुत्व नहीं है ।

अत्रधिदशन, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि—इसी प्रकार जानना चाहिए । मन पर्ययज्ञानीमें—अत्रधिज्ञानके समान भग है । विशेष, यहाँ सही पर्याप्तक रूप एक ही जीव-स्थान है ।

§५२१ सयमी, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, मयतासयतोम—मन पर्ययज्ञाके समान एक जीव-स्थान है । चक्षुदर्शनीमे—बौद्धिय पर्याप्तक तथा पचेन्द्रिय पर्याप्तक सही एव पचेन्द्रिय पयातक असक्षीमें तीन जीव-समास है ।

§५२२ कृष्ण-नील-कापोत-लक्ष्याओंमे—वैक्रियिकपट्क, ५ जाति, त्रस-स्थावरादि ४के वधकोंमें अल्पनहुत्व नहीं है । शेष प्रकृतियोंमें नरकगतिके समान भग है ।

ते-नो-अयामे—द्वगति ८ को टोडकर शेष प्रकृतियोंके विषयमे दवोंके ओघवत् भग है । पय-अयामे—इसी प्रकार भग है । विणेप यह है कि यहाँ सहचार स्वर्गके समान भग है । सुक्कले-अयामे—जानत स्वर्गके समान भग है ।

§५२३ मक्षीमे—पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव समास हैं । उनमें ओघवत् जानना चाहिए । इस प्रकार स्वस्थान अद्धा-अल्पनहुत्व समास हुआ । इस प्रकार प्रत्येक रूपसे वर्णन किया ।

## [ परत्थाण-अद्धा-अप्पावहुगपरूवणा ]

§५२४. एत्तो परत्थाण-अद्धा-अप्पावहुगेण पगद । एत्तो परियत्तमाणियाणं अद्धाण जहण्णुक्कस्सेण पदेण एक्कदो कादूण ओघियं परत्थाण-अद्धा-अप्पावहुगं वत्तइस्सामो ।

§५२५. आयुगवज्जाण सत्तारस पगदीण जहणियाओ वंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ । चदुणं आयुगाण जहणिया वंधगद्धा सरिसा सखेज्जगुणा । उक्क-  
स्तिया वंधगद्धा सखेज्जगुणा । देवगदिउक्कस्तिया वंधगद्धा सखेज्जगुणा ।  
उच्चागोदस्स उक्कस्तिया वंधगद्धा सखेज्जगुणा । मणुसग० उक्कस्तिया वंध-  
गद्धा सखे० गुणा । पुरिसवेदस्य उक्कस्तिया वंधगद्धा सखेज्जगुणा । इत्थि-  
वेदस्स उक्क० वंधगद्धा सखेज्जगुणा । सादावे० हस्सरदि-जसगित्तिस्स उक्कस्ति०  
वंधगद्धा सखे० गुणा । तिरिक्खगदि-उक्कस्ति० वंधगद्धा सखेज्जगुणा । णिरयग० १०  
उक्कस्ति० वंधगद्धा सखे० गुणा । अमाद-अरदि-सोग अज्जसगित्ति० उक्कस्ति०  
वंधगद्धा विसेसा० । णवुसगवेदस्स उक्कस्ति० वंधगद्धा विसेसा० । णीचागोदस्स  
उक्कस्तिया वंधगद्धा विसेसा० ।

## [ परस्थान-अद्धा-अल्पबहुत्व ]

§५२४ अत्र परस्थान अद्धा अल्पबहुत्व प्रकृत है । यद्वासे परिवर्तमान प्रकृतियोंके कालको जघन्य तथा उत्कृष्ट पद द्वारा पृथक्-पृथक् करके ओषसम्बन्धी परस्थान अद्धा-अल्पबहुत्व कहेंगे ।

[ विशेष—यहा परिवर्तमान प्रकृतियोंका परस्थानमे जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थानों द्वारा अल्प-बहुत्वका प्रतिपादन करते हैं । यहा ४ गति, ३ वेद, २ गोत्र, २ वेदनीय, ४ आयु, हास्यरतियुगल तथा यश कीर्तियुगल इन २१ प्रकृतियोंका ओष तथा आदेशसे जघन्य, उत्कृष्ट कालका वर्णन किया गया है । ]

§५२५ आयुको छोड़कर ( पूर्वोक्त ) सऽइ प्रकृतियोंके वधकोंका जघन्य काल समान रूपसे अल्प है । ४ आयुके वधकोंका जघन्य काल सप्तश रूपसे सरयातगुणा है । उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । देवगतिके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । उच्चगोत्रके वधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । मनुष्यगतिके वधकोंका उत्कृष्ट काल मग्यातगुणा है । पुरुषवेदके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । स्त्रीवेदके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयात-गुणा है । सातावेदनीय, हास्य, रति, यश कीतिके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । त्रिचंगविके वधकोंका उत्कृष्ट काल मख्यातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिने वधकोंका उत्कृष्ट काल विगोपाधिक है । नपुसकवेदने वधकोंका उत्कृष्ट काल विगोपाधिक है । नीच गोत्रके वधकोंका उत्कृष्ट काल विगोपाधिक है ।



अप्यावहुग । सेमाण देवभगो ।

§५२०. आभि० सुद० ओधिणाणीसु—दोण्ण जीवसमासाण दोवे कसाय-धिरादि तिण्णि-युगलाण ओघ । सेसाण णत्थि अप्यावहुग । सम्मादिट्ठी सहग-सम्मादिट्ठी वेदग-सम्मादिट्ठी उवसम सम्मादिट्ठी ति । णारि एकक जीवहाण ।

§५२१. एव सज्जद-सामाइय-छेदोवहावण परिहार-मज्जदासज्जद० । एव तिण्णि जीवसमासाणि ।

§५२२. तिण्णिलेस्सि० वेउव्वियछक्क पचजादि तसथावरादि । सेसाण णिरय-भगो । तेउलेस्सि०—देवगादि० ४ वज्ज सेसाण देव एव पम्माए । णवरि सहस्सार-भगो । सुक्काए-आणद-भगो ।

§५२३. सण्णिस्त दोण्ण जीवसमासाण ओघ । एव सत्थाण अद्धा अप्यावहुग समत्त । एव पत्तेगेण णीद ।

§५२४. विभगावधिम—वैक्रियिकपट्क, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्तक साधारणके वधुत्त्व नहीं है । जोप प्रकृतियोंके विषयमे देवगतिके समान भग हैं ।

§५२५. आभिनिनोधिक धृत अवधिज्ञानियामे—पर्याप्तक, अपर्याप्तकरूप दो जीव समास में दो वदनीय, चार नोकपाय, स्थिरादि तीन युगलके वधकोंमे ओघवत् जानना चाहिए ।

अवधिदशन, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि—इसी प्रकार जानना चाहिए । मन पर्ययज्ञानीमे—अवधिज्ञानके समान भग है । विशेष, यहाँ सही प्रकार रूप एक ही जीव-स्थान है ।

§५२६. सयमी, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सयतासयतोमे—मन पर्ययज्ञानके एक जीव-स्थान है । चक्षुदर्शनीमे—चौद्विद्रिय पर्याप्तक तथा पचेन्द्रिय पर्याप्तक सही एव त्रय पर्याप्तक असक्षीमे तीन जीव समास हैं ।

§५२७. कृष्ण-नील-त्रापोत-लेश्याओमे—वैक्रियिकपट्क, ५ जाति, त्रस-स्थावरादि ४के वधकोंमे त्रय पर्याप्तक है । शेष प्रकृतियोंमे नरकगति के समान भग हैं ।

§५२८. शोप-श्याम—द्वगति ८ को छोड़कर शोप प्रकृतियोंके विषयमे देवोंके ओघवत् भग है । शोप-श्याम—इसी प्रकार भग है । विशेष यह है कि यहाँ सहस्रार स्वर्गके समान भग है ।

§५२९. शोप-श्याम—आनव स्वर्गके समान भग है । शोप-श्याम—पर्याप्तक, अपर्याप्तक के दो जीव समास है । उनमे ओघवत् जानना चाहिए । इस प्रकार ररस्थान अद्धा-अल्पवत्त्व समाप्त हुआ । इस प्रकार प्रत्येक रूपसे वर्णन किया ।

गुणा । उक्कस्सिया वधगद्धा संखेज्जगुणा । पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया वंधगद्धा  
 संखेज्जगुणा । इत्थिवेदस्स उक्कस्सि० वंधगद्धा संखेज्जगुणा । साद-हस्स-रदि-जस०  
 उक्कस्सिया वंधगद्धा विसेसा० । णवुसगवेदस्स उक्कस्सि० वंधगद्धा संखेज्जगुणा । असाद-  
 अरदि-सोग-अज्जस० उक्कस्सिया वधगद्धा विसेसा० । पचिदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु-  
 आयुगवज्जाण पण्णारसण्ण पगदीण जहणिया वधगद्धा सरिसा थोवा । दोण्ण आयुगार्णं ५  
 जहणिया वंधगद्धा सरिसा संखेज्जगुणा । उक्कस्सि० वंधगद्धा सरिसा संखे०  
 गुणा । उच्चागोदस्स उक्कस्सि० वधगद्धा संखे० गुणा । मणुस० उक्कस्सि० वंधग०  
 संखे० गुणा । पुरिसवे० उक्कस्सि० वधग० संखे० गुणा । इत्थिवे० उक्कस्सि०  
 वंधग० संखे० गुणा । साद-हस्स-रदि-जस० उक्कस्सि० वंधगद्धा संखे० गुणा ।  
 असाद-अरदि-सोग० अज्ज० उक्कस्सि० वंधगद्धा संखे० गुणा । णवुसगवे० १०

दो गोरको घटानेसे ११ गेप रहती है । इसका कारण यह है कि सातवें नरकमें मनुष्यगति तथा  
 देवगोरका वध सम्यक्त्व मिथ्यात्व तथा अविरतसन्धक्त्व गुणस्थानमें ही होता है, मिथ्यात्व,  
 सासादनमें नहीं होता । प्रथम द्वितीय गुणस्थानमें ही तिर्यंचगति तथा नीचगोरका वध होता  
 है । इस प्रकार ये चार प्रकृतिया परिवर्तमान नहीं रहती हैं । कारण, प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका  
 अभाव हो जाता है । ]

तिर्यंचायुके वधकोंका जघन्य काल सख्यातगुणा है । उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है ।  
 पुरुषवेदके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । स्त्रीवेदके वधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है ।  
 साधा, हान्य, रति, यश कीर्तिके वधकोंका उत्कृष्ट काल त्रिशोपाधिक है । नपुंसकवेदके वधकोंका  
 उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । असादा, अरति, शोक, अयश कीर्तिके वधकोंका उत्कृष्ट काल  
 त्रिशोपाधिक है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच-अपर्याप्तकोंमें—आयुको छोड़कर पन्द्रह प्रकृतियोंने वधकोंका जघन्य-  
 काल समान रूपसे स्तोफ है ।

[ त्रिशोप-पंचेन्द्रिय तिर्यंच-लभ्यपर्याप्तकोंमें नरकगति तथा देवगतिका वध नहीं होता है ।  
 इस कारण आयुको छोड़कर शेष बची १७ प्रकृतियोंमेंसे दो घटानेपर पन्द्रह प्रकृतियां रह जाती हैं । ]

मनुष्य तिर्यंचायुके वधकोंका जघन्य काल समान रूपसे सरयातगुणा है । दोनों आयुओंके  
 वधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । उच्चगोरके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है ।  
 मनुष्यगतिके वधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । पुरुषवेदके वधकोंका उत्कृष्ट काल  
 सख्यातगुणा है । साधा, हान्य, रति, यश कीर्तिके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है ।  
 असादा, अरति, शोक, अयश कीर्तिके वधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । नपुंसकवेदके

(१) "मिराधिरिदे उर्यं मज्जदुगं तसो हवे वंधो ।

तिर्यां साठगाममा मणुसदुगुणं वंधो ॥ —गो० क० १०७ ।

(२) कामं व तिर्यंचद्विरिक्खण्णज्जोर्णिगुं प्रमेव ।

पुणिरिपाउं अणुणे वेयुद्धिपत्तकमिं पत्थि । —गो० क० १०९ ।

१५२६ एव ओषधगो तिरिक्सा-पचिदिय-तिरिक्ख, पचिदिय तिरिक्ख पज्जत्त, पचिदियतिरिक्ख-ओणिणीसु मणुस० ३ पंचिदिय तस० २ इत्थि० पुरिस० णवुस० मदिअण्णाणि० सुदअण्णाणि० अमज्जद० चवसुद० अचक्खुद० भग्मिद्धि० अब्भमिद्धि० मिच्छादि० सण्णि असाण्णि-आहारगत्ति ।

१५२७. आदेशेण—पौरुषसु-आयुगवज्जाणं पण्णारसण्ण पगदीण जहण्णियाओ वधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ । दोण्ण आयुगाण जहण्णिया वधगद्धा सरिसा सखे-ज्जगुणा । उक्क० वधगद्धा सखेज्जगुणा । उच्चागोदस्स उक्कस्सि० वधगद्धा सखेज्जगुणा । मणुमगदि-उक्कस्सि० वधगद्धा सखेज्जगुणा । पुरिसवेदस्स उक्कस्सि० वधगद्धा सखेज्जगुणा । इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया वधगद्धा सखेज्जगुणा । साद-हस्स-रदि-जम० उक्कस्सि० वधगद्धा विसेसा० । णवुसगवेदस्म उक्कस्सि० वधगद्धा सखे० गुणा । असाद-अरदि-सोग-अज्जस० उक्कस्सि० वधगद्धा विसेसा० । तिरिक्खगदि-उक्कस्सिया वधगद्धा विसेसा० । णीचागोदस्स उक्कस्सिया वधगद्धा विसेसा० । एव हसु पुढवीसु० । सत्तमाए आयुग-वज्जाण एक्कारमण्ण पगदीण जह-ण्णियाओ वधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ । तिरिक्खायु-जहण्णिया वधगद्धा सखेज्ज-

१५२६ तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तक, पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोम, मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनी, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्तक, ब्रह्म, ब्रह्म पर्याप्तक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयम, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, सक्षी, असक्षी, आहारक पर्यन्त श्रोत्रवत्त भग जानना चाहिए ।

१५२७ आदेशे, नारकियोम—आयुको छोड़कर १५ प्रकृतियों के वधकोंका समान रूपसे स्तोक है ।

[ विशेष—यद्वा पूर्वोक्त २१ प्रकृतियोंमसे चार आयु तथा नरकगति, देवगतिको घटानेसे शेष १५ प्रकृति रहती हैं । नरक गति, देवगतिका वध नारकियोंके नहीं पाया जाता है । (गो०क०गा० १०५) ] मनुष्यायु, तिर्यंचायुके वधकोंका जघन्य काल समान रूपसे सरयातगुणा है । उत्कृष्ट वधकोंका काल सख्यातगुणा है । उच्चगोत्रके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । मनुष्यगतिके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । पुरुषवेदके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । स्त्रीवेदके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिके वधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नपुंसकवेदके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके वधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । तिर्यंचगतिके वधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नीच गोत्रके वधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है ।

उम प्रकार छह शृष्टियोम जानना चाहिए ।

सातवीं शृष्टीमे—आयुको छोड़ कर ११ प्रकृतियोंके वधकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है ।

[ विशेष—नारकियोंकी सामान्यसे १५ प्रकृतिया हैं । उनमे से मनुष्यगति, तिर्यंचगति तथा

बधग० सखे० गुणा । साद-हस्सरदि-जस० उक्क० बंधग० सखे० गुणा । असाद-  
अरदि सो० अज्जस० उक्क० बधगद्धा संखे० गुणा ।

§५३० तेउ० वाउ०—आयुगवज्जाण एककारसण पगदीणं जहणिया  
बधगद्धा सरिसा थोवा । आयु० जहणिया बंधगद्धा सखे० गुणा । पुरिसवे०  
उक्क० बधगद्धा संखे० गुणा । इत्थिवे० उक्कस्सि० बंधग० सखे० गुणा । साद- ५  
हस्स-रदि-जस० उक्क० बधग० सखे० गुणा । असाद-अरदि-सो० अज्जस० उक्क०  
बंधगद्धा सखे० गुणा । णवुस० उक्क० बंधगद्धा विसेसा० ।

§५३१. पचक्षण० पचवचि० वेउच्चि० वेउच्चियमि० आहार० आहारमि०  
कम्मङ्ग० अवगदवे० कोधादि० ४ सासण० सम्मामि० त्ति साधेदूण णेदव्वं । णरि  
कोधा० ४ कसायाणं साधेदूण णेदव्व । कसायकालो थोवो । उक्क० बधगद्धा १०  
सखे० गुणा । ओरालि० ओरालिमि० पांचंदिय-तिरिक्क-अपज्जत्तभगो ।

§५३२. विभंगे-णिरयभंगो । आभि० सुद० ओधि० आयुगवज्जाण अट्टणपगदीण  
जहणिया बधगद्धा सरिसा थोवा । आयु० जह० बंधगद्धा सखे० गुणा । उक्क०

मनुष्यायुके बधकोंका जघन्य काल सख्यातगुणा है । उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । साता,  
हास्य, रति, यश कीर्तिके बधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयश-  
कीर्तिके बधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है ।

§५३० तेजकाय, धायुकायमें—आयुको छोड़कर ११ प्रकृतियोंके बधकोंका जघन्यकाल समान  
रूपसे स्तोक है ।

[ विशेष—अनुदिश सम्यन्धी पूर्वोक्त आठ प्रकृतियोंमें अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, यश-  
कीर्ति, अयश कीर्ति, साता, असातामें वेदत्रयको जोड़ने ११ प्रकृतिया होती हैं । यहा वेदत्रयका  
बध होनेसे परिवर्तमान प्रकृतियोंमें उनको परिगणित किया है । ]

तिर्यचायुके बधकोंका जघन्य काल सख्यातगुणा है । पुरुषवेदके बधकोंका उत्कृष्ट काल  
सख्यातगुणा है । स्त्रीवेदके बधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । साता, हास्य, रति, यश-  
कीर्तिके बधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके बधकोंका  
उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । नपुंसकवेदके बधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है ।

§५३१ ५ मनोयोगी, ५ घचनयोगी, वैक्रियिकक्राययोगी, वैक्रियिकमिश्रक्राययोगी, आहारक-  
आहारमिश्रयोगी, कार्माणुक्राययोगी, अपगतवेद, क्रोधादि चार कषाय, सासादनसम्यक्त्वी,  
सम्यक् मध्यात्वी पर्यन्त परिवर्तमान प्रकृतियोंके बधकोंका बधकाल निकालकर जान लेना चाहिए ।  
विशेष—क्रोधादि चार कषायोंमें विचार करके भग जानना चाहिए । कषायका काल स्तोक  
है । बधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है ।

औदारिक तथा औदारिकमिश्रक्राययोगके—पचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तके समान भग है ।

§५३२ विभगावधिमें—नरकगतिके समान भग है अर्थात् यहा १५ प्रकृतियाँ हैं । आभिनि-  
योधिक, धृत-अवधिज्ञानमें—आयुको छोड़कर शेष ८ प्रकृतियोंके बधकोंका जघन्य काल समान  
रूपसे स्तोक है ।

उक्कस्सि० बधग० विसेसा० । तिरिक्खग० उक्कस्सिया बधग० विसेसा० । णीचा-  
गोदस्स उक्कस्सिया बधगद्धा विसेसा० ।

§५२८, एव सच्च-अपज्जत्ताण तसाण सच्चएइदि० सच्चविगलिदि० सच्चपुढधि०  
आउ० वणप्फदिणिगोदाण च ।

§५५९, देवेसु-भवणवासिय याव ईसाण त्ति पचिदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्त-भगो ।  
सणक्कुमार याव सहस्मार त्ति णिरयभगो । आणद याव उवरिमगेउज्जात्ति-आयुग-  
वज्जाण तेरसण्ण पगदीण जहणिया बधगद्धा सरिसा थोवा । आयु० जहणिया  
बधगद्धा सरो० गुणा । उक्क० बधग० सरो० गुणा । उच्चागो० उक्क० बधग०  
सरो० गुणा । पुरिमवे० उक्क० बधग० सरो० गुणा । इत्थिवे० उक्क० बधग० सरो०  
गुणा । साद० हस्स रदि-जस० उक्कस्सिया बधगद्धा विसेसा० । णयुसवे० उक्क०  
बधग० सरो० गुणा । असाद-अरदि-सो० अज्ज० उक्क० बधग० विसेसा० । णीचागो०  
उक्क० बधग० सरो० गुणा । अणुदिस याव सच्चट्ठत्ति-आयुगवज्जाण अट्ठण्ण पगदीण  
जहणिया बधगद्धा सरिसा थोवा । आयुग० जह० बधगद्धा संखेज्जगुणा । उक्क०

वधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । तियचगतिके बधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नीच  
गोत्रके बधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है ।

§५२८ सर्वे अपर्याप्तक नसों, सर्वे एकेन्द्रिय, सर्वे विकलेन्द्रिय सर्वे पृथ्वीकाय-अप्पनाय तथा  
वनस्पतिनिगोत्रोंका इसी प्रकार भग जानना चाहिये ।

§५२९ द्रवोंम—भवनमासियोंसे ईशान पर्यन्त पचेन्द्रिय तियच अपर्याप्तकोंके समान भग है ।  
सनत्कुमारसे सहस्रारपयन्त नरकगतिके समान भग है । आनतसे अपरिम भ्रैवेयक पर्यन्त आयुको  
छोड़कर १३ प्रकृतियोंके बधकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है ।

[ विशेष—आनतादि स्वर्गोंम केवल मनुष्यगतिका बध होता है । अत परियर्तमान १७ प्रकृ-  
तियोंमेंसे गति चतुष्क घटा ली गई । इस प्रकार १३ प्रकृतियां शेष रहीं । ]

मनुष्यायुके बधकोंका जघन्य काल सरयातगुणा हैं । उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । उच्च-  
गोत्रके बधकोंका उत्कृष्टकाल सरयातगुणा है । पुरपवेदेके बधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है ।  
स्त्रीवेदेके बधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । साता, हास्य, रति, यश कीर्तिके बधकोंका  
उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नपुसकवेदेके बधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । असाता, अरति,  
शोक, अयश कीर्तिके बधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नीचगोत्रके बधकोंका उत्कृष्ट काल  
सरयातगुणा है ।

अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त आयुको छोड़कर आठ प्रकृतियोंके बधकोंका जघन्यकाल  
समान रूपसे स्तोक है ।

[ विशेष—अनुदिशादि स्वर्गोंम सम्यग्दृष्टि जीव ही होते हैं । उनके नीच गोत्र, स्त्रीवेद तथा  
नपुसकवेदका बध नहीं होता है । अत गोत्रद्वय तथा तीन वेदनिमित्तक परियर्तन न होनेसे  
आनतादिका १३ प्रकृतियोंमेंसे ५ प्रकृतिया घटानेपर ८ प्रकृतिया शेष रहती हैं । ]

वधग० सखे० गुणा । साद-हस्तरदि-जस० उक्क० वधग० सखे० गुणा । असाद-  
अदि सो० अज्जस० उक्क० वधगद्दा संखे० गुणा ।

१५३० तेउ० वाउ०—आयुगवज्जाणं एककारसणं पगदीण जहण्णिया  
वधगद्दा सरिसा थोवा । आयु० जहण्णिया वधगद्दा सखे० गुणा । पुरिसवे०  
उक्क० वधगद्दा संखे० गुणा । इत्थिवे० उक्कस्सि० वधग० सखे० गुणा । साद- ५  
हस्तरदि-जस० उक्क० वधग० सखे० गुणा । असाद-अरदि-सो० अज्जस० उक्क०  
वधगद्दा सखे० गुणा । णवुस० उक्क० वधगद्दा विसेसा० ।

१५३१. पचण० पचवचि० वेउच्चि० वेउच्चियमि० आहार० आहारमि०  
कम्मडग० अवगदवे० कोघादि० ४ सासण० सम्मामि० त्ति साधेदूण णेदच्च । णरि  
कोघा० ४ कसायाण साधेदूण णेदच्च । कसायकालो थोवो । उक्क० वधगद्दा १०  
सखे० गुणा । ओरालि० ओरालिमि० पांचंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो ।

१५३२. विभगे-णिरयभगो । आभि० सुद० ओधि० आयुगवज्जाण अट्टणं पगदीण  
जहण्णिया वधगद्दा सरिसा थोवा । आयु० जह० वधगद्दा संखे० गुणा । उक्क०

मनुष्यायुके वधकोंका जघन्य काल सख्यातगुणा है । उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । साता,  
हास्य, रति, यश-कीर्तिके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयश-  
कीर्तिके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है ।

१५३० तेजकाय, धायुकायमें—आयुको छोड़कर ११ प्रकृतियोंके वधकोंका जघन्यकाल समान  
रूपसे स्तोक है ।

[ विशेष-अनुदिश सम्बन्धी पूर्वोक्त आठ प्रकृतियोंमें अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, यश-  
कीर्ति, अयश कीर्ति, साता, असातामें वेदत्रयको जोड़ने ११ प्रकृतिया होती हैं । यहा वेदत्रयका  
वध होनेसे परिवर्तमान प्रकृतियोंमें उनको परिगणित किया है । ]

तिर्यंचायुके वधकोंका जघन्य काल सरयातगुणा है । पुरुषवेदके वधकोंका उत्कृष्ट काल  
सरयातगुणा है । स्त्रीवेदके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । साता, हास्य, रति, यश  
कीर्तिके वधकोंका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके वधकोंका  
उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । नपुंसकवेदके वधकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है ।

१५३१ ५ मनोयोगी, ५ वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिथकाययोगी, आहारक-  
आहारकमिश्रयोगी, कार्माणकाययोगी, अपगतवेद, क्रोधादि चार कपाय, सासादनसम्यक्त्वी,  
सम्यक् मध्यात्वी पर्यन्त परिवर्तमान प्रकृतियोंके वधकोंका वधकाल निकालकर जान लेना चाहिए ।  
विशेष-क्रोधादि चार कपायोंमें विचार करके भग जानना चाहिए । कपायका काल स्तोक  
है । वधकोंका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है ।

औदारिक तथा औदारिकमिश्रकाययोगके—पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तके समान भग हैं  
१५३२ विभगावधिमें—नरकगतिके समान भग है अर्थात् वहा १५ प्रकृतियों हैं ।  
घोधिक, श्रुत-अवधिज्ञानमें—धायुको छोड़कर शेष ८ प्रकृतियोंके वधकोंका जघन्य  
रूपसे स्तोक है ।

धधगद्धा मंखे गुणा । सादहस्त-रदि-उस० उरु० उधग० मंखे० गुणा । अरदि-मोग० अउज० उक्कस्मिया धधगद्धा सरखे० गुणा । एध मणपज्जव० । दो-आयुगाण भाणिदच्च ( च्चै ) एक चेत्त भाणिदच्च ।

५ ५३३. सजदा-सामाह० छेदो० परिहार० सजदासजद० मणपज्जव० म  
५ ओधिदं० ओधिणाणिमंगो ।

५ ५३४. किण्णणीलकाउलेस्सि० णिरयमंगो । तेउ०-देवोघ । पम्म०-सहस्तारम  
सुक्कलं०-आणदभगो ।

५ ५३५. सम्मादिट्ठी-उडग० वेदग० उरसम० ओधिणाणि भगो । णवरि उरस  
आयुगाण णत्थि अप्पावहुग ।

१० ५५३६. आहाराणुवादेण-आहारा मूलोघ । अणाहारा-कम्म ( ? ) कम्मह०  
जोगि भगो ।

एवं परत्थाण अद्धा-अप्पावहुग समत्त ।

एव पगदिबधो समत्तो ।



[ विशेष-यदा साता, हास्य, रति, अरति, शोक, असाता, श कीर्त्ति, अयश कीर्त्ति  
परिवर्तमान प्रकृतिया है । ]

आयुके धधकोका जघन्य काल सरयातगुणा है । उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है । स  
हास्य, रति, यश कीर्त्तिके धधकोका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अय  
कीर्त्तिके धधकोका उत्कृष्ट काल सरयातगुणा है । मन पर्ययज्ञानमे-इसी प्रकार जानना चाहि  
विरोध, यहाँ धधकोमे दो आयुके स्थानमे एक द्वायुका ही बध कहना चाहिए ।

५३३ सयत्त, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारनिशुद्धि तथा सयत्तासयत्तोम-मन पर्ययवत्त भग  
वधपिदरान्ने-अवप्रिज्ञानका भग है ।

५३४ कृष्ण-नील-कापोत्त हेरयामे-नरकगतिके समान भग है । तेजोत्तरेयामे-देवोक्त  
वत्त है । पद्मत्तरेयामे-सहस्वार स्वर्ग समान भग है । शुक्लत्तरेयामे-आनत-नरगका भग है ।

५३५ सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम सम्यग्दृष्टिमें-अव  
ज्ञानके स्नान भग है । विरोध, उपशमसम्यक्त्वमे आयुक्त अल्पबहुत्व नहीं है ।

[ विशेष-सम्यग्दृष्टिके मनुष्य अधरा देनायुका ही बध होता है, उपशम सम्यक्त्व  
इन तैल्लेके भी बध नहीं होता है । ]

५३६ अहाराणुवादसे-आहारवोमि मूलके ओघवत्त जानना चाहिए । अनाहारकम-कम  
कम-इत्तु अल्पक चाहिए ।

इस प्रकार परत्थान-अद्धा अल्पबहुत्व समान हुआ ।

इस प्रकार प्रकृतिबध समान हुआ ।





बह्णोषी २२,८। २३,६।  
 बीन अप्यावहुग २७९,१। २७९,२।  
 बीवसमास ३२,२।  
 बुदि २७,३।  
 तफ २७, ३।  
 तसमावरादिसत्तयुगल २०२,५।  
 तसधानरादिणत्रयुगल १०३ ३। ११७,६। १४८ २।  
 १५१,९। १५९,९। १६६,५।  
 १९६,३।  
 तसधानरादि अष्टयुगल १६४,१२।  
 तसधानरादि छत्रकयुगल १५२ १०।  
 तसगदि दसयुगल ७६ ९। ७९,११।  
 तिययर ३५ १३।  
 तिययरणाग मोदनम्म ३५ १५।  
 थावरथगिरादिपत्र १५९ ३।  
 थिरादि छत्रक १५१,६। १५२,२।  
 थिरादि छ युगल १० ३९।  
 थिरादि तिष्णियुगल १०१ ९।  
 थिरादिदाणियुगल ८३,६। ८४,५।  
 थिरादि पचयुगल १०६,४। १९५,१।  
 दसगत्रिसुजसादा ३५ १६।  
 पम्मातिययर ४१ १।  
 धुनिग १५१ १। १६०,१०। १७७,७।  
 पगदिबधनोच्छद ३२ ३।  
 पडिनादी २३ ८।  
 पडिसेनिद २७ ३।  
 परत्याण २७९ २।  
 परत्याण अद्दा अप्यावहुग ३३४,१। ३४३,१।  
 परत्याण जीव अग्या न्हुयाणुगम ३१५ १।  
 परत्याणसण्णियास ९५ १। १३६,२।

परिमाणुणुगम १७६,२।  
 परमोधि २२,५।  
 पनयण मत्ती ३६ ४।  
 पनयण भागणदा ३६,५।  
 पनयणवच्छल्पादा ३६,४।  
 पुरितवेददडग ४८,१।  
 पचोदियदडग ४८ २।  
 पाठणाणुगम १९१,२।  
 न्हुसुरमत्ती ३६,४।  
 बधसामिच्चिन्चय ३२,१।  
 भागाभागाणुगम १४१ २।  
 भावाणुगम २५९,२।  
 भगच्चियाणुगम १३३,२।  
 मणपज्जणाणावरणीय २४,३।  
 यथा छामे ( यामे ) तवे ३६,२।  
 छडिसवेगसपण्णदा ३६,२।  
 विणयसपण्णदा ३६,१।  
 विपुलमदिणाण ( छच्चिह ) २४,४।  
 वेवणिय छफ १७२ २। १७६,८।  
 हस्सादि दो युगल १७०,४।  
 सत्याण २७९,२।  
 सत्याण सण्णियास ९५,२।  
 साददडग ४८,१।  
 सादियबध ३१ १।  
 सामाण वेज्जावच्चजोगमुत्तादा ३६ ३।  
 सामाण समाधिमग्गदा ३६,३।  
 सालवद णिरिदिच्चारदा ३६ १।  
 सोलस कारण ३५ १६।  
 सभम २५,२।

### ERRATA

Refer page 15 of the preface, line No 13-15

'Date of the Author — The exact date of the author has not been known but it appears that the work must have been compiled in the beginning of the Christian era \* \*

